अनुक्रम

गीता दर्शन अध्याय 12

पहला प्रवचन

प्रेम का द्वारः भक्ति में प्रवेश

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।। 1।।

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।। 2।।

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला, हे कृष्ण, जो अनन्य प्रेमी भक्तजन इस पूर्वोक्त प्रकार से निरंतर आपके भजन व ध्यान में लगे हुए आप सगुणरूप परमेश्वर को अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी सच्चिदानंदघन निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है?

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले,

मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन-ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए

मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

एक अतर्क्य यात्रा पर इस अध्याय का प्रारंभ होता है।

एक तो जगत है, जो मनुष्य की बुद्धि समझ पाती है; सरल है। गणित और तर्क वहां काम करता है। समझ में आ सके, समझ के नियमों के अनुकूल, समझ की व्यवस्था में बैठ सके, विवाद किया जा सके, निष्कर्ष निकाले जा सकें--ऐसा एक जगत है। और एक ऐसा जगत भी है, जो तर्क के नियमों को तोड़ देता है। बुद्धि वहां जाने की कोशिश करे, तो द्वार बंद पाती है। वहां हृदय ही प्रवेश कर सकता है। वहां अंधा होना ही आंख वाला होना है; और वहां मूढ़ होना बुद्धिमत्ता है।

ऐसे अतर्क्य के आयाम में भक्ति-योग के साथ प्रवेश होगा। बहुत सोचना पड़ेगा; क्योंकि जो सोचने की पकड़ में न आ सके, उसके लिए बड़ी चेष्टा करनी पड़ेगी। जो समझ के बाहर हो, उसे समझने के लिए स्वयं को पूरा ही दांव पर लगा देना होगा। और ऐसा साहस भी रखना होगा कि जहां हम चुक जाते हैं, जरूरी नहीं कि सत्य चुक जाता हो। और जहां हमारी सीमा आ जाती है, जरूरी नहीं है कि अस्तित्व की सीमा आ जाती हो।

अपने से भी आगे जाने का साहस हो, तो ही भक्ति समझ में आ सकती है। जो अपने को ही पकड़कर बैठ जाते हैं, भक्ति उनके समझ में नहीं आ सकेगी। जो अपनी बुद्धि को ही अंतिम मापदंड मान लेते हैं, उनके मापदंड में भक्ति का सत्य नहीं बैठ सकेगा।

इस बात को पहले समझ लें। कुछ जरूरी बातें इस बात को समझने के लिए ख्याल में लेनी होंगी।

एक तो जो हमें तर्क जैसा मालूम पड़ता है और उचित लगता है, सब भांति बुद्धि को भाता है, जरूरी नहीं है कि बहुत गहरी खोज पर सही ही सिद्ध हो।

जो हम जानते हैं, अगर वहां तक सत्य होता, तो हमें मिल गया होता। जो हमारी समझ है, अगर वहीं परमात्मा की अनुभूति होने वाली होती, तो हमें हो गई होती। जो हम हैं, वैसे ही अगर हम उस परम रहस्य में प्रवेश कर पाते, तो हम प्रवेश कर ही गए होते।

एक बात तो साफ है कि जैसे हम हैं, उससे परम सत्य का कोई संबंध नहीं जुड़ता है। हमारी बुद्धि जैसी अभी है, आज है, उसका जो ढांचा और व्यवस्था है, शायद उसके कारण ही जीवन का रहस्य खुल नहीं पाता; द्वार बंद रह जाते हैं।

कभी आपने देखा हो... सूफी निरंतर कहते रहे हैं... । सूफी फकीर बायजीद बार-बार कहता था कि एक बार एक मस्जिद में बैठा हुआ था। और एक पक्षी खिड़की से भीतर घुस आया। बंद कमरा था, सिर्फ एक खिड़की ही खुली थी। पक्षी ने बड़ी कोशिश की, दीवालों से टकराया, बंद दरवाजों से टकराया, छप्पर से टकराया। और जितना टकराया, उतना ही घबड़ा गया। जितना घबड़ा गया, उतनी बेचैनी से बाहर निकलने की कोशिश की।

बायजीद बैठा ध्यान करता था। बायजीद बहुत चकित हुआ। सिर्फ उस खिड़की को छोड़कर पक्षी ने सारी कोशिश की, जो खिड़की खुली थी और जिससे वह भीतर आया था!

बायजीद बहुत चिंतित हुआ कि इस पक्षी को कोई कैसे समझाए कि जब तू भीतर आ गया है, तो बाहर जाने का मार्ग भी निश्चित ही है। क्योंकि जो मार्ग भीतर ले आता है, वही बाहर भी ले जाता है। सिर्फ दिशा बदल जाती है, द्वार तो वही होता है। और जब पक्षी भीतर आ सका है, तो बाहर भी जा ही सकेगा। अन्यथा भीतर आने का भी कोई उपाय न होता।

लेकिन वह पक्षी सब तरफ टकराता है, खुली खिड़की छोड़कर। ऐसा नहीं कि उस पक्षी को बुद्धि न थी। उस पक्षी को भी बुद्धि रही होगी। लेकिन पक्षी का भी यही ख्याल रहा होगा कि जिस खिड़की से भीतर आकर मैं फंस गया, उस खिड़की से बाहर कैसे निकल सकता हूं! जो भीतर लाकर मुझे फंसा दी, वह बाहर ले जाने का द्वार कैसे हो सकती है! यही तर्क उसका रहा होगा। जिससे हम झंझट में पड़ गए, उससे हम झंझट के बाहर कैसे निकलेंगे! इसलिए उस खिड़की को छोड़कर पक्षी ने सारी कोशिश की।

बायजीद ने सहायता भी पहुंचानी चाही। लेकिन जितनी सहायता करने की कोशिश की, पक्षी उतना बेचैन और परेशान हुआ। उसे लगा कि बायजीद भी उसको उलझाने की, फांसने की, गुलाम बनाने की, बंदी बनाने की कोशिश कर रहा है। और भी घबड़ा गया।

बायजीद ने लिखा है कि उस दिन मुझे समझ में आया कि संसार में आकर हम भी ऐसे ही उलझ गए हैं; और जिस द्वार से हमने भीतर प्रवेश किया है, उस द्वार को छोड़कर हम सब द्वारों की खोज करते हैं। और जब तक हम उसी द्वार पर नहीं पहुंच जाते, जहां से हम जीवन में प्रवेश करते हैं, तब तक हम बाहर भी नहीं निकल सकते हैं।

बुद्धि के कारण आप जगत में नहीं उलझ गए हैं। विचार के कारण आप जगत में नहीं उलझ गए हैं। आपके जगत में आगमन का द्वार प्रेम है। आपके अस्तित्व का, जीवन का द्वार प्रेम है। और प्रेम जब उलटा हो जाता है, तो भक्ति बन जाती है। जब प्रेम की दिशा बदल जाती है, तो भक्ति बन जाती है।

जब तक आप अपनी आंखों के आगे जो है उसे देख रहे हैं, जब तक उससे आपका मोह है, लगाव है, तब तक आप संसार में उतरते चले जाते हैं। और जब आप आंख बंद कर लेते हैं और जो आंख के आगे दिखाई पड़ता है वह नहीं, बल्कि आंख के पीछे जो छिपा है, उस पर लगाव और प्रेम को जोड़ देते हैं, तो भक्ति बन जाती है। द्वार वही है। द्वार दूसरा हो भी नहीं सकता।

जिससे हम भीतर आते हैं, उससे ही हमें बाहर जाना होगा। जिस रास्ते से आप यहां तक आए हैं, घर लौटते वक्त भी उसी रास्ते से जाइएगा। सिर्फ एक ही फर्क होगा कि यहां आते समय आपका ध्यान इस तरफ था, आंखें इस तरफ थीं, रुख इस तरफ था। लौटते वक्त इस तरफ पीठ होगी। आंखें वही होंगी, सिर्फ दिशा बदल जाएगी। आप वही होंगे, रास्ता वही होगा; सिर्फ दिशा बदल जाएगी।

प्रेम की दिशा के परिवर्तन का नाम भक्ति है। और प्रेम से हम इस जगत में प्रवेश करते हैं। प्रेम से ही हम इस जगत के बाहर जा सकते हैं। लेकिन प्रेम के कुछ लक्षण समझ लेने जरूरी हैं।

प्रेम का पहला लक्षण तो है उसका अंधापन। और जो भी प्रेम में नहीं होता, वह प्रेमी को अंधा और पागल मानता है। मानेगा। क्योंकि प्रेमी सोच-विचार नहीं करता; तर्क नहीं करता; हिसाब नहीं लगाता; क्या होगा परिणाम, इसकी चिंता नहीं करता। बस, छलांग लगा लेता है। जैसे प्रेम इतनी बड़ी घटना है कि उसमें डूब जाता है, और एक हो जाता है।

वे, जो भी आस-पास खड़े लोग हैं, वे सोचेंगे कि कुछ गलती हो रही है। प्रेम में भी विचार होना चाहिए। प्रेम में भी सूझ-बूझ होनी चाहिए। कहीं कोई गलत कदम न उठ जाए, इसकी पूर्व-धारणा होनी चाहिए।

प्रेम अंधा दिखाई पड़ेगा बुद्धिमानों को। लेकिन प्रेम की अपनी ही आंखें हैं। और जिसको वे आंखें उपलब्ध हो जाती हैं, वह बुद्धि की आंखों को अंधा मानने लगता है। जिसको प्रेम का रस आ जाता है, उसके लिए सारा तर्कशास्त्र व्यर्थ हो जाता है। और जो प्रेम की धुन में नाच उठता है, जो उस संगीत को अनुभव कर लेता है, वह आपके सारे सोच-विचार को दो कौड़ी की तरह छोड़ दे सकता है। उसके हाथ में कोई हीरा लग गया। अब इस हीरे के लिए आपकी कौड़ियों को नहीं सम्हाला जा सकता।

प्रेम अंधा मालूम पड़ता है। क्योंकि प्रेम के पास वे ही आंखें नहीं हैं, जो बुद्धि के पास हैं। प्रेम के पास कोई दूसरी आंखें हैं। प्रेम के देखने का ढंग कोई और है। प्रेम हृदय से देखता है। और चूंकि हम इस जगत में प्रेम के कारण ही प्रविष्ट होते हैं। अपने प्रेम के कारण, दूसरों के प्रेम के कारण हम इस जगत में आते हैं। हमारा शरीर निर्मित होता है। हम अस्तित्ववान होते हैं। इसी प्रेम को उलटाना पड़ेगा।

इसी अंधे प्रेम का नाम, जब यह जगत की तरफ से हटता है और भीतर चैतन्य की तरफ मुड़ता है, श्रद्धा है। श्रद्धा अंधा प्रेम है, लेकिन मूल-स्रोत की तरफ लौट गया। संसार की तरफ बहता हुआ वही प्रेम वासना बन जाता है। परमात्मा की तरफ लौटता हुआ वही प्रेम श्रद्धा और भक्ति बन जाती है।

जैसा प्रेम अंधा है, वैसी भक्ति भी अंधी है। इसलिए जो बहुत बुद्धिमान हैं, उनके लिए भक्ति का मार्ग, मार्ग ही मालूम नहीं पड़ेगा। जो बहुत सोच-विचार करते हैं, जो बहुत तर्क करते हैं, जो परमात्मा के पास भी बुद्धिमानीपूर्वक पहुंचना चाहते हैं, उनके लिए भक्ति का मार्ग नहीं है।

उनके लिए मार्ग हैं। लेकिन कृष्ण इस सूत्र में कहेंगे कि भक्ति से श्रेष्ठ उन मार्गों में कोई भी मार्ग नहीं है। किस कारण? क्योंकि बुद्धि कितना ही सोचे, अहंकार के पार जाना बहुत मुश्किल है। प्रेम छलांग लगाकर अहंकार के बाहर हो जाता है। बुद्धि लाख प्रयत्न करके भी अहंकार के बाहर नहीं हो पाती। क्योंकि जब मैं सोचता हूं, तो मैं तो बना ही रहता हूं। जब मैं हिसाब लगाता हूं, तो मैं तो बना ही रहता हूं। मैं कुछ भी करूं--पूजा करूं, ध्यान करूं, योग साधूं--लेकिन मैं तो बना ही रहता हूं।

भक्ति पहले ही क्षण में मैं को पार कर जाती है। क्योंकि भक्ति का अर्थ है, समर्पण। भक्ति का अर्थ है कि अब मैं नहीं, तू ज्यादा महत्वपूर्ण है। और अब मैं मैं को छोडूंगा, मिटाऊंगा, ताकि तुझे पा सकूं। यह मेरा मिटना ही तेरे पाने का रास्ता बनेगा। और जब तक मैं हूं, तब तक तुझसे दूरी बनी रहेगी। जितना मजबूत हूं मैं, उतनी ही दूरी है, उतना ही फासला है। जितना पिघलूंगा, जितना गलूंगा, जितना मिटूंगा, उतनी ही दूरी मिट जाएगी।

भक्ति को कृष्ण श्रेष्ठतम योग कहते हैं, एक कारण और है जिस वजह से।

जहां दो हों, और फिर भी एक का अनुभव हो जाए, तो ही योग है। और जहां एक ही हो, और एक का अनुभव हो, तो योग का कोई सवाल नहीं है।

अगर कोई ऐसा समझता हो कि केवल परमात्मा ही है और कुछ भी नहीं, तो योग का कोई सवाल नहीं है, मिलन का कोई सवाल नहीं है। जब एक ही है, तो न मिलने वाला है, न कोई और है, जिसमें मिलना है। मिलने की घटना तो तभी घट सकती है, जब दो हों।

एक शर्त ख्याल रखनी जरूरी है। दो हों, और फिर भी दो के बीच एक का अनुभव हो जाए, तभी मिलने की घटना घटती है। मिलन बड़ी आश्चर्यजनक घटना है। दो होते हैं, और फिर भी दो नहीं होते। दो लगते हैं, फिर भी दुई मिट गई होती है। दो छोर मालूम पड़ते हैं, फिर भी बीच में एक का ही प्रवाह अनुभव होता है। दो किनारे होते हैं, लेकिन सरिता बीच में बहने वाली एक ही होती है। जब दो के बीच एक का अनुभव हो जाए तो योग।

इसलिए कृष्ण भक्ति को सर्वश्रेष्ठ योग कहते हैं।

मजा ही क्या है, अगर एक ही हो; तो मिलने का कोई अर्थ भी नहीं है। और अगर दो हों, और दो ही बने रहें, तो मिलने का कोई उपाय नहीं है। दो हों और एक की प्रतीति हो जाए; दो होना ऊपरी रह जाए, एक होना भीतरी अनुभव बन जाए। दो के बीच जब एक की प्रतीति होती है, कृष्ण उसी को योग कहते हैं। वही मिलन है, वही परम समाधि है।

इस मिलने में परमात्मा तो पहले से ही तैयार है, सदा तैयार है। हम बाधा हैं। आमतौर से हम सोचते हैं, हम परमात्मा को खोज रहे हैं और परमात्मा नहीं मिल रहा है। इससे बड़ी भ्रांति की कोई और बात नहीं हो सकती। सचाई कुछ और ही है। परमात्मा हमें निरंतर से खोज रहा है। लेकिन हम ऐसे अड़े हुए हैं अपने पर कि हम उसको भी सफल नहीं होने देते।

सुना है मैंने, एक सम्राट अपने बेटे पर नाराज हो गया था, तो उसने उसे घर से निकाल दिया। फिर बाप था; साल, छः महीने में पिघल गया वापस। खबर भेजी लड़के को कि लौट आओ। लेकिन लड़का भी जिद्दी था, और उसने लौटने से इनकार कर दिया कि जब एक बार निकाल ही दिया, तो अब... अब आना उचित नहीं है। अब मैं न हिलूंगा यहां से। वह राज्य की सीमा के बाहर जाकर बैठ गया था।

सम्राट ने मंत्री को भेजा और कहा, थोड़ा तो हिलो, एक कदम ही सही। तुम एक कदम चलो, बाकी कदम मैं चल लूंगा। बाप ने खबर भेजी है कि तुम एक कदम ही चलो, तो भी ठीक, बाकी कदम मैं चल लूंगा। लेकिन

तुम्हारा एक कदम चलना जरूरी है। ऐसे तो मैं भी पूरा चलकर आ सकता हूं। जब इतने कदम चल सकता हूं, तो एक कदम और चल लूंगा। लेकिन वह मेरा आना व्यर्थ होगा, क्योंकि तुम मिलने को तैयार ही नहीं हो। तुम्हारा एक कदम, तुम्हारी मिलने की तैयारी की खबर देगा। बाकी मैं चल लूंगा।

आपका एक कदम चलना ही जरूरी है, बाकी तो परमात्मा चला ही हुआ है। लेकिन आपकी मिलने की तैयारी न हो, तो आप पर आक्रमण नहीं किया जा सकता।

परमात्मा अनाक्रमक है; वह प्रतीक्षा करेगा। फिर उसे कोई समय की जल्दी भी नहीं है। फिर आज ही हो जाए, ऐसा भी नहीं है। अनंत तक प्रतीक्षा की जा सकती है। समय की कमी हमें है, उसे नहीं। समय की अड़चन हमें है। हमारा समय चुक रहा है, और हमारी शक्ति व्यय हो रही है। लेकिन एक कदम हमारी तरफ से उठाया जाए, तो परमात्मा की तरफ से सारे कदम उठाए ही हुए हैं।

वह एक कदम भक्ति एक ही छलांग में उठा लेती है। और ज्ञान को उस एक कदम को उठाने के लिए हजारों कदम उठाने पड़ते हैं। क्योंकि ज्ञान कितने ही कदम उठाए, अंत में उसे वह कदम तो उठाना ही पड़ता है, जो भक्ति पहले ही कदम पर उठाती है। और वह है, अहंकार विसर्जन।

ज्ञानी कोई कितना ही बड़ा हो जाए, एक दिन उसे ज्ञानी होने की अस्मिता भी छोड़नी पड़ती है। इसलिए साक्रेटीज ने कहा है कि ज्ञान का अंतिम चरण है इस बात का अनुभव कि मैं ज्ञानी नहीं हूं। ज्ञान की पूर्णता है इस प्रतीति में कि मुझसे बड़ा अज्ञानी और कोई भी नहीं है।

अगर ज्ञान की पूर्णता इस प्रतीति में है कि मैं अज्ञानी हूं, तो इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि भक्त जो कदम पहले ही उठा लेता है... । भक्त पहले ही कदम पर अंधा हो जाता है, ज्ञानी अंतिम कदम पर अंधा होता है। बहुत यात्रा करके उसी द्वार पर आना होता है, जहां आदमी अपने को खोता है।

पर ज्ञानी बहुत चक्कर लेता है! बड़े शास्त्र हैं, बड़े सिद्धांत हैं, बड़े वाद हैं, उन सबमें भटकता है। बड़े विचार हैं। और जब तक ऊब नहीं जाता; और जब तक अपने ही विचारों से परेशान नहीं हो जाता; और जब तक उसे यह समझ में नहीं आ जाता कि मेरे विचार ही जाले की तरह मुझे बांधे हुए हैं; और मेरे विचार ही मेरी हथकड़ियां हैं; और मैंने अपने ही विचारों से अपना कारागृह निर्मित किया है, तब तक, तब तक वह लंबी भटकन से गुजरता है।

भक्त पहले ही कदम में अपने को छोड़ देता है। और जिस क्षण कोई अपने को छोड़ देता है, उसी क्षण परमात्मा उसे उठा लेता है। भक्त का साहस अदभुत है। साहस का एक ही अर्थ होता है, अज्ञात में उतर जाना। साहस का एक ही अर्थ होता है, अनजान में उतर जाना।

ज्ञानी जान-जानकर चलता है; सोच-सोचकर कदम उठाता है। हिसाब रखता है। भक्त पागल की तरह कूद जाता है। इसलिए ज्ञानियों को भक्त सदा पागल मालूम पड़े हैं। और उन भक्त पागलों ने हमेशा ज्ञानियों को व्यर्थ के उपद्रव में पड़ा हुआ समझा है।

ये जो भक्ति के सूत्र इस अध्याय में हम चर्चा करेंगे, इनमें ये बातें ध्यान रख लेनी जरूरी हैं।

ये प्रेम और पागलपन के सूत्र हैं। इनमें थोड़ा-सा आपको पिघलना पड़ेगा अपनी बुद्धि की जगह से। थोड़ा आपका हृदय गतिमान हो और थोड़ी हृदय में तरंगें उठें, तो इन सूत्रों से संबंध स्थापित हो जाएगा। आपके सिरों की बहुत जरूरत नहीं पड़ेगी, आपके हृदय की जरूरत होगी। आप अगर थोड़े-से नीचे सरक आएंगे, अपनी खोपड़ी से थोड़े हृदय की तरफ; सोच-विचार नहीं, थोड़े हृदय की धड़कन की तरफ निकट आ जाएंगे, तो इन सूत्रों से आपका संबंध और संवाद हो पाएगा।

और ऐसा नहीं है कि एक बार आपका हृदय समझ जाए, तो आपकी बुद्धि की कसौटी पर ये सूत्र नहीं उतरेंगे। उतरेंगे! लेकिन एक बार हृदय समझ जाए, एक बार आपके हृदय में इनके रस की थोड़ी-सी धारा बह जाए, तो फिर बुद्धि की भी समझ में आ जाएंगे। लेकिन सीधा अगर बुद्धि से प्रयोग करने की कोशिश की, तो बुद्धि बाधा बन जाएगी।

जैसा मैंने कहा, बहुत बार लगता है कि बुद्धि बिल्कुल ठीक कह रही है। चूंकि हमें ठीक का कोई पता नहीं है, जो बुद्धि कहती है, उसी को हम ठीक मानते हैं।

सुना है मैंने, एक बहुत बड़ा तर्कशास्त्री रात सोया हुआ था। उसकी पत्नी ने उसे उठाया और कहा कि जरा उठो। बाहर बहुत सर्दी है और मैं गली जा रही हूं। खिड़की बंद कर दो। उसकी पत्नी ने कहा, देअर इ.ज टू मच कोल्ड आउटसाइड। गेट अप एंड क्लोज दि विंडो। उस तर्कशास्त्री ने कहा कि तू भी अजीब बातें कर रही है! क्या मैं खिड़की बंद कर दूं, तो बाहर गरमी हो जाएगी? इफ आई क्लोज दि विंडो, विल आउटसाइड गेट वार्म? क्या बाहर सर्दी चली जाएगी अगर मैं खिड़की बंद कर दूं?

तर्क की लिहाज से बिल्कुल ठीक बात है। उसकी पत्नी कह रही थी कि बाहर बहुत सर्दी है, खिड़की बंद कर दो। उस तर्कशास्त्री ने कहा, क्या खिड़की बंद करने से बाहर गरमी हो जाएगी? खिड़की बंद करने से बाहर गरमी नहीं होने वाली। और पति सो गया! तर्क की किताब में भूल खोजनी मुश्किल है। क्योंकि पत्नी ने जो कहा था, उसका जवाब दे दिया गया।

हमारी जिंदगी में हम अज्ञात के संबंध में जो तर्क उठाते हैं, वे करीब-करीब ऐसे ही होते हैं। उनके जवाब दिए जा सकते हैं। और फिर भी जवाब व्यर्थ होते हैं। क्योंकि जिस संबंध में हम जवाब दे रहे हैं, उस संबंध में तर्कयुक्त हो जाना काफी नहीं है।

और तर्क की और एक असुविधा है कि तर्क कुछ भी सिद्ध कर सकता है। और तर्क कुछ भी असिद्ध कर सकता है। तर्क वेश्या की भांति है। उसका कोई पति नहीं है। तर्क का कोई भी पति हो सकता है। जो भी तर्क को चुकाने को तैयार है पैसे, वही पति हो जाता है। इसलिए तर्क कोई भरोसे की नाव नहीं है।

आज तक दुनिया में ऐसा कोई तर्क नहीं दिया जा सका, जिसका खंडन न किया जा सके। और मजा यह है कि जो तर्क एक बात को सिद्ध करता है, वही तर्क उसी बात को असिद्ध भी कर सकता है।

मैंने सुना है, एक बड़ा तर्कशास्त्री सुबह अपने बगीचे में बैठकर नाश्ता कर रहा था। और जैसा कि अक्सर होता है, तर्कशास्त्री निराशावादी होता है। क्योंकि तर्क से कोई आशा की किरण तो निकलती नहीं। आशा की किरण तो निकलती है प्रेम से, जो अतर्क्य है। तर्क से तो केवल उदासी निकलती है। जिंदगी में क्या-क्या व्यर्थ है, वही दिखाई पड़ता है; और कहां-कहां कांटे हैं, वही अनुभव में आते हैं। फूलों को समझने के लिए तो हृदय चाहिए। कांटों को समझने के लिए बुद्धि काफी है, पर्याप्त है।

तर्कशास्त्री निराशावादी था। वह चाय पी रहा था और अपने टोस्ट पर मक्खन लगा रहा था। तभी वह बोला कि दुनिया में इतना दुख है और दुनिया में सब चीजें गलत हैं कि अगर मेरे हाथ से यह रोटी का टुकड़ा छूट जाए, तो मैं कितनी ही शर्त बद सकता हूं, अगर यह रोटी का टुकड़ा मेरे हाथ से छूटे, तो दुनिया इतनी बदतर है कि जिस तरफ मैंने मक्खन लगाया है, उसी तरफ से यह जमीन पर गिरेगा, ताकि धूल लग जाए और नष्ट हो जाए!

उसकी पत्नी ने कहा, ऐसा अनिवार्य नहीं है। दूसरी तरफ भी गिर सकता है! तो उस तर्कशास्त्री ने कहा, फिर तुझे पता नहीं कि जो संसार के ज्ञानी कहते रहे कि संसार दुख है।

बात बढ़ गई और शर्त भी लग गई। तर्कशास्त्री ने उछाला रोटी का टुकड़ा। संयोग की बात, मक्खन की तरफ से नीचे नहीं गिरा। मक्खन की तरफ ऊपर रही, और जिस तरफ मक्खन नहीं था, उस तरफ से फर्श पर गिरा। पत्नी ने कहा कि देखो, मैं शर्त जीत गई!

तर्कशास्त्री ने कहा, न तो तू शर्त जीती और न मेरी बात गलत हुई। सिर्फ इससे इतना ही सिद्ध होता है कि मैंने गलत तरफ मक्खन लगाया! टुकड़ा तो वहीं गिरा है जैसा गिरना चाहिए था, सिर्फ मक्खन मैंने दूसरी तरफ लगा दिया।

तर्क का कोई भरोसा नहीं है। पर हम तर्क से जीते हैं और हम पूरी जिंदगी को तर्क के जाल से बुन लेते हैं। उसके बीच लगता है, हम बहुत बुद्धिमान हैं। और अक्सर उसी बुद्धिमानी में हम जीवन का वह सब खो देते हैं, जो हमें मिल सकता था।

भक्ति, तर्क के लिए अगम्य है; विचार के लिए सीमा के बाहर है। होशियारों का वहां काम नहीं। वहां नासमझ प्रवेश कर जाते हैं। तो नासमझ होने की थोड़ी तैयारी रखना।

अब हम इन सूत्रों को लें।

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला, हे कृष्ण, जो अनन्य प्रेमी, भक्तजन इस पूर्वोक्त प्रकार से निरंतर आपके भजन व ध्यान में लगे हुए आप सगुणरूप परमेश्वर को अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी सच्चिदानंदघन निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है?

अर्जुन ने पूछा, दो तरह के लोग देखता हूं, दो तरह के साधक, दो तरह के खोजी। एक वे, जो देखते हैं कि आप निराकार हैं; आपका कोई रूप नहीं, कोई गुण नहीं, कोई सीमा नहीं, कोई आकृति नहीं। आपका कोई अवतार नहीं। आपको न देखा जा सकता, न छुआ जा सकता। वे, जो मानते हैं कि आप अदृश्य, विराट, असीम, निर्गुण, शक्तिरूप हैं, शक्ति मात्र हैं। ऐसे साधक, ऐसे योगी हैं। और वे भी हैं, जो आपको अनन्य प्रेम से भजते हैं, ध्यान करते हैं आपके सगुण रूप का, आपके आकार का, आपके अवतरण का। इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है?

अर्जुन यह पूछना चाह रहा है कि मैं किस राह से चलूं? मैं खुद कौन-सी राह पकडूं? मैं आपको निराकार की तरफ से स्पर्श करूं कि साकार की तरफ से? मैं आपके प्रेम में पड़ जाऊं और दीवाना हो जाऊं, पागल हो जाऊं? या विचारपूर्वक आपके निराकार का ध्यान करूं? मैं भक्ति में पडूं, प्रार्थना-पूजा में, प्रेम में; या ध्यान में, मौन में, निर्विचार में?

क्योंकि जो निराकार की तरफ जाए, उसे निर्विचार से चलना पड़ेगा। सब विचार आकार वाले हैं। और जहां तक विचार रह जाता है, वहां तक आकार भी रह जाएंगे। सभी विचार सगुण हैं। इसलिए विचार से निर्गुण तक नहीं पहुंचा जा सकता। तो सारे विचार छोड़ दूं। खुद भी शून्य हो जाऊं भीतर, ताकि आपके शून्यरूप का अनुभव हो सके।

और ध्यान रहे, जो भी अनुभव करना हो, वैसे ही हो जाना पड़ता है। समान को ही समान का अनुभव होता है। जब तक मैं शून्य न हो जाऊं, तब तक निराकार का कोई अनुभव न होगा। और जब तक मैं प्रेम ही न हो जाऊं, तब तक साकार का कोई अनुभव न होगा। जो भी मुझे अनुभव करना है, वैसा ही मुझे बन जाना होगा।

इसलिए बुद्ध अगर कहते हैं, कोई ईश्वर नहीं है, तो उसका कारण है। क्योंकि बुद्ध का जोर है कि तुम शून्य हो जाओ। ईश्वर की धारणा भी बाधा बनेगी। अगर तुम यह भी सोचोगे कि कोई ईश्वर है, तो यह भी विचार हो

जाएगा। और यह भी तुम्हारे मन के आकाश को घेर लेगा एक बादल की भांति। तुम इससे आच्छादित हो जाओगे। इतनी भी जगह मत रखो। तुम सीधे खाली आकाश हो जाओ, जहां कोई विचार का बादल न रह जाए, परमात्मा के विचार का भी नहीं।

बुद्ध कहते हैं, कोई मोक्ष नहीं है। क्योंकि मोक्ष की धारणा भी तुम्हारे मन में रह जाएगी, वह भी कामना बनेगी, इच्छा बनेगी; वह भी तुम्हारे मन को आच्छादित कर लेगी। तुम बिल्कुल खाली, शून्य हो जाओ। तुम कोई धारणा, कोई विचार मत बनाओ।

इसलिए बुद्ध ईश्वर को, मोक्ष को, आत्मा तक को इनकार कर देते हैं। इसलिए नहीं कि ईश्वर नहीं है; इसलिए नहीं कि आत्मा नहीं है; इसलिए भी नहीं कि मोक्ष नहीं है। बल्कि इसीलिए ताकि तुम शून्य हो सको। और जिस दिन तुम शून्य हो जाओगे, तुमने जो पूछा था कि मोक्ष है या नहीं, पूछा था कि ईश्वर है या नहीं, वह तुम जान ही लोगे। इसलिए उसकी कोई चर्चा करनी बुद्ध ने जरूरी नहीं समझी।

इस कारण बुद्ध को लोगों ने समझा नास्तिक। असल में जो निराकार को मानता है, वह नास्तिक मालूम पड़ेगा ही। क्योंकि सभी आकार इनकार करने हैं। सभी आकार तोड़ डालने हैं। सारी मूर्तियां सारी प्रतिमाएं चित्त से हटा देनी हैं। सारे मंदिर, मस्जिद विदा कर देने हैं। कुछ भीतर न बचे। भीतर खालीपन रह जाए। उस खालीपन में ही निराकार का संस्पर्श होगा। क्योंकि जो मैं हो जाऊं, उसी को मैं जान सकूंगा। बुद्ध इनकार कर देते हैं, ताकि आप शून्य हो सकें।

अर्जुन पूछता है, ऐसे लोग हैं, ऐसे साधक, खोजी हैं, सिद्ध हैं, क्या वे उत्तम हैं? या वे लोग जो प्रेम से, अनन्य भक्ति से आपको खोजते हैं?

प्रेम की पकड़ बिल्कुल दूसरी है। निर्विचार होना है, तो खाली होना पड़े। निराकार की तरफ जाना है, तो खाली होना पड़े, बिल्कुल खाली। और अगर भक्ति से जाना है, तो भर जाना पड़े--पूरा। उलटा है! जो भी भीतर है, खाली कर दो, ताकि शून्य रह जाए, और शून्य में संस्पर्श हो सके निराकार का।

भक्ति का मार्ग है उलटा। भक्ति कहती है, भर जाओ पूरे उसी से, परमात्मा से ही। वही तुम्हारे हृदय में धड़कने लगे; वही तुम्हारी श्वासों में हो; वही तुम्हारे विचारों में हो। निकालो कुछ भी मत; सभी को उसी में रूपांतरित कर दो। तुम्हारा खून भी वही हो। तुम्हारी हड्डी और मांस-मज्जा भी वही हो। तुम्हारे भीतर रोआं-रोआं उसी का हो जाए। तुम उसी में सांस लो। उसी में भोजन करो। उसी में उठो, उसी में बैठो। तुम में तुम जैसा कुछ भी न बचे। तुम उसी के रंग-रूप में हो जाओ। तुम उससे इतने भर जाओ कि तुम्हारे भीतर रत्तीभर जगह खाली न बचे।

ध्यान रखें, निराकार का साधक कहता है, तुम्हारे भीतर रत्तीभर जगह भरी न रहे; सब खाली हो जाए। जिस दिन तुम पूरे खाली हो जाओगे, उस दिन वह घटना घट जाएगी, जिसकी तलाश है।

भक्ति का मार्ग कहता है, तुम्हारे भीतर जरा-सी भी जगह खाली न बचे। तुम इतने भर जाओ कि वही रह जाए, तुम न बचो। क्योंकि वह जो खाली जगह है, उसी में तुम बच सकते हो। वह जो खाली जगह है, उसी में तुम छिप सकते हो। तो तुम्हारे विचार, तुम्हारे भाव, तुम्हारी धड़कनें, सब उसी की हो जाएं। अनन्य भक्ति का अर्थ यह होता है। जैसे प्रेमी अपनी प्रेयसी से भर जाता है या प्रेयसी अपने प्रेमी से भर जाती है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बचता।

अगर आप प्रेम में हैं, तो यह सारा संसार खो जाता है, बस आपका प्रेमी बचता है। आप खाना भी खाते हैं, लेकिन खाते समय भी प्रेमी ही आपके भीतर होता है। आप रास्ते पर चलते भी हैं, बाजार में भी जाते हैं,

दुकान पर भी बैठते हैं, काम भी करते हैं; सब होता रहता है; लेकिन भीतर चौबीस घंटे उसी की धुन बजती रहती है। प्रेमी मौजूद रहता है। उठने में, बैठने में, चलने में, सोते में, सपने में, वही छा जाता है। साधारण प्रेमी भी!

परमात्मा के प्रेम में पड़ना असाधारण प्रेम है। भक्त बचे ही न, इतना भर जाए।

अर्जुन पूछता है, ऐसे दो मार्ग हैं। बड़े उलटे मालूम पड़ते हैं। एक तरफ निराकार है और निर्विचार होना है। और एक तरफ साकार आप हैं; और सब भांति आपकी भक्ति से ही परिपूर्ण रूप से भर जाना है। घड़ा जरा भी खाली न रहे। कौन-सा मार्ग इनमें श्रेष्ठ है?

इस प्रश्न को पूछने में कई बातें छिपी हैं।

पहली बात, जरूरी नहीं है कि कृष्ण, अर्जुन के अलावा किसी और ने पूछा होता, तो यही उत्तर देते। पहला तो आप यह ख्याल में ले लें। जरूरी नहीं है कि अर्जुन के अलावा किसी और ने पूछा होता, तो कृष्ण यही उत्तर देते। अगर बुद्ध जैसा व्यक्ति होता, तो कृष्ण यह कभी न कहते कि भक्ति का मार्ग ही श्रेष्ठ है। कृष्ण का उत्तर दूसरा होता।

अर्जुन सामने है। यह उत्तर वैयक्तिक है, ए पर्सनल कम्युनिकेशन। सामने खड़ा है अर्जुन। और जब कृष्ण उससे कहते हैं, तो इस उत्तर में अर्जुन समाविष्ट हो जाता है। इस कारण बड़ी अड़चन होती है। इस कारण गीता पर सैकड़ों टीकाएं लिखी गईं और बड़ा विवाद है कि कृष्ण ऐसा क्यों कहते हैं!

अगर शंकर लिखेंगे टीका, तो निश्चित ही उनको बड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी कि भक्ति-योग श्रेष्ठ! बहुत मुश्किल होगा। फिर तोड़-मरोड़ होगी। फिर कृष्ण के मुंह में ऐसे शब्द डालने पड़ेंगे, जो उनका प्रयोजन भी न हो। इस तोड़-मरोड़ के करने की कोई भी जरूरत नहीं है।

मेरी दृष्टि ऐसी है कि जब भी दो व्यक्तियों के बीच कोई संवाद होता है, तो इसमें बोलने वाला ही महत्वपूर्ण नहीं होता, सुनने वाला भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि जिससे बात कही गई है, वह भी समाविष्ट है। जब कृष्ण कहते हैं कि भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है, तो पहली तो बात यह है कि अर्जुन के लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है।

दूसरी बात यह जान लेनी चाहिए कि अर्जुन जैसे सभी लोगों के लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। और अर्जुन जैसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। थोड़ी नहीं, सौ में निन्यानबे लोग ऐसे हैं, जिनके लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। क्योंकि निर्विचार होना अति दुरूह है। लेकिन प्रेम से भर जाना इतना दुरूह नहीं है। क्योंकि प्रेम एक नैसर्गिक उदभावना है। और निर्विचार होने के लिए तो आपको बहुत सोचना पड़ेगा कि क्यों निर्विचार हों! लेकिन प्रेम से भरने के लिए बहुत सोचना न होगा। प्रेम एक स्वाभाविक भूख है।

निर्विचार कौन होना चाहता है? शायद ही कोई आदमी मिले। लेकिन प्रेम से कौन नहीं भर जाना चाहता? शायद ही कोई आदमी मिले, जो प्रेम से न भर जाना चाहता हो!

जो आदमी प्रेम में जरा भी उत्सुक न हो, निराकार उसका रास्ता है। लेकिन आपकी अगर जरा-सी भी उत्सुकता प्रेम में हो, तो साकार आपका रास्ता है। क्योंकि जो आपके भीतर है, उसके ही रास्ते से चलना आसान है। और जो आपमें छिपा है, उसको ही रूपांतरित करना सुगम है। और जो आपके भीतर अभी मौजूद ही है, उसी को सीढ़ी बना लेना उचित है।

प्रेम की गहन भूख है। आदमी बिना भोजन के रह जाए, बिना प्रेम के रहना बहुत कठिन है। और जो लोग बिना प्रेम के रह जाते हैं, वे आदमी हो ही नहीं पाते।

अभी मनसविद बहुत खोज करते हैं। और मनसविद कहते हैं कि अब तक ख्याल में भी नहीं था कि प्रेम के बिना आदमी जीवित न रह सकता है, न बढ़ सकता है, न हो सकता है।

जिन बच्चों को मां के पास न बड़ा किया जाए और बिल्कुल प्रेमशून्य व्यवस्था में रखा जाए, वे बच्चे पनप नहीं पाते और शीघ्र ही मर जाते हैं। भोजन पूरा दिया जाए, चिकित्सा पूरी दी जाए, सिर्फ मां की ऊष्मा, वह जो मां की गरमी है प्रेम की, वह उनको न मिले। अगर उनको किसी और की गरमी और ऊष्मा और प्रेम दिया जाए, तो भी उनके भीतर कुछ कमी रह जाती है, जो जीवनभर उनका पीछा करती है।

मनसविद कहते हैं कि जब तक हम इस जमीन पर और बेहतर माताएं पैदा नहीं कर सकते, तब तक दुनिया को बेहतर नहीं किया जा सकता। और प्रेमपूर्ण माताएं जब तक हम पैदा नहीं करते, दुनिया में युद्ध बंद नहीं किए जा सकते, घृणा बंद नहीं की जा सकती, वैमनस्य बंद नहीं किया जा सकता। क्योंकि आदमी के भीतर कुछ मौलिक तत्व, प्रेम के न मिलने से, अविकसित रह जाता है। और वह जो अविकसित तत्व भीतर रह जाता है, वही जीवन का सारा उपद्रव है। घृणा, हिंसा, क्रोध, हत्या, विध्वंस, सब उस अविकसित तत्व से पैदा होते हैं।

अगर आपके भीतर प्रेम की एक सहज-स्वाभाविक भूख है--जो कि है। आप प्रेम चाहते भी हैं, और आप प्रेम करना भी चाहते हैं। कोई आपको प्रेम करे, इसकी भी गहन कामना है। क्योंकि जैसे ही कोई आपको प्रेम करता है, आपके जीवन में मूल्य पैदा हो जाता है। लगता है, आप मूल्यवान हैं। जगत आपको चाहता है। कम से कम एक व्यक्ति तो चाहता है। कम से कम एक व्यक्ति के लिए तो आप अपरिहार्य हैं। कम से कम कोई तो है, जो आपकी गैर-मौजूदगी अनुभव करेगा; आपके बिना जो अधूरा हो जाएगा। आप न होंगे, तो इस जगत में कहीं कुछ जगह खाली हो जाएगी, किसी हृदय में सही।

जैसे ही कोई आपको प्रेम करता है, आप मूल्यवान हो जाते हैं। अगर आपको कोई भी प्रेम नहीं करता, तो आपको कोई मूल्य नहीं मालूम पड़ता। आप कितने ही बड़े पद पर हों, और कितना ही धन इकट्ठा कर लें, और आपकी तिजोड़ी कितनी ही बड़ी होती जाए, लेकिन आप समझेंगे कि आप निर्मूल्य हैं; आपका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त और कोई मूल्य का अनुभव होता ही नहीं।

लेकिन इतना ही काफी नहीं है कि कोई आपको प्रेम करे। इससे भी ज्यादा जरूरी है कि कोई आपका प्रेम ले। ठीक जैसे आप श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। सिर्फ आप श्वास लेते चले जाएं, तो मर जाएंगे। आपको श्वास छोड़नी भी पड़ेगी। श्वास लेनी भी पड़ेगी और श्वास छोड़नी भी पड़ेगी, तभी आप जिंदा और ताजे होंगे; और तभी आपकी श्वास नई और जीवंत होगी। प्रेम लेना भी पड़ेगा और प्रेम देना भी पड़ेगा। सिर्फ जो आदमी प्रेम ले लेता है, वह भी मर जाता है। उसने सिर्फ श्वास ली, श्वास छोड़ी नहीं।

इस दुनिया में दो तरह के मुर्दे हैं, एक जो श्वास न लेने से मर गए हैं, एक जो श्वास न देने से मर गए हैं। और जिंदा आदमी वही है, जो श्वास लेता भी उतने ही आनंद से है, श्वास देता भी उतने ही आनंद से है; तो जीवित रह पाता है।

प्रेम एक गहरी श्वास है। और प्रेम के बिना भीतर का जो गहन छिपा हुआ प्राण है, वह जीवित नहीं होता। इसकी भूख है। इसलिए प्रेम के बिना आप असुविधा अनुभव करेंगे।

यह प्रेम की भूख अध्यात्म बन सकती है। अगर यह प्रेम की भूख मूल की तरफ लौटा दी जाए; अगर यह प्रेम की भूख पदार्थ की तरफ से परमात्मा की तरफ लौटा दी जाए; अगर यह प्रेम की भूख परिवर्तनशील जगत से शाश्वत की तरफ लौटा दी जाए, तो यह भक्ति बन जाती है।

इसलिए कृष्ण यह कहते हैं कि प्रेम का, भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है, तो उसके कारण हैं। एक तो अर्जुन से, और दूसरा सारी मनुष्य जाति से। क्योंकि ऐसा व्यक्ति खोजना मुश्किल है, अति मुश्किल है, जिसके लिए प्रेम का कोई भी मूल्य न हो।

जिसके लिए प्रेम का कोई भी मूल्य नहीं है, निर्विचार उसकी साधना होगी। वह अपने को शून्य कर सकता है। जिसका प्रेम मांग कर रहा है पुष्पित-पल्लवित होने की, बेहतर है कि वह भक्ति के द्वार से परमात्मा को, सत्य को खोजने निकले।

अर्जुन का यह पूछना अपने लिए ही है। लेकिन हम अक्सर अपने को बीच में नहीं रखते, पूछते समय भी। अर्जुन यह नहीं कह रहा है कि मेरे लिए कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है। अर्जुन कहता है, कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है। लेकिन उसकी गहन कामना अपने लिए ही है। क्योंकि हमारे सारे प्रश्न अपने लिए ही होते हैं।

आप जब भी कुछ पूछते हैं, तो आपका पूछना निर्वैयक्तिक नहीं होता; हो भी नहीं सकता। भला आप प्रश्न को कितना ही निर्वैयक्तिक बनाएं, आप उसके भीतर खड़े होते हैं; और आपका प्रश्न आपके संबंध में खबर देता है। आप जो भी पूछते हैं, उससे आपके संबंध में खबर मिलती है।

अर्जुन को यह सवाल उठा है कि कौन-सा है श्रेष्ठ मार्ग। यह सवाल इसीलिए उठा है कि किस मार्ग पर मैं चलूं? किस मार्ग से मैं प्रवेश करूं? कौन से मार्ग से मैं पहुंच सकूंगा? कृष्ण जो उत्तर दे रहे हैं, उसमें अर्जुन ख्याल में है।

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन, मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं... । इसमें बहुत-सी बातें समझ लेने जैसी हैं।

मुझमें मन को एकाग्र करके!

क्या आपने कभी ख्याल किया कि एकाग्रता प्रेम की भूमि में सहज ही फलित हो जाती है! प्रेम की भूमि हो, तो एकाग्रता अपने आप अंकुरित हो जाती है। असल में आप अपने मन को एकाग्र इसीलिए नहीं कर पाते, क्योंकि जिस विषय पर आप एकाग्र करना चाहते हैं, उससे आपका कोई प्रेम नहीं है।

अगर एक विद्यार्थी मेरे पास आता है और कहता है, मैं पढ़ता हूं--डाक्टरी पढ़ता हूं, इंजीनियरिंग पढ़ता हूं--लेकिन मेरा मन नहीं लगता, मन एकाग्र नहीं होता; तो मैं पहली बात यही पूछता हूं कि जो भी तू पढ़ता है, उससे तेरा प्रेम है? क्योंकि अगर प्रेम नहीं है, तो एकाग्रता असंभव है। और जहां प्रेम है, वहां एकाग्रता न हो, ऐसा असंभव है। वही युवक कहता है कि उपन्यास पढ़ता हूं, तो मन एकाग्र हो जाता है। फिल्म देखता हूं, तो मन एकाग्र हो जाता है।

तो जहां प्रेम है, वहां एकाग्रता हो जाती है। जहां लगाव है, वहां एकाग्रता हो जाती है। जब भी आप पाएं कि किसी बात में आपकी एकाग्रता नहीं होती, तो एकाग्रता करने की कोशिश न करके इस बात को पहले समझने की कोशिश कर लेनी चाहिए कि मेरा प्रेम भी वहां है या नहीं है? प्रेम के लिए एकाग्रता का प्रश्न ही नहीं उठता।

अगर आइंस्टीन अपने गणित को हल करता है, तो उसे एकाग्रता करनी नहीं पड़ती। गणित उसका प्रेम है। उसकी प्रेयसी भी बैठी रहे, तो वह प्रेयसी को भूल जाएगा और गणित को नहीं भूलेगा।

डाक्टर राममनोहर लोहिया मिलने गए थे आइंस्टीन को, तो छः घंटे उनको प्रतीक्षा करनी पड़ी। और आइंस्टीन अपने बाथरूम में है और निकलता ही नहीं। आइंस्टीन की पत्नी ने बार-बार उनको कहा कि आप चाहें तो जा सकते हैं; आपको बहुत देर हो गई। और क्षमायाचना मांगी। लेकिन कोई उपाय नहीं है। यही संभावना है कि वे अपने बाथ टब में बैठकर गणित सुलझाने में लग गए होंगे।

छः घंटे बाद आइंस्टीन बाहर आया, तो बहुत प्रसन्न था, क्योंकि कोई पहेली हल हो गई थी। खाना भूल जाएगा। पत्नी भूल जाएगी। लेकिन वह जो गणित की पहेली है, वह नहीं भूलेगी।

जहां प्रेम है, वहां एकाग्रता सहज फलित हो जाती है। एकाग्रता प्रेम की छाया है। आप चाहें भी तो फिर मन की एकाग्रता को तोड़ नहीं सकते। इसीलिए तो जब आप किसी के प्रेम में होते हैं और उसे भुलाना चाहते हैं, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। जिससे प्रेम नहीं है, उसे याद करना जितना मुश्किल है, उससे ज्यादा मुश्किल है, जिससे प्रेम है उसे भुलाना।

जिससे प्रेम है, उसे भुलाइएगा कैसे? कोई उपाय नहीं है। भुलाने की कोशिश भी बस, उसको याद करने की कोशिश बनकर रह जाती है। और भुलाने में भी उसकी याद ही आती है, और कुछ भी नहीं होता। और भुलाने में भी याद मजबूत होती है, पुनरुक्त होती है।

जहां प्रेम है, वहां एकाग्रता छाया की तरह चली आती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे में मन को एकाग्र करके!

एकाग्रता का अर्थ ही है, मुझमें अपने प्रेम को पूरी तरह डुबाकर; मुझमें अपने हृदय को पूरी तरह रखकर या अपने हृदय में मुझे पूरी तरह रखकर। प्रेम का अर्थ है, अपने को गंवाकर, अपने को खोकर। मैं ही बचूं; रोआं-रोआं मेरी ही याद करे।

मेरे भजन और ध्यान में लगे हुए!

मेरा ही गीत, मेरा ही नृत्य, उठते-बैठते जीवन की सारी क्रिया मेरी ही स्मृति बन जाए। जहां भी देखें, मैं दिखाई पडूं।

अगर आपने कभी किसी को प्रेम किया है... । अगर इसलिए कहता हूं, क्योंकि प्रेम की घटना कम होती जाती है। प्रेम की चर्चा बहुत होती है, प्रेम की कहानियां बहुत चलती हैं, प्रेम की फिल्में बहुत बनती हैं। वे बनती ही इसलिए हैं कि प्रेम नहीं रहा है। वे सब्स्टीट्यूट हैं।

भूखा आदमी भोजन की बात करता है। जिसके पास भोजन पर्याप्त है, वह भोजन की बात नहीं करता। नंगे आदमी कपड़े की चर्चा करते हैं। और जब कोई आदमी कपड़े की चर्चा करता मिले, तो समझना कि नंगा है, भला कितने ही कपड़े पहने हो। क्योंकि हम जो नहीं पूरा कर पाते जीवन में, उसको हम विचार कर-करके पूरा करने की कोशिश करते हैं।

आज सारी जमीन पर प्रेम की इतनी चर्चा होती है, इतने गीत लिखे जाते हैं, इतनी किताबें लिखी जाती हैं, उसका कुल मात्र कारण इतना है कि जमीन पर प्रेम सूखता चला जा रहा है। अब चर्चा करके ही, फिल्म देखकर ही अपने को समझाना-सुलझाना पड़ता है।

इसलिए कहता हूं कि अगर आपने किसी को कभी प्रेम किया हो, तो एक बात आपके ख्याल में आई होगी कि आप जहां भी देखें, आपको अपने प्रेमी की भनक अनुभव होगी। अगर प्रेमी आकाश में देखे, तो तारों में उसकी प्रेयसी की आंख उसे दिखाई पड़ेगी। चांद को देखे, तो प्रेयसी दिखाई पड़ेगी। सागर की लहरों को सुने, तो प्रेयसी की प्रतीति होगी। फूलों को खिलता देखे, कि कहीं कोई गीत सुने, कि कहीं कोई वीणा का स्वर सुने, कि

पक्षी सुबह गीत गाएं, कि सूरज निकले, कि कुछ भी हो, इससे फर्क नहीं पड़ेगा। सब तरफ से उसे एक ही खबर मिलती रहेगी और एक ही स्मरण पर चोट पड़ती रहेगी, और उसके हृदय में एक ही धुन बजती रहेगी।

जब कोई परमात्मा की तरफ इस भांति झुक जाता है कि फूल में वही दिखाई पड़ने लगता है; आकाश में उड़ते पक्षी में वही दिखाई पड़ने लगता है; कि घास पर जमी हुई सुबह की ओस में वही दिखाई पड़ने लगता है; तब समझना, भजन पूरा हुआ।

भजन का मतलब है, वही दिखाई पड़ता हो सब जगह। ऐसा मुंह से राम-राम कहते रहने से भजन नहीं हो जाता। वह भी सब्स्टीट्यूट है। जब अस्तित्व में अनुभव नहीं होता, तो आदमी मुंह से कहकर परिपूर्ति कर लेता है।

एक आदमी सुबह से राम-राम कहता चला जा रहा है। पास में खिले फूल में उसे राम नहीं दिखाई पड़ता। आकाश में सूरज ऊग रहा है, उसे राम नहीं दिखाई पड़ता। वह अपने होंठों से ही राम-राम कहे चला जा रहा है। बुरा नहीं है; कुछ और कहने से बेहतर ही है। कुछ न कुछ तो वह कहेगा ही। होंठ कुछ न कुछ करेंगे ही। बेहतर है; कुछ बुरा नहीं है; लेकिन यह भजन नहीं है। भजन तो यह है कि चारों तरफ जो भी हो रहा है, वह सभी राम-मय हो जाए और सभी में वही दिखाई पड़ने लगे।

जब तक आपको मंदिर में ही भगवान दिखाई पड़ता है, तब तक समझना कि अभी आपको भगवान के मंदिर का कोई पता नहीं है। जब तक आपको उसकी किसी बंधी हुई मूर्ति में ही उसकी प्रतीति होती है, तब तक समझना कि अभी आपको उसका कोई पता ही नहीं है। अन्यथा सभी मूर्तियां उसकी हो जाएंगी। अनगढ़ पत्थर भी उसी की मूर्ति होगा। रास्ते के किनारे पड़ी हुई चट्टान भी उसी की मूर्ति होगी। क्योंकि भजन से भरे हुए हृदय को सब तरफ वही सुनाई पड़ने लगता है।

यह जगत एक प्रतिध्वनि है। जो हमारे हृदय में होता है, वही हमें सुनाई पड़ने लगता है।

सुना है मैंने कि फ्रायड के पास, सिग्मंड फ्रायड के पास एक मरीज आया। उसके दिमाग में कुछ खराबी थी और घर के लोग परेशान थे। तो फ्रायड सबसे पहले फिक्र करता था कि इस आदमी में कोई काम-विकार, इसके सेक्स में कोई ग्रंथि, कोई उलझाव तो नहीं है। क्योंकि आमतौर से सौ बीमारियों में--मानसिक बीमारियों में--नब्बे बीमारियां तो काम-ग्रंथि से पैदा होती हैं। कहीं न कहीं सेक्स एनर्जी, काम-ऊर्जा उलझ गई होती है और उसकी वजह से मानसिक बीमारी पैदा होती है। तो फ्रायड पहले फिक्र करता था कि इसके संबंध में जांच-पड़ताल कर ले।

सामने से एक घोड़े पर एक सवार जा रहा था। तो फ्रायड ने उससे पूछा... ।

फ्रायड के सिद्धांतों का एक हिस्सा था, फ्री एसोसिएशन आफ थाट्स, विचार का स्वतंत्र प्रवाह। उससे अनुभव में आता है कि आदमी के भीतर क्या चल रहा है।

उसने अचानक उस मरीज से पूछा कि देखो, वह घोड़े पर सवार जा रहा है। तुम्हें एकदम से घोड़े पर सवार को देखकर किस बात की याद आती है? एकदम! सोचकर नहीं, एकदम जो भी याद आती हो, मुझे कह दो। उस आदमी ने कहा कि मुझे औरत की याद आती है, स्त्री दिखाई पड़ती है।

फ्रायड दूसरी बातों में लग गया। एक पक्षी आकर खिड़की पर बैठकर आवाज करने लगा। तो फ्रायड ने फिर बातचीत तोड़कर कहा कि यह पक्षी आवाज कर रहा है, इसे सुनकर तुम्हें किस बात की याद आती है? उसने कहा कि औरत की याद आती है।

फ्रायड भी थोड़ा बेचैन हुआ। हालांकि उसके सिद्धांत के अनुसार ही चल रहा था यह आदमी। तभी फ्रायड ने अपनी पेंसिल जो हाथ में ले रखी थी, छोड़ दी, फर्श पर पटक दी। और कहा, इस पेंसिल को गिरते देखकर तुम्हें किस चीज की याद आती है? उस आदमी ने कहा, मुझे औरत की याद आती है!

फ्रायड ने कहा, क्या कारण है तुम्हें औरत का हर चीज में याद आने का? उस आदमी ने कहा, मुझे और किसी चीज की याद ही नहीं आती। ये सब बेकार की चीजें आप कर रहे हैं--घोड़ा, पक्षी, कि पेंसिल--इतना परेशान होने की जरूरत नहीं। मुझे और किसी चीज की याद ही नहीं आती।

कामवासना से भरे आदमी को ऐसा होगा। कामवासना भीतर हो, तो सारा जगत स्त्री हो गया। जगत प्रतिध्वनि है। अगर आप लोभ से भरे हैं, तो आपको चारों तरफ, बस अपने लोभ का विस्तार, धन ही दिखाई पड़ेगा।

ऐसा करें कि किसी दिन उपवास कर लें, और फिर सड़क पर निकल जाएं। आपको सिवाय होटलों और रेस्तरां के बोर्ड के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। जिस रास्ते से आप रोज निकले थे, जिस होटल का बोर्ड आपने कभी नहीं पढ़ा था, आप उसको बड़े रस से पढ़ेंगे। आज भीतर उपवास है, भीतर भूख है, और भोजन अतिशय महत्वपूर्ण हो गया है। आपको भोजन ही दिखाई पड़ेगा।

जर्मन कवि हेनरिक हेन ने लिखा है कि एक दफा मैं जंगल में भटक गया और तीन दिन तक भोजन न मिला। तो हमेशा जब भी पूर्णिमा का चांद निकलता था, तो मुझे अपनी प्रेयसी की तस्वीर दिखाई पड़ती थी। उस दिन भी पूर्णिमा का चांद निकला, मुझे लगा कि एक रोटी, सफेद रोटी आकाश में तैर रही है। प्रेयसी वगैरह दिखाई नहीं पड़ी। सफेद रोटी!

जो भीतर है, वह चारों तरफ प्रतिध्वनित होने लगता है। यह जगत आपकी प्रतिध्वनि है। इस जगत में चारों तरफ दर्पण लगे हैं, जिनमें आपकी तस्वीर ही आपको दिखाई पड़ती है।

भजन का अर्थ है, जब आपके भीतर भगवान का प्रेम गहन होता है, तो सब तरफ उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। फिर आप जो भी करते हैं, वह भजन है।

कबीर ने कहा है, उठूं, बैठूं, चलूं, सब तेरा भजन है। इसलिए अब अलग से करने की कोई जरूरत न रही।

मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए... ।

अति श्रेष्ठ श्रद्धा क्या है? एक तो श्रद्धा है, जो तर्क पर ही निर्भर होती है। वह श्रेष्ठ श्रद्धा नहीं है। क्योंकि उसका वास्तविक सहारा बुद्धि है। अभी भी छलांग नहीं हुई। लोगों ने ईश्वर के होने के प्रमाण दिए हैं। जो उन प्रमाणों को मानकर श्रद्धा लाते हैं, उनकी श्रद्धा निकृष्ट श्रद्धा है।

जैसे पश्चिम में, पूरब में अनेक दार्शनिक हुए, जिन्होंने प्रमाण दिए हैं कि ईश्वर क्यों है। अनेक प्रमाण दिए हैं। कोई कहता है, इसलिए ईश्वर को मानना जरूरी है, कि अगर वह न हो, तो जगत को बनाया किसने? जब जगत है, तो बनाने वाला होना चाहिए। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है, तो कुम्हार भी होना चाहिए, नहीं तो घड़ा कैसे होगा!

तर्क देने वालों ने कहा है कि जगत में प्रयोजन दिखाई पड़ता है। जगत प्रयोजनहीन नहीं मालूम पड़ता। जगत में एक्सिडेंट नहीं मालूम पड़ता; एक सिस्टम, एक व्यवस्था मालूम पड़ती है। तो जरूर कोई व्यवस्थापक होना चाहिए। जगत चैतन्य मालूम पड़ता है। यहां मन है, विचार है, चेतना है। यह चेतना पदार्थ से पैदा नहीं हो सकती। तो जगत के पीछे कोई चैतन्य हाथ होना चाहिए।

हजारों तर्क इस तरह के लोगों ने ईश्वर के होने के दिए हैं। और अगर आप इन तर्कों के कारण ईश्वर को मानते हैं, तो आपकी श्रद्धा निकृष्ट श्रद्धा है। निकृष्ट इसलिए कि ये सब तर्क कमजोर हैं और सब खंडित किए जा सकते हैं। इनमें कोई भी तर्क ऐसा नहीं है, जिसका खंडन न किया जा सके। और जिस तर्क से आप सिद्ध करते हैं ईश्वर को, उसी तर्क से ईश्वर को असिद्ध किया जा सकता है।

जैसे कि आस्तिक हमेशा कहते रहे हैं कि जब भी कोई चीज हो, तो उसका बनाने वाला चाहिए, क्रिएटर, स्रष्टा चाहिए। तो चार्वाक ने कहा है कि अगर हर चीज का बनाने वाला चाहिए, तो तुम्हारे ईश्वर का बनाने वाला कौन है? वही तर्क है। आस्तिक नाराज हो जाता है इस तर्क से। लेकिन इसी तर्क पर उसकी श्रद्धा खड़ी है। वह कहता है, बनाने वाला चाहिए, स्रष्टा चाहिए; सृष्टि है, तो स्रष्टा चाहिए। बिना स्रष्टा के यह सब बनेगा कैसे?

नास्तिक कहता है, हम मानते हैं आपके तर्क को। लेकिन ईश्वर को कौन बनाएगा? वहां आस्तिक को बेचैनी शुरू हो जाती है। इस बात को वह कहता है कुतर्क।

अगर यह कुतर्क है, तो पहला तर्क कैसे हो सकता है! और नास्तिक कहता है, अगर ईश्वर बिना बनाए हो सकता है, तो फिर जगत को भी बिना बनाए होने में कौन-सी अड़चन है! अगर ईश्वर बिना बनाया है, अनक्रिएटेड है, अस्रष्ट है, तो फिर फिजूल की बात में क्यों पड़ना! यह जगत ही अस्रष्ट मान लेने में हर्ज क्या है? जब अस्रष्ट को मानना ही पड़ता है, तो फिर इस प्रत्यक्ष जगत को ही मानना उचित है। इसके पीछे और छिपे हुए, रहस्यमय को व्यर्थ बीच में लाने की क्या जरूरत है!

ऐसा कोई भी तर्क नहीं है, जो नास्तिक न तोड़ देते हों। इसलिए आस्तिक नास्तिकों से डरते हैं। इसलिए नहीं कि वे आस्तिक हैं; आस्तिक होते तो न डरते। निकृष्ट आस्तिक हैं। उनके जिन तर्कों पर आधार है ईश्वर-आस्था का, वे सब तर्क तोड़े जा सकते हैं। और नास्तिक उन्हें तोड़ता है। इसलिए नास्तिक से बड़ा भय है।

और आज जो जमीन पर इतनी ज्यादा नास्तिकता दिखाई पड़ रही है, वह इसलिए नहीं कि दुनिया नास्तिक हो गई है। वह जो निकृष्ट आस्तिकता थी, वह मुश्किल में पड़ गई है। दुनिया ज्यादा तर्कवान हो गई है। जिन तर्कों से आप ईश्वर को सिद्ध करते थे, उन्हीं से लोग अब ईश्वर को असिद्ध कर रहे हैं।

दुनिया ज्यादा तर्कवान हो गई है, ज्यादा विचारशील हो गई है। इसलिए अब धोखा नहीं दिया जा सकता। अब आपको तर्क को उसकी पूरी अंतिम स्थिति तक ले जाना पड़ता है। अड़चन हो जाती है।

श्रेष्ठ श्रद्धा क्या है? जो तर्क पर खड़ी नहीं है, अनुभव पर खड़ी है। जो विचार पर खड़ी नहीं है, प्रतीति पर खड़ी है। जो यह नहीं कहती कि इस कारण ईश्वर होना चाहिए। जो कहती है कि ऐसा अनुभव है, ईश्वर है। होना चाहिए नहीं, है!

अरविंद को किसी ने पूछा कि क्या ईश्वर में आपका विश्वास है? तो अरविंद ने कहा, नहीं। जिसने पूछा था, वह बहुत हैरान हुआ। उसने पूछा था, डू यू बिलीव इन गॉड? और अरविंद ने कहा, नो। सोचकर आया था दूर से वह खोजी कि कम से कम एक अरविंद तो ऐसा व्यक्ति है, जो मेरा ईश्वर में भरोसा बढ़ा देगा। और अरविंद से यह सुनकर कि नहीं! उसकी बेचैनी हम समझ सकते हैं।

उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं! ईश्वर नहीं! आपका भरोसा नहीं; विश्वास नहीं। तो क्या ईश्वर नहीं है? तो अरविंद ने कहा, नहीं, ईश्वर है। लेकिन मुझे उसमें विश्वास की जरूरत नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूं, वह है। एंड दिस इ.ज नाट ए बिलीफ; आइ नो, ही इ.ज।

यह थोड़ा सोचने जैसा है। हम विश्वास ही उन चीजों में करते हैं, जिनका हमें भरोसा नहीं है। आप सूरज में विश्वास नहीं करते। पृथ्वी में विश्वास नहीं करते। मैं यहां बैठा हूं, इसमें आप विश्वास नहीं करते। आप जानते

हैं कि मैं यहां बैठा हूं। आप ईश्वर में विश्वास करते हैं, क्योंकि आप जानते नहीं कि ईश्वर है या नहीं है। जहां भरोसा नहीं है, वहां विश्वास।

यह जरा उलटा लगेगा, पैराडाक्सिकल लगेगा। क्योंकि हम तो विश्वास का मतलब ही भरोसा समझते हैं। जब कोई आदमी आपसे आकर कहे कि मुझे आपमें पक्का विश्वास है, तब आप समझ लेना कि इस आदमी को आपमें विश्वास नहीं है। नहीं तो पक्का विश्वास कहने की जरूरत न थी। भरोसा विश्वास शब्द का उपयोग ही नहीं करता। और जब कोई आदमी बहुत ही ज्यादा जोर देने लगे कि नहीं, पक्का ही विश्वास है, तब आप अपनी जेब वगैरह से सावधान रहना! वह आदमी कुछ भी कर सकता है। और उस आदमी को घर में मत ठहरने देना, क्योंकि इतना ज्यादा विश्वास खतरनाक है। वह बता रहा है कि वह भरोसा दिला रहा है आपको कि विश्वास है। उसे विश्वास नहीं है।

जिस दिन कोई प्रेमी बार-बार कहने लगे कि मुझे बहुत प्रेम है, मुझे बहुत प्रेम है, उस दिन समझना कि प्रेम चुक गया। जब प्रेम होता है, तो कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती; अनुभव में आता है। जब प्रेम होता है, तो उसकी तरंगें अनुभव होती हैं। जब प्रेम होता है, तो उसकी सुगंध अनुभव में आती है। जब प्रेम होता है, तो वाणी बहुत कचरा मालूम पड़ती है; कहने की जरूरत नहीं होती कि मुझे प्रेम है। जब प्रेम चुक जाता है... ।

इसलिए अक्सर प्रेमी और प्रेयसी एक-दूसरे से नहीं कहते कि मुझे बहुत प्रेम है। पति-पत्नी अक्सर कहते हैं, मुझे बहुत प्रेम है! रोज-रोज भरोसा दिलाना पड़ता है, अपने को भी, दूसरे को भी, क्योंकि है तो नहीं। अब भरोसा दिला-दिलाकर ही अपने को समझाना पड़ता है, और दूसरे को भी समझाना पड़ता है।

जिस बात की कमी होती है, उसको हम विश्वास से पूरा करते हैं। अरविंद ने ठीक कहा कि मैं जानता हूं, वह है। उसके होने के लिए कोई तर्क की जरूरत नहीं है। उसके होने के लिए अनुभव की जरूरत है।

क्या है अनुभव उसके होने का? और आपको नहीं हो पाता अगर अनुभव, तो बाधा क्या है?

ऐसा ही समझें कि सागर के किनारे खड़े हैं; लहरें उठती हैं। हर लहर समझ सकती है कि मैं हूं। लेकिन लहर है नहीं; है तो सिर्फ सागर। अभी लहर है, अभी नहीं होगी। अभी नहीं थी, अभी है, अभी नहीं हो जाएगी। लहर का होना क्षणभंगुर है। लेकिन लहर के भीतर वह जो सागर है, वह शाश्वत है।

आप अभी नहीं थे, अभी हैं, अभी नहीं हो जाएंगे। आप एक लहर से ज्यादा नहीं हैं। इस जगत के सागर में, इस होने के सागर में, अस्तित्व के सागर में आप एक लहर हैं। लेकिन लहर अपने को मान लेती है कि मैं हूं। और जब लहर अपने को मानती है, मैं हूं, तभी सागर को भूल जाती है। स्वयं को मान लेने में परमात्मा विस्मरण हो जाता है। क्योंकि जो लहर अपने को मानेगी, वह सागर को कैसे याद रख सकती है!

इसे थोड़ा समझ लें। लहर अगर अपने को मानती है कि मैं हूं, तो उसे मानना ही पड़ेगा कि सागर नहीं है। क्योंकि अगर उसे सागर दिखाई पड़ जाए कि सागर है, तो उसे अपने भीतर भी सागर ही दिखाई पड़ेगा, फिर अपने को अलग मानने का उपाय न रह जाएगा। लहर अपने अहंकार को बचाना चाहती हो, तो सागर को इनकार करना जरूरी है। उसे कहना चाहिए, सागर वगैरह सब बातचीत है; कहीं देखा तो नहीं।

और आप भी जानते हैं, सागर आपने भी नहीं देखा है। दिखाई तो हमेशा लहरें ही पड़ती हैं। सागर तो हमेशा नीचे छिपा है; दिखाई कभी नहीं पड़ता। जब भी दिखाई पड़ती है, लहर दिखाई पड़ती है।

तो लहर कहेगी, सागर को देखा किसने है? किसी ने कभी नहीं देखा। सिर्फ बातचीत है। दिखती हमेशा लहर है। मैं हूं, और सागर सिर्फ कल्पना है।

लेकिन लहर अगर अपने भीतर भी प्रवेश कर जाए, तो सागर में प्रवेश कर जाएगी। क्योंकि उसके भीतर सागर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लहर सागर का एक रूप है। लहर सागर के होने का एक ढंग है। लहर सागर की ही एक तरंग है। लहर होकर भी लहर सागर ही है। सिर्फ आकृति में थोड़ा-सा फर्क पड़ा है। सिर्फ आकार निर्मित हुआ है।

जब कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व को ठीक से समझ पाता है, अपने को भी समझ पाता है ठीक से, तो लहर खो जाती है और सागर प्रकट हो जाता है। या अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे को भी ठीक से समझ पाता है, तो लहर खो जाती है और सागर प्रकट हो जाता है।

अगर आप किसी के गहरे प्रेम में हैं, तो जिस क्षण गहरा प्रेम होगा, उस क्षण उस व्यक्ति की लहर खो जाएगी और उस लहर में आपको सागर दिखाई पड़ेगा। इसलिए अगर प्रेमियों को अपने प्रेमियों में परमात्मा दिखाई पड़ गया है, तो आश्चर्य नहीं है। दिखाई पड़ना ही चाहिए। और वह प्रेम प्रेम ही नहीं है, जिसमें लहर न खो जाए और सागर का अनुभव न होने लगे।

दूसरे में भी दिखाई पड़ सकता है। स्वयं में भी दिखाई पड़ सकता है। जहां भी ध्यान गहरा हो जाए, वहीं दिखाई पड़ सकता है। ऐसी प्रतीति जब आपको हो जाए सागर की, तो उस प्रतीति से जो श्रद्धा का जन्म होता है, वह विश्वास नहीं है। दैट्स नाट ए बिलीफ। श्रद्धा कोई विश्वास नहीं है, श्रद्धा एक अनुभव है। और तब ये सारी दुनिया के तर्क आपसे कहें कि परमात्मा नहीं है, तो भी आप हंसते रहेंगे। और सारे तर्क सुनने के बाद भी आप कहेंगे कि ये सारे तर्क बड़े प्यारे हैं और मजेदार हैं, मनोरंजक हैं। लेकिन परमात्मा है, और इन तर्कों से वह खंडित नहीं होता।

ध्यान रहे, न तो तर्कों से वह सिद्ध होता है और न तर्कों से वह खंडित होता है। जो लोग समझते हैं, तर्कों से वह सिद्ध होता है, वे हमेशा मुश्किल में पड़ेंगे; क्योंकि फिर तर्कों से मानना पड़ेगा कि वह खंडित भी हो सकता है। जो चीज तर्क से सिद्ध होती है, वह तर्क से टूटने की भी तैयारी रखनी चाहिए। और जिस चीज के लिए आपके प्रमाण की जरूरत है, वह आपके प्रमाण के हट जाने पर खो जाएगी।

परमात्मा को आपके प्रमाणों की कोई भी जरूरत नहीं है। परमात्मा का होना आपका निर्णय नहीं है, आपके गणित का निष्कर्ष नहीं है। परमात्मा का होना आपके होने से पूर्व है। और परमात्मा का होना अभी, इस क्षण में भी आपके होने के भीतर वैसा ही छिपा है, जैसे लहर के भीतर सागर छिपा है।

आप जब नहीं थे, तब क्या था? जब आप नहीं थे, तो आपके भीतर जो आज है, वह कहां था? क्योंकि जो भी है, वह नष्ट नहीं होता। नष्ट होने का कोई उपाय नहीं है। विनाश असंभव है।

विज्ञान भी स्वीकार करता है कि जगत में कोई भी चीज विनष्ट नहीं हो सकती। क्योंकि विनष्ट होकर जाएगी कहां? भेजिएगा कहां उसे? पानी की एक बूंद को आप नष्ट नहीं कर सकते। भाप बन सकती है, लेकिन भाप बनकर रहेगी। भाप को भी तोड़ सकते हैं। तो हाइड्रोजन-आक्सीजन बनकर रहेगी। लेकिन आप नष्ट नहीं कर सकते। एक पानी की बूंद भी जहां नष्ट नहीं होती, वहां आप जब कल नहीं थे, तो कहां थे?

झेन में, जापान में साधकों को वे एक पहेली देते हैं। उसे वे कहते हैं कोआन। वे कहते हैं कि जब तुम नहीं थे, तो कहां थे, इसकी खोज करो। और जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तो तुम्हारा चेहरा कैसा था, इस पर ध्यान करो। और जब तुम मर जाओगे, तो तुम कहां पहुंचोगे, इसकी थोड़ी खोज करो। क्योंकि जब तक तुम्हें इसका पता न चल जाए कि जन्म के पहले तुम कहां थे और मरने के बाद तुम कहां रहोगे, तब तक तुम्हें यह भी पता नहीं चल सकता कि इसी क्षण अभी तुम कहां हो।

अभी भी तुम्हें पता नहीं है। हो भी नहीं सकता। क्योंकि लहर का भर तुम्हें पता है, जो अभी नहीं थी, अभी है, अभी नहीं हो जाएगी। उस सागर का कोई पता नहीं है, जो था, इस लहर के पहले भी; अभी भी है; और लहर मिट जाएगी, तब भी होगा। सिर्फ आकार मिटते हैं जगत में, अस्तित्व नहीं।

हम आकार हैं। और आकार के भीतर छिपा हुआ जो अस्तित्व है, वह परमात्मा है।

श्रेष्ठ श्रद्धा उस श्रद्धा का नाम है, जो इस प्रतीति, इस साक्षात से जन्म पाती है। यह किसी शास्त्र से पढ़ा हुआ, किसी गुरु का कहा हुआ मान लेने से नहीं होगा। यह आपके ही जीवन-अनुभव का हिस्सा बनना चाहिए। यह आपको ही प्रतीत होना चाहिए।

अगर परमात्मा आपका निजी अनुभव नहीं है, तो आपकी आस्तिकता थोथी है। उसकी कोई कीमत नहीं है। वह कागज की नाव है; उससे भवसागर पार करने की कोशिश मत करना। उसमें बुरी तरह डूबेंगे। उससे तो किनारे पर ही बैठे रहना, वही अच्छा है। अनुभव की नाव ही वास्तविक नाव है।

मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

प्रेम परम योग है। प्रेम से श्रेष्ठ कोई अनुभव नहीं है। और इसीलिए भक्ति श्रेष्ठतम मार्ग बन जाती है, क्योंकि वह प्रेम का ही रूपांतरण है।

पांच मिनट रुकेंगे। कीर्तन करेंगे और फिर जाएंगे।

कोई भी बीच में उठे न। और जब तक कीर्तन पूरा न हो जाए, यहां धुन बंद न हो जाए, तब तक बैठे रहें। और सम्मिलित हों। कौन जाने कोई धुन आपके हृदय को भी पकड़ ले और भक्ति का जन्म हो जाए।

दूसरा प्रवचन

दो मार्गः साकार और निराकार

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।

सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।। 3।।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।। 4।।

और जो पुरुष इंद्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके मन-बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानंदघन ब्रह्म को निरंतर एकीभाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे संपूर्ण भूतों के हित में रत हुए और सब में समान भाव वाले योगी भी मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि भजन भी करते हैं, प्रभु का स्मरण भी करते हैं। लेकिन कोई इच्छा कभी पूरी नहीं होती!

जहां मांग है, वहां प्रार्थना नहीं है। और मांग ही प्रार्थना को असफल कर देती है। प्रार्थना इसलिए असफल गई कि आपको प्राप्ति हुई, नहीं हुई--ऐसा नहीं। प्रार्थना तो उसी क्षण असफल हो गई, जब आपने मांगा। जो परमात्मा के द्वार पर मांगता जाता है, वह खाली हाथ लौटेगा। जो वहां खाली हाथ खड़ा हो जाता है बिना किसी मांग के, वही केवल भरा हुआ लौटता है।

परमात्मा से कुछ मांगने का अर्थ क्या होता है? पहला तो अर्थ यह होता है कि शिकायत है हमें। शिकायत नास्तिकता है। शिकायत का अर्थ है कि जैसी स्थिति है, उससे हम नाराज हैं। जो परमात्मा ने दिया है, उससे हम अप्रसन्न हैं। जैसा हम चाहते हैं, वैसा नहीं है। और जैसा है, वैसा हम नहीं चाहते हैं।

शिकायत का यह भी अर्थ है कि हम परमात्मा से स्वयं को ज्यादा बुद्धिमान मानते हैं। वह जो कर रहा है, गलत कर रहा है। हमारी सलाह मानकर उसे करना चाहिए, वही ठीक होगा। जैसे कि हमें पता है कि क्या है जो ठीक है हमारे लिए।

अगर हम बीमार हैं, तो हम स्वास्थ्य मांगते हैं। लेकिन जरूरी नहीं कि बीमारी गलत ही हो। और बहुत बार तो स्वास्थ्य भी वह नहीं दे पाता, जो बीमारी दे जाती है।

हम दुखी हैं, तो सुख मांगते हैं। पर जरूरी नहीं कि सुख सुख ही लाए। अक्सर तो ऐसा होता है कि सुख और बड़े दुख ले आता है। दुख भी मांजता है, दुख भी निखारता है, दुख भी समझ देता है। हो सकता है, दुख के मार्ग से निखरकर ही आप जीवन के सत्य को पा सकें और सुख आपके लिए महंगा सौदा हो जाए।

इसलिए क्या ठीक है, यह जो परमात्मा पर छोड़ देता है, वही प्रार्थना कर रहा है। जो कहता है कि यह है ठीक और तू पूरा कर, वह प्रार्थना नहीं कर रहा है, वह परमात्मा को सलाह दे रहा है।

आपकी सलाह का कितना मूल्य हो सकता है? काश, आपको यह पता होता कि क्या आपके हित में है! वह आपको बिल्कुल पता नहीं है। आपको यह भी पता नहीं है कि वस्तुतः आप क्या चाहते हैं! क्योंकि जो आप सुबह चाहते हैं, दोपहर इनकार करने लगते हैं। और जो आपने आज सांझ चाहा है, जरूरी नहीं है कि कल सुबह भी आप वही चाहें।

पीछे लौटकर अपनी चाहों को देखें। वे रोज बदल जाती हैं; प्रतिपल बदल जाती हैं। और यह भी देखें कि जो चाहें पूरी हो जाती हैं, उनके पूरे होने से क्या पूरा हुआ है? वे न भी पूरी होतीं, तो कौन-सी कमी रह जाती? ठीक हमें पता ही नहीं है। हम क्या मांग रहे हैं? क्यों मांग रहे हैं? क्या उसका परिणाम होगा?

सुना है मैंने कि एक सिनागाग में, एक यहूदी प्रार्थना-मंदिर में, एक बूढ़ा यहूदी प्रार्थना कर रहा था। और वह परमात्मा से कह रहा था कि अन्याय की भी एक हद होती है! सत्तर साल से निरंतर, जब से मैंने होश सम्हाला है--उस यहूदी की उम्र होगी कोई पचासी वर्ष--जब से मैंने होश सम्हाला है, सत्तर वर्ष से तेरी प्रार्थना कर रहा हूं। दिन में तीन बार प्रार्थनागृह में आता हूं। बच्चे का जन्म हो, कि लड़की की शादी हो, कि घर में सुख हो कि दुख हो, कि यात्रा पर जाऊं या वापस लौटूं, कि नया धंधा शुरू करूं, कि पुराना बंद करूं, ऐसा कोई भी एक काम जीवन में नहीं किया, जो मैंने तेरी प्रार्थना के साथ शुरू न किया हो। जैसा आदेश है धर्मशास्त्रों में, वैसा जीवन जीया हूं। पर-स्त्री को कभी बुरी नजर से नहीं देखा। दूसरे के धन पर लालच नहीं की। चोरी नहीं की। झूठ नहीं बोला। बेईमानी नहीं की। परिणाम क्या है? और मेरा साझीदार है, स्त्रियों के पीछे भटककर जिंदगीभर उसने खराब की है। तेरी प्रार्थना कभी उसे करते नहीं देखा। चोरी, बेईमानी, झूठ, सब उसे सरल है। जुआड़ी है, शराब पीता है। लेकिन दिन दूनी रात चौगुनी उसकी स्थिति अच्छी होती गई है। अभी भी स्वस्थ है। मैं बीमार हूं। धन का एक टुकड़ा हाथ में न रहा। सिवाय दुख के मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा है। कारण क्या है? और मैं यह नहीं कहता हूं कि तू मेरे साझीदार को दंड दे। सिर्फ इतना ही पूछता हूं कि मेरा कसूर क्या है? इतना अन्याय मेरे साथ क्यों? यह कैसे न्याय की व्यवस्था है?

सिनागाग में परमात्मा की आवाज गूंजी कि सिर्फ छोटा-सा कारण है। बिकाज यू हैव बीन नैगिंग मी डे इन डे आउट लाइक एन आथेंटिक वाइफ। एक प्रामाणिक पत्नी की तरह तुम मेरा सिर खा रहे हो जिंदगीभर से, यही कारण है, और कुछ भी नहीं। तुम तीन दफे प्रार्थना क्या करते हो, तीन दफे मेरा सिर खाते हो!

आपकी प्रार्थना से अगर परमात्मा तक को अशांति होती हो, तो आप ध्यान रखना कि आपको शांति न होगी। आपकी प्रार्थनाएं क्या हैं? नैगिंग। आप सिर खा रहे हैं। ये प्रार्थनाएं आपकी आस्तिकता का सबूत नहीं हैं, और न आपकी प्रार्थना का। और न आपका हार्दिक इन मांगों से कोई संबंध है। ये सब आपकी वासनाएं हैं।

लेकिन हमारी तकलीफ ऐसी है। बुद्ध हों, महावीर हों, कृष्ण हों, वे सभी कहते हैं; मोहम्मद हों या क्राइस्ट हों, वे सभी कहते हैं कि तुम्हारी सब मांगें पूरी हो जाएंगी, लेकिन तुम उसके द्वार पर मांग छोड़कर जाना। यही हमारी मुसीबत है। फिर हम उसके द्वार पर जाएंगे ही क्यों?

हमारी तकलीफ यह है कि हम उसके द्वार पर ही इसीलिए जाना चाहते हैं कि हमारी मांगें हैं और मांगें पूरी हो जाएं। और ये सब शिक्षक बड़ी उलटी शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि तुम अपनी मांगें छोड़ दो, तो ही उसके द्वार पर जा सकोगे। और फिर तुम्हारी सब मांगें भी पूरी हो जाएंगी। कुछ मांगने को न बचेगा; सब तुम्हें मिल जाएगा। लेकिन वह जो शर्त है, वह हमसे पूरी नहीं होती।

मुल्ला नसरुद्दीन एक छोटे-से गांव में शिक्षक था। लेकिन धीरे-धीरे लोगों ने अपने बच्चों को उसकी पाठशाला से हटा लिया, क्योंकि वह शराब पीकर स्कूल पहुंच जाता और दिनभर सोया रहता। आखिर उसकी

पत्नी ने कहा कि तुम थोड़ा अपना चरित्र बदलो, अपना आचरण बदलो। यह तुम शराब पीना बंद करो, नहीं तो तुमसे पढ़ने कोई भी नहीं आएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि तू बात ही उलटी कह रही है। हम तो उन बच्चों को पढ़ाने की झंझट ही इसीलिए लेते हैं कि शराब पीने के लिए पैसे मिल जाएं। और तू कह रही है कि शराब पीना छोड़ दो, तो बच्चे पढ़ने आएंगे। लेकिन शराब पीना अगर मैं छोड़ दूं, तो बच्चों को पढ़ाऊंगा किस लिए! हम तो बच्चों को पढ़ाते ही इसलिए हैं कि शराब के लिए कुछ पैसे मिल जाएं।

हमारी सारी हालत ऐसी है। हम तो परमात्मा के द्वार पर इसलिए जाते हैं कि कोई क्षुद्र मांग पूरी हो जाए। और ये सारे शिक्षक हमसे कहते हैं कि तुम मांग छोड़कर वहां जाना, तो ही उसके द्वार में प्रवेश पा सकोगे, तो ही उसके कान तक तुम्हारी आवाज पहुंचेगी। लेकिन हमारी दिक्कत यह है कि तब हम आवाज ही क्यों पहुंचाना चाहेंगे? हम उसके द्वार पर ही क्यों जाएंगे? हम उसके द्वार पर दस्तक ही क्यों देंगे? हम तो वहां जाते इसलिए हैं कि कोई मांग पूरी करना चाहते हैं।

लेकिन जो मांग पूरी करना चाहता है, वह उसके द्वार पर जाता ही नहीं। वह मंदिर के द्वार पर जा सकता है, मस्जिद के द्वार पर जा सकता है, उसके द्वार पर नहीं जा सकता। क्योंकि उसका द्वार तो दिखाई ही तब पड़ता है, जब चित्त से मांग विसर्जित हो जाती है। उसका द्वार वहां किसी मकान में बना हुआ नहीं है। उसका द्वार तो उस चित्त में है, जहां मांग नहीं है, जहां कोई वासना नहीं है, जहां स्वीकार का भाव है। जहां परमात्मा जो कर रहा है, उसकी मर्जी के प्रति पूरी स्वीकृति है, समर्पण है, उस हृदय में ही द्वार खुलता है।

मंदिर के द्वार को उसका द्वार मत समझ लेना, क्योंकि मंदिर के द्वार में तो वासना सहित आप जा सकते हैं। उसका द्वार तो आपके ही हृदय में है। और उस हृदय पर वासना की ही दीवाल है। वह दीवाल हट जाए, तो द्वार खुल जाए।

तो ऐसा मत पूछें कि आपकी प्रार्थनाएं, आपका भजन, आपका ध्यान, आपकी मांग को पूरा क्यों नहीं करवाता! आपकी मांग के कारण भजन ही नहीं होता, ध्यान ही नहीं होता, प्रार्थना ही नहीं होती। इसलिए पूरे होने का तो कोई सवाल ही नहीं है। जो चीज शुरू ही नहीं हुई, वह पूरी कैसे होगी? आप यह मत सोचें कि आखिरी चीज खो रही है। पहली ही चीज खो रही है। पहला कदम ही वहां नहीं है। आखिरी कदम का तो कोई सवाल ही नहीं है।

प्रेम मांगशून्य है। प्रेम बेशर्त है। जब आप किसी को प्रेम करते हैं, तो आप कुछ मांगते हैं? आपकी कोई शर्त है? प्रेम ही आनंद है। प्रार्थना परम प्रेम है। अगर प्रार्थना ही आपका आनंद हो, आनंद प्रार्थना के बाहर न जाता हो, कोई मांग न हो पीछे जो पूरी हो जाए तो आनंद मिलेगा, प्रार्थना करने में ही आनंद मिलता हो, तो ही प्रार्थना हो पाती है। तो जब प्रार्थना करने जाएं तो प्रार्थना को ही आनंद समझें। उसके पार कोई और आनंद नहीं है।

सुना है मैंने कि एक फकीर ने रात एक स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग में पहुंच गया है। और वहां उसने देखा मीरा को, कबीर को, चैतन्य को नाचते, गीत गाते, तो बहुत हैरान हुआ। उसने पास खड़े एक देवदूत से पूछा कि ये लोग यहां भी नाच रहे हैं और गीत गा रहे हैं! हम तो सोचे थे कि अब ये स्वर्ग पहुंच गए, तो अब यह उपद्रव बंद हो गया होगा। ये तो जमीन पर भी यही कर रहे थे। इस चैतन्य को हमने जमीन पर भी ऐसे ही नाचते और गाते देखा। इस मीरा को हमने ऐसे ही कीर्तन करते देखा। यह कबीर यही तो जमीन पर कर रहा था। और अगर स्वर्ग में भी यही हो रहा है, स्वर्ग में आकर भी अगर यही होना है, तो फिर जमीन में और स्वर्ग में फर्क क्या है?

तो उस देवदूत ने कहा कि तुम थोड़ी-सी भूल कर रहे हो। तुम समझ रहे हो कि ये कबीर, चैतन्य और मीरा स्वर्ग में आ गए हैं। तुम समझ रहे हो कि संत स्वर्ग में आते हैं। बस, यहीं तुम्हारी भूल हो रही है। संत स्वर्ग में नहीं आते। स्वर्ग संतों में होता है। इसलिए संत जहां होंगे, वहीं स्वर्ग होगा। तुम यह मत समझो कि ये संत स्वर्ग में आ गए हैं। ये यहां गा रहे हैं और आनंदित हो रहे हैं, इसलिए यहां स्वर्ग है। ये जहां भी होंगे, वहां स्वर्ग होगा। और स्वर्ग मिल जाए, इसलिए इन्होंने कभी नाचा नहीं था। इन्होंने तो नाचने में ही स्वर्ग पा लिया था। इसलिए अब इस नृत्य का, इस आनंद का कहीं अंत नहीं है। अब ये जहां भी होंगे, यह आनंद वहीं होगा। इन संतों को नरक में डालने का कोई उपाय नहीं है।

आप आमतौर से सोचते होंगे कि संत स्वर्ग में जाते हैं। संतों को नरक में डालने का कोई उपाय नहीं है। संत जहां होंगे, स्वर्ग में होंगे। क्योंकि संत का हृदय स्वर्ग है।

प्रार्थना जब आ जाएगी आपको, तो आप यह पूछेंगे ही नहीं कि प्रार्थना पूरी नहीं हुई! प्रार्थना का आ जाना ही उसका पूरा हो जाना है। उसके बाद कुछ बचता नहीं है। अगर प्रार्थना के बाद भी कुछ बच जाता है, तो फिर प्रार्थना से बड़ी चीज भी जमीन पर है। और अगर प्रार्थना के बाद भी कुछ पाने को शेष रह जाता है, तो फिर आपको, प्रार्थना क्या है, इसका ही कोई पता नहीं है।

प्रार्थना अंत है; प्रार्थनापूर्ण हृदय इस जगत का अंतिम खिला हुआ फूल है। वह आखिरी ऊंचाई है, जो मनुष्य पा सकता है। वह अंतिम शिखर है। उसके पार, उसके पार कुछ है नहीं।

पर आपकी प्रार्थना के पार तो बड़ी क्षुद्र चीजें होती हैं। आपकी प्रार्थना के पार कहीं नौकरी का पाना होता है। आपकी प्रार्थना के पार कहीं बच्चे का पैदा होना होता है। आपकी प्रार्थना के पार कहीं कोई मुकदमे का जीतना होता है।

इन प्रार्थनाओं को आप प्रार्थना मत समझना, अन्यथा असली प्रार्थना से आप वंचित ही रह जाएंगे। असली प्रार्थना का अर्थ है, अस्तित्व का उत्सव। असली प्रार्थना का अर्थ है, मैं हूं, इसका धन्यवाद। मेरा होना परमात्मा की इतनी बड़ी कृपा है कि उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूं। एक श्वास भी आती है और जाती है... ।

कभी आपने सोचा कि आपकी अस्तित्व को क्या जरूरत है? आप न होते, तो क्या हर्ज हो जाता? कभी आपने सोचा कि अस्तित्व को आपकी क्या आवश्यकता है? आप नहीं होंगे, तो क्या मिट जाएगा? और आप नहीं थे, तो कौन-सी कमी थी? आप अगर न होते, कभी न होते, तो क्या अस्तित्व की कोई जगह खाली रह जाती? आपके होने का कुछ भी तो अर्थ, कुछ भी तो आवश्यकता दिखाई नहीं पड़ती। फिर भी आप हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति यह अनुभव करता है कि मेरे होने का कोई भी तो कारण नहीं है; और परमात्मा मुझे सहे, इसकी कोई भी तो जरूरत नहीं है; फिर भी मैं हूं, फिर भी मेरा होना है, फिर भी मेरा जीवन है।

यह जो अहोभाव है, इस अहोभाव से जो नृत्य पैदा हो जाता है, जो गीत पैदा हो जाता है; यह जो जीवन का उत्सव है, यह जो परमात्मा के प्रति कृतज्ञता का बोध है कि मैं बिल्कुल भी तो किसी उपयोग का नहीं हूं, फिर भी तेरा इतना प्रेम कि मैं हूं। फिर भी तू मुझे सहता है और झेलता है। शायद मैं तेरी पृथ्वी को थोड़ा गंदा ही करता हूं। और शायद तेरे अस्तित्व को थोड़ा-सा उदास और रुग्ण करता हूं। शायद मेरे होने से अड़चन ही होती है, और कुछ भी नहीं होता। तेरे संगीत में थोड़ी बाधा पड़ती है। तेरी धारा में मैं एक पत्थर की तरह अवरोध हो जाता हूं। फिर भी मैं हूं। और तू मुझे ऐसे सम्हाले हुए है, जैसे मेरे बिना यह अस्तित्व न हो सकेगा।

यह जो अहोभाव है, यह जो ग्रेटिट्यूड है, इस अहोभाव, इस धन्यता से जो गीत, जो सिर झुक जाता है, वह जो नाच पैदा हो जाता है, वह जो आनंद की एक लहर जग जाती है, उसका नाम प्रार्थना है। जरूरी नहीं है कि वह शब्दों में हो।

शब्दों में तो जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि जीवन से हमें कहने की कला नहीं आती। नहीं तो प्रार्थना मौन होगी। शब्द तो सिक्खड़ के लिए हैं। वे तो प्राथमिक, जिसको अभी कुछ पता नहीं है, उसके लिए हैं। जो जान लेगा कला, उसका तो पूरा अस्तित्व ही अहोभाव का नृत्य हो जाता है।

एक गरीब फकीर एक मस्जिद में प्रार्थना कर रहा था। उसके पास ही एक बहुत बुद्धिमान, शास्त्रों का बड़ा जानकार, वह भी प्रार्थना कर रहा था। इस गरीब फकीर को देखकर ही उस पंडित को लगा... ।

पंडित को सदा ही लगता है कि दूसरा अज्ञानी है। पंडित होने का मजा ही यही है कि दूसरे का अज्ञान दिखाई पड़ता है। और दूसरे के अज्ञान में अहंकार को तुष्टि मिलती है।

तो पंडित को देखकर ही लगा कि यह गरीब फकीर, कपड़े-लत्ते भी ठीक नहीं, शक्ल-सूरत से भी पढ़ा-लिखा, सुसंस्कृत नहीं मालूम पड़ता है, गंवार है, यह क्या प्रार्थना कर रहा होगा! और जब तक मेरी अभी प्रार्थना नहीं सुनी गई, इसकी कौन सुन रहा होगा! ऐसे अशिष्ट, गंवार आदमी की--असंस्कृत--इसकी प्रार्थना कहां परमात्मा तक पहुंचती होगी! मैं परिष्कार कर-करके हैरान हो गया हूं; और प्रार्थना को बारीक से बारीक कर लिया है, शुद्धतम कर लिया है; अभी मेरी आवाज नहीं पहुंची, इसकी क्या पहुंचती होगी! फिर भी उसे जिज्ञासा हुई कि यह कह क्या रहा है! वह धीरे-धीरे गुनगुना रहा था।

वह फकीर कह रहा था, परमात्मा से कि मुझे भाषा नहीं आती; और शब्दों का जमाना भी मुझे नहीं आता। तो मैं पूरी अल्फाबेट बोले देता हूं। ए बी सी डी, पूरी बोले देता हूं। तू ही जमा ले, क्योंकि इन्हीं सब अक्षरों में तो सब प्रार्थनाएं आ जाती हैं। तू ही जमा ले कि मेरे काम का क्या है और तू ही प्रार्थना बना ले।

वह पंडित तो बहुत घबड़ा गया कि हद्द की मूढ़ता है। यह क्या कह रहा है! कि मैं तो सिर्फ अल्फाबेट जानता हूं; यह बारहखड़ी जानता हूं; यह मैं पूरी बोले देता हूं। अब जमाने का काम तू ही कर ले, क्योंकि सभी शास्त्र इन्हीं में तो आ जाते हैं, और सभी प्रार्थनाएं इन्हीं से तो बनती हैं। और मुझसे भूल हो जाएगी। तू ठीक जमा लेगा। तेरी जो मर्जी, वही मेरी मर्जी!

वह पंडित तो बहुत घबड़ा गया। उसने आंख बंद कीं और परमात्मा से कहा कि हद्द हो गई। मेरी प्रार्थना अभी तक तुझ तक नहीं पहुंची, क्योंकि मेरी कोई मांग पूरी नहीं हुई। क्योंकि मांग पूरी हो, तो ही हम समझें कि प्रार्थना पहुंची। और यह आदमी, यह क्या कह रहा है!

सुना उसने अपने ध्यान में कि उसकी प्रार्थना पहुंच गई। क्योंकि न तो उसकी कोई मांग है, न पांडित्य का कोई दंभ है। वह यह भी नहीं कह रहा है कि मेरी मांग क्या है। वह कह रहा है कि तू ही जमा ले। जो इतना मुझ पर छोड़ देता है, उसकी प्रार्थना पहुंच गई।

प्रार्थना है उस पर छोड़ देना। खुद पकड़कर रख लेना वासना है; उस पर छा.ेड देना प्रार्थना है। अपने को समझदार मानना वासना है; सारी समझ उसकी और हम नासमझ, ऐसी भाव-दशा प्रार्थना है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, कल आपने कहा कि बाहर के व्यक्तियों और वस्तुओं की ओर बहता हुआ प्रेम वासना है और स्वयं के भीतर चैतन्य-केंद्र की ओर वापस लौटकर बहता हुआ प्रेम श्रद्धा है, भक्ति है। किंतु भक्ति-योग में तो बाहर स्वयं से भिन्न किसी इष्टदेव की ओर साधक की चेतना बहती है। तब तो आपके कथनानुसार

यह भी वासना हो गई, श्रद्धा व भक्ति नहीं। समझाएं कि भक्ति-योग साधक की चेतना बाहर, पर की ओर बहती है या भीतर स्व की ओर?

थोड़ा जटिल है, लेकिन समझने की कोशिश करें। जैसे ही साधक यात्रा शुरू करता है, उसे भीतर का तो कोई पता नहीं। वह तो बाहर को ही जानता है। उसे तो बाहर का ही अनुभव है। अगर उसे भीतर भी ले जाना है, तो भी बाहर के ही सहारे भीतर ले जाना होगा। और बाहर भी छुड़ाना है, तो धीरे-धीरे बाहर के सहारे ही छुड़ाना होगा।

तो परमात्मा को बाहर रखा जाता है। यह सिर्फ उपाय है, एक डिवाइस, कि परमात्मा वहां ऊपर आकाश में है। परमात्मा सब जगह है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहां वह नहीं है। बाहर भी वही है, भीतर भी वही है। सच तो यह है कि बाहर-भीतर हमारे फासले हैं। उसके लिए बाहर और भीतर कुछ भी नहीं है।

घर में आप कहते हैं कि कमरे के भीतर जो आकाश है, वह भीतर है; और कमरे के बाहर जो आकाश है, वह बाहर है। वह आकाश एक है। दीवालें गिर जाएं, तो न कुछ बाहर है, न भीतर है। जो हमें भीतर मालूम पड़ता है और बाहर मालूम पड़ता है, वह भी एक है। सिर्फ हमारे अहंकार की पतली-सी दीवाल है, जो फासला खड़ा करती है।

इसलिए लगता है कि भीतर मेरी आत्मा और बाहर आपकी आत्मा। लेकिन वह आत्मा आकाश की तरह है। जिस दिन मैं का भाव गिर जाता है, उस दिन बाहर-भीतर भी गिर जाता है। उस दिन वही रह जाता है; बाहर-भीतर नहीं होता। लेकिन साधक जब शुरू करेगा, तो बाहर की ही भाषा उससे बोलनी पड़ेगी। आप वही भाषा तो समझेंगे, जो आप जानते हैं।

यह बड़े मजे की बात है। अगर आपको कोई विदेशी भाषा भी सीखनी हो, तो भी उसी भाषा के जरिए समझानी पड़ेगी, जो आप जानते हैं। आप बाहर की भाषा जानते हैं। भीतर की भाषा को भी समझाने के लिए बाहर की भाषा से शुरू करना होगा।

तो परमात्मा को भक्त रखता है बाहर। और कहता है, संसार के प्रति सारी वासना छोड़ दो और सारी वासना को परमात्मा के प्रति लगा लो। यह भी इसीलिए कि वासना ही हमारे पास है, और तो हमारे पास कुछ भी नहीं है। लेकिन वासना की एक खूबी है कि वासना को अगर बचाना हो, तो अनेक वासनाएं चाहिए। वासना को बचाना हो, तो नित नई वासना चाहिए। और जितनी ज्यादा वासनाएं हों, उतनी ही वासना बचेगी। जैसे ही सारी वासना को परमात्मा पर लगा दिया जाए, वासना तिरोहित होने लगती है।

एक उदाहरण के लिए छोटा-सा प्रयोग आप करके देखें, तो आपको पता चलेगा। एक दीए को रख लें रात अंधेरे में अपने कमरे में। और अपनी आंखों को दीए पर एकटक लगा दें। दो-तीन मिनट ही अपलक देखने पर आपको बीच-बीच में शक पैदा होगा कि दीया नदारद हो जाता है। दीए की ज्योति बीच-बीच में खो जाएगी। अगर आपकी आंख एकटक लगी रही, तो कई बार आप घबड़ा जाएंगे कि ज्योति कहां गई! जब आप घबड़ाएंगे, तब फिर ज्योति आ जाएगी। ज्योति कहीं जाती नहीं। लेकिन अगर आंखों की देखने की क्षमता बचानी हो, तो बहुत-सी चीजें देखना जरूरी है। अगर आप एक ही चीज पर लगा दें, तो थोड़ी ही देर में आंखें देखना बंद कर देती हैं। इसलिए ज्योति खो जाती है।

जिस चीज पर आप अपने को एकाग्र कर लेंगे, और सब चीजें तो खो जाएंगी पहले, एक चीज रह जाएगी। थोड़ी देर में वह एक भी खो जाएगी। एकाग्रता पहले और चीजों का विसर्जन बन जाती है, और फिर उसका भी, जिस पर आपने एकाग्रता की।

अगर सारी वासना को संसार से खींचकर परमात्मा पर लगा दिया, तो पहले संसार खो जाएगा। और एक दिन आप अचानक पाएंगे कि परमात्मा बाहर से खो गया। और जिस दिन परमात्मा भी बाहर से खो जाता है, आप अचानक भीतर पहुंच जाते हैं। क्योंकि अब बाहर होने का कोई उपाय न रहा। संसार पकड़ता था, उसे छोड़ दिया परमात्मा के लिए। और जब एक बचता है, तो वह अचानक खो जाता है। आप अचानक भीतर आ जाते हैं।

फिर यह जो परमात्मा की धारणा हमने बाहर की है, यह हमारे भीतर जो छिपा है, उसकी ही श्रेष्ठतम धारणा है। वह जो आपका भविष्य है, वह जो आपकी संभावना है, उसकी ही हमने बाहर धारणा की है। वह बाहर है नहीं, वह हमारे भीतर है, लेकिन हम बाहर की ही भाषा समझते हैं। और बाहर की भाषा से ही भीतर की भाषा सीखनी पड़ेगी।

अभी मनोवैज्ञानिक इस पर बहुत प्रयोग करते हैं कि एकाग्रता में आब्जेक्ट क्यों खो जाता है। जहां भी एकाग्रता होती है, अंत में जिस पर आप एकाग्रता करते हैं, वह विषय भी तिरोहित हो जाता है; वह भी बचता नहीं। उसके खो जाने का कारण यह है कि हमारे मन का अस्तित्व ही चंचलता है। मन को बहने के लिए जगह चाहिए, तो ही मन हो सकता है। मन एक बहाव है। एक नदी की धार है। अगर मन को बहाव न मिले, तो वह समाप्त हो जाता है। वह उसका स्वभाव है।

स्थिर मन जैसी कोई चीज नहीं होती। और जब हम कहते हैं, चंचल मन, तो हम पुनरुक्ति करते हैं। चंचल मन नहीं कहना चाहिए, क्योंकि चंचलता ही मन है। जब हम चंचल मन कहते हैं, तो हम दो शब्दों का उपयोग कर रहे हैं व्यर्थ ही, क्योंकि मन का अर्थ ही चंचलता है। और थिर मन जैसी कोई चीज नहीं होती। जहां थिरता आती है, मन तिरोहित हो जाता है। जैसे स्वस्थ बीमारी जैसी कोई बीमारी नहीं होती। जैसे ही स्वास्थ्य आता है, बीमारी खो जाती है; वैसे ही थिरता आती है, मन खो जाता है। मन के होने के लिए अथिरता जरूरी है।

ऐसा समझें कि सागर में लहरें हैं, या झील पर बहुत लहरें हैं। झील अशांत है। तो हम कहते हैं, लहरें बड़ी अशांत हैं। कहना नहीं चाहिए, क्योंकि अशांति ही लहरें हैं। फिर जब शांत हो जाती है झील, तब क्या आप ऐसा कहेंगे कि अब शांत लहरें हैं! लहरें होतीं ही नहीं। जब लहरें नहीं होतीं, तभी शांति होती है। जब झील शांत होती है, तो लहरें नहीं होतीं। लहरें तभी होती हैं, जब झील अशांत होती है। तो अशांति ही लहर है।

आपकी आत्मा झील है, आपका मन लहरें है। शांत मन जैसी कोई चीज नहीं होती। अशांति ही मन है।

तो अगर हम किसी भी तरह से किसी एक चीज पर टिका लें अपने को, तो थोड़ी ही देर में मन खो जाएगा, क्योंकि मन एकाग्र हो ही नहीं सकता। जो एकाग्र होता है, वह मन नहीं है; वह भीतर का सागर है। वह भीतर की झील है। वही एकाग्र हो सकती है।

तो कोई भी आब्जेक्ट, चाहे परमात्मा की प्रतिमा हो, चाहे कोई यंत्र हो, चाहे कोई मंत्र हो, चाहे कोई शब्द हो, चाहे कोई आकार-रूप हो, कोई भी हो, इतना ही उसका उपयोग है बाहर रखने में कि आप पूरे संसार को भूल जाएंगे और एक रह जाएगा। जिस क्षण एक रहेगा--युगपत--उसी क्षण एक भी खो जाएगा और आप अपने भीतर फेंक दिए जाएंगे।

यह बाहर का जो विषय है, एक जंपिंग बोर्ड है, जहां से भीतर छलांग लग जाती है।

तो किसी भी चीज पर एकाग्र हो जाएं। इसलिए कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप उस एकाग्रता के बिंदु को अल्लाह कहते हैं; कोई फर्क नहीं पड़ता कि ईश्वर कहते हैं, कि राम कहते हैं, कि कृष्ण कहते हैं, कि बुद्ध कहते हैं। आप क्या कहते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप क्या करते हैं, इससे फर्क पड़ता है। राम, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट का आप क्या करते हैं, इससे फर्क पड़ता है। क्या कहते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता।

करने का मतलब यह है कि क्या आप उनका उपयोग अपने को एकाग्र करने में करते हैं? क्या आपने उनको बाहर का बिंदु बनाया है, जिससे आप भीतर छलांग लगाएंगे? तो फिर क्या फर्क पड़ता है कि आपने क्राइस्ट से छलांग लगाई, कि कृष्ण से, कि राम से! जिस दिन भीतर पहुंचेंगे, उस दिन उसका मिलना हो जाएगा, जो न क्राइस्ट है, न राम है, न बुद्ध है, न कृष्ण है--या फिर सभी है। कहां से छलांग लगाई, वह तो भूल जाएगा।

कौन याद रखता है जंपिंग बोर्ड को, जब सागर मिल जाए! सीढ़ियों को कौन याद रखता है, जब शिखर मिल जाए! रास्ते को कौन याद रखता है, जब मंजिल आ जाए! कौन-सा रास्ता था, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सभी रास्ते काम में लाए जा सकते हैं। काम में लाने वाले पर निर्भर करता है।

अभी आप बाहर हैं, इसलिए बाहर परमात्मा की धारणा करनी पड़ती है आपकी वजह से। परमात्मा की वजह से नहीं, आपकी वजह से। भीतर की भाषा आपकी समझ में ही न आएगी।

इक्क्यु हुआ है एक झेन फकीर। किसी ने आकर इक्क्यु से पूछा कि सार, सारे धर्म का सार संक्षिप्त में कह दो। क्योंकि मेरे पास ज्यादा समय नहीं है। मैं काम-धंधे वाला आदमी हूं। क्या है धर्म का मूल सार? तो इक्क्यु बैठा था रेत पर, उसने अंगुली से लिख दिया, ध्यान। उस आदमी ने कहा, ठीक। लेकिन थोड़ा और विस्तार करो। इतने से बात समझ में नहीं आई। तो इक्क्यु ने और बड़े अक्षरों में रेत पर लिख दिया, ध्यान। तो वह आदमी थोड़ा संदिग्ध हुआ। उसने कहा कि उसी शब्द को दोहराने से क्या होगा! थोड़ा और साफ करो। तो इक्क्यु ने और बड़े अक्षरों में लिख दिया, ध्यान।

उस आदमी ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो? मैं पूछता हूं, कुछ साफ करो। तो इक्क्यु ने कहा, साफ तो तुम्हारे करने से होगा। साफ मेरे करने से नहीं होगा। अब साफ तुम करो। बात सार की मैंने कह दी। अब करना तुम्हारा काम है। इससे ज्यादा और मैं कुछ नहीं कह सकता हूं। और इससे ज्यादा मैं कुछ भी कहूंगा तो गड़बड़ हो जाएगी।

उस आदमी की कुछ भी समझ में न आया होगा। क्योंकि इक्क्यु जो भाषा बोल रहा है, वह भाषा उसके लिए जटिल पड़ी होगी। उसने शुद्धतम बात कह दी। लेकिन शुद्धतम बात समझने की सामर्थ्य भी चाहिए।

इसलिए जो बहुत करुणावान हैं, वे हमारी अशुद्ध भाषा में बोलते हैं। इसलिए नहीं कि अशुद्ध बोलने में कुछ रस है। बल्कि इसलिए कि हम अशुद्ध को ही समझ सकते हैं। और धीरे-धीरे ही हमें खींचा जा सकता है उस भीतर की यात्रा पर। एक-एक इंच हम बहुत मुश्किल से छोड़ते हैं। हम संसार को इस जोर से पकड़े हुए हैं कि एक-एक इंच भी हम बहुत मुश्किल से छोड़ते हैं! और यह यात्रा है सब छोड़ देने की। क्योंकि जब तक पकड़ न छूट जाए और हाथ खाली न हो जाएं, तब तक परमात्मा की तरफ नहीं उठते। भरे हुए हाथ उसके चरणों में नहीं झुकाए जा सकते। सिर्फ खाली हाथ उसके चरणों में झुकाए जा सकते हैं। क्योंकि भरे हुए हाथ वाला आदमी झुकता ही नहीं है।

इसीलिए जीसस ने कहा है कि चाहे सुई के छेद से ऊंट निकल जाए, लेकिन धनी आदमी मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न कर सकेगा।

यह किस धनी आदमी की बात कही है? वे सभी धनी हैं, जिनके हाथ भरे हुए हैं; जिन्हें लगता है, कुछ हमारे पास है; जिन्हें लगता है कि कुछ पकड़ने योग्य है; जिन्हें लगता है कि कोई संपदा है। वे उस द्वार में प्रवेश न कर सकेंगे।

जिसके पास कुछ है, उसके लिए द्वार बहुत संकीर्ण मालूम पड़ेगा। उसमें से वह निकल न सकेगा। और जिसके पास कुछ नहीं है, उसके लिए वह द्वार इतना विराट है, जितना विराट हो सकता है। यह पूरा संसार उससे निकल जाए, इतना बड़ा वह द्वार है। लेकिन जिसके पास कुछ है, उसके लिए सुई के छेद का द्वार भी बड़ा है। वह द्वार छोटा हो जाएगा। जितना हमारे हाथ पकड़े होते हैं चीजों को, उतने हम भारी और वजनी, उड़ने में असमर्थ हो जाते हैं। जितने हमारे हाथ खाली हो जाते हैं... ।

इसलिए जीसस ने जो कहा है कि भीतर की दरिद्रता, उसका अर्थ इतना ही है कि जिसने सारी पकड़ छोड़ दी संसार पर, वही भीतर से दरिद्र है।

लेकिन आदमी बहुत उपद्रवी है, बहुत चालाक है। और सब चालाकी में अपने को ही फंसा लेता है। क्योंकि यहां कोई और नहीं है, जिसको आप फंसा सकें। आप खुद ही जाल बुनेंगे और फंस जाएंगे। खुद ही खड्डा खोदेंगे और गिर जाएंगे। हम सब अपनी-अपनी कब्रें खोदकर तैयार रखते हैं। कब मौका आ जाए गिरने का, तो गिर जाएं! गिराते दूसरे हैं, कब्रें हम ही खोद लेते हैं। और वे दूसरे भी हमारी सहायता इसलिए करते हैं, क्योंकि हम उनकी सहायता करते रहे हैं!

आदमी बहुत जटिल है और सोचता है कि बहुत होशियार है। तो कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि वह बाहर की, संसार की संपत्ति छोड़ देता है, तो फिर कुछ भीतरी गुणों की संपत्ति को पकड़ लेता है।

सुना है मैंने, एक तथाकथित संत का परिचय दिया जा रहा था। और जो परिचय देने खड़ा था--जैसा कि भाषण में अक्सर हो जाता है--उसकी गरमी बढ़ती गई, जोश बढ़ता गया। और वह फकीर की बड़ी तारीफ करने लगा। और उसने कहा कि ऐसा फकीर पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। इन जैसा ज्ञान लाखों वर्षों में कभी होता है। बड़े-बड़े पंडित इनके चरणों में आकर बैठते हैं और सिर झुकाते हैं। इन जैसा प्रेम असंभव है दोबारा खोज लेना। सब तरह के लोग इनके प्रेम में नहाते हैं और पवित्र हो जाते हैं। और वह ऐसा कहता चला गया।

जब सारी बात पूरी होने के करीब थी, तो उस फकीर ने उस भाषण करने वाले का कोट धीरे से झटका और कहा कि मेरी विनम्रता के संबंध में मत भूल जाना। डोंट फारगेट माई ह्युमिलिटी। मेरी विनम्रता के संबंध में भी कुछ कहो!

विनम्रता के संबंध में भी कुछ कहो! तो यह आदमी विनम्र रहा होगा कि नहीं? तब तो विनम्रता भी अहंकार हो गया। और तब तो विनम्रता भी संपत्ति हो गई। यह आदमी बाहर से हो सकता है, सब छोड़ दिया हो, लेकिन इसने भीतर से सब पकड़ा हुआ है। इससे कुछ भी छूटा नहीं है, क्योंकि पकड़ नहीं छूटी है। और जो विनम्रता को पकड़े हुए है, वह उतना ही अहंकारी है, जितना कोई और अहंकारी है। और कई बार तो ऐसा होता है कि स्थूल अहंकार तो खुद भी दिखाई पड़ता है, सूक्ष्म अहंकार दिखाई नहीं पड़ता।

यह जो परमात्मा की यात्रा है, यह तो भीतर की ही यात्रा है। लेकिन बाहर से हम छोड़ें, तो हम भीतर की तरफ सरकने शुरू हो जाते हैं। बाहर से हम छोड़ सकें, इसलिए बाहर ही परमात्मा को हमने खड़ा किया है। हमारे सब मंदिर, हमारी सब मस्जिदें, गिरजे, गुरुद्वारे, सब प्रतीक हैं। बाहर कोई मंदिर है नहीं। लेकिन बाहर मंदिर बनाना पड़ा है, क्योंकि हम केवल बाहर के ही मंदिर अभी समझ सकते हैं। लेकिन वह बाहर का मंदिर एक जगह हो सकती है, जहां से हम संसार को छोड़कर उस मंदिर में प्रवेश कर जाएं। और फिर वह मंदिर भी

छूट जाएगा। क्योंकि जब इतना बड़ा संसार छूट गया, तो यह छोटा-सा मंदिर ज्यादा देर नहीं रुक सकता है। और जब संसार छूट गया, तो संसार में बैठे हुए परमात्मा की प्रतिमा भी छूट जाएगी। वह केवल बहाना है।

संसार को छोड़ सकें, इसलिए परमात्मा को बाहर रखते हैं। फिर तो वह भी छूट जाता है। और जो संसार को ही छोड़ सका, वह अब इस एक को भी छोड़ देगा। जिसने अनेक को छोड़ दिया, वह एक को भी छोड़ देगा। और जब अनेक भी नहीं बचता और एक भी नहीं बचता, तभी वस्तुतः वह एक बचता है, जिसको हमने अद्वैत कहा है। इसलिए हमने उसको एक नहीं कहा।

क्योंकि अनेक बाहर हैं, इनको छोड़ने के लिए एक परमात्मा की धारणा काम में लानी पड़ती है। संसार को हम छोड़ते हैं उस एक के लिए। फिर जब वह एक भी छूट जाता है, तब जो बचता है, उसको हम क्या कहें! उसको अनेक नहीं कह सकते। अनेक संसार था, छूट गया। उसको एक भी नहीं कह सकते। क्योंकि वह एक भी जो हमने बाहर बनाया था, वह भी बहाना था। वह भी छूट गया। अब जो बचा, उसे हम क्या कहें? अनेक कह नहीं सकते; एक कह नहीं सकते। इसलिए बड़ी अदभुत व्यवस्था हमने की। हमने उसको कहा, अद्वैत। न एक, न दो। हमने सिर्फ इतना कहा है, जो दो नहीं है। हमने केवल संख्या को इनकार कर दिया।

सब संख्याएं बाहर हैं--एक भी, अनेक भी। वे दोनों छूट गईं। अब हम उस जगह पहुंच गए हैं, जहां कोई संख्या नहीं है। लेकिन इस तक जाने के लिए बाहर के प्रतीक सहारे बन सकते हैं।

खतरा जरूर है। खतरा आदमी में है, प्रतीकों में नहीं है। खतरा यह है कि कोई सीढ़ी को ही रास्ते की अड़चन बना ले सकता है। और कोई समझदार हो, तो रास्ते पर पड़े हुए पत्थर को भी सीढ़ी बना ले सकता है। यह आप पर निर्भर है कि आप उसका उपयोग सीढ़ी की तरह करेंगे, उस पर चढ़ेंगे और आगे निकल जाएंगे, या उसी के किनारे रुककर बैठ जाएंगे कि अब जाने का कोई उपाय न रहा। यह पत्थर पड़ा है। अब कोई उपाय आगे जाने का नहीं है।

सीढ़ी अवरोध बन सकती है। अवरोध सीढ़ी बन सकता है। आप पर निर्भर है। प्रतीक खतरनाक हो जाते हैं, अगर उनको कोई जोर से पकड़ ले। प्रतीक छोड़ने के लिए हैं। प्रतीक सिर्फ बहाने हैं। उनका उपयोग कर लेना है और उन्हें भी फेंक देना है। और जब कोई व्यक्ति फेंकता चला जाता है, उस समय तक, जब तक कि फेंकने को कुछ भी शेष रहता है, वही व्यक्ति उस अंतिम बिंदु पर पहुंच पाता है।

एक प्रश्न और, फिर मैं सूत्र लूं।

आपने कल कहा कि अनुभव पर आधारित श्रद्धा ही वास्तविक श्रद्धा है। और यह भी कहा कि प्रेम और भक्ति की साधना सहज व सरल है। यह भी कहा कि आज तर्क व बुद्धि के अत्यधिक विकास के कारण झूठी आस्तिकता खतरे में पड़ गई है। तो समझाएं कि अनुभवशून्य साधक कैसे श्रद्धा की ओर बढ़े? और आज के बौद्धिक युग में भक्ति-योग अर्थात भावुकता का मार्ग कैसे उपयुक्त है? श्रद्धा के अभाव में भक्ति-योग की साधना कैसे संभव है?

आपने कल कहा कि अनुभव पर आधारित श्रद्धा ही वास्तविक श्रद्धा है। और यह भी कहा कि प्रेम और भक्ति की साधना सहज व सरल है। यह भी कहा कि आज तर्क व बुद्धि के अत्यधिक विकास के कारण झूठी आस्तिकता खतरे में पड़ गई है। तो समझाएं कि अनुभवशून्य साधक कैसे श्रद्धा की ओर बढ़े? और आज के

बौद्धिक युग में भक्ति-योग अर्थात भावुकता का मार्ग कैसे उपयुक्त है? श्रद्धा के अभाव में भक्ति-योग की साधना कैसे संभव है?

पहली बात, कैसे अनुभवशून्य साधक अनुभव की ओर बढ़े? पहली बात तो वह यह समझे कि अनुभवशून्य है। बड़ी कठिन है। सभी को ऐसा ख्याल है कि अनुभव तो हमें है ही। अपने को अनुभवशून्य मानने में बड़ी कठिनाई होती है। लेकिन धर्म के संबंध में हम अनुभवशून्य हैं, ऐसी प्रतीति पहली जरूरत है। क्योंकि जो हमारे पास नहीं है, वही खोजा जा सकता है। जो हमारे पास है ही, उसकी खोज ही नहीं होती।

बीमार आदमी समझता हो कि मैं स्वस्थ हूं, तो इलाज का कोई सवाल ही नहीं है। बीमार की पहली जरूरत है कि वह समझे कि वह बीमार है। कोई आदमी कारागृह में बंद हो और समझता हो कि मैं मुक्त हूं, तो कारागृह से छूटने का कोई सवाल ही नहीं है। और अगर कारागृह को अपना घर ही समझता हो और कारागृह की दीवालें उसने भीतर से और सजा ली हों, तब तो अगर आप छुड़ाने भी जाएं तो वह इनकार करेगा कि क्यों मेरे घर से मुझे बाहर निकाल रहे हो! और अगर उसने अपनी हथकड़ियों को, अपनी बेड़ियों को सोने के रंग में रंग लिया हो और चमकीले पत्थर लगा लिए हों, तो वह समझेगा कि ये आभूषण हैं। और अगर आप तोड़ने लगें, तो वह चिल्लाएगा कि मुझे बचाओ, मैं लुटा जा रहा हूं।

कारागृह में बंदी आदमी बाहर आने के लिए क्या करे? पहली बात तो यह समझे कि वह कारागृह में है। फिर कुछ बाहर आने की बात उठ सकती है। फिर कुछ रास्ता खोजा जा सकता है। फिर उनकी बात सुनी जा सकती है, जो बाहर जा चुके हैं। फिर उनसे पूछा जा सकता है कि वे कैसे बाहर गए हैं। फिर कुछ भी हो सकता है। लेकिन पहली जरूरत है कि अनुभवशून्य व्यक्ति समझे कि मैं अनुभवशून्य हूं।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। किताबें हम पढ़ लेते हैं, शास्त्र हम पढ़ लेते हैं। और शास्त्रों के शब्द हममें भर जाते हैं और ऐसी भ्रांति होती है कि हमें भी अनुभव है।

अभी एक वृद्ध सज्जन मेरे पास आए थे। आते से ही वे बोले कि ऐसे तो मुझे समाधि का अनुभव हो गया है, लेकिन फिर भी सोचा कि चलो, आपसे भी पूछ आऊं। मैंने उनको कहा कि कुछ भी साफ कर लें। अगर अनुभव हो चुका है समाधि का, तो अब दूसरी बात करें। यह छोड़ ही दें। फिर पूछने को क्या बचा है?

नहीं, उन्होंने कहा कि मैंने सोचा कि चलें, पूछ लेने में हर्ज क्या है! तो मैंने कहा, अनुभव हो गया हो, तो पूछने में समय खराब मेरा भी न करें, अपना भी खराब न करें। मेरा समय उनमें ही लगने दें, जिन्हें अनुभव नहीं हुआ है। तो वे बोले, अच्छा, आप फिर ऐसा ही समझ लें कि मुझे अनुभव नहीं हुआ है। लेकिन बताएं तो कि ध्यान कैसे करूं! मैंने कहा, मैं समझूंगा नहीं। क्योंकि आप समझें कि अनुभव नहीं हुआ है, मैं क्यों समझूं कि आपको नहीं हुआ है। अगर हुआ है, तो बात खत्म हो गई।

कैसी अड़चन है! आदमी का अहंकार कैसी मुश्किल खड़ी करता है। वे जानना चाहते हैं कि ध्यान क्या है, लेकिन यह भी मानने का मन नहीं होता कि ध्यान का मुझे पता नहीं है। ध्यान का तो पता है ही। चलते रास्ते सोचा कि चलो, आपसे भी पूछ लें।

तो मैंने कहा, मैं चलते रास्ते लोगों को जवाब नहीं देता। आप सोचकर आएं, पक्का करके आएं। और यदि वगैरह से काम नहीं चलेगा, कि समझ लें। मैं नहीं समझूंगा; आप ही समझकर आएं। हुआ हो, तो कहें हां। बात खत्म हो गई। न हुआ हो, तो कहें नहीं। फिर बात शुरू हो सकती है।

सुन लेते हैं, पढ़ लेते हैं, शब्द मन में घिर जाते हैं। शब्द इकट्ठे हो जाते हैं, जम जाते हैं। उन्हीं शब्दों को हम दोहराए चले जाते हैं और सोचते हैं कि ठीक, हमें पता तो है। थोड़ा कम होगा, किसी को थोड़ा ज्यादा होगा। लेकिन पता तो हमें है।

ध्यान रखना, उसका अनुभव थोड़ा और कम नहीं होता। या तो होता है, या नहीं होता। अगर आपको लगता हो कि थोड़ा-थोड़ा अनुभव हमें भी है, तो आप धोखा मत देना। परमात्मा को टुकड़ों में काटा नहीं जा सकता। या तो आपको अनुभव होता है पूरा, या नहीं होता। थोड़ा-थोड़ा का कोई उपाय नहीं है; डिग्रीज का कोई उपाय नहीं है। कोई यह नहीं कह सकता कि हम जरा अभी इंचभर परमात्मा को जानते हैं, आप चार इंच जानते होंगे। हम पावभर जानते हैं, आप सेरभर जानते होंगे! बाकी जानते हम भी हैं। क्योंकि परमात्मा का कोई खंड नहीं है; वह अखंड अनुभव है।

अगर आपको लगता हो, थोड़ा-थोड़ा अनुभव है, तो समझ लेना कि अनुभव नहीं है। और जिसको अनुभव हो जाता है, उसकी तो सारी खोज समाप्त हो जाती है। अगर आपकी खोज जारी है, अगर थोड़ा-सा भी असंतोष भीतर कहीं है, अगर थोड़ा भी ऐसा लगता है कि जीवन में कुछ चूक रहा है, तो समझना कि अभी अनुभव नहीं है। क्योंकि उसके अनुभव के बाद जीवन में कोई कमी का अनुभव नहीं रह जाता; कोई अभाव नहीं रह जाता। फिर कोई असंतोष की जरा-सी भी चोट भीतर नहीं होती। फिर कुछ पाने को नहीं बचता।

अगर कुछ भी पाने को बचा हुआ लगता हो, और लगता हो कि अभी कुछ कमी है, अभी कुछ यात्रा पूरी होनी है, तो समझना कि उसका अनुभव नहीं हुआ। परमात्मा अंत है--समस्त अनुभव का, समस्त यात्रा का, समस्त खोज का।

तो पहली बात तो अनुभवशून्य साधक को समझ लेनी चाहिए कि मैं अनुभवशून्य हूं। और ऐसा इसलिए नहीं कि मैं कहता हूं। ऐसा उसको ही समझना चाहिए। उसकी ही प्रतीति, कि मैं अनुभवशून्य हूं, रास्ता बनेगी।

एक फर्क ख्याल में रखें।

जो साधक नहीं है, वह पूछता है, ईश्वर है या नहीं? जो साधक है, वह पूछता है कि मुझे उसका अनुभव हुआ या नहीं? इस फर्क को ठीक से समझ लें। जो साधक नहीं है, सिर्फ जिज्ञासु है, दार्शनिक होगा। वह पूछता है, ईश्वर है या नहीं? उसको अपने में उत्सुकता नहीं है; उसे ईश्वर का सवाल है कि ईश्वर है या नहीं।

यह खोज व्यर्थ है। क्योंकि आप कैसे तय करेंगे कि ईश्वर है या नहीं? पूछने की सार्थक खोज तो यह है कि मुझे उसका अनुभव नहीं हुआ; कैसे उसका अनुभव हो? वह है या नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है। कैसे मुझे उसका अनुभव हो? और अगर मुझे अनुभव होगा, तो वह है। लेकिन अगर मुझे अनुभव न हो, तो जरूरी नहीं है कि वह न हो। क्योंकि हो सकता है, मेरी खोज में अभी कोई कमी हो।

तो साधक कभी भी इनकार नहीं करेगा। वह इतना ही कहेगा कि मुझे अभी अनुभव नहीं हुआ है। वह यह नहीं कहेगा कि ईश्वर नहीं है। क्योंकि मुझे क्या हक है कहने का कि ईश्वर नहीं है! मुझे पता नहीं है, इतना कहना काफी है। लेकिन हमारी भाषा में बड़ी भूल होती है।

हम निरंतर अपने को भूलकर बातें करते हैं। अगर एक आदमी कुछ कहता है, और आपको अच्छा नहीं लगता, तो आप ऐसा नहीं कहते कि तुमने जो कहा, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। आप ऐसा नहीं कहते हैं। आप ऐसा कहते हैं कि तुम गलत बात कह रहे हो। आप सारा जिम्मा दूसरे पर डालते हैं।

सूरज उगता है सुबह, आपको सुंदर लगता है। तो आप ऐसा नहीं कहते कि यह सूरज का उगना मुझे सुंदर लगता है। आप कहते हो, सूरज बड़ा सुंदर है। आप बड़ी गलती कर रहे हो। क्योंकि आपके पड़ोस में ही खड़ा

हुआ कोई आदमी कह सकता है कि सूरज सुंदर नहीं है। वह भी यही कह रहा है कि मुझे सुंदर नहीं लगता है। सूरज की बात ही करनी फिजूल है। सूरज सुंदर है या नहीं, इसे कैसे तय करिएगा? इतना ही तय हो सकता है कि आपको कैसा लगता है।

किसी ने गाली दी, आपको बुरी लगती है, तो आप यह मत कहिए कि यह गाली बुरी है। आप इतना ही कहिए कि यह गाली मुझे बुरी लगती है। मैं जिस ढंग का आदमी हूं, उसमें यह गाली जाकर बड़ी बुरी लगती है।

अपने को केंद्र बनाकर रखेगा साधक। अगर उसे ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता, तो वह यह नहीं कहेगा कि संसार में कोई ईश्वर नहीं है। यह तो बड़ी नासमझी की बात है। इतना ही कहेगा कि मुझे संसार में ईश्वर का कोई अनुभव नहीं होता--मुझे!

साधक हमेशा स्वयं को केंद्र में रखेगा। और तब सवाल उठेगा कि मुझे अनुभव नहीं होता, तो मैं क्या करूं कि अनुभव हो सके? वह प्रमाण नहीं पूछेगा ईश्वर के लिए कि प्रमाण क्या हैं? वह पूछेगा, मार्ग क्या हैं?

तो पहली बात कि मुझे अनुभव नहीं है, इसकी गहरी प्रतीति। फिर दूसरी बात कि अनुभव का मार्ग क्या है? क्योंकि मुझे अनुभव नहीं है, उसका अर्थ ही यह हुआ कि मैं उस जगह अभी नहीं हूं, जहां से अनुभव हो सके। मैं उस द्वार पर नहीं खड़ा हूं, जहां से वह दिखाई पड़ सके। मैं उस तल पर नहीं हूं, जहां से उसकी झलक हो सके। मेरी वीणा तैयार नहीं है कि उसके हाथ उस पर संगीत को पैदा कर सकें। मेरे तार ढीले होंगे, तार टूटे होंगे। तो मुझे मेरी वीणा को तैयार करना पड़ेगा। मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि उसका अनुभव हो सके।

ईश्वर की तलाश स्वयं के रूपांतरण की खोज है। ईश्वर की तलाश ईश्वर की तलाश नहीं है, आत्म-परिष्कार है। मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि मैं उसे देख पाऊं। मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि वह मुझे प्रतीत होने लगे, उसकी झलक, उसका स्पर्श।

आपको ख्याल है कि जितनी चीजें आपके चारों तरफ हैं, क्या आपको उन सबका पता होता है? वैज्ञानिक कहते हैं कि सौ में से केवल दो प्रतिशत चीजों का आपको पता चलता है। और पता इसलिए चलता है कि आप उन पर ध्यान देते हैं, इसलिए पता चलता है। नहीं तो पता नहीं चलता।

अगर आप एक कार में बैठे हैं और कार का इंजन थोड़ी-सी खट-खट की आवाज करने लगे, आपको पता नहीं चलेगा, ड्राइवर को फौरन पता चल जाएगा। आप भी वहीं बैठे हैं। आपको क्यों सुनाई नहीं पड़ता? आपका ध्यान नहीं है उस तरफ। सुनाई तो आपके भी कान को पड़ता ही होगा, क्योंकि आवाज हो रही है। लेकिन ड्राइवर को सुनाई पड़ता है, आपको सुनाई नहीं पड़ता। आपका ध्यान उस तरफ नहीं है, ड्राइवर का ध्यान उस तरफ है।

आप अपने कमरे में बैठे हैं। कभी आपने ख्याल किया कि दीवाल की घड़ी टक-टक करती रहती है, आपको सुनाई नहीं पड़ती। आज लौटकर कमरे में आंख बंद करके ध्यान करना, फौरन टक-टक सुनाई पड़ने लगेगी। और टक-टक धीमी आवाज है। बाहर का कितना ही शोरगुल हो रहा है, अगर आप ध्यान देंगे, तो टक-टक सुनाई पड़ने लगेगी।

अगर आप थोड़ा-सा शांत होकर ध्यान दें, तो हृदय की धड़कन भी सुनाई पड़ने लगेगी। वह तो चौबीस घंटे धड़क रहा है। आपको उसका पता नहीं चलता, क्योंकि उस तरफ ध्यान नहीं है। जिस तरफ ध्यान होता है, उस तरफ अनुभव होता है।

तो साधक पूछेगा कि परमात्मा के अनुभव के लिए कैसा ध्यान हो मेरा? किस तरफ मेरे ध्यान को मैं लगाऊं कि वह मौजूद हो, तो उसकी मुझे प्रतीति होने लगे? उसकी प्रतीति आपके ध्यान के प्रवाह पर निर्भर करेगी।

आपको वही दिखाई पड़ता है, जो आप देखते हैं। अगर आप चमार हैं, तो आपको लोगों के सिर नहीं दिखाई पड़ते, पैर दिखाई पड़ते हैं। दिखाई पड़ेंगे ही। क्योंकि ध्यान सदा जूते पर लगा हुआ है। और चमार दुकान पर आपकी शक्ल नहीं देखता, आपका जूता देखकर समझ जाता है कि जेब में पैसे हैं या नहीं। वह जूता ही सारी कहानी कह रहा है आपकी। जो उसकी गति आपने बना रखी है, उससे सब पता चल रहा है कि आपकी हालत क्या होगी। आपके जूते की हालत आपकी हालत है।

मैंने सुना है कि एक दर्जी घूमने गया रोम। लौटकर आया तो उसके पार्टनर ने, उसके साझीदार ने पूछा, क्या-क्या देखा? तो सब बातें उसने बताईं और उसने कहा कि पोप को भी देखने गया था। गजब का आदमी है। तो उसके साझीदार ने कहा कि पोप के संबंध में कुछ और विस्तार से कहो। उसने कहा कि आध्यात्मिक है, दुबला-पतला है। ऊंचाई पांच फीट दो इंच से ज्यादा नहीं, और कमीज की साइज थर्टी सिक्स शार्ट!

पोप का दर्शन करने गया था वह। मगर दर्जी है, तो पोप की कमीज पर ख्याल जाएगा। अब वह अगर लौटकर पोप की कमीज की खबर दे, तो इसका यह मतलब नहीं कि पोप की कोई आत्मा नहीं थी वहां। मगर आत्मा देखने के लिए कोई और तरह का आदमी चाहिए।

ध्यान जहां हो, वही दिखाई पड़ता है। तो फिर साधक पूछेगा कि मुझे उसका अनुभव नहीं होता, तो कहीं कोई आयाम ऐसा है जिस तरफ मेरा ध्यान नहीं जाता है। तो उस तरफ मैं कैसे ध्यान को ले जाऊं?

फिर ध्यान की विधियां हैं। फिर प्रार्थना के मार्ग हैं। फिर उनमें से चुनकर लग जाना चाहिए। जो भी प्रीतिकर लगे, उस दिशा में पूरा अपने को डुबा देना चाहिए। अगर आपको लगता है कि प्रार्थना, कीर्तन-भजन आपके हृदय को आनंद और प्रफुल्लता से भर देते हैं, तो फिर आप फिक्र मत करें।

लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं! परमात्मा की खोज में भी हम पड़ोसी की फिक्र रखते हैं, कि पड़ोसी क्या सोचेगा! अगर मैं सुबह से उठकर कीर्तन कर दूं, तो आस-पास खबर हो जाएगी कि आदमी पागल हो गया। हम पड़ोसियों की इतनी फिक्र करते हैं कि मरते वक्त भी परमात्मा का ध्यान नहीं होता। मरते वक्त भी यह ध्यान होता है कि कौन-कौन लोग मरघट पहुंचाने जाएंगे। फलां आदमी जाएगा कि नहीं! मरते वक्त भी यह ख्याल होता है कि कौन-कौन पड़ोसी पहुंचाने जाएंगे।

क्या फर्क पड़ता है कि कौन पहुंचाने आपको गया! और न भी गया कोई पहुंचाने, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। मर ही गए। लेकिन मरने के बाद भी पड़ोसियों का ध्यान रहता है। जिंदा में भी पूरे वक्त पड़ोसी से परेशान हैं, कि पड़ोसी क्या सोचेगा! और पड़ोसी सोच रहा है कि आप क्या सोचेंगे! वह आपकी वजह से रुका है, आप उसकी वजह से रुके हैं! यह भी हो सकता है कि आप नाचने लगें, तो शायद पड़ोसी भी नाच उठे। तो वह भी आपकी वजह से रुका हो।

अगर प्रार्थना आपको प्रीतिकर लगती हो, तो भय छोड़ दें, और उस तरफ पूरे हृदय को आनंद से भरकर नाचने दें और लीन होने दें। अगर आपको प्रार्थना ठीक न समझ में आती हो, तो प्रार्थना ठीक नहीं है, ऐसा कहकर बैठ मत जाएं। तो फिर बिना प्रार्थना के मार्ग भी हैं; ध्यान है, निर्विचार होने के उपाय हैं। तो फिर विचार के त्याग का प्रयोग शुरू करें।

लेकिन बड़े मजेदार लोग हैं। अगर उनसे कहो प्रार्थना, तो वे कहते हैं, लोग क्या कहेंगे! अगर उनसे कहो ध्यान, तो वे कहते हैं, बड़ा कठिन है। हमसे न हो सकेगा। न करने का बहाना हम हजार तरह से निकाल लेते हैं।

साधक हमेशा करने का बहाना खोजेगा कि किस बहाने मैं कर सकूं। कोई भी बहाना मिल जाए, तो मैं कर सकूं। ऐसी जिसकी विधायक खोज है, वह आज नहीं कल अपने ध्यान को उस दिशा में लगा लेता है, जहां परमात्मा की प्रतीति है।

अब हम सूत्र को लें।

और जो पुरुष इंद्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके मन-बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार और अविनाशी, सच्चिदानंदघन ब्रह्म को निरंतर एकीभाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे संपूर्ण भूतों के हित में रत हुए और सब में समान भाव वाले योगी भी मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

कोई ऐसा न समझे कि भक्ति से ही पहुंचा जा सकता है। कोई ऐसा न समझे कि भक्ति के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। तो कृष्ण दूसरे सूत्र में तत्काल कहते हैं कि वे जो भक्त हैं, और मेरे में सब भांति डूबे हुए हैं, जिनका मन सब भांति मुझमें लगा हुआ है, और जो मुझ सगुण को, साकार को निरंतर भजते हैं श्रद्धा से, वे श्रेष्ठतम योगी हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल वे ही पहुंचते हैं। वे भी पहुंच जाते हैं, जो निराकार का ध्यान करते हैं। वे भी पहुंच जाते हैं, जो शून्य के साथ अपना एकीभाव करते हैं। वे भी मुझको ही उपलब्ध होते हैं। उनका मार्ग होगा दूसरा, लेकिन उनकी मंजिल मैं ही हूं। तो कोई सगुण से चले कि निर्गुण से, वह पहुंचता मुझ तक ही है।

पहुंचने को और कोई जगह नहीं है। कहां से आप चलते हैं, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। जहां आप पहुंचेंगे, वह जगह एक है। आपके यात्रा-पथ अनेक होंगे, आपके ढंग अलग-अलग होंगे। आप अलग-अलग विधियों का उपयोग करेंगे, अलग नाम लेंगे, अलग गुरुओं को चुनेंगे, अलग अवतारों को पूजेंगे, अलग मंदिरों में प्रवेश करेंगे, लेकिन जिस दिन घटना घटेगी, आप अचानक पाएंगे, वे सब भेद खो गए, वे सब अनेकताएं समाप्त हो गईं और आप वहां पहुंच गए हैं, जहां कोई भेद नहीं है, जहां अभेद है।

बड़ा उलटा मालूम पड़ता है। जो तर्क, चिंतन करते रहते हैं, उन्हें लगता है, दोनों बातें कैसे सही हो सकती हैं! क्योंकि निराकार और साकार तो विपरीत मालूम पड़ते हैं। सगुण और निर्गुण तो विपरीत मालूम पड़ते हैं। कितना विवाद चलता है! पंडितों ने अपने सिर खाली कर डाले हैं। अपनी जिंदगियां लगा दी हैं इस विवाद में कि सगुण ठीक है कि निर्गुण ठीक है। बड़े पंथ, बड़े संप्रदाय खड़े हो गए हैं। बड़ी झंझट है। एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने की इतनी चेष्टा है कि करीब-करीब दोनों ही गलत हो गए हैं।

इस जमीन पर इतना जो अधर्म है, उसका कारण यह नहीं है कि नास्तिक हैं दुनिया में बहुत ज्यादा। नहीं। आस्तिकों ने एक-दूसरे को गलत सिद्ध कर-करके ऐसी हालत पैदा कर दी है कि कोई भी सही नहीं रह गया। मंदिर, मस्जिद को गलत कह देता है; मस्जिद मंदिर को गलत कह देती है। मंदिर इस ख्याल से मस्जिद को गलत कहता है कि अगर मस्जिद गलत न हुई, तो मैं सही कैसे होऊंगा! मस्जिद इसलिए गलत कहती है कि अगर तुम भी सही हो, तो हमारे सही होने में कमी हो जाएगी।

लेकिन सुनने वाले पर जो परिणाम होता है, उसे लगता है कि मस्जिद भी गलत और मंदिर भी गलत। ये जो दोनों को गलत कह रहे हैं, ये दोनों गलत हैं। और यह गलती की बात इतनी प्रचारित होती है, क्योंकि

दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं, और एक धर्म को दो सौ निन्यानबे गलत कह रहे हैं। तो आप सोच सकते हैं कि जनता पर किसका परिणाम ज्यादा होगा! एक कहता है कि ठीक। और दो सौ निन्यानबे उसके खिलाफ हैं कि गलत। हरेक के खिलाफ दो सौ निन्यानबे हैं। इन तीन सौ ने मिलकर तीन सौ को ही गलत कर दिया है और जमीन अधार्मिक हो गई है।

सुना है मैंने, दो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में बात कर रहे थे। उनका दिल था कि जाएं और आज एक फिल्म देख आएं। लेकिन दोनों को अपने पिताओं का डर था। मन तो पढ़ने में बिल्कुल लग नहीं रहा था। फिर एक ने कहा कि छोड़ो भी, कब तक हम परतंत्र रहेंगे? यह गुलामी बहुत हो गई। अगर यही गुलामी है जिंदगी, तो इससे तो बेहतर है, हम दोनों यहां से भाग खड़े हों। परीक्षा से भी छूटेंगे और यह बापों की झंझट भी मिट जाएगी।

पर दूसरे ने कहा कि यह भूलकर मत करना। क्योंकि वे हमारे दोनों के बाप बड़े खतरनाक हैं। वे जल्दी, देर-अबेर, ज्यादा देर नहीं लगेगी, हमें पकड़ ही लेंगे और अच्छी पिटाई होगी। तो दूसरे ने कहा कि कोई फिक्र नहीं; अगर पिटाई भी हो, तो अब बहुत हो गया सहते। हम भी सिर खोल देंगे उन पिताओं के।

तो उस दूसरे ने कहा, यह जरा ज्यादा बात हो गई। धर्मशास्त्र में लिखा हुआ है, माता और पिता का आदर परमात्मा की भांति करना चाहिए। तो उस दूसरे ने कहा, तो फिर ऐसा करना, तुम मेरे पिता का सिर खोल देना, मैं तुम्हारे पिता का! तो धर्मशास्त्र की भी आज्ञा पूरी हो जाएगी।

ये दुनिया में तीन सौ धर्मों ने यह हालत कर दी है। एक-दूसरे ने एक-दूसरे के परमात्मा का सिर खोल दिया है। लाशें पड़ी हैं अब परमात्माओं की। और वे सब इस मजे में खोल रहे हैं कि हम तुम्हारे परमात्मा का सिर खोल रहे हैं, कोई अपने का तो नहीं!

हिंदुओं ने मुसलमानों को गलत कर दिया है; मुसलमानों ने हिंदुओं को गलत कर दिया है। साकारवादियों ने निराकारवादियों को गलत कर दिया है; निराकारवादियों ने साकारवादियों को गलत कर दिया है। बाइबिल कुरान के खिलाफ है; कुरान वेद के खिलाफ है; वेद तालमुद के खिलाफ है; तालमुद इसके... । सब एक-दूसरे के खिलाफ हैं और पूरी जमीन परमात्मा की लाशों से भर गई है।

कृष्ण का यह तत्क्षण दूसरा सूत्र इस बात की खबर देता है कि कितने ही विपरीत दिखाई पड़ने वाले मार्ग हों, मंजिल एक है।

इसे थोड़ा समझें, क्योंकि तर्क के लिए बड़ी कठिनाई है। तर्क कहता है कि अगर आकार ठीक है, तो निराकार कैसे ठीक होगा? क्योंकि तर्क को लगता है कि आकार के विपरीत है निराकार। लेकिन निराकार आकार के विपरीत नहीं है। आकार में भी निराकार ही प्रकट हुआ है। और निराकार भी आकार के विपरीत नहीं है। जहां आकार लीन होता है, उस स्रोत का नाम निराकार है।

लहर के विपरीत नहीं है सागर। क्योंकि लहर में भी सागर ही प्रकट हुआ है। लहर भी सागर के विपरीत नहीं है, क्योंकि सागर से ही पैदा होती है, तो विपरीत कैसे होगी! और सागर में ही लीन होती है, तो विपरीत कैसे होगी! जो मूल है, उदगम है और जो अंत है, उसके विपरीत होने का क्या उपाय है?

निराकार और आकार विपरीत नहीं हैं। विपरीत दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि हमारे पास देखने की सीमित क्षमता है। वे विपरीत दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि देखने की हमारे पास इतनी विस्तीर्ण क्षमता नहीं है कि दो विरोधों को हम एक साथ देख लें। हमारी देखने की क्षमता तो इतनी कम है कि जिसका हिसाब नहीं।

अगर मैं आपको एक कंकड़ का छोटा-सा टुकड़ा हाथ में दे दूं और आपसे कहूं कि इसको पूरा एक साथ देख लीजिए, तो आप पूरा नहीं देख सकते। एक तरफ एक दफा दिखाई पड़ेगी। फिर उसको उलटाइए, तो दूसरी तरफ दिखाई पड़ेगी। और जब दूसरा हिस्सा दिखाई पड़ेगा, तो पहला दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा।

एक छोटे-से कंकड़ को भी हम पूरा नहीं देख सकते, तो सत्य को हम पूरा कैसे देख सकते हैं? कंकड़ तो बड़ा है, एक छोटे-से रेत के कण को भी आप पूरा नहीं देख सकते, आधा ही देख सकते हैं। आधा हमेशा ही छिपा रहेगा। और जब दूसरे आधे को देखिएगा, तो पहला आधा आंख से तिरोहित हो जाएगा।

आज तक किसी आदमी ने कोई चीज पूरी नहीं देखी। बाकी आधे की हम सिर्फ कल्पना करते हैं कि होनी चाहिए। उलटाकर जब देखते हैं, तो मिलती है; लेकिन तब तक पहला आधा खो जाता है। आदमी के देखने की क्षमता इतनी संकीर्ण है!

तो हम सत्‌य को पूरा नहीं देख पाते हैं। सत्य के संबंध में हमारी हालत वही है, जो हाथी के पास पांच अंधों की हो गई थी। उन सबने हाथी ही देखा था, लेकिन पूरा नहीं देखा था। किसी ने हाथी का पैर देखा था; और किसी ने हाथी का कान देखा था; और किसी ने हाथी की सूंड देखी थी। और वे सब सही थे; और फिर भी सब गलत थे।

और जब वे गांव में वापस लौटकर आए, तो बड़ा उपद्रव और विवाद खड़ा हो गया। क्योंकि उन सबने हाथी देखा था, और सभी का दावा था कि हम हाथी देखकर आ रहे हैं। लेकिन किसी ने कहा कि हाथी सूप की भांति है; और किसी ने कहा कि हाथी है मंदिर के खंभे की भांति; और बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। और निर्णय कुछ भी नहीं हो सकता था, क्योंकि सभी की बातें इतनी विपरीत थीं।

लेकिन वे सारी विपरीत बातें इसलिए विपरीत मालूम पड़ती थीं कि उन सबने अधूरा-अधूरा देखा था। और कोई हाथी से अगर पूछता, तो वह कहता, यह सब मैं हूं।

यह अर्जुन हाथी के सामने खड़ा है। इसलिए अगर एक ने कहा हो कि निराकार है वह, और किसी दूसरे ने कहा हो, साकार है वह। यह अर्जुन हाथी के सामने खड़ा है और हाथी से पूछ रहा है कि क्या हो तुम! तो हाथी कहता है, सब हूं मैं। वह जिसने कहा है कि सूप की भांति, वह मैं ही हूं; और जिसने कहा है, खंभे की भांति, वह मैं ही हूं। उन सब की भूल इसमें नहीं है; वे जो कहते हैं, उसमें भूल नहीं है। उनकी भूल उसमें है, जो वे इनकार करते हैं।

कोई भूल नहीं है अंधे की, अगर वह कहता है कि हाथी मैंने देखा जैसा, वह खंभे की भांति है। अगर वह इतना ही कहे कि जितना मैंने देखा है हाथी, वह खंभे की भांति है, तो जरा भी भूल नहीं है। लेकिन वह कहता है, हाथी खंभे की भांति है। और जब कोई कहता है कि हाथी खंभे की भांति नहीं है, सूप की भांति है, तो झगड़ा शुरू हो जाता है। तब वह कहता है, हाथी सूप की भांति हो नहीं सकता, क्योंकि खंभा कैसे सूप होगा!

हाथी से कोई भी नहीं पूछता! और हाथी से पूछने के लिए अंधे समर्थ नहीं हो सकते। और अगर हाथी कह दे कि मैं सब हूं, तो अंधे सोचेंगे, हाथी पागल है। क्योंकि अंधे तो देख नहीं सकते हैं। सोचेंगे, हाथी पागल हो गया है। अन्यथा ऐसी व्यर्थ, बुद्धिहीन बात नहीं कहता। कोई अंधा उसकी मानेगा नहीं। सब अंधे अपनी मानते हैं। और जब अपनी मानते हैं, तो दूसरे के वक्तव्य को गलत करने की चेष्टा जरूरी हो जाती है। क्योंकि दूसरे का वक्तव्य स्वयं को गलत करता मालूम पड़ता है।

कृष्ण का यह सूत्र कह रहा है कि वे भी पहुंच जाते हैं, जो प्रेम से चलते हैं। और वे भी पहुंच जाते हैं, जो ज्ञान से चलते हैं। मार्ग विपरीत हैं।

ज्ञान से चलने वाले को शून्य होना पड़ता है। और प्रेम से चलने वाले को पूर्ण होना पड़ता है। लेकिन शून्यता और पूर्णता एक ही घटना के दो नाम हैं। शून्य से ज्यादा पूर्ण कोई और चीज नहीं है। और पूर्ण से ज्यादा शून्य कोई और चीज नहीं है।

हमारे लिए तकलीफ है। क्योंकि हमारे लिए शून्य का अर्थ है कुछ भी नहीं। और हमारे लिए पूर्ण का अर्थ है सब कुछ। ये हमारे देखने के ढंग, दृष्टि, हम जितना समझ सकते हैं, हमारी सीमा, उसके कारण यह अड़चन है।

लेकिन जो शून्य हो जाता है, वह तत्क्षण पूर्ण का अनुभव कर लेता है। और जो पूर्ण हो जाता है, वह भी तत्क्षण शून्य का अनुभव कर लेता है। थोड़ा-सा फर्क होता है। वह फर्क आगे-पीछे का होता है। जो शून्य होता हुआ चलता है, उसे पहले अनुभव शून्य का होता है। शून्य का अनुभव होते ही पूर्ण का द्वार खुल जाता है। जो पूर्ण की तरफ से चलता है, उसे पहले अनुभव पूर्ण का होता है। पूर्ण होते ही शून्य का द्वार खुल जाता है।

ऐसा समझ लें कि शून्यता और पूर्णता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो सिक्के का हिस्सा आपको पहले दिखाई पड़ता है, जब आप उलटाएंगे, पूरा सिक्का आपके हाथ में आएगा, तो दूसरा हिस्सा दिखाई पड़ेगा।

इसीलिए ज्ञानी पहले प्रेम से बिल्कुल रिक्त होता चला जाता है और अपने को शून्य करता है। प्रेम से भी शून्य करता है, क्योंकि वह भी भरता है।

तो महावीर ने कहा है कि सब तरह के प्रेम से शून्य; सब तरह के मोह, सब तरह के राग, सबसे शून्य। इसलिए महावीर ने कह दिया कि ईश्वर भी नहीं है। क्योंकि उससे भी राग बन जाएगा, प्रेम बन जाएगा। कुछ भी नहीं है, जिससे राग बनाना है। सब संबंध तोड़ देने हैं। और प्रेम संबंध है। और अपने को बिल्कुल खाली कर लेना है।

जिस दिन खाली हो गए महावीर, उस दिन जो पहली घटना घटी, वह आप जानते हैं वह क्या है! वह घटना घटी प्रेम की। इसलिए महावीर से बड़ा अहिंसक खोजना मुश्किल है। क्योंकि शून्य से चला था यह आदमी। और सब तरफ से अपने को शून्य कर लिया था। परमात्मा से भी शून्य कर लिया था। जिस दिन पहुंचा मंजिल पर, उस दिन इससे बड़ा प्रेमी खोजना मुश्किल है। यह उलटी बात हो गई।

इसलिए महावीर ने जितना जोर दिया फिर प्रेम पर--वह अहिंसा उनका नाम है प्रेम के लिए। वह ज्ञानी का शब्द है प्रेम के लिए। क्योंकि प्रेम से डर है कि कहीं आम आदमी अपने प्रेम को न समझ ले। इसलिए अहिंसा। अहिंसा का मतलब इतना ही है कि दूसरे को जरा भी दुख मत देना।

और ध्यान रहे, जो आदमी दूसरे को जरा भी दुख न दूं, इसका ख्याल रखता है, उस आदमी से दूसरे को सुख मिल पाता है। और जो आदमी ख्याल रखता है कि दूसरे को सुख दूं, वह अक्सर दुख देता है।

भूलकर भी दूसरे को सुख देने की कोशिश मत करना। वह आपकी सामर्थ्य के बाहर है। आपकी सामर्थ्य इतनी है कि आप कृपा करना, और दुख मत देना। आप दुख से बच जाएं दूसरे को देने से, तो काफी सुख देने की आपने व्यवस्था कर दी। क्योंकि जब आप कोई दुख नहीं देते, तो आप दूसरे को सुखी होने का मौका देते हैं। सुखी तो वह खुद ही हो सकता है। आप सुख नहीं दे सकते; सिर्फ अवसर जुटा सकते हैं।

सुख देने की कोशिश मत करना किसी को भी भूलकर, नहीं तो वह भी दुखी होगा और आपको भी दुखी करेगा। सुख कोई दे नहीं सकता है।

इसलिए महावीर ने नकार शब्द चुन लिया, अहिंसा। दुख भर मत देना, यही तुम्हारे प्रेम की संभावना है। इससे तुम्हारा प्रेम फैल सकेगा।

महावीर शून्य होकर चले और प्रेम पर पहुंच गए। कृष्ण पूरे के पूरे प्रेम हैं। और उनसे शून्य आदमी खोजना मुश्किल है। सारा प्रेम है, लेकिन भीतर एक गहन शून्य खड़ा हुआ है। इसलिए इस प्रेम में कहीं भी कोई बंधन निर्मित नहीं होता।

इसलिए हमने कहानी कही है कि सोलह हजार प्रेयसियां, पत्नियां हैं उनकी। और फिर भी हमने कृष्ण को मुक्त कहा है। सोलह हजार प्रेम के बंधन के बीच जो आदमी मुक्त हो सके, वह भीतर शून्य होना चाहिए; नहीं तो मुक्त नहीं हो सकेगा।

पर जैन नहीं समझ सके कृष्ण को। जैसा कि हिंदू नहीं समझ सकते महावीर को। जैन नहीं समझ सके, क्योंकि जैनों को लगा, जिसके आस-पास सोलह हजार स्त्रियां हों! एक स्त्री नरक पहुंचा देने के लिए काफी है। सोलह हजार स्त्रियां जिसके पास हों, इसके लिए बिल्कुल आखिरी नरक खोजना जरूरी है। इसलिए जैनों ने कृष्ण को सातवें नरक में डाला हुआ है। क्योंकि जहां इतना प्रेम घट रहा हो, वहां बंधन हो ही गया होगा।

लेकिन उन्हें ख्याल नहीं है कि यह आदमी बांधा नहीं जा सकता, क्योंकि भीतर यह आदमी है ही नहीं। यह मौजूद नहीं है। जो मौजूद हो, वह बांधा जा सकता है। अगर आप आकाश पर मुट्ठी बांधेंगे, तो मुट्ठी रह जाएगी, आकाश बाहर हो जाएगा। आकाश को अगर बांधना हो, तो हाथ खुला चाहिए। आपने बांधा कि आकाश बाहर गया।

जो शून्य की भांति है, वह बांधा नहीं जा सकता। भीतर यह आदमी शून्य है, लेकिन इसकी यात्रा प्रेम की है। इसलिए कृष्ण जैसा शून्य आदमी खोजना मुश्किल है।

आप दोनों तरफ से चल सकते हैं। अपनी-अपनी पात्रता, क्षमता, अपना निज स्वभाव पहचानना जरूरी है।

इसलिए कृष्ण ने कहा कि वे जो दूसरी तरफ से चलते हैं--निराकार, अद्वैत, निर्गुण, शून्य--वे भी मुझ पर ही पहुंच जाते हैं।

तब सवाल यह नहीं है कि आप कौन-सा मार्ग चुनें। सवाल यह है कि आप किस मार्ग के अनुकूल अपने को पाते हैं। आप कहां हैं? कैसे हैं? आपका व्यक्तित्व, आपका ढांचा, आपकी बनावट, आपके निजी झुकाव कैसे हैं?

एक बड़ा खतरा है, और सभी साधकों को सामना करना पड़ता है। और वह खतरा यह है कि अक्सर आपको अपने से विपरीत स्वभाव वाला व्यक्ति आकर्षक मालूम होता है। यह खतरा है। इसलिए गुरुओं के पास अक्सर उनके विपरीत चेले इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि जो विपरीत है, वह आकर्षित करता है। जैसे पुरुष को स्त्री आकर्षित करती है; स्त्री को पुरुष आकर्षित करता है।

आप ध्यान रखें, यह विपरीत का आकर्षण सब जगह है। अगर आप लोभी हैं, तो आप किसी त्यागी गुरु से आकर्षित होंगे। फौरन आप कोई त्यागी गुरु को पकड़ लेंगे। क्यों? क्योंकि आपको लगेगा कि मैं एक पैसा नहीं छोड़ सकता और इसने सब छोड़ दिया! बस, चमत्कार है। आप इसके पैर पकड़ लेंगे। तो त्यागियों के पास अक्सर लोभी इकट्ठे हो जाएंगे। यह बड़ी उलटी घटना है, लेकिन घटती है।

अगर आप क्रोधी हैं, तो आप किसी अक्रोधी गुरु की तलाश करेंगे। आपको जरा-सा भी उसमें क्रोध दिख जाए, आपका विश्वास खतम हो जाएगा। क्योंकि आपका अपने में तो विश्वास है नहीं; आप अपने दुश्मन हैं; और यह आदमी भी क्रोध कर रहा है, तो आप ही जैसा है; बात खतम हो गई।

जिस दिन आपको पता चलता है कि गुरु आप जैसा है, गुरु खतम। वह आपसे विपरीत होना चाहिए। अगर आप स्त्रियों के पीछे भागते रहते हैं, तो गुरु को बिल्कुल स्त्री पास भी नहीं फड़कने देनी चाहिए; उसके शिष्य चिल्लाते रहने चाहिए कि छू मत लेना, कोई स्त्री छू न ले। तब आपको जंचेगा कि हां, यह गुरु ठीक है।

सब अपने दुश्मन हैं, इसलिए अपने से विपरीत को चुन लेते हैं। फिर बड़ा खतरा है। क्योंकि अपने से विपरीत को चुन तो लेते हैं आप, आकर्षित तो होते हैं, लेकिन उस मार्ग पर आप चल नहीं सकते हैं। क्योंकि जो आपके विपरीत है, वह आप हो नहीं सकते। इसलिए अक्सर चेले कहीं भी नहीं पहुंच पाते।

साधक को पहली बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मेरी स्थिति क्या है? मैं किस ढंग का हूं? मेरा ढंग ही मेरा मार्ग बनेगा।

तो बेहतर तो यह है कि अपनी स्थिति को ठीक से समझकर और यात्रा पर चलना चाहिए। गुरु को समझकर यात्रा पर चलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अपने को समझकर गुरु खोजना चाहिए। गुरु खोजकर पीछा नहीं करना चाहिए। जो अपने को समझकर गुरु खोज लेता है, मार्ग खोज लेता है, जो अपने स्वधर्म को पहचान लेता है... ।

समझ लें कि आपको प्रेम का कोई अनुभव ही नहीं होता। बहुत लोग हैं, जिनको अनुभव नहीं होता। मगर सबको यह ख्याल रहता है कि मैं प्रेम करता हूं। तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। अगर आपको प्रेम का कोई अनुभव ही नहीं होता है, तो भक्ति का मार्ग आपके लिए नहीं है। अगर प्रेम करने वाले आपको पागल मालूम पड़ते हैं, तो भक्ति का मार्ग आपके लिए नहीं है।

कभी आपने सोचा कि अगर मीरा आपको बाजार में नाचती हुई मिल जाए, तो आपके मन पर क्या छाप पड़ेगी?

इसको ऐसा सोचिए कि अगर आप बाजार में नाच रहे हों कृष्ण का नाम लेकर, तो आपको आनंद आएगा या आपको फिक्र लगेगी कि कोई अब पुलिस में खबर करता है! लोग क्या सोच रहे होंगे? लोक-लाज, मीरा ने कहा है, छोड़ी तेरे लिए। वह लोक-लाज छोड़ सकेंगे आप?

प्रेम का कोई अनुभव आपको अगर हुआ हो और वह अनुभव आपको इतना कीमती मालूम पड़ता हो कि सब खोया जा सकता है, तो ही भक्ति का मार्ग आपके लिए है।

और कुनकुने भक्त होने से न होना अच्छा। ल्यूक वार्म होने से कुछ नहीं होता दुनिया में। उबलना चाहिए, तो ही भाप बनता है पानी। और जब तक आपकी भक्ति भी उबलती हुई न हो, कुनकुनी हो, तब तक सिर्फ बुखार मालूम पड़ेगा, कोई फायदा नहीं होगा। बुखार से तो न-बुखार अच्छा। अपना नार्मल टेम्प्रेचर ठीक। क्योंकि बुखार गलत चीज है; उससे परिवर्तन भी नहीं होता, और उपद्रव भी हो जाता है।

और ध्यान रहे, परिवर्तन हमेशा छोर पर होता है। जब पानी उबलता है सौ डिग्री पर, तब भाप बनता है। और जब प्रेम भी उबलता है सौ डिग्री पर, जब बिल्कुल दीवाना हो जाता है, तो ही मार्ग खुलता है। उससे पहले नहीं।

अगर वह आपका झुकाव न हो, तो उस झंझट में पड़ना ही मत। तो फिर बेहतर है कि आप प्रेम का ख्याल न करके, ध्यान का ख्याल करना। फिर किसी परमात्मा से अपने को भरना है, इसकी फिक्र छोड़ देना। फिर तो सब चीजों से अपने को खाली कर लेना है, इसकी आप चिंता करना। वही आपके लिए उचित होगा। फिर एक-एक विचार को धीरे-धीरे भीतर से बाहर फेंकना। और भीतर साक्षी-भाव को जन्माना। और एक ही ध्यान रह जाए कि उस क्षण को मैं पा लूं, जब मेरे भीतर कोई चिंतन की धारा न हो, कोई विचार न हो।

जब मेरे भीतर निर्विचार हो जाएगा, तो मेरा निराकार से मिलन हो जाएगा। और जब मेरे भीतर प्रेम ही प्रेम रह जाएगा--उन्मत्त प्रेम, विक्षिप्त प्रेम, उबलता हुआ प्रेम--तब मेरा सगुण से मिलन हो जाएगा।

अपना निज रुझान खोजकर जो चलता है, और उसको उसकी पूर्णता तक पहुंचा देता है... । आप ही हैं द्वार; आप ही हैं मार्ग; आप में ही छिपी है मंजिल। थोड़ी समझ अपने प्रति लगाएं और थोड़ा अपना निरीक्षण करें और अपने को पहचानें, तो जो बहुत कठिन दिखाई पड़ता है, वह उतना ही सरल हो जाता है।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई उठे नहीं। कीर्तन में भाव से भाग लें और फिर जाएं।

तीसरा प्रवचन

पाप और प्रार्थना

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।। 5।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।

अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।। 6।।

किंतु उन सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्त वाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियों से अव्यक्त विषयक गति दुखपूर्वक प्राप्त की जाती है। अर्थात जब तक शरीर में अभिमान रहता है, तब तक शुद्ध सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में स्थिति होनी कठिन है।

और जो मेरे परायण हुए भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही तैलधारा के सदृश अनन्य भक्ति-योग से निरंतर चिंतन करते हुए भजते हैं, उनका मैं शीघ्र ही उद्धार करता हूं।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि आज के बौद्धिक युग में भक्ति, भाव-साधना का मार्ग कैसे उपयुक्त हो सकता है? श्रद्धा के अभाव में भक्ति-साधना में प्रवेश कैसे संभव है?

एसा प्रश्न बहुतों के मन में उठता है। युग तो बुद्धि का है, तो भाव की तरफ गति कैसे हो सके? दोनों में विपरीतता है; दोनों उलटे छोर मालूम पड़ते हैं।

हमारा सारा शिक्षण, सारा संस्कार बुद्धि का है। भाव की न तो कोई शिक्षा है, न कोई संस्कार है। भाव के विकसित होने का कोई उपाय भी दिखाई नहीं पड़ता। सारी जीवन की व्यवस्था बुद्धि से चलती मालूम पड़ती है। तो इस बुद्धि के शिखर पर बैठे हुए युग में, कैसे भाव की तरफ गति होगी? कैसे भक्ति की तरफ रास्ता खुलेगा?

जीवन का एक बहुत अनूठा नियम है, वह आप समझ लें। वह नियम है कि जब भी हम एक अति पर चले जाते हैं, तो दूसरी अति पर जाना आसान हो जाता है। जब भी हम एक छोर पर पहुंच जाते हैं, तो दूसरे छोर पर पहुंचना आसान हो जाता है, घड़ी के पेंडुलम की तरह। घड़ी का पेंडुलम घूमता है बाईं तरफ, और जब बाईं तरफ के आखिरी छोर को छू लेता है, तो दाईं तरफ घूमना शुरू हो जाता है।

यह युग बुद्धि का युग है, इतना ही काफी नहीं है जानना। यह युग बुद्धि से पीड़ित युग भी है। इस युग की ऊंचाइयां भी बुद्धि की हैं, इस युग की परेशानियां भी बुद्धि की हैं। इस युग की पीड़ा भी बुद्धि है।

यह सारा आज का चिंतनशील मस्तिष्क परेशान है, विक्षिप्त है। और जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती है, वैसे-वैसे हमें पागलखाने बढ़ाने पड़ते हैं। जितना सभ्य मुल्क हो, उसकी जांच का एक सीधा उपाय है कि वहां कितने ज्यादा लोग पागल हो रहे हैं!

बुद्धि पर ज्यादा जोर पड़ता है, तो तनाव सघन हो जाता है। हृदय हलका करता है, बुद्धि भारी कर जाती है। हृदय एक खेल है, बुद्धि एक तनाव है।

तो बुद्धि की इतनी पीड़ा के कारण और बुद्धि का इतना संताप जो पैदा हुआ है, उसके कारण, दूसरी तरफ घूमने की संभावना पैदा हो गई है।

हम बुद्धि से परेशान हैं। इस परेशानी के कारण हम भाव की तरफ उन्मुख हो सकते हैं। और मेरी अपनी समझ ऐसी है कि शीघ्र ही पृथ्वी पर वह समय आएगा, जब पहली दफा मनुष्य भाव में इतना गहरा उतरेगा, जितना इसके पहले कभी भी नहीं उतरा था।

गांव का एक ग्रामीण है, तो गांव का ग्रामीण भावपूर्ण होता है, लेकिन अगर कभी कोई शहर का बुद्धिमान भाव से भर जाए, तो गांव का ग्रामीण उसके भाव का मुकाबला नहीं कर सकता है। क्योंकि जिसने बुद्धि के शिखर को जाना हो और जब उस शिखर से वह भाव की खाई में गिरता है, तो उस खाई की गहराई उतनी ही होती है, जितनी शिखर की ऊंचाई थी। जितनी ऊंचाई से आप गिरते हैं, उतनी ही गहराई में गिरते हैं। अगर आप समतल जमीन पर गिरते हैं, तो आप कहीं गिरते ही नहीं।

तो गांव के ग्रामीण की जो भाव-दशा है, वह बहुत गहरी नहीं हो सकती है। लेकिन शहर के बुद्धिमान की, सुशिक्षित की, सुसंस्कृत की जब भाव-दशा पैदा होती है, तो वह उतनी ही गहरी होती है--उतनी ही विपरीत गहरी होती है--जितने शिखर पर वह खड़ा था।

मनुष्यता बुद्धि के शिखर को छू रही है। और बुद्धि के शिखर को छूने से जो-जो आशाएं हमने बांधी थीं, वे सभी असफल हो गई हैं। जो भी हमने सोचा था, मिलेगा बुद्धि से, वह नहीं मिला। और जो मिला है, वह बहुत कष्टपूर्ण है।

बर्ट्रेंड रसेल जैसे बुद्धिमान आदमी ने कहा है--और इस सदी में जिनकी बुद्धि पर हम भरोसा कर सकें, उन थोड़े से लोगों में एक है रसेल। रसेल ने कहा है कि पहली बार आदिवासियों को एक जंगल में नाचते देखकर मुझे लगा, अगर यह नाच मैं भी नाच सकूं, तो मैं अपनी सारी बुद्धि को दांव पर लगाने को तैयार हूं। अगर यही उन्मुक्त, चांद की रात में यही उन्मुक्त गीत मैं भी गा सकूं, तो महंगा सौदा नहीं है। लेकिन सौदा महंगा भला न हो, करना बहुत कठिन है।

बुद्धि के तनाव को छोड़कर भाव और हृदय की तरफ उतरना जटिल है। लेकिन पश्चिम में, जो निश्चित ही हम से बुद्धि की दौड़ में आगे हैं, बुद्धि की पीड़ा बहुत स्पष्ट हो गई है। हम स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी बना रहे हैं, पश्चिम में उनके उजड़ने का वक्त करीब आ गया है।

आज अगर अमेरिका में विचारशील युवक है, तो वह पूछता है, पढ़कर क्या होगा? अगर मुझे एम.ए. या डाक्टरेट की उपाधि मिल गई, तो क्या होगा? मुझे क्या मिल जाएगा? और पश्चिम के पिताओं के पास, गुरुओं के पास उत्तर नहीं है। क्योंकि बच्चे जब अपने बाप से पूछते हैं कि आप पढ़-लिख गए, आपको जीवन में क्या मिल गया है जिसकी वजह से हम भी इस पढ़ने के चक्र से गुजारे जाएं? आपने क्या पा लिया है?

आज पश्चिम में अगर हिप्पी, और बीटनिक, और युवकों का बड़ा वर्ग विद्रोह कर रहा है शिक्षा से, संस्कृति से, समाज से, तो उसका मौलिक कारण यही है कि बुद्धि ने जो-जो आशाएं दी थीं, वे पूरी नहीं हुईं। और बुद्धि का भ्रम-जाल टूट गया। एक डिसइलूजनमेंट, सब भ्रम टूट गए हैं।

भ्रम टूटते ही तब हैं, जब कोई चीज उपलब्ध होती है; उसके पहले नहीं टूटते। गरीब आदमी को भ्रम बना ही रहता है कि धन से सुख मिलता होगा। धन से सुख नहीं मिलता, इसके लिए धनी होना जरूरी है। इसके पहले यह अनुभव में नहीं आता। आएगा भी कैसे? अनुभव का अर्थ ही यह होता है कि जो हमारे पास है, उसका ही हम अनुभव कर सकते हैं। जो हमारे पास नहीं है, उसकी हम आशाएं और सपने बांध सकते हैं।

जमीन पर पहली दफा इन पांच हजार वर्षों में, बुद्धि ने पूरा शिखर छुआ है। बुद्धि का भ्रम टूट गया है। और इस भ्रम के टूटने के कारण इस क्रांति की संभावना है कि मनुष्य पहली दफा भक्ति की तरफ उतर जाए। निश्चित ही, इस आदमी की भक्ति गहरी होगी।

ऐसा समझें कि एक गरीब आदमी संन्यासी हो जाए, सब छोड़ दे। लेकिन सब था क्या उसके पास छोड़ने को! उसके त्याग की कितनी गहराई होगी? उसके त्याग की उतनी ही गहराई होगी, जितना उसने छोड़ा है। उससे ज्यादा नहीं हो सकती। उसके पास कुछ था ही नहीं। एक सम्राट संन्यासी हो जाए। इस सम्राट के त्याग की गहराई उतनी ही होगी, जितना इसने छोड़ा है।

ध्यान रहे, जब बुद्ध और महावीर सब छोड़कर सड़क पर भिखारी की तरह खड़े हो जाते हैं, तब आप यह मत समझना कि ये वैसे ही भिखारी हैं, जैसे दूसरे भिखारी हैं। इनके भिखारीपन में एक तरह की शान है। और इनके भिखारीपन में एक अमीरी है। और इनके भिखारीपन में छिपा हुआ सम्राट मौजूद है। कोई भिखारी इनका मुकाबला नहीं कर सकता। क्योंकि दूसरा भिखारी फिर भी भिखारी ही है। उसे सम्राट होने का कोई अनुभव नहीं है। इसलिए उसके संन्यास में कोई गहराई नहीं हो सकती।

उसका संन्यास हो सकता है एक सांत्वना हो, अपने को समझाना हो। उसने शायद इसलिए सब छोड़ दिया हो कि पहली तो बात कुछ था भी नहीं, पकड़ने योग्य भी कुछ नहीं था। और फिर दूसरी बात, सोचा हो कि अंगूर खट्टे हैं। जो नहीं मिलता, वह पाने योग्य भी नहीं है। शायद उसने अपने को समझा लिया हो कि मैं त्याग करके परमात्मा को पाने जा रहा हूं। कुछ उसके पास था नहीं। उसके छोड़ने का कोई मूल्य नहीं है।

लेकिन जब कोई बुद्ध या महावीर सब छोड़कर जमीन पर भिखारी की तरह खड़ा हो जाता है, तो इस छोड़ने का राज और है। बुद्ध की शान और है। यह बुद्ध कितना ही बड़ा भिक्षापात्र अपने हाथ में ले लें, इनकी आंखों में सम्राट मौजूद रहेगा। और जब ये बुद्ध एक वृक्ष के नीचे सो जाएंगे--इन्होंने महल जाने हैं और यह भी जान लिया है कि उन महलों में कोई सुख न था--तो इनकी नींद वृक्ष के नीचे और है। और एक भिखारी जब वृक्ष के नीचे सोता है, जिसने महल नहीं जाने हैं, वह भी कहता हो कि महलों में कुछ नहीं है, लेकिन उसकी नींद की गुणवत्ता और होगी। ये दोनों अलग तरह के लोग हैं।

हम जिस अनुभव से गुजर जाते हैं, उसके विपरीत जब हम जाते हैं, तो उसकी गहराई उतनी ही बढ़ जाती है। इसलिए गरीब का जो आनंद है, वह केवल अमीर को मिलता है। गरीब होने का जो मजा है, वह केवल अमीर को मिलता है। और जो अमीर अभी अमीरी से ऊबा नहीं है, उसे जिंदगी के सब से बड़े मजे की अभी कमी है। वह है अमीरी के बाद गरीबी का मजा। और जो आदमी बुद्धि से अभी ऊबा नहीं है, समझ लेना कि अभी बुद्धि के शिखर पर नहीं पहुंचा। जिस दिन शिखर पर पहुंचेगा, उस दिन ऊबकर छोड़ देगा। क्योंकि जो भी आशाएं बंधी थीं, वे इंद्रधनुष साबित होती हैं। दूर से दिखाई पड़ती हैं, पास पहुंचकर खो जाती हैं।

अगर आप अब भी बुद्धि को पकड़े हैं, तो समझना कि काफी बुद्धिमान नहीं हैं। क्योंकि बड़े बुद्धिमान बुद्धि को छोड़ दिए हैं। बड़े धनियों ने धन छोड़ दिया है। बड़े बुद्धिमानों ने बुद्धि छोड़ दी है। जिन्होंने संसार का अनुभव ठीक से लिया है, वे मोक्ष की तरफ चल पड़े हैं।

अगर आप अभी भी संसार में चल रहे हैं, तो समझना कि अभी संसार का अनुभव नहीं मिला। और अगर अभी भी बुद्धि को पकड़े हैं और छोटे-छोटे तर्क लगाते रहते हैं, तो समझना कि अभी बुद्धि के शिखर पर नहीं पहुंचे हैं। अभी आपको आशा है। और अगर अभी भी रुपए इकट्ठे करने में लगे हैं, तो उसका मतलब है कि अभी रुपए से आपकी पहचान नहीं है। अभी आप गरीब हैं; अभी अमीर नहीं हुए हैं। अमीर तो जब भी कोई आदमी

होता है, रुपए को छोड़ देता है। क्योंकि अमीर का भ्रम भंग हो जाता है। और जब तक भ्रम भंग न हो, तब तक समझना कि गरीब है।

गरीब सोच भी नहीं सकता कि अमीरी के बाद आने वाली गरीबी क्या होगी। गरीब तो अमीरी के संबंध में भी जो सोचता है, वह भी गरीब की ही धारणा होती है।

मैंने सुना है, एक भिखमंगा अपनी पत्नी से कह रहा था कि अगर मैं राकफेलर होता, तो राकफेलर से भी ज्यादा धनी होता। उसकी पत्नी ने कहा, हैरानी की बात है! क्या तुम्हारा मतलब है? भिखमंगा कह रहा है कि अगर मैं राकफेलर होता, तो राकफेलर से भी ज्यादा धनी होता। उसकी पत्नी ने कहा, हैरानी है! क्या मतलब है तुम्हारा कि अगर तुम राकफेलर होते, तो राकफेलर से भी ज्यादा धनी होते?

उस भिखमंगे ने कहा कि तू समझी नहीं। राकफेलर अगर मैं होता, तो किनारे-किनारे भीख मांगने का धंधा भी जारी रखता। वह जो अतिरिक्त कमाई होती, वह राकफेलर से ज्यादा होती! साइड बाइ साइड वह मैं अपना धंधा भीख मांगने का भी करता रहता। तो राकफेलर से निश्चित मैं ज्यादा धनी होता, क्योंकि जो मैं भिखमंगेपन से कमाता, वह राकफेलर के पास नहीं है।

अगर भिखमंगा राकफेलर होने का भी सपना देखे, तो भी भिखमंगा ही रहता है। सम्राट अगर भिखारी होने का भी सपना देखे, तो भी सम्राट ही रहता है। अनुभव खोते नहीं। जो भी अनुभव आपको मिल गया है, वह आपके जीवन का अंग हो गया।

तो जब कोई बुद्धि के शिखर पर पहुंच जाता है... । थोड़ा सोचें। अगर कभी आइंस्टीन भक्त हो जाए, तो आपके साधारण भक्त टिकेंगे नहीं। ऐसा हुआ है।

चैतन्य महाप्रभु आइंस्टीन जैसी बुद्धि के आदमी थे। बंगाल में कोई मुकाबला न था उनकी प्रतिभा का। उनके तर्क के सामने कोई टिकता न था। उनसे जूझने की हिम्मत किसी की न थी। उनके शिक्षक भी उनसे भयभीत होते थे। दूर-दूर तक खबर पहुंच गई थी कि उनकी बुद्धि का कोई मुकाबला नहीं है। और फिर जब यह चैतन्य इस बुद्धि को छोड़कर और झांझ-मजीरा लेकर रास्तों पर नाचने लगा, तो फिर चैतन्य महाप्रभु का मुकाबला भी नहीं है--इस नृत्य, और इस गीत, और इस प्रार्थना, और इस भाव, और इस भक्ति का।

न होने का कारण है। नाचे बहुत लोग हैं। गीत बहुत लोगों ने गाए हैं। प्रार्थना बहुत लोगों ने की है। भाव बहुत लोगों ने किया है, लेकिन चैतन्य की सीमा को छूना मुश्किल है। क्योंकि चैतन्य का एक और अनुभव भी है, वे बुद्धि के आखिरी शिखर से उतरकर लौटे हैं। उन्होंने ऊंचाइयां देखी हैं। उनकी नीचाइयों में भी ऊंचाइयां छिपी रहेंगी।

तो इस युग के लिए, यह ध्यान में रख लेना जरूरी है कि यह युग एक शिखर अनुभव के करीब पहुंच रहा है, जहां बुद्धि व्यर्थ हो जाएगी। और जब बुद्धि व्यर्थ होती है, तो जीवन के लिए एक ही आयाम खुला रह जाता है, वह है भाव का, वह है हृदय का, वह है प्रेम का, वह है भक्ति का।

आदमी अब पुराने अर्थों में भावपूर्ण नहीं हो सकता। अब तो नए अर्थों में भावपूर्ण होगा। पुराना आदमी सरलता से भावपूर्ण था। उसकी भावना में सरलता थी, गहराई नहीं थी। नया आदमी जब भावपूर्ण होता है, आज का आदमी जब भावपूर्ण होता है, तो उसके भाव में सरलता नहीं होती, गहराई होती है। और गहराई बड़ी कीमत की चीज है।

इसे हम ऐसा समझें, एक छोटा बच्चा है। छोटा बच्चा सरल होता है, लेकिन गहरा नहीं होता। गहरा हो नहीं सकता। क्योंकि गहराई तो आती है अनुभव से। गहराई तो आती है हजार दरवाजों पर भटकने से। गहराई

तो आती है हजारों भूल करने से। गहराई तो आती है प्रौढ़ता से, अनुभव से। सार जब बच जाता है सब अनुभव का, तो गहराई आती है।

एक बूढ़ा आदमी सरल नहीं हो सकता, लेकिन गहरा हो सकता है। एक बच्चा गहरा नहीं हो सकता, सरल हो सकता है। और जब कोई बूढ़ा आदमी अपनी गहराई के साथ सरल हो जाता है, तो संत का जन्म होता है।

इसलिए जीसस ने कहा है कि वे लोग मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे, जो बच्चों की भांति भोले हैं।

लेकिन ध्यान रहे, जीसस ने यह नहीं कहा है कि बच्चे मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। बच्चे नहीं; जो बच्चों की भांति भोले हैं। इसका मतलब साफ है कि पहली तो बात बच्चे नहीं हैं। तभी तो कहा कि बच्चों की भांति। बच्चे नहीं हैं; जो बूढ़े हैं सब अर्थों में, लेकिन फिर भी बच्चों की भांति भोले हैं, वे ही स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।

एक बच्चा सरल है, अज्ञानी है। अभी उसकी जिंदगी में जटिलता नहीं है, लेकिन जटिलता आएगी। अभी जटिलता आने का वक्त करीब आ रहा है। जल्दी ही वह भटकेगा, उलझेगा, वासना से भरेगा। जमानेभर की आकांक्षाएं उसे घेर लेंगी। उसकी सरलता के नीचे ज्वालामुखी छिपा है।

गांव का आदमी सरल दिखाई पड़ता है। वह भी बच्चे की तरह सरल है। उसके भीतर वह सारा ज्वालामुखी छिपा है, जो शहर के आदमी में प्रकट हो गया है। उसे शहर ले आओ, वह शहर के आदमी जैसा ही जटिल हो जाएगा। और यह भी हो सकता है, ज्यादा जटिल हो जाए। जब गांव के लोग चालाक होते हैं, तो शहर के लोगों से ज्यादा चालाक हो जाते हैं। क्योंकि उनकी जमीन बहुत दिन से बिना उपयोग की पड़ी है। उसमें चालाकी के बीज पड़ जाते हैं, तो जो फसल आती है, वह आप में नहीं आ सकती। आपकी जमीन काफी फसल ला चुकी है चालाकी की।

गांव का आदमी चालाक हो जाए, तो बहुत चालाक हो जाता है। गांव का आदमी सरल है, लेकिन उसकी सरलता की कोई कीमत नहीं है। उसकी सरलता बच्चे की सरलता है। उसके भीतर ज्वालामुखी छिपा है। वह कभी भी भ्रष्ट होगा। शायद उसे भ्रष्ट होना ही पड़ेगा। क्योंकि इस जगत में भ्रष्ट हुए बिना कोई अनुभव नहीं है। उसे इस जगत से गुजरना ही पड़ेगा। और अगर इस जगत से गुजरकर यह जगत उसे व्यर्थ हो जाए और वह वापस गांव लौट जाए, और वापस लौट जाए उसी ग्राम्य-सरलता में, तो उसकी जो गहराई होगी, वह संत की गहराई है।

विपरीत का अनुभव उपयोगी है। बच्चे को जवान होना जरूरी है। जवान का अर्थ है, वासना। सभी बच्चे जवान हो जाते हैं, लेकिन सभी जवान बूढ़े नहीं हो पाते हैं! शरीर बूढ़ा हो जाता है, चित्त बूढ़ा नहीं हो पाता। और जिसका चित्त बूढ़ा होता है, वह संत हो गया। चित्त के बूढ़े होने का अर्थ यह है कि जवानी में जो तूफान उठे थे, वे समझ लिए और पाया कि व्यर्थ हैं।

बूढ़े भी कहते हैं कि सब बेकार है। कहते हैं; ऐसा उन्होंने पाया नहीं है। अगर कोई चमत्कारी उनसे कहे कि हम तुम्हें फिर जवान बनाए देते हैं, तो वे अभी तैयार हो जाएंगे। खो गया है, हाथ से ताकत खो गई है, वासना नहीं खो गई है। मरते दम तक वासना पीछा करती है।

सब बच्चे जवान हो जाते हैं, लेकिन सभी जवान बूढ़े नहीं हो पाते हैं। बूढ़े तो बहुत थोड़े से लोग होते हैं। बूढ़े का मतलब है, जिनके लिए जवानी अनुभव से व्यर्थ हो गई। और जो बूढ़े होकर फिर वापस उस सरलता को पहुंच गए, जिस सरलता को लेकर पैदा हुए थे। लेकिन इस सरलता में एक गुणात्मक, क्वालिटेटिव फर्क है। इस

सरलता के नीचे जो तूफान छिपा था, ज्वालामुखी, वह नहीं है। इस सरलता को भ्रष्ट नहीं किया जा सकता। यह सरलता बोधपूर्वक है।

बच्चे की सरलता भ्रष्ट की जा सकती है। भ्रष्ट होगी ही; होनी चाहिए। नहीं तो उसके जीवन में गहराई नहीं आएगी। उसे भ्रष्ट भी होना पड़ेगा और उसे भ्रष्टता के ऊपर भी उठना पड़ेगा। जीवन एक शिक्षण है। उसमें भूल करके हम सीखते हैं।

बुद्धि की भूल हमने कर ली है इस युग में। अब अगर हम सीख जाएं, तो हम हृदय की तरफ वापस लौट सकते हैं।

पृथ्वी पर भक्ति के एक बड़े युग के आने की संभावना है। उलटा लगेगा, क्योंकि हमें तो लग रहा है कि सब नष्ट हुआ जा रहा है। लेकिन तूफान के बाद ही शांति आती है। और यह जो नष्ट होना दिखाई पड़ रहा है, यह तूफान का आखिरी चरण है। और इसके पीछे एक गहन सरलता उत्पन्न हो सकती है।

मगर आप, सारी दुनिया कब सरल होगी, इसकी प्रतीक्षा में मत रहें। आप होना चाहें, तो आज ही हो सकते हैं। और सारी दुनिया होगी या नहीं होगी, यह प्रयोजन भी नहीं है। दुनिया हो भी जाएगी और आप नहीं हुए, तो उसका कोई अर्थ नहीं है। आप हो सकते हैं अभी। लेकिन शायद आप भी अभी बुद्धि से ऊबे नहीं हैं। अभी शायद आपको भी यह साफ नहीं हुआ है कि बुद्धि का जाल कुछ अर्थ नहीं रखता है।

आदमी की बुद्धि कितनी छोटी है! इस छोटी-सी बुद्धि से हम क्या हल कर रहे हैं? इस जीवन की विराट पहेली को! कितने दर्शन हैं, कितने शास्त्र हैं, कुछ भी हल नहीं हुआ। बुद्धि अब तक एक नतीजे पर नहीं पहुंची है। अभी तक जीवन की पहेली पहेली की पहेली बनी हुई है। अभी तक कोई जवाब नहीं है।

हजारों साल की निरंतर हजारों मस्तिष्कों की मेहनत के बाद भी, जीवन क्या है, इसका कोई उत्तर नहीं है। मनुष्य इतने दिन से कोशिश करके भी बुद्धि से कुछ पा नहीं सका है। जीवन के सभी प्रश्न अभी भी प्रश्न हैं। कुछ हल नहीं हुआ।

धर्म या भक्ति केवल इसी बात की पहचान है कि बुद्धि से एक भी उत्तर मिल नहीं सका। शायद बुद्धि से उत्तर मिल ही नहीं सकता। हम गलत दिशा से खोज रहे हैं। लेकिन यह स्मरण आ जाए, यह ख्याल में आ जाए, तो आप दूसरी दिशा में खोज शुरू कर दें।

आपके पास बुद्धि है। अच्छा है होना; क्योंकि अगर बुद्धि न हो, तो यह भी समझ में आना मुश्किल है कि बुद्धि से कुछ मिल नहीं सकता। इतना उसका उपयोग है।

बायजीद ने कहा है कि शास्त्रों को पढ़कर एक ही बात समझ में आई कि शास्त्रों से सत्य नहीं मिलेगा। लेकिन काफी बड़ी बात समझ में आई।

झेन फकीर रिंझाई ने कहा है कि सोच-सोचकर इतना ही पाया कि सोचना फिजूल है। लेकिन बहुत पाया। इतना भी मिल जाए बुद्धि से, तो बुद्धि का बड़ा दान है। लेकिन इसके लिए भी साहसपूर्वक बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए।

हम तो बुद्धि का प्रयोग भी नहीं करते हैं। इसलिए हम बुद्धिमान बने रहते हैं। अगर हम बुद्धि का प्रयोग कर लें, तो आज नहीं कल हम उस जगह पहुंच जाएंगे, जहां खाई आ जाती है और रास्ता समाप्त हो जाता है। वहां से लौटना शुरू हो जाता है।

सभी बुद्धिमान बुद्धि के विपरीत हो गए हैं। चाहे बुद्ध हों, और चाहे जीसस, चाहे कृष्ण, सभी बुद्धिमानों ने एक बात एक स्वर से कही है कि बुद्धि से जीवन का रहस्य हल नहीं होगा। जीवन का रहस्य हृदय से हल होगा।

हां, बुद्धि से संसार की उलझनें हल हो सकती हैं। क्योंकि संसार की सब उलझनें मृत हैं। गणित का कोई सवाल हो, बुद्धि हल कर देगी। और ध्यान रखना, गणित का सवाल हृदय से हल करने की कोशिश भी मत करना। उससे कोई संबंध नहीं है। विज्ञान की कोई उलझन हो, बुद्धि हल कर देगी। टेक्नालाजी का कोई सवाल हो, बुद्धि हल कर देगी। जो भी मृत है, पदार्थ है, उसकी उलझन बुद्धि हल कर देती है। बुद्धि का उपयोग यही है।

लेकिन जहां भी जीवित है, और जहां भी जीवन की धारा है, और जहां अमृत का प्रश्न है, वहीं बुद्धि थक जाती है और व्यर्थ हो जाती है।

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़े सूफी फकीर हसन के पास एक युवक आया। वह बहुत कुशल तार्किक था, पंडित था, शास्त्रों का ज्ञाता था। जल्दी ही उसकी खबर पहुंच गई और हसन के शिष्यों में वह सब से ज्यादा प्रसिद्ध हो गया। दूर-दूर से लोग उससे पूछने आने लगे। यहां तक हालत आ गई कि लोग हसन की भी कम फिक्र करते और उसके शिष्य की ज्यादा फिक्र करते। क्योंकि हसन तो अक्सर चुप रहता। और उसका शिष्य बड़ा कुशल था सवालों को सुलझाने में।

एक दिन एक आदमी ने हसन से आकर कहा, इतना अदभुत शिष्य है तुम्हारा! इतना वह जानता है कि हमने तो दूसरा ऐसा कोई आदमी नहीं देखा। धन्यभागी हो तुम ऐसे शिष्य को पाकर। हसन ने कहा कि मैं उसके लिए रोता हूं, क्योंकि वह केवल जानता है। और जानने में इतना समय लगा रहा है कि भावना कब कर पाएगा? भाव कब कर पाएगा? जानने में ही जिंदगी उसकी खोई जा रही है, तो भाव कब करेगा? मैं उसके लिए रोता हूं। उसको अवसर भी नहीं है, समय भी नहीं है। वह बुद्धि से ही लगा हुआ है।

बुद्धि से सब कुछ मिल जाए, जीवन का स्रोत नहीं मिलता। वह वहां नहीं है। बुद्धि एक यूटिलिटी है; एक उपयोगिता है; एक यंत्र है, जिसकी जरूरत है। लेकिन वह आप नहीं हैं। जैसे हाथ है, ऐसे बुद्धि एक आपका यंत्र है। उसका उपयोग करें, लेकिन उसके साथ एक मत हो जाएं। उसका उपयोग करें और एक तरफ रख दें। लेकिन हम उससे एक हो गए हैं।

आप चलते हैं, तो पैर का उपयोग कर लेते हैं। फिर बैठते हैं, तब आप पैर नहीं चलाते रहते हैं। अगर चलाएं, तो लोग पागल समझेंगे। पैर चलने के लिए है, बैठकर चलाने के लिए नहीं है। बुद्धि, जब पदार्थ के जगत में कोई उलझन हो, उसे सुलझाने के लिए है। लेकिन आप बैठे हैं, तो भी बुद्धि चल रही है। नहीं है कोई सवाल, तो भी बुद्धि चल रही है!

आज एक मित्र मेरे पास आए थे। वे कह रहे थे, कोई तकलीफ नहीं है, कोई अड़चन नहीं है, सब सुविधा है, लेकिन बस सिर चलता रहता है।

कोई तकलीफ नहीं है; कोई उलझन नहीं है; कोई समस्या नहीं है; फिर सिर क्यों चलता रहता है? उसका अर्थ हुआ कि बुद्धि के साथ आप एक हो गए हैं। अपने को अलग नहीं कर पा रहे हैं।

जो आदमी बुद्धि से अपने को अलग कर लेगा, वही भाव में प्रवेश कर पाता है। और बुद्धि ने अब इतनी पीड़ा दे दी है कि हम अपने को अलग कर पाएंगे; करना पड़ेगा। बुद्धि ने इतना दंश दे दिया है, बुद्धि के कांटे इतने चुभ गए हैं छाती पर कि अब ज्यादा दिन बुद्धि के साथ नहीं चला जा सकता है। इसलिए मैं कहता हूं कि इस बुद्धि के युग में भी श्रद्धा की बड़ी क्रांति की संभावना है।

एक मित्र ने पूछा है कि पाप और पुण्य का भेद क्या है? और जब तक मन पाप से भरा है, तब तक श्रद्धा, भक्ति, भाव कैसे होगा? प्रार्थना कैसे होगी, जब तक मन पाप से भरा है? तो पहले मन पुण्य से भरे, फिर प्रार्थना होगी!

ठीक लगता है। समझ में आता है। फिर भी ठीक नहीं है। और नासमझी से भरी हुई बात है।

ठीक लगता है कि जब तक मन पाप से भरा है, तो प्रार्थना कैसे होगी! यह तो ऐसे ही हुआ कि कोई चिकित्सक कहे कि जब तक तुम बीमार हो, जब तक मैं औषधि कैसे दूंगा! पहले तुम ठीक हो जाओ, स्वस्थ हो जाओ, फिर औषधि ले लेना। लेकिन जब ठीक हो जाओ, तो औषधि की जरूरत क्या होगी?

अगर पाप छोड़ने पर प्रार्थना करने का आपने तय किया है, तो आपको कभी प्रार्थना करने का मौका नहीं आएगा। जब तक पाप है, आप प्रार्थना न करोगे। और जब पाप ही न रह जाएगा, तो प्रार्थना किसलिए करोगे? फिर प्रार्थना का अर्थ क्या है?

प्रार्थना औषधि है। इसलिए पापी रहकर ही प्रार्थना करनी पड़ेगी।

और दूसरी बात कि पाप हट कैसे जाएगा? बिना प्रार्थना के हट न पाएगा। और बिना प्रार्थना के जो पाप को हटाते हैं, उनका पुण्य उनके अहंकार का आभूषण बन जाता है। और अहंकार से बड़ा पाप नहीं है।

प्रार्थनापूर्वक जो पाप से मुक्त होता है, वही मुक्त होता है। बिना प्रार्थना के पाप से मुक्त होने की बहुत लोग कोशिश करते हैं। कि प्रार्थना की क्या जरूरत? हम अपने को खुद ही पवित्र कर लेंगे। किसी परमात्मा के सहारे की कोई जरूरत नहीं है। हम खुद ही अपने को ठीक कर लेंगे। चोरी है, तो चोरी छोड़ देंगे। बेईमानी है, तो बेईमानी छोड़ देंगे; ईमानदार हो जाएंगे।

लेकिन ध्यान रहे, कभी-कभी पापी भी परमात्मा को पहुंच जाते हैं, इस तरह के पुण्यात्मा कभी नहीं पहुंच पाते। क्योंकि जो कहता है कि मैं बेईमानी छोड़ दूंगा, वह बेईमानी छोड़ भी सकता है, लेकिन उसकी ईमानदारी के भीतर भी जो अहंकार होगा, वही उसका पाप हो जाएगा।

विनम्रता, ऐसी विनम्रता जो पुण्य का भी गर्व नहीं करती, प्रार्थना के बिना नहीं आएगी।

और फिर आप अगर सच में ही इतने अलग होते जगत से, तो आप खुद ही अपना रूपांतरण कर लेते। आप इस जगत के एक हिस्से हैं। यह पूरा जगत आपसे जुड़ा है। यहां जो भी हो रहा है, उसमें आप सम्मिलित हैं। आप अलग-थलग नहीं हैं कि आप अपने को पुण्यात्मा कर लेंगे। इस समग्र अस्तित्व का सहारा मांगना पड़ेगा।

आदमी बहुत कमजोर भी है, असहाय भी है। वह जो भी करता है, वह सब असफल हो जाता है। अपने को अलग मानकर आदमी जो भी करता है, वह सब टूट जाता है। जब तक इस पूरे के साथ अपने को एक मानकर आदमी चलना शुरू नहीं करता, तब तक जीवन में कोई महत घटना नहीं घटती।

प्रार्थना का इतना ही अर्थ है। प्रार्थना का अर्थ है कि मैं अकेला नहीं हूं। प्रार्थना का अर्थ है कि अकेला होकर मैं बिल्कुल असहाय हूं। प्रार्थना का अर्थ है कि इस पूरे अस्तित्व का सहारा न मिले, तो मुझ से कुछ भी न हो सकेगा। प्रार्थना इस हेल्पलेसनेस, इस असहाय अवस्था का बोध है। और प्रार्थना पुकार है अस्तित्व के प्रति कि तेरा सहारा चाहिए, तेरा हाथ चाहिए, तेरे बिना इस रास्ते पर चलना मुश्किल है।

तो प्रार्थनापूर्ण व्यक्ति में जब पुण्य आता है, तो वह पुण्य का भी धन्यवाद परमात्मा को देता है, अपने को नहीं। प्रार्थनाहीन व्यक्ति अगर पुण्य भी कर ले, तो अपनी ही पीठ ठोकने की कोशिश करता है; वह भी पाप हो

जाता है। इसलिए कई बार तो ऐसा होता है कि निरहंकारी पापी भी परमात्मा के पास जल्दी पहुंच जाता है बजाय अहंकारी पुण्यात्मा के।

सुना है मैंने कि एक साधु, एक फकीर मरा। उसने जीवन में कोई पाप नहीं किया था। इंच-इंच सम्हालकर चला था। जरा-सी भी भूल-चूक न हुई थी। वह बिल्कुल निश्चिंत था कि स्वर्ग के द्वार पर परमात्मा मेरा स्वागत करने को तैयार होगा। निश्चिंतता स्वाभाविक थी। फिर जिंदगीभर कष्ट झेला था उसने। और पुरस्कार की मांग थी। स्वभावतः अकड़ भी थी। जब वह स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंचा, तो सिर झुकाकर प्रवेश करने का मन न था। बैंड-बाजे से स्वागत होगा, यही कहीं गहरे में धारणा थी।

लेकिन दरवाजे पर जो दूत मिला, दरवाजा तो बंद था और उस दूत ने कहा कि तुम एक अजीब आदमी हो। तुम पहले ही आदमी हो जो बिना पाप किए यहां आ गए हो। अब हम बड़ी मुश्किल में हैं। क्योंकि यहां के जो नियम हैं, उनमें तुम कहीं भी नहीं बैठते। किताब में लिखा है--स्वर्ग के दरवाजे के नियम की किताब में--कि जो पाप किया हो बहुत, उसे नरक भेज दो; जो पाप कर के प्रायश्चित्त किया हो, उसे स्वर्ग भेज दो। तुमने पाप ही नहीं किया। तुम्हें नरक भेजें, तो मुश्किल है। क्योंकि जिसने पाप नहीं किया, उसे नरक कैसे भेजें! और तुमने पाप किया ही नहीं, इसलिए प्रायश्चित्त का कोई सवाल ही नहीं है। तुम्हें स्वर्ग कैसे भेजें! दरवाजे बंद हैं दोनों--स्वर्ग का भी, नरक का भी। और तुम्हारे साथ हम क्या करें, लीगल झंझट खड़ी हो गई है।

तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, तुम जमीन पर लौट जाओ; बारह घंटे का हम तुम्हें वक्त देते हैं; हमें झंझट में मत डालो। सदा का चला हुआ नियम है, उसको तोड़ो मत। बारह घंटे के लिए लौट जाओ, और छोटा-मोटा सही, एक पाप करके आ जाओ। फिर प्रायश्चित्त कर लेना। स्वर्ग का दरवाजा तुम्हारा स्वागत कर रहा है। फिर तुम इतने अकड़े हुए हो कि नरक जाने योग्य हो, लेकिन पाप तुमने किया नहीं! और स्वर्ग में तो वही प्रवेश करता है, जो विनम्र है, और विनम्र तुम जरा भी नहीं हो। एक छोटा पाप कर आओ। थोड़ी विनम्रता भी आ जाएगी। थोड़ा झुकना भी सीख जाओगे। और तुमने एक भी पाप नहीं किया, तो तुमने मनुष्य जीवन व्यर्थ गंवा दिया।

वह फकीर बहुत घबड़ाया। उसने कहा, क्या कहते हैं! मनुष्य जीवन व्यर्थ गंवा दिया? तो उस देवदूत ने कहा कि थोड़ा-सा पाप कर ले तो मनुष्य विनम्र होता है, झुकता है, अस्मिता टूटती है। और थोड़ा-सा पाप मानवीय है, ह्यूमन है। तुम इनह्यूमन मालूम होते हो, बिल्कुल अमानवीय मालूम पड़ते हो। तुम लौट जाओ।

फकीर लौटा। रात उसे देवदूत जमीन पर छोड़ गए। बड़ी मुश्किल खड़ी हुई। उसने कभी कोई पाप न किया था। बारह घंटे का कुल समय था। सूझ में ही न आता था उसको कि कौन-सा पाप करूं! फिर यह भी था कि छोटा ही हो, ज्यादा न हो जाए। और अनुभव न होने से पाप का, बड़ी अड़चन थी। बहुत सोचा-विचारा, कुछ सोच-समझ में नहीं आया कि क्या करूं। फिर भी सोचा कि गांव की तरफ चलूं।

जैसे ही गांव में प्रवेश करता था, एक बिल्कुल काली-कलूटी बदशक्ल स्त्री ने इशारा किया झोपड़े के पास। घबड़ाया। स्त्रियों से सदा दूर रहा था। पर सोचा कि यही पाप सही। कोई तो पाप करना ही है। और फिर स्त्री इतनी बदशक्ल है कि पाप भी छोटा ही होगा। चला गया। स्त्री तो बड़ी आनंदित हुई।

रात उस स्त्री के पास रहा, उसे प्रेम किया। और सुबह भगवान को धन्यवाद देता हुआ कि चलो, एक पाप हो गया, अब प्रायश्चित्त कर लूंगा और स्वर्ग में प्रवेश हो जाएगा। जैसे ही झोपड़े से विदा होने लगा, वह स्त्री उसके पैरों पर गिर पड़ी और उसने कहा कि फकीर, मुझे कभी किसी ने चाहा नहीं, किसी ने कभी प्रेम नहीं

किया। तुम पहले आदमी हो जिसने मुझे इतने प्रेम और इतनी चाहत से देखा। इतने प्रेम से मुझे स्पर्श किया और अपने पास लिया। एक ही प्रार्थना है कि इस पुण्य का भगवान तुम्हें खूब पुरस्कार दे।

फकीर की छाती बैठ गई। इस पुण्य का भगवान तुम्हें पुरस्कार दे! फकीर ने घड़ी देखी कि मुसीबत हो गई, घंटाभर ही बचा है! ये ग्यारह घंटे खराब हो गए!

आगे का मुझे पता नहीं है कि उसने घंटेभर में क्या किया। स्वर्ग वह पहुंच पाया कि नहीं पहुंच पाया! लेकिन मुश्किल है कि वह कोई पाप कर पाया हो। उसका कारण है। इस कहानी से कई बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।

पहली बात तो, इतना आसान नहीं है तय करना कि क्या पाप है और क्या पुण्य है, जितना आसान हम सोचते हैं। हम तो कृत्यों पर लेबल लगा देते हैं कि यह पाप है और यह पुण्य है। कोई कृत्य न पाप है, न पुण्य है। बहुत कुछ करने वाले पर और करने की स्थिति पर निर्भर करता है।

निश्चित ही फिर से सोचिए, हंसिए मत इस कहानी में। जिस स्त्री को कभी किसी ने प्रेम न किया हो, उसको किसी का प्रेम करना अगर पुण्य जैसा मालूम पड़ा हो, तो कुछ भूल है? और अगर परमात्मा भी इसको पुण्य माने, तो क्या आप कहेंगे कि गलती हुई? वह फकीर भी बाद में चिंता में पड़ गया कि पुण्य क्या है? पाप क्या है? अगर दूसरे को इतना सुख मिला हो, तो पाप कहां है? अगर दूसरा इतना आनंदित हुआ हो कि उसके जीवन का फूल पहली दफा खिला हो, तो पाप कहां है?

पाप कृत्य में नहीं है। कृत्य का क्या परिणाम होता है! उसमें भी परिणामों का कोई अंत नहीं है। आपने कृत्य आज किया है, परिणाम हजारों साल तक होते रहेंगे उस कृत्य के। क्योंकि परिणामों कीशृंखला है।

अगर सारे परिणाम कृत्य में समाविष्ट किए जाएं, तो तय करना बहुत मुश्किल है कि क्या है पाप, क्या है पुण्य। कई बार आप पुण्य करते हैं और पाप हो जाता है। आप पुण्य ही करना चाहते थे और पाप हो जाता है। किस कृत्य को क्या नाम दें! कृत्य सवाल नहीं है।

दूसरी बात इस कहानी से ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि वह फकीर तो पाप करना चाहता था जान-बूझकर, फिर भी पाप नहीं हो पाया। यह बहुत गहन है।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक था पीड़ी.आस्पेंस्की। उसके शिष्य बेनेट ने लिखा है कि जब पहली दफा उसने हमें शिक्षा देनी शुरू की, तो उसकी शिक्षाओं में एक खास बात थी, जान-बूझकर पाप करना। और हम सब लोग बैठे थे और उसने कहा कि घंटेभर का समय देता हूं, तुम जान-बूझकर कोई ऐसा काम करो, जिसको तुम समझते हो कि वह एकदम बुरा है और करने योग्य नहीं है।

बेनेट ने लिखा है कि घंटेभर हम बैठकर सोचते रहे। बहुत उपाय किया कि किसी को गाली दे दें, धक्का मार दें, चांटा लगा दें। लेकिन कुछ भी न हुआ। और घंटा खाली निकल गया और आस्पेंस्की हंसने लगा और उसने कहा कि तुम्हें पता होना चाहिए, पाप को जान-बूझकर किया ही नहीं जा सकता। यू कैन नाट डू ईविल कांशसली। वह जो बुराई है, उसको सचेतन रूप से करने का उपाय ही नहीं है। बुराई का गुण ही है अचेतन होना।

इसलिए फकीर मुश्किल में पड़ गया। वह कोशिश करके पाप करने निकला था।

आप कोशिश करके पाप करने नहीं निकलते हैं; पाप हो जाता है। आपको कोशिश नहीं करनी पड़ती। कोशिश तो आप करते हैं कि न करूं, फिर भी हो जाता है। पाप होता है--कोशिश से नहीं, होशपूर्वक नहीं--पाप होता है बेहोशी में, मूर्च्छा में।

इसलिए पाप का एक मौलिक लक्षण है, मूर्च्छित कृत्य। जो कृत्य मूर्च्छा में होता है, वह पाप है। और जो कृत्य होशपूर्वक हो सकता है, वही पुण्य है। इसको हम ऐसा भी समझ सकते हैं कि जिस काम को करने के लिए मूर्च्छा अनिवार्य हो, उसको आप समझना कि पाप है। और जिस काम को करने के लिए होश अनिवार्य हो, जो होश के बिना हो ही न सके, होश में ही हो सके, समझना कि पुण्य है।

बुद्ध का शिष्य आनंद, कुछ साधु यात्रा पर जा रहे हैं, तो उनकी तरफ से बुद्ध से पूछने खड़ा हुआ कि ये साधु यात्रा पर जाते हैं उपदेश करने। इनकी कुछ उलझनें हैं। एक उलझन का आप जवाब दे दें; बाकी तो मैंने इन्हें समझा दिया है।

तो बुद्ध ने पूछा, क्या उलझन है? तो आनंद ने कहा कि ये फकीर पूछते हैं--ये सब भिक्षु पूछते हैं--कि अगर स्त्री के पास रहने का कोई अवसर आ जाए, तो रुकना कि नहीं रुकना? तो बुद्ध ने कहा, मत रुकना। स्त्री से दूर रहना। तो आनंद ने पूछा, और कहीं ऐसी मजबूरी ही हो जाए कि रुकना ही पड़े, तो क्या करना? तो बुद्ध ने कहा, स्त्री की तरफ देखना मत। आंख नीची रखना।

यही बात पुरुष के लिए लागू हो जाएगी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। स्त्री की तरफ देखना ही मत; आंख नीची रखना।

पर आनंद ने कहा कि ऐसा कोई अवसर आ जाए कि आंख उठानी ही पड़े और स्त्री को देखना ही पड़े? तो बुद्ध ने कहा, स्पर्श मत करना।

पर आनंद भी जिद्दी था और इसलिए बुद्ध से बहुत-सी बातें निकलवा पाया। उसने कहा, यह भी मान लिया। पर कभी ऐसा अवसर आ जाए--बीमारी, कोई दुर्घटना--कि स्त्री को छूना ही पड़े, तो उस हालत में क्या करना? तो बुद्ध ने कहा, अब आखिरी बात कहे देता हूं, होश रखना छूते वक्त। और बाकी सब बातें फिजूल हैं। अगर होश रखा जा सके, तो बाकी सब बातें फिजूल हैं। बाकी उनके लिए हैं, जो होश न रख सकते हों।

जिस कृत्य को भी होशपूर्वक किया जा सके, वह पाप नहीं रह जाता। और अगर पाप होगा, तो किया ही न जा सकेगा। मूर्च्छा जरूरी है। इसलिए मैं पाप की व्याख्या करता हूं, मूर्च्छित कृत्य। पुण्य की व्याख्या करता हूं, होशपूर्ण कृत्य।

लेकिन आप पुण्य भी करते हैं, तो मूर्च्छा में करते हैं। फिर समझ लेना कि वह पुण्य नहीं है। चार लोग आ जाते हैं और आपको काफी फुसलाते हैं, फुलाते हैं, कि आप जैसा दानी कोई भी नहीं है जगत में; एक मंदिर बनवा दें। नाम रह जाएगा। वे आपकी मूर्च्छा को उकसा रहे हैं। वे आपके अहंकार को तेल दे रहे हैं। वे आपके अहंकार पर मक्खन लगा रहे हैं। आप फूले जा रहे हैं भीतर कि मेरे जैसा कोई पुण्यात्मा नहीं है जगत में! मूर्च्छा पकड़ रही है। इस मूर्च्छा में आप चेक वगैरह मत दे देना। वह पाप होगा। भला उससे मंदिर बने, लेकिन वह पाप होगा। क्योंकि मूर्च्छा में कोई पुण्य नहीं हो सकता।

और मैं आपसे कहता हूं कि अगर आप चोरी भी करने जाएं, तो होशपूर्वक करने जाना। तो पहली तो बात यह कि आप चोरी नहीं कर पाएंगे। जैसे ही होश से भरेंगे, हाथ वापस खिंच आएगा। किसी की हत्या भी करने जाएं, तो मैं नहीं कहता कि हत्या मत करना। मैं इतना ही कहता हूं कि होशपूर्वक करना। होश होगा, हत्या नहीं हो सकेगी। हत्या हो जाए, तो समझ लेना कि आप बेहोश हो गए थे। और आप बेहोश हो जाएंगे, तो ही हो सकती है।

इस जगत में कुछ भी बुरा करना हो, तो बेहोशी चाहिए, नींद चाहिए। जैसे आप नहीं कर रहे हैं, कोई शराब के नशे में आपसे करवाए ले रहा है।

ऐसा हुआ कि अकबर निकलता था एक रास्ते से और एक नंगा फकीर सड़क के किनारे खड़ा होकर अकबर को गालियां देने लगा। अकबर ने बहुत संतुलन रखा। बहुत बुद्धिमान आदमी था। लेकिन अपने सिपाहियों को कहा कि इसको पकड़कर कल सुबह मेरे सामने हाजिर करो।

दूसरे दिन सुबह उस फकीर को हाजिर किया गया। वह आकर अकबर के चरणों में सिर झुकाकर खड़ा हो गया। अकबर ने कहा कि कल तुमने गालियां दीं, उसका तुम्हें उत्तर देना पड़ेगा। क्या प्रयोजन था? उस फकीर ने कहा कि आप जिससे उत्तर मांग रहे हैं, उसने गालियां नहीं दीं। जिसने दीं, वह शराब पीए हुए था। रातभर में मेरा नशा उतर गया। इसलिए आप मुझसे जवाब मांगकर अन्याय कर रहे हैं। जिसने गालियां दी थीं, वह अब मौजूद नहीं है। और मैं जो मौजूद हूं, उस वक्त मौजूद नहीं था।

अकबर ने अपने आत्म-संस्मरणों में यह घटना लिखवाई है। और उसने कहा है कि मुझे उस दिन ख्याल आया कि निश्चित ही, जो मूर्च्छा में किया गया हो, उसके लिए व्यक्ति को जिम्मेवार क्या ठहराना!

आप जो भी कर रहे हैं... । इसलिए आपको भी लगता है, कभी क्रोध में आप गाली दे देते हैं, किसी को मार देते हैं, बाद में आपको लगता है कि मैं तो नहीं करना चाहता था! सोचा भी नहीं था कि करूं, अब पछताता भी हूं, और ख्याल आता है कि कैसे हो गया!

आप होश में नहीं थे। निश्चित ही, आपने कोई शराब बाहर से नहीं पी थी। लेकिन भीतर भी शराब के झरने हैं। और बाहर से ही शराब पीना जरूरी नहीं है।

अगर आप शरीर-शास्त्री से पूछें, तो वह बता देगा कि आपके शरीर में ग्रंथियां हैं, जहां से नशा, मादक द्रव्य छूटते हैं। जब आप क्रोध में होते हैं, तो आपका खून तेज चलता है और खून में जहर छूट जाते हैं। उन जहर की वजह से आप मूर्च्छित हो जाते हैं। उस मूर्च्छा में आप कुछ कर बैठते हैं, वह आपका किया हुआ कृत्य नहीं है। वह मूर्च्छा है, बेहोशी है।

इस जगत में कोई भी बुराई बिना बेहोशी के नहीं होती। और इस जगत में कोई भी भलाई बिना होश के नहीं होती। इसलिए एक ही भलाई है, होश से भरे हुए जीना; और एक ही बुराई है, बेहोशी में होना।

और इस बात की प्रतीक्षा मत करें कि जब पुण्य से भर जाएंगे पूरे, तब प्रार्थना करेंगे। जैसे हैं, जहां हैं, वहीं प्रार्थना शुरू कर दें। आपकी प्रार्थना भी आपका होश बनेगी। आपकी प्रार्थना भी आपको जगाएगी। आपकी प्रार्थना भी आपकी बेहोशी और मूर्च्छा को तोड़ेगी। और आपकी प्रार्थना का अंतिम परिणाम होगा कि आप एक सचेतन व्यक्ति हो जाएंगे। यह जो सचेतन, जागा हुआ बोध मनुष्य के भीतर है, वही उसे पाप से छुटाता है।

पापों को काटने के लिए पुण्यों की जरूरत नहीं है। पापों को काटने के लिए होश की जरूरत है। और जहां होश है, वहां पाप होने बंद हो जाते हैं। और जहां होश है, वहां पुण्य फलित होने लगते हैं। पुण्य ऐसे ही फलित होने लगते हैं, जैसे सूरज के उगने पर फूल खिल जाते हैं। ऐसे ही होश के जगने पर पुण्य होने शुरू हो जाते हैं। पुण्य करने नहीं पड़ते। आपकी छाया की तरह आपके पीछे चलने लगते हैं। वे आपकी सुगंध हो जाते हैं। वे हो जाते हैं, तब आपको पता लगता है। जब दूसरे आपसे कहते हैं, तब आपको पता लगता है।

लेकिन आदमी बेईमान है, आत्मवंचक है। और आदमी हजार तरकीबें निकाल लेता है अपने को समझाने की, कि मैं तो पापी हूं; मुझसे क्या प्रार्थना होगी! यह आपकी होशियारी है। यह आप यह कह रहे हैं कि अभी क्या प्रार्थना करनी! प्रार्थना आपको करनी नहीं है। करना आपको पाप ही है। लेकिन आप यह भी अपने मन में नहीं मानना चाहते कि मैं प्रार्थना नहीं करना चाहता हूं। आप कहते हैं, मैं ठहरा पापी; मुझसे क्या प्रार्थना होगी? तो किससे प्रार्थना होगी?

आपसे ही प्रार्थना होगी। और पाप प्रार्थना में बाधा नहीं है। यह ऐसा ही है, जैसे आपके घर में अंधेरा हो; और आप कहें कि अंधेरा बहुत है, दीया कैसे जलाएं! और अंधेरा इतना ज्यादा है कि दीया जलेगा कैसे! और अंधेरा हजारों साल पुराना है, दीए को बुझाकर रख देगा! नाहक मेहनत क्या करनी। जब अंधेरा नहीं होगा, तब दीया जला लेंगे।

अंधेरा आपके दीए के जलने को रोक नहीं सकता। अंधेरे की ताकत क्या है? पाप से कमजोर दुनिया में कोई चीज नहीं है। पाप की ताकत क्या है? अंधेरा कमजोर है। अंधेरा है ही कहां? दीया जलते ही तिरोहित हो जाएगा। और चाहे हजारों वर्ष पुराना हो, तो भी एक क्षण टिक न सकेगा। और छोटा-सा दीया मिटा देगा। और दीए से अंधेरा यह नहीं कह सकेगा कि मैं हजारों साल से यहां रह रहा हूं और तू अभी अतिथि की तरह आया और मुझ मेजबान को हटाए दे रहा है! मैं नहीं हटता। नहीं, अंधेरा खड़ा होकर जवाब भी न दे सकेगा। अंधेरा पाया ही नहीं जाएगा।

प्रार्थना के लिए पाप बाधा नहीं है। नहीं तो वाल्मीकि जैसा पापी, राम में ऐसा नहीं डूब सकता था। कि अंगुलिमाल जैसा पापी, बुद्ध में ऐसा लीन नहीं हो सकता था।

पाप बाधा नहीं है। और जब प्रार्थना कोई करता है, तो पाप वैसे ही हट जाता है, जैसे दीया जलता है और अंधेरा हट जाता है। और जले हुए दीए में पाप नहीं होता। जले हुए दीए के साथ जो होता है, उसी का नाम पुण्य है।

तो प्रार्थना को रोकें मत। कल पर टालें मत। स्थगित मत करें। प्रार्थना को शुरू होने दें।

और क्या फर्क पड़ता है! जब बच्चा पहली दफा चलता है, तो गिरता ही है। अगर कोई भी बच्चा यह तय कर ले कि मैं चलूंगा तभी जब गिरूंगा नहीं, तो चलेगा ही नहीं कभी। और जब पहली दफा कोई तैरना सीखता है, तो दो-चार दफे मुंह में पानी भी भर जाता है और डुबकी भी लग जाती है। लेकिन कोई अगर यह तय कर ले कि तैरूंगा तभी जब पूरी तरह सीख लूंगा, फिर वह कभी तैरेगा नहीं। तैरने के लिए भी बिना सीखे पानी में उतरना जरूरी है।

और बच्चा चल पाता है। गिरता है; घुटने टूट जाते हैं। घसिटता है। बार-बार खड़ा होता है, फिर बैठ जाता है। एक दिन चलने लगता है। प्रार्थना भी ऐसे ही शुरू होगी क ख ग से। आप कभी पूरी प्रार्थना पहले दिन नहीं कर पाएंगे। आप पहले ही दिन कोई चैतन्य और मीरा नहीं हो जाने वाले हैं। लेकिन होने की कोई जरूरत भी नहीं है।

और संतों का काम इतना ही है, जो मां-बाप का काम है। बच्चा चलता है, तो मां-बाप उसके उस भूल भरे चलने पर भी इतने प्रसन्न होते हैं! फिर जब वह ठीक चलने लगेगा, तो कोई प्रसन्न नहीं होगा। आपको पता है! जब पहली दफा बच्चा खड़ा हो जाता है डगमगाता, तो घरभर में खुशी और उत्सव छा जाता है। ऐसी क्या बड़ी घटना हो रही है? दुनिया चल रही है! ये और एक सज्जन खड़े हो गए, तो कौन-सा फर्क पड़ा जा रहा है? लेकिन उसका यह खड़ा होना, उसका यह साहस, उसका जमीन पर से झुके होने से खड़ा हो जाना, अपने पैरों पर यह भरोसा, मां-बाप खुश हो जाते हैं; बैंड-बाजे बजाते हैं। घर में गीत; फूल सजाते हैं। बच्चा उनका खड़ा हो गया!

जब पहली दफा बच्चा आवाज निकाल देता है, बेतुकी, बेमतलब की, कोई अर्थ नहीं होता, उसमें से मां-बाप अर्थ निकालते हैं कि वह मामा कह रहा है, पापा कह रहा है। वह कुछ नहीं कह रहा है! वह केवल पहली दफा टटोल रहा है। कुछ नहीं कह रहा है। लेकिन बड़ी खुशी छा जाती है। फिर वह भाषा भी अच्छी बोलने लगेगा, बड़ा विद्वान भी हो जाएगा, तब भी यह खुशी नहीं होगी।

संतों का, गुरुओं का इतना काम है कि जब पहली दफा कोई तुतलाने लगे प्रार्थना, तो उसको सहारा दें। पहली दफा जब कोई प्रार्थना के जगत में कदम रखे, तो उसको आसरा दें। इसको उत्सव की घड़ी बना लें। तो जो आज डांवाडोल है, कल थिर हो जाएगा। जो आज तुतला रहा है, कल ठीक से बोलने लगेगा। आज जो केवल आवाज है, कल गीत-संगीत भी बन सकती है। वे संभावनाएं हैं।

लेकिन पहला कदम बिल्कुल जरूरी है। पहले कदम में ही जो चूक करता है... । और चूक एक ही है पहले कदम की। गिरना चूक नहीं है। गलत कदम का उठ जाना चूक नहीं है। गलत उठेगा ही; गिरना होगा ही। चूक एक ही है, स्थगित करना। कि पहला कैसे उठाऊं; कहीं गलती न हो जाए! तो जो रुक जाता है पहले को उठाने से, वही एकमात्र चूक है। बाकी कोई चूक नहीं है।

भूलें करना बुरा नहीं है। भूल करने के डर से रुक जाना बुरा है। भूल को दोहराना बुरा है, एक ही भूल को बार-बार करना नासमझी है। लेकिन पहली दफा ही भूल न हो, ऐसा जो परफेक्शनिस्ट हो, ऐसा जो पूर्णतावादी हो, वह इस दुनिया में मूढ़ की हालत में ही मरेगा। वह कुछ भी सीख नहीं पाएगा।

भूल करें, दिल खोलकर करें। एक ही भूल दुबारा भर न करें। हर भूल से सीखें और पार निकल जाएं और नई भूल करने की हिम्मत रखें। संसार में भूलें करने से नहीं डरते, तो परमात्मा में भूलें करने से क्या डरना है! और जब संसार भी भूलों को क्षमा कर देता है और आप सफल हो जाते हैं, तो परमात्मा भी क्षमा कर ही देगा। क्षमा किया ही हुआ है। और जब पहली दफा कोई तुतलाता है प्रार्थना, तो सारा अस्तित्व खुश होता है, प्रसन्न होता है।

कहा है हमने कि जब बुद्ध को पहली दफा ज्ञान हुआ, तो जिन वृक्षों पर फूल नहीं खिलने थे, खिल गए। झूठी लगती है बात। कहा है हमने कि महावीर जब रास्ते पर चलते थे, तो अगर कोई कांटा पड़ा हो, तो महावीर को देखकर उलटा हो जाता था। झूठी लगती है बात। कांटे को क्या मतलब होगा? और बेमौसम फूल खिलते हैं कहीं? कि बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो सारी दिशाएं सुगंध से भर गईं। भरोसा नहीं आता।

लेकिन अभी रूस में एक प्रयोग हुआ है और रूस के वैज्ञानिक पुश्किन ने घोषणा की है कि पौधे भी आपकी खुशी से प्रभावित होते हैं और खुश होते हैं; और आपके दुख से दुखी होते हैं, पीड़ित होते हैं।

पुश्किन की खोज मूल्यवान है और पुश्किन ने पौधों को सम्मोहित करने का, हिप्नोटाइज करने का प्रयोग किया है। और पुश्किन ने यह भी प्रयोग किया है कि पास में एक गुलाब का पौधा रखा है और एक व्यक्ति को पास में ही बेहोश किया, सम्मोहित किया। जब सम्मोहित होकर कोई बेहोश हो जाता है, फिर उससे जो भी कहा जाए, वह आज्ञा मानता है। पुश्किन ने उस बेहोश आदमी से कहा कि तू आनंद से भर गया है। तेरा चित्त प्रफुल्लित है और सुख की धारा बह रही है।

वह आदमी डोलने लगा आनंद में। उस आदमी के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड लगाए गए, जो यंत्र पर खबर दे रहे हैं कि उसमें आनंद की लहरें उठ रही हैं; उसका मस्तिष्क नई तरंगों से भर गया है। उसके साथ ही उसी तरह के इलेक्ट्रोड गुलाब के पौधे पर भी लगाए गए हैं। जैसे ही यह आदमी आनंदित होकर भीतर प्रफुल्लित हो गया और यंत्र ने खबर दी कि वह आनंद से भर रहा है; जिस तरह का ग्राफ उसके मस्तिष्क की तरंगों का बना, ठीक उसी तरह का ग्राफ गुलाब के पौधे से भी बना। और पुश्किन ने लिखा है, गुलाब के पौधे के भीतर भी वैसी ही आनंद की तरंगें फैलने लगीं।

और जब उस आदमी को कहा गया कि तू दुख से परेशान है; तेरी पत्नी की मृत्यु हो गई है; कि तेरे घर में आग लग गई है और तेरा हृदय बैठा जा रहा है; वह दुखी हो गया। उसके हृदय की पंखुड़ियां बंद हो गईं। तरंगों

में खबर आने लगी कि वह दुख से भरा हुआ है। ठीक गुलाब के पौधे से भी तरंगें आने लगीं कि वह बहुत दुखी है। उसकी पंखुड़ियां मुरझा गई हैं और बंद हो गई हैं।

आप आनंदित हैं, तो आपके पास रखा हुआ गुलाब का पौधा भी आंदोलित होता है। तो फिर झूठ नहीं लगता, कुछ आश्चर्य नहीं है कि बुद्ध का भीतर का कमल खिला हो, तो बेमौसम फूल भी आ गए हों। क्योंकि साधारण आदमी के खुश होने से अगर फूल खुश होते हैं, तो बुद्ध तो कभी-कभी करोड़ वर्ष में कोई बुद्ध होता है। उस वक्त अगर बेमौसम फूल ले आते हों पौधे, तो कुछ आश्चर्य नहीं लगता।

पुश्किन की बात से तो ऐसा लगता है, फूल जरूर खिले होंगे। बुद्ध के पास के पौधे इतने आनंदित हो गए होंगे--ऐसा तो कभी होता है, करोड़ वर्षों में--तो अगर बेमौसम भी थोड़े से फूल खिला दिए हों, स्वाभाविक लगता है।

जब आप पहली दफा तुतलाते हैं प्रार्थना, तो यह सारा अस्तित्व खुश होता है। इस अस्तित्व की खुशी ही प्रभु का प्रसाद है।

तो डरें मत। हिम्मत करें। गिरेंगे ही न; फिर उठ सकते हैं। नौ बार जो गिरता है, दसवीं बार उसके गिरने की संभावना समाप्त हो जाती है।

अब हम सूत्र को लें।

किंतु उन सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्त वाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात विशेष परिश्रम है। क्योंकि देह-अभिमानियों में अव्यक्त विषयक गति दुखपूर्वक प्राप्त की जाती है। अर्थात जब तक शरीर में अभिमान है, तब तक शुद्ध सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में स्थिति होनी कठिन है। और जो मेरे परायण हुए भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्ति-योग से निरंतर चिंतन करते हुए भजते हैं, उनका मैं शीघ्र ही उद्धार करता हूं।

इस सूत्र में दो बातें कही गई हैं। एक, कि वे भी पहुंच जाते हैं, जो निराकार, निर्गुण, शून्य की उपासना करते हैं। वे भी मुझ तक ही पहुंच जाते हैं, कृष्ण कहते हैं। वे भी परम सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन उनका मार्ग कठिन है। उनका मार्ग दुर्गम है। और उनके मार्ग पर क्लेश है, पीड़ा है, कष्ट है। क्या क्लेश है उनके मार्ग पर?

जो निराकार की तरफ चलता है, उसे कुछ अनिवार्य कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। पहली तो यह कि वह अकेला है यात्रा पर। कोई उसका संगी-साथी नहीं। और आपको पता है, कभी आप अंधेरी गली से गुजरते हैं, तो खुद ही गीत गुनगुनाने लगते हैं, सीटी बजाने लगते हैं। कोई है नहीं वहां। अकेले में डर लगता है। लेकिन अपनी ही सीटी सुनकर डर कम हो जाता है। अपनी ही सीटी, अपना ही गीत!

उस अज्ञात के पथ पर जहां कि गहन अंधेरा है, क्योंकि कोई संगी-साथी नहीं है, और इस जगत का कोई प्रकाश काम नहीं आता है; निराकार का यात्री अकेले जाता है। कोई परमात्मा, कोई परमात्मा की धारणा का सहारा नहीं है। तो पहली तो कठिनाई यह है कि अकेले की यात्रा है।

भरोसा भी हो कि परमात्मा है, तो दो हैं आप। अकेले नहीं हैं।

एक ईसाई फकीर औरत हुई। वह एक चर्च बनाना चाहती थी। कुल दो पैसे थे उसके पास। और गांव में जाकर उसने कहा कि घबड़ाओ मत, संपत्ति कुछ मेरे पास है, कुछ और आ जाएगी। और जहां संपत्ति है, वहां और संपत्ति आ जाती है। दो पैसे मेरे पास हैं। चर्च हम बना लेंगे।

गांव के लोग बहुत हंसे कि तू पागल हो गई है! दो पैसे से कहीं चर्च बना है! तू अकेली एक फकीर औरत और दो पैसे। बस! इससे हो जाएगा? चर्च बन जाएगा?

उस स्त्री ने कहा कि नहीं, एक और मेरे साथ है। एक मैं हूं, मैं फकीर औरत हूं। और ये दो पैसे हैं। ये भी काफी कम हैं। लेकिन परमात्मा भी मेरे साथ है। तीनों का जोड़ काफी से ज्यादा है। मगर तुम्हें वह तीसरा दिखाई नहीं पड़ता। मुझे वह दिखाई पड़ता है, इसलिए दो पैसे की भी फिक्र नहीं है। और मैं भी फकीर औरत हूं, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। हम तीनों मिलकर जरूरत से ज्यादा हैं।

वह जो भक्त का रास्ता है, उस पर परमात्मा साथ है। भक्त कितना ही कमजोर हो, परमात्मा से जुड़कर बहुत ज्यादा है। सारी कमजोरी खो जाती है।

निराकार का पथिक अकेला है; किसी का उसे साथ नहीं है। कठिनाई होगी। अकेले होने से बड़ी और कठिनाई भी क्या है!

जिंदगी में कभी आप अकेले हुए हैं? अकेला होने का आपको पता है? जरा देर अकेले छूट जाते हैं, तो जल्दी से अखबार पढ़ने लगते हैं, रेडियो खोल लेते हैं, किताब उठा लेते हैं। कुछ न कुछ करने लगते हैं, ताकि अकेलापन पता न चले। हमारे जीवन का सारा जाल--परिवार, पति-पत्नी, मित्र, क्लब, होटल, समूह, संघ, मंदिर, चर्च--अकेले होने से बचने की तरकीबें हैं। अकेले होने से घबड़ाहट होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गई थी, तो उसकी लाश के पास बैठकर रो रहा था। नसरुद्दीन का मित्र भी था एक, फरीद। वह उससे भी ज्यादा छाती पीटकर रो रहा था। नसरुद्दीन को बड़ा अखर रहा था। पत्नी मेरी, और ये सज्जन इस तरह रो रहे हैं कि किसी को शक हो सकता है कि इनकी पत्नी मरी हो। नसरुद्दीन भी काफी ताकत लगा रहा था, लेकिन मित्र भी गजब का था, नसरुद्दीन से हमेशा आगे!

भीड़ बढ़ गई थी। कई अजनबी लोग भी इकट्ठे हो गए थे। और नसरुद्दीन को बड़ी बेचैनी हो रही थी। पत्नी के मरने की इतनी नहीं, जितना यह आदमी बाजी मारे लिए जा रहा है! आखिर नसरुद्दीन से नहीं रहा गया, उसने कहा कि ठहर भी फरीद! इतना दुख मत मना; ज्यादा मत घबड़ा। मैं फिर दुबारा शादी कर लूंगा।

लोग बहुत चकित हुए। किसी ने पूछा कि नसरुद्दीन, अभी पत्नी मरे देर नहीं हुई। लाश घर में रखी है; अभी लाश गरम है। और तुम कह रहे हो, दूसरी शादी कर लोगे! तो नसरुद्दीन ने कहा, कोई शादी करने के लिए तो शादी की नहीं थी। अकेले होने की तकलीफ है। उसके मरते ही मैं फिर अकेला हो गया। और इतना अकेला तब भी नहीं था, जब पहली दफा शादी की थी। अब और ज्यादा अकेला हो गया, क्योंकि साथ का अनुभव हो गया।

रास्ते पर जा रहे हैं। अंधेरे में एक कार निकल जाती है; कार के प्रकाश में आंखें चौंधिया जाती हैं। जब कार चली जाती है, अंधेरा और ज्यादा हो जाता है। पहले इतना नहीं था। पहले कुछ दिखाई भी पड़ता था, अब कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

नसरुद्दीन ने कहा कि इस पत्नी की वजह से ही तो अब और जल्दी दूसरी पत्नी की जरूरत है। यह खाली कर गई; बहुत अकेले हो गए।

आपकी पत्नी जब मर जाती है या पति जब मर जाता है, तो जो पीड़ा होती है, वह उसके मरने की कम है; अगर ठीक से खोज करेंगे, तो अकेले हो जाने की ज्यादा है। शायद नसरुद्दीन बहुत नासमझ है, इसलिए तत्काल उसने सच्ची बात कह दी। आप छः महीने बाद कहेंगे। और अगर जरा मंद बुद्धि हुए, छः साल बाद कहेंगे। यह दूसरी बात है। लेकिन बात उसने ठीक ही कह दी।

अकेले होने की पीड़ा है। किसी को भी हाथ में हाथ लेकर भरोसा आ जाता है कि अकेले नहीं हैं।

तो निराकार का रास्ता तो बिल्कुल अकेला है। न पत्नी साथी होगी, न मित्र साथी होगा, न पति। निराकार की जो ठीक साधना है, उसमें तो गुरु भी साथी नहीं होगा। उसमें गुरु भी कह देगा कि मैं सिर्फ रास्ता बताता हूं, चलना तुझे है। मैं तेरे साथ नहीं आ सकता हूं। निराकार की आत्यंतिक साधना में तो गुरु कहेगा, तू मुझे छोड़, तभी तेरी यात्रा शुरू होगी। कहेगा कि मुझे पकड़ मत; कहेगा कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि अकेले होने की ही साधना है। गुरु का होना भी बाधा है।

इसलिए यह सूत्र कहता है, कृष्ण कहते हैं, अति कठिन है।

पहली बात कि अकेला हो जाना होगा। दूसरी बात, अगर परमात्मा की तरफ समर्पण न हो, तो उस अकेलेपन में अहंकार के उठने की बहुत गुंजाइश है। बहुत ऐसा हो सकता है कि मैं हूं। यह मैं की अकड़ बहुत तीव्र हो सकती है, क्योंकि इसको मिटाने के लिए कोई भी नहीं है।

निराकार और मेरा अहंकार, अगर कहीं ये दोनों मिल जाएं तो खतरा है, बड़े से बड़ा खतरा है। क्योंकि अगर मैं कहूं कि मैं ब्रह्म हूं, तो इसमें दोनों संभावनाएं हैं। इसका एक मतलब तो यह होता है कि अब मैं नहीं रहा, ब्रह्म ही है; तब तो ठीक है। और अगर इसका यह मतलब हो कि मैं ही हूं, अब कोई ब्रह्म वगैरह नहीं है; तो बड़ा खतरा है।

इस्लाम ने इस तरह की बात को बिल्कुल बंद ही करवा दिया, ताकि कोई खतरा न हो। तो जब अल-हिल्लाज ने कहा कि अहं ब्रह्मास्मि--अनलहक--मैं ही हूं ब्रह्म, तो इस्लाम ने हत्या कर दी।

हत्या करनी उचित नहीं है। लेकिन अभी मैं एक फकीर, सूफी फकीर की टिप्पणी पढ़ रहा था अल-हिल्लाज की हत्या पर। तो उसने कहा कि यह बात ठीक नहीं है कि अल-हिल्लाज की हत्या की गई। लेकिन एक लिहाज से ठीक है। क्योंकि अल-हिल्लाज की हत्या करने से क्या मिटता है! अल-हिल्लाज तो पा चुका था, इसलिए हत्या करने से कोई हर्ज नहीं है। लेकिन इस हत्या करने से दूसरे लोग, जो कि अपने अहंकार को मजबूत कर लेते अनलहक कहकर, उनके लिए रुकावट हो गई।

यह बात भी मुझे ठीक मालूम पड़ी। अल-हिल्लाज की हत्या से कुछ मिटता ही नहीं, क्योंकि अल-हिल्लाज उसको पा चुका, जो अमृत है। इसलिए उसको मारने में कोई हर्जा नहीं। अगर उसको न मारा जाए, तो न मालूम कितने नासमझ लोग चिल्लाने लगेंगे। उनके अहंकार का खतरा हो सकता है। तो इस्लाम ने वह दरवाजा बंद कर दिया।

भारत ने वह दरवाजा बंद नहीं किया। क्योंकि भारत की आकांक्षा यह रही कि कोई भी दरवाजा बंद न हो, चाहे एक दरवाजे से हजारों वर्ष में एक भी आदमी क्यों न निकलता हो। लेकिन दरवाजा खुला रहना चाहिए। एक आदमी को भी बाधा नहीं होनी चाहिए।

निराकार के मार्ग से हजारों साल में एकाध आदमी निकलता है। लेकिन दरवाजा खुला रखा जाता है। क्योंकि वह जो निराकार के मार्ग से निकलता है, वह भक्ति के मार्ग से निकल ही न सकेगा। उसका कोई उपाय ही नहीं है। वह उसी मार्ग से निकल सकेगा।

बुद्ध को भक्ति के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता। महावीर को भक्ति के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता। कोई उपाय नहीं है! वह उनका स्वभाव नहीं है।

मीरा को निराकार के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता; वह उसका स्वभाव नहीं है। सब मार्ग खुले और साफ होने चाहिए।

पर मार्ग कठिन है, क्योंकि अहंकार के उठने का डर है। देह-अभिमान मजबूत हो सकता है। खतरा है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, पहुंच तो जाते हैं मुझ तक ही वे लोग भी, जो निराकार से चलते हैं। लेकिन वह स्थिति कठिन है। और जो मेरे परायण हुए भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्ति-योग से निरंतर चिंतन करते भजते हैं, उनका मैं शीघ्र उद्धार करता हूं।

भक्त के लिए एक सुविधा है। वह पहले चरण पर ही मिट सकता है। यह उसकी सुविधा है। ज्ञानी की असुविधा है, आखिरी चरण पर मिट सकता है; बीच की यात्रा में रहेगा। वह रहना मजबूत भी हो सकता है। और ऐसा भी हो सकता है, वह इतना मजबूत हो जाए कि आखिरी चरण उठाने का मन ही न रहे, और अहंकार में ही ठहरकर रह जाए।

लेकिन भक्त को एक सुविधा है, वह पहले चरण पर ही मिट सकता है। सुविधा ही नहीं है, पहले चरण पर उसे मिटना ही होगा, क्योंकि वह साधना की शुरुआत ही वही है। रोग को साथ ले जाना नहीं है। ज्ञानी का रोग साथ चल सकता है आखिरी तक। आखिर में छूटेगा, क्योंकि मिलन के पहले तो रोग मिटना ही चाहिए, नहीं तो मिलन नहीं होगा। लेकिन भक्त के पथ पर वह पहले, प्रवेश पर ही बाहर रखवा दिया जाता है, छुड़वा दिया जाता है।

भक्त अपने कर्मों को समर्पण कर देता है। वह कहता है, अब मैं नहीं कर रहा हूं; तू ही कर रहा है। वह बुरे-भले का भी भाव छोड़ देता है। वह कहता है, जो प्रभु की मर्जी। अब मेरी कोई मर्जी नहीं है। अब तू जो मुझसे करवाए, मैं करता रहूंगा। तेरा उपकरण हो गया। तू सुख में रखे तो सुखी, और तू दुख में रखे तो दुखी। न तो मैं सुख की आकांक्षा करूंगा, और न दुख न मिले, ऐसी वासना रखूंगा। अब मैं सब भांति तेरे ऊपर छोड़ता हूं। यह जो समर्पण है, इस समर्पण के साथ ही अहंकार गलना शुरू हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, उनका मैं जल्दी ही उद्धार कर लेता हूं, क्योंकि वे पहले चरण में ही अपने को छोड़ देते हैं।

ज्ञानी का उद्धार भी होगा, लेकिन वह आखिरी चरण में होगा। घटना अंत में वही हो जाएगी। लेकिन कोई अपनी यात्रा के पहले ही बोझ को रख देता है, कोई अपनी यात्रा की समाप्ति पर बोझ को छोड़ता है। और जहां बोझ छूट जाता है अस्मिता का, अहंकार का, वहीं उद्धार शुरू हो जाता है।

कृष्ण जब कहते हैं, मैं उद्धार करता हूं, तो आप ऐसा मत समझें कि कोई बैठा हुआ है, जो आपका उद्धार करेगा। कृष्ण का मतलब है, नियम। कृष्ण का मतलब है, शाश्वत धर्म, शाश्वत नियम। जैसे ही आप अपने को छोड़ देते हैं, वह नियम काम करना शुरू कर देता है।

पानी है; नीचे की तरफ बहता है। फिर उसको गरम करें आग से; भाप बन जाता है। भाप बनते ही ऊपर की तरफ उठने लगता है।

एक नियम तो ग्रेविटेशन का है कि पानी नीचे की तरफ बहता है। न्यूटन ने खोजी यह बात कि जमीन चीजों को अपनी तरफ खींचती है, इसलिए सब चीजें नीचे की तरफ गिरती हैं। लेकिन एक और नियम भी है जो ग्रेविटेशन के विपरीत है। जिसको योगियों ने लेविटेशन कहा है। नीचे की तरफ खींचने में तो कशिश है, गुरुत्वाकर्षण है; लेकिन ऊपर की तरफ भी एक खिंचाव है, जिसको एक बहुत कीमती महिला सिमोन वेल ने ग्रेस कहा है। ग्रेस और ग्रेविटेशन। नीचे की तरफ कशिश; ऊपर की तरफ प्रभु-प्रसाद, ग्रेस।

नियम है। जब आप गिर पड़ते हैं जमीन पर, केले के छिलके पर पैर फिसल जाता है, तो आप यह मत सोचना कि कोई भगवान बैठा है, जो आपकी टांग तोड़ता है। कि खटाक से, आपने गड़बड़ की, केले के छिलके पर फिसले, उसने उठाया हथौड़ा और फ्रैक्चर कर दिया! कोई बैठा हुआ नहीं है कि आपका फ्रैक्चर करे। किस-

किस का फ्रैक्चर करने का हिसाब रखना पड़े। नियम है। आपने भूल की, नियम के अनुसार आपका पैर टूट गया। कोई तोड़ता नहीं है पैर। पैर टूट जाता है; नियम के विपरीत पड़ने से टूट जाता है।

ठीक ऐसे ही ग्रेस है। जैसे ही आपका अहंकार हटा, आप ऊपर की तरफ खींच लिए जाते हैं। कोई खींचता नहीं है। कोई ऐसा बैठा नहीं है कि आपके गले में फांसी लगाकर और ऊपर खींचेगा।

उद्धार का मतलब ऐसा मत समझना कि कोई आपको उठाएगा और खींचेगा। कोई नहीं उठा रहा है; कोई उठाने की जरूरत नहीं है। जैसे ही बोझ हलका हुआ, आप ऊपर उठ जाते हैं।

जैसे आप एक कार्क की गेंद ले लें; और उसके चारों तरफ मिट्टी लपेटकर उसे पानी में डाल दें। वह जमीन में बैठ जाएगी नदी की, क्योंकि वह मिट्टी जो चारों तरफ लगी है, उस कार्क को भी डुबा लेगी। लेकिन जैसे-जैसे मिट्टी पिघलने लगेगी और पानी में बहने लगेगी, कार्क उठने लगेगा ऊपर की तरफ। कोई उठा नहीं रहा है। मिट्टी बिल्कुल बह जाएगी पिघलकर, हटकर; कार्क जमीन से ऊपर उठ आएगा। पानी की सतह पर तैरने लगेगा। किसी ने उठाया नहीं है। नियम! कार्क जैसे ही बोझिल नहीं रहा, उठ जाता है।

उद्धार का अर्थ है कि आप जैसे ही अपने को छोड़ देते हैं, उठ जाते हैं, खींच लिए जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, मैं उसको, जो सगुण रूप से, साकार को, एक परमात्मा की धारणा को, उसके चरणों में अपने को समर्पित करता है; अनन्य भाव से निरंतर, सतत उसका स्मरण करता है; वही उसकी धुन, वही उसका स्वर श्वास-श्वास में समा जाता है; रोएं-रोएं में उसी की पुलक हो जाती है; उठता, बैठता, सोता, सब भांति उसी को याद करता है; उसके ही प्रेम में लीन रहने लगता है; ऐसी जो तल्लीनता बन जाती है, उसका मैं शीघ्र ही उद्धार कर लेता हूं।

शीघ्र इसलिए कि वह पहले चरण पर ही बोझ से हट जाता है। ज्ञानी का भी उद्धार होता है, लेकिन आखिरी चरण पर।

तो जिन्हें यात्रा-पथ में अपने को बचा रखना हो और अंत में ही छोड़ना हो, वे निराकार की तरफ जा सकते हैं। जिनको पहले ही चरण पर सब छोड़ देना हो, भक्ति उनके लिए है। निश्चित ही, जो पहले चरण पर छोड़ता है, पहले चरण पर ही मिलन शुरू हो जाता है। जितनी देर आप अपने को खींचते हैं, उतनी ही देर होती है। जितने जल्दी अपने को छोड़ देते हैं, उतने ही जल्दी घटना घट जाती है।

यह आत्मिक उत्थान आपके अहंकार के बोझ से ही रुका है। यह ख्याल कि मैं हूं, इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। और जब तक मैं हूं, तब तक परमात्मा नहीं हो सकता। और जब मैं मिट जाऊं, तभी वह हो सकता है।

जीसस ने कहा है, जो अपने को मिटाएंगे, केवल वे ही बचेंगे। जो अपने को बचाएंगे, वे व्यर्थ ही अपने को मिटा रहे हैं।

हम अपने को बचा रहे हैं। कुछ है भी नहीं बचाने योग्य, फिर भी बचा रहे हैं!

कुछ ही दिन पहले एक युवक मेरे पास आया था--अमेरिका से लंबी यात्रा करके, न मालूम किन-किन आश्रमों, किन-किन साधना-स्थलों पर भटककर। मुझसे कहने लगा, गुरु की तलाश है। लेकिन अब तक गुरु मिला नहीं। मैंने उससे पूछा, किस भांति गुरु की तलाश करोगे? क्या उपाय है तुम्हारे पास? कैसे तुम जांचोगे? क्या है कसौटी? क्या है तराजू? कोई निकष है, जिससे तुम कसोगे कि कौन गुरु है? तुम्हें पता है कि गुरु का क्या अर्थ है? क्या लक्षण है?

उसने कहा, नहीं; यह तो मुझे कुछ पता नहीं है। तो फिर, मैंने कहा, तुम भटकते रहो पूरी जमीन पर। गुरु कैसे मिलेगा? क्योंकि गुरु से मिलना हो, तो तुम्हें अपने को छोड़ना पड़ेगा। तुमने कहीं किसी के पास कभी अपने को छोड़ा? उसने कहा कि कहीं छोड़ूं अपने को और कोई नुकसान हो जाए! और आदमी गलत हो, और सच्चा न हो, और धोखेबाज हो। और गुरु तो हो, लेकिन मिथ्या हो, बनावटी हो, और कुछ नुकसान हो जाए!

तो मैंने उससे पूछा, तेरे पास खोने को क्या है, यह पहले तू मुझे बता दे! नुकसान क्या होगा? तेरे पास कुछ खोने को है जो कोई तुझसे छीन लेगा? तेरी हालत ऐसी है कि नंगा आदमी नहाता नहीं, क्योंकि वह सोचता है, नहाऊंगा, तो कपड़े कहां सुखाऊंगा! कि जिसके पास कुछ भी नहीं है, रातभर पहरा देता है कि कहीं चोरी न हो जाए! तू बचा क्या रहा है? तेरे पास है क्या? और जब तेरे पास कुछ है ही नहीं, तो क्या हानि तुझे पहुंचाई जा सकती है? क्या तुझसे छीना जा सकता है? तो तू हिम्मत कर और अपने को बचाना छोड़। क्योंकि जिस दिन तू अपने को बचाना छोड़ेगा, उसी दिन गुरु से मिलने की संभावना शुरू होती है। उसी दिन से तू योग्य बनना शुरू हुआ।

और फिर अगर गलत गुरु भी मिल जाएगा, तो डर क्या है? जो अपने को छोड़ता है पूरी तरह, उससे गलत गुरु भी डरता है। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि अगर कोई अपने को ठीक से छोड़ दे गलत गुरु के पास भी, तो गलत गुरु के लिए भी ठीक होने का रास्ता खुल सकता है। क्योंकि गुरु तो केवल बहाना है। जब कोई अपने को पूरी तरह छोड़ता है, तो वह गुरु को परमात्मा मानकर ही छोड़ता है। और किसी का इतनी सरलता से, इतनी पूर्णता से किसी को परमात्मा मान लेना, अगर वह आदमी गलत हो--अगर सही हो, तब तो इसका रूपांतरण होगा ही--अगर वह गलत हो, तो उसका भी रूपांतरण होगा।

और छोड़ तो रहा है परमात्मा के लिए। वह गुरु तो प्रतीक है। उसके पीछे जो छिपा हुआ है परमात्मा, उसके लिए छोड़ा जा रहा है।

लेकिन हम डरे हुए हैं कि कहीं कुछ खो न जाए! जिनके पास कुछ भी नहीं है!

कार्ल मार्क्स ने सारी दुनिया के मजदूरों से कहा है कि सारी दुनिया के सर्वहारा मजदूरो, इकट्ठे हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास सिवाय हथकड़ियां खोने को कुछ भी नहीं है। यूनाइट आल दि प्रोलिटेरियंस, बिकाज यू हैव नथिंग टु लूज, एक्सेप्ट योर चेन्स। सिवाय जंजीरों के खोने को है भी क्या! तो डरते किसलिए हो? इकट्ठे हो जाओ!

पता नहीं, यह बात कहां तक सच है, क्योंकि ऐसा गरीब आदमी खोजना मुश्किल है, जिसके पास कुछ न हो। गरीब के पास भी कुछ होता है; कम होता है। भिखमंगे के पास भी कुछ होता है; कम होता है। बिल्कुल ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसके पास कुछ भी न हो। सांसारिक अर्थों में तो कुछ न कुछ होता है।

लेकिन आध्यात्मिक अर्थों में यह बात बिल्कुल सही है कि आपके पास कुछ भी नहीं है; आप सर्वहारा हो। फिर भी डरे हुए हो कि कहीं कुछ चूक न जाए। परमात्मा के पास भी सम्हलकर जाते हो कि कहीं कुछ छिन न जाए!

जो इतना डरा है, भक्ति का मार्ग उस के लिए नहीं है। भक्ति के मार्ग पर तो ट्रस्ट, भरोसा, उसका भरोसा, कि ठीक है। वह मिटाएगा, तो इसमें ही कुछ लाभ होगा। कि वह छीनेगा, तो इसमें कुछ बात होगी, रहस्य होगा। कि वह नुकसान करेगा, तो उस नुकसान से जरूर कुछ लाभ होने वाला होगा। इस भांति जो अपने को छोड़ने को तैयार है, तो उद्धार इसी क्षण हो सकता है।

भक्त के लिए एक क्षण भी रुकने की जरूरत नहीं है। ज्ञानी के लिए जन्मों-जन्मों तक भी रुकना पड़ सकता है, क्योंकि अपनी ही चेष्टा से लगा है। भक्त तो अभी एवेलेबल हो जाता है, इसी वक्त--अगर वह छोड़ दे। और तत्काल नियम काम करना शुरू कर देता है। कृष्ण उसे खींच लेते हैं।

कृष्ण शब्द बड़ा प्यारा है। इसका मतलब होता है अट्रैक्शन, इसका मतलब होता है मैग्नेट। कृष्ण का मतलब होता है, जो खींचता है, आकृष्ट करता है।

कृष्ण एक नियम हैं। अगर आप अपने को छोड़ने को तैयार हैं, तो नियम आपको खींच लेता है। आप जगत के आत्यंतिक चुंबक के निकट पहुंच जाते हैं। आप खींच लिए जाते हैं--दुख से, पीड़ा से, अंधकार से। लेकिन स्वयं को गंवाने की हिम्मत चाहिए। स्वयं को मिटाने का साहस चाहिए। स्वयं को गला देने की तैयारी चाहिए।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई बीच से उठे न। जब तक कीर्तन पूरा न हो जाए, बैठें। और कीर्तन में सम्मिलित हों।

चौथा प्रवचन

संदेह की आग

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।। 7।।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।। 8।।

हे अर्जुन, उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूप संसार-समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूं। इसलिए हे अर्जुन, तू मेरे में मन को लगा और मेरे में ही बुद्धि को लगा; इसके उपरांत तू मेरे में ही निवास करेगा अर्थात मेरे को ही प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

पहले थोड़े से प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, शंका, अश्रद्धा, अनास्था, विद्रोह आदि से भरा हुआ व्यक्ति कैसे प्रार्थना करे, भक्ति करे, समर्पण करे?

जिसके मन में यह सवाल उठ आया हो कि कैसे समर्पण करूं, कैसे प्रार्थना करूं, वह व्यक्ति, और वह व्यक्ति जो अश्रद्धा से भरा हो, अनास्था से भरा हो, शंका से भरा हो, एक ही नहीं हो सकते। क्योंकि जो शंका से भरा है, प्रार्थना का सवाल ही उसके मन में नहीं उठेगा। जो शंका से भरा है, समर्पण का विचार ही उसके मन में नहीं उठेगा।

और जिसके मन में समर्पण और प्रार्थना का विचार उठना शुरू हो गया है, उसे समझ लेना चाहिए, उसकी शंकाएं बीमारियां बन गई हैं; उसकी अश्रद्धा उसे खा रही है। अपनी अनास्था से वह खुद ही सड़ रहा है। उसकी अनास्था उसके लिए कैंसर है।

और जब तक यह दिखाई न पड़ जाए, तब तक प्रार्थना की यात्रा नहीं हो सकती। कोई दूसरा आपको यात्रा नहीं करा सकेगा। आपको स्वयं ही जानना पड़ेगा कि अश्रद्धा की पीड़ा क्या है। अनास्था का कांटा आपको बुरी तरह चुभेगा, तो ही आप उसे निकालने के लिए तैयार होंगे।

इसलिए मुझसे अगर पूछते हैं कि क्या करें, अश्रद्धा से भरे हैं? तो पूरी तरह अश्रद्धा से भर जाएं। कुनकुनी अश्रद्धा ठीक नहीं है। अश्रद्धा से पूरी तरह भर जाएं, ताकि उससे ऊब सकें और छुटकारा हो सके।

आम हालत ऐसी है कि न तो आप श्रद्धा से भरे हैं, और न अश्रद्धा से। आप दोनों की खिचड़ी हैं। वही तकलीफ है। उसकी वजह से न तो आप अश्रद्धा की यात्रा कर सकते हैं, क्योंकि जब अश्रद्धा पर जाना चाहते हैं, तो श्रद्धा पैर को रोक लेती है; और उसकी वजह से श्रद्धा की यात्रा भी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जब श्रद्धा की तरफ जाना चाहते हैं, तो अश्रद्धा पैर रोक लेती है।

कृपा करें और पूरी तरह अश्रद्धालु हो जाएं। डरें मत। भय भी न खाएं। तर्क ही करना है, तो पूरा कर लें। कुतर्क की सीमा का भी कुछ संकोच न करें। पूरी तरह उतर जाएं अपनी अश्रद्धा में। वह पूरी तरह उतर जाना ही आपको नरक में ले जाएगा। और नरक में जाए बिना नरक से कोई छुटकारा नहीं है।

और दूसरों की बातें मत सुनें। क्योंकि अधकचरी दूसरों की बातें कोई सहायता न पहुंचाएंगी। जब आप नरक की तरफ जा रहे हों, तो स्वर्ग की बात ही भूल जाएं और पूरी तरह नरक में उतर जाएं। एक बार अनुभव कर लें ठीक से, तो फिर किसी को कहना नहीं पड़ेगा कि श्रद्धा का अमृत क्या है। अश्रद्धा का जहर जिसने देख लिया, वह अपने आप श्रद्धा के अमृत की तरफ चलना शुरू हो जाता है।

इस युग की तकलीफ अश्रद्धा नहीं है। इस युग की तकलीफ अधूरापन है। आपका आधा हिस्सा श्रद्धा से भरा है और आधा अश्रद्धा से भरा है। कोई भी यात्रा पूरी नहीं हो पाती।

और ध्यान रहे, बुराई से भी छूटने का कोई उपाय नहीं है, जब तक बुराई पूरी न हो जाए। और पाप के भी बाहर उठने का कोई रास्ता नहीं है, जब तक कि पाप में आप पूरी तरह डूब न जाएं।

जिसमें हम पूरी तरह डूबते हैं, जिसका हमें पूरा अनुभव हो जाता है, फिर किसी को कहने की जरूरत नहीं होती कि आप इसके बाहर निकल आएं। आप स्वयं ही निकलना शुरू कर देते हैं।

अभी तो बहुत लोग आपको समझाते हैं कि श्रद्धा करो और श्रद्धा नहीं आती। क्योंकि जिसने अश्रद्धा ही ठीक से नहीं की है, उसे श्रद्धा कैसे आ सकेगी! श्रद्धा अश्रद्धा के बाद का चरण है।

आस्तिक वही हो सकता है, जो नास्तिक हो चुका है। नास्तिकता के पहले सारी आस्तिकता बचकानी, दो कौड़ी की होती है। जिसने नास्तिकता नहीं जानी, वह आस्तिक हो कैसे सकेगा? जिसने अभी इनकार करना नहीं सीखा, उसके हां का भी कोई मूल्य नहीं है। उसके स्वीकार में भी कोई जान नहीं है। उसका स्वीकार नपुंसक है, इम्पोटेंट है।

कोई डर नहीं है। न कहें, परमात्मा नाराज नहीं होता है। लेकिन पूरे हृदय से न कहें, तो न भी उबारने वाली हो जाती है। और जिसने पूरी तरह से न कहकर देख लिया और देख लिया कि न कहने का दुख और संताप क्या है और झेल ली चिंता और आग की लपटें, वह आज नहीं कल हां कहने की तरफ बढ़ेगा। उसकी हां में बल होगा। उसकी हां में उसके जीवन का अनुभव होगा।

तो मुझसे यह मत पूछें कि आपका चित्त अश्रद्धा से भरा है, तो आप प्रार्थना की तरफ कैसे जाएं। पूरी तरह अश्रद्धा से भर जाएं। आपके लिए प्रार्थना की तरफ जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग न बचेगा।

मगर अधूरे-अधूरे होना अच्छा नहीं है। परमात्मा की प्रार्थना भी कर रहे हैं और भीतर संदेह भी है, तो प्रार्थना क्यों कर रहे हैं? बंद करें यह प्रार्थना। अभी संदेह ही कर लें ठीक से। और जब संदेह न बचे, तब प्रार्थना शुरू करें। कुछ भी पूरा करना सीखना चाहिए। क्योंकि पूरा करते ही व्यक्तित्व अखंड हो जाता है। आप टुकड़े-टुकड़े में नहीं होते।

आपके भीतर पच्चीस तरह के आदमी हैं। आप एक भीड़ हैं। एक मन का हिस्सा कुछ कहता है। दूसरा मन का हिस्सा कुछ कहता है। तीसरा मन का हिस्सा कुछ कहता है।

एक देवी मेरे पास आज सुबह ही आई थीं। कहती हैं कि बीस साल से ईश्वर की खोज कर रही हैं। मैंने उनसे कहा कि कल सुबह चौपाटी पर ध्यान के लिए पहुंच जाएं छः बजे। उन्होंने कहा, छः बजे आना तो बहुत मुश्किल होगा।

बीस साल से ईश्वर की खोज चल रही है! सुबह छः बजे चौपाटी पर आना मुश्किल है! यह ईश्वर की खोज है! इस तरह के अधूरे लोग कहीं भी नहीं पहुंचते। ये त्रिशंकु की भांति अटके रह जाते हैं। संकोच भी नहीं होता, सोचने में ख्याल भी नहीं आता कि मैं कह रही हूं कि बीस साल से मैं ईश्वर को खोज रही हूं और सुबह छः बजे पहुंचना मुश्किल है! यह खोज कितनी कीमत की है?

बीस जन्म भी इस तरह खोजो, तो कहीं पहुंचना नहीं हो पाएगा। यह खोज है ही नहीं। यह सिर्फ धोखा है। ईश्वर से कुछ लेना-देना भी मालूम नहीं पड़ता है। यह भी ऐसे रास्ते चलते पूछ लिया है। यह भी ऐसे ही कि कहीं ईश्वर पड़ा हुआ मिल जाए और फुर्सत का समय हो; तो जैसा ताश खेल लेते हैं, ऐसा उसको भी उठा लेंगे। ईश्वर अगर कहीं ऐसे ही मिलता हो--बिना कुछ खर्च किए, बिना कुछ श्रम किए, बिना कुछ छोड़े, बिना कुछ मेहनत उठाए--तो सोचेंगे; ले लेंगे।

इस भाव से जो चलता है, उसकी श्रद्धा भी झूठी है, उसकी अश्रद्धा भी झूठी है। उसकी खोज भी झूठी है। उसका व्यक्तित्व ही पूरा झूठा है।

सच्चे होना सीखें। सच्चे होने के लिए धार्मिक होना जरूरी नहीं है। नास्तिक भी सच्चा हो सकता है। फिर नास्तिकता पूरी होनी चाहिए; तो आप सच्चे नास्तिक हो गए। और मैंने अब तक नहीं सुना है कि कोई सच्चा नास्तिक आस्तिक बनने से बच गया हो। सच्चे नास्तिक को आस्तिक बनना ही पड़ता है। क्योंकि जिसकी नास्तिकता तक में सच्चाई है, वह कितने देर तक अपने को आस्तिक बनाने से रोक सकता है!

लेकिन तुम्हारी आस्तिकता तक झूठी है। और जिसकी आस्तिकता तक झूठी है, वह कैसे परमात्मा तक पहुंच सकता है! धार्मिकता भी झूठी है, ऊपर-ऊपर है। जरा-सा खोदो, तो हर आदमी के भीतर नास्तिक मिल जाता है। बस, ऊपर से एक पर्त है आस्तिकता की; स्किन डीप। चमड़ी जरा-सी खरोंच दो, नास्तिक बाहर आ जाता है। और वह जो भीतर है, वही असली है। वह जो ऊपर-ऊपर है, उसका कोई मूल्य नहीं है।

तो पहले तो ईमानदारी से इस बात की खोज करें कि अश्रद्धा है, शंका है, तो ठीक है। मेरे चित्त में जो स्वाभाविक है, मैं उसका पीछा करूंगा। तो मैं शंका पूरी करूंगा जब तक कि हार न जाऊं। और जब तक कि मेरी शंका टूट न जाए, तब तक जहां मेरी शंका मुझे ले जाएगी, मैं जाऊंगा।

थोड़ी हिम्मत करें और शंका के रास्ते पर चलें। ज्यादा आगे आप नहीं जा सकेंगे। क्योंकि शंका का रास्ता कहां ले जाएगा? शंका का अंतिम परिणाम क्या होगा? संदेह करके कहां पहुंचेंगे? क्या मिलेगा?

आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि संदेह से उसे आनंद मिला हो। और आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि शंका से उसे जीवन की परम अनुभूति का अनुभव हुआ हो। आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि इनकार करके उसने अस्तित्व की गहराई में प्रवेश कर लिया हो।

आज नहीं कल आपको दिखाई पड़ने लगेगा कि आप अस्तित्व के बाहर-बाहर परिधि पर भटक रहे हैं। आज नहीं कल आपको खुद ही दिखाई पड़ने लगेगा, आपकी शंका ईश्वर को नहीं मिटा रही है, आपको मिटा रही है। और आपका संदेह धर्म के खिलाफ नहीं है, आपके ही खिलाफ है; आपके ही पैरों को और जड़ों को काटे डाल रहा है।

जब तक आपको यह दिखाई न पड़ जाए कि आपकी शंका आपकी ही शत्रु है, तब तक, तब तक आप प्रार्थना की यात्रा पर नहीं निकल सकते हैं। मेरे कहने से आप नहीं निकलेंगे। किसी के कहने से आप नहीं निकलेंगे। जब आपकी शंका आपको आग की तरह जलाने लगेगी, तभी!

बुद्ध के पास एक आदमी आया था। और वह आदमी कहने लगा, आपकी बातें सुनते हैं, अच्छा लगता है; लेकिन संसार से छूटने का मन नहीं होता अभी। और आप कहते हैं कि संसार दुख है, यह भी समझ में आता है; लेकिन फिर भी अभी संसार में रस है। तो बुद्ध ने कहा, मेरे कहने से कि संसार दुख है, तुझे कैसे समझ में आ सकेगा! और जिस दिन तुझे समझ में आ जाएगा कि संसार में दुख है, तू मेरे लिए रुकेगा! तू छलांग लगाकर बाहर हो जाएगा।

बुद्ध ने कहा, तू ऐसा समझ कि तेरे घर में आग लग गई है। तो तू मुझसे पूछने आएगा कि घर से बाहर निकलूं, न निकलूं? तू किस से पूछने रुकेगा? अगर मैं तेरे घर में मेहमान भी हूं, तो भी तू मुझे भीतर ही छोड़कर बाहर निकल जाएगा। पहले तू बाहर निकल जाएगा।

लेकिन तुझे खुद ही अनुभव होना चाहिए कि घर में आग लगी है। तुझे तो लग रहा हो कि घर के चारों तरफ फूल खिले हैं और आनंद की वर्षा हो रही है, और मैं तुझसे कह रहा हूं कि तेरे घर में आग लगी है, तो तू मुझसे कहता है, आपकी बात समझ में आती है। क्योंकि तेरी इतनी हिम्मत भी नहीं है कहने की कि आपकी बात मुझे समझ में नहीं आती। तेरा यह भी साहस नहीं है कहने का कि तुम झूठ बोल रहे हो। यह घर तो बड़े आनंद से भरा है। आग कहां लगी है! तू बिल्कुल कमजोर है। तो तू कहता है कि बात समझ में आती है कि घर में आग लगी है, फिर भी छोड़ने का मन नहीं होता।

ये दोनों बातें विरोधी हैं। अगर घर में आग लगी है, तो छोड़ने का मन होगा ही। छोड़ने का मन कहना भी ठीक नहीं है। घर में आग लगी हो, तो आपको पता भी नहीं चलता कि आग लगी है। जब आप घर के बाहर हो जाते हैं, ठीक से सांस लेते हैं, तब पता चलता है कि घर में आग लगी है। घर में आग लगी है, यह सोचने के लिए भी समय नहीं गंवाते। भागकर पहले बाहर हो जाते हैं।

जिस दिन आपकी शंका, संदेह, अनास्था आपके लिए अग्नि की लपटें बन जाएगी, उसी दिन आप प्रार्थना की तरफ दौड़ेंगे, उसके पहले नहीं।

इसलिए मैं आपसे कहता हूं, किसी की सुनकर प्रार्थना के रास्ते पर मत चले जाना। किसी की मानकर कि संसार दुख है, परमात्मा को मत खोजने लगना। अपनी ही मानना, क्योंकि आपके अतिरिक्त आप जब भी किसी और की मान लेंगे, आप झूठे हो जाएंगे।

तो अच्छा है; बुरा कुछ भी नहीं है। आपकी अश्रद्धा भी आपके जीवन में निखार लाएगी। आपकी नास्तिकता भी आपको तैयार करेगी आस्तिकता के लिए। आपका संदेह भी आपको छांटेगा, काटेगा, तराशेगा, और आप योग्य बनेंगे कि परमात्मा के मंदिर में प्रवेश कर सकें।

मेरी दृष्टि में परमात्मा के विपरीत कुछ भी नहीं है। हो भी नहीं सकता। इसलिए अगर कोई कहता है कि नास्तिक परमात्मा के विरोध में है, तो वह नासमझ है। उसे आस्तिकता की कोई खबर नहीं है।

नास्तिक भी तैयारी कर रहा है आस्तिक होने की। वह भी कह रहा है कि नहीं है परमात्मा। उसके भीतर भी खोज शुरू हो गई है। नहीं तो क्या प्रयोजन है यह कहने से भी कि परमात्मा नहीं है? क्या प्रयोजन है सोचने से कि वह है या नहीं? क्या जरूरत है कि अश्रद्धा करके हम अपनी शक्ति नष्ट करें?

वह जो अश्रद्धा कर रहा है, वह असल में श्रद्धा की तलाश में है। वह चाहता है कि हो। लेकिन उसे मालूम नहीं पड़ता कि है। इसलिए इनकार करता है। और इनकार करता है, तो पीड़ा अनुभव करता है।

इनकार पूरा होने दें। यह धार तलवार की गहरे उतर जाए और हृदय को काट डाले पूरा। आप प्रार्थना के रास्ते पर आ जाएंगे। प्रार्थना के रास्ते पर आना स्वाभाविक हो जाता है।

और जल्दी मत करें। बिना अनुभव के कहीं से भी निकल जाना खतरनाक है। बिना अनुभव के कहीं से भी भाग जाना खतरा है। क्योंकि जहां से भी आप बिना अनुभव के भाग जाते हैं, वह जगह आपका पीछा करेगी। और आपके मन में रस तो बना ही रहेगा। और आपके मन की दौड़ तो उसी तरफ होती ही रहेगी। आप भाग सकते हैं कहीं से भी। लेकिन जिससे आप बिना अनुभव के भाग रहे हैं, वह आपका पीछा करेगा; वह छाया की तरह आपके साथ होगा।

तो मेरी दृष्टि भागने की नहीं है। मेरी दृष्टि तो किसी चीज के अनुभव की परिपक्वता में उतर जाने की है। जब पका हुआ पत्ता वृक्ष से गिरता है, तो उसका सौंदर्य अनूठा है। न तो वृक्ष को पता चलता कि पत्ता कब गिर गया; न वृक्ष में कोई घाव होता है पत्ते के गिरने से; न कोई पीड़ा होती। न पत्ते को पता चलता है कि मैंने वृक्ष को कब छोड़ दिया। हवा का एक हलका-सा झोंका काफी हो जाता है।

लेकिन कच्चे पत्ते को तोड़ना, वृक्ष में भी घाव छूटता है और कच्चे पत्ते की भी नस-नस तन जाती है। कच्चे पत्ते का टूटना दुर्घटना है। पके पत्ते का गिरना एक सुखद, शांत, नैसर्गिक बात है।

आप जहां से भी हटें, पके पत्ते होकर हटना। कच्चे पत्ते की तरह मत टूट जाना, नहीं तो घाव रह जाएंगे। और पके पत्ते का जो सौंदर्य है, उससे आप वंचित रह जाएंगे।

डरें मत। अभी संदेह है, तो संदेह को पकने दें। और किसी की मत सुनना। क्योंकि चारों तरफ सुनाने वाले लोग बहुत हैं। चारों तरफ आपको सुधारने वाले लोग बहुत हैं। उनसे सावधान रहना। चारों तरफ आपको बनाने वाले लोग बहुत हैं, उनसे जरा बचना। अपनी जीवन-धारा को मौका देना कि वह स्वभावतः जो भी चाहती है, उसके पूरे अनुभव से गुजर जाए। नहीं तो बड़ा उपद्रव होता है। पूरे इतिहास में यह उपद्रव हुआ है।

हमारी तकलीफ क्या है? जिस मित्र ने पूछा है, संदेह मन में होगा, प्रार्थना का लोभ भी नहीं छूटता। क्योंकि हमने देखा है उन लोगों को, जो प्रार्थना में आनंदित हैं। तकलीफ कहां खड़ी होती है?

मीरा नाच रही है। आपको लगता है कि काश, मैं भी ऐसा नाच सकता! यह नाच संक्रामक है। यह आपके हृदय में भी पुलक जगाता है; प्रलोभन पैदा करता है। यह मीरा की मुस्कुराहट, यह उसकी आंखों की ज्योति, यह उसके चेहरे से बरसती हुई अमृत की धारा, यह आपको भी लगती है कि मेरे जीवन में भी हो।

लेकिन मीरा कहती है कि मैं कृष्ण को देखकर नाच रही हूं। भीतर संदेह खड़ा हो जाता है। कृष्ण आपको कहीं दिखाई नहीं पड़ते। मीरा पागल मालूम पड़ती है। यह कृष्ण पर भरोसा करना मुश्किल है।

मीरा जिसके लिए नाच रही है, उस पर भरोसा करना मुश्किल है; और मीरा के नाच से बचना भी मुश्किल है। इससे तकलीफ खड़ी होती है। लगता है, काश, हम भी ऐसा नाच सकते! लेकिन जिस कारण मीरा नाच रही है, उसके लिए तर्कयुक्त प्रमाण नहीं मिलते। किस ईश्वर के लिए नाच रही है, वह ईश्वर कहीं दिखाई नहीं पड़ता। हजार शंकाएं बुद्धि खड़ी करती है।

तो हम कहते हैं, कोई ईश्वर वगैरह नहीं है। तो फिर मीरा पागल है, दिमाग इसका खराब है, ऐसा कहकर अपने को समझा लेते हैं। फिर भी वह मीरा की धुन, वह नाच पीछा करता है। वह आपके सपनों में आपके साथ जाएगा। आप उठेंगे और बैठेंगे और लगेगा, कहीं मन का कोई कोना कहेगा, काश! मीरा का ईश्वर सच होता, तो हम भी नाच सकते थे।

नाचना आप चाहते हैं; आनंदित आप होना चाहते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसकी आनंद की आकांक्षा न हो। और संदेह से आनंद मिलता नहीं। अश्रद्धा से आनंद मिलता नहीं। अनास्था से आनंद मिलता नहीं। और आनंद की आकांक्षा है, और बुद्धि संदेह खड़े कर देती है। जहां आनंद मिल सकता है, वहां बुद्धि सवाल खड़ा कर देती है। और हृदय मांगता है आनंद। और बुद्धि आनंद दे नहीं सकती। इस दुविधा में प्राण उलझ जाते हैं।

तो आप भी नकली नाच नाच सकते हैं। आप भी मजीरा उठाकर नाच सकते हैं। लेकिन वह ऊपर-ऊपर होगा। क्योंकि मीरा के नाच में मीरा के पांव असली काम नहीं कर रहे हैं, मीरा की श्रद्धा असली काम कर रही है। मीरा से अच्छी नर्तकियां होंगी, जो ज्यादा अच्छा नाच लेंगी। लेकिन मीरा के नाच का गुण और है। कितनी

ही बड़ी कोई नर्तकी और नर्तक हो, मीरा के नाच में जो बात है, वह उसके नाच में नहीं हो सकती। मीरा के पैर अनगढ़ होंगे। ताल न हो; लय न हो; संगीत का अनुभव न हो; लेकिन कुछ और है, जो संगीत से भी बड़ा है। और कुछ और है, जो व्यवस्था से भी बड़ा है। और कुछ इतना गहन उतर गया है भीतर कि उसके उतरने के कारण नाच हो रहा है। इस नाच के पीछे कुछ अलौकिक खड़ा है।

वह अलौकिक की श्रद्धा न हो, तो नाच तो आप भी सकते हैं, लेकिन आपकी आत्मा में आनंद पैदा नहीं होगा। नाच बाहर-बाहर रह जाएगा। आप भीतर खाली के खाली, रिक्त, उदास, वैसे के वैसे रह जाएंगे।

मीरा की श्रद्धा ही केंद्र है। आप संदेह के केंद्र पर नाच सकते हैं, लेकिन मीरा के सुख की अनुभूति आपको नहीं होगी।

और बड़ी कठिनाई इससे खड़ी होती है कि जाग्रत पुरुषों का भी बाहर का जीवन ही हमें दिखाई पड़ता है। उनके भीतर का तो हमें कुछ पता नहीं है।

हम महावीर को देखते हैं। उनकी शांत मुद्रा दिखाई पड़ती है। उनकी आंखों का मौन दिखाई पड़ता है। मन प्रलोभन से भर जाता है। काश, ऐसा हमें भी हो सके! फिर महावीर की बात सुनते हैं, उस पर श्रद्धा नहीं आती।

बुद्ध को देखते हैं। उनके आस-पास जो हवा बहती है शांति की, वह हमें भी छूती है। उनके पास पहुंचकर जो स्नान हो जाता है, कि पोर-पोर जैसे किसी ताजगी से भर गए, वह हमें भी प्रतीत होता है। लेकिन बुद्ध की बात सुनकर श्रद्धा नहीं आती।

बुद्ध के भीतर जो है, उसका हमें पता नहीं। बाहर जो है, हमें पता है। तो एक बड़ी उलटी प्रक्रिया शुरू होती है कि हम सोचते हैं, जिस भांति बुद्ध बैठे हैं, हम भी बैठ जाएं, तो शायद जो भीतर घटा है, वह हमें भी घट जाएगा। तो महावीर जैसा चलते हैं, हम भी चलने लगें। महावीर ने वस्त्र छोड़ दिए, तो हम भी वस्त्र छोड़ दें।

तो अनेक लोग महावीर को देखकर नग्न खड़े हो गए हैं! वे सिर्फ नंगे हैं; दिगंबर नहीं हैं। क्योंकि महावीर की नग्नता के पहले भीतर एक आकाश उत्पन्न हो गया है। उस आकाश में वस्त्र छोड़ दिए हैं। इनके भीतर वह आकाश उत्पन्न नहीं हुआ। इन्होंने सिर्फ वस्त्र छोड़ दिए हैं। इनकी देह भर नंगी हो गई है।

महावीर चींटी भी हो, तो पांव फूंक-फूंककर रखते हैं। इसलिए नहीं कि उन्हें डर है कि कहीं चींटी मर न जाए। उनके पीछे चलने वाला भी पांव फूंक-फूंककर रखने लगता है कि कहीं चींटी मर न जाए। लेकिन इसे अपनी ही आत्मा का पता नहीं है, इसे चींटी की आत्मा का पता कैसे हो सकता है! इसे अपने ही भीतर के जीवन का कोई अनुभव नहीं है, चींटी के जीवन का अनुभव कैसे हो सकता है! इसकी अहिंसा थोथी, उथली, ऊपर-ऊपर हो जाती है। ऊपर से आचरण हो जाता है। भीतर का अंतस वैसा का वैसा बना रहता है।

भीतर अंतस बदले, तो ही बाहर जो क्रांति घटित होती है; वह वास्तविक होती है। लेकिन यह भूल होती रही है।

मैंने सुना है, एक यहूदी फकीर हुआ, बालशेम। थोड़े से जमीन पर हुए कीमती फकीरों में एक। बालशेम से किसी ने पूछा कि तुम जब भी बोलते हो, तो तुम ऐसी चोट करने वाली मौजू कहानी कह देते हो। कहां से खोज लेते हो ये कहानियां? तो बालशेम ने कहा, एक कहानी से समझाता हूं।

और बालशेम ने कहा कि एक सेनापति एक छोटे गांव से गुजरता था। बड़ा कुशल निशानेबाज था। उस जमाने में उस जैसा निशानेबाज कोई भी न था। सौ में सौ निशाने उसके लगते थे। अचानक उसने देखा गांव से

गुजरते वक्त अपने घोड़े पर, एक बगीचे की चारदीवारी पर, लकड़ी की चारदीवारी, फेंसिंग, उसमें कम से कम डेढ़ सौ गोली के निशान हैं। और हर निशान चाक के एक गोल घेरे के ठीक बीच केंद्र पर है। डेढ़ सौ!

सेनापति चकित हो गया। इतना बड़ा निशानेबाज इस छोटे गांव में कहां छिपा है! और जो चाक का गोल घेरा है, ठीक उसके केंद्र पर गोली का निशान है। गोली लकड़ी को आर-पार करके निकल गई है। और एकाध मामला नहीं है; डेढ़ सौ निशान हैं!

उसे लगा कि कोई मुझ से भी बड़ा निशानेबाज पैदा हो गया। पास से निकलते एक राहगीर से उसने पूछा कि भाई, यह कौन आदमी है? किसने ये निशान लगाए हैं? किसने ये गोलियां चलाई हैं? इसकी मुझे कुछ खबर दो। मैं इसके दर्शन करना चाहूंगा!

उस ग्रामीण ने कहा कि ज्यादा चिंता मत करो। गांव का जो चमार है, उसका लड़का है। जरा दिमाग उसका खराब है। नट-बोल्ट थोड़े ढीले हैं!

उस सेनापति ने कहा, मुझे उसके दिमाग की फिक्र नहीं है। जो आदमी डेढ़ सौ निशाने लगा सकता है इस अचूक ढंग से, वर्तुल के ठीक मध्य में, उसके दिमाग की मुझे चिंता नहीं। वह महानतम निशानेबाज है। मैं उसके दर्शन करना चाहता हूं।

उस ग्रामीण ने कहा कि थोड़ा समझ लो पहले। वह गोली पहले मार देता है, चाक का निशान बाद में बनाता है।

करीब-करीब धर्म के इतिहास में ऐसा हुआ है। हम सब गोली पहले मार रहे हैं, चाक का निशान बाद में बना रहे हैं! लेकिन राहगीर को तो यही दिखाई पड़ेगा कि गजब हो गया। जिसे पता नहीं, उसे तो दिखाई पड़ेगा कि गजब हो गया।

जिंदगी बाहर से भीतर की तरफ उलटी नहीं चलती है। जिंदगी की धारा भीतर से बाहर की तरफ है; वही सम्यक धारा है। गंगोत्री भीतर है। गंगा बहती है सागर की तरफ। हम सागर से गंगोत्री की तरफ बहाने की कोशिश में लगे रहते हैं।

अगर आपके भीतर संदेह है, तो घबड़ाएं मत। संदेह की गंगा को सागर तक पहुंचने दें। और रुकावट मत डालें। आज नहीं कल आप पाएंगे कि संदेह ही आपको समर्पण तक ले आया। इससे उलटा कभी भी नहीं हुआ है।

सभी संदेह करने वाले, सम्यक संदेह करने वाले, राइट डाउट करने वाले लोग समर्पण पर पहुंच गए हैं। अश्रद्धा ही श्रद्धा का द्वार बन जाती है। मगर पूरी अश्रद्धा। अनास्था ईमानदार, प्रामाणिक अनास्था आस्था की जननी है।

थोपें मत। ऊपर-ऊपर से थोपें मत। ऊपर की चिंता मत करें। मत पूछें कि मन अनास्था से भरा है, तो कैसे प्रार्थना करें। अनास्था से पूरा भर जाने दें। और मैं आपको कहता हूं कि प्रार्थना का बीज आपके भीतर छिपा है। अनास्था को पूरी तरह बढ़ने दें। यह अनास्था ही उस बीज के लिए भूमि बन जाएगी। प्रार्थना का अंकुर आपके भीतर पैदा होगा।

नास्तिक होने से मत डरें अगर आस्तिक होना है। और अगर किसी दिन ईश्वर के चरणों में पूरा सिर रखकर हां भर देनी है, तो अभी जब तक आपको लगे कि वह नहीं है, तब तक ईमानदारी से इनकार करना। जल्दी हां मत भरना। जल्दी भरी गई हां गर्भपात है, एबार्शन है। उससे जो बच्चा पैदा होता है, वह मुर्दा पैदा होता है।

अनास्था के गर्भ को कम से कम नौ महीने तक तो चलने दें। और अगर यह गर्भ पूरा हो गया हो, तो फिर मुझसे पूछने की जरूरत न रह जाएगी। अगर आप सच में ही ऊब गए हों अपनी अश्रद्धा से, तो आप उसे छोड़ ही देंगे, फेंक ही देंगे। न ऊबे हों, तो थोड़ी प्रतीक्षा करें। थोड़ा ऊबें।

डर इसलिए नहीं है मुझे, क्योंकि अश्रद्धा से कभी आनंद मिलता नहीं, इसलिए आप तृप्त नहीं हो सकते। आज नहीं कल आप उसे फेंक ही देंगे। श्रद्धा से ही आनंद मिलता है। और बिना आनंद के कोई व्यक्ति कब तक जीवित रह सकता है?

धर्म को पृथ्वी से मिटाया नहीं जा सकता तब तक, जब तक कि आदमी आनंद की मांग कर रहा है। जिस दिन आदमी आनंद के बिना जीने को राजी हो जाएगा, उस दिन धर्म को मिटाया जा सकता है, उसके पहले नहीं।

धर्म परमात्मा की खोज नहीं है, आनंद की खोज है। और जिन्हें आनंद खोजना है, उन्हें परमात्मा खोजना पड़ता है। और आनंद की खोज हमारे भीतर का नैसर्गिक स्वर है।

इससे ही संबंधित एक प्रश्न और एक मित्र ने पूछा है, ईश्वर की ओर श्रद्धा बढ़ाना बहुत कठिन लगता है, क्योंकि उसके अस्तित्व को मानने का कोई ठोस सबूत या कारण नहीं मिलता!

इससे ही संबंधित एक प्रश्न और एक मित्र ने पूछा है, ईश्वर की ओर श्रद्धा बढ़ाना बहुत कठिन लगता है, क्योंकि उसके अस्तित्व को मानने का कोई ठोस सबूत या कारण नहीं मिलता!

ईश्वर की श्रद्धा बढ़ाना बहुत ही कठिन मालूम पड़ता है। बढ़ाइए ही क्यों? ऐसी झंझट करनी क्यों! कौन-सी अड़चन आ रही है आपको कि ईश्वर की श्रद्धा बढ़ानी है! मत बढ़ाइए। छोड़िए ईश्वर की बात ही। बेचैनी क्या है? क्यों चाहते हैं कि ईश्वर की श्रद्धा बढ़े?

तो अपने भीतर तलाश करिए। बिना ईश्वर के आपको शांति नहीं मालूम पड़ती। बिना ईश्वर के चैन नहीं मालूम पड़ता। इसलिए श्रद्धा बढ़ाना चाहते हैं। पहले अपने भीतर की इस बात को समझिए कि मेरे भीतर कोई बेचैनी है, जिसकी वजह से ईश्वर की श्रद्धा बढ़ाना चाहता हूं। और अगर बेचैनी ठीक से समझ में आ जाए, तो आप फिर प्रमाण नहीं पूछेंगे, सबूत नहीं पूछेंगे।

प्यासा आदमी यह नहीं पूछता कि पानी है या नहीं! प्यासा आदमी पूछता है, पानी कहां है? प्यास न लगी हो, तो आदमी पूछता है, पता नहीं, पानी है या नहीं! प्यासे आदमी ने अब तक नहीं पूछा है कि पानी है या नहीं! प्यासा आदमी पूछता है, पानी कहां है? कैसे खोजूं?

ईश्वर के प्रमाण की जरूरत क्या है? आपके भीतर ईश्वर के बिना बेचैनी है, यह काफी प्यास है। और यही उसका प्रमाण है। इस बात के फर्क को समझ लें।

एक आदमी पूछता है, ईश्वर है या नहीं, इसका प्रमाण चाहिए। मैं प्रमाण नहीं देता। मैं कहता हूं, छोड़ो फिक्र। जिसका प्रमाण नहीं, उसकी फिक्र क्यों करनी? ईश्वर को जाने दो; उसकी बला। तुम अपने रास्ते पर जाओ। ईश्वर तुमसे कभी कहने आता नहीं कि मेरा प्रमाण तुमने अभी तक पता लगाया कि नहीं। तो झंझट में पड़ते क्यों हो? क्यों अपने मन को खराब करते हो? शांति से सोओ। क्यों नींद खराब करनी! अनिद्रा मोल लेनी! क्या बात है?

चैन नहीं है भीतर। कहीं भीतर कोई एक प्यास है, जो बिना ईश्वर के नहीं बुझ सकती। बिना ईश्वर के प्यास नहीं बुझ सकती। वह प्यास भीतर से धक्के देती है कि पता लगाओ ईश्वर का।

अपनी प्यास को समझो; ईश्वर को छोड़ो। पानी उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी प्यास महत्वपूर्ण है। पानी तो गौण है। अगर प्यास न हो, तो पानी का करिएगा भी क्या! और अगर प्यास हो, तो हम पानी खोज ही लेंगे।

एक नियम जीवन का है कि उसी चीज की प्यास होती है, जो है। जो नहीं है, उसकी प्यास भी नहीं होती। जो नहीं है, उसका कोई अनुभव भी नहीं होता; प्यास का भी अनुभव नहीं होता। उसके अभाव का भी अनुभव नहीं होता।

आदमी की प्यास ही प्रमाण है। इसका मतलब यह हुआ कि आपको सब कुछ मिल जाए, तो भी तृप्ति न होगी, जब तक कि आपको ईश्वर न मिल जाए। अगर आपको तृप्ति हो सकती है बिना उसके, तो आप तृप्त हो जाएं; ईश्वर को कोई एतराज नहीं है। आप मजे से तृप्त हो जाएं। वह आपकी तृप्ति में बाधा डालने नहीं आएगा।

लेकिन आप तृप्त हो नहीं सकते। यह कठिनाई ईश्वर की नहीं है। यह आदमी के होने के ढंग की कठिनाई है। आदमी इस ढंग का है कि बिना ईश्वर के तृप्त नहीं हो सकता। और इसलिए जब हम आदमी से ईश्वर छीन लेते हैं, तो वह न मालूम किस-किस तरह के ईश्वर गढ़ लेता है।

रूस में एक बड़ा प्रयोग हुआ कि कम्युनिस्टों ने ईश्वर छीन लिया। तो आपको पता है क्या हुआ? जैसे ही ईश्वर छिन गया, लोगों ने राज्य को ईश्वर मानना शुरू कर दिया। चर्च से जीसस की मूर्ति तो हट गई, लेकिन क्रेमलिन के चौराहे पर लेनिन की लाश रख दी गई। लोग उसको ही फूल चढ़ाने लगे; उसके ही चरणों में सिर रखने लगे!

यह बड़े मजे की बात है। लेनिन तो नास्तिक था। मानता नहीं है कि मृत्यु के बाद कुछ भी बचता है। लेकिन उसकी लाश रखी है क्रेमलिन में। लाखों लोग प्रतिवर्ष चरण छू रहे हैं। किसके चरण छू रहे हैं? जो नहीं है अब उसके? और जो अब नहीं है, वह कभी भी नहीं था। इस मुर्दे को क्यों छू रहे हैं?

गहरी प्यास है। कहीं किसी चरण में सिर रखने की आकांक्षा है। किसी अज्ञात के सामने झुकने का मन है। तृप्ति न होगी; तो लेनिन के ही चरणों में सिर रख रहे हैं। ईश्वर को हमने छीन लिया है। तो हमने फिर कुछ भी गढ़ लिया है। लेकिन आदमी बिना श्रद्धा के नहीं रह पाता। ईश्वर की श्रद्धा छीनो, राज्य की श्रद्धा करेगा, नेता की श्रद्धा करेगा। यहां तक कि अभिनेता की श्रद्धा करेगा! कुछ चाहिए, जो उसके श्रद्धा का आश्रय बन जाए। कुछ चाहिए, जिसके लिए वह समझे कि जी सकता हूं।

लेकिन आदमी बिना ईश्वर के नहीं रह सकता। आदमी ईश्वर के बिना बेचैन ही रहता है। एक परम आश्रय चाहिए।

तो मैं आपसे नहीं कहता कि कोई प्रमाण है उसका। कोई प्रमाण नहीं है आपकी प्यास के अतिरिक्त। अपनी प्यास को मिटा लो, आपने ईश्वर को मिटा दिया। ईश्वर को मिटाने की फिक्र मत करो। वह आपके वश की बात नहीं है। अपनी प्यास को मिटा लो; ईश्वर मिट गया।

और आपकी प्यास के मिटाने का कोई उपाय नहीं है। आप ही हो वह प्यास। अगर प्यास आपसे कोई अलग चीज होती, तो हम उसे मिटा भी लेते। आप ही हो प्यास। आदमी परमात्मा की एक प्यास है। आदमी अलग होता, तो प्यास को हम काट देते। कोई सर्जरी कर लेते। और आदमी को अलग कर लेते। आदमी खुद ही प्यास है।

नीत्शे ने कहा है, जिस दिन आदमी अपने से ऊपर जाना बंद कर देगा, उस दिन मर जाएगा। यह अपने से ऊपर जाने की एक प्यास है आदमी के भीतर।

जैसे बीज टूटता है और आकाश की तरफ उठना शुरू हो जाता है। वह आकाश की तरफ उठने की आकांक्षा ही वृक्ष बन जाती है। आदमी भी निरंतर अपने से ऊपर उठकर आकाश की तरफ जाना चाहता है। वह आकाश की तरफ जाने की आकांक्षा ही ईश्वर है।

आप तब तक बीज ही रहेंगे, जब तक ईश्वर का वृक्ष आप में न लग जाए। जब तक आप ईश्वर न हो जाएं, तब तक कोई संतोष संभव नहीं है। ईश्वर से कम में कोई तृप्ति नहीं है।

यही प्रमाण है कि आपके भीतर प्यास है। इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है। कोई गणित नहीं है ईश्वर का, कि सिद्ध किया जा सके कि दो और दो चार होते हैं, ऐसा कोई गणित हो। कोई तर्क नहीं है, जिससे साबित किया जा सके कि वह है।

और अच्छा है कि कोई तर्क नहीं है। क्योंकि तर्कों से जो सिद्ध होता है, वह और कुछ भी हो--गणित की थ्योरम हो, विज्ञान का फार्मूला हो--धर्म की अनुभूति नहीं होगी। और अच्छा है कि तर्क से वह सिद्ध नहीं होता, क्योंकि तर्क से कोई चीज कितनी ही सिद्ध हो जाए, उससे प्यास नहीं बुझती।

समझें। प्यास तो पानी से बुझती है। लेकिन एच टू ओ का फार्मूला कागज पर लिखा रखा हो, बिल्कुल गणित से व्यवस्थित, उससे नहीं बुझती। एच टू ओ के फार्मूले को आप पी जाना घोलकर, प्यास नहीं बुझेगी। प्यास तो पानी से बुझेगी। क्योंकि प्यास एक अनुभव मांगती है; एक ठंडक मांगती है, जो आपके प्राणों में उतर जाए। एक रस मांगती है, जो आपके भीतर जाए और आपको रूपांतरित कर दे। फार्मूला तो किताब पर होता है।

ईश्वर का कोई फार्मूला नहीं है। और जितनी किताबें ईश्वर के लिए लिखी गई हैं, वे केवल इशारे हैं; उनमें ईश्वर का कोई फार्मूला नहीं है।

सब शास्त्र हार गए हैं; अब तक उसे कह नहीं पाए हैं। कभी उसे कहा भी नहीं जा सकेगा। लेकिन शास्त्रों ने कोशिश की है। कोशिश इशारे की तरह है; मील के पत्थर की तरह है कि और आगे, और आगे। हिम्मत देने के लिए है, कि बढ़े जाओ; दो कदम और; ज्यादा दूर नहीं है; पास ही है।

हिम्मत से कोई बढ़ा चला जाए, तो एक दिन उस अनुभव में उतर जाता है। लेकिन प्रमाण मत खोजना आप। प्रमाण कोई है नहीं। और या फिर हर चीज प्रमाण है। फिर ऐसी कौन-सी चीज है, जो उसका प्रमाण नहीं है? फिर चारों तरफ आंखें डालें। आकाश में सूरज का उगना, और रात आकाश में तारों का भर जाना, और एक बीज का फूटकर वृक्ष बनना, और एक झरने का सागर की तरफ बहना, और एक पक्षी के कंठ से गीत का निकलना। एक बच्चे की आंखों में झांकें; और एक काई जमे हुए पत्थर को देखें; और सागर के किनारे की रेत को, और सागर की लहरों को--तो फिर हर जगह उसका प्रमाण है। फिर वही वही है।

एक दफा ख्याल में आ जाए कि वह है, तो फिर सब जगह उसका प्रमाण है। और जब तक उसका ख्याल न आए, तब तक उसका कोई प्रमाण नहीं है।

और कहां आएगा उसका ख्याल? पहले सागर में नहीं आएगा। पहले फूलों में नहीं आएगा। पहले आकाश के तारों में नहीं आएगा। पहले तो अपने में ही लाना पड़ेगा उसका ख्याल। क्योंकि मैं ही अपने निकटतम हूं। अगर वहां भी उसकी भनक मुझे नहीं सुनाई पड़ती, तो पत्थर में कैसे सुनाई पड़ेगी!

अब लोग मजेदार हैं। लोग मूर्तियों के सामने सिर टेक रहे हैं। वे मूर्तियां उनके लिए भगवान कैसे हो पाएंगी? वे कितना ही मानें कि भगवान हैं, वे हो न पाएंगी। क्योंकि जिनको अपने भीतर के चैतन्य में भी भगवत्ता का कोई स्पर्श नहीं हुआ, उनको पत्थर में छिपी भगवत्ता बहुत दूर है। वहां भी है; पर फासला बहुत ज्यादा है। और पत्थर की भाषा अलग है; आदमी की भाषा अलग है।

आदमी में भगवान नहीं दिखता और पत्थर में दिखता है! आदमी--जिसको हम समझ सकते हैं, छू सकते हैं, जिसके भीतर उतर सकते हैं, जिसकी चेतना का संस्पर्श हो सकता है--उसमें दिखाई नहीं पड़ता, और पत्थर में दिखाई पड़ जाता है! तो आप अपने को धोखा दे रहे होंगे। क्योंकि पत्थर तो बहुत दूर है; अभी आदमी में तो दिखाई पड़े, तो फिर किसी दिन पत्थर में भी दिखाई पड़ सकता है। और फिर तो ऐसा हो जाता है कि ऐसी कोई चीज नहीं दिखाई पड़ती, जिसमें वह न हो। फिर तो सारा जगत उसका प्रमाण है।

तो दो बातें हैं, या तो उसका कोई प्रमाण नहीं है। अगर आप किताबों, शब्दों, तर्कों में सोचें, उसका कोई प्रमाण नहीं है। और या अगर अस्तित्व में सोचें, तो सभी कुछ उसका प्रमाण है। फिर ऐसी कोई चीज नहीं है, जहां उसका हस्ताक्षर न हो। रेत के दाने-दाने पर उसका हस्ताक्षर है। लेकिन वह है अस्तित्व की भाषा, एक्झिस्टेंस की।

आपको अपने ही अस्तित्व का कोई पता नहीं है। आप ऐसे जीए चले जाते हैं कि पक्का करना मुश्किल है कि आप जी रहे हैं, कि मर गए हैं, कि... ।

मैंने सुना है कि अनेक लोगों को तो तभी पता चलता है कि वे जिंदा थे, जब वे मर जाते हैं। मरकर उनको पता चलता है कि अरे! यह क्या हो गया? मर गए!

जिंदगी का ही हमें कोई ख्याल नहीं आ पाता। अस्तित्व भीतर बहा चला जाता है और हम चीजें बटोरने में, फर्नीचर इकट्ठा करने में, मकान बनाने में, क्षुद्र में व्यस्त होते हैं। वह क्षुद्र की व्यस्तता इतनी ज्यादा है कि यह भीतर की जो धारा बह रही है, इसका हमें अवसर ही नहीं मिलता, मौका ही नहीं मिलता है।

मेरे पास लोग आते हैं। एक बूढ़े मित्र, एक कालेज के प्रिंसिपल हैं, वे कुछ दिन पहले मेरे पास आए। कम से कम साठ के करीब उम्र हो गई होगी। वे कहने लगे कि अब तो ऊब गया संसार से। अब तो मेरा मन परमात्मा की तरफ लगा दें। तो मैंने उनसे कहा, अगर सच में ही ऊब गए हों, तो एक छलांग लें। अब सारा जीवन ध्यानपूर्ण करने में लग जाएं।

उन्होंने कहा, सारा जीवन! घंटा, आधा घंटा रोज दे सकता हूं। क्योंकि अभी नौकरी जारी रखी है। वैसे तो कोई जरूरत नहीं है अब नौकरी की। सब है। लेकिन वक्त-बेवक्त कब जरूरत पड़ जाए, इसलिए! ऐसे तो सब लड़के कामकाज में लग गए हैं। लड़कियों की शादी हो गई है। लेकिन प्रतिष्ठा है, बंगला है, कार है, तो उस सब को तो सम्हालना पड़ता है। तो ऐसी कुछ तरकीब बताएं कि आधा घंटा रोज ध्यान कर लूं। और दो साल बाद, पक्का आपको विश्वास दिलाता हूं कि दो साल बाद पूरा जीवन ध्यान में लगा दूंगा।

मैंने कहा, माना। मुझे तो आप विश्वास दिलाते हैं, दो साल बाद। दो साल बाद आप बचेंगे, इसका कोई पक्का भरोसा है! और कहते हैं कि संसार से मन ऊब गया, लेकिन बंगले की प्रतिष्ठा है, वह नहीं छोड़ी जाती! और कहते हैं कि अब संसार में कुछ लेना-देना नहीं रहा, लेकिन नौकरी को खींचे जा रहे हैं जबरदस्ती!

क्या है, कठिनाई क्या है आदमी की? और दो साल बाद टाल रहे हैं, कि दो साल बाद। दो साल बाद भी पक्का मानिए, अगर वे बचे रहे, तो वे और आगे सरका देंगे बात को। क्योंकि यह सरकाने वाला मन दो साल बाद

भी तो साथ ही रहेगा। यह पोस्टपोन करता जाता है। यह तब तक हटाता जाता है, जब तक मौत आकर इसको काट ही नहीं डालती। और कह देती है कि अब हटाने की कोई जगह न बची, समय समाप्त हो गया।

यह जो हमारी क्षुद्र में उलझी हुई चित्त की दशा है, इसके कारण उसका प्रमाण नहीं मिलता। क्षुद्र में जब चित्त लगा होगा, तो क्षुद्र का ही प्रमाण मिलता है।

क्षुद्र से थोड़ा हटें भीतर की तरफ, और विराट को थोड़ा मौका दें। उसकी आवाज आपको सुनाई पड़ सके, इसलिए थोड़ा चुप हों। अपनी आवाज थोड़ी बंद करें। क्योंकि उसकी आवाज बहुत धीमी है। और अपनी दौड़-धूप जरा रोकें और थोड़ा रुकें; ठहरें। क्योंकि ठहरेंगे, तो उसका पता चलेगा, जो भीतर सदा से ठहरा हुआ है। जब तक आप दौड़ रहे हैं, तब तक भीतर जो ठहरा हुआ है, उससे संबंध नहीं हो पाता। थोड़े रुक जाएं।

परमात्मा को खोजने के लिए कोई दौड़ने की जरूरत नहीं है। संसार खोजना हो, तो दौड़ना पड़ता है। परमात्मा को खोजना हो, तो रुकना पड़ता है। परमात्मा को खोजने के लिए कोई शोरगुल मचाने की जरूरत नहीं है। उसे खोजना हो, तो चुप और मौन होने की जरूरत है। तो प्रमाण मिलना शुरू हो जाएगा।

और कोई दूसरा आपको प्रमाण नहीं दे सकता। आप ही अपने को प्रमाण दे सकेंगे। अपनी प्यास को समझें और अपने भीतर झांकने की कला सीखें। प्रमाण बहुलता से है। उसी-उसी का प्रमाण है। लेकिन देखने वाली आंखें और सुनने वाले कान चाहिए।

जीसस ने बार-बार कहा है, अगर आंखें हों, तो देख लो; अगर कान हों, तो सुन लो। अगर समझ हो, तो समझ लो।

जिनसे कहा है, वे आप ही जैसे कान वाले थे, आंख वाले थे, समझ वाले थे। यह जीसस की बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। यह आंख वाले लोगों से ऐसा कहना कि आंख हो तो देख लो, कान हो तो सुन लो, समझ हो तो समझ लो, अपमानजनक मालूम पड़ता है। क्योंकि इतने अंधे, इतने बहरे, इतने बुद्धिहीन कहां खोजे होंगे! क्योंकि जिंदगीभर जीसस यही कहते हैं।

वे किन्हीं और आंखों की बात कर रहे हैं। इन आंखों से आप परमात्मा का प्रमाण न पा सकेंगे। इन आंखों से पदार्थ का ही प्रमाण मिलेगा। इन कानों से आप उसकी आवाज न सुन सकेंगे। इन कानों से तो आपको जगत का शोरगुल ही सुनाई पड़ेगा। इस बुद्धि से आप उसको न समझ पाएंगे। इस बुद्धि से तो आप हिसाब-किताब की दुनिया में ही, रुपए-पैसे की दुनिया में ही, बैंक बैलेंस को बढ़ा पाएंगे।

और भी एक आंख है। उसी आंख को कृष्ण श्रद्धा कह रहे हैं। उसी आंख को बुद्ध ध्यान कहते हैं। उसी आंख को मीरा कीर्तन कहती है, भजन कहती है, प्रार्थना कहती है।

एक और कान है--मौन का, चुप हो जाने का। जब बाहर की सब आवाजें छोड़ दी जाती हैं, तो भीतर की सतत ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।

नाद भीतर बज रहा है, पर आप खाली नहीं हैं, आप उन्मुख नहीं हैं। आप उस नाद की तरफ बेमुख हैं, पीठ किए खड़े हैं। वहां सतत धीमी-धीमी चोट पड़ रही है। वहां कोई निरंतर तारों को छेड़ रहा है। और आप कहते हैं, प्रमाण कहां है?

हमारी हालत ऐसी है, मैंने सुना है कि एक संगीतज्ञ अपनी पत्नी के साथ एक चर्च के पास से गुजरता था। और सांझ को चर्च की घंटियां बज रही थीं। बड़ी प्यारी और मधुर थीं। और सांझ के सन्नाटे में, जब रास्ता सुनसान हो गया था और चर्च के वृक्षों के पक्षी भी आकर शांति से सो गए थे, सांझ के उस सन्नाटे में उन घंटियों का बजना उस संगीतज्ञ के हृदय में लहरें लेने लगा।

उसने अपनी पत्नी से कहा--धीमे से कहा; संगीतज्ञ था, जोर से बोलने में उसे लगा होगा, हिंसा होगी; इतनी मधुर आवाज में बाधा पड़ेगी--उसने धीरे से कहा, सुनती हो; कितनी प्यारी आवाज है! घंटियां कितनी मधुर हैं!

उसकी पत्नी ने क्या कहा पता है! उसने कहा, ये चर्च के मूरख लोग घंटा बजाना बंद करें, तो तुम्हारी बात सुन सकूं कि तुम क्या कह रहे हो!

संगीतज्ञ ने दुबारा नहीं कहा होगा उससे; अब कुछ कहने का उपाय नहीं रहा। बाहर घंटा बज रहा है, उसमें शोरगुल भी सुनाई पड़ सकता है और संगीत भी। अगर संगीत को पकड़ने वाला हृदय है, तो संगीत सुनाई पड़ सकता है।

नहीं तो मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक शास्त्रीय संगीतज्ञ को सुनने चला गया था। थोड़ी ही देर में मुल्ला की पत्नी ने देखा कि मुल्ला बहुत बेचैन हो रहा है, करवट बदल रहा है अपनी कुर्सी पर। उसकी पत्नी ने कहा, तुम इतने परेशान क्यों हो रहे हो? उसके माथे पर पसीना भी बह रहा है।

उसने कहा कि मैं इसलिए परेशान हो रहा हूं, क्योंकि यह आदमी जैसी आवाजें कर रहा है, ऐसे ही अपना बकरा भी आवाजें करके मर गया था। इसकी हालत खराब है। यह सन्निपात में मालूम होता है। अब यह जल्दी ही मरने वाला है। अपन यहां से निकल भागें। कहीं हम भी न फंसें इस उपद्रव में कि यह कैसे मर गया! और यह मरेगा पक्का। यही हालत अपने बकरे की हो गई थी, जब वह इस तरह की आवाजें कर-करके मरा था।

संगीत की समझ कान से नहीं होती। कान से तो सुनाई पड़ रहा है उसे भी। संगीत की समझ भीतर एक हारमनी, एक समस्वरता पैदा हो, तो पकड़ में आती है।

ईश्वर तो विराटतम समस्वरता है; वह तो महानतम संगीत है। उसके योग्य हृदय बनाना होगा, तो उसका प्रमाण मिलेगा। उसका प्रमाण खोजकर आप सोचते हैं कि हम अपने को बदलेंगे, तो आपको जन्मों-जन्मों तक उसकी कोई खबर न मिलेगी। आप अपने को बदलें, तो उसका प्रमाण आपको आज भी मिल सकता है। जन्मों तक रुकने की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन हम उलटे हैं। हम कहते हैं, पहले प्रमाण चाहिए, तभी तो हम उसको खोजने निकलेंगे! और उसकी खोज ही शुरू तब होती है, जब आप अपने हृदय को उसके प्रमाण को पाने योग्य बनाते हैं। यह अड़चन है।

अगर आपकी तैयारी हो, कि बिना इसकी फिक्र किए कि वह है या नहीं, हम अपने हृदय को शांत करने को तैयार हैं। और हर्ज क्या हो जाएगा? अगर वह न भी हुआ और आपका हृदय शांत हो गया, तो क्या हर्ज हो जाएगा? फायदा ही होगा। और अगर वह न भी हुआ और आपका हृदय प्रेम से भर गया, तो नुकसान क्या है? फायदा ही होगा। और अगर वह न भी हुआ और आप मौन हो गए और ध्यान में उतर गए, तो क्या खो देंगे आप? कुछ पा ही लेंगे।

लेकिन जो भी उस ध्यान में गए हैं, जो भी उस मौन में गए हैं, उन्होंने तत्क्षण कहा कि मिल गया प्रमाण उसका। वह है। लेकिन वे भी हमें प्रमाण नहीं दिला सकते। उनको ही प्रमाण मिला है।

धर्म की सभी अभिव्यक्तियां निजी और वैयक्तिक हैं। और धर्म के सभी गवाह निजी और वैयक्तिक हैं। वे दूसरे के लिए गवाही नहीं दे सकते हैं।

मैं अपने लिए गवाही दे सकता हूं कि मिल गया। पर मेरी गवाही आपके लिए क्या मतलब की होगी? आप फिर भी कहेंगे, प्रमाण? तो फिर मैं आपसे भी कहूंगा, स्वाद लेना पड़ेगा, चखना पड़ेगा।

तो तैयार हों चखने के लिए, स्वाद लेने के लिए। लेकिन अगर आप कहें कि जब तक हम मानें न कि वह है, तब तक हम चखें कैसे? स्वाद तो हम पीछे लेंगे, पहले पक्का प्रमाण हो जाए कि वह है। तो फिर आपको रुकना पड़ेगा। फिर किसी के वश के बाहर हैं आप। फिर आप इंपासिबल हैं, असंभव हैं। फिर आपके साथ कुछ किया नहीं जा सकता।

तो रुकें। धीरे-धीरे थक जाएंगे अपने से किसी दिन, तो शायद आप राजी हो जाएं कि ठीक; चखेंगे पहले, प्रमाण बाद में खोज लेंगे। और जो चखने को राजी हो जाता है, उसे प्रमाण मिल जाता है।

आखिरी प्रश्न। आपने कहा है कि दो विपरीत मार्ग हैं, ध्यान और प्रेम; बुद्धि या भाव। तो बताएं कि ध्यान-साधना और प्रेम-साधना में क्या फर्क है? क्या ध्यानी व्यक्ति समाधि के पहले प्रेमपूर्ण नहीं होता?

ध्यान और प्रार्थना में बहुत फर्क है; भाषाकोश में चाहे फर्क न भी मिले। जो लोग प्रयोग करते हैं, उनके लिए बहुत फर्क है। दोनों की प्रक्रियाएं विपरीत हैं। परिणाम जब आता है, तो फर्क नहीं रह जाता। लेकिन मार्ग पर बहुत फर्क है।

ऐसा समझें कि आप एक बड़ा वर्तुल बनाएं, एक सर्किल बनाएं। और वर्तुल का एक केंद्र हो, और वर्तुल की परिधि से आप लकीरें खींचें केंद्र की तरफ। तो परिधि से जब आप दो लकीरें केंद्र की तरफ खींचेंगे, तो दोनों में फासला होगा। फिर जैसे-जैसे वे केंद्र के करीब पहुंचने लगेंगी, फासला कम होता जाएगा। और जब वे बिल्कुल केंद्र पर पहुंचेंगी, तो फासला समाप्त हो जाएगा। एक ही बिंदु पर दोनों मिल जाएंगी। परिधि पर फासला होगा; केंद्र पर फासला समाप्त हो जाएगा।

सभी मार्ग संसार की परिधि से परमात्मा के केंद्र की तरफ जाते हैं। मार्गों में बड़ा फर्क है। विपरीतता भी हो सकती है। लेकिन केंद्र पर पहुंचकर सारी विपरीतता खो जाती है, और वे एक हो जाते हैं।

प्रेम के मार्ग का अर्थ है, दूसरा महत्वपूर्ण है मुझ से, पहली बात। मुझे अपने को समाप्त करना है और दूसरे को बढ़ाना है। वह दूसरा कोई भी हो। वह क्राइस्ट हों, कृष्ण हों। कोई भी प्रतीक हो। गुरु हो, कोई धारणा हो, कोई भी भाव हो। दूसरा महत्वपूर्ण है; मैं महत्वपूर्ण नहीं हूं। मुझे अपने को छांटना है और दूसरे को बड़ा करना है।

और एक ऐसी जगह आ जाना है, जहां मैं बिल्कुल शून्य हो जाऊं और वह दूसरा ही सिर्फ शेष रह जाए। मुझे मेरी कोई खबर न रहे। मैं मिट जाऊं। मैं बचूं न। मैं ऐसा पुंछ जाऊं, जैसे कहीं था ही नहीं। जैसे पानी पर खींची लकीर मिट जाती है, ऐसे मैं मिट जाऊं; और दूसरा रह जाए। और दूसरा ही रह जाए। बस, दूसरे का ही मुझे पता हो। दूसरे की ही प्रतीति मुझे हो कि वह है, और मैं न रहूं। तू बचे और मैं खो जाए। यह तो प्रेम की प्रक्रिया है। प्रार्थना का यही रूप है।

ध्यान की प्रक्रिया बिल्कुल उलटी है। ध्यान की प्रक्रिया है कि सारा जगत खो जाए और मैं ही बचूं। सब खो जाए मेरे चित्त से। जिन्हें मैं प्रेम करता हूं, वे भूल जाएं। जिन्हें मैंने चाहा है, वे भूल जाएं। ईश्वर भी मेरे ख्याल में न रह जाए। दूसरा न बचे। दूसरे का कोई बोध ही न बचे। दि अदर, वह जो दूसरा है, उसको मैं पोंछ डालूं, बिल्कुल समाप्त कर दूं। वह रहे ही न। बस, एक मैं ही रह जाऊं, अकेला। कोई विचार न हो; कोई भाव न हो; कोई विषय न हो। कुछ भी न बचे। खाली, अकेला मैं बचूं; सारा संसार खो जाए। यह ध्यान की प्रक्रिया है।

तू बिल्कुल मिट जाए और शुद्ध मैं बचे--यह ध्यान है। मैं बिल्कुल मिट जाऊं, शुद्ध तू बचे--यह प्रेम है। ये बिल्कुल उलटे चलते हैं। इसलिए रास्ता बिल्कुल अलग-अलग है।

इसलिए ध्यानी मजाक उड़ाएगा प्रेमी की, कि क्या पागलपन में पड़ा है! दूसरे को छोड़, क्योंकि दूसरा बंधन है। और प्रेमी मजाक उड़ाएगा ध्यानी की, कि क्या कर रहे हो! खुद को बचा रहे हो? यह खुद का बचाना ही तो उपद्रव है। खुद को मिटाना है। यह मैं ही तो रोग है। और तुम इसी को बचा रहे हो! इसको समर्पित कर दो। तू के चरणों में डाल दो।

तो प्रेमी और ध्यानी मार्ग पर जब होते हैं, तब एक-दूसरे को समझ भी नहीं पाते। एक-दूसरे को गलत ही समझेंगे। क्योंकि उलटे जा रहे हो! इससे तो और भटक जाओगे। लेकिन जब दोनों पहुंच जाते हैं बिंदु पर, तो बड़ी अदभुत घटना घटती है।

वह अदभुत घटना यह है कि चाहे मैं तू को मिटाकर चलूं और मैं को बचाऊं--ध्यान का मार्ग; या मैं मैं को मिटाऊं और तू को बचाऊं--प्रार्थना का मार्ग; जिस क्षण मैं मिट जाता है, उस क्षण तू नहीं बच सकता। और जिस क्षण तू मिट जाता है, उस दिन मैं नहीं बच सकता। क्योंकि दोनों साथ-साथ बचते हैं।

इसे थोड़ा समझ लें। यह आखिरी बिंदु की बात है।

जब मैं अपने मैं को मिटाता चला जाता हूं और सिर्फ तू ही बचता है, तो ध्यान रहे, मुझे उस तू का पता तभी तक होगा, जब तक मुझे सूक्ष्म में मेरा भी पता चल रहा है। नहीं तो तू का पता नहीं होगा। तू कहिएगा कैसे उसे? किसके खिलाफ? किसके विरोध में? अगर सफेद लकीर दिखाई पड़ती है, तो काली पृष्ठभूमि चाहिए।

अगर मैं बिल्कुल ही मिट गया हूं, तो तू कैसे बचेगा? थोड़ा मुझे बचना चाहिए, थोड़ा; तो मुझे तू का पता चलेगा। मैं होना चाहिए। मैं को ही तो पता चलेगा कि तू है। तो मैं को भुला सकता हूं, लेकिन मिट नहीं सकता। अगर मैं बिल्कुल मिट जाऊंगा, जिस क्षण मेरा मैं बिल्कुल तिरोहित हो जाएगा, उसी क्षण तू भी खो जाएगा। एक बचेगा, जो न मैं है और न तू।

और ठीक ऐसा ही घटेगा ध्यान के मार्ग पर। जब मैं बिल्कुल अकेला मैं बचूंगा, तब भी मुझे कैसे पता चलेगा कि मैं हूं? मेरे होने का बोध भी दूसरे के बोध के कारण होता है। दूसरा चाहिए परिधि पर, तभी मुझे पता लगता है कि मैं हूं। और जब दूसरा बिल्कुल खो गया, पूरा संसार खो गया, तो मैं भी नहीं बच सकता। मैं भी उस संसार का एक हिस्सा था। मैं भी उसी संसार के साथ खो जाऊंगा। जैसे ही तू पूरा मिट जाता है, मैं भी तिरोहित हो जाता हूं। और जो बचता है, वह न मैं है, न तू है।

ये मार्ग विपरीत हैं। इन मार्गों से जहां पहुंचा जाता है, वह एक ही है। और अब आप समझ सकते हैं कि दोनों तरफ से पहुंचा जा सकता है। दो में से एक को मिटा दो, दूसरा अपने आप मिट जाता है। अब आप किसको चुनते हैं मिटाना, यह व्यक्ति की निजी रुझान पर है।

दो में से एक को मिटा देने की कला है। दूसरा मिटेगा, क्योंकि दूसरा उस एक का ही अनिवार्य हिस्सा था। अगर हम दुनिया से प्रकाश को मिटा दें, तो अंधेरा मिट जाएगा। लगेगा मुश्किल है। क्योंकि घर में आप दीया बुझा देते हैं, अंधेरा तो नहीं मिटता। अंधेरा और प्रकट हो जाता है। लेकिन दुनिया से नहीं मिट रहा है प्रकाश। अस्तित्व से अगर प्रकाश मिट जाए, तो अंधेरा मिट जाएगा। अगर अंधेरा मिट जाए, तो प्रकाश मिट जाएगा।

अगर दुनिया से हम मृत्यु को मिटा दें, तो जीवन उसी दिन मिट जाएगा। अभी हमको उलटा लगता है। अभी तो हमको लगता है कि मृत्यु जीवन को मिटाती है। आपको पता नहीं है फिर। वे एक ही चीज के दो हिस्से

हैं। अगर मृत्यु न हो, तो जीवन नहीं हो सकता। और जीवन न हो, तब तो मृत्यु होगी ही कैसे? एक चीज को मिटा दें, दूसरी तत्क्षण मिट जाएगी।

बहुत मजे की बात है। अगर हम दुनिया से दुख मिटा दें, तो सुख मिट जाएंगे। अगर हम दुनिया से शत्रु मिटा दें, तो मित्र मिट जाएंगे। अगर हम दुनिया से घृणा मिटा दें, तो प्रेम मिट जाएगा। आप दूसरे को नहीं बचा सकते हैं; वह अनिवार्य जोड़ा है। वे एक साथ ही होते हैं।

इसी का प्रयोग है ध्यान, इसी का प्रयोग है प्रार्थना। एक को मिटा दें, दूसरा अपने आप मिट जाएगा। उसकी फिक्र न करें। आप एक को मिटाने में लगें। फिर आपका रुझान है, जो आपको करना हो।

अपने को मिटाने की तैयारी हो, तो प्रार्थना में चल पड़ें। डर लगता हो अपने को मिटाने में, तो फिर समस्त को मिटा दें, जो भी पर है। भाव से, विचार से, सब को हटा दें। फिर अकेले रह जाएं। दोनों से ही पहुंच जाएंगे वहां, जहां दोनों नहीं बचते हैं।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूं। इसलिए हे अर्जुन, तू मेरे में मन को लगा, और मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मेरे में ही निवास करेगा अर्थात मेरे को ही प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

मुझ में चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूपी समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूं!

जैसा मैंने कहा, प्रार्थना के मार्ग पर स्वयं को मिटाना शुरू करना होता है। तो वह जो तू है, प्रार्थना के साधक के लिए परमात्मा जो है, भगवान जो है, जो भी उसकी धारणा है परम सत्ता की, वह अपने को गलाता है, मिटाता है, उसके चरणों में समर्पित करता है। और जैसे-जैसे वह अपने को गलाता है, मिटाता है, वैसे-वैसे परमात्मा शक्तिशाली होता जाता है।

परमात्मा की शक्ति का अर्थ ही यह है कि मैं अब कोई बाधा नहीं डाल रहा हूं। मैं अपने को मिटा रहा हूं। अब मैं कोई अड़चन खड़ी नहीं कर रहा हूं। मैं अपने को हटा रहा हूं। मैं रास्ते से मिट रहा हूं। और मैं उसे कह रहा हूं कि अब तू जो भी करना चाहे, कर।

ऐसा समझें कि आप द्वार-दरवाजे बंद करके अपने घर में बैठे हैं। बाहर सूरज निकला है। सारा जगत आलोक से भरा है। और आप अपने द्वार-दरवाजे बंद करके घर के अंदर अंधेरे में बैठे हैं।

भक्त कहता है कि प्रकाश को तो भीतर लाना मुश्किल है। क्योंकि मेरी सामर्थ्य क्या? उस सूरज के प्रकाश को मैं भीतर लाऊंगा भी कैसे? कोई पोटलियां बांधकर उसे लाया भी नहीं जा सकता। और अगर आप पोटलियां बांधकर प्रकाश को भीतर लाएंगे, तो पोटलियां भीतर आ जाएंगी, प्रकाश बाहर ही रह जाएगा।

प्रकाश को लाने का, भक्त कहता है, एक ही उपाय है कि मैं अपने द्वार-दरवाजे खोल दूं। मैं कोई बाधा न डालूं। मैं किसी तरह का अवरोध खड़ा न करूं। तो प्रकाश तो अपने से आ जाएगा। प्रकाश तो आ ही रहा है। मेरे ही कारण रुका है।

भक्त की साधना का भाव यह है कि परमात्मा तो प्रतिपल उपलब्ध है। मेरे ही कारण रुका है। उसे खोजने नहीं जाना है। मैं ही उसको जगह-जगह से दीवालें बनाकर रोके हूं कि मेरे भीतर नहीं आ पाता। मैं ही इतना होशियार, इतना कुशल, इतना चालाक हूं कि मैं उसको भी सम्हाल-सम्हालकर भीतर आने देता हूं। जहां तक

तो मैं उसे भीतर प्रवेश करने नहीं देता। चारों तरफ मैंने सुरक्षा की दीवाल बना रखी है। भक्त कहता है, इस दीवाल को गिरा देना है।

तो कृष्ण कह रहे हैं कि जैसे ही कोई अपने चारों तरफ की अस्मिता की, अहंकार की दीवाल को गिरा देता है, मैं तत्क्षण उसका उद्धार करने में लग जाता हूं। क्योंकि प्रकाश भीतर प्रवेश करने लगता है। और उस प्रकाश की किरणें आकर आपको रूपांतरित करने लगती हैं। और जब आपको मिटने में मजा आ जाता है, तो फिर मिटने में दिक्कत नहीं रहती।

पहले ही चरण की कठिनाई है। हमें लगता है कि अगर मिट गए तो! कहीं मिट न जाएं! तो डरे हुए हैं। एक दफा आपको मिटने का जरा-सा भी मजा आ जाए, जरा-सा भी स्वाद आ जाए, तो आप कहेंगे कि अब, अब बचना नहीं है, अब मिटना है।

रामानुज के पास एक आदमी आया। और उस आदमी ने कहा कि तुम जैसे आनंद में डूब गए हो, मुझे भी डुबा दो। मुझे परमात्मा की बड़ी तलाश है। मुझे भी सिखाओ यह परमात्मा का प्रेम। तो रामानुज ने कहा कि तूने कभी किसी को प्रेम किया है? उस आदमी ने कहा कि मैं हमेशा परमात्मा की खोज करता रहा और प्रेम वगैरह से मैं हमेशा दूर रहा। इस झंझट में मैं पड़ा नहीं।

रामानुज ने कहा कि फिर भी तू सोच। थोड़ा-बहुत, किसी को भी कभी प्रेम किया हो--किसी मित्र को, किसी स्त्री को, किसी बच्चे को, किसी पशु को, पक्षी को--किसी को कभी थोड़ा प्रेम किया हो। उसने कहा कि मैं संसार की झंझट में नहीं पड़ता। मैं तो अपने को रोके हुए हूं। परमात्मा को प्रेम करना है। आप मुझे रास्ता बताओ। ये बातें आप क्यों पूछ रहे हो!

रामानुज ने तीसरी बार पूछा कि मैं तुझसे फिर पूछता हूं। थोड़ा खोज; अपने अतीत में कभी कोई थोड़ी-सी झलक भी प्रेम की तुझे मिली हो? उस आदमी ने कहा कि मैं आया हूं परमात्मा को खोजने और तुम कहां की बातों में मुझे लगा रहे हो! सीधी रस्ता बता दो। तो रामानुज ने कहा कि फिर मुश्किल है। क्योंकि अगर तूने थोड़ा-सा भी मिटना जाना होता किसी के भी प्रेम में, तो तुझे थोड़ा-सा रस होता। थोड़ा-सा ही मिटना जाना होता किसी के भी प्रेम में!

छोटा-सा भी प्रेम करो, तो थोड़ा तो मिटना ही पड़ता है। चाहे एक स्त्री से प्रेम हो, एक पुरुष से प्रेम हो। एक छोटे-से बच्चे से भी प्रेम करो, तो थोड़ा तो मिटना ही होता है। अपने को थोड़ा तो खोना ही होता है, तभी तो वह दूसरा आप में प्रवेश कर पाता है। नहीं तो प्रवेश ही नहीं कर पाता।

तो रामानुज ने कहा कि फिर मेरे वश के बाहर है तू। तेरी बीमारी जरा कठिन है। अगर तूने किसी को प्रेम किया होता, तो मैं तुझे यह बड़े प्रेम का मार्ग भी बता देता। क्योंकि तुझे थोड़ा स्वाद होता, तो तू समझ जाता कि मिटने का मतलब क्या है। तू कहता है, कभी तूने किया ही नहीं, तो तुझे मिटने का कोई अनुभव नहीं है।

संसार के प्रेम भी परमात्मा के रास्ते पर सबक हैं। इसलिए संसार के प्रेम से भी घबड़ाना मत। उस प्रेम के भी अनुभव को ले लेना।

थोड़ा ही सही, क्षणभर को ही सही, क्षणभंगुर ही सही, थोड़ा-सा भी मिटने का अनुभव इतनी तो खबर दे जाएगा कि मिटने में दुख नहीं है, मिटने में सुख है। इतनी तो प्रतीति हो जाएगी कि मिटने में एक मजा है। क्षणभर सही; वह स्वाद क्षणभर रहा हो। एक बूंद ही मिली हो उसकी, लेकिन इतना तो समझ में आ जाएगा कि मिटने में घबड़ाने की जरूरत नहीं है। मिटने में रस है, सुख है। मिटने में मजा है, एक मस्ती है। तो फिर हम परमात्मा की तरफ मिटने की बात भी सीख सकते हैं।

परमात्मा की तरफ तो पूरा मिटना होगा, रत्ती-रत्ती। कुछ भी बचना नहीं होगा। लेकिन जैसे ही हम मिटना शुरू हो जाते हैं कि परमात्मा प्रवेश करने लगता है।

कृष्ण का यह कहना कि उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला हूं। इसमें दूसरा शब्द है मृत्यु-रूप संसार, जो सोचने जैसा है।

इस जगत में प्रेम के अतिरिक्त मृत्यु के बाहर का कोई अनुभव नहीं है। जिसने प्रेम को नहीं जाना, उसने सिर्फ मृत्यु को ही जाना है। इसलिए एक बड़ी मजेदार घटना घटती है कि प्रेमी मरने को तैयार होता है। लेकिन जिसने प्रेम नहीं किया, वह मरने से बहुत डरता है।

प्रेमी मरने को हमेशा तैयार है। प्रेमी मजे से मर सकता है। प्रेमी को मरने में जरा भी भय नहीं है। तो अगर मजनू को मरना हो, तो मर सकता है। फरिहाद को मरना हो, तो मर सकता है। कोई अड़चन नहीं है। क्या बात है? आखिर प्रेमी मरने से क्यों नहीं डरता?

जरूर प्रेमी ने कुछ जान लिया है, जो मृत्यु के आगे जाता है और मृत्यु जिसे नहीं मिटा पाती। इसलिए जिसके जीवन में प्रेम की अनुभूति हुई, वह मरने से नहीं डरेगा। मरने से तो वे ही डरते हैं, जिन्होंने जाना ही नहीं कि मृत्यु के आगे कुछ और भी है।

कृष्ण कहते हैं, जो मुझ में पूरी तरह मिटने को तैयार है, मिटने को अर्थात मुझ में पूरी तरह मरने को तैयार है, उसे मैं मृत्यु-रूपी संसार से ऊपर उठा लेता हूं।

वह तो जैसे ही कोई मिटने को तैयार होता है प्रेम में, वैसे ही मृत्यु के पार उठ जाता है। प्रेम मृत्यु पर विजय है। आपका क्षुद्र प्रेम भी मृत्यु पर छोटी-सी विजय है। और अगर आपके जीवन में कोई भी प्रेम नहीं है, तो आप सिर्फ मरे हुए जी रहे हो। आपको जीवन का कोई अनुभव ही नहीं है।

इसीलिए जीवन इतना तड़पता है प्रेम को पाने के लिए। जीवन की यह तड़प मृत्यु के ऊपर कोई अनुभव पाने की आकांक्षा है। यह तड़प इतनी जोर से है, कि प्रेम! कहीं से प्रेम! किसी को मैं प्रेम कर सकूं और कोई मुझे प्रेम कर सके! यह असल में किसी भांति मैं जान सकूं--एक क्षण ही सही--जो मृत्यु के बाहर है, अतीत है, पार है, अतिक्रमण कर गया हो मृत्यु का।

तो प्रभु का प्रेम तो पूरा मिटा डालता है। प्रेमियों का प्रेम पूरा नहीं मिटाता है। क्षणभर को मिटाता है। कभी-कभी मिटाता है। क्षणभर बाद हम वापस अपनी जगह खड़े हो जाते हैं। द्वार-दरवाजे मिटते नहीं। जैसे हवा का तेज झोंका आता है, जरा-सा खुलते हैं और फिर बंद हो जाते हैं। जरा-सी झलक बाहर की रोशनी की, और द्वार फिर बंद हो जाते हैं। ऐसा साधारण प्रेम है।

लेकिन परमात्मा का प्रेम तो सारे द्वार-दरवाजे गिरा देने का है। सब जलाकर राख कर देने का है। अपने को उसमें ही खत्म कर देने का है। फिर जो अनुभूति होती है, वह अमृत की है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मृत्यु के पार उद्धार करने वाला हूं। इसलिए हे अर्जुन, तू मेरे में मन को लगा; मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मुझ में ही निवास करेगा, मुझको ही प्राप्त होगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

मुझ में मन को लगा और मुझ में ही बुद्धि को लगा। दो बातें कही हैं। मुझ में मन को लगा, मुझ में ही बुद्धि को लगा। लेकिन पहले कहा कि मुझ में मन को लगा।

हम सब कोशिश करते हैं, पहले बुद्धि को लगाने की। प्रमाण चाहिए, तर्क चाहिए, तब हम भाव करेंगे! यह नहीं हो सकता, यह उलटा है। पहले भाव। तो कृष्ण कहते हैं, मुझ में मन को लगा। बुद्धि को भी लगा।

एक दफा मन लग जाए, तो फिर बुद्धि भी लग जाती है। तर्क तो हमेशा भाव का अनुसरण करता है। क्योंकि भाव गहरा है और तर्क तो उथला है। बच्चा भाव के साथ पैदा होता है; तर्क तो बाद में सीखता है। तर्क तो दूसरों से सीखता है; भाव तो अपना लाता है। बुद्धि तो उधार है; मन तो अपना है, निजी है। यह जो निजी भाव अगर एक दफा चल पड़े, तो फिर बुद्धि इसके पीछे चलती है।

इसलिए देखें, हमारे तर्कों में बड़ा फर्क होता है, अगर हमारे भाव में फर्क हो। अगर हमारा भाव अलग हो, तो वही स्थिति हमें दूसरा तर्क सुझाती है।

सुना है मैंने कि एक सूफी फकीर शराब पीकर और प्रार्थना कर रहा था। उसके गुरु को खबर दी गई। जिन्होंने खबर दी, वे शिकायत लाए थे, और उन्होंने कहा कि निकाल बाहर करो अपने इस शिष्य को। यह शराब पीकर प्रार्थना कर रहा है! और अगर लोग देख लेंगे कि प्रार्थना करने वाले लोग शराब पीते हैं, तो कैसी बदनामी न होगी!

गुरु सुनकर नाचने लगा। और उसने कहा कि धन्यवाद तेरा, कि मेरे शिष्य शराब भी पी लें, तो भी प्रार्थना करना नहीं भूलते हैं! और गजब हो जाएगा, अगर दुनिया यह जान लेगी कि अब शराबी भी प्रार्थना करने लगे हैं!

स्थिति एक थी। तर्क अलग हो गए। वे खबर लाए थे कि अलग करो इसको आश्रम से। और गुरु ने कहा कि मैं जाऊंगा और स्वागत से उसे वापस लाऊंगा कि तूने तो गजब कर दिया। हम तो बिना शराब पीए भी कभी-कभी प्रार्थना करना भूल जाते हैं। बिना शराब पीए कभी-कभी प्रार्थना करना भूल जाते हैं! तू तो हद कर दिया कि शराब पीए है, तो भी प्रार्थना करने गया है! तेरी याददाश्त, तेरा स्मरण शराब भी नहीं मिटा पाती!

स्थिति एक है, भाव अलग हैं, तो तर्क बदल जाते हैं। तर्क भाव के पीछे चलें, तो ही कोई परमात्मा की खोज में जा सकता है। अगर तर्क के पीछे आप भावों को घसीटेंगे, तो आपने बैलगाड़ी के पीछे बैल बांध रखे हैं। फिर आप कितनी ही कोशिश करें, बैलगाड़ी कहीं जा नहीं सकती। और अगर जाएगी भी, तो किसी गड्ढे में जाएगी।

सीधा करें व्यवस्था को। भाव से बहें, क्योंकि भाव स्वभाव है, निसर्ग है। बुद्धि को पीछे चलने दें। बुद्धि हिसाबी-किताबी है। अच्छा है; उसकी जरूरत है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मुझ में मन को लगा। पहले अपने भाव को मुझ से जोड़ दे। फिर कोई हर्जा नहीं तेरी बुद्धि का।

इसलिए ऐसा मत सोचना कि आस्तिक जो हैं, वे कोई तर्कहीन हैं। अतर्क्य हैं, तर्कहीन नहीं हैं। आस्तिक जो हैं, वे भी तर्क करते हैं, और खूब गहरा तर्क करते हैं। लेकिन भाव के ऊपर तर्क को नहीं रखते हैं। कोई तार्किकों की कमी नहीं है आस्तिकों के पास। लेकिन भाव पहले है। और जो उन्होंने भाव से जाना है, उसे ही वे तर्क की भाषा में कहते हैं।

अब कोई शंकर से बड़ा तार्किक खोजना आसान थोड़े ही है। लेकिन शंकर का तर्क है भाव से बंधा। भाव पहले घट गया है। और अब तर्क केवल उस भाव को प्रस्थापित करने के लिए, उस भाव को समझाने के लिए, उस भाव को पुष्ट करने के लिए है।

जब कोई आदमी तर्क को पहले रखता है, तो वह अपने को पहले रखता है। जब कोई आदमी भाव को पहले रखता है, तो वह निसर्ग को पहले रखता है। निसर्ग आपसे बड़ा है, विराट है। बड़े को पीछे मत बांधिए छोटे के। छोटे को बड़े के पीछे चलने दीजिए।

तो कृष्ण कहते हैं, मुझ में मन को लगा; मुझ में बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मुझ में ही निवास करेगा। तू फिर मेरे हृदय में आ जाएगा।

तो ऐसा मत सोचना कि भगवान ही भक्त के हृदय तक आता है। जिस दिन भक्त राजी हो जाता है कि भगवान उसके हृदय में आ जाए, उस दिन भक्त भी भगवान के हृदय में पहुंच जाता है। तो ऐसा ही नहीं है कि भक्त ही याद कर-करके भगवान को अपने हृदय में रखता है। शुरुआत भक्त को ऐसे ही करनी पड़ती है। जिस दिन यह घटना घट जाती है... ।

कबीर ने कहा है कि बड़ी उलटी हालत हो गई है। हरि लागे पाछे फिरैं, कहत कबीर कबीर। पहले हम चिल्लाते फिरते थे कि हे प्रभु, कहां हो! और अब हालत ऐसी हो गई है कि हम कहीं भी भागें--हरि लागे पाछे फिरैं, कहत कबीर कबीर--अब हरि पीछे-पीछे भागते हैं और कहते हैं, कबीर! कबीर! कहां जाते हो कबीर?

भक्त शुरू करता है भगवान को अपने भीतर लेने से और आखिर में पाता है कि भगवान ने उसे अपने भीतर ले लिया है।

कृष्ण कहते हैं, उसके उपरांत तू मुझमें ही निवास करेगा, मुझको ही प्राप्त होगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

अगर भाव से शुरू करें, तो कुछ भी संशय नहीं है। अगर बुद्धि से शुरू करें, तो संशय ही संशय है। जरा-सा फर्क कि आप बुद्धि को पहले रख लें, फिर संशय ही संशय है। भाव को पहले रख लें, फिर कोई संशय नहीं है।

अपने भीतर खोज करनी चाहिए कि मैंने किस चीज को प्राथमिकता दे रखी है। हमारा अहंकार अपने को ही प्राथमिकता दिए हुए है। और हम को तो ऐसा लगता है कि हमारे ही ऊपर तो सारा सब कुछ टिका है। अगर हम ही जरा डांवाडोल हो गए अपने अहंकार से, तो सारा जगत न गिर जाए! सब को ऐसा लगता है।

सुना है मैंने, छिपकलियां मकानों को सम्हाले रहती हैं। छिपकलियां सोचती हैं कि अगर वे हट गईं, तो कहीं मकान की छत न गिर जाए! हम सब को भी ऐसा लगता है कि अगर हमने अपना तर्क छोड़ दिया, बुद्धि छोड़ दी, तो यह सारा जगत अभी भूमिसात हो जाए! सब गिर न जाए।

एक छोटी-सी कहानी से अपनी बात मैं पूरी करूं। नाजी जर्मनी में जब हिटलर की हुकूमत थी, एक दिन अखबार में एक विज्ञापन निकला। किसी पुलिस के बड़े आफिसर की जगह खाली थी। और कोई बड़ा महत्वपूर्ण पद था। जिस आफिसर को इंटरव्यू लेना था उस जगह के लिए, सुबह ही उसने देखा कि एक यहूदी बूढ़ा अखबार हाथ में लिए है और जहां विज्ञापन निकला था अखबार में, एडवरटाइजमेंट निकला था, उस पर लाल स्याही से गोल घेरा बनाए हुए अंदर आया।

वह आफिसर थोड़ा चकित हुआ कि यह बूढ़ा यहूदी क्या इस विज्ञापन के लिए आया हुआ है! उसने पूछा कि क्या आप इस विज्ञापन के लिए आए हुए हैं? उस बूढ़े ने कहा, जी हां। तो आफिसर और भी चकित हुआ। उसने कहा, थोड़ा देखिए तो कि विज्ञापन में क्या लिखा है! कि आदमी जवान चाहिए, और आपकी उम्र कम से कम सत्तर पार कर चुकी है। आदमी स्वस्थ-सुडौल चाहिए, और आपकी हालत ऐसी है कि आप जिंदा कैसे हैं, इस पर आश्चर्य होता है। इसमें लिखा हुआ है कि आंखें बिल्कुल स्वस्थ और ठीक होनी चाहिए, और आप इतना मोटा चश्मा लगाए हुए हैं कि मुझे शक है कि आपने यह विज्ञापन पढ़ा कैसे! और फिर इसमें लिखा हुआ है कि आदमी आर्यन जाति का चाहिए, और स्पष्टतः आप यहूदी हैं। तो आप किस लिए आए हैं?

तो उस यहूदी बूढ़े ने कहा, टु टेल यू जस्ट दिस, दैट डोंट डिपेंड आन मी--सिर्फ यही खबर करने आया हूं कि मुझ पर निर्भर मत रहना। कोई और आदमी खोज लो। इतना भर सूचन करने आया हूं कि मुझ पर निर्भर मत रहना।

हंसी आती है, लेकिन थोड़ा खोजेंगे, तो उस यहूदी को अपने भीतर पाएंगे। सारी दुनिया जैसे आपकी ही सोच-समझ, आपकी बुद्धि, आपके तर्क पर निर्भर है! और अगर आप जरा डांवाडोल हुए वहां से, तो यह सारी व्यवस्था टूट जाएगी!

कुछ नहीं है वहां भीतर सम्हालने को, लेकिन बस, सम्हाले हुए हैं! और कोई आप पर निर्भर नहीं है। लेकिन बड़ी जिम्मेवारी उठाए हुए हैं। सारा भार सारे संसार का आपकी ही समझ पर है! अगर आप नासमझ हो गए, तो सारा जगत रास्ते से विचलित हो जाएगा।

यह जो तर्क की दृष्टि है, यह जो अहंकार का बोध है, इसकी वजह से हम भाव को कभी भी आगे रखने में डरते हैं, क्योंकि भाव अराजक है। और भाव कहां ले जाएगा, नहीं कहा जा सकता। इसलिए हम सदा भाव को दबाए रखते हैं, क्योंकि भाव क्या करेगा, वह भी अनजान, अपरिचित, अज्ञात है।

तो भाव से हम भयभीत हैं। न तो कभी हम हंसते हैं खुलकर, क्योंकि डर लगता है कि कहीं सीमा के बाहर न हंस दें! न हम कभी रोते हैं हृदयपूर्वक, क्योंकि लगता है कि लोग क्या कहेंगे कि अभी भी बच्चों जैसा काम कर रहे हो!

नहीं; हम कुछ भी भाव से नहीं करने देते। सब पर बुद्धि को अड़ा देते हैं। तो भीतर आंसू भी इकट्ठे हो जाते हैं। सागर में भी इतना खारापन नहीं है, जितना आपके भीतर एक जिंदगी में इकट्ठा हो जाता है। आंसू ही आंसू इकट्ठे हो जाते हैं। हंसे भी कभी नहीं, तो मुर्दा हंसियां इकट्ठी हो जाती हैं, उनकी लाशें सड़ जाती हैं। सब जहर हो जाता है भीतर। भाव कहीं बाहर निकल न जाए, तो बुद्धि को सम्हाल-सम्हालकर चलते हैं।

इस दुनिया में इसलिए लोगों को इतनी ज्यादा शराब पीने की जरूरत पड़ती है, क्योंकि शराब पीकर थोड़ी देर को बुद्धि एक तरफ हट जाती है और भाव बाहर आ जाता है। और जब तक हम भाव को आगे नहीं रखते, तब तक दुनिया से शराब नहीं मिट सकती।

अब यह बड़े मजे का और उलझा हुआ मामला है। अक्सर जो लोग दुनिया से शराब मिटाना चाहते हैं, वे ही इस दुनिया में शराब के जिम्मेवार हैं। क्योंकि वे ही लोग बुद्धि को थोपते हैं, कि शराब में यह खराबी है, यह खराबी है, इसलिए मत पीओ। इससे यह नुकसान है, यह नुकसान है, इसलिए मत पीओ। ये ही लोग हैं, जिन्होंने सब नुकसान और खराबियां बता-बताकर भाव के जगत को भीतर बिल्कुल कुंठित कर दिया है। और इन्हीं की कृपा है कि उस कुंठित आदमी को थोड़ी देर को तो राहत चाहिए, तो वह पीकर राहत ले लेता है। थोड़ी देर को वह खुल जाता है।

आप देखें, एक आदमी शराब पीता है; जैसे-जैसे शराब पकड़ने लगती है उसको, उसके चेहरे पर रौनक आने लगती है। मुस्कुराने लगता है। जिंदगी में गति मालूम पड़ने लगती है। क्या हो रहा है? यह आदमी अभी मरा-मरा क्यों था? इस आदमी में यह ताजगी कहां से चली आ रही है?

यह शराब से नहीं आ रही है। शराब तो जहर है; उससे क्या ताजगी आएगी! यह ताजगी इसलिए आ रही है कि ताजगी तो सदा से भाव में भरी थी, लेकिन दबाकर बैठा था। अब वह जो दबाने वाली थी बुद्धि, शराब उसको बेहोश कर रही है। वह पहरेदार बेहोश हो रहा है। तो भीतर के दबे हुए भाव बाहर आ रहे हैं।

इसलिए शराब पीकर आदमी ज्यादा आदमी मालूम पड़ता है, जिंदा मालूम पड़ता है, अच्छा मालूम पड़ता है, भला मालूम पड़ता है। शराब यह सब कुछ नहीं कर रही है। लेकिन शराब पहरे को हटा रही है। वह जो तर्क का और बुद्धि का झंडा गड़ा हुआ था और बंदूक लिए पहरेदार खड़ा था, वह पी रहा है शराब, वह बेहोश हो जाएगा।

यही काम नींद कर रही है। सुबह आप ताजे मालूम पड़ते हैं, क्योंकि रात सपनों में तर्क से नहीं चलते, भाव से चलते हैं। रात सपने में तर्क सो जाता है और भाव की दुनिया मुक्त हो जाती है। आकाश में उड़ना हो, तो उड़ते हैं। उस वक्त यह नहीं कहते कि मैं संदेह करता हूं, आकाश में उड़ना कैसे हो सकता है? हम उड़ते हैं। सुबह भला संदेह करें। लेकिन रात मजे से उड़ते हैं। और जिससे प्रेम करना है, उससे सपने में प्रेम कर लेते हैं। उस वक्त यह नहीं कहते कि यह मैं क्या कर रहा हूं! यह अनैतिक है।

सपने में आप भाव से जीने लगते हैं; बुद्धि हट जाती है। इसलिए रात ताजगी देती है। सुबह आप ताजे उठते हैं। आप सोचते होंगे कि सपनों की वजह से आपको नुकसान होता है, तो आप गलती में हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सपना न आए, तो आप सुबह ताजे होकर न उठ सकेंगे। सपना आपको ताजा कर रहा है, क्योंकि सपना छुटकारा दे रहा है बुद्धि से।

अभी वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं कि अगर नींद में बाधा डाली जाए, तो ज्यादा नुकसान नहीं होता। लेकिन सपने में बाधा डाली जाए, तो ज्यादा नुकसान होता है। रात में कुछ घड़ी आप सपना देखते हैं, कुछ घड़ी सोते हैं। तो वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रयोग किए हैं--अब तो जांचने का उपाय है कि कब आप सपना ले रहे हैं और कब सो रहे हैं--तो जब आप सपना ले रहे हैं, तब जगा दिया हड़बड़ाकर। जब भी सपना लिया, तब जगा दिया। और जब शांति से सोए रहे, तो सोने दिया। तो पाया कि आदमी तीन दिन से ज्यादा बिना सपने के नहीं रह सकता। बिल्कुल टूट जाता है।

दूसरा प्रयोग भी किया है कि जब नींद आई, तब जगा दिया। और जब सपना आया, तब सोने दिया। कोई तकलीफ नहीं होती। सुबह आदमी उतना ही ताजा उठता है। इसलिए पहले ख्याल था कि नींद से ताजगी मिलती है। अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं, सपने से ताजगी मिलती है।

बड़ी हैरानी की बात है। सपने से ताजगी क्यों मिलती होगी? सपने से ताजगी इसीलिए मिलती है कि बुद्धि का बोझ हट जाता है। और जब बुद्धि का बोझ हट जाता है, तो आप जिंदगी का रस लेकर वापस लौट आते हैं।

भक्त जागते जिंदगी का बोझ फेंक देता है और एक आध्यात्मिक स्वप्न में लीन हो जाता है। उस स्वप्न में वह सब कुछ न्योछावर कर देता है। और कृष्ण कहते हैं, तब उसे मैं उठा लेता हूं।

तुम्हारी बुद्धि से जो सत्य दिखाई पड़ रहा है, वह इतना सत्य नहीं है, जितना प्रेम और भाव से दिखाई पड़ने वाला स्वप्न भी सत्य होता है।

अब पांच मिनट कीर्तन करें। लेकिन कोई बीच में न उठे। कीर्तन पूरा करें और फिर जाएं।

पांचवां प्रवचन

अहंकार घाव है

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।

अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।। 9।।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।

मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।। 10।।

और तू यदि मन को मेरे में अचल स्थापन करने के लिए समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन, अभ्यासरूप-योग से मेरे को प्राप्त होने के लिए इच्छा कर।

और यदि तू ऊपर कहे हुए अभ्यास में भी असमर्थ है, तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, क्या संसारी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता? घर-बार और स्त्री ही क्या ईश्वर को पाने में बाधा है? संसारी के लिए क्या ईश्वर को पाने का कोई उपाय नहीं है?

ऐसी भ्रांति प्रचलित है कि संसारी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता है। इससे बड़ी और कोई भ्रांति की बात नहीं हो सकती, क्योंकि होने का अर्थ ही संसार में होना है। आप संसार में किस ढंग से होते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता। संसार में होना ही पड़ता है, अगर आप हैं। होने का अर्थ ही संसार में होना है। फिर आप घर में बैठते हैं कि आश्रम में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

घर भी उतना ही संसार में है, जितना आश्रम। और आप पत्नी-बच्चों के साथ रहते हैं या उनको छोड़कर भागते हैं, जहां आप रहते हैं, वह भी संसार है; जहां आप भागते हैं, वह भी संसार है। होना है संसार में ही।

और जब परमात्मा भी संसार से भयभीत नहीं है, तो आप इतने क्यों भयभीत हैं? और जब हम परमात्मा को मानते हैं कि वही कण-कण में समाया हुआ है; इस संसार में भी वही है; संसार भी वही है... ।

संसार से भागकर वह नहीं मिलेगा। क्योंकि गहरे में तो जो भाग रहा है, वह उसे पा ही नहीं सकेगा। उसे तो पाता वह है, जो ठहर गया है। भगोड़ों के लिए नहीं है परमात्मा। ठहर जाने वाले लोगों के लिए है, थिर हो जाने वाले लोगों के लिए है।

आप कहां हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता। अगर आप शांत हैं और ठहरे हुए हैं, तो वहीं परमात्मा से मिलन हो जाएगा। अगर आप दुकान पर बैठे हुए भी शांत हैं और आपके मन में कोई दुविधा, कोई अड़चन, कोई द्वंद्व, कोई संघर्ष, कोई तनाव नहीं है, तो उस दुकान पर ही परमात्मा उतर आएगा। और आप आश्रम में भी बैठे हो सकते हैं, और मन में द्वंद्व और दुविधा और परेशानी हो, तो वहां भी परमात्मा से कोई संपर्क न हो पाएगा।

न तो पत्नी रोकती है, न बच्चे रोकते हैं। आपके मन की ही द्वंद्वग्रस्त स्थिति रोकती है। संसार नहीं रोकता, आपके ही मन की विक्षिप्तता रोकती है।

संसार से भागने से कुछ भी न होगा। क्योंकि संसार से भागना एक तो असंभव है। जहां भी जाएंगे, पाएंगे संसार है। और फिर आप तो अपने साथ ही चले जाएंगे, कहीं भी भागें। घर छूट सकता है, पत्नी छूट सकती है, बच्चे छूट सकते हैं। आप अपने को छोड़कर कहां भागिएगा?

और पत्नी वहां आपके कारण थी, और बच्चे आपके कारण थे। आप जहां भी जाएंगे, वहां पत्नी पैदा कर लेंगे। आप बच नहीं सकते। वह घर आपने बनाया था। और जिसने बनाया था, वह साथ ही रहेगा। वह फिर बना लेगा। आप असली कारीगर को तो साथ ले जा रहे हैं। वह आप हैं।

अगर यहां धन को पकड़ते थे, तो वहां भी कुछ न कुछ आप पकड़ लेंगे। वह पकड़ने वाला भीतर है। अगर यहां मुकदमा लड़ते थे अपने मकान के लिए, तो वहां आश्रम के लिए लड़िएगा। लेकिन मुकदमा आप लड़िएगा। यहां कहते थे, यह मेरा मकान है; वहां आप कहिएगा, यह मेरा आश्रम है। लेकिन वह मेरा आपके साथ होगा।

आप भाग नहीं सकते। अपने से कैसे भाग सकते हैं? और आप ही हैं रोग। यह तो ऐसा हुआ कि टी.बी. का मरीज भाग खड़ा हो। सोचे कि भागने से टी.बी. से छुटकारा हो जाएगा। मगर वह टी.बी. आपके साथ ही भाग रही है। और भागने में और हालत खराब हो जाएगी।

भागना बचकाना है। भागना नहीं है, जागना है। संसार से भागने से परमात्मा नहीं मिलता, और न संसार में रहने से मिलता है। संसार में जागने से मिलता है। संसार एक परिस्थिति है। उस परिस्थिति में आप सोए हुए हों, तो परमात्मा को खोए रहेंगे। उस परिस्थिति में आप जाग जाएं, तो परमात्मा मिल जाएगा।

ऐसा समझें कि एक आदमी सुबह एक बगीचे में सो रहा है। सूरज निकल आया है, और पक्षी गीत गा रहे हैं, और फूल खिल गए हैं, और हवाएं सुगंध से भरी हैं, और वह सो रहा है। उसे कुछ भी पता नहीं कि क्या मौजूद है। आंख खोले, जागे, तो उसे पता चले कि क्या मौजूद है। जब तक सो रहा है, तब तक अपने ही सपनों में है।

हो सकता है--यह फूलों से भरा बगीचा, यह आकाश, ये हवाएं, यह सूरज, ये पक्षियों के गीत तो उसके लिए हैं ही नहीं--हो सकता है, वह एक दुखस्वप्न देख रहा हो, एक नरक में पड़ा हो। इस बगीचे के बीच, इस सौंदर्य के बीच वह एक सपना देख रहा हो कि मैं नरक में सड़ रहा हूं और आग की लपटों में जल रहा हूं।

जिसे हम संसार कह रहे हैं, वह संसार नहीं है। हमारा सपना, हमारा सोया हुआ होना ही संसार है। परमात्मा तो चारों तरफ मौजूद है, पर हम सोए हुए हैं। वह अभी और यहां भी मौजूद है। वही आपका निकटतम पड़ोसी है। वही आपकी धड़कन में है; वही आपके भीतर है; वही आप हैं। उससे ज्यादा निकट और कुछ भी नहीं है। उसे पाने के लिए कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है। वह यहां है, अभी है। लेकिन हम सोए हुए हैं।

इस नींद को तोड़ें। भागने से कुछ भी न होगा। इस नींद को हटाएं। यह मन होश से भरे, इस मन के सपने विदा हो जाएं, इस मन में विचारों की तरंगें न रहें, यह मन शांत और मौन हो जाए, तो आपको अभी उसका स्पर्श शुरू हो जाएगा। उसके फूल खिलने लगेंगे; उसकी सुगंध आने लगेगी; उसका गीत सुनाई पड़ने लगेगा; उसका सूरज अभी-अभी आपके अंधेरे को काट देगा और आप प्रकाश से भर जाएंगे।

इसलिए मेरी दृष्टि में, जो भाग रहा है, उसे तो कुछ भी पता नहीं है। यह हो सकता है कि आप संसार से पीड़ित हो गए हैं, इसलिए भागते हों। लेकिन संसार की पीड़ा भी आपका ही सृजन है। तो आप भागकर जहां भी जाइएगा, वहां आप नई पीड़ा के स्रोत तैयार कर लेंगे।

यह ऊपर से दिखाई नहीं पड़ता, तो आप जाकर देखें। आश्रमों में बैठे हुए लोगों को देखें, संन्यासियों को देखें। अगर वे जागे नहीं हैं, तो आप उनको पाएंगे वे ऐसी ही गृहस्थी में उलझे हैं जैसे आप। और उनकी उलझनें भी ऐसी ही हैं, जैसे आप। उनकी परेशानी भी यही है। वे भी इतने ही चिंतित और दुखी हैं।

इतना आसान नहीं परमात्मा को पाना कि आप घर से निकलकर मंदिर में आ गए और परमात्मा मिल गया! कि आप जंगल में चले गए, और परमात्मा मिल गया! परमात्मा को पाने के लिए आपकी जो चित्त-अवस्था है, इससे निकलना पड़ेगा और एक नई चित्त-अवस्था में प्रवेश करना पड़ेगा।

ये ध्यान और प्रार्थनाएं उसके ही मार्ग हैं कि आप कैसे बदलें। आम हमारी मन की यही तर्कना है कि परिस्थिति को बदल लें, तो सब हो जाए। हम जिंदगीभर इसी ढंग से सोचते हैं। लेकिन परिस्थिति हमारी उत्पन्न की हुई है। मनःस्थिति असली चीज है, परिस्थिति नहीं।

एक आदमी गाली देता है, तो आप सोचते हैं, इसके गाली देने से दुख होता है, पीड़ा होती है, क्रोध होता है। इस आदमी से हट जाएं, तो न क्रोध होगा, न पीड़ा होगी, न अपमान होगा, न मन में संताप होगा।

लेकिन जो आदमी गाली देता है, वह क्रोध पैदा नहीं करता। क्रोध तो आपके भीतर है; उसको केवल हिलाता है। आप भाग जाएं; क्रोध को आप भीतर ले जा रहे हैं। अगर कोई आदमी न होगा, तो आप चीजों पर क्रोध करने लगेंगे।

लोग दरवाजे इस तरह लगाते हैं, जैसे किसी दुश्मन को धक्का मार रहे हों! लोग जूतों को गाली देते हैं और फेंकते हैं। लोग लिखती हुई कलम को जमीन पर, फर्श पर पटक देते हैं। क्रोध में चीजें... एक कलम क्या क्रोध पैदा करेगी? एक दरवाजा क्या क्रोध पैदा करेगा?

लेकिन क्रोध भीतर भरा है। उसे आप निकालेंगे; कोई न कोई बहाना आप खोजेंगे। और बहाने मिल जाएंगे। बहानों की कमी नहीं है। तब फिर आप सोचेंगे, इस परिस्थिति से हटूं, तो शायद किसी दिन शांत हो जाऊं। तो आप जन्मों-जन्मों से यही कर रहे हैं, परिस्थिति को बदलो और अपने को जैसे हो वैसे ही सम्हाले रहो!

आप अगर रहे, तो आप ऐसा ही संसार बनाते चले जाएंगे। आप स्रष्टा हैं संसार के। मन को बदलें; वह जो भीतर चित्त है, उसको बदलें। अगर कोई गाली देता है, तो उससे यह अर्थ नहीं है कि उसकी गाली आप में क्रोध पैदा करती है। उसका केवल इतना ही अर्थ है, क्रोध तो भीतर भरा था, गाली चोट मार देती है और क्रोध बाहर आ जाता है। ऐसे ही जैसे कोई कुएं में बालटी डाले और पानी भरकर बालटी में आ जाए। बालटी पानी नहीं पैदा करती, वह कुएं में भरा हुआ था। खाली कुएं में डालिए बालटी, खाली वापस लौट आएगी।

बुद्ध में, महावीर में गाली डालिए, खाली वापस लौट आएगी। कोई प्रत्युत्तर नहीं आएगा। वहां क्रोध नहीं है।

और आपको जो आदमी गाली देता है, अगर समझ हो, तो आपको उसका धन्यवाद करना चाहिए कि आपके भीतर जो छिपा था, उसने बाहर निकालकर बता दिया। उसकी बड़ी कृपा है। वह न मिलता, तो शायद आप इसी ख्याल में रहते कि आप अक्रोधी हैं, बड़े शांत आदमी हैं। उसने मिलकर आपकी असली हालत बता दी कि भीतर आप क्रोधी हैं; बाहर-बाहर, ऊपर-ऊपर से रंग-रोगन किया हुआ है। सब व्हाइट-वाश है; भीतर आग जल रही है। यह आदमी मित्र है, क्योंकि इसने आपके रोग की खबर दी। यह आदमी डाक्टर है, इसने आपका निदान कर दिया। इसकी डायग्नोसिस से पता चल गया कि आपके भीतर क्या छिपा है। इसे धन्यवाद दें और अपने को बदलने में लग जाएं।

पत्नी आपको नहीं बांधे हुए है। स्त्री के प्रति आपका आकर्षण है, वह बांधेगा। पत्नी से क्या तकलीफ है? या पति से क्या तकलीफ है? आप भाग सकते हैं। लेकिन आकर्षण तो भीतर भरा है। कोई दूसरी स्त्री उसे छू लेगी, और वह आकर्षण फिर फैलना शुरू हो जाएगा। फिर आप संसार खड़ा कर लेंगे।

वह जो बेटा है आपका, वह आपको बांधे हुए नहीं है। बेटे से आप बंधे हैं, क्योंकि आप अपने को चलाना चाहते हैं मृत्यु के बाद भी। बेटे के कंधों से आप जीना चाहते हैं। आप तो मर जाएंगे; यह पता है कि यह शरीर गिरेगा; तो आप अब बेटे के सहारे इस जगत में रहना चाहते हैं। कम से कम नाम तो रहेगा मेरा मेरे बेटे के साथ! वह आपको बांधे हुए है।

बेटे को छोड़कर भाग जाइए; शिष्य मिल जाएगा। फिर आप उसके सहारे संसार में बचने की कोशिश में लग जाएंगे। बाकी कोशिश वही रहेगी, जो आप भीतर हैं। नाम बदल जाएंगे, रंग बदल जाएंगे, लेबल बदल जाएंगे, लेकिन आप इतनी आसानी से नहीं बदलते हैं।

तो ध्यान रखें, क्षुद्र धर्म परिस्थिति बदलने की कोशिश करता है। सत्य धर्म मनःस्थिति बदलने की कोशिश करता है। आप बदल जाएं, जहां भी हैं। और आप पाएंगे, संसार मिट गया। आप बदले कि संसार खो जाता है; और जो बचता है, वही परमात्मा है। यहीं संसार की हर पर्त के पीछे वह छिपा है।

आपको संसार दिखाई पड़ता है, क्योंकि आप संसार को ही देखने वाला मन लिए बैठे हैं। जो आपको दिखाई पड़ रहा है, वह आपके कारण दिखाई पड़ रहा है। जैसे ही आप बदले, आपकी दृष्टि बदली, देखने का ढंग बदला, संसार तिरोहित हो जाता है और आप पाते हैं कि चारों तरफ वही है। फिर वृक्ष में वही दिखाई पड़ता है और पत्थर में भी वही दिखाई पड़ता है। मित्र में भी वही दिखाई पड़ता है और शत्रु में भी वही दिखाई पड़ता है। फिर जीवन का सारा विस्तार उसका ही विस्तार है।

संसार आपकी दृष्टि के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं है। और परमात्मा भी आपकी दृष्टि के ही अनुभव में उतरेगा; आपके दृष्टि के परिवर्तन में उतरेगा।

क्रांति चाहिए आंतरिक, भीतरी, स्वयं को बदलने वाली। भागने में समय खराब करने की कोई भी जरूरत नहीं है। भागने में व्यर्थ उलझने की कोई भी जरूरत नहीं है। संसार परमात्मा को पाने का अवसर है; एक मौका है। उस मौके का उपयोग करना आना चाहिए।

सुना है मैंने कि एक घर में एक बहुत पुराना वाद्य रखा था, लेकिन घर के लोग पीढ़ियों से भूल गए थे उसको बजाने की कला। वह कोने में रखा था। बड़ा वाद्य था। जगह भी घिरती थी। घर में भीड़ भी बढ़ गई थी। और आखिर एक दिन घर के लोगों ने तय किया कि यह उपद्रव यहां से हटा दें।

वह उपद्रव हो गया था। क्योंकि जब संगीत बजाना न आता हो और उसके तारों को छेड़ना न आता हो... । तो कभी बच्चे छेड़ देते थे, तो घर में शोरगुल मचता था। कभी कोई चूहा कूद जाता, कभी कोई बिल्ली कूद जाती। आवाज होती। रात नींद टूटती। वह उपद्रव हो गया था।

तो उन्होंने एक दिन उसे उठाकर घर के बाहर कचरेघर में डाल दिया। लेकिन वे लौट भी नहीं पाए थे कि कचरेघर के पास से अनूठा संगीत उठने लगा। देखा, राह चलता एक भिखारी उसे उठा लिया है और बजा रहा है। भागे हुए वापस पहुंचे और कहा कि लौटा दो। यह वाद्य हमारा है। पर उस भिखारी ने कहा, तुम इसे फेंक चुके हो कचरेघर में। अगर यह वाद्य ही था, तो तुमने फेंका क्यों? और उस भिखारी ने कहा कि वाद्य उसका है, जो बजाना जानता है। तुम्हारा वाद्य कैसे होगा?

जीवन एक अवसर है। उससे संगीत भी पैदा हो सकता है। वही संगीत परमात्मा है। लेकिन बजाने की कला आनी चाहिए। अभी तो सिर्फ उपद्रव पैदा हो रहा है, पागलपन पैदा हो रहा है। आप गुस्सा होते हैं कि इस वाद्य को छोड़कर भाग जाओ, क्योंकि यह उपद्रव है।

यह वाद्य उपद्रव नहीं है। एक ही है जगत का अस्तित्व। जब बजाना आता है, तो वह परमात्मा मालूम पड़ता है। जब बजाना नहीं आता, तो वह संसार मालूम पड़ता है।

अपने को बदलें। वह कला सीखें कि कैसे इसी वाद्य से संगीत उठ आए। और कैसे ये पत्थर प्राणवान हो जाएं। और कैसे ये एक-एक फूल प्रभु की मुस्कुराहट बन जाएं। धर्म उसकी ही कला है।

तो जो धर्म भागना सिखाता है, समझना कि वह धर्म ही नहीं है। कहीं कोई भूल-चूक हो रही है। जो धर्म रूपांतरण, आंतरिक क्रांति सिखाता है, वही वास्तविक विज्ञान है।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने बताया कि बेहोशी में किया हुआ कृत्य पाप है। लेकिन भाव से भी तो बेहोशी होती है? कृपया समाधान कीजिए।

बेहोशी बेहोशी में बड़ा फर्क है। एक बेहोशी नींद में होती है, तब आपको कुछ भी पता नहीं होता। एक बेहोशी शराब पीने से भी होती है, तब भी आपको कुछ पता नहीं होता। एक बेहोशी भाव से भी होती है, आप पूरे बेहोश भी होते हैं और आपको पूरा पता भी होता है। जब आप मग्न होकर गीत में नाच रहे होते हैं, तो यह नृत्य भी होता है, इस नृत्य में पूरा डूबा हुआ होना भी होता है; और भीतर दीए की तरह चेतना भी जलती है, जो जानती है, जो देखती है, जो साक्षी होती है।

अगर आपके भाव में बेहोशी शराब जैसी आ जाए, तो आप समझना कि चूक गए। तो समझना कि यह भाव भी फिर शराब ही हो गई।

प्रार्थना में बेहोशी का मतलब इतना है कि आप इतने लीन हो गए हैं कि मैं हूं, इसका कोई पता नहीं है। मैं हूं, इसका कोई शब्द निर्मित नहीं होता। लेकिन जो भी हो रहा है, उसके आप साक्षी हैं। जो साक्षी है, उसमें कोई मैं का भाव नहीं है। और वह जो साक्षी है, वह आप नहीं हैं; आप तो लीन हो गए हैं। और आपके लीन होने के बाद जो भीतर असली आपका स्वरूप है, वह भर देखता है। उस दर्शन में, उस द्रष्टा के होने में, जरा भी बेहोशी नहीं है।

भाव की बेहोशी में आपके जो-जो रोग हैं, वे सो गए होते हैं; और आपके भीतर जो शुद्ध चेतन है, वह जाग गया होता है।

जब चैतन्य नाच रहे हैं सड़कों पर, तो आप यह मत सोचना कि वे बेहोश हैं। हालांकि वे कहते हैं कि मैं बेहोश हूं। और हालांकि वे कहते हैं कि हमने शराब पी ली परमात्मा की। वे सिर्फ इसलिए कहते हैं कि आप इन्हीं प्रतीकों को समझ सकते हैं।

उमर खय्याम ने कहा है कि अब हमने ऐसी शराब पी ली है, जिसका नशा कभी न उतरेगा। और अब बार-बार पीने की कोई जरूरत न रहेगी। अब तो पीकर हम सदा के लिए खो गए हैं।

शराब का उपयोग किया है प्रतीक की तरह। क्योंकि आप एक ही तरह का खोना जानते हैं, जिसमें आपकी सारी चेतना ही शून्य हो जाती है।

भाव में शराब का थोड़ा-सा हिस्सा है। आपकी सब बीमारियां सो जाती हैं, आपका अहंकार सो जाता है, आपका मन सो जाता है, आपके विचार सो जाते हैं। लेकिन आप? आप पूरी तरह जाग गए होते हैं और भीतर पूरा होश होता है। लेकिन यह तो अनुभव से ही होगा, तो ही ख्याल में आएगा। यह तो बात जटिल है। यह तो आपको कैसे ख्याल में आएगी! भाव में डूबकर देखें।

लेकिन हम डरते हैं। डर यही होता है, कहीं अगर भाव में पूरे डूब गए, तो जो-जो हमने दबा रखा है, अगर वह बाहर निकल पड़ा, तो लोग क्या कहेंगे! डरते हैं हम, क्योंकि हमने बहुत कुछ छिपा रखा है। और हमने चारों तरफ से अपने को बांध रखा है नियंत्रण में। तो कहीं नियंत्रण ढीला हो गया, और जरा-सा भी कहीं छिद्र हो गया, और हमने जो रोक रखा है, वह बाहर निकल पड़ा तो? उस भय के कारण हम अपने को कभी छोड़ते नहीं, समर्पण नहीं करते।

हम कहीं भी अपने को शिथिल नहीं करते। हम चौबीस घंटे डरे हुए हैं और अपने को सम्हाले हुए हैं। यह जिंदगी नरक जैसी हो जाती है। इसमें सिवाय संताप के और विष के कुछ भी नहीं बचता। यह रोग ही रोग का विस्तार हो जाता है।

खुलें; फूल की तरह खिल जाएं। माना कि बहुत-सी बीमारियां आपके भीतर पड़ी हैं। लेकिन आप उनको जितना सम्हाले रखेंगे, उतनी ही वे आपके भीतर बढ़ती जाएंगी। उनको भी गिर जाने दें। उनको भी परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दें। और आप जल्दी ही पाएंगे कि बीमारियां हट गईं और आपके भीतर फूल का खिलना शुरू हो गया। आपके भीतर का कमल खिलने लगा।

जिस दिन यह भीतर का कमल खिलना शुरू होता है, उसी दिन पता चलता है कि बेहोशी भी है और होश भी है। एक तल पर हम बिल्कुल बेहोश हो गए हैं, और एक तल पर हम पूरी तरह होशवान हो गए हैं। ये घटनाएं एक साथ घटती हैं।

शराब में हम केवल बेहोश होते हैं, कोई होश नहीं होता। इसलिए कुछ साधकों ने तो इस भाव की जागरूकता को पाने के बाद शराबें पीकर भी देखी हैं, कि क्या हमारी इस भाव की जागरूकता को शराब डुबा सकती है?

आपको पता हो या न हो, योग और तंत्र के ऐसे संप्रदाय रहे हैं, जहां कि शराब भी पिलाई जाएगी। जब भाव की पूरी अवस्था आ जाएगी और साधक कहेगा कि अब मैं बाहर से तो बिल्कुल बेहोश हो जाता हूं, लेकिन मेरा भीतर होश पूरा बना रहता है, तो फिर गुरु उसको शराब भी पिलाएगा, अफीम भी खिलाएगा। और धीरे-धीरे बेहोशी की, मादकता की मात्रा बढ़ाई जाएगी और उससे कहा जाएगा कि यहां बाहर बेहोशी घेरने लगे, शरीर बेहोश होने लगे, तो भी तू भीतर अपने होश को मत खोना।

और यह बात यहां तक प्रयोग की गई है कि सब तरह की शराब और सब तरह के मादक द्रव्य पीकर भी साधक भीतर होश में बना रहता है, तब फिर सांप को भी कटवाते हैं उसकी जीभ पर; कि जब सांप काट ले, उसका जहर भी पूरे शरीर में फैल जाए, तो भी भीतर का होश जरा भी न डिगे, तभी वे मानते हैं कि अब तूने उस होश को पा लिया, जिसको मौत भी न हिला सकेगी।

पर अनुभव के बिना कुछ ख्याल न आ सकेगा। थोड़ा भाव में डूबना सीखें। भाव में जो डूबता है, वह उबर जाता है। और भाव से जो बचता है, वह डूब ही जाता है, नष्ट ही हो जाता है।

लेकिन कुछ चीजें हैं, जो समझ से नहीं समझाई जा सकतीं। कोई उपाय नहीं है। और जितनी भीतरी बात होगी, उतना ही अनुभव पर निर्भर रहना पड़ेगा।

अगर मेरे पैर में दर्द है, तो आपको मानना ही पड़ेगा कि दर्द है। और क्या उपाय है! और अगर मैं आपको समझाने जाऊं और आपके पैर में कभी दर्द न हुआ हो, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। मैं कितना ही कहूं कि पैर में दर्द है, लेकिन आपको अगर दर्द का कोई अनुभव नहीं है, तो शब्द ही सुनाई पड़ेगा; अर्थ कुछ भी समझ में न आएगा। आपको भी दर्द हो, तो ही... । अनुभव को शब्द से हस्तांतरित करने की कोई भी सुगमता नहीं है।

बुद्ध के पास कोई आया और उसने कहा कि जो आपको हुआ है, थोड़ा मुझे भी समझाएं। तो बुद्ध ने कहा कि समझा मैं न सकूंगा। तुम रुको और वर्षभर जो मैं कहूं, वह करो। समझ में आ जाएगा।

क्योंकि जब तक भीतर प्रतीति न हो इस बात की कि सब बेहोशी हो गई है और फिर भी भीतर कोई जागा है, दीया जल रहा है, तब तक कैसे, तब तक आप बाहर से ही देखेंगे। तो आप बाहर से नाचते हुए देखेंगे मीरा को, तो आपको लगेगा कि बेहोश है, होश नहीं है इसे। लगेगा ही। कपड़ा गिर गया। साड़ी का पल्लू गिर गया। अगर होश होता, तो मीरा अपना पल्लू सम्हालती, कपड़ा सम्हालती। होश में नहीं है, बेहोश है।

निश्चित ही, शरीर के तल पर बेहोशी है। कपड़े के तल से होश हट गया है। वहां मीरा अब नहीं है। न कपड़े में है, न शरीर में है। भीतर कहीं सरक गई है। लेकिन वहां होश है।

पर यह तो आप भी मीरा हो जाएं, तभी ख्याल में आए, अन्यथा कैसे ख्याल में आए! मीरा के भीतर झांकने का कोई भी उपाय नहीं है। कोई खिड़की-दरवाजा नहीं, जिससे हम भीतर झांक सकें। अगर मीरा के भीतर झांकना है, तो अपने ही भीतर झांकना पड़े, और कोई उपाय नहीं है। बुद्ध को समझना हो, तो बुद्ध हुए बिना कोई रास्ता नहीं है।

इसलिए शिष्य जब तक गुरु ही नहीं हो जाता, तब तक गुरु को नहीं समझ पाता है। कैसे समझेगा? अलग-अलग तल पर खड़े हुए लोग हैं। वे अलग भाषाएं बोल रहे हैं। अलग अनुभवों की बातें कर रहे हैं। तब तक मिसअंडरस्टैंडिंग ज्यादा होगी, नासमझी ज्यादा होगी, समझ कम होगी। अगर सच में ही समझना चाहते हैं, तो प्रयोग की हिम्मत जुटानी चाहिए।

विज्ञान भी प्रयोग पर निर्भर करता है और धर्म भी। दोनों एक्सपेरिमेंटल हैं। विज्ञान भी कहता है कि जाओ प्रयोगशाला में और प्रयोग करो। और जब तुम भी पाओ कि ऐसा होता है, तो ही मानना, अन्यथा मत मानना। धर्म भी कहता है कि जाओ प्रयोगशाला में, प्रयोग करो। हालांकि प्रयोगशालाएं दोनों की अलग हैं। विज्ञान की प्रयोग शाला बाहर है, धर्म की प्रयोगशाला भीतर है। आप ही हो धर्म की प्रयोगशाला।

इसलिए विज्ञान की प्रयोगशाला तो निर्मित करनी पड़ती है, और आप अपनी प्रयोगशाला अपने साथ लिए चल रहे हो। नाहक ढो रहे हो वजन। बड़ा अदभुत यंत्र आपको मिला है, उसमें आप प्रयोग कर लो, तो अभी आपको ख्याल में आ जाए कि क्या हो सकता है।

भाव की बेहोशी बहुत गहन होश का नाम है। वह किसी दूसरे तल पर होश है, जागरूकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि अपने आप को भगवान के चरणों में समर्पित कर देने के बाद क्या सुख-दुख के भाव हममें नहीं उठेंगे? उन्हें उठने देने से रोकने का क्या उपाय है?

फिर आपको रोकने की जरूरत नहीं, जब भगवान के चरणों में समर्पित ही कर दिया। तो समर्पण पूरा नहीं कर रहे हैं। पीछे आप भी इंतजाम रखेंगे अपना जारी!

हमें ख्याल नहीं है कि हम क्या सोचते हैं, किस ढंग से सोचते हैं! अगर अपने को भगवान के हाथ में समर्पण कर दिया, तो फिर सुख-दुख के भाव उठेंगे या नहीं, यह भी भगवान पर छोड़ दें। क्या पहले तय कर लेंगे, फिर समर्पण करेंगे? तब तो समर्पण झूठा हो जाएगा, सशर्त, कंडीशनल हो जाएगा। क्या भगवान से यह कहकर समर्पण करेंगे कि समर्पण करता हूं, लेकिन ध्यान रहे, अब सुख-दुख का भाव नहीं उठना चाहिए! अगर उठा, तो समर्पण वापस ले लूंगा। रद्द कर दूंगा कांट्रेक्ट।

यह कोई समझौता तो नहीं है कि आप इसमें शर्त रखेंगे। समर्पण का मतलब है, बेशर्त। आप कहते हैं, छोड़ता हूं तुम्हारे हाथ में। अब दुख देना हो तो दुख देना, मैं राजी रहूंगा। समर्पण का मतलब यह है। सुख देना तो सुख देना, मैं राजी रहूंगा। दोनों छीन लेना, राजी रहूंगा। दोनों जारी रखना, राजी रहूंगा। मेरी तरफ से, तुम कुछ भी करो, राजीपन रहेगा। समर्पण का यह अर्थ है। तुम क्या करोगे, अब मैं उस पर कोई विचार न करूंगा। मैं सिर्फ राजी रहूंगा।

यह जो राजीपन है... । स्वीकार कर लूंगा कि तुम्हारी मर्जी है; जरूर कुछ बात होगी, जरूर कुछ लाभ होगा। सुख-दुख कैसे बचेंगे! जिस आदमी ने अपने को छोड़ दिया, उसके सुख-दुख बच सकते हैं?

सुख-दुख है क्या? आपकी अपने आप पर पकड़ ही तो जड़ में है। और समर्पण में आप अपनी पकड़ छोड़ते हैं। जो आदमी कहता है कि सुख होगा तो राजी, दुख होगा तो राजी, क्या उसको सुख-दुख हो सकते हैं? सवाल यह है। कैसे हो सकते हैं! क्योंकि सुख का मतलब ही होता है कि चाहता हूं। दुख का मतलब होता है, नहीं चाहता हूं। सुख का मतलब होता है, कहीं छिन न जाए, यह भय। दुख का मतलब होता है, कहीं टिक न जाए, यह भय।

समर्पण का अर्थ है, सुख तो राजी, दुख तो राजी। सुख छिन जाए तो राजी, दुख बना रहे तो राजी। सुख-दुख बचेंगे कैसे? सुख-दुख के बचने की आधारशिला खो गई।

सुख है क्या? जिसको आप चाहते हैं। दुख है क्या? जिसको आप नहीं चाहते हैं। और कभी आपने ख्याल किया कि कैसा चमत्कार है कि आज जिसे आप चाहते हैं, वह सुख है; और कल अगर न चाहें, तो वही दुख हो जाता है। और आज जिसे आप नहीं चाहते थे, वह दुख था; और कल अगर आप उसी को चाहने लगें, तो सुख हो जाता है।

एक प्रेमी है। वह कहता है कि इस स्त्री के बिना मैं जी न सकूंगा। यही मेरा सुख है। और लगता है उसे कि इसके बिना मैं नहीं जी सकूंगा। और कल शादी हो जाती है। और परसों वह अदालतों में घूम रहा है कि तलाक कैसे करूं! स्त्री वही है। पहले कहता था, इसके बिना न जी सकूंगा। अब कहता है, इसके साथ न जी सकूंगा। वह कल सुख था, आज दुख हो गया। और आप ऐसा मत सोचना, कुछ हैरानी की बात नहीं है। ऐसी घटनाएं घटती हैं।

मेरे एक परिचित हैं। स्पेन में रहते हैं। उन्होंने अपनी पत्नी को तलाक दिया और दो साल बाद उसी स्त्री से दुबारा शादी कर ली! पहले सुख पाया, फिर दुख पाया। दो साल उसके बिना रहे, और फिर लगा कि वह सुख है। जब उन्होंने मुझे खबर की, तो मैंने कहा कि तुम पहले अनुभव से कुछ भी सीखे नहीं मालूम पड़ता। यह स्त्री कभी सुख थी, फिर दुख हो गई थी। अभी फिर सुख हो गई है! कितनी देर चलेगा? और कब दुख हो जाए, ज्यादा देर नहीं चलेगा मामला। क्योंकि व्यक्ति वे वही के वही हैं। फिर दुख हो जाएगा।

इतने दूर जाने की जरूरत नहीं है। आपकी पत्नी ही थोड़े दिन मायके चली जाती है, तो सुखद मालूम पड़ने लगती है। लौट आती है, तो देखते ही से फिर तबीयत घबड़ाती है कि वापस आ गई!

दूरी सुख के भावों को जन्म देने लगती है, निकटता उबाने लगती है। जो भी हमारे पास है, उससे ही हम ऊब जाते हैं। तो ऐसा कुछ नहीं है कि कोई चीज सुख है और कोई चीज दुख है। भाव! आपका भाव अगर चाह का है, तो सुख है; और अगर बेचाह का हो गया, तो दुख है। चीज वही हो, इससे कोई भी अंतर नहीं पड़ता है।

लेकिन समर्पण करने वाले ने अपनी चाह छोड़ दी, अपना भाव छोड़ दिया। अब उसे दुख देना मुश्किल है। अब उसे सुख देना भी मुश्किल है। और जिस व्यक्ति को सुख और दुख दोनों देना मुश्किल हो जाता है, वही आनंद को उपलब्ध होता है।

आनंद सुख नहीं है। शब्दकोश में ऐसा ही लगता है, भाषा में ऐसा ही लगता है कि महासुख का नाम आनंद है। भूलकर भी ऐसा मत सोचना। आनंद का सुख से उतना ही संबंध है, जितना दुख से। या उतना ही संबंध नहीं है। आनंद का अर्थ है, जहां सुख-दुख दोनों व्यर्थ हो गए, वह चित्त की दशा।

समर्पण के बाद आनंद है। लेकिन अगर न हो, तो समझना कि समर्पण नहीं है। यह मत समझना कि समर्पण के बाद आनंद नहीं है। समर्पण के बाद आनंद न हो, तो समझना कि समर्पण नहीं है। समर्पण के बाद आनंद है ही। समर्पण शरीर है और आनंद उसकी आत्मा है। लेकिन समर्पण पूरा होना चाहिए।

पूरे समर्पण का अर्थ है कि अब मेरा कोई चुनाव नहीं। अब मैं नहीं कहता, यह मिले; अब मैं यह नहीं कहता, यह न मिले। अब मैं हूं ही नहीं। अब मेरा कोई निर्णय नहीं है। अब मैंने अपनी बागडोर उसके हाथ में डाल दी है। वह पूरब ले जाए तो ठीक, पश्चिम ले जाए तो ठीक, कहीं न ले जाए तो ठीक। जो भी वह करे, ठीक। मेरी हां बेशर्त है। वह जो भी कहेगा, मैं कहूंगा, हां।

फिर चिंता आपको नहीं रह जाएगी कि सुख-दुख के भाव उठेंगे, तो हम उनको कैसे रोकेंगे। आप ही न बचेंगे, उनको रोकने की आपको कोई भी जरूरत न रह जाएगी। वे भी न बचेंगे। आपके साथ ही समाप्त हो जाएंगे। वे आपके ही संगी-साथी हैं।

अहंकार का ही पहलू है एक सुख, और एक दुख। अहंकार को जो बात रुचती है वह सुख, जो बात नहीं रुचती वह दुख। अहंकार खो जाता है, दोनों भी खो जाते हैं। जो शेष रह जाता है, उसको नियंत्रण करने की जरूरत भी नहीं है।

और जिसने परमात्मा के हाथ में अपनी नाव छोड़ दी, अब उसको अपने साथ नियंत्रण की समझदारी ले जाने की जरूरत नहीं है। उसकी समझदारी अब काम भी नहीं पड़ेगी।

एक मित्र ने पूछा है, आपकी बातों को समझने के लिए तो बुद्धि की ही आवश्यकता पड़ती है, तो इस अवसर पर बुद्धि को ही प्राथमिकता देनी चाहिए या भाव को? क्या सिर्फ भाव को प्रधानता देने से आपकी बातें समझ में आ जाएंगी?

निश्चित ही, मेरी बात समझनी है, तो बुद्धि से समझनी पड़ती है। लेकिन अगर मेरी बात अनुभव करनी है, तो भाव से करनी पड़ेगी। समझ के लिए बुद्धि जरूरी है। लेकिन समझ अनुभव नहीं है। अगर समझ पर ही रुक गए और समझदार होकर ही रुक गए, तो आप बड़े नासमझ हैं।

मैं जो कह रहा हूं, उसे समझने के लिए बुद्धि की जरूरत है। लेकिन मैं जो कह रहा हूं, उसका अनुभव करने के लिए भाव की जरूरत है। तो बुद्धि से समझ लेना, और फिर भाव से करने में उतर जाना। अगर बुद्धि पर ही रुक गए और भाव तक न गए, तो वह समझ बेकार हो गई और मैं आपका दुश्मन साबित हुआ। आप वैसे

ही काफी बोझ से भरे थे और मैंने थोड़ा बोझ बढ़ा दिया। आपके मस्तिष्क पर ऐसे ही काफी कूड़ा-करकट इकट्ठा है, उसमें मैंने और थोड़ा उपद्रव जोड़ दिया।

बुद्धि का काम है समझ लेना। लेकिन वहीं रुक जाना बुद्धिमान का लक्षण नहीं है। समझकर उसे प्रयोग में ले आना और भाव में उतार देना, अनुभव बना लेना।

और जब तक कोई चीज अनुभव न बन जाए, तब तक ऐसी ही हालत होती है कि आप कोई चीज पेट में गटक लें और पचा न पाएं। तो बीमारी पैदा करेगी, विजातीय हो जाएगी, जहर बन जाएगी, और शरीर से बाहर निकालने का उपाय करना पड़ेगा। लेकिन आप कोई चीज चबाएं, ठीक से पचाएं, तो खून बनती है, मांस-मज्जा बनती है। बीमारी नहीं होती; फिर उससे स्वास्थ्य पैदा होता है।

बुद्धि का काम है कि आपके भीतर ले जाए, लेकिन भाव का काम है कि पचाए। और जब तक आप भाव से पचा न सकें, डायजेस्ट न कर सकें, तब तक सब ज्ञान जहर हो जाता है। तो अच्छा हो कि अपने कान बंद कर लेना चाहिए। जो बात भाव में न उतारनी हो, उसे न सुनना ही बेहतर है। क्या सार है?

हम खाने में उन्हीं चीजों को खाते हैं, जिन्हें हमें पचाना है। जिन्हें नहीं पचाना है, उन्हें नहीं खाते। नहीं खाना चाहिए, क्योंकि उन्हें खाने का अर्थ है कि हम पेट पर व्यर्थ का बोझ डाल रहे हैं और शरीर की व्यवस्था को रुग्ण कर रहे हैं। और अगर इस तरह की चीजें हम खाते ही चले जाएं, तो हम शरीर को पूरी तरह नष्ट कर डालेंगे। तो भोजन हमारा जीवन नहीं बनेगा, मृत्यु बन जाएगा।

शब्द भी भोजन हैं। आप ऐसा मत सोचना कि सुन लिया। सुन लिया नहीं, आपके भीतर चली गई बात। अब आप इससे बच नहीं सकते। कुछ करना पड़ेगा। या तो इसे पचाना पड़ेगा और या फिर यह आपके भीतर बीमारी पैदा करेगी।

बहुत लोग ज्ञान से बीमार हैं। उनको ज्ञान का अपच हो गया है। काफी सुन लिया है, पढ़ लिया है, चारों तरफ से इकट्ठा कर लिया है और पचाने की उन्हें कोई सुध-बुध नहीं है। वे भूल ही गए कि पचाना भी है। अब वह सब पत्थर की तरह उनकी छाती पर बैठ गया है। उससे तो बेहतर है सुनना ही मत, पढ़ना ही मत। जब लगे कि पचाने की तैयारी है, तो!

बुद्धि भीतर ले जाने का द्वार है। भाव पचाने की व्यवस्था है। सुनें, बुद्धि से समझें, और भाव तक पहुंचने दें।

निश्चित ही, बुद्धि दो तरह के काम कर सकती है। या तो भाव तक पहुंचने दे और या बाहर ठेलने की कोशिश करे, भीतर न आने दे। अगर आप सिर्फ तर्क का ही भरोसा करते हों, तो आपकी बुद्धि चीजों को बाहर धक्का देना शुरू कर देगी। क्योंकि जो बात तर्क की पकड़ में नहीं आएगी, बुद्धि कहेगी, भीतर मत लाओ। और जितनी कीमती बातें हैं, कोई भी तर्क की पकड़ में नहीं आतीं। क्योंकि तर्क की पकड़ में वही बात आ सकती है, जो केवल तर्क हो। अनुभव की कोई भी बात तर्क की पकड़ में नहीं आ सकती। तर्क और अनुभव का कहीं मेल नहीं होता।

एक अंधा आदमी है; उसको प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता। आप उसको कितना ही तर्क करिए, समझ में नहीं आ सकता। वह इनकार करता चला जाएगा। वह तर्क देगा; आपको गलत सिद्ध करेगा। उसकी बुद्धि अगर तर्क से ही चले... ।

हम सब भी ऐसा ही कर रहे हैं परमात्मा के संबंध में। तर्क से ही चलते हैं, इनकार करते चले जाते हैं। इनकार का एक अवरोध खड़ा हो जाता है। फिर कोई चीज भीतर प्रवेश नहीं करती। तर्क पहले ही कह देता है,

बेकार है। गणित में नहीं आती। अनुभव की बात रहस्य मालूम पड़ती है। यह अपनी सीमा नहीं। तर्क कह देता है, इसे बाहर छोड़ो।

बुद्धि दूसरा काम कर सकती है कि द्वार बन जाए। जो अनुभव में आने योग्य हो, चाहे तर्क की समझ में न भी आता हो, उस पर भी प्रयोग करने की हिम्मत सदबुद्धि है। नहीं तो बुद्धि दुर्बुद्धि हो जाती है। तर्क कुतर्क हो जाता है। नहीं, मुझे अनुभव में नहीं है, लेकिन मैं प्रयोग करके देखूंगा।

हजार चीजें हैं, जो आपके अनुभव में नहीं हैं। लेकिन आप प्रयोग करके देखें, तो आपका अनुभव बढ़ सकता है। और अनुभव में चीजें आ सकती हैं। और न आएं अनुभव में, तो मत मानना। लेकिन अनुभव के पहले इनकार कर देना अज्ञान है।

तो ईश्वर को, आत्मा को, मुक्ति को, आनंद को, अद्वैत को बिना अनुभव के इनकार कर देना अज्ञान है। अनुभव का एक मौका अपने को दें। अब तक जिसने भी अनुभव किया, वह इनकार नहीं कर पाया। और जिन्होंने इनकार किया, उन्होंने अनुभव नहीं किया, सिर्फ तर्क से ही बात चलाई है।

तर्क बड़े खतरनाक हो सकते हैं और गलत चीजों के पक्ष में भी दिए जा सकते हैं। सही चीजों के विपरीत भी दिए जा सकते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने लड़के का विवाह करना चाहता था। एक धनी लड़की थी--कुरूप, बेडौल, बदशक्ल। मुल्ला का इरादा धन पर था। तो अपने लड़के को कहा कि सुना तूने, सुलताना से तेरे विवाह की बात चलाई है।

लड़के ने कहा, सुलताना! क्या मतलब? गांव के नगरसेठ की लड़की? उससे? लेकिन उसे तो कम दिखाई पड़ता है!

मुल्ला ने कहा, अभागे, अपने को भाग्यवान समझ। पत्नी को कम दिखाई पड़ता हो, इससे ज्यादा अच्छी बात पति के लिए और क्या हो सकती है! तू सदा स्वतंत्र रहेगा। जो भी करना हो कर। पत्नी को कुछ दिखाई भी नहीं पड़ेगा।

लड़का थोड़ा चौंका। उसने कहा, लेकिन मैंने सुना है कि वह तुतलाती भी है, हकलाती भी है!

मुल्ला ने कहा, अगर मुझे शादी करनी होती दोबारा, तो मैं ऐसी ही स्त्री से शादी करता। यह तो भगवान का वरदान समझ। क्योंकि स्त्री अगर तुतलाए, हकलाए, तो ज्यादा बोलने की हिम्मत नहीं जुटाती। पति शांति से जीता है!

उसके लड़के ने कहा, लेकिन मैंने तो सुना है कि वह बहरी भी है! उसे ठीक सुनाई भी नहीं पड़ता!

नसरुद्दीन ने कहा कि नालायक, मैं तो सोचता था तुझमें थोड़ी बुद्धि है। अरे, पत्नी बहरी हो, इससे बेहतर और क्या। तू गाली दे, चिल्ला, नाराज हो, वह कुछ भी नहीं समझ पाएगी।

लड़के ने आखिरी बार हिम्मत जुटाई। उसने कहा, यह भी सब ठीक। लेकिन उसकी उम्र मुझसे बीस साल ज्यादा है!

मुल्ला ने कहा, एक छोटे-से दोष के लिए कि वह बीस साल पहले पैदा हुई, इतना महान अवसर चूकता है! इतनी-सी छोटी-सी बात को नाहक शोर-गुल मचाता है! ऐसी सुंदर स्त्री तेरे लिए ढूंढ़ रहा हूं और तू छोटी-सी बात कि बीस साल ज्यादा है! तो दुनिया में पूर्णता तो कहीं भी नहीं होती।

आदमी किस-किस बात के लिए क्या-क्या तर्क नहीं खोज सकता है! ऐसी कोई बात आपने सुनी, जिसके विपरीत तर्क न खोजा जा सके? या ऐसी कोई बात सुनी, जिसके पक्ष में तर्क न खोजा जा सके? तर्क का अपना

कोई पक्ष नहीं है, न कोई विपक्ष है। तर्क तो नंगी तलवार है। उससे मित्र को भी काट सकते हैं, शत्रु को भी काट सकते हैं। और चाहें तो अपने को भी काट सकते हैं। तलवार का कोई आग्रह नहीं है कि किसको काटें।

इसलिए जरा तलवार सम्हालकर हाथ में लेना। उससे क्या काट रहे हैं, थोड़ा सोच लेना। बहुत-से लोग अपने ही तर्क से खुद को काट डालते हैं।

तर्क का उपयोग करना, अगर वह अनुभव की तरफ ले जाए। तर्क का उपयोग करना, अगर वह जीवन की गहराई की तरफ ले जाए। तर्क का उपयोग करना, अगर वह शिखरों का दर्शन कराए। तर्क का उपयोग करना, अगर वह गहराइयों में उतारे। अगर तर्क गहराइयों में उतरने से रोकता हो, तो ऐसे तर्क को कुतर्क समझना; छोड़ देना, क्योंकि वह आत्महत्या है।

मेरी बात बुद्धि से समझें। लेकिन वह बात केवल बुद्धि की नहीं है। बुद्धि का हम उपयोग कर रहे हैं एक माध्यम की तरह, एक साधन की तरह। वह बात भाव की है। और जब तक आपके भाव में न आ जाए, तब तक यात्रा अधूरी है। और यात्रा शुरू ही करनी हो, तो मंजिल तक जाने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि तभी रहस्य खुलता है।

आखिरी प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि क्या यह संभव है कि अहंकार से भरे हुए इस जगत में कोई व्यक्ति निरहंकारी होकर जी सके और सफल भी हो सके? क्या जहां सारे लोग अहंकार से भरे हैं, वहां निरहंकारी होकर जीना धारा के विपरीत तैरना न होगा? क्या इससे अड़चन, कठिनाइयां, असफलताएं न आएंगी?

थोड़ा समझें। पहली तो बात कि क्या अहंकार से भरे हुए इस जगत में कोई व्यक्ति निरहंकारी होकर सफल हो सकता है? निरहंकार सफलता की मांग नहीं करता। अहंकार सफलता की मांग करता है। निरहंकार सफलता की मांग ही नहीं करता।

सफलता का मतलब क्या है? सफलता का मतलब है कि मैं दूसरों से आगे। सफलता का मतलब है कि क्या मैं दूसरों को असफल कर सकूंगा? सफलता का मतलब है, क्या मैं दूसरों को पीछे छोड़कर उनके आगे खड़ा हो सकूंगा? सफलता का अर्थ है, महत्वाकांक्षा, एंबीशन। ये सब तो अहंकार के लक्षण हैं। अहंकार कहता है कि मुझे आगे खड़े होना है, नंबर एक होना है। नंबर दो में बड़ी पीड़ा है। पंक्ति में पीछे खड़ा हूं, क्यू में, तो भारी दुख है। जितना पीछे हूं, उतनी पीड़ा है। नंबर एक होना है।

अहंकार की खोज महत्वाकांक्षा की खोज है। और जब मुझे नंबर एक होना है, तो दूसरों को मुझे हटाना पड़ेगा; और दूसरों को मुझे रौंदना पड़ेगा; और दूसरों के सिरों का मुझे सीढ़ियों की तरह उपयोग करना पड़ेगा; और दूसरों के ऊपर, छाती पर चढ़कर मुझे आगे जाना पड़ेगा। सिंहासनों के रास्ते लोगों की लाशों से पटे हैं।

तो अहंकार की तो खोज ही यही है कि मैं सफल हो जाऊं। तो आपको ख्याल में नहीं है। जब आप पूछते हैं कि अगर मैं निरहंकारी हो जाऊं, तो क्या मैं सफल हो सकूंगा? इसका मतलब हुआ कि आप निरहंकारी भी सफल होने के लिए होना चाहते हैं! तो आप चूक गए बात ही।

निरहंकारी होने का अर्थ यह है कि सफलता का मूल्य अब मेरा मूल्य नहीं है। मैं कहां खड़ा हूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं पंक्ति में सबसे पीछे खड़ा हूं, तो भी उतना ही आनंदित हूं, जितना प्रथम खड़ा हो जाऊं।

जीसस ने कहा है, इस जगत में जो सबसे पीछे खड़े हैं, मेरे प्रभु के राज्य में वे सबसे प्रथम होंगे। लेकिन इस जगत में जो सबसे पीछे खड़े हैं!

निरहंकार का मतलब है कि पीछे खड़े होने में भी मुझे उतना ही मजा है। मेरे मजे में कोई फर्क नहीं पड़ता। वह मेरे खड़े होने में है। मेरे होने में मेरा मजा है।

लाओत्से ने कहा है, मुझे कभी कोई हरा न सका, क्योंकि मैं लड़ने के पहले ही हारा हुआ हूं। मेरा कोई कभी अपमान न कर सका, क्योंकि मैंने अपने मान की कोई चेष्टा नहीं की। और सभाओं में जहां लोग जूते उतारते हैं, वहां मैं बैठ जाता हूं, ताकि कभी किसी को उठाने का मौका न आए। तो लाओत्से ने कहा है कि मेरी विजय असंदिग्ध है। मुझे कोई हरा नहीं सकता, क्योंकि मैं लड़ने के पहले ही हार जाता हूं। मैं हारा ही हुआ हूं।

निरहंकार का अर्थ है कि जो कहता है, हमने तुम्हारे लड़ने की नासमझी, विजय की मूढ़ता, तुम्हारा संघर्ष, तुम्हारी महत्वाकांक्षा, इसका पागलपन अच्छी तरह समझ लिया और अब हम इसमें सम्मिलित नहीं हैं। निरहंकार सफल नहीं होना चाहता।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह सफल होगा नहीं। बारीक फासले हैं। निरहंकार सफल नहीं होना चाहता, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह सफल नहीं होगा। वही सफल होता है। लेकिन उसकी सफलता की यात्रा का पथ बिल्कुल दूसरा है।

लोग धन इकट्ठा कर लेते हैं बाहर का। निरहंकारी भीतर के धन को उपलब्ध हो जाता है। लोग बाहर की विजय इकट्ठी कर लेते हैं। निरहंकारी भीतर उस जगह पहुंच जाता है, जहां कोई हार संभव नहीं है। लोग जीवन के लिए सामान जुटा लेते हैं, निरहंकारी जीवन को ही पा लेता है। लोग क्षुद्र को इकट्ठा करने में समय व्यतीत कर देते हैं, लड़ते हैं, झगड़ते हैं; निरहंकारी विराट से जुड़ जाता है।

निरहंकार की सफलता अदभुत है। लेकिन वह सफलता का आयाम दूसरा है। उसे कौड़ियों में, रुपए-पैसे में नहीं तौला जा सकता। इस संसार की सफलता से उस सफलता का कोई सीधा संबंध नहीं है। लेकिन इस संसार में भी निरहंकारी से ज्यादा शांत और आनंदित आदमी नहीं पाया जा सकता।

तो अगर आप सफल होना चाहते हैं, तो कृपा करके अहंकार के रास्ते पर ही चलें। अगर आपको सफलता की मूढ़ता दिखाई पड़ गई है कि सफल होकर भी कौन सफल हुआ है? कौन नेपोलियन, कौन सिकंदर, कहां है? किसने क्या पा लिया है? अगर आपको यह समझ में आ गया हो, तो सफलता शब्द को छोड़ दें। वह अज्ञानपूर्ण है। बच्चों के लिए शोभा देता है। आप सफलता की बात ही छोड़ दें।

किसी से आगे होने का मतलब भी क्या है? और आगे होकर भी क्या करिएगा? आगे ही क्यू में खड़े हो गए, तो वहां है क्या? जो आगे खड़े हो जाते हैं, बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। क्योंकि फिर उनको तकलीफ यह होती है कि अब क्या करें!

सिकंदर से किसी ने कहा था कि अगर तू सारी दुनिया जीत लेगा, तो तूने कभी सोचा है कि फिर क्या करेगा! तो सिकंदर एकदम उदास हो गया था और उसने कहा कि नहीं, मुझे यह ख्याल नहीं आया। लेकिन तुम ऐसी बात मत करो। इससे मन बड़ा उदास होता है। कि अगर मैं सारी दुनिया जीत लूंगा, तो कोई दूसरी दुनिया तो है नहीं। तो फिर मैं क्या करूंगा!

पूछें राष्ट्रपतियों से, प्रधानमंत्रियों से कि जब वे क्यू के आगे पहुंच जाते हैं, तो वहां कोई बस भी नहीं जिस पर सवार हो जाएं। वहां कुछ भी नहीं है। बस, क्यू के आगे खड़े हैं। और पीछे से लोग धक्का दे रहे हैं, क्योंकि वे आगे आने की कोशिश कर रहे हैं।

और वह जो आगे आ गया है, उसकी हालत ऐसी हो जाती है कि अब वह यह भी नहीं कह सकता कि अपनी पूंछ कट गई; यहां आकर कुछ मिला नहीं। और अब पीछे लौटने में भी बेचैनी मालूम पड़ती है कि अब क्यू में कहीं भी खड़ा होना बहुत कष्टपूर्ण होगा। इसलिए वह कोशिश करता है कि जमा रहे वहीं।

लेकिन वह अकेला ही तो नहीं है। सारी दुनिया वहीं पहुंचने की कोशिश कर रही है। तो पीछे धक्के हैं! लोग टांग खींच रहे हैं। सब उतारने की कोशिश में लगे हैं। सब मित्र भी शत्रु हैं वहां। क्योंकि वे जो आस-पास खड़े हैं, वे सब वहीं पहुंचना चाह रहे हैं।

इसलिए राजनीतिज्ञ का कोई दोस्त नहीं होता। हो नहीं सकता। सब मित्र शत्रु होते हैं। मित्रता ऊपर-ऊपर होती है, भीतर शत्रुता होती है। क्योंकि वे भी उसी जगह के लिए, क्यू में नंबर एक आने की कोशिश में लगे हैं।

इसलिए राजनीतिज्ञ को जितना अपने शत्रुओं से सावधान रहना पड़ता है, उससे ज्यादा अपने मित्रों से। क्योंकि शत्रु तो काफी दूर रहते हैं, उनके आने में काफी वक्त लगता है। उतनी देर में कुछ तैयारी हो सकती है। मित्र बिल्कुल करीब रहते हैं। जरा-सा धक्का और वे छाती पर सवार हो जाएंगे। तो उनको ठिकाने पर रखना पड़ता है चौबीस घंटे।

तो प्राइम मिनिस्टर्स का काम इतना है कि अपने कैबिनेट के मित्रों को ठिकाने पर रखे। कि कोई भी जरा ज्यादा न हो जाए! और जरा ज्यादा अकड़ न दिखाने लगे, और जरा तेजी में न आ जाए कोई। तेजी में आया, तो उसको दुरुस्त करना एकदम जरूरी है। क्योंकि वह वही काम कर रहा है, जो कि पहले इन सज्जन ने किया था!

तो यह जो मूढ़ता है, जिसको दिखाई पड़ जाए--चाहे धन का हो, चाहे पद का हो, चाहे यश का हो--जिसको यह मूढ़ता दिखाई पड़ जाए कि यह विक्षिप्तता है, कि पहले पहुंचकर करिएगा क्या! तो आदमी निरहंकार की यात्रा पर चलता है।

निरहंकार सफलता-असफलता की व्यर्थता का बोध है। लेकिन तब सफलता होती है। पर वह आंतरिक है। हो सकता है, इस जगत में उसका कोई मूल्यांकन भी न हो। बुद्ध को कितनी सफलता मिली, हम कैसे आंकें? क्योंकि बैंक बैलेंस तो कुछ है नहीं। बुद्ध को कुछ मिला कि नहीं मिला, हम कैसे पहचानें? क्योंकि इतिहास में कहीं कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता। जो मिला है, वह कुछ दूसरे आयाम, किसी दूसरे डायमेंशन का है। इस जगत में उसकी कोई पहचान नहीं है।

लेकिन फिर भी हमको उसकी सुगंध लगती है। बुद्ध के उठने में, बैठने में हमें लगता है कि कुछ मिल गया है। उनकी आंखों में लगता है कि कुछ मिल गया है। उनका मौन, उनकी शांति, उनका आनंद! जीवन में उनका अभय, जीवन के प्रति उनकी गहन आस्था! मृत्यु से भी जरा-सा संकोच नहीं। खो जाने की सदा तैयारी। जैसे वह पा लिया हो, जो खोता ही नहीं है। अमृत का कोई अनुभव उन्हें हुआ है। उसकी हमें सुगंध, उसकी थोड़ी झलक, उसकी भनक, उनके स्पर्श से, उनकी मौजूदगी से लगती है। लेकिन संसार की भाषा में उसे तौलने का कोई उपाय नहीं, कोई तराजू नहीं, कोई कशिश नहीं कि नाप लें, जांच लें, क्या मिला है।

सफलता तो निरहंकार की है। सच तो यह है कि सिर्फ निरहंकार ही सफल होता है। लेकिन वे फल, जो निरहंकार की सफलता में लगते हैं, आंतरिक हैं, भीतरी हैं। संसार की सफलता निरहंकार की सफलता नहीं है। लेकिन संसार की कोई सफलता सफलता ही नहीं है।

तो यह मत पूछें। और यह भी मत पूछें कि इतने जहां लोग अहंकार से भरे हैं, अगर हम इन सबके विपरीत बहने लगें, तो बड़ी अड़चन होगी! आप गलती में हैं। अहंकार का मतलब ही होता है, धारा के विपरीत

बहना। अहंकार का मतलब होता है कि नदी से विपरीत बहना। नदी की धार बह रही है पश्चिम की तरफ, तो आप बह रहे हैं पूरब की तरफ। अहंकार का मतलब ही होता है, उलटे जाना। क्योंकि लड़ने में अहंकार का रस है। जब धारा से कोई विपरीत लड़ता है, तभी तो पता चलता है कि मैं हूं। जब आप नदी में धारा के साथ बहते हैं, तो कैसे पता चलेगा कि आप हैं! जब आप लड़ते हैं धारा से, तब पता चलता है कि मैं हूं।

तो अहंकार है, जीवन की धारा के विपरीत। निरहंकार है, धारा के साथ। माना कि और सब लोग जो ऊपर की तरफ जा रहे हैं धारा में, आप उनसे नीचे की तरफ जाएंगे। लेकिन आप यह मत सोचिए कि इससे वे दुखी होंगे। इससे वे प्रसन्न होंगे, क्योंकि एक कांपिटीटर कम हुआ, एक प्रतियोगी अलग हटा।

इसलिए आप जरा देखें, अहंकारी भी निरहंकारियों को सम्मान देते हैं! राजनीतिज्ञ भी कभी साधु के चरणों में आकर बैठता है। यह आदमी अलग हट गया मैदान से। एक दुश्मन कम हुआ। इसने लड़ाई छोड़ दी। यह बहने लगा धारा में।

तो आपको लगता है कि आप विपरीत धारा में बहेंगे निरहंकारी होकर, तो गलत लगता है। आप अहंकारी होकर धारा के विपरीत बह रहे हैं, जीवन की धारा के विपरीत। निरहंकारी होकर आप जीवन की धारा में बहेंगे। हां, और अहंकारियों के विपरीत आप जाएंगे, लेकिन इससे कोई अड़चन न होगी। अड़चन हो सकती है, अगर आप निरहंकार से भी संसार का धन, संसार की प्रतिष्ठा और पद पाना चाहते हों। तो हो सकती है।

सुना है मैंने, एक सम्राट प्रार्थना कर रहा था एक मंदिर में। वर्ष का पहला दिन था और सम्राट वर्ष के पहले दिन मंदिर में प्रार्थना करने आता था। वह प्रार्थना कर रहा था और परमात्मा से कह रहा था कि मैं क्या हूं! धूल हूं तेरे चरणों की। धूल से भी गया बीता हूं। पापी हूं। मेरे पापों का कोई अंत नहीं है। दुष्ट हूं, क्रूर हूं, कठोर हूं। मैं कुछ भी नहीं हूं। आई एम जस्ट ए नोबडी, ए नथिंग। बड़े भाव से कह रहा था।

और तभी पास में बैठा एक फकीर भी परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था और वह भी कह रहा था कि मैं भी कुछ नहीं हूं। आई एम नोबडी, नथिंग। सम्राट को क्रोध आ गया। उसने कहा, लिसेन, हू इ.ज क्लेमिंग दैट ही इ.ज नथिंग? एंड बिफोर मी! सुन, कौन कह रहा है कि मैं कुछ भी नहीं हूं? और मेरे सामने! जब कि मैं कह रहा हूं कि मैं कुछ भी नहीं हूं, तो कौन प्रतियोगिता कर रहा है?

जो आदमी कह रहा है, मैं कुछ भी नहीं हूं, वह भी इसकी फिक्र में लगा हुआ है कि कोई दूसरा न कह दे कि मैं कुछ भी नहीं हूं। कोई प्रतियोगिता न कर दे। अब जब तुम कुछ भी नहीं हो, तो अब क्या दिक्कत है! अब क्या डर है! लेकिन कहीं दूसरा इसमें भी आगे न निकल जाए!

अहंकार के खेल बहुत सूक्ष्म हैं। तो अगर आप किसी निरहंकारी से कहें कि तुमसे भी बड़े निरहंकारी को मैंने खोज लिया है, तो उसको भी दुख होता है, कि अच्छा, मुझसे बड़ा? मुझसे बड़ा भी कोई विनम्र है? तुम गलती में हो। मैं आखिरी हूं। उसके आगे, मुझसे बड़ा विनम्र कोई भी नहीं है। उसको भी पीड़ा होती है। निरहंकारी को भी लगता है कि मुझसे आगे कोई न निकल जाए! तो फिर यह अहंकार की ही यात्रा रही। फिर यह निरहंकार झूठा है, थोथा है।

निरहंकार का मतलब है, हम प्रतियोगिता के बाहर हट गए। अब हमसे कोई आगे-पीछे कहीं भी हो, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। हम अपने होने से राजी हो गए। अब हमारी दूसरे से कोई स्पर्धा नहीं है।

निरहंकार का मतलब है, मैं जैसा हूं, हूं। अब मैं किसी के आगे और पीछे अपने को रखकर नहीं सोचता। अब मैं अपनी तुलना नहीं करता हूं। और मेरा मूल्य मैं तुलना से नहीं आंकता हूं।

जिस दिन कोई व्यक्ति अपना मूल्य तुलना से नहीं आंकता, उसने संसार के तराजू से अपने को हटा लिया। लेकिन ऐसा व्यक्ति परमात्मा की आंखों में मूल्यवान हो जाता है। जो व्यक्ति पड़ोसियों की आंखों का मूल्य खोने को राजी है, वह परमात्मा की आंखों में मूल्यवान हो जाता है। और जो व्यक्ति पड़ोसियों की आंखों में ही अपने मूल्य को थिर करने में लगा है, उसका कोई मूल्य परमात्मा की आंखों में नहीं हो सकता है।

यहां से जो हटता है प्रतियोगिता से, तत्क्षण परमात्मा के हाथों में उसका गौरव है। इसलिए जीसस ने कहा कि जो यहां अंतिम हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम हो जाएंगे।

लेकिन आप अंतिम होने की कोशिश इसलिए मत करना कि प्रभु के राज्य में प्रथम होना है! नहीं तो आप अंतिम हो ही नहीं रहे हैं।

जीसस जिस दिन पकड़े गए और जिस दिन, दूसरे दिन उनकी मौत हुई, रात जब उनके शिष्य उन्हें छोड़ने लगे, तो एक शिष्य ने उनसे पूछा कि जाते-जाते यह तो बता दो! माना कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में हम प्रथम होंगे, लेकिन हम भी बारह हैं। तो सबसे प्रथम कौन होगा? माना कि तुम तो प्रभु के पुत्र हो, तो बिल्कुल सिंहासन के बगल में बैठोगे। लेकिन तुम्हारे बगल में कौन बैठेगा?

वे बारह जो शिष्य हैं, उनको भी चिंता है कि वहां बारह की पोजीशन! कौन कहां बैठेगा? तो बात ही चूक गई। जीसस को खो गए। फिर जीसस को समझे ही नहीं।

प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे, यह परिणाम है, अगर आप अंतिम होने को राजी हैं। लेकिन अगर यह आपकी वासना है, तो यह कभी भी नहीं होगा। क्योंकि तब आप अंतिम होने को राजी ही नहीं हैं। तब तो आप प्रथम ही होने को राजी हैं। यह संसार हो कि वह संसार हो, कहीं भी, लेकिन होना प्रथम है। आप लगे हैं उपद्रव में प्रतियोगिता के।

निरहंकार का अर्थ है कि परमात्मा की आंखों में जैसा भी मैं हूं, मैं आनंदित हूं। और अब मैं किसी से तुलना नहीं करता हूं। और मैं छोड़ता हूं प्रतियोगिता। यह समझ, यह बोध जिसे आ जाए, फिर वह इसकी फिक्र नहीं करेगा कि क्या तकलीफें होंगी। कोई तकलीफ न होगी। सब तकलीफें अहंकार से होती हैं। निरहंकारी को कोई भी तकलीफ नहीं है। चुभता ही कांटा, अहंकार के घाव में है।

एक आदमी निकला और उसने नमस्कार नहीं किया। रोज करता था। तकलीफ शुरू हो गई! कुछ भी नहीं था। यह हाथ जोड़ लेता था, तो क्या मिलता था! और आज नहीं जोड़े, तो क्या तकलीफ हो रही है! किसी ने गाली दे दी, तो तकलीफ हो गई! किसी ने जरा ढंग से न देखा, तो तकलीफ हो गई! रास्ते से जा रहे थे, कोई हंसने लगा, तो तकलीफ हो गई! कहां, यह घाव है कहां?

यह आपका अहंकार है, जिसमें यह घाव है। तो आप सोचते हैं कि कोई हंस रहा है, तो बस, मुझे ही सोचकर हंस रहा है। कोई गाली दे रहा है, तो मुझे नीचे उतार रहा है। आप ऊपर चढ़े क्यों हैं? कोई गाली भी देकर कितना नीचे उतारेगा? आप उससे पहले ही नीचे खड़े हो जाएं।

कोई सम्मान नहीं कर रहा है, तो पीड़ा हो रही है। क्योंकि सम्मान की मांग है। दुख दूसरा नहीं दे रहा है। दुख का घाव आप पहले बनाए हैं; दूसरा तो घाव को छू रहा है सिर्फ।

अहंकार छूटते ही पीड़ा का विसर्जन हो जाता है। आपका घाव ही समाप्त हो गया।

आपने ख्याल किया है, अगर पैर में चोट लग जाए किसी दिन, तो फिर दिनभर उसी जगह चोट लगती है। लेकिन आपने ख्याल किया कि सारी जमीन आपके घाव की इतनी फिक्र कर रही है! दरवाजे से निकलें, तो दरवाजा उसी में चोट मारता है। कुर्सी के पास जाएं, तो कुर्सी उसमें चोट मारती है। बच्चे से बात करने लगें, तो

बच्चा उस पर पैर रख देता है। यह मामला क्या है कि सारी दुनिया को पता हो गया है कि आपके पैर में चोट लगी है! और सब उसी को चोट मार रहे हैं!

किसी को पता नहीं है। लेकिन आज आपको चोट लगती है, क्योंकि घाव है। कल भी लगती थी, लेकिन पता नहीं चलता था, क्योंकि घाव नहीं था। कल भी इस बच्चे ने यहीं पैर रखा था, और यह कुर्सी कल भी यहीं छू गई थी, लेकिन तब आपको पता भी नहीं चला था, क्योंकि घाव नहीं था।

अहंकार घाव है। फिर हर चीज उसी में लगती है। आप तैयार ही खड़े हैं कि आओ और लगो! और जब तक कुछ न लगे, तब तक आपको बेचैनी लगती है कि आज बात क्या है, कुछ लग नहीं रहा है! और हर आदमी सम्हला हुआ चल रहा है कि कोई न कोई लगाने आ रहा है।

इतनी भीड़ है, इतनी बड़ी दुनिया है, किसी को मतलब है आपसे! कोई आपको चोट पहुंचाने को उत्सुक नहीं है। और अगर कोई पहुंचा भी देता है, तो वह चोट आपको इसलिए पहुंचती है कि आप घाव तैयार रखे हैं। नहीं तो पता भी नहीं चलता। ठीक था, किसी ने गाली दी और आप अपने रास्ते पर चले गए।

बुद्ध को लोगों ने गालियां दी हैं। तो बुद्ध ने कहा है कि जब तुम गाली देते हो, तब मैं सोचता हूं कि तुम किसको गाली दे रहे हो! इस शरीर को? तो यह तो मिट ही जाएगा। और जो मिट ही जाने वाला है उसके साथ गाली का क्या लेना-देना! तुम मुझको गाली दे रहे हो? तुम्हें मेरा क्या पता होगा? तुम्हें अपना ही पता नहीं है। तो मैं सोचता हूं और हंसता हूं कि क्या हो गया है!

स्वामी राम कहते थे कि कोई उन्हें गाली दे दे, तो वे हंसते हुए आते थे और कहते थे, आज बाजार में बड़ा मजा आ गया। राम को लोग गालियां देने लगे। और हम खड़े होकर हंसने लगे कि अच्छे फंसे राम! और चाहो नाम, उपद्रव होगा!

जब वे पहली दफा अमेरिका गए, तो लोग समझे नहीं कि वे किसको राम कहते हैं। वे खुद को ही राम कहते थे, खुद के शरीर को। वे कहते कि राम को आज बड़ी भूख लगी है; हम बड़े हंसने लगे। या राम को लोगों ने गालियां दीं, और हम हंसने लगे। तो लोग पूछते कि आप किसकी बात कर रहे हैं? तो वे कहते, इस राम की। इसको जब गाली पड़ती है, तो हम पीछे खड़े होकर हंसते हैं कि देखो, अब क्या होता है! अब यह राम क्या करता है! यह अहंकार अब क्या करता है!

अगर आप पीछे खड़े होकर हंसने लगें, तो फिर यह कुछ भी नहीं कर सकेगा। यह गिर ही जाएगा। यह करता ही तब तक है, जब तक आप मानते हैं कि यही मैं हूं। जब तक यह आइडेंटिफिकेशन है, यह तादात्म्य है, तभी तक इसकी पीड़ा है।

अहंकार से हटकर देखें। अहंकार से हटते ही आप नरक से हट गए। अहंकार से हटते ही स्वर्ग का द्वार खुल गया। अहंकार से हटते ही इस जगत में आपका न कोई संघर्ष है, न कोई प्रतिस्पर्धा है। अहंकार से हटते ही यह जगत आपको स्वीकार कर लेगा, जैसे आप हैं। अहंकार से हटते ही आप परमात्मा की आंखों में ऊपर उठ गए।

अब हम सूत्र को लें।

और यदि तू मन को मेरे में अचल स्थापन करने के लिए समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन, अभ्यासरूप-योग के द्वारा मेरे को प्राप्त होने के लिए इच्छा कर।

कृष्ण ने कहा, और अगर तू पाए कि एकदम से भाव कैसे करूं, और एकदम से मन को कैसे लगा दूं प्रभु में, और एकदम से कैसे डूब जाऊं, लीन हो जाऊं; अगर तुझे ऐसा प्रश्न उठे कि कैसे, तो फिर अभ्यासरूप-योग के द्वारा मुझको प्राप्त करने की इच्छा कर।

यह बात समझ लेने जैसी है।

दो तरह के लोग हैं। एक तो वे लोग हैं, जिनको यह कहते से ही कि डूब जाओ, डूब जाएंगे। वे नहीं पूछेंगे, कैसे?

छोटे बच्चे हैं। उनसे कहो कि नाचो और नाच में डूब जाओ। तो वे यह नहीं पूछेंगे, कैसे? नाचने लगेंगे और डूब जाएंगे। और अगर कोई बच्चा पूछे कैसे, तो समझना कि बूढ़ा उसमें पैदा हो गया, वह अब बच्चा है नहीं। कैसे का मतलब ही यह है कि पहले कोई तरकीब बताओ, तब हम डूबेंगे। डूब सीधा नहीं सकते। इसका मतलब यह हुआ कि डूबने और हमारे बीच में कोई बाधा है, जिसको तोड़ने के लिए तरकीब की जरूरत होगी।

बच्चा डूब जाएगा; नाचने लगेगा। बच्चा जानता ही है। खेल में डूब जाता है। बच्चे को खेल से निकालना पड़ता है, डुबाना नहीं पड़ता। बच्चा डूबा होता है; मां-बाप को खींच-खींचकर बाहर निकालना पड़ता है, कि निकल आओ। अब चलो। और वह है कि खिंचा जा रहा है। खेल में डूबा हुआ था। ये मां-बाप उसे कहां खाने की, पीने की, सोने की, व्यर्थ की बातें कर रहे हैं! वह लीन था। उस लीनता में वह अस्तित्व के साथ एक था। चाहे वह गुड्डी हो, चाहे वह कोई खिलौना हो, चाहे कोई खेल हो। वह जानता है।

बच्चे कभी नहीं पूछते कि खेल में कैसे डूबें? आपने किसी बच्चे को सुना है पूछते कि खेल में कैसे डूबें? वह डूबना जानता है। वह पूछता नहीं।

जो लोग बच्चों की तरह ताजे होते हैं--थोड़े से लोग, और उनकी संख्या रोज कम होती जाती है--वे लोग सीधे डूब सकते हैं।

पुरानी कहानियां हैं साधकों की। तिलोपा ने अपने शिष्य नारोपा को कहा कि तू आंख बंद कर और डूब जा। और नारोपा ने आंख बंद कर लीं और डूब गया। और ज्ञान को उपलब्ध हो गया।

बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है। इतना मामला आसान! हम भी आंख बंद करते हैं। और कोई कितना ही कहे, डूब जाओ, आंख बंद हो जाती है, विचार चलते रहते हैं। डूबने का कुछ पता नहीं चलता। बल्कि आंख बंद करके और ज्यादा चलने लगते हैं। आंख खुली रहती है, थोड़े कम चलते हैं। बाहर उलझे रहते हैं, तो थोड़ा ख्याल कम रहता है। आंख बंद की कि मुश्किल हो जाती है।

आपसे लोग कहते हैं, एकांत में बैठ जाओ। आप कहते हैं, एकांत में तो और मुसीबत हो जाती है। इतना तो लोगों से बातचीत करते रहते हैं, तो मन सुलझा रहता है। उलझा रहता है, इसलिए लगता है, सुलझा है! अकेले में तो हम ही रह जाते हैं, और बड़ी तकलीफ होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने डाक्टर के पास गया था। और डाक्टर से कहने लगा, एक बड़ी मुसीबत हो गई है। सुबह-सांझ, रात-सुबह, जागूं कि सोऊं, बस एक मुश्किल हो गई है, अपने से बातें, अपने से बातें, अपने से बातें करने में लगा हूं। कुछ इलाज?

डाक्टर ने कहा, इतने परेशान मत होओ। लाखों लोग अपने से बातें करते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, आप समझे नहीं। तुम्हें पता नहीं है, अपने से बात करने से मैं भी इतना न घबड़ाता। लेकिन मैं इतना उबाने वाला हूं कि अभी तक मैं दूसरों को बोर करता था, अब खुद ही को कर रहा हूं। अभी तक दूसरों को उबाता था।

तब तक भी थोड़ी राहत थी। अब मैं अपने को ही उबाता हूं चौबीस घंटे। वही बातें जो हजार दफे कह चुका हूं, कह रहा हूं।

इसलिए हम भागते हैं अकेलेपन से। जल्दी पकड़ो किसी को। कहीं भी कोई मिल जाए, तो एकदम झपट पड़ते हैं, आक्रमण कर देते हैं। हमारे प्रश्न, हमारी बातचीत कुछ नहीं है, भीतर की बेचैनी है।

अब मौसम आपको भी पता है कि कैसा है। जिससे आप पूछ रहे हैं, उसको भी पता है कि कैसा है। आप कहते हैं, कहो, कैसा मौसम है?

क्या पूछना है! नहीं लेकिन सिलसिला शुरू कर रहे हैं आप सिर्फ। ये तो सिर्फ ट्रिक्स हैं प्राथमिक। फिर जल्दी से आप जो आपके भीतर उबल रहा है, वह उसके ऊपर उबाल देंगे। फिर जो ज्यादा ताकतवर होगा, वह दूसरे को दबाकर उसकी खोपड़ी में बातें डालकर भाग खड़ा होगा। जो कमजोर होगा, वह बेचारा सुन लेगा, कि ठीक है। अब दुबारा जरा सावधान रहना इस आदमी से। जब यह पूछे कि मौसम कैसा है, तभी निकल जाना।

लेकिन अकेले में घबड़ाहट होती है, क्योंकि अकेले में आप ही अपने से पूछ रहे हैं कि मौसम कैसा है और आपको पता है कि मौसम कैसा है। कुछ... ।

लेकिन तिलोपा ने नारोपा को कहा, आंख बंद कर और डूब जा। और वह डूब गया। छोटे बच्चे जैसा रहा होगा।

जमीन बचपन में थी। अब जमीन जवान है; अडल्ट हो गई है। हजार, दो हजार, तीन हजार साल पहले, पांच हजार साल पहले जो लोग थे, बच्चों जैसे थे। उनसे कहा कि डूब जाओ, तो वे डूब गए। उन्होंने नहीं पूछा कि कैसे? हम पूछेंगे, कैसे?

तो कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि अगर तू डूब सकता हो मुझमें, तो डूब जा। फिर तो कोई बात करने की नहीं है। लेकिन अर्जुन सुसंस्कृत क्षत्रिय है। पढ़ा-लिखा है। उस समय का बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी है। तो कृष्ण को भी शक है कि वह डूब सकेगा कि नहीं। तो वे कहते हैं, और अगर न डूब सके, तो फिर अभ्यासरूप-योग द्वारा मुझको प्राप्त होने की इच्छा कर। फिर तुझे अभ्यास करना पड़ेगा।

भक्त बिना योग के पहुंच जाता है। जो भक्त नहीं हो सकता, उसको योग से जाना पड़ता है। योग का मतलब है, टेक्नालाजी। अगर सीधे नहीं डूब सकते, तो टेक्नीक का उपयोग करो। तो फिर एक बिंदु बनाओ। उस पर चित्त को एकाग्र करो। कि एक मंत्र लो। सब शब्दों को छोड़कर, ओम, ओम, एक ही मंत्र को दोहराओ, दोहराओ। सारा ध्यान उस पर एकाग्र करो।

अगर मंत्र से काम न चलता हो, तो शरीर को बिल्कुल थिर करके आसन में रोक रखो। क्योंकि जब शरीर बिल्कुल थिर हो जाता है, तो मन को थिर होने में सहायता पहुंचाता है। तो शरीर को बिल्कुल पत्थर की तरह, मूर्ति की तरह थिर कर लो। सिद्धासन है, पद्मासन है, उसमें बैठ जाओ।

अगर आंख खोलने से बाहर की चीजें दिखाई पड़ती हैं, और आंख बंद करने से भीतर की चीजें दिखाई पड़ती हैं, तो आधी आंख खोलो। तो नाक ही दिखाई पड़े बस, इतना बाहर। और भीतर भी नहीं, बाहर भी नहीं। तो नाक पर ही अपने को थिर कर लो।

ये सब टेक्नीक हैं। ये उनके लिए हैं, जो भक्त नहीं हो सकते। जो प्रेम नहीं कर सकते, उनके लिए हैं। योग उनके लिए है, जो प्रेम में असमर्थ हैं। जो प्रेम में समर्थ हैं, उनके लिए योग की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन जो प्रेम में समर्थ नहीं हैं, उनको पहले अपने को तैयार करना पड़े कि कैसे डूबें। तो नाक के बिंदु पर डूबो; कि

नाभि पर ध्यान को केंद्रित करो; कि बंद कर लो अपनी आंखों को और भीतर एक प्रकाश का बिंदु कल्पित करो, उस पर ध्यान को एकाग्र करो। वर्षों मेहनत करो। अभ्यासरूप-योग द्वारा!

और जब इन छोटे-छोटे, छोटे-छोटे प्रयोगों से अभ्यास करते-करते वर्षों में तुम इस जगह आ जाओ कि अब तुम न पूछो कि कैसे। क्योंकि तुम्हें पता हो गया कि ऐसे डूबा जा सकता है; तब सीधे परमात्मा में डूब जाओ। तब अपने बिंदु, और अपने मंत्र, और अपने यंत्र, सब छोड़ दो, और सीधी छलांग लगा लो।

जो सीधा कूद सके, इससे बेहतर कुछ भी नहीं है। प्रेमी सीधा कूद सकता है। लेकिन अगर बुद्धि बहुत काम करती हो, तो फिर पूछेगी, हाउ? कैसे? तो फिर योग की परंपरा है, पतंजलि के सूत्र हैं, फिर साधो। फिर उनको साध-साधकर पहले सीखो एकाग्रता, फिर तन्मयता में उतरो।

अभ्यासरूप-योग के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर। और यदि तू ऊपर कहे हुए अभ्यास में भी असमर्थ हो... ।

यह भी हो सकता है कि तू कहे कि बड़ा कठिन है। कहां बैठें! और कितना ही बैठो सम्हालकर, शरीर कंपता है। और मन को कितना ही रोको, मन रुकता नहीं। और ध्यान लगाओ, तो नींद आती है, तल्लीनता नहीं होती।

अगर तू इसमें भी समर्थ न हो, तो फिर एक काम कर। तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मों को करता हुआ मेरी प्राप्ति, मेरी सिद्धि को पा सकेगा।

अगर तुझे यह भी तकलीफ मालूम पड़ती हो, अगर भक्ति-योग तुझे कठिन मालूम पड़े, तो फिर ज्ञान-योग है। ज्ञान-योग का अर्थ है, योग की साधना, अभ्यास। अगर तुझे वह भी कठिन मालूम पड़ता हो, तो फिर कर्म-योग है। तो फिर तू इतना ही कर कि सारे कर्मों को मुझमें समर्पित कर दे। और ऐसा मान ले कि तेरे भीतर मैं ही कर रहा हूं। और मैं ही तुझसे करवा रहा हूं। और तू ऐसे कर जैसे कि मेरा साधन हो गया है, एक उपकरण मात्र। न पाप तेरा, न पुण्य तेरा। न अच्छा तेरा, न बुरा तेरा। सब तू छोड़ दे और कर्म को मेरे प्रति समर्पित कर दे।

ये तीन हैं। श्रेष्ठतम तो प्रेम है। क्योंकि छलांग सीधी लग जाएगी। नंबर दो पर साधना है। क्योंकि प्रयास और अभ्यास से लग सकेगी। अगर वह भी न हो सके, तो नंबर तीन पर जीवन का कर्म है। फिर पूरे जीवन के कर्म को प्रभु-अर्पित मानकर चलता जा।

इन तीन में से ही किसी को चुनाव करना पड़ता है। और ध्यान रहे, जल्दी से तीसरा मत चुन लेना। पहले तो कोशिश करना, ख्याल करना पहले की, प्रेम की। अगर बिल्कुल ही असमर्थ अपने को पाएं कि नहीं, यह हो ही नहीं सकता... ।

कुछ लोग प्रेम में बिल्कुल असमर्थ हैं। असमर्थ हो गए हैं अपने ही अभ्यास से। जैसे कोई आदमी अगर धन को बहुत पकड़ता हो, पैसे को बहुत पकड़ता हो, तो प्रेम में असमर्थ हो जाता है। क्योंकि विपरीत बातें हैं। अगर पैसे को जोर से पकड़ना है, तो आदमी को प्रेम से बचना पड़ता है। क्योंकि प्रेम में पैसे को खतरा है। प्रेमी पैसा इकट्ठा नहीं कर सकता। जिनसे प्रेम करेगा, वे ही उसका पैसा खराब करवा देंगे। प्रेम किया कि पैसा हाथ से गया।

तो जो पैसे को पकड़ता है, वह प्रेम से सावधान रहता है कि प्रेम की झंझट में नहीं पड़ना है। वह अपने बच्चों तक से भी जरा सम्हलकर बोलता है। क्योंकि बाप भी जानते हैं, अगर जरा मुस्कुराओ, तो बच्चा खीसे में हाथ डालता है। मत मुस्कुराओ, अकड़े रहो, घर में अकड़कर घुसो। बच्चा डरता है कि कोई गलती तो पता नहीं

चल गई! गलती तो बच्चे कर ही रहे हैं। और बच्चे नहीं करेंगे, तो कौन करेगा! तो समझता है कि कोई गड़बड़ हो गई है; जरा दूर ही रहो। लेकिन बाप अगर मुस्कुरा दे, तो बच्चा फौरन खीसे में हाथ डालता है।

तो बाप पत्नी से भी सम्हलकर बात करता है। क्योंकि जरा ही वह ढीला हुआ और उसकी जरा कमर झुकी कि पत्नी ने बताया कि उसने साड़ियां देखी हैं! फलां देखा है।

तो जिसको पैसे पर बहुत पकड़ है, वह प्रेम से तो बहुत डरा हुआ रहता है। और हम सबकी पैसे पर भारी पकड़ है। एक-एक पैसे पर पकड़ है। और बहाने हम कई तरह के निकालते हैं कि पैसे पर हमारी पकड़ क्यों है। लेकिन बहाने सिर्फ बहाने हैं। एक बात पक्की है कि पैसे की पकड़ हो, तो प्रेम जीवन में नहीं होता।

तो जितना ज्यादा पैसे की पकड़ वाला युग होगा, उतना प्रेमशून्य होगा। और प्रेमपूर्ण युग होगा, तो बहुत आर्थिक रूप से संपन्न नहीं हो सकता। पैसे पर पकड़ छूट जाएगी।

प्रेमी आदमी बहुत समृद्ध नहीं हो सकता। उपाय नहीं है। पैसा छोड़कर भाग जाएगा उसके हाथ से। किसी को भी दे देगा। कोई भी उससे निकाल लेगा।

तो हम अगर प्रेम में समर्थ हो सकें, तब तो श्रेष्ठतम। अगर न हो सकें, तो फिर अभ्यास की फिक्र करनी चाहिए। फिर योग-साधन हैं। अगर उनमें भी असफल हो जाएं, तो ही तीसरे का प्रयोग करना चाहिए, कि फिर हम कर्म को... । क्योंकि वह मजबूरी है। जब कुछ भी न बने, तो आखिरी है।

जैसे पहले आप एलोपैथ डाक्टर के पास जाते हैं। अगर वह असफल हो जाए, फिर होमियोपैथ के पास जाते हैं। वह भी असफल हो जाए, तो फिर नेचरोपैथ के पास जाते हैं। वह नेचरोपैथी है, वह आखिरी है। जब कि ऐसा लगे कि अब कुछ होता ही नहीं है; कि ज्यादा से ज्यादा नेचरोपैथ मारेगा और क्या करेगा, तो ठीक है अब। सब हार गए, तो अब कहीं भी जाया जा सकता है।

कर्म-योग आखिरी है। क्योंकि उसके बाद फिर कुछ भी नहीं है उपाय। तो सीधा कर्म-योग से प्रयोग शुरू मत करना, नहीं तो दिक्कत में पड़ जाएंगे। क्योंकि उससे नीचे गिरने की कोई जगह नहीं है।

पहले प्रेम से शुरू करना। अगर हो जाए, अदभुत। न हो पाए, तो अभी दो उपाय हैं। अभी दो इलाज बाकी हैं। फिर अभ्यास का प्रयोग करना। और जल्दी मत छोड़ देना। क्योंकि अभ्यास तो वर्षों लेता है। तो वर्षों मेहनत करना। अगर हो जाए, तो बेहतर है। अगर न हो पाए, तो फिर कर्म पर उतरना।

और ध्यान रहे, जिसने प्रेम का प्रयोग किया और असफल हुआ, और जिसने योग का अभ्यास किया--अभ्यास किया, मेहनत की--और असफल हुआ, वह कर्म-योग में जरूर सफल हो जाता है। लेकिन जिसने न प्रेम का प्रयोग किया, न असफल हुआ; न जिसने योग साधा, न असफल हुआ; वह कर्म-योग में भी सफल नहीं हो पाता।

वे दो असफलताएं जरूरी हैं तीसरे की सफलता के लिए। क्योंकि फिर वह आखिरी कदम है और जीवन-मृत्यु का सवाल है। फिर आप पूरी ताकत लगा देते हैं। क्योंकि उसके बाद फिर कोई विकल्प नहीं है। इसलिए निकृष्ट से शुरू मत करना।

कई लोग अपने को धोखा देते रहते हैं। वे कहते हैं, हम तो कर्म-योग में लगे हैं! मेरे पास लोग आ जाते हैं। धंधा करते हैं, नौकरी करते हैं। वे कहते हैं, हम तो कर्म-योग में लगे हैं! जैसे कोई भी काम करना कर्म-योग है!

कोई भी काम करना कर्म-योग नहीं है। कर्म-योग का मतलब है, काम आप नहीं कर रहे, परमात्मा कर रहा है, यह भाव। दुकान आप नहीं चला रहे, परमात्मा चला रहा है। और फिर जो भी सफलता-असफलता हो रही है, वह आपकी नहीं हो रही है, परमात्मा की हो रही है। और जिस दिन आप दीवालिया हो जाएं, तो कह

देना कि परमात्मा दीवालिया हो गया। और जिस दिन धन बरस पड़े, तो कहना कि उसका ही श्रेय है। मैं नहीं हूं। अपने को हटा लेना और सारा कर्म उस पर छोड़ देना।

अब हम कीर्तन करें। बीच में उठें मत। थोड़े-से पांच मिनट के लिए नासमझी कर देते हैं। और जब कीर्तन चलता है, तब आप खड़े हो जाते हैं, तो फिर सबको खड़ा होना पड़ता है। पांच मिनट बैठकर कीर्तन में सम्मिलित हों।

छठवां प्रवचन

कर्म-योग की कसौटी

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।

सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।। 11।।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।

ध्यानात्कर्मफलत्यागः त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।। 12।।

और यदि इसको भी करने के लिए असमर्थ है, तो जीते हुए मन वाला और मेरी प्राप्तिरूप योग के शरण हुआ सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग कर।

क्योंकि मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यान से भी सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग करना श्रेष्ठ है। और त्याग से तत्काल ही परम शांति होती है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, बुद्धि और भाव का विकास क्या साथ-साथ संभव नहीं है? स्वस्थ व्यक्ति क्या ध्यान और भक्ति एक साथ नहीं कर सकता? व्यक्ति तो पूरा है--बुद्धि भी, भाव भी, कर्म भी--तो फिर साधना का मार्ग एकांगी क्यों होना चाहिए?

व्यक्ति तो पूरा है, लेकिन वह व्यक्ति है आदर्श। वह आप नहीं हैं, जो पूरे हैं। जब व्यक्ति अपनी पूर्णता को प्रकट होता है, उपलब्ध होता है, तब उसमें सभी बातें पूरी हो जाती हैं। उसकी बुद्धि भी उतनी ही प्रखर होती है, जितना उसका भाव। उसका कर्म, उसकी बुद्धि, उसका हृदय, सभी मिल जाते हैं, त्रिवेणी बन जाते हैं।

लेकिन यह है अंतिम लक्ष्य। आप अभी ऐसे हैं नहीं। और यात्रा करनी है आपको। तो आप तो जिस तरफ ज्यादा झुके हैं, जिस आयाम में आपकी रुचि, रुझान ज्यादा है, उससे ही यात्रा कर सकेंगे।

और आप अभी खंड-खंड हैं, अधूरे हैं। कोई है, जिसके पास भाव ज्यादा है और बुद्धि कम है। कोई है, जिसके पास कर्म की कुशलता है और कर्म का लगाव है, न बुद्धि है, न भाव है; या तुलना में कम है। और कोई है कि बुद्धि गहन है, भाव कोरा है, कर्म की वृत्ति नहीं है। ऐसे हम अधूरे-अधूरे हैं।

पूर्णता तो होगी उपलब्ध, अभी है नहीं। और यह जो अधूरा आदमी है, इसे तो अपने अधूरेपन से ही प्रारंभ करना होगा। तो जो आपके पास ज्यादा हो, वैसा ही मार्ग चुनना उचित है।

और मार्ग तो सदा ही एकांगी होता है। मंजिल पूर्ण होती है। मार्ग ही अगर पूर्ण हो, तो फिर मंजिल का कोई अर्थ ही न रहा।

मार्ग और मंजिल में फर्क क्या है? मार्ग और मंजिल में बड़ा फर्क यही है कि मार्ग तो अधूरा होगा। और इसलिए जितने लोग हैं इस जगत में, उतने मार्ग होंगे। हर आदमी अपनी जगह से चलेगा; और हर आदमी वहीं से शुरू करेगा, जहां है और जो है। पहुंचना है वहां, जहां व्यक्ति समाप्त हो जाता है, और जहां अव्यक्ति, निराकार, पूर्ण उपलब्ध होता है।

सभी नदियां यात्रा करती हैं सागर की तरफ। सागर कोई यात्रा नहीं करता। कोई नदी पूरब से चलती है, कोई पश्चिम से चलती है। कोई दक्षिण की तरफ बहती है; कोई उत्तर की तरफ बहती है। नदियों के रास्ते होंगे। और नदियों को रास्ते पकड़ने ही पड़ेंगे। अगर नदी यह सोचे कि सागर का तो कोई आयाम, कोई दिशा नहीं है, इसलिए मैं भी कोई आयाम और दिशा न पकडूं, तो फिर सागर तक न पहुंच पाएगी। सागर तक पहुंचने के लिए रास्ता पकड़ना होगा।

हम जहां खड़े हैं, वहां से सागर दूर है।

तो ज्यादा विचारणीय यह नहीं है कि पूर्ण पुरुष क्या है; ज्यादा विचारणीय यह है कि अपूर्ण पुरुष आप कैसे हैं। और अपने को समझकर यात्रा पर निकलना होगा। अगर आप पैदल चल सकते हैं, तो ठीक; बैलगाड़ी से चल सकते हैं, तो ठीक; घोड़े की सवारी कर सकते हैं, तो ठीक; हवाई जहाज से यात्रा कर सकते हैं, तो ठीक।

आप क्या साधन चुनते हैं, वह आपकी सामर्थ्य पर निर्भर है। और साधन महत्वपूर्ण है। और साधन एकांगी होगा। क्योंकि जो आपका साधन है, वह दूसरे का नहीं होगा; उसमें फर्क होंगे।

एक भक्त है। अब जैसे मीरा है। मीरा को बुद्ध का मार्ग समझ में नहीं आ सकता। मीरा को--मीरा के पास है हृदय एक स्त्री का, एक प्रेमपूर्ण हृदय--इस प्रेमपूर्ण हृदय को यह तो समझ में आ सकता है कि परमात्मा से अपने को भर ले; परमात्मा को अपने में विराजमान कर ले; परमात्मा के लिए अपने द्वार-दरवाजे खुले छोड़ दे और उसे प्रवेश कर जाने दे। मीरा को बुद्ध की बात समझ में नहीं आ सकती कि अपने को सब भांति खाली और शून्य कर लिया जाए।

थोड़ा समझें। पुरुष को आसान है समझ में आना कि अपने को खाली कर लो। स्त्री को सदा आसान है समझ में आना कि अपने को भर लो, पूरी तरह भर लो। स्त्री गर्भ है, शरीर में भी और मन में भी। वह अपने को भर सकती है। भरने की वृत्ति उसमें सहज है। पुरुष अपने को खाली करता है। शरीर के तल पर भी अपने को खाली करता है। भरना उसे थोड़ा कठिन मालूम होता है।

तो मीरा को समझ में आती है बात कि परमात्मा से अपने को भर ले। गर्भ बन जाए और परमात्मा उसमें समा जाए। बुद्ध को समझ में आनी मुश्किल है। बुद्ध को लगता है, अपने को उलीच दूं और सब भांति खाली कर दूं; और जब मैं शून्य हो जाऊंगा, तो जो सत्य है, उससे मेरा मिलन हो जाएगा।

बुद्ध शून्य होकर सत्य बनते हैं। मीरा अपने को भरकर पूर्ण से सत्य बनती है। उन दोनों के रास्ते अलग हैं। न केवल अलग, बल्कि विपरीत हैं। लेकिन जहां वे पहुंच जाते हैं, वह मंजिल एक है।

मंजिल पर पहुंचकर बुद्ध और मीरा में फर्क करना मुश्किल हो जाएगा। सारा फर्क रास्ते का फर्क था। जैसे-जैसे मंजिल करीब आएगी, अंतर कम होता जाएगा। और जब मंजिल बिल्कुल आ जाएगी, तो आप मीरा की शक्ल में और बुद्ध की शक्ल में फर्क न कर पाएंगे। आप पहचान भी न पाएंगे, कौन मीरा है, कौन बुद्ध!

लेकिन यह तो आखिरी घटना है। इस आखिरी घटना के इंचभर पहले भी बुद्ध और मीरा को पहचाना जा सकता है। उनमें फर्क होंगे। यह मैंने मोटी बात कही। लेकिन एक-एक व्यक्ति में फर्क होंगे।

इसीलिए दुनिया में इतने धर्म हैं। क्योंकि अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग रास्तों से चलकर उस सत्य की झलक पाई है। और जिसने जिस रास्ते से चलकर झलक पाई है, स्वभावतः वह कहेगा, यही रास्ता ठीक है। उसके कहने में कोई गलती भी नहीं है। दूसरे रास्ते वह जानता भी नहीं है। दूसरे रास्तों पर वह चला भी नहीं है। और जिन रास्तों पर आप चले नहीं हैं, उनके संबंध में आप क्या कहेंगे? जिस रास्ते से आप गुजरे हैं, कहेंगे,

यही ठीक है। और कहेंगे कि इसी पर आ जाओ। और समझाएंगे लोगों को कि कहीं भटक मत जाना किसी और रास्ते पर।

इसलिए जब दुनिया में अलग-अलग धर्मों के लोग कहते हैं कि आ जाओ हमारे रास्ते पर, तो जरूरी नहीं है कि उनके इस कहने में करुणा न हो और सिर्फ आपको बदलने की राजनैतिक आकांक्षा हो। जरूरी नहीं है। हो सकता है करुणा हो; और हो सकता है कि जिस रास्ते पर चलकर उनको आनंद की खबर मिल रही है, वे चाहते हों कि आप भी उसी पर चलें।

लेकिन इससे खतरा पैदा होता है। इससे हर रास्ते को जानने वाला दूसरे रास्ते को गलत कहने को तैयार हो जाता है। तब संघर्ष, विवाद, वैमनस्य स्वभावतः पैदा हो जाते हैं।

लेकिन अगर यह बात हमारे ख्याल में आ जाए कि जितने लोग हैं इस जमीन पर, जितने हृदय हैं, उतने ही रास्ते परमात्मा की तरफ जाते हैं। जाएंगे ही। न मैं आपकी जगह खड़ा हो सकता हूं, न आपकी जगह से चल सकता हूं। न तो मैं आपकी जगह जी सकता हूं, और न आपकी जगह मर सकता हूं। कोई लेन-देन संभव नहीं है। आप ही जीएंगे अपने लिए और आपको ही मरना पड़ेगा अपने लिए। और आप ही चलेंगे। मैं अपने ही ढंग से चलूंगा। अगर यह बोध साफ हो जाए--और होना चाहिए--तो दुनिया बेहतर हो सके।

अगर यह बोध साफ हो जाए कि प्रत्येक व्यक्ति अपने ही रास्ते से चलेगा, अपने ही ढंग से चलेगा, तो हम धर्मों के बीच कलह का कोई कारण न खोज पाएं। लेकिन सबको ऐसा ख्याल है कि जिस रास्ते से मैं चलता हूं, वही ठीक है। उपद्रव होता है।

जैसे आप हैं, वैसा ही आपका रास्ता होगा। क्योंकि आपका रास्ता आपसे ही निकलता है। वह पहुंचेगा परमात्मा तक, लेकिन निकलता आपसे है। पहुंचते-पहुंचते आप समाप्त होते जाएंगे और जिस दिन परमात्मा पर आप पहुंच जाएंगे, पाएंगे कि आप बचे नहीं।

इसलिए आज तक किसी व्यक्ति का परमात्मा से मिलना नहीं हुआ है। जब तक व्यक्ति रहता है, तब तक परमात्मा की कोई खबर नहीं रहती। और जब परमात्मा होता है, तो व्यक्ति समाप्त हो गया होता है, मिट गया होता है, खो गया होता है।

जैसे बूंद सागर में गिरती है, तो जब तक बूंद रहती है, तब तक सागर से दूर रहती है, चाहे फासला इंचभर का ही क्यों न हो। आधे इंच का क्यों न हो, जरा-सा रत्तीभर का फासला क्यों न हो, लेकिन जब तक अभी सागर से दूर है, तभी तक बूंद है। जिस क्षण मिलेगी, बूंद खो गई और सागर ही रह गया।

तो यह कहना कि बूंद सागर से मिलती है, बड़ा मुश्किल है। मिलती तब है, जब बूंद नहीं रह जाती। और जब तक बूंद रहती है, तब तक मिलती नहीं, तब तक दूर रहती है।

आप मिट जाएंगे रास्ते पर। रास्ता आपको समाप्त कर लेगा। रास्ते का मतलब ही है, अपने मिटने का उपाय, अपने को खोने का उपाय, समाप्त करने का उपाय।

धर्म एक अर्थ में मृत्यु है और एक अर्थ में जीवन। इस अर्थ में मृत्यु है कि आप मिट जाएंगे; और इस अर्थ में महा जीवन कि परमात्मा उपलब्ध होगा। बूंद खो जाएगी और सागर हो जाएगा।

लेकिन अभी आप प्रथम चरण पर पूर्णता का ख्याल न करें। अभी तो आप अपना झुकाव समझ लें। और अपने झुकाव को समझकर चलें। अन्यथा बहुत समय, बहुत शक्ति व्यर्थ ही चली जाती है।

अब मैं देखता हूं कि अगर एक व्यक्ति ऐसे घर में पैदा हो जाए, जिसका जन्मगत संस्कार भावना का है और वह भावना वाला न हो... । एक व्यक्ति जैन घर में पैदा हो जाए, महावीर की परंपरा में पैदा हो जाए, और

उसके पास हृदय हो मीरा जैसा, तो मुश्किल में पड़ेगा। अगर कोई भक्ति के संप्रदाय में पैदा हो जाए, और उसके पास बुद्धि हो बुद्ध या महावीर जैसी, तो मुश्किल में पड़ेगा। क्योंकि जो सिखाया जाएगा, वह उसके अनुकूल नहीं है। और जो उसके अनुकूल हो सकता है, वह उसका संप्रदाय नहीं है।

तो अपने विपरीत चलने से बहुत कष्ट होगा। और अपने विपरीत चलकर कोई पहुंच नहीं सकता।

आज दुनिया में जो इतनी अधार्मिकता दिखाई पड़ती है, उसका एक कारण यह भी है कि आप इस बात की खोज ही नहीं करते कि आपके अनुकूल क्या है। आप इसकी फिक्र में लगे रहते हैं, मैं किस घर में पैदा हुआ हूं। कौन-सा शास्त्र मुझे पढ़ाया गया, कुरान, कि बाइबिल, कि गीता? आप इसकी फिक्र नहीं करते कि मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? क्या गीता मुझसे मेल खाएगी? या कुरान मुझसे मेल खाएगा? या बाइबिल मुझसे मेल खाएगी? जो आपसे मेल खाता हो, वही आपके लिए रास्ता है।

दुनिया ज्यादा धार्मिक हो सकती है, अगर हम धर्म को जन्म के साथ जोड़ना बंद कर दें। और बच्चों को सारे धर्मों की शिक्षाएं दी जाएं और यह बच्चे के निर्णय पर हो कि जब वह इक्कीस वर्ष का हो जाए, एक उम्र पा ले प्रौढ़ता की, तब अपना धर्म चुन ले। उसे सारे धर्मों की शिक्षा दे दी जाए और उसे अपने हृदय की पहचान के मार्ग समझा दिए जाएं और इक्कीस वर्ष का होकर वह अपना धर्म चुन ले। तो यह दुनिया ज्यादा धार्मिक हो सकती है। क्योंकि तब व्यक्ति अपने अनुकूल चुनेगा।

अभी आपकी अनुकूलता का सवाल नहीं है। संयोग की बात है कि आप कहां पैदा हो गए हैं। उससे आपका तालमेल बैठता है कि नहीं बैठता है, कहना मुश्किल है। इसलिए देखें, जब भी कोई धर्म प्रारंभ होता है, तो उसमें जो जान होती है, वह बाद में नहीं रह जाती।

अब मोहम्मद पैदा हों। तो मोहम्मद जब पैदा होते हैं, तो जो लोग मुसलमान बनते हैं, वे उनकी च्वाइस से बनते हैं। वे मुसलमान घर्म में पैदा नहीं हुए हैं, क्योंकि मुसलमान धर्म तो था नहीं। जब मोहम्मद के प्रभाव में वे आते हैं, तो अपने चुनाव से आते हैं। वे चुनते हैं इस्लाम को। फिर उनके बच्चे तो इस्लाम में पैदा होते हैं, वे मुर्दा होंगे।

बुद्ध जब पैदा होते हैं, तो जो आदमी बौद्ध बनता है, वह चुनता है। वह सोचता है कि बुद्ध से मेरी बात मेल खाती है कि नहीं? यह मुझे अनुकूल पड़ती है या नहीं? तो वह तो चुनकर बनता है। लेकिन उसका बेटा, उसके बेटों के बेटे, वे तो बिना चुने बनेंगे।

बस, जैसे ही जन्म से धर्म जुड़ेगा, वैसे मुर्दा होता जाएगा। इसलिए बुद्ध जब जिंदा होते हैं, तो जो ताजगी होती है; महावीर जब जिंदा होते हैं, तो उनके आस-पास जो हवा होती है; मोहम्मद या जीसस जब जिंदा होते हैं, तो उनके पास जो फूल खिलते हैं, फिर वे बाद में नहीं खिलते। वे धीरे-धीरे मुर्झाते जाते हैं। मुर्झा ही जाएंगे। बाद में धर्म एक बोझ हो जाता है।

हजार, दो हजार साल पहले आपके किसी बाप-दादे ने धर्म चुना था, तो उसके लिए तो चुनाव था, क्रांति थी। आपके लिए? आपके लिए बपौती है। आपको मुफ्त मिल गया है, बिना चुनाव किए, बिना मेहनत किए, बिना सोचे, बिना समझे। बस, आपको रटा दिया गया बचपन से। तो आप उस अर्थ में बौद्ध, मुसलमान, हिंदू नहीं हो सकते।

मेरी अपनी समझ है कि दुनिया बेहतर होगी, जिस दिन हम धर्मों की शिक्षा देंगे--सब धर्मों की--और व्यक्ति को स्वतंत्र छोड़ देंगे कि अपना धर्म चुन ले। उस दिन दुनिया से धर्मों के झगड़े भी समाप्त हो जाएंगे। क्योंकि एक-एक घर में पांच-पांच, सात-सात धर्मों के लोग मिल जाएंगे। क्योंकि कोई बेटा चुनेगा सिक्ख धर्म

को, कोई बेटा चुनेगा इस्लाम धर्म को, कोई बेटा हिंदू रहना चाहेगा, कोई बेटा ईसाई होना चाहेगा। यह उनकी मौज होगी। और एक घर में जब सात धर्म, आठ धर्म, दस धर्म हो सकेंगे, तो दुनिया से धार्मिक दंगे बंद हो सकते हैं, उसके पहले बंद नहीं हो सकते। कोई उपाय नहीं है उसके पहले बंद करने का।

इसलिए धार्मिक आदमियों के लिए तो एक बड़ी जिम्मेवारी है और वह यह कि वे अपने बच्चों को अगर सच में धार्मिक बनाना चाहते हैं, तो हिंदू, मुसलमान, ईसाई न बनाएं। सिर्फ धर्मों की शिक्षा दें। और उनसे कह दें कि तुम समझ लो ठीक से, और जब तुम्हारी मौज आए, और जब तुम्हें भाव पैदा हो, तब तुम चुनाव कर लेना। और तुम जो भी चुनाव करो तुम्हारे लिए, वह तुम्हारा चुनाव है।

तो हम दुनिया से बहुत-सा उपद्रव अलग कर सकते हैं।

सभी रास्ते सही हैं। लेकिन सभी रास्ते सभी के लिए सही नहीं हैं। हर रास्ता पहुंचाता है, लेकिन हर रास्ता आपको नहीं पहुंचाएगा। आपको तो एक ही रास्ता पहुंचा सकता है। इसलिए खोजना जरूरी है कि कौन-सा रास्ता आपको पहुंचा सकता है।

एक संगीतज्ञ है। एक कवि है। एक चित्रकार है। निश्चित ही, इनके धर्म अलग-अलग होंगे। क्योंकि इनके व्यक्तित्व अलग-अलग हैं।

अगर एक कवि को एक ऐसा धर्म पकड़ाया जाए, जो गणित की तरह रूखा-सूखा, नियमों का धर्म है, तो उसे समझ में नहीं आएगा। उससे कोई मेल नहीं बैठेगा। और अगर वह मजबूरी में उसको ओढ़ भी ले, तो वह ऊपर से ओढ़ा हुआ होगा। उसकी आत्मा से कभी भी उसका संबंध नहीं जुड़ेगा। वह धर्म उसके भीतर बीज नहीं बनेगा, अंकुरित नहीं होगा। उसमें फल-फूल नहीं लगेंगे। उसे तो कोई काव्य-धर्म चाहिए। ऐसा धर्म जो नाचता हो, गाता हो। उसे तो उसी धर्म से मेल बैठ पाएगा।

अब एक चित्रकार हो, एक मूर्तिकार हो, उसे तो कोई धर्म चाहिए, जो परमात्मा को सौंदर्य की भांति देखता हो। उसे तो कोई धर्म चाहिए, जो सौंदर्य की पूजा करता हो, तो ही उसके अनुकूल बैठेगा। ऐसा कोई धर्म जो सौंदर्य का दुश्मन हो, विरोध करता हो रस का, राग का, उसके अनुकूल नहीं बैठेगा। और अगर वह किसी तरह उस धर्म में अपने को समाविष्ट भी कर ले, तो कभी भी उसका हृदय उसे छुएगा नहीं। फासला बना ही रहेगा।

एक गणितज्ञ हो और गणित की तरह साफ-सुथरा काम चाहता हो और दो और दो चार ही होते हों, तो उसे कोई कविता वाला धर्म प्रभावित नहीं कर सकता। उसे उपनिषद प्रभावित नहीं करेंगे, क्योंकि उपनिषद काव्य हैं। उसे पतंजलि का योग-सूत्र प्रभावित करेगा, क्योंकि वह विज्ञान है।

अपनी खोज पहले करनी चाहिए, इसके पहले कि आप परमात्मा की खोज पर निकलें। वह नंबर दो है। आप नंबर एक हैं। और अगर आप गलत, अपने को ही नहीं समझ पा रहे हैं ठीक से कि मैं कैसा हूं, क्या हूं, तो आप परमात्मा को न खोज पाएंगे। क्योंकि रास्ता आपसे निकलेगा।

इसलिए आत्म-विश्लेषण पहला कदम है। और ठीक आत्म-विश्लेषण न हो पाए, तो रुकना; जल्दी मत करना। कोई हर्जा नहीं है। वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष, दस वर्ष इसमें ही खोना पड़े कि मैं क्या हूं, कैसा हूं, मेरा रुझान क्या है, मेरा व्यक्तित्व क्या है, तो हर्जा नहीं है।

एक बार ठीक से आप अपनी नस को पकड़ लें और अपनी नाड़ी को पहचान लें, तो रास्ता बहुत सुगम हो जाएगा। अन्यथा आप अनेक दरवाजों पर भटकेंगे, जो दरवाजे आपके लिए नहीं थे। और आप बहुत-से रास्तों पर जाएंगे और सिर्फ धूल-धवांस खाकर वापस लौट आएंगे, क्योंकि वे रास्ते आपके लिए नहीं थे।

लेकिन तब अगर ऐसा भी हो, तो भी यह भूल मत करना कि जिस रास्ते से आपको न मिला हो, तब भी किसी से मत कहना कि वह रास्ता गलत है। क्योंकि वह रास्ता भी किसी के लिए सही हो सकता है। वह आपके लिए गलत सिद्ध हुआ है, इससे सबके लिए गलत सिद्ध नहीं हो गया है।

इतनी विनम्रता मन में रखनी ही चाहिए खोजी को कि जिस रास्ते से मैं नहीं पहुंच पाया, जरूरी नहीं है कि वह रास्ता गलत हो। इतना ही सिद्ध होता है कि मुझमें और उस रास्ते में मेल नहीं बना, तालमेल नहीं बना। मैं उस रास्ते के योग्य नहीं था। वह रास्ता मेरे योग्य नहीं था। लेकिन किसी के योग्य हो सकता है।

और उस व्यक्ति का ख्याल रखकर हमेशा एक स्मरण बनाए रखना चाहिए कि जब भी कोई चीज गलत हो, तब कहना चाहिए, मेरे लिए गलत हो गई। और जब भी कोई चीज सही हो, तो कहना चाहिए, मेरे लिए सही हो गई। लेकिन उसे सार्वजनिक, युनिवर्सल ट्रुथ, सार्वभौम सत्य की तरह घोषणा नहीं करनी चाहिए। उससे अनेक लोगों को कष्ट, पीड़ा और उलझाव पैदा होता है।

एक मित्र ने पूछा है, भक्ति-योग में आपने प्रेम को आधारभूत स्थान दिया है। पता नहीं हम सामान्य लोग प्रेम से परिचित हैं या केवल कामवासना से! दोनों में क्या फर्क है? और क्या कामवासना प्रेम बन सकती है?

पूछने जैसा है और समझने जैसा है। क्योंकि हम कामवासना को ही प्रेम समझ लेते हैं। और कामवासना प्रेम नहीं है, प्रेम बन सकती है। कामवासना में संभावना है प्रेम की। लेकिन कामवासना प्रेम नहीं है। केवल बीज है। अगर ठीक-ठीक उपयोग किया जाए, तो अंकुरित हो सकता है। लेकिन बीज वृक्ष नहीं है।

इसलिए जो कामवासना से तृप्त हो जाए या समझ ले कि बस, अंत आ गया, उसके जीवन में प्रेम का पता ही नहीं होता।

कामवासना प्रेम बन सकती है। कामवासना का अर्थ है, दो शरीर के बीच आकर्षण; शरीर के बीच। प्रेम का अर्थ है, दो मनों के बीच आकर्षण। और भक्ति का अर्थ है, दो आत्माओं के बीच आकर्षण। वे सब आकर्षण हैं। लेकिन तीन तलों पर।

जब एक शरीर दूसरे शरीर से आकृष्ट होता है, तो काम, सेक्स। और जब एक मन दूसरे मन से आकर्षित होता है, तो प्रेम, लव। और जब एक आत्मा दूसरी आत्मा से आकर्षित होती है, तो भक्ति, श्रद्धा।

हम शरीर के तल पर जीते हैं। हमारे सब आकर्षण शरीर के आकर्षण हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि शरीर का आकर्षण बुरा है।

शरीर का आकर्षण बुरा बन जाता है, अगर वह उससे ऊपर के आकर्षण तक पहुंचने में बाधा डाले। और शरीर का आकर्षण सहयोगी हो जाता है, सीढ़ी बन जाता है, अगर वह ऊपर के आकर्षण में सहयोगी हो।

अगर आप किसी के शरीर की तरफ आकर्षित होकर धीरे-धीरे उसके मन की तरफ भी आकर्षित होने लगें, और किसी के मन के प्रति आकर्षित होकर धीरे-धीरे उसकी आत्मा के प्रति भी आकर्षित होने लगें, तो आपकी कामवासना विकृत नहीं हुई, ठीक मार्ग से चली और परमात्मा तक पहुंच गई।

लेकिन किसी के शरीर पर आप रुक जाएं, तो ऐसा जैसे आप कहीं गए और किसी के घर के बाहर ही घूमते रहे और दरवाजे से भीतर प्रवेश ही न किया। तो गलती घर की नहीं है; गलती आपकी है। घर तो बुला रहा था कि भीतर आओ। दीवालें बाहर से दिखाई जो पड़ती हैं, वे घर नहीं हैं।

शरीर तो केवल घर है। उसके भीतर निवास है। उसके भीतर दोहरा निवास है। उसके भीतर व्यक्ति का निवास है, जिसको मैं मन कह रहा हूं। और अगर व्यक्ति के भी भीतर प्रवेश करें, तो अंतर्गर्भ में परमात्मा का निवास है, जिसको मैं आत्मा कह रहा हूं।

हर व्यक्ति अपने गहरे में परमात्मा है। अगर थोड़ा उथले में उसको पकड़ें, तो व्यक्ति है। और अगर बिल्कुल बाहर से पकड़ें, तो शरीर है। हर व्यक्ति की तीन स्थितियां हैं। शरीर की भांति वह पदार्थ है। मन की भांति वह व्यक्ति है, चेतन। और परमात्मा की भांति वह निराकार है, महाशून्य है, पूर्ण।

काम, प्रेम, भक्ति, तीन कदम हैं। पर समझ लेना जरूरी है कि जब तक आप किसी के शरीर से आकृष्ट हो रहे हैं... । और ध्यान रहे, आवश्यक नहीं है कि आप जीवित मनुष्यों के शरीर से ही आकृष्ट होते हों। यह भी हो सकता है कि कृष्ण की मूर्ति में आपको कृष्ण का शरीर ही आकृष्ट करता हो, तो वह भी काम है।

कृष्ण का सुंदर शरीर, उनकी आंखें, उनका मोर-मुकुट, उनके हाथ की बांसुरी, उनका छंद-बद्ध व्यक्तित्व, उनका अनुपात भरा शरीर, उनकी नीली देह, वह अगर आपको आकर्षित करती हो, तो वह भी काम है। वह भी फिर अभी प्रेम भी नहीं है; भक्ति भी नहीं है।

और अगर आपको अपने बेटे के शरीर में भी, शरीर भूल जाता हो और जीवन का स्पंदन अनुभव होता हो। ख्याल ही न रहता हो कि वह देह है, बल्कि इतना ही ख्याल आता हो कि एक अभूतपूर्व घटना है, एक चैतन्य की लहर है। ऐसी अगर प्रतीति होती हो, तो बेटे के साथ भी प्रेम हो गया। और अगर आपको अपने बेटे में ही परमात्मा का अनुभव होने लगे, तो वह भक्ति हो गई।

किस के साथ पर निर्भर नहीं है भक्ति और प्रेम और काम। कैसा संबंध! आप पर निर्भर है। आप किस भांति देखते हैं और किस भांति आप गति करते हैं!

तो सदा इस बात को ख्याल रखें, क्या आपको आकृष्ट कर रहा है--देह, पदार्थ, आकार?

पर इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि कुछ बुरा है। भला है। इतना भी है, यह भी क्या कम है! कुछ तो ऐसे लोग हैं, जिनको देह भी आकृष्ट नहीं करती। तो भीतर के आकर्षण का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। उन्हें कुछ आकृष्ट ही नहीं करता। वे मरे हुए लोग हैं; वे लाश की तरह चलते हैं। उन्हें कुछ खींचता ही नहीं। उन्हें कुछ पुकारता नहीं। उनके लिए कोई आह्वान नहीं मालूम पड़ता। वे इस जगत में अकेले हैं, अजनबी हैं। इस जगत से उनका कहीं कोई संबंध नहीं जुड़ता।

कोई हर्ज नहीं। कम से कम शरीर खींचता है; यह भी तो खबर है कि आप जिंदा हैं। कोई चीज खींचती है। कोई चीज आपको पुकारती है। आपको बाहर बुलाती है। यह भी धन्यभाग है। लेकिन इस पर ही रुक जाना खतरनाक है। आप बहुत सस्ते में अपने जीवन को बेच दिए। आप कौड़ियों पर रुक गए। अभी और आगे यात्रा हो सकती थी। आप दरवाजे पर ही ठहर गए। अभी तो यात्रा शुरू ही हुई थी और आपने समझ लिया कि मंजिल आ गई! आपने पड़ाव को मंजिल समझ लिया। ठहरें; लेकिन आगे बढ़ते रहें।

मैंने सुना है, यहूदी फकीर हिलेल से किसी ने पूछा कि अध्यात्म का क्या अर्थ है? तो उसने कहा, और आगे, और आगे। वह आदमी कुछ समझा नहीं। उसने कहा, मैं कुछ समझा नहीं! तो हिलेल ने कहा कि जहां भी तेरा रुकने का मन होने लगे, इस वचन को याद रखना, और आगे, और आगे। जब तक तू ऐसी जगह न पहुंच जाए, जहां और आगे कुछ बचे ही नहीं, तब तक तू बढ़ते जाना। यही अध्यात्म का अर्थ है।

शरीर पर रुकना मत। और आगे। शरीर भी परमात्मा का है। इसलिए बुरा कुछ भी नहीं है। निंदा मेरे मन में जरा भी नहीं है। लेकिन शरीर शरीर ही है, चाहे परमात्मा का ही हो। वह बाहरी परकोटा है। और आगे। मन

भी एक परकोटा है, शरीर से गहरा, शरीर से सूक्ष्म, लेकिन फिर भी परकोटा है। और आगे। और जब हम शरीर और मन दोनों को छोड़कर भीतर प्रवेश करते हैं, तो सब परकोटे खो जाते हैं और सिर्फ आकाश रह जाता है।

इसलिए किसी भी व्यक्ति के प्रेम से परमात्मा को पाया जा सकता है। एक पत्थर की मूर्ति के प्रेम में गिरकर भी परमात्मा को पाया जा सकता है। परमात्मा को कहीं से भी पहुंचा जा सकता है। सिर्फ ध्यान रहे कि रुकना नहीं है। उस समय तक नहीं रुकना है, जब तक कि शून्य न आ जाए और आगे कुछ भी यात्रा ही बाकी न बचे। रास्ता खो जाए, तब तक चलते ही जाना है।

लेकिन कामवासना के संबंध में मनुष्य का मन बहुत रुग्ण है। और हजारों-हजारों साल से आदमी को कामवासना के विपरीत और विरोध में समझाया गया है। शरीर की निंदा की गई है। और कहा गया है कि शरीर जो है वह शत्रु है। उसे नष्ट करना है, उससे दोस्ती तोड़नी है। उससे सब संबंध छोड़ देने हैं। शरीर ही बाधा है, ऐसा समझाया गया है।

इस समझ के दुष्परिणाम हुए हैं। क्योंकि यह नासमझी है, समझ नहीं है। और जो व्यक्ति अपने शरीर से लड़ने में लग जाएगा, वह इसी लड़ाई में नष्ट हो जाएगा। उसकी सारी खोज भटक जाएगी, इसी लड़ने में नष्ट हो जाएगा।

शरीर भी परमात्मा का है। ठीक आस्तिक इस जगत में ऐसी कोई चीज नहीं मानता, जो परमात्मा की नहीं है। आस्तिक मानता है, सभी कुछ उसका है। इसलिए सभी तरफ से उसकी तरफ जाया जा सकता है। और हर चीज उसका मंदिर है।

जिन्होंने ये बातें समझाई हैं, दुश्मनी की, घृणा की, कंडेमनेशन की, शरीर को दबाने, नष्ट करने की, वे पैथालाजिकल रहे होंगे; वे थोड़े रुग्ण रहे होंगे। उनका चित्त थोड़ा मनोविकार से ग्रसित रहा होगा। वे स्वस्थ नहीं थे। क्योंकि स्वस्थ व्यक्ति तो अनुभव करेगा कि शरीर तक भी उसी की खबर है। शरीर भी है इस दुनिया में इसीलिए, क्योंकि परमात्मा है। नहीं तो शरीर भी नहीं हो सकेगा। और शरीर भी जीवित है, क्योंकि परमात्मा की किरण उस तक आती है और उसे छूती है।

इस भांति जब कोई देखने को चलता है, तो सारा जगत स्वीकार योग्य हो जाता है। कामवासना भी स्वीकार योग्य है। वह आपकी शक्ति है। और परमात्मा ने उसका उपयोग किया है, बहुलता से उपयोग किया है।

फूल खिलते हैं; आप जानते हैं क्यों? पक्षी सुबह गीत गाते हैं; जानते हैं क्यों? मोर नाचता है; जानते हैं क्यों? कोयल बहुत प्रीतिकर मालूम पड़ती है, क्यों?

वह सब कामवासना है। मोर नाच रहा है, वह प्रेमी के लिए निमंत्रण है। कोयल गा रही है, वह साथी की तलाश है। फूल खिल रहे हैं, वह तितलियों की खोज है, ताकि फूलों के वीर्यकणों को तितलियां अपने साथ ले जाएं और दूसरे फूलों पर मिला दें।

सेमर का वृक्ष देखा आपने! जब सेमर का फूल पकता है और गिरता है, तो उस फूल के साथ जो बीज होते हैं, उनमें रुई लगी होती है। वनस्पतिशास्त्री बहुत खोजते थे कि इन फूलों के बीज में रुई की क्या जरूरत है? सेमर में रुई की क्या जरूरत है? बहुत खोज से पता चला कि वे बीज अगर सेमर के नीचे ही गिर जाएं, तो सेमर इतना बड़ा वृक्ष है कि वे बीज उसके नीचे सड़ जाएंगे, पनप नहीं सकेंगे। उन बीजों को दूर तक ले जाने के लिए वृक्ष रुई पैदा करता है। ताकि वे बीज रुई में उलझे रहें और हवा के झोंके में रुई वृक्ष से दूर चली जाए। कहीं दूर जाकर बीज गिरें, ताकि नए वृक्ष पैदा हो सकें।

वे बीज क्या हैं? बीज वृक्ष के वीर्यकण हैं, वे कामवासना हैं।

अगर सारे जगत को गौर से देखें, तो सारा जगत काम का खेल है। और इस सारे जगत में केवल मनुष्य है, जो काम से प्रेम तक उठ सकता है। वह केवल मनुष्य की क्षमता है।

कामवासना तो पूरे जगत में है। पौधे में, पशु में, पक्षी में, सब में है। अगर आपके जीवन में भी कामवासना ही सब कुछ है, तो आप समझना कि आप अभी मनुष्य नहीं हो पाए। आप पौधे, पशु-पक्षियों के जगत का हिस्सा हैं। वह तो सब के जीवन में है।

मनुष्य प्रेम तक उठ सकता है। मनुष्य की संभावना है प्रेम। जिस दिन आप प्रेमपूर्ण हो जाते हैं; वासना से उठते हैं और प्रेम से भर जाते हैं। दूसरे के शरीर का आकर्षण महत्वपूर्ण नहीं रह जाता। दूसरे के व्यक्तित्व का आकर्षण, दूसरे की चेतना का आकर्षण, दूसरे के गुण का आकर्षण; दूसरे के भीतर जो छिपा है! आपकी आंखें जब देखने लगती हैं शरीर के पार और जब व्यक्ति की झलक मिलने लगती है, तब आप मनुष्य बने।

और जब आप मनुष्य बन जाते हैं, तब आपके जीवन में दूसरी संभावना का द्वार खुलता है, वह है भक्ति। जिस दिन आप भक्त बन जाते हैं, उस दिन आप देव हो जाते हैं; उस दिन आप दिव्यता को उपलब्ध हो जाते हैं।

काम तो सारे जगत की संभावना है। अगर आप भी कामवासना में ही जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं, तो आपने कोई उपलब्धि नहीं की; मनुष्य जीवन व्यर्थ खोया। अगर आपके जीवन में प्रेम के फूल खिल जाते हैं, तो आपने कुछ उपलब्धि की।

और प्रेम के बाद दूसरी छलांग बहुत आसान है। प्रेम आंख गहरी कर देता है और हम भीतर देखना शुरू कर देते हैं। और जब शरीर के पार हम देखने लगते हैं, तो मन के पार देखना बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि शरीर बहुत ग्रॉस, बहुत स्थूल है। जब उसके भीतर भी हम देख लेते हैं, तो मन तो बहुत पारदर्शी है, कांच की तरह है। उसके भीतर भी दिखाई पड़ने लगता है। तब हर व्यक्ति भगवान का मंदिर हो जाता है। तब आप जहां भी देखें, आंख अगर गहरी जाए, तो भीतर वही दीया जल रहा है। दीए होंगे करोड़ों, लेकिन दीए की ज्योति एक ही परमात्मा की है।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं कर्म-योग की साधना में लगा हूं, पर डर होता है कि पता नहीं मैं अपने को धोखा तो नहीं दे रहा हूं! क्योंकि न मैं भक्ति करता हूं, न मैं ध्यान करता हूं। मैं तो, जो कर्म है जीवन का, उसे किए चला जाता हूं। पर मापदंड क्या है कि मुझे पक्का पता चल सके कि जो मैं कर रहा हूं, वह कर्म-योग है, और आत्मवंचना नहीं हो रही है? और यह कर्म-योग मेरा स्वभाव है, मेरे अनुकूल है या नहीं, इसका भी कैसे पता लगे?

प्रश्न कीमती है। और जिसने पूछा है, उसके मन में सिर्फ जिज्ञासा नहीं है, मुमुक्षा है। पीड़ा से उठा हुआ प्रश्न है, बुद्धि से नहीं।

निश्चित ही, आदमी अपने को धोखा देने में समर्थ है, बहुत कुशल है। और दूसरे को हम धोखा दें, तो वहां तो दूसरा भी होता है, कभी पकड़ ले। हम खुद को ही धोखा दें, तो वहां कोई भी नहीं होता पकड़ने वाला। हम ही होते हैं। सिर्फ देने वाला ही होता है। इसलिए लंबे समय तक हम दे सकते हैं। खुद को धोखा हम जन्मों-जन्मों तक दे सकते हैं। दे सकते ही नहीं, हमने दिया है। हम दे रहे हैं।

तो यह स्वाभाविक है साधक के मन में प्रश्न उठना कि न मैं ध्यान कर रहा हूं, न मैं भक्ति कर रहा हूं, मैं अपने कर्म को किए चला जा रहा हूं; कहीं मैं अपने को धोखा तो नहीं दे रहा?

तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात, अगर आप अपने कर्म को परमात्मा पर छोड़ दिए हैं, तो जो ध्यान से होता है, वह इस छोड़ने से होना शुरू हो जाएगा। आप शांत होने लगेंगे।

अगर आप अशांत हों, तो समझना कि कर्म-योग आप जो कर रहे हैं, वह सिर्फ धोखा है। क्योंकि जैसे ही मैं परमात्मा पर छोड़ देता हूं कि सारा कर्म उसका, मुझे अशांत होने की जगह नहीं रह जाती। अशांति तो तभी तक है, जब तक मैं अपने पर सारा बोझ लिए हुए हूं।

अगर आपके कर्म-योग में आपकी अशांति खो रही हो, खो गई हो, और आप शांत होते जा रहे हों, तो समझना कि ठीक रास्ते पर हैं; धोखा नहीं है।

दूसरी बात, अगर आपने कर्म परमात्मा पर छोड़ दिया है, तो फल कोई भी आए, आपके भीतर समभाव निर्मित रहेगा। चाहे सुखी हों, चाहे दुखी हों; चाहें सफलता आए, चाहे असफलता आए। अगर सफलता अच्छी लगती हो और असफलता बुरी लगती हो, तो समझना कि आप अपने को धोखा दे रहे हैं। क्योंकि जब मैंने छोड़ ही दिया परमात्मा पर, तो मेरी न सफलता रही और न असफलता रही। अब वह जाने। और उसे अगर असफल होना है, तो उसकी मर्जी। और उसे अगर सफल होना है, तो उसकी मर्जी। मैं बाहर हो गया।

कर्म-योग का अर्थ है कि मैंने सब परमात्मा पर छोड़ दिया और मैं केवल वाहन रह गया। अब मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। सब जिम्मेवारी उसकी है। मैं बाहर हूं। मैं एक साक्षी-मात्र हो गया। समभाव पैदा होगा। सफलता आएगी तो ठीक, असफलता आएगी तो ठीक। और आपके भीतर रंचमात्र भी फर्क नहीं पड़ेगा। आप वैसे ही रहेंगे सफलता में, वैसे ही असफलता में। ऐसी समबुद्धि पैदा हो रही हो, बढ़ रही हो, तो समझना कि कर्म-योग ठीक है; आप धोखा नहीं दे रहे हैं।

और तीसरी बात, जैसे ही कोई व्यक्ति सभी कुछ परमात्मा पर छोड़ देता है, यह सारा जगत उसे स्वप्नवत दिखाई पड़ने लगता है, नाटक हो जाता है। तभी तक यह असली मालूम पड़ता है, जब तक लगता है कि मैं। और जब मैं सभी उस पर छोड़ देता हूं, तो सारी बात नाटक हो जाती है। आप दर्शक हो जाते हैं; आप कर्ता नहीं रह जाते।

ध्यान रहे, जब तक मैं कर्ता हूं, तब तक जगत और है। और जब मैंने सब परमात्मा पर छोड़ दिया, तो कर्ता वह हो गया। अब आप कौन रहे? आप सिर्फ दर्शक हो गए। एक फिल्म में बैठे हुए हैं। एक फिल्म देख रहे हैं। नाटक चल रहा है, आप सिर्फ देख रहे हैं। आप सिर्फ देखने वाले रह गए हैं।

तो तीसरी बात, जैसे ही आप सब परमात्मा पर छोड़ देते हैं और कर्म-योग में प्रवेश करते हैं, जगत स्वप्न हो जाता है, एक खेल हो जाता है। आप सिर्फ देखने वाले रह जाते हैं।

तो तीसरी बात, अगर आप में साक्षीभाव बढ़ रहा हो, शांति बढ़ रही हो, समभाव बढ़ रहा हो, साक्षीभाव बढ़ रहा हो, तो आप जानना कि ठीक रास्ते पर हैं; धोखे का कोई उपाय नहीं है। और अगर यह न बढ़ रहा हो, तो समझना कि आप धोखा दे रहे हैं। और अगर यह न बढ़ रहा हो और आप बहुत चेष्टा कर रहे हों, फिर भी न बढ़ रहा हो, तो समझना कि यह आपके स्वभाव के अनुकूल नहीं है। चेष्टा करके देख लेना। अगर बढ़ने लगे गति इन तीन दिशाओं में, तो समझना कि आपके अनुकूल है। अगर न बढ़े, तो किसी और दिशा से चेष्टा करना।

लेकिन लोग क्या समझते हैं कर्म-योग से? लोग समझते हैं, अपने कर्तव्य को निभाना कर्म-योग है। पत्नी है, बच्चे हैं; ठीक है। अब उलझ गए संसार में, तो नौकरी करनी है; धंधा करना है; कमाकर खिला-पिला देना है। अपना कर्तव्य पूरा करना है।

लेकिन ऐसे जो लोग हैं, जो कहते हैं, कर्तव्य पूरा करना है, इनका चेहरा उदास होगा, आनंद से भरा हुआ नहीं होगा। ये ढो रहे हैं बोझ। इनके मन में भीतर तो कहीं चल रहा है कि ये पत्नी-बच्चे सब समाप्त हो जाते, तो बड़ा अच्छा होता। हत्या का मन बहुत गहरे में है। या यह भूल न की होती, तो बड़ा अच्छा होता। फंस गए, तो अब ढोना है, तो ढो रहे हैं। कर्तव्य अपना पूरा कर रहे हैं। इसको लोग कहते हैं, कर्म-योग कर रहे हैं!

यह कर्म-योग नहीं है। यह तो एक तरह की नपुंसकता है। न तो भाग सकते हैं और न रह सकते हैं। दोनों के बीच में अटके हैं। संन्यासी होने की भी हिम्मत नहीं है कि छोड़ दें; कि ठीक है, जो गलती हो गई, हो गई। अब माफ करो; अब जाते हैं। वह भी हिम्मत नहीं है। यह भी हिम्मत नहीं है कि जो है, उसका पूरा आनंद लें, उसको परमात्मा की कृपा समझें, अहोभाव मानें। यह भी हिम्मत नहीं है। दोनों के बीच में त्रिशंकु की तरह अटके हैं। इसको कहते हैं, कर्तव्य कर रहे हैं।

ध्यान रहे, यह कर्तव्य शब्द बहुत गंदा है। इसका मतलब होता है, बोझ ढो रहे हैं।

दो तरह के लोग हैं। एक तो जो अपनी पत्नी को प्रेम करते हैं, इसलिए नौकरी कर रहे हैं। वे नहीं कहेंगे कभी कि हम कर्तव्य कर रहे हैं। वे कहेंगे, हमारी खुशी है। जिस स्त्री को चाहा है, उसके लिए एक मकान बनाना है; एक गाड़ी लानी है। उसके लिए एक बगीचा लगाना है। जिसको चाहा है, उसे सुंदरतम जगह देनी है। इसलिए हम आनंदित हैं। और कर्तव्य शब्द उपयोग वे नहीं करेंगे।

बच्चे हमारे हैं। हम खुश हैं उनकी खुशी में। उनकी आंखों में आती हुई ताजगी और उनकी आंखों में आता उल्लास हमें आनंदित करता है, इसलिए हम मेहनत कर रहे हैं। यह मेहनत हमारी खुशी है, कर्तव्य नहीं है। यह भी आदमी अच्छा है। कम से कम एक बात तो अच्छी है कि खुश है।

एक दूसरा आदमी है, जो कहता है कि हमने सब परमात्मा पर छोड़ दिया है। इसलिए परमात्मा की आज्ञा है कि बच्चों को बड़ा करो, तो हम कर रहे हैं। खुश है, क्योंकि परमात्मा की आज्ञा पूरी कर रहा है। यह भी आनंदित है। यह भी कर्तव्य नहीं निभा रहा है। यह परमात्मा की जो मर्जी, उसको पूरा कर रहा है। और अपने को परमात्मा पर छोड़ दिया है। एक पत्नी के प्रेम में आनंदित था; यह परमात्मा के प्रेम में आनंदित है। लेकिन दोनों आनंदित हैं। इनमें कर्तव्य कुछ भी नहीं है।

इन दोनों के बीच में एक तीसरा त्रिशंकु है। वह न परमात्मा का उसे कुछ पता है और पत्नी का भी पता खो गया है। वह बीच में अटका है। वह कहता है, कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। इसको वह कर्म-योग कहता है। यह कर्म-योग नहीं है। यह आदमी मुर्दा है। इसमें हिम्मत ही नहीं है। इसको कुछ न कुछ तय करना चाहिए।

लेकिन एक बात हमेशा ख्याल रखिए, जब भी आप सही दिशा में चलेंगे, तो आपके भीतर आनंद बढ़ेगा। और जब आप गलत दिशा में चलेंगे, तो उदासी बढ़ेगी। अगर आपका कर्तव्य आपको उदास कर रहा है, तो कहीं न कहीं भूल हो रही है। या तो परमात्मा की तरफ बढ़ें। या पत्नी की तरफ भी बढ़ें, तो भी हर्जा नहीं, लेकिन कम से कम खुश हों। क्योंकि पत्नी की तरफ खुश हुआ आदमी, कभी परमात्मा की तरफ भी खुश हो सकता है। क्योंकि खुशी तो उसे आती है। आनंद तो उसे आता है। कम से कम एक बात तो आती है कि वह आनंदित होना जानता है।

और जो पत्नी तक की खुशी में इतना आनंदित हो जाता है, जिस दिन उसे परमात्मा की तरफ यात्रा शुरू होगी, उसकी खुशी का कोई अंत न होगा। जो अपने बच्चे की आंखों में खुशी देखकर इतना खुश हो रहा था, जिस दिन उसे इस सारे जगत में परमात्मा की प्रतीति होने लगेगी, उस दिन उसकी खुशी का कोई अंत होगा! कोई सीमा होगी!

लेकिन यह बीच वाला आदमी बहुत उपद्रव है। इस बीच वाले आदमी से सावधान रहना। यह धोखे की बात है।

जहां-जहां आनंद चुकने लगे, सूखने लगे धारा, समझना कि आप गलत जा रहे हैं। क्योंकि जीवन का सम्यक विकास आनंद की तरफ है। अगर आप उदास होने लगें... ।

इसलिए उदास साधु को मैं साधु नहीं मानता। वह बीमार है। उससे तो बेहतर वह गृहस्थ है, जो आनंदित है। कम से कम एक बात तो ठीक है उसमें कि आनंदित है। लेकिन हम जिन साधु-संतों को जानते हैं, आमतौर से सब लटके हुए चेहरे वाले लोग हैं। उनके पास जाओ, तो वे आपका भी चेहरा लटकाने की पूरी कोशिश करते हैं। अगर आप हंस रहे हो, प्रसन्न हो, तो जरूर पाप कर रहे हो। कहीं न कहीं कोई गड़बड़ है!

इन उदास लोगों से जरा बचना। ये बीमारियां हैं। और हमने और तरह की बीमारियों से तो धीरे-धीरे छुटकारा पा लिया, एंटीबायोटिक्स खोज लिए। अभी इनसे छुटकारा नहीं हो सका। ये मन पर, छाती पर गहरी बीमारियां हैं, नासूर हैं। इनसे बचना।

क्योंकि जो साधु आनंदित नहीं है, समझना कि भूल में पड़ गया है। साधु के आनंद का तो कोई अंत नहीं होना चाहिए! हम क्षुद्र चीजों में इतने आनंदित हैं और तुम परमात्मा के साथ भी इतने आनंदित नहीं हो! हम असार में इतने प्रसन्न हो रहे हैं, और तुम सार को पाकर भी उदास बैठे हुए हो! हम कौड़ियों में नाच रहे हैं और तुम कहते हो, हमने हीरे पा लिए हैं; और तुम्हारी शक्ल से पता लगता है कि तुमने कौड़ियां भी गंवा दी हैं। हीरे वगैरह तुम्हें मिले नहीं हैं।

जिंदगी की सहज सम्यक धारा आनंद की तरफ है। आनंद को कसौटी समझ लें। वह निकष है। उस पर हमेशा कस लें। जो चीज आनंद न दे, समझना कि कहीं न कहीं कोई भूल हो रही है।

और आनंद से भयभीत मत होना। और कोई कितना ही कहे कि आनंद गलत है, भूलकर उसकी बात में मत पड़ना। क्योंकि अगर आनंद गलत है, तो फिर इस जगत में कुछ भी सही नहीं हो सकता। कसना।

यह भी हो सकता है कि आनंद भूल भरा हो। जहां आप आनंद पा रहे हों, वहां आनंद पाने योग्य कुछ न हो। यह हो सकता है। लेकिन आप आनंद पा रहे हैं, यह सही है, चाहे वह स्थिति सही न रही हो। तो आनंद पाने को बढ़ाए जाना। जिस दिन आप पाएंगे कि आपका आनंद ज्यादा हो गया और स्थिति छोटी पड़ने लगी, उस दिन आप स्थिति के ऊपर उठने लगेंगे।

एक आदमी के हाथ में... एक छोटा बच्चा है। कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर लेता है। और खुश होता है। रंगीन पत्थर बच्चे इकट्ठे कर लेते हैं, बड़े प्रसन्न होते हैं। खीसों में भर लेते हैं, बोझिल हो जाते हैं। मां-बाप कहते हैं, फेंको! कहां कचरा ढो रहे हो? लेकिन वे नहीं फेंकना चाहते। रात अपने बिस्तर में लेकर सो जाते हैं। उनको आनंद आ रहा है। और अच्छा नहीं है वह बाप, जो कहता है, फेंको। क्योंकि वह उनसे पत्थर ही नहीं छीन रहा है, उनका आनंद भी छीन रहा है। वह उसको पता नहीं है कि वह क्या गड़बड़ कर रहा है।

उसे तो ठीक है कि यह पत्थर है। उसकी समझ बढ़ गई है। लेकिन बच्चे की समझ अभी उसकी समझ नहीं है। और जब वह बच्चे से पत्थर छीनकर फेंक देता है, तो उसे पता नहीं कि उसने एक और अदृश्य चीज भी छीनकर फेंक दी, जो बहुत कीमती थी। पत्थर तो बेकार थे, लेकिन भीतर बच्चे का सुख भी उसने छीन लिया। और इस बच्चे को अभी समझ में आना मुश्किल है कि जो उससे छीन लिया गया, वह व्यर्थ था। क्योंकि कैसे व्यर्थ था! बच्चा जानता है, उससे आनंद मिल रहा था।

कई बार समझदार लोग नासमझियां कर देते हैं। बच्चे से पत्थर छीनने की जरूरत नहीं है। बच्चे को बुद्धि, समझ देने की जरूरत है। जैसे-जैसे बच्चे की समझ बढ़ेगी, एक दिन आप अचानक पाएंगे, पत्थर एक कोने में पड़े रह गए। अब वह उनकी तरफ ध्यान भी नहीं देता, क्योंकि उसने नए आनंद खोज लिए हैं। अब वह पत्थरों पर ध्यान नहीं देता। आप उनको उठाकर फेंक दें, अब उसे पता भी नहीं चलेगा। वह खुद ही एक दिन उनको फेंक देगा।

जैसे समझ बढ़ती है, वैसे आनंद के नए क्षेत्र खुलते हैं। सम्यक धर्म आपसे आनंद नहीं छीनता, सिर्फ आपकी समझ बढ़ाता है। तो जो व्यर्थ होते जाते हैं आनंद, वे छूटते जाते हैं।

निश्चित ही, इस संसार में जो आप आनंद ले रहे हैं, वह लेने जैसा नहीं है। उसमें कुछ खास है नहीं मामला। बच्चों के हाथ में रंगीन पत्थर जैसी बात है। लेकिन कोई हर्ज नहीं है। आप आनंद ले रहे हैं, यह भी ठीक है। समझ बढ़ानी चाहिए।

इस फर्क को आप समझ लें।

अगर आप उदास साधुओं के पास जाते हैं, तो वे आपसे आपका आनंद छीनते हैं। आपके कंकड़-पत्थर छीनते हैं। उनके साथ ही आपके भीतर का आनंद भी छिन जाता है। वे आपको समझ नहीं दे रहे हैं, आपका आनंद छीन रहे हैं। आनंद छीनने से समझ नहीं बढ़ती।

ठीक धर्म आपकी समझ बढ़ाता है, आपकी अंडरस्टैंडिंग बढ़ाता है। समझ बढ़ने से, जो व्यर्थ था, वह छूटता चला जाता है; और जो सार्थक है, उस पर हाथ बंधने लगते हैं। और धीरे-धीरे आप पाते हैं कि संसार अपने आप ऐसे छूट गया, जैसे बच्चे के हाथ से कंकड़-पत्थर। और इसी संसार में उस सारभूत पर दृष्टि पहुंच जाती है और उससे मिलन हो जाता है।

समझ बढ़नी चाहिए। और समझ बढ़ने के साथ आनंद बढ़ता है, घटता नहीं। अगर आप आनंद छोड़ने लगे, तो आनंद भी घटता है और आपकी समझ भी घटती है।

आप जो भी कर रहे हों, एक बात निरंतर कसते रहना कि उससे आपका आनंद बढ़ रहा है, तो आप निर्भय होकर बढ़ते जाना उसी दिशा में। अगर आनंद न भी होगा ठीक, तो भी कोई चिंता की बात नहीं। दिशा ठीक है। आज नहीं कल, जो गलत है, वह छूट जाएगा; और जो सही है, वह आपकी आंखों में आ जाएगा। पर अपने को साधक को कसते रहना चाहिए। और अगर आपको लगता हो, यह कुछ भी नहीं हो रहा, तो उचित है कि किसी और दिशा से परमात्मा को खोजना शुरू करें।

अब हम सूत्र को लें।

और यदि इसको भी करने के लिए असमर्थ है, तो जीते हुए मन वाला और मेरी प्राप्तिरूप योग के शरण हुआ सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग कर।

कृष्ण ने कहा, तू सब कर्म मैं कर रहा हूं, ऐसा समझ ले। लेकिन अगर यह भी न हो सके! हो सकता है, यह भी तुझे कठिन हो कि कैसे समझ लूं कि सब आप कर रहे हैं। कर तो मैं ही रहा हूं।

निश्चित ही कठिन है। अगर कोई आपसे कहे कि सब परमात्मा कर रहा है, तो भी आप कहेंगे कि कैसे मान लूं कि सब परमात्मा कर रहा है?

मैंने ऐसे लोग देखे हैं कि अगर उनको समझा दो कि सब परमात्मा कर रहा है, तो वे सब करना छोड़कर बैठ जाते हैं। वे कहते हैं, जब परमात्मा ही कर रहा है, तो फिर हमको क्या करना है! लेकिन यह बैठना वे कर

रहे हैं। इतना वे बचा लेते हैं। इसको वे यह नहीं कहते कि परमात्मा बिठा रहा है, तो ठीक। नहीं, वे कहते हैं, बैठ हम रहे हैं। हम क्या करें अब! जब परमात्मा ही सब कर रहा है, तो फिर हम कुछ न करेंगे।

लेकिन हम कुछ न करेंगे, इसका मतलब इतना तो हम कर ही सकते हैं। इतना हमने अपने लिए बचा लिया। इसका मतलब यह भी हुआ कि जो भी वे कर रहे थे, वे मानते नहीं कि परमात्मा कर रहा था। वे खुद कर रहे थे, इसलिए अब वे कहते हैं, हम रोक लेंगे। अब देखें, परमात्मा कैसे करता है!

कठिन है यह मानना कि परमात्मा कर रहा है, क्योंकि अहंकार मानने को राजी नहीं होता कि मैं नहीं कर रहा हूं। हां, अगर कुछ बुरा हो जाए, तो मानने को राजी हो भी सकता है कि परमात्मा कर रहा है।

असफलता आ जाए, तो आदमी आसानी से छोड़ देता है कि परमात्मा, भाग्य। सफलता आ जाए, तो वह कहता है, मैं। सफलता को उस पर छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्यों? क्योंकि सफलता से अहंकार परिपुष्ट होता है। तो जिस चीज से अहंकार परिपुष्ट होता है, वह तो हम अपने लिए बचाना चाहते हैं।

सुनी है मैंने एक कहानी। एक संन्यासी छोटा-सा आश्रम बनाकर रहता था। आश्रम मैंने बनाया, ऐसा लोगों से कहता था। ज्ञान मैंने पाया, त्याग मैंने किया, ऐसा लोगों से कहता था। एक दिन एक गाय उसके आश्रम में घुस गई और फूल और बगिया को चर गई। बगिया को चरते देखकर उसे बहुत क्रोध आया। लकड़ी उठाकर उसने गाय को मार दी। गाय मर गई।

एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा था। उसने पूछा कि यह तुमने क्या किया! गाय को मार डाला! तो उस संन्यासी ने कहा कि सब परमात्मा कर रहा है, मैं क्या! तो उसकी मर्जी! उसके बिना मारे गाय मर सकती है? उसके बिना हाथ उठाए, मेरा हाथ उठ सकता है? उसकी बिना आज्ञा के पत्ता नहीं हिलता।

लेकिन आश्रम उसने बनाया है। ज्ञान उसने पैदा किया है। त्याग उसने किया है। गाय भगवान ने मारी है!

ये हमारे मन की तरकीबें हैं। हम सब यही करते रहते हैं। जब आप हार जाते हैं जिंदगी में, तो कहते हैं, भाग्य। और जब जीत जाते हैं, तो कहते हैं, मैं। पर सभी कुछ परमात्मा पर छोड़ना मुश्किल है। असफलता तो छोड़ना बिल्कुल आसान है, सफलता छोड़नी मुश्किल है। सब में दोनों आ जाते हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, मुश्किल होगा शायद तुझे यह भी करना कि कर्म तू मुझ पर छोड़ दे। क्योंकि खुद को छोड़ना पड़ेगा। और अति कठिन है बात खुद को छोड़ने की। तो फिर तू एक काम कर। कर्म न छोड़ सके, तो कम से कम कर्म का फल छोड़ दे।

यह थोड़ा आसान है पहले वाले से। क्योंकि फल हमारे हाथ में है भी नहीं। कर्म हम कर सकते हैं, लेकिन फल क्या आएगा, इसको हम सुनिश्चित रूप से तय नहीं कर सकते हैं।

मैं एक पत्थर उठाकर मार सकता हूं। लेकिन आप उस पत्थर से मर ही जाएंगे, यह कहना मुश्किल है। यह भी हो सकता है कि पत्थर आपको लगे और आपकी कोई बीमारी ठीक हो जाए। ऐसा हुआ है। ऐसा अनेक बार हो जाता है कि आप किसी का नुकसान करने गए थे और उसको फायदा हो गया।

चीन में ऐसा हुआ, उससे अक्युपंक्चर नाम की चिकित्सा-पद्धति पैदा हुई। आज से कोई तीन हजार साल पहले एक युद्ध में एक सैनिक को पैर में गोली लगी। उसको जिंदगीभर से सिर में दर्द था। पैर में गोली लगी; गोली आर-पार हो गई। गोली के लगते ही दर्द एकदम गायब हो गया। वह जिंदगीभर का दर्द था। और चिकित्सक हार गए थे, और वह दर्द अलग होता नहीं था।

तो बड़ी हैरानी हुई कि पैर में गोली लगने से दर्द सिर का कैसे चला गया! तो फिर खोजबीन की गई, तो पाया गया कि शरीर में जो नाड़ियों का संस्थान है और जो ऊर्जा का प्रवाह है, उसमें कुछ बिंदु हैं। अगर उन पर चोट की जाए, तो उनका परिणाम दूसरे बिंदुओं पर होता है।

तो फिर चीन में आठ सौ शरीर में बिंदु खोज लिए गए। तो फिर गोली मारने की जरूरत नहीं है, उन पर जरा-सी भी चोट की जाए... । इसलिए अक्युपंक्चर में सुई चुभा देते हैं। आपके सिर में दर्द है, तो वे जानते हैं कि आपके शरीर में कुछ बिंदु हैं, जहां सुई चुभा दो। सुई चुभाते ही से सिरदर्द नदारद हो जाएगा।

अक्युपंक्चर हजारों तरह की बीमारियां ठीक करता है बिना इलाज के, सिर्फ सुई चुभाकर। जरा-सी जगह पर, ठीक जगह पर सुई चुभाकर। वह आपके भीतर जो ऊर्जा है शरीर की... ।

अब जिस आदमी ने गोली मारी थी, उसने सोचा नहीं था कि इसका सिर ठीक करना है। और उसने यह नहीं सोचा था कि उसके गोली मारने से अक्युपंक्चर पैदा होगा! और सारी दुनिया में--इसका ही सिर ठीक नहीं होगा--करोड़ों लोगों का सिर ठीक होगा। और सिर ही ठीक नहीं होगा, लाखों बीमारियां ठीक होंगी।

आप क्या करते हैं, वह तो सोच सकते हैं कि आप कर रहे हैं। लेकिन क्या होगा, वह आप तय नहीं कर सकते कि क्या होगा। होना आपके हाथ में नहीं है। आप किसी को जहर दें और हो सकता है कि वह अमृत सिद्ध हो जाए। और कई बार आप जहर देकर देख भी लिए हैं। और कई बार आप अमृत देते हैं और जहर हो जाता है। जरूरी नहीं है। क्योंकि फल आप पर निर्भर नहीं है। फल बहुत बड़ी विराट व्यवस्था पर निर्भर है। फल क्या होगा, कहना मुश्किल है।

तो कृष्ण कहते हैं कि कर्म न छोड़ सके, क्योंकि कर्म तो तुझे लगता है कि तू करता है, लेकिन फल तो छोड़ ही सकता है। क्योंकि फल तो पक्का नहीं है कि तू करता है। कर्म तू करता है; फल होता है। और फल निश्चित नहीं किया जा सकता। और तू नियंता नहीं है फल का। इसलिए कम से कम फल ही छोड़ दे। इतना भी कर ले। तो कर्म तू कर और फल मुझ पर छोड़ दे। जो भी होगा, वह भगवान कर रहा है तू कर रहा है, ठीक। लेकिन परिणाम भगवान ला रहा है।

सब कर्मों का फल त्याग कर दे, मेरे ऊपर छोड़ दे। क्योंकि मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है।

बहुत-से लोग अभ्यास करते रहते हैं, मर्म को न जानते हुए। उन्हें पता नहीं है, क्यों कर रहे हैं। अभ्यास करते रहते हैं! बहुत लोग हैं। रोज मुझे ऐसे लोग मिलने आ जाते हैं। वर्षों से कुछ कर रहे हैं। उनको पता नहीं, क्यों कर रहे हैं। किसी ने बता दिया, इसलिए कर रहे हैं।

एक सज्जन को मेरे पास लाया गया। उनका दिमाग खराब होने की हालत में आ गया, तब उनके परिचित लोग उन्हें ले आए। किसी ने उनको बता दिया है कि दोनों कान को बंद करके दोनों अंगूठों से, और भीतर बादलों की गड़गड़ाहट सुननी चाहिए। तो उन्होंने सुनना शुरू कर दिया। तीन साल से वे सुन रहे हैं।

अब गड़गड़ाहट इतनी ज्यादा सुनाई पड़ने लगी कि अब और कुछ सुनाई ही नहीं पड़ता। अब अंगूठे न भी लगाएं, तो भी गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। दूसरा बात भी करे, तो उन्हें सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि उनकी गड़गड़ाहट भीतर चल रही है!

मैंने उनसे पूछा कि तुमने गड़गड़ाहट सुनने की कोशिश काहे के लिए की थी? उन्होंने कहा, मैं तो गया था कि कैसे शांति मिले! उन्होंने कहा कि ऐसे शांति मिलेगी, तुम गड़गड़ाहट सुनो।

तुम सोचते भी तो कि गड़गड़ाहट सुनने से शांति मिलेगी? कि थोड़ी बहुत शांति होगी, वह और नष्ट हो जाएगी! है एक प्रयोग, वह भी ध्यान का एक प्रयोग है। लेकिन तुम समझ तो लेते मर्म उसका! कि तुम करने ही लगे! और अब सफल हो गए, तो परेशान हो रहे हो? अब वे सफल हो गए हैं। अब गड़गड़ाहट से छुटकारा चाहिए!

बहुत-से लोग हैं, न मालूम क्या-क्या करते रहते हैं। कोई शीर्षासन कर रहा है, बिना फिक्र किए कि वह क्या कर रहा है। क्योंकि किसी ने कह दिया; कि पंडित नेहरू की आत्मकथा में पढ़ लिया; कि फलां आदमी सिर के बल खड़ा था, तो बड़ा बुद्धिमान हो गया था।

इतना आसान होता बुद्धिमान होना सिर के बल खड़े होने से, तो दुनिया में बुद्धू पाने मुश्किल थे। क्योंकि बुद्धू कम से कम सिर के बल तो खड़े हो ही सकते हैं। इसमें कोई ऐसी अड़चन की बात कहां है? निश्चित ही, लाभ हो सकता है। लेकिन मर्म को जाने बिना!

मस्तिष्क में अगर ज्यादा खून चला जाए, तो नुकसान हो जाएगा। कितना खून जाना जरूरी है आपके मस्तिष्क में, न आपको पता है, न जिनसे आप सीख के आ रहे हैं, उनको पता है।

आपको पता है कि आदमी में बुद्धि ही इसलिए पैदा हुई, क्योंकि वह सीधा खड़ा हो गया। और मस्तिष्क में खून कम जा रहा है, इसलिए बुद्धि पैदा हो सकी। जानवरों को बुद्धि पैदा नहीं हो सकी, क्योंकि खून मस्तिष्क में ज्यादा जा रहा है। खून जब ज्यादा जाता है, तो पतले महीन तंतु पैदा नहीं हो पाते। आदमी सीधा खड़ा हो गया; मस्तिष्क में खून कम जा रहा है, तो महीन, बारीक तंतु, डेलिकेट तंतु पैदा हो सके। उन्हीं तंतुओं की वजह से आप बुद्धिमान हैं।

इसलिए रात अगर आप बिना तकिए के सोएं, तो नींद नहीं आती। क्यों? क्योंकि वे जो महीन तंतु हैं, खून की धारा उनको छेड़ने लगती है, और आप रात सो नहीं सकते। तकिए पर सिर रख लेते हैं, खून की धारा कम हो जाती है सिर की तरफ, तो महीन तंतु शांति से सो पाते हैं।

अब आप शीर्षासन कर रहे हैं। अब आपको पहले पक्का कर लेना चाहिए कि कितना खून आपके तंतु सह सकेंगे, नहीं तो टूट जाएंगे।

तो मैंने तो अभी तक शीर्षासन करने वालों को बहुत बुद्धिमान नहीं देखा। आप बता दें, एकाध शीर्षासन करने वाले ने कोई विज्ञान का आविष्कार किया हो! कि एकाध शीर्षासन करने वाले को नोबल प्राइज मिली हो!

इसका यह मतलब नहीं कि शीर्षासन का फायदा नहीं हो सकता। लेकिन मर्म को समझे बिना! और फिर पढ़ लिया कि बड़ा लाभ होता है, तो घंटों खड़े हैं शीर्षासन में। सिर्फ खोपड़ी खराब हो जाएगी। फायदा हो सकता है, लेकिन बहुत बारीक मामले हैं। और ठीक प्रशिक्षित व्यवस्था के भीतर ही हो सकता है। जब आपके पूरे मस्तिष्क की जांच हो गई हो और आपके रग-रग का पता हो कि कितना खून कम है। वैसे ही तो कहीं ज्यादा नहीं जा रहा है!

जो लोग रात को नहीं सो पाते, उनका कारण ही यह है कि खून ज्यादा जा रहा है। और मस्तिष्क में खून ज्यादा जा रहा हो, तो नींद नहीं आ सकती; इन्सोमेनिया, अनिद्रा पैदा हो जाएगी। खून की मात्रा मस्तिष्क में कम होनी ही चाहिए, तो ही नींद आ पाएगी, तो ही विश्राम हो पाएगा।

जब आप सोचते रहते हैं, तब नींद नहीं आती। क्योंकि सोचने की वजह से ज्यादा खून की जरूरत पड़ती है मस्तिष्क में; तंतुओं को चलना पड़ता है। इसलिए नींद नहीं आती। तो नींद के लिए जरूरी है; विश्राम के लिए जरूरी है।

लेकिन अगर आपके मस्तिष्क में कम खून जा रहा हो, तो थोड़ी-सी खून की झलक तेजी से पहुंचा देना फायदा भी कर सकती है। तो जो तंतु मुरदा हो गए हैं, वे सजीव भी हो सकते हैं। उनको खून मिल जाए। लेकिन कितना? उस मर्म को बिना समझे जो किए चला जाता है, वह अक्सर लाभ की जगह हानि कर लेता है।

लोग बैठ जाते हैं, कुछ भी कर लेते हैं। अध्यात्म के जगत में तो बहुत अंधापन है, क्योंकि मामला अंधेरे का है। और सब टटोल-टटोलकर चलना पड़ता है। और कोई भी मिल जाता है! और गुरु बनने का मजा इतना है कि आपको भी कोई मिल जाए, तो आप भी बिना बताए नहीं मानते कि ऐसा करो, तो सब ठीक हो जाएगा। आपको खुद को अभी हुआ नहीं है!

मेरे पास रोज ऐसे लोग आ जाते हैं, जिनके सैकड़ों शिष्य हैं! अब वे मुझसे पूछने आ जाते हैं कि ध्यान कैसे करना?

तुम इतने शिष्य कहां से इकट्ठे कर लिए हो? तुम्हें खुद पता नहीं है, तो तुम इन्हें क्या समझा रहे हो? तो वे कहते हैं, शास्त्रों को पढ़कर!

कृष्ण कहते हैं, मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से तो परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है।

ऐसे अभ्यास में मत पड़ जाना, जिसको तुम जानते नहीं हो, क्योंकि अभ्यास आग से खेलना है। अभ्यास का मतलब है, कुछ होकर रहेगा अब। और अगर तुम्हें पता नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो और क्या होकर रहेगा, तो तुम कहीं ऐसा न कर लो कि अपने को नुकसान पहुंचा लो।

और जिंदगी बहुत जटिल है। ऐसे ही जैसे आपकी घड़ी गिर गई। खोलकर बैठ गए ठीक करने! तो घड़ी तो कोई बहुत जटिल चीज नहीं है। लेकिन घड़ी भी आप और खराब कर लोगे। वह घड़ीसाज के पास ही ले जानी चाहिए। वह रुपए, दो रुपए में ठीक कर देगा। आप सौ, दो सौ की चीज ऐसे ही खराब कर लोगे।

लेकिन जब घड़ी गिरती है, तो बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी का मन खोलने का होता है। क्योंकि बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी भी बचकाना है। वह बच्चा जो भीतर है, क्युरिआसिटी जो है, कि जरा खोलकर हम ही ठीक न कर लें, जरा हिलाकर। कहां जाना? तो जरा हिला लें!

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हिलाने से ठीक हो जाती है। मगर इससे आप यह मत समझ लेना कि आप कलाकार हो गए और आपको पता चल गया कि... । तो दूसरों की घड़ी मत हिलाने लगना, नहीं तो बंद भी हो सकती है। कभी-कभी संयोग सफल हो जाते हैं। कभी आपकी घड़ी बंद है। आपने जरा हिलाई। और आप समझे कि अरे! चल गई! नाहक दो-चार रुपए खराब करने पड़ते। अब हम भी जानकार हो गए। अब जहां भी घड़ी बंद दिखे, उसे हिला देना।

संयोग कभी-कभी जीवन में भी सफल होते हैं। कभी-कभी उनसे लाभ भी हो जाता है। पर उनको विज्ञान नहीं कहा जा सकता।

पर जिंदगी तो बहुत जटिल है। घड़ी में तो कुछ भी नहीं है। आपके छोटे-से मस्तिष्क में कोई सात करोड़ सेल हैं, सात करोड़ जीवंत कोष्ठ हैं! उन सात करोड़ जीवंत कोष्ठ की व्यवस्था पर सब निर्भर है--आपका होना, आपकी चेतना, आपकी बुद्धि, सोच, विचार, भाव--सब।

आप उलटा सिर खड़े हो गए, आपको पता नहीं कि उन सात करोड़ कोष्ठों के साथ क्या हो रहा है। कि आपने प्राणायाम शुरू कर दिया। आपको पता नहीं कि उन कोष्ठों के साथ क्या हो रहा है। आपको पता नहीं कि उन कोष्ठों को कितने आक्सीजन की जरूरत है। और जितनी आप दे रहे हैं, उतनी जरूरत है या नहीं है! क्योंकि

ज्यादा आक्सीजन हो जाए, तो भी मूर्च्छा आ जाएगी। कम हो जाए, तो भी मूर्च्छा आ जाएगी। जीवन एक संतुलन है, और बहुत बारीक संतुलन है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि बिना मर्म को जाने हुए अभ्यास में तो पड़ना मत, अर्जुन। उससे तो बेहतर परोक्ष ज्ञान है।

परोक्ष ज्ञान का अर्थ है, शास्त्र ने जो कहा है। शास्त्र ने जो कहा है, वह बेहतर है, बजाय इसके कि तू अभ्यास अपना करके, बिना मर्म को समझे, कुछ उपद्रव में पड़ जाए। उससे तो शास्त्र ने जो कहा है...। शास्त्र का अर्थ होता है, जिन्होंने जाना, जिन्होंने अनुभव किया, और अपने अनुभव को लिपिबद्ध किया, कि उनके काम आ सके, जो जानते नहीं हैं।

इस बात को ठीक से समझ लें।

जिन्होंने जाना, जिन्होंने अनुभव किया, प्रयोग किया, अभ्यास किया, प्रतीत किया, जो पहुंच गए, उनके वचन हैं। सिर्फ वचन नहीं हैं, उनके लिए, जो नहीं जानते हैं। इसमें फर्क है। क्योंकि वे बोल सकते हैं, जैसा उन्होंने जाना। लेकिन अगर आपका ध्यान न रखा जाए, तो उनका ज्ञान आपके लिए खतरनाक हो जाएगा। वह इस भांति बोला गया है शास्त्र। जो अज्ञानी को ख्याल में रखकर बोला गया है कि वह इससे उपद्रव न कर सके।

जीसस ने छोटी-छोटी कहानियां कही हैं। और सभी बातें कहानियों में कही हैं। बड़ी मजे की बात है। और कहानियां इतनी सरल हैं कि कोई भी समझ ले। और इतनी कठिन भी हैं कि बहुत मुश्किल है समझना। पर कहानियों में इस ढंग से कहा है कि जो कहानी समझेगा, उसे पता ही नहीं चलेगा कि भीतर क्या छिपा है। वह सिर्फ कहानी का मजा लेगा; बात खतम हो जाएगी। उसे कहानी कोई नुकसान नहीं पहुंचा पाएगी। थोड़ी उसकी समझ बढ़ेगी।

लेकिन जो कहानी में उतर सकता है गहरा, जितना गहरा उतर सकता है, उतना ही अर्थ बदल जाएगा। जीसस की एक-एक कहानी में सात-सात अर्थ हैं। और सात मन की स्थितियां हैं। पहली स्थिति पर सिर्फ कहानी है। उसको बच्चा भी पढ़े तो आनंदित होगा। एक कहानी का मजा आएगा। बात खतम हो जाएगी। लेकिन दूसरी स्थिति में खड़ा हुआ आदमी दूसरा अर्थ लेगा। तीसरी स्थिति में खड़ा हुआ आदमी तीसरा अर्थ लेगा।

शास्त्र का अर्थ है, जो अज्ञानियों को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। और कुंजियां इस भांति छिपाई गई हैं कि गलत आदमियों के हाथ में न पड़ जाएं। और उसी वक्त कुंजी हाथ में पड़े, जब वह आदमी उसका ठीक उपयोग कर सके। उसके पहले हाथ में न पड़े। इतनी सारी व्यवस्था जहां की गई हो, उसका नाम शास्त्र है। हर किसी किताब का नाम शास्त्र नहीं है।

शास्त्र बहुत वैज्ञानिक आयोजन है। और हजारों साल बाद भी उसी ढंग से शास्त्र कारगर है।

लेकिन बड़ा मुश्किल है। इसलिए शास्त्र तो आप पढ़ लेते हैं, उसका अर्थ आपको पता चलता है कि नहीं, यह कहना मुश्किल है। आपको उतना ही पता चलता है, जितना आपको पता चल सकता है। बस, उससे ज्यादा पता नहीं चलता। इसलिए फिर शास्त्रों पर टीकाओं और व्याख्याओं की जरूरत पड़ी। क्योंकि जिनको ज्यादा पता चल गया उन शास्त्रों में--जितना आपको पता चलता था, उससे ज्यादा पता चल गया--तो उन्होंने टीकाएं लिखी हैं। लेकिन उन टीकाओं में भी उन्हीं नियमों का उपयोग किया गया है कि गलत आदमी के हाथ ज्ञान न पड़ जाए।

गलत आदमी अज्ञान में बेहतर है, क्योंकि अज्ञान में ज्यादा खतरा नहीं किया जा सकता।

आपने आमतौर से सुना होगा कि अज्ञान में खतरा होता है। अज्ञान में ज्यादा खतरा नहीं होता। लेकिन अज्ञानी के हाथ में ज्ञान हो, तो फिर ज्यादा खतरा होता है। ऐसा जैसे कि बच्चे के हाथ में तलवार दे दी। और उन्होंने उठाकर पिता की ही गरदन काट दी। वे सिर्फ देख रहे थे कि तलवार काम करती है कि नहीं करती है! असली है कि नकली है!

आज विज्ञान में यही उपद्रव खड़ा हो गया है। आज विज्ञान ने फिर कुछ कुंजियां खोज लीं। आइंस्टीन मरने के पहले कहकर मरा है कि अगर मुझे दुबारा जन्म मिले, तो मैं वैज्ञानिक नहीं होना चाहता। मैं एक प्लंबर हो जाऊंगा, लेकिन अब वैज्ञानिक नहीं होना चाहता। क्योंकि जो मैंने दिया है, वह उनके हाथ में पड़ गया है, जो सारी दुनिया को नष्ट कर देंगे। और मेरा कोई वश नहीं रहा।

अभी वैज्ञानिक विचार करते हैं कि हमें अपना ज्ञान छिपाना चाहिए अब। वह राजनीतिज्ञों के हाथ में न पड़े, क्योंकि राजनीतिज्ञों से ज्यादा नासमझ आदमी खोजने मुश्किल हैं। उनके हाथ में ज्ञान पड़ने का मतलब है, अज्ञानियों के, नेताओं के हाथ में ज्ञान पड़ गया! वे खतरा कर देंगे। वे उपद्रव कर देंगे। अब आज सारी दुनिया के पास ताकत विज्ञान ने दे दी है। और चाबी भी दे दी है।

शास्त्र का अर्थ है, कभी एक बार ऐसा पहले भी हो चुका है। अध्यात्म के जगत में हमने इतने ही मूल्यवान सूत्र खोज लिए थे। लेकिन वे हर किसी को दे देना खतरनाक है। तो उन्हें शास्त्रों में प्रकट भी किया है और छिपाया भी है।

शास्त्र का अर्थ है, जो प्रकट भी करता है और छिपाता भी है। प्रकट उतना करता है, जितना आप आत्मसात कर लो। और उतना छिपाए रखता है, जितना अभी आपके काम का नहीं है। और जब आप एक कड़ी आत्मसात कर लेंगे, तो दूसरी कड़ी आपको दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी। एक सीढ़ी से ज्यादा आपको कभी दिखाई नहीं पड़ पाती। जब दूसरी सीढ़ी आप आत्मसात कर लोगे, तब तीसरी आपको दिखाई पड़ेगी। हर कुंजी जब आप उपयोग कर लोगे, तो दूसरी कुंजी आपके हाथ में दे जाएगी और दूसरा ताला खुलने लगेगा।

शास्त्र एक वैज्ञानिक व्यवस्था है। इसलिए शास्त्र साधारण किताब का नाम नहीं है। आज तो किताबें बहुत हैं। पांच हजार किताबें प्रति सप्ताह छपती हैं। इन किताबों की भीड़ में शास्त्र खो गया। अब शास्त्र का कुछ पता लगाना मुश्किल है कि कौन-सा शास्त्र है!

लेकिन कृष्ण कहते हैं कि न मर्म को समझकर किया हुआ अभ्यास, उससे तो परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है।

परोक्ष ज्ञान का मतलब, दूसरों ने, लेकिन जिन्होंने जाना है, उनका कहा हुआ ज्ञान। उसको ही स्वीकार कर लेना उचित है।

परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है।

लेकिन परोक्ष ज्ञान उधार है। शास्त्र से कितना ही पता चल जाए, वह आपका स्वानुभव तो नहीं है। किसी को पता चला, पतंजलि को। किसी को पता चला, वशिष्ठ को। किसी को पता चला, शंकर को, रामानुज को। आपने सुना, उन्हें पता चला है। आपने मान लिया। आपकी थोड़ी बुद्धि तो बढ़ी, लेकिन आप नहीं बढ़े। आपका संग्रह बढ़ा, जानकारी बढ़ी, लेकिन बोध नहीं बढ़ा। बोध तो बढ़ेगा स्वानुभव से।

तो कृष्ण कहते हैं, परोक्ष ज्ञान से, शास्त्र ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है।

तो बेहतर है कि तू सीधा न तो अभ्यास की उलझन में पड़, क्योंकि मर्म को बिना समझे खतरा है। न शास्त्रों की समझ में पड़, क्योंकि कितना ही समझ ले, तो भी वह दूसरे का ज्ञान होगा। और सेकेंड हैंड होगा। तेरे लिए नया और ताजा नहीं होगा। अपना नहीं है, वह ताजा भी नहीं है।

और ज्ञान के संबंध में एक बात जान लेनी जरूरी है कि जो अपना नहीं है, वह अपना है ही नहीं। वह कितना ही ठीक पकड़ में आ जाए, तो भी वह दूसरे का है। और दूसरे के ज्ञान से आपकी आंख काम नहीं कर सकती। दूसरे के पैर से आप चल नहीं सकते। दूसरे की छाती से आप श्वास नहीं ले सकते। दूसरे की प्रज्ञा आपकी प्रज्ञा नहीं बन सकती। आपकी प्रज्ञा तो तभी बनती है, जब सीधा ध्यान परमात्मा की तरफ लगता है।

परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है।

तो जितनी देर आप अभ्यास में लगाते हों, उससे बेहतर है, उतना समय आप शास्त्र में लगाएं। जितना आप शास्त्र में लगाते हों, उससे भी बेहतर है कि उतना परमात्मा के ध्यान में लगाएं। बेहतर है, किताबें बंद कर दें, आंख बंद कर लें और परमात्मा का स्मरण करें।

क्या करेंगे परमात्मा के स्मरण में? कैसे होगा परमात्मा का ध्यान? क्या करना पड़ेगा? एक छोटा-सा ख्याल समझ लें।

कुछ भी न करें। सिर्फ लेट जाएं या बैठ जाएं और बिल्कुल ढीला छोड़ दें अपने को। कुछ भी न करें, श्वास भी न लें। अपने आप जितनी चलती है, चलने दें। एक पांच मिनट तो सिर्फ इतना ही ध्यान रखें कि मैं कुछ न करूं, सिर्फ पड़ा रहूं मुर्दे की भांति।

एक पांच मिनट में सिर्फ अपने को शांत कर लें। दस मिनट, पंद्रह मिनट, जितनी देर आपको लगे। सिर्फ शांत पड़ जाएं, जैसे मुर्दा हैं, आप हैं ही नहीं। सारी क्रिया को शिथिल छोड़ दिया, रिलैक्स कर दिया। और जब यह सब शिथिल और शांत हो जाए, सिर्फ श्वास ही सुनाई पड़े... । कभी-कभी कोई विचार मन में तैर जाएगा। कभी कोई चींटी काटती है, तो पता चलेगा। कभी कोई बाहर से आवाज आएगी, तो भनक पड़ेगी। मगर आप अपनी तरफ से बिल्कुल शांत पड़े हैं, जैसे हैं ही नहीं।

इस क्षण में सिर्फ एक ही भावना करें। आपके मन में जो भी इष्ट हो, जिस परमात्मा का जैसा नाम आपको प्यारा लगता हो, या मूर्ति प्यारी लगती हो, आकृति प्यारी लगती हो, बुद्ध की प्रतिमा प्यारी लगती हो, तो बस, इस शांत अवस्था में सिर्फ बुद्ध की प्रतिमा का स्मरण करें। इस शून्य मन में सिर्फ बुद्ध की प्रतिमा बने। या आपको अच्छा लगता हो ओम का उच्चार, तो सिर्फ ओम का उच्चार भीतर गूंजने दें। या आपको अच्छा लगता हो राम-राम तो राम-राम का उच्चार भीतर गूंजने दें। कोई भी एक चीज पकड़ लें, जो आपको प्यारी लगती हो और प्रभु का स्मरण दिलाती हो।

ऐसा हुआ है। मैंने सुना, एक सूफी फकीर हुआ। एक सम्राट उसकी सेवा में आता था। और उसने उसे कहा कि तू ईश्वर का स्मरण कर। उस सम्राट को एक हीरे से बहुत प्रेम था। वह हीरा उसने बड़ी मुश्किल, बड़े युद्धों के बाद पाया था। और वह चौबीस घंटे उसको अपने पास रखता था।

जब वह परमात्मा के स्मरण को बैठा, तो परमात्मा का तो स्मरण न आए, उसको उसी हीरे-हीरे का ही ख्याल आए। और वह हीरा दिखाई पड़े। तो वह वापस फकीर के पास आया। उसने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई है। यह हीरा मुझे बाधा डालता है। मैं कैसे इसका त्याग करूं!

तो फकीर ने कहा, तू त्याग मत कर, क्योंकि त्याग से और ज्यादा बाधा डालेगा। तू ऐसा कर कि परमात्मा को छोड़, तू हीरे की ही याद कर। तू आंख बंद कर ले और हीरे को ही देख। और सिर्फ इतना ही ख्याल कर कि यह हीरा परमात्मा का रूप है।

वह सम्राट चकित हुआ। उसने सोचा, फकीर कहेगा, हीरे का त्याग कर। कहां की क्षुद्र चीज में उलझा है!

लेकिन फकीर निश्चित समझदार रहा होगा। सम्राट ने हीरे पर ध्यान करना शुरू कर दिया। जब हीरे पर ध्यान किया, तो हीरे ने बाधा डालनी बंद कर दी, स्वभावतः। बाधा वह इसलिए डालता था कि कहां जा रहे हो? जब कहीं जाने की कोई बात न रही, तो हीरे ने बाधा डालनी बंद कर दी। और कुछ था नहीं उसका उलझाव; एक हीरा ही था। और हीरे में वह परमात्मा को अनुभव करने लगा। थोड़े ही दिनों में हीरा खो गया और परमात्मा ही शेष रह गया।

तो जो भी आपका हीरा हो, आपकी पत्नी का चेहरा हो, आपके बेटे की आंख हो, आपके मित्र की छवि हो, कृष्ण का रूप हो, राम का हो, जीसस का हो--आपका जहां सहज रुझान हो--कुछ भी हो। और कुछ भी न हो, तो अपनी ही फोटो। वह तो कम से कम होगी। तो आईने में अपनी शक्ल देख ली। आंख बंद कर लिया और कहा कि यह परमात्मा का रूप है। उसी पर... । उससे भी पहुंच जाएंगे। कुछ घबड़ाना मत कि अपनी ही तस्वीर कैसे!

अपना ही नाम भी, अगर आपको वही प्यारा हो, तो फिर राम का नाम लेने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जो प्यारा ही नहीं है, उसको लेकर कुछ फायदा नहीं होगा। प्रेम के बिना कुछ फायदा नहीं होगा।

आपको अगर अपना ही नाम जंचता हो... । सबको जंचता है। और दिल होता है कि कहां राम-राम कर रहे हैं! अपना ही नाम दोहराएं। कोई हर्जा नहीं है, उसी को दोहराना। और समझना कि यह परमात्मा का नाम है। और आप थोड़े ही दिन में पाओगे कि आप खो गए और परमात्मा बच रहा।

परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान से भी श्रेष्ठ है सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग करना।

क्योंकि ध्यान भी आपका कर्म है। आपको लगता है, मैं ध्यान कर रहा हूं। इतनी अड़चन बनी रहती है। मैं ध्यानी हूं, और मैंने ध्यान किया परमात्मा का। तो वह भीतर मैं की सूक्ष्म रेखा बनी रहती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, उससे भी श्रेष्ठ है सब कर्मों के फल का त्याग करना। और त्याग से तत्काल ही परम शांति होती है। सब कर्मों के त्याग से तत्काल ही परम शांति होती है।

जैसे ही कोई सब प्रभु पर छोड़ देता है, अशांत होने का सारा कारण ही खो जाता है। अगर अशांति चाहिए, तो सब अपने सिर पर रखना। दूसरों का भी उतारकर अपने सिर पर रख लेना। सारी दुनिया में जो-जो तकलीफें हैं, उनको अपने सिर पर रख लेना। तो अशांति आपकी आप कुशलता से बढ़ा सकोगे।

और करीब-करीब इसी तरह लोग बढ़ाए हुए हैं। सारी दुनिया की तकलीफें, सारी दुनिया का बोझ, आप अकेले के सिर पर पड़ गया है। अगर यह बोझ कम करना हो और शांति चाहिए हो, तो यह परमात्मा पर छोड़ देना।

और आप नाहक ही परेशान हो रहे हो। बोझ आपके सिर पर है नहीं। आपकी हालत उस देहाती आदमी जैसी है, जो पहली दफा ट्रेन में सवार हुआ था। तो उसने अपना सब बिस्तर-बोरिया अपने सिर पर रख लिया था। उसने सोचा कि टिकट तो मैंने केवल अपनी ही दी है। और यह बिस्तर-बोरा ट्रेन में रखूं, तो पता नहीं, कोई आ जाए और कहे कि कहां रखा है! इसे अपने सिर पर ही रखना ठीक है। और फिर उसने यह भी सोचा कि इतने आदमियों का बोझ वैसे ही ट्रेन पर है, मैं भी चढ़ा हूं, और इस वजन का, इस बिस्तर का बोझ भी और बढ़ जाए, तो कहीं ट्रेन रुक ही न जाए। तो अपने सिर पर रख लूं।

लेकिन आप अपने सिर पर भी रखकर बैठे रहें, तो भी ट्रेन पर ही बोझ पड़ रहा है। आप भी झेल रहे हैं, यह मुफ्त में। इसको नीचे रखा जा सकता है। यह ट्रेन लिए जा रही है।

परमात्मा के ऊपर सब छोड़ते ही आप निर्बोझ हो जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि जो बोझ था, वह आप ढो रहे थे। आप अकारण ढो रहे थे। परमात्मा उसे ढो ही रहा है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सब कर्म को जो छोड़ देता मेरे ऊपर, वह श्रेष्ठतम है। उसे तो फिर ध्यान की भी जरूरत नहीं है। उसे तो फिर कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। एक ही बात कर ली कि सब हो गया। एक करने से सब हो जाता है, कि वह परमात्मा पर छोड़ देता है। त्याग से तत्काल परम शांति होती है। होगी ही।

लेकिन त्याग का मतलब आप यह मत समझ लेना कि घर छोड़ दिया, मकान छोड़ दिया, कपड़े छोड़ दिए, भाग गए। वह त्याग का मतलब नहीं है। उस त्याग में तो त्याग आपको पकड़े ही रहेगा। और आप जहां भी जाओगे, खबर करोगे कि मैं सब त्याग करके आ रहा हूं। वह मैं त्याग करके आ रहा हूं, साथ जाएगा।

नहीं; त्याग का गहन अर्थ है कि मैं कर नहीं रहा हूं; मैं कर भी नहीं सकता हूं; जो करने वाला है, वह वही है। मैं नाहक ही बीच में... ।

मैंने सुना है कि रथ निकलता था पुरी में और एक छोटा कुत्ता रथ के आगे चलने लगा। और सब लोग नमस्कार कर रहे थे और रथ के सामने गिर-गिरकर साष्टांग दंडवत कर रहे थे। उस कुत्ते ने कहा कि अरे! बेचारे! वह सबको मन ही मन आशीर्वाद देता रहा, खुश रहो। मगर क्यों इतने परेशान हो रहे हो!

उसकी अकड़ बढ़ती चली गई। उसे लगा कि मेरे लिए रथ निकल रहा है। मेरे लिए सारे लोग दंडवत कर रहे हैं। गजब हो गया। वैसे मैं जानता तो था पहले ही से कि मेरी हालत इतनी ऊंची है! लेकिन दुनिया स्वीकार नहीं करती थी। अब सब ने स्वीकार कर लिया है।

रात कुत्ता सो नहीं सका होगा। और हार्टफेल हो गया हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं।

पर हम सब की हालत भी यही है। हम सब ऐसे ही चल रहे हैं कि रथ हमारे लिए चल रहा है। यह सारा जगत हमारे लिए चल रहा है! बड़े परेशान हो रहे हैं। नाहक ही परेशान हो रहे हैं। बिना कारण परेशान हो रहे हैं।

ईश्वर-समर्पण का अर्थ है कि ये परेशानियां मैं छोड़ता हूं। यह सब मेरे लिए नहीं चल रहा है। यह सब मैं नहीं चला रहा हूं। मैं व्यर्थ ही परेशान हो रहा हूं। इसलिए धार्मिक आदमी परम शांत हो जाता है, क्योंकि सब परमात्मा कर रहा है। वह अपने को करने के भाव से मुक्त कर लेता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अकर्मण्य हो जाता है। इसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि वह छोड़ देता है उस पर। वह काम लेना चाहे, तो काम ले। कर्म लेना चाहे, तो कर्म ले। और अकर्मण्य करके बिठालना चाहे, तो अकर्मण्य करके बिठाल दे।

अपनी तरफ अब उसकी कोई भी स्वयं की चेष्टा नहीं है। अब वह बहता है नदी की धारा में, जहां नदी ले जाए। डुबा दे, तो वह डुबाना भी उसके लिए किनारा है।

पांच मिनट रुकें। कोई बीच से न उठे। दो-तीन बातें ख्याल रखें। कुछ लोग आकर बीच में बैठ जाते हैं; फिर बीच से उठकर जाने की कोशिश करते हैं। बाहर बैठें; जाना हो तो किनारे पर बैठें। और कीर्तन के समय कोई भी उठे न। पांच मिनट कीर्तन करने के बाद जाएं।

सातवां प्रवचन

परमात्मा का प्रिय कौन

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।। 13।।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। 14।।

इस प्रकार शांति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित और सुख-दुखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात अपराध करने वालों को भी अभय देने वाला है तथा जो योग में युक्त हुआ योगी निरंतर लाभ-हानि में संतुष्ट है तथा मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि निराकार की साधना इतनी कठिन क्यों है?

निराकार शब्द भी समझ में नहीं आता। निराकार शब्द भी हमारे मन में आकार का ही बोध देता है। असीम भी हम कहते हैं, तो ऐसा लगता है, उसकी भी सीमा होगी--बहुत दूर, बहुत दूर--लेकिन कहीं उसकी भी सीमा होगी। मन असीम का ख्याल भी नहीं पकड़ सकता। मन का द्वार इतना छोटा है, सीमित है कि उससे अनंत आकाश नहीं पकड़ा जा सकता। इसलिए निराकार की साधना कठिन है। क्योंकि निराकार की साधना का अर्थ हुआ, मन को अभी इसी क्षण छोड़ देना पड़ेगा, तो ही निराकार की तरफ गति होगी।

मन से तो जो भी दिखाई पड़ेगा, वह आकार होगा। और मन से जहां तक पहुंच होगी, वह सीमा और गुण की होगी। मन के तराजू पर निराकार को तौलने का कोई उपाय नहीं है। जो तौला जा सकता है, वह साकार है। और हम मन से भरे हैं। हम मन ही हैं। मन के अतिरिक्त हमारे भीतर कुछ है, इसका हमें कोई पता नहीं। कहते हैं आत्मा की बात; सुनते हैं; लेकिन आपको उसका कुछ पता नहीं है। पता तो मन का है। उसका भी पूरा पता नहीं है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दस में से केवल एक हिस्सा मन का हमें थोड़ा-थोड़ा पता है। नौ हिस्सा मन का भी हमें पता नहीं है। मन भी अभी ज्ञात नहीं है। अभी सीमित को भी हम नहीं जान पाए हैं, तो असीम को जानने में कठिनाई होगी।

निराकार शब्द तो ख्याल में आ जाता है, लेकिन अर्थ बिल्कुल ख्याल में नहीं आता। अगर कोई आपसे कहे, यह जो आकाश है, अनंत है, तो भी मन में ऐसा ही ख्याल बना रहता है कि कहीं न कहीं जाकर समाप्त जरूर होता होगा। कितनी ही दूर हो वह सीमा, लेकिन कहीं समाप्त जरूर होता होगा। समाप्त होता ही नहीं है, यह बात मन को बिगूचन में डाल देती है; मन घबड़ा जाता है। मन विक्षिप्त होने लगता है, अगर कोई भी सीमा न हो। मन की तकलीफ है।

मन की व्यवस्था सीमा को समझने के लिए है। इसलिए निराकार को पकड़ना कठिन हो जाता है।

सुना है मैंने, एक सम्राट अपने एक प्रतिद्वंद्वी को, जिससे प्रतिद्वंद्विता थी एक प्रेयसी के लिए, द्वंद्व में उतरने की स्वीकृति दे दिया। द्वंद्व का समय भी तय हो गया। कल सुबह छः बजे गांव के बाहर एकांत निर्जन में वे अपनी-अपनी पिस्तौल लेकर पहुंच जाएंगे। और दो में से एक ही बचकर लौटेगा। तो प्रेयसी की कलह और झगड़ा शेष न रहेगा।

सम्राट तो पहुंच गया ठीक समय पर; समय से पूर्व; लेकिन दूसरा प्रतिद्वंद्वी समय पर नहीं आया। छः बज गया। छः दस बज गए; छः पंद्रह, छः बीस--बेचैनी से प्रतीक्षा रही। तब एक घुड़सवार दौड़ता हुआ आया प्रतिद्वंद्वी का एक टेलीग्राम, एक संदेश लेकर।

थोड़े से वचन थे उस टेलीग्राम में; लिखा था, अन-एवायडेबली डिलेड, बट इट विल बी ए सिन टु डिसएप्वाइंट यू, सो प्लीज डोंट वेट फार मी, शूट। अनिवार्य कारणों से देरी हो गई। न पहुंचूंगा, तो आप निराश होंगे। इसलिए मेरी प्रतीक्षा मत करें, आप गोली चलाएं।

लेकिन गोली किस पर चलाएं? जो उस राजा की अवस्था हो गई होगी, वही निराकार के साधक की होती है। किस पर? किसकी पूजा? किसकी अर्चना? किसके चरणों में सिर झुकाएं? किसको पुकारें? किस पर ध्यान करें? किसका मनन? किसका चिंतन? कोई भी नहीं है वहां! वह राजा भी बिना गोली चलाए वापस लौट आया होगा!

निराकार का अर्थ है, वहां कोई भी नहीं है, जिससे आप संबंधित हो सकें। और मनुष्य का मन संबंध चाहता है। आप अकेले हैं! निराकार का अर्थ हुआ कि आप अकेले हैं; वहां कोई भी नहीं है आपके सामने।

इसलिए अति कठिन है। कल्पना में भी दूसरा हो, तो हम संबंधित हो पाते हैं। न भी हो वहां दूसरा, हमें सिर्फ ख्याल हो कि दूसरा है, तो भी हम बात कर पाते हैं; तो भी हम रो पाते हैं; तो भी हम नाच पाते हैं।

यह मन, दूसरा हो, तो संबंधित हो जाता है, और गतिमान हो पाता है। दूसरा न हो, तो अवरुद्ध हो जाता है। कोई गति नहीं रह जाती है। इसलिए निराकार कठिन है।

निराकार की कठिनाई निराकार की नहीं, आपके मन की कठिनाई है। अगर आप मन छोड़ने को राजी हों, तो निराकार फिर कठिन नहीं है। फिर तो साकार कठिन है। अगर मन छोड़ने को आप राजी हों, फिर साकार कठिन है। क्योंकि मन के बिना आकार नहीं बनता।

इसका यह अर्थ हुआ कि सारा सवाल आपके मन का है। इसलिए आप इसको ऐसा मत सोचें कि निराकार को चुनें कि आकार को चुनें। यह बात ही गलत है। आप तो यही सोचें कि मैं मन को छोड़ सकता हूं या नहीं छोड़ सकता हूं। अगर नहीं छोड़ सकता हूं, तो निराकार के धोखे में मत पड़ें। आपका निराकार झूठा होगा। फिर उचित है कि आप साकार से ही चलें। अगर आप मन को छोड़ सकते हों, तो साकार की कोई भी जरूरत नहीं है। आप निराकार में खड़े ही हो गए।

साकार भी छूट जाता है, लेकिन क्रमशः। साकार की प्रक्रिया का अर्थ है कि धीरे-धीरे आपके मन को गलाएगा। और एक ऐसी घड़ी आएगी कि मन पूरा गल जाएगा, और आप मन से छुटकारा पा जाएंगे। जिस दिन मन छूटेगा, उसी दिन साकार भी छूट जाएगा। जब तक मन है, तब तक साकार भी रहेगा।

तो साकार एक ग्रेजुअल प्रोसेस, एक क्रमिक विकास है। और निराकार छलांग है, सडेन, आकस्मिक। अगर आपकी तैयारी हो आकस्मिक छलांग लगाने की, कि रख दिया मन और कूद गए, तो निराकार कठिन नहीं है। पर रख सकेंगे मन? कपड़े जैसा नहीं है कि उतारा और रख दिया। चमड़ी जैसा है; बड़ी तकलीफ होगी। चमड़ी

से भी ज्यादा तकलीफ होगी। अपनी चमड़ी निकालकर कोई रखता हो, उससे भी ज्यादा तकलीफ होती है, जब कोई अपने मन को निकालकर रखता है। क्योंकि मन और भी चमड़ी से भी गहरा भीतर है। हड्डी-हड्डी, एक-एक कोष्ठ से जुड़ा है। और हमने अपने को मान ही रखा है कि हम मन हैं। इसलिए मन को उतारकर रखना अपने को ही उतारकर रखना है। अपने से ही खाली हो जाना है। अपनी ही हत्या है।

इसलिए निराकार के साधकों ने, खोजियों ने कहा है कि जब तक अमनी, नो-माइंड, अमन की स्थिति न हो जाए, तब तक निराकार की बात का कोई अर्थ ही समझ में नहीं आएगा।

सगुण के साथ अड़चन मालूम पड़ती है, अहंकार के कारण। साकार के साथ बुद्धि विवाद करती है। तो आदमी कहता है कि नहीं, मेरे लिए तो निराकार है। यह साकार से बचने का उपाय है सिर्फ कि मेरे लिए तो निराकार है।

लेकिन पता है कि निराकार की पहली शर्त है कि अपने मन को छोड़ें! उसी मन की मानकर तो साकार को छोड़ रहे हैं, और निराकार की बात कर रहे हैं। और जब कोई आपको कहेगा कि निराकार का अर्थ हुआ कि अपने मन की आकार बनाने वाली कीमिया को बंद करें, हटाएं इस मन को। तब आपको अड़चन शुरू हो जाएगी।

बहुत-से लोग हैं, जिन्होंने साकार को छोड़ दिया है निराकार के पक्ष में; और निराकार में उतरने की उनकी कोई सुविधा नहीं बनती। जब भी कुछ छोड़ें, तो सोच लें कि जिस विपरीत के लिए छोड़ रहे हैं, उसमें उतर सकेंगे? अगर न उतर सकते हों, तो छोड़ने की जल्दी मत करें।

पर हम बहुत होशियार हैं। हमारी हालत ऐसी है, जैसे मैंने सुना है कि एक शेखचिल्ली एक दुकान पर गया है। और उसने कहा कि यह मिठाई क्या भाव है? तो दुकानदार ने कहा, पांच रुपया सेर। तो उसने कहा, अच्छा, एक सेर दे दो।

जब वह तौल चुका था और पुड़िया बांध चुका था और ग्राहक को दे रहा था, तब उसने कहा, अच्छा, इसे तो रहने दो। मेरा मन बदल गया। यह दूसरी मिठाई क्या भाव है? तो उसने कहा, यह ढाई रुपए सेर है। तो उसने कहा, दो सेर, इसकी जगह वह तौल दो।

उसने दो सेर मिठाई तुलवा ली और चलने लगा। जब चलने लगा, तो दुकानदार ने पूछा कि पैसे? तो उसने कहा कि मैंने तो यह उस मिठाई के बदले में ली है; तो पैसे किस बात के?

तो उस दुकानदार ने कहा, और उस मिठाई के पैसे? उसने कहा, जो मैंने ली ही नहीं, उसके पैसे मांगते हैं?

साकार और निराकार के बीच में हम ऐसे ही गोते खाते रहते हैं। जब निराकार का सवाल उठता है, तब हम कहते हैं कि नहीं, यह अपने बस की बात नहीं है। साकार ही ठीक होगा। और जब साकार की बात उठती है, तो हम कहते हैं कि कैसे मानें कि परमात्मा का कोई आकार हो सकता है। तब बुद्धि विचार उठाने लगती है। और कैसे मानें कि परमात्मा की कोई देह हो सकती है। और कैसे मानें कृष्ण को; कैसे मानें बुद्ध को कि ये भगवान हैं!

नहीं, मन मानने का नहीं होता। हमारे जैसी ही हड्डी, मांस, मज्जा है। हमारे जैसा ही शरीर है। हम जैसे ही जीते हैं, मर जाते हैं, तो कैसे मानें कि ये भगवान हैं! नहीं, इनको नहीं मान सकते। भगवान तो निराकार है।

जब साकार में उतरने का सवाल उठे, तब बुद्धि से हम निराकार की बात करते हैं। और जब निराकार में उतरना हो, तब हिम्मत नहीं जुटती; तब हम साकार का सोचने लगते हैं। इसको मैं बेईमानी कहता हूं। और जो व्यक्ति इसको ठीक से नहीं पहचान लेता, वह जिंदगीभर ऐसे ही व्यर्थ शक्ति और समय को गंवाता रहता है।

सोच लें ठीक से कि आपकी सामर्थ्य क्या है, और अपनी सामर्थ्य के अनुसार चलें। परमात्मा कैसा है, इसकी फिक्र छोड़ें। आपसे कौन पूछ रहा है कि परमात्मा कैसा है! और आपके तय करने के लिए परमात्मा रुका नहीं है। और आप क्या तय करेंगे, इससे परमात्मा में कोई फर्क नहीं पड़ता है। आप मानें निराकार, मानें साकार, इससे परमात्मा में क्या फर्क पड़ेगा! आपकी मान्यता से आप में फर्क पड़ेगा।

तो अपनी तरफ सोचें कि मैं जैसा मानूंगा, वैसा मानने से मुझमें क्या फर्क पड़ेगा!

एक मित्र एक पंद्रह दिन हुए मेरे पास आए। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं आपको भगवान नहीं मान सकता। मैंने कहा, बिल्कुल अच्छी बात है। बात खतम हो गई। अब क्या इरादा है? तो उन्होंने कहा, मैं तो ज्यादा से ज्यादा आपको मित्र मान सकता हूं। मैंने कहा, यह भी बड़ी कृपा है! ऐसा आदमी भी खोजना कहां आसान है, जो किसी को मित्र भी मान ले! यह भी बात पूरी हो गई। तब वे मुझसे कहने लगे कि मेरी सहायता करिए। मुझे शांति चाहिए, आनंद चाहिए, और मुझे परमात्मा का दर्शन चाहिए। आपकी कृपा हो, तो सब हो सकता है।

तो मैंने उनको पूछा कि एक मित्र की कृपा से यह कुछ भी नहीं हो सकता। मित्र की तो कृपा ही क्या हो सकती है! आप मुझसे मांग तो ऐसी कर रहे हैं, जो भगवान से हो सके! कि आपको शांति दे दूं, आनंद दे दूं, सत्य का ज्ञान दे दूं। मांग तो आप ऐसी कर रहे हैं, जो भगवान से हो सके। लेकिन किसी को भगवान मानने की मर्जी भी नहीं है। तो मित्र से जितना हो सकता है, उतना मैं करूंगा। और जिस दिन उतना चाहिए हो जितना भगवान से हो सकता है, उस दिन तैयारी कर के आना कि मैं भगवान हूं। तभी मांगना।

मैं भगवान हूं या नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है। बड़ा सवाल यह है कि आप क्या चाहते हैं अपनी जिंदगी में? क्या रूपांतरण चाहते हैं? उसको ध्यान में रखें। यहां मेरे पास बहुत-से प्रश्न हैं कि कृष्ण को हम भगवान नहीं मान सकते! बुद्ध को हम भगवान नहीं मान सकते!

तुमसे कह कौन रहा है? तुम नाहक परेशान हो रहे हो। न कृष्ण तुमसे कह रहे हैं; न बुद्ध तुमसे कह रहे हैं। और तुम्हारे कहने पर उनका होना कोई निर्भर भी नहीं है। यह कोई वोट का मामला थोड़े ही है, कि आपकी वोट मिलेगी, तो कृष्ण भगवान हो पाएंगे!

आप अकारण परेशान हैं। आप अपना सोचें कि कृष्ण से कितना लाभ लेना है! अगर कृष्ण से भगवान जैसा लाभ लेना है, तो भगवान मान लें। और न लेना हो, तो बात खतम हो गई। यह आपका ही लाभ और आपकी ही हानि और आपकी ही जिंदगी का सवाल है। इससे कृष्ण का कुछ लेना-देना नहीं है।

लेकिन लोग बड़े परेशान होते हैं। लोग दूसरों के लिए परेशान हैं कि कौन क्या है! इसकी बिल्कुल चिंता नहीं है कि मैं अपनी फिक्र करूं, जिंदगी बहुत थोड़ी है।

एक बूढ़े सज्जन मेरे पास आए। और वे कहने लगे, एक ही बात आपसे पूछनी है। सच में आप भगवान हैं? आपने ही दुनिया बनाई है?

तो मैंने उनको कहा कि आप जरा पास आ जाएं। क्योंकि यह मामला जरा गुप्त है। और मैं सिर्फ कान में ही कह सकता हूं। और एक ही शर्त पर कि आप किसी और को मत बताना।

वे बड़ी प्रसन्नता से पास हट आए। बूढ़े भी बच्चों जैसे ही होते हैं। बुद्धि नहीं बढ़ती। उन्होंने कान मेरे पास कर दिया। मैंने उनसे कहा, बनाई तो मैंने ही है यह दुनिया। लेकिन दुनिया की हालत देख रहे हैं कितनी खराब है! कि किसी से कह नहीं सकता हूं कि मैंने बनाई है। और आप किसी को बताना मत। वह जिसने बनाई है, वही फंस जाएगा! हालत इतनी खराब है।

तो आपसे भगवान इसीलिए छिपा फिरता है कि अगर कहीं भी किसी ने कहा कि मैं हूं, तो आप गर्दन पकड़ लेंगे कि तुम ही हो? यह दुनिया तुम्हीं ने बनाई है? तो कौन जुर्मी होगा इस दुनिया के लिए!

तो तुमको बताए देता हूं, लेकिन किसी को कहना मत। अगर कहा, तो मैं बदल जाऊंगा। लेकिन मैंने उन बूढ़े सज्जन से पूछा कि इससे तुम्हें क्या फर्क पड़ेगा कि किसने दुनिया बनाई, किसने नहीं बनाई? और मैं कह दूं, हां और न। इससे तुम्हें होगा क्या? मौत करीब आ रही है, एक क्षण का कोई भरोसा नहीं है, तुम्हारे हाथ-पैर हिलने शुरू हो गए हैं। और तुम अभी बच्चों की बातों में पड़े हो? कुछ फिक्र करो अपनी!

बुद्धिमान आदमी वह है, जो अपनी फिक्र कर रहा है। नासमझ वह है, जो व्यर्थ की बातों में पड़ा है। और कई बार हम समझते हैं कि व्यर्थ की बातें बड़ी कीमती हैं, बड़ी कीमती हैं। क्या कीमत है इस बात की?

एक बात सदा ध्यान में रखें कि जो भी आप मानना चाहते हों, जो भी करना चाहते हों, जो भी धारणा बनाना चाहते हों, उससे आपको क्या होगा? क्या आप बदल सकेंगे? आपकी नई जिंदगी शुरू होगी? आपका पुराना कचरा बहेगा, जल जाएगा? आपको कोई नई ज्योति मिलेगी? इसका ख्याल करें।

अगर निराकार से मिलती हो, तो निराकार की तरफ चल पड़ें। अगर साकार से मिलती हो, तो साकार की तरफ चल पड़ें। जहां से मिलती हो आनंद की किरण, वहां चल पड़ें। चलने से यात्रा पूरी होगी, बैठकर सोचने से यात्रा पूरी नहीं होगी।

कुछ लोग जिंदगीभर विचार ही करते रहते हैं कि साकार कि आकार कि निराकार; निर्गुण कि सगुण; कि कृष्ण, कि राम, कि क्राइस्ट!

कब तक सोचते रहेंगे? सोचने से कोई यात्रा नहीं होती। चलें। और मैं मानता हूं, गलत भी चल पड़ें, तो हर्जा नहीं है; क्योंकि गलत से भी सीखने मिलेगा। और गलत चल पड़े, तो कम से कम चले तो। चलना तो कम से कम आ ही जाएगा, गलत रास्ते पर ही सही। वह चलना हाथ में होगा, तो कभी सही रास्ते पर भी चल सकते हैं। लेकिन साहस बिल्कुल चलने का नहीं है। और हम सिर्फ सिर में ही, खोपड़ी के भीतर ही चलते रहते हैं। उस चलने से कुछ भी न होगा।

एक मित्र ने पूछा है, अनेक-अनेक दुर्लभ भक्त हुए--चैतन्य, मीरा, कबीर, रैदास, तुलसी, नरसी--और उन्होंने व्यापक पैमाने पर भक्ति का सारे देश में प्रचार भी किया। किंतु इस सब के बावजूद भी आज भक्ति-भाव से देश रिक्त दिखाई पड़ता है। क्या कारण है?

नरसी को, या रैदास को, या दादू को, या कबीर को जो मिला है, वह उनके प्रचार से आपको नहीं मिल सकता। धर्म प्रचार से नहीं मिलता। धर्म कोई राजनीति नहीं है कि प्रचार से फैला दी जाए।

कबीर प्रचार करते भी नहीं। कबीर तो केवल खबर दे रहे हैं कि जो उन्हें मिला है, वह तुम्हें भी मिल सकता है। लेकिन कबीर के कहने से नहीं मिल जाएगा। कबीर ने जो किया है, वह तुम्हें भी करना पड़ेगा, तो ही मिलेगा।

भक्ति दी नहीं जा सकती। ज्ञान हस्तांतरित नहीं होता। यह कोई दे नहीं सकता कि लो, ले जाओ; यह ज्ञान रहा। बाप मरे, तो बेटे को दे दे। गुरु मरे, तो शिष्य को दे दे। ट्रांसफरेबल नहीं है।

अनुभव तो कबीर के साथ कबीर का मर जाएगा। जिन्होंने कबीर की बात सुनकर कर ली होगी, उनके भीतर फिर पैदा हो जाएगा। लेकिन यह कबीर वाला ज्ञान नहीं है। यह इनका अपना ज्ञान है, जो पैदा होगा।

कबीर के दीए से अगर आप अपना दीया जला लें, तो ही! कबीर के प्रचार से नहीं। कबीर के कहने से नहीं। कबीर की किताबों को सम्हालकर पढ़ लेने से नहीं। उससे कुछ भी न होगा। आप मूल बात तो चूक ही रहे हैं।

इस मुल्क में--इस मुल्क में ही नहीं, सारी जमीन पर, सभी मुल्कों में भक्त हुए, ज्ञानी हुए। उन्होंने जो पाया, वह कहा भी। जो नहीं कहा जा सकता था, उसको भी कहा। जिसको कहना बिल्कुल असंभव था, उसको भी शब्दों में बांधने की अथक कोशिश की। सिर पटका आपके सामने। आपने सुना भी। पहले तो आपने कभी भरोसा नहीं किया कि ये जो कहते हैं, वह ठीक होगा।

कौन कबीर पर भरोसा करता है? मन में आपको ऐसा ही लगा रहता है कि पता नहीं, यह आदमी होश में है या बेहोश है? यह जो कह रहा है, सच है कि झूठ है? यह जो कह रहा है, यह सपना है या अनुभव है? आपको यह शक तो बना ही रहता है।

आप हजार तरकीब से यह तो कोशिश करते ही रहते हैं कि कहीं न कहीं कोई भूल-चूक कबीर से हो गई है। क्योंकि जो हमको नहीं हुआ, वह इसको कैसे हो सकता है? और हम जैसे बुद्धिमान को नहीं हुआ, तो ये कबीर जैसे गैर पढ़े-लिखे आदमी को हो गया!

काशी के पंडितों को बड़ा शक था कि यह कबीर को हो नहीं सकता। कैसे होगा? इतने शास्त्र हम जानते हैं और हम को नहीं हुआ! किसी के पास धन है; वह सोचता है, इतना धन मेरे पास है और मुझको नहीं हुआ और इसको हो गया! जरूर कहीं कोई गड़बड़ है। यह जुलाहा या तो बहक गया, या दिमाग इसका खराब हो गया!

लेकिन कबीर जैसे लोग सुनते नहीं इस तरह के लोगों की। वे कहे ही चले जाते हैं, कहे ही चले जाते हैं। पहले लोग हंसते हैं, पहले लोग अविश्वास करते हैं। फिर नहीं मानते, तो कुछ न कुछ मानने वाले भी मिल जाते हैं। और कबीर कहे ही चले जाते हैं, तो फिर कुछ लोग कहने लगते हैं कि हो ही गया होगा! इतने दिन तक आदमी कहता है।

लेकिन कोई भी प्रयोग करने को राजी नहीं होता है कि यह जो कह रहा है, वह हम भी करके देख लें। क्योंकि प्रयोग करके देखने का मतलब तो जीवन को बदलना है। वह कठोर बात है। वह श्रमसाध्य है। इसलिए हम सुन लेते हैं कबीर को और उनकी वाणी को संगृहीत कर लेते हैं। और फिर विश्वविद्यालय में उस पर शोधकार्य और रिसर्च और डाक्टरेट बांटते रहते हैं। बस, इतना उपयोग होता है!

बड़े मजे की बात है कि जो पंडित कबीर को सुनने नहीं जा सकते थे, वे सब पंडित विश्वविद्यालयों में डाक्टरेट कबीर पर लेकर और बड़े-बड़े पदों पर बैठ जाते हैं। कबीर को कोई विश्वविद्यालय डाक्टरेट देने को राजी नहीं हो सकता था। लेकिन कबीर पर सैकड़ों लोग शोध करके डाक्टर हो जाते हैं। और इन डाक्टरों में से एक भी, कबीर अगर मौजूद हो, तो उसके पास जाने को तैयार नहीं हो सकता। क्योंकि ये पढ़े-लिखे सुसंस्कृत लोग, यह कबीर, गैर पढ़ा-लिखा, जुलाहा, इसके पास... !

हमें लगता है, इतने संत हुए, फिर भी दुनिया संतत्व से खाली क्यों है?

संत दुनिया को संतत्व से नहीं भर सकते। संत तो केवल खबर दे सकते हैं कि यह घटना भी संभव है। और संत अपने व्यक्तित्व से यह प्रमाणित कर सकते हैं कि उनके जीवन में वह घट गया है, जिसको परमात्मा कहते हैं। लेकिन वह तो संत के साथ तिरोहित हो जाएगा। दीया टूटेगा कबीर का और लौ परमात्मा में लीन हो जाएगी। आप उसको कहां सम्हालकर रखेंगे? वह तो आपका भी दीया जल जाए, आप में भी ज्योति जल जाए, तो!

लेकिन हम संतों के आस-पास संप्रदाय बना लेते हैं। मंदिर खड़े कर लेते हैं, मस्जिद बना लेते हैं, गुरुद्वारे खड़े कर लेते हैं। और संतों को उन्हीं में दफना देते हैं। बात खतम हो गई। उनसे छुटकारा हो गया!

संतों से छुटकारे के दो रास्ते हैं, या तो उनको सूली लगा दो, और या उनकी पूजा करने लगो। बस, दो ही उपाय हैं उनसे छुटकारे के। सूली लगाने वाला भी कहता है, झंझट मिटी। पूजा करने वाला भी कहता है कि चलो, फूल चढ़ा दिए दो, झंझट मिटी, तुमसे छुटकारा हुआ। अब हम अपने काम पर जाएं!

जरूर इतने संत हुए हैं, लेकिन कहीं कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। इसका कारण यह नहीं है कि संतों को जो हुआ था, वह असत्य है। इसका कारण यह है कि हम असाध्य बीमारियां हैं। कितने ही संत हों, हम अपनी बीमारी को इतने जोर से पकड़े हुए हैं कि हम उनको असफल करके ही रहते हैं। यह हमारी सफलता का परिणाम है, यह जो दिखाई पड़ रहा है! हम सफल हो रहे हैं। और हमारी संख्या बड़ी है, ताकत बड़ी है।

और मजा यह है कि अज्ञान में जीने के लिए कोई श्रम नहीं करना पड़ता। इसलिए हम उसमें मजे से जी लेते हैं। ज्ञान में जीने के लिए श्रम करना पड़ता है। ज्ञान चढ़ाई है पर्वत के शिखर की तरफ। हम समतल जमीन पर मजे से बैठे रहते हैं। समतल पर भी कहना ठीक नहीं है। हम तो खाई की तरफ लुढ़कते रहते हैं। वहां कोई मेहनत नहीं लगती। गड्ढे की तरफ गिरने में कोई मेहनत है?

श्रम से हम बचते हैं। और अध्यात्म सबसे बड़ा श्रम है। इसलिए दुनिया में बुद्ध होते हैं, महावीर होते हैं, क्राइस्ट, मोहम्मद होते हैं, खो जाते हैं। हम मजबूत हैं, वे हमें हिला भी नहीं पाते। हम अपनी जगह अडिग बने रहते हैं।

फिर अध्यात्म के साथ कुछ कारण हैं। पहला तो कारण यह है कि अध्यात्म कोई बाह्य संपत्ति नहीं है, जो संगृहीत हो सके। अगर आपके पिता मरेंगे, तो जो मकान बनाएंगे, वह आपके पास छूट जाएगा। जो धन इकट्ठा करेंगे, वह आपके नाम छूट जाएगा। कोई क्रेडिट होगी बाजार में, उसको भी आप उपयोग कर लेंगे। लेकिन अगर आपके पिता को कोई प्रार्थना का अनुभव हुआ, तो वह कहां छूटेगा! अगर कोई ज्ञान की झलक मिली, तो वह कैसे छूटेगी! उसकी कहीं कोई रेखा ही न बनेगी पदार्थ पर। वह तो पिता के साथ ही विलीन हो जाएगी। और पिता के जाने के बाद उस पर भरोसा भी न आएगा कि वह थी।

इसलिए हम सबको संदेह है कि बुद्ध कभी सच में हुए? क्राइस्ट सच में हुए या कहानी है? क्योंकि वह जो घटना है, वह इतनी अनहोनी है कि दिखाई तो पड़ती नहीं कहीं। तो शक पैदा होता है। तो लगता है कि कहानी ही होगी।

इसलिए जिंदा संत को मानने में हमें ज्यादा कठिनाई होती है, बजाय मुर्दा संत को मानने के। क्योंकि मुर्दा संत को मानने में अड़चन इसलिए नहीं होती कि हमारे पास कोई प्रमाण भी नहीं होता कि उसको हम कहें कि नहीं, यह नहीं हुआ।

जिंदा संत को मानने में बड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि हम पच्चीस कारण निकाल सकते हैं कि इस कारण से शक होता है। इस कारण से शक होता है। तुमको भी भूख लगती है। तो फिर हममें तुममें फर्क क्या है? तुमको

भी सर्दी लगती है; तुमको भी बुखार आ जाता है। फिर हममें तुममें फर्क क्या है? फिर कुछ ज्ञान वगैरह नहीं हुआ। जैसे कि बुखार ज्ञान से डरता हो! जैसे कि मौत ज्ञानी को घटित न होती हो!

मौत भी ज्ञानी को घटित होती है। फर्क मौत में नहीं पड़ता, फर्क ज्ञानी में पड़ता है। आपको भी मौत आती है, ज्ञानी को भी मौत आती है। आपको जब मौत आती है, तो आप भयभीत होते हैं। ज्ञानी को जब मौत आती है, तो भयभीत नहीं होता। फर्क मौत में नहीं पड़ता, फर्क ज्ञानी में पड़ता है।

हां, अगर मौत न आए, तो हम मान लें कि यह आदमी हो गया परम ज्ञान को उपलब्ध। लेकिन मौत तो आती है बुद्ध को भी। कृष्ण भी मरते हैं। शरीर तो खोता है उसी तरह, जिस तरह हमारा खोता है। और शरीर से गहरी हमारी आंख नहीं जाती कि भीतर कुछ और भी है।

तो बुद्ध मिट जाते हैं जमीन से, कहानी रह जाती है। और फिर कहानी पर धीरे-धीरे हमें शक भी आता है। लेकिन अब दो हजार साल पुरानी कहानी से झगड़ा भी कौन करे!

पर आपको ख्याल है कि जिंदा गुरु का हमेशा विरोध होता है! बुद्ध जिंदा होते हैं, तो विरोध होता है; बुद्ध मर जाते हैं, तो कोई विरोध नहीं करता।

एक और मजे की बात है कि लोग मरे हुए गुरु को मानते हैं। कोई मरी हुई पत्नी से विवाह नहीं करता! आप जिंदा पत्नी चाहेंगे, अगर विवाह करना है। दो हजार साल पहले कोई औरत हुई हो, चाहे वह कितनी ही सुंदरी रही हो, आम्रपाली क्यों न रही हो, वह कितनी ही सुंदरी रही हो जगत की, दो हजार साल पहले हुई हो और मर गई, आप उससे शादी करने को राजी न होंगे। कि होंगे? आप दो हजार साल पहले की सुंदरतम स्त्री से शादी न करके आज मौजूद जिंदा स्त्री से, चाहे वह उतनी सुंदर न भी हो, उससे शादी करना पसंद करेंगे। क्यों?

लेकिन अगर जिंदा गुरु हो, तो आप उसको नहीं मान सकते। दो हजार साल पुराना मरा हुआ गुरु हो, उसको ही मान सकते हैं। कुछ मामला गड़बड़ दिखता है।

असल में गुरु से आप बचना चाहते हैं। मरा हुआ गुरु अच्छा है, वह आपका पीछा नहीं कर सकता। जिंदा गुरु आपको दिक्कत में डालेगा। इसलिए मरा गुरु ठीक है। आप जो चाहें, मरे गुरु के साथ कर सकते हैं। जिंदा गुरु के साथ आप जो चाहें, वह नहीं कर सकते। वह जो चाहता है आपके साथ, वही करेगा। इसलिए मुर्दा गुरु के साथ दोस्ती बन जाती है।

मुर्दा पत्नी कोई नहीं चाहता, मुर्दा पति कोई नहीं चाहता। मुर्दा गुरु सब चाहते हैं। क्योंकि गुरु से लोग बचना चाहते हैं, बचाव कर रहे हैं।

नरसी हैं, कबीर हैं, इनकी क्या फिक्र करते हैं! आज भी लोग वैसे ही मौजूद हैं। लेकिन उनकी बात आप दो-तीन सौ साल बाद करेंगे, जब वे मर जाएंगे।

उनको खोजिए, जो जिंदा हैं। आपके बीच अभी भी, जमीन कभी भी खाली नहीं है। उसमें हमेशा एक अनुपात में उतने ही लोग सदा ज्ञान को उपलब्ध होते हैं हर युग में। लेकिन आपकी आंखें अंधी हैं। उनको आप देख नहीं पाते। आप तो दो हजार साल जब प्रचार चलता है किसी की कहानी का, तब उसे देख पाते हैं। आपके मानते-मानते वह आदमी खो गया होता है, तब आप मान पाते हैं। और जब वह होता है, तब आप उसे मान नहीं पाते।

जीसस को जिन्होंने सूली दे दी, वे ही अब दो हजार साल बाद पूजा कर रहे हैं। इसलिए परिणाम नहीं हो पाता।

जिंदा गुरु की तलाश करें। जिंदा भक्त को खोजें। और एक ही बात ध्यान रखें कि आपको इसकी चिंता नहीं करनी है कि वह भक्त, है भक्त या नहीं। आपको यही चिंता करनी है कि उसके सान्निध्य में मुझमें भक्ति उतरती है या नहीं। उतरे, तो समझना कि है। न उतरे, तो कोई और खोज लेना। लेकिन जिंदा दीए की तलाश करें, ताकि आपका बुझा दीया जल सके।

और जिंदा दीया हमेशा उपलब्ध है। लेकिन आप हमेशा मरे हुए दीयों के आस-पास मंडराते हैं। फिर आपका दीया नहीं जलता, तो आप पूछते हैं, नरसी हुए, मीरा हुई, कबीर हुए, दादू हुए, कुछ हुआ नहीं? वे अभी भी हैं। उनके नाम कुछ और होंगे। उन्हें खोजें। और उनकी बातें मत सुनें; उनसे जीवन की कला सीखें; अपने को बदलने की कीमिया सीखें। और साहस करें थोड़ा बदलने का।

थोड़ी-सी बदलाहट भी आपको जिंदगी में इतने रस से भर देगी कि फिर आप और बदलने के लिए राजी हो जाएंगे।

अभी आपकी जिंदगी में सिवाय दुख और पीड़ा के कुछ भी नहीं है। सिवाय उदासी और निराशा के कुछ भी नहीं है। सिवाय विषाद और संताप के कुछ भी नहीं है। अभी आप एक जीते-जागते नरक हैं। इसमें कुछ प्रकाश की किरण कहीं से भी मिलती हो, तो लाने की कोशिश करें। और कहीं से भी कुछ फूल खिल सकते हों, तो खिलाएं।

लेकिन कहीं से भी आपको फूल की खबर आए, तो पहले तो आप यह शक करते हैं कि फूल असली नहीं हो सकता। क्या कारण है? आप इतने नरक से भरे हैं कि आप मान ही नहीं सकते कि कहीं स्वर्ग हो सकता है। स्वर्ग बहुत-से हृदयों में अभी भी है, लेकिन आपके पास आंख, खुला मन, सीखने का भाव चाहिए।

दुनिया में गुरु तो सदा उपलब्ध होते हैं, लेकिन शिष्य सदा उपलब्ध नहीं होते। इससे गड़बड़ होती है। ये नरसी और कबीर और दादू असफल जाते हैं, क्योंकि गुरु हो जाना तो उनके हाथ में है; लेकिन शिष्य तो आपके हाथ में है।

तो दुनिया में गुरु भी हो, लेकिन उसे शिष्य न मिल पाएं, तो मुसीबत हो जाती है। कोई सीखने को तैयार नहीं है। सब सिखाने को तैयार हैं। क्योंकि सीखने के लिए झुकना पड़ता है। आप भी सिखाने को तैयार हैं। आप भी लोगों को सिखाते रहते हैं बिना इसकी फिक्र किए कि आप क्या सिखा रहे हैं।

अगर आपका बेटा आपसे पूछता है, ईश्वर है? तो आप में इतनी हिम्मत है कि आप कहें कि मुझे पता नहीं है? आप कहते हैं, है, बिल्कुल है। और अगर आप नास्तिक हैं, कम्युनिस्ट हैं, तो आप कहते हैं, नहीं है, बिल्कुल नहीं है। लेकिन एक बात पक्की है कि आप जवाब मजबूती से देते हैं, बिना इस बात की फिक्र किए कि आपको कुछ भी पता नहीं है। या तो हां कहते हैं, या न कहते हैं। लेकिन आप यह नहीं कहते कि नहीं, मुझे पता नहीं है। मैं सिखाने में असमर्थ हूं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे के साथ बगीचे में घूम रहा था। तो उसके बेटे ने पूछा कि पिताजी, सूरज किसने बनाया?

मुल्ला ने एक क्षण तो सोचा। क्योंकि कोई भी बाप यह स्वीकार करना मुश्किल अनुभव करता है कि मुझे पता नहीं है। लेकिन ऐसे मुल्ला ईमानदार आदमी था। उसने कहा कि नहीं, मेरा मन तो उत्तर देने का होता है, लेकिन आज नहीं कल तू पता लगा ही लेगा। इसलिए मैं तुझसे साफ ही कह दूं। मुझे पता नहीं है।

घूम रहे थे। फिर उस बच्चे ने पूछा कि ये वृक्ष कौन बड़े कर रहा है? मुल्ला ने कहा कि मुझे पता नहीं है। फिर उस लड़के ने पूछा कि रात को चांद निकलता है, तो उसका एक ही पहलू हमें हमेशा दिखाई पड़ता है। दूसरा पहलू क्यों दिखाई नहीं पड़ता? मुल्ला ने कहा, मुझे पता नहीं है।

बार-बार लड़के ने यह सुनकर कि मुझे पता नहीं, मुझे पता नहीं, लड़का उदास हो गया। उसके उदास चेहरे को देखकर मुल्ला ने पूछा, बेटा पूछ। दिल खोलकर पूछ। पूछेगा नहीं, तो सीखेगा कैसे?

कुछ भी पता नहीं है, फिर भी पूछेगा नहीं तो सीखेगा कैसे! हम सब सिखा रहे हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि हमें पता है या नहीं है।

धार्मिक व्यक्ति इस बात से शुरुआत करता है कि मुझे पता नहीं है और अब मैं सीखने निकलता हूं। फिर वह विनम्र होगा, फिर वह झुका हुआ होगा। फिर जहां से भी सीखने को मिल जाए, वह सीखेगा।

सीखने वालों की कमी है, इसलिए कबीर, दादू असफल चले जाते हैं। और जो हम उनसे सीखते हैं, वह शब्द हैं, ज्ञान नहीं सीखते; उनके शब्द सीख लेते हैं।

कबीर के पद याद हो जाते हैं। तुलसी की चौपाइयां याद हो जाती हैं। लोग तोतों की तरह दोहराते रहते हैं। जब तक वह अनुभव आपको न हो जाए, जो उन पदों में छिपा है, तब तक वे पद तोते की तरह हैं। अच्छा है मत दोहराएं। क्योंकि तोता होना अच्छा नहीं है। जब तक जान न लें, तब तक चुप रहें। और जो ताकत है, वह बोलने में न लगाकर, खोजने में लगाएं। तो कबीर सफल हो सकते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि मनुष्य तो अपने भाग्य को लेकर जन्मता है, तो अगर खोज भाग्य में होगी भगवान की, तो हो जाएगी। नहीं होगी, तो नहीं होगी!

यह बात मतलब की भी हो सकती है और खतरनाक भी। मतलब की तो तब, जब जीवन के और हर पहलू पर भी यही दृष्टि हो। फिर सुख को भी मत खोजें। मिलना होगा, मिल जाएगा। फिर दुख से भी मत बचें; क्योंकि भोगना है, तो भोगना ही पड़ेगा। फिर जिंदगी में जो कुछ भी हो, उसको स्वीकार कर लें; और जो न हो, उसको भी स्वीकार कर लें कि वह नहीं होना है। तो फिर मैं आपको कहता हूं कि भगवान को भी मत खोजें। भगवान आपको खोजता हुआ आ जाएगा। लेकिन फिर भाग्य की इतनी गहरी निष्ठा चाहिए कि जो होगा, ठीक है।

सिर्फ भगवान के संबंध में यह बात और धन के संबंध में खोज जारी रखें, तो फिर बेईमानी है। धन के संबंध में खोज जारी रखें, और उसमें तो कहें कि पुरुषार्थ के बिना क्या होगा! और खोजेंगे नहीं तो मिलेगा कैसे! और जो लोग खोज रहे हैं, उनको मिल रहा है। तो ऐसे हाथ पर हाथ रखे बैठे रहे, तो गंवा देंगे। तो धन की तो खोज जारी रखें, क्योंकि धन पुरुषार्थ के बिना कैसे होगा! और जब भगवान को खोजने का सवाल आए, तब कहें कि सब भाग्य की बात है। होगा, तो हो जाएगा। नहीं होगा, तो नहीं होगा। तो फिर धोखा है, आत्मवंचना है।

तो मैं मानता हूं कि अगर भाग्य को कोई पूरी तरह स्वीकार कर ले, तो उसे भगवान को खोजने की जरूरत नहीं है। भगवान ही उसे खोजेगा। लेकिन भाग्य को पूरा स्वीकार करने का अर्थ समझ लेना। फिर कुछ भी मत खोजना। फिर खोजना ही मत। फिर यह बात ही छोड़ देना कि मेरे हाथ में करने का कुछ भी है। फिर तो जो भी हो, होने देना। जो भी हो, होने देना। अपनी तरफ से कुछ करना ही मत।

अगर कोई व्यक्ति इतने भाग्य पर अपने को छोड़ दे, तो समर्पण हो गया। उसे भगवान का पता न भी हो, तो भी भगवान उसे मिल ही गया, इसी क्षण मिल गया। कोई बाधा न रही।

लेकिन यह कानूनी बात न हो। यह कोई लीगल तरकीब न हो हमारी। क्योंकि हम बड़े कानूनविद हैं। और हम ऐसी तरकीबें निकालते हैं, जिनका हिसाब नहीं है!

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बीमार थी। मरने के करीब थी। डाक्टर को नसरुद्दीन ने बुलाया। मरने के करीब थी पत्नी, बीमारी खतरनाक थी, तो डाक्टर ने कहा कि इलाज जरा महंगा है।

नसरुद्दीन ने कहा कि कितना ही महंगा हो, मैं सब चुकाऊंगा; अपना सब घर बेचकर चुकाऊंगा। लेकिन इसे बचाओ। तो डाक्टर ने कहा कि और यह भी हो सकता है, यह न बचे। तो नसरुद्दीन ने कहा कि अगर तुम बचा सको तो, और तुम मार डालो तो, जो भी खर्च होगा, वह तो मैं चुकाऊंगा ही।

फिर डाक्टर इलाज में लग गया। सात दिन बाद पत्नी मर गई। काफी खर्च हुआ। डाक्टर ने बिल भेजा। तो नसरुद्दीन ने कहा कि ऐसा करें कि हम गांव के पुरोहित के पास चले चलें। डाक्टर ने कहा, क्या मतलब? नसरुद्दीन ने कहा, मैं गरीब आदमी हूं, यह बिल पुरोहित जैसा कह देगा, वैसा कर लेंगे।

पुरोहित के पास नसरुद्दीन गया। पुरोहित के सामने नसरुद्दीन ने कहा कि डाक्टर बोलो, हमारी क्या शर्त थी? तो डाक्टर ने कहा, शर्त थी हमारी कि मैं बचाऊं या मारूं, दोनों हालत में तुम मूल्य चुकाओगे।

तो नसरुद्दीन ने कहा, तुमने मेरी पत्नी को बचाया? तो डाक्टर ने कहा कि नहीं। तो नसरुद्दीन ने कहा, तुमने मेरी पत्नी को मारा? तो डाक्टर ने कहा कि नहीं। तो नसरुद्दीन ने कहा कि किस समझौते के बल पर ये पैसे मांग रहे हो? किस हिसाब से? न तुमने बचाया, न तुमने मारा। और मैंने कहा था, बचाओ या मारो, दोनों हालत में पैसे चुका दूंगा।

हम भी ऐसा रोज-रोज करते रहते हैं। कुछ कानूनी व्यवस्थाएं खोजते रहते हैं।

यह ख्याल आपको भगवान को खोजते वक्त ही आया, कि भाग्य, या पहले भी कभी आया?

असल में जिसकी खोज से बचना है, उसको हम भाग्य पर छोड़ देते हैं। और जिसे खोजना ही है, उसे हम अपने हाथ में रखते हैं। मगर इसमें ऐसा भी लगता है कि हम तो खोजना चाहते हैं, लेकिन भाग्य में ही न हो, तो क्या कर सकते हैं!

एक तरफ राजी हो जाएं। और पूरी तरह राजी हो जाएं। और कोई तरकीबें न निकालें। तो परमात्मा को खोजना भी जरूरी नहीं है।

भाग्य परमात्मा को खोजने की गहरी व्यवस्था है। शायद आपने इस तरह न सोचा होगा। भाग्यवाद का भाग्य से कोई संबंध नहीं है। भाग्यवाद का संबंध परमात्मा की खोज की एक विधि से है। इसलिए जो लोग कहते हैं कि सच में भाग्य है या नहीं, वे लोग समझ ही नहीं पा रहे हैं। यह तो एक डिवाइस है, यह तो एक उपाय है परमात्मा की खोज का। यह तो जगत में परम शांति पाने की एक विधि है।

जो व्यक्ति सब कुछ भाग्य पर छोड़ देता है, उसे आप अशांत नहीं कर सकते। भाग्य सच में है या नहीं, यह सवाल ही नहीं है। यह असंगत है बात। यह तो सिर्फ एक उपाय है कि जो व्यक्ति सब कुछ भाग्य पर छोड़ देता है, उसने सब कुछ पा लिया। उससे कुछ भी छीना नहीं जा सकता। उसकी शांति परम हो जाएगी। उसका आनंद अखंड हो जाएगा। और अगर भगवान है, तो भगवान उसे मिल जाएगा। जो भी है, वह उसे उपलब्ध हो जाएगा। क्योंकि अनुपलब्धि की भाषा ही उसने छोड़ दी है। और अगर भगवान उसे न भी मिले, तो भी उसे बेचैनी नहीं होगी। यह मजा है। उसे कोई बेचैनी ही नहीं है। वह कहेगा कि जो भाग्य में है, वह होगा।

लेकिन यह बात बड़ी गहरी है। आप यह मत समझना कि आप भाग्यवादी हैं, क्योंकि आप चौरस्ते पर बैठे हुए किसी ज्योतिषी को हाथ दिखाते हैं। इसलिए आप भाग्यवादी हैं, यह आप मत सोचना। अगर भाग्यवादी ही होते, तो चौरस्ते के ज्योतिषी पर जो चार आने लेकर आपका भाग्य देखता है, उस पर आपका भरोसा नहीं हो सकता।

भाग्यवादी का हाथ तो परमात्मा देख रहा है। उसको बीच के दलालों की जरूरत नहीं है। और चार आने में यह दलाल क्या बताएगा? कितना बताएगा? और आपको पता नहीं है कि यह भी बेचारा दूसरे ज्योतिषी को हाथ दिखाता है!

मैंने सुना है कि दो ज्योतिषी पास ही पास रहते थे। सुबह जब अपने धंधे पर निकलते थे, तो एक-दूसरे से पूछते थे, मेरे बाबत आज क्या ख्याल है? आज कैसा धंधा रहेगा?

एक ज्योतिषी एक बार मेरे पास आया। एक मित्र ले आए थे। ज्योतिषी बहुत कीमती था। और एक हजार एक रुपया लेकर ही हाथ देखते था। मेरे मित्र पीछे पड़े थे कि हाथ दिखाना ही है। एक हजार एक रुपया वे दे देंगे। मैंने कहा कि अगर हाथ दिखाना है, तो रुपये मैं दूंगा। तुम्हें नहीं देने दूंगा।

हाथ मैंने दिखाया। हाथ देखकर उन्होंने बहुत-सी बातें कहीं। फिर वे रुपए की राह देखने लगे। लेकिन मैंने उनसे कहा कि आप इतना भी मेरे हाथ से न समझ सके कि यह आदमी रुपए नहीं देगा! आप इतनी मेहनत कर रहे हैं! अपना हाथ देखकर घर से निकले थे? सुबह ख्याल कर लिया करें कि कितना मिलेगा कि नहीं मिलेगा। ये तो नहीं मिलने वाले। ये आपके भाग्य में नहीं हैं।

वह आदमी रोने-धोने लगा कि पांच सौ भी दे दें। फिर सौ पर भी राजी हो गया, कि मैं इतनी दूर आया हूं! मैंने कहा, भाग्य इतनी आसानी से नहीं बदलता कि हजार से पांच सौ पर आ गया, सौ पर आ गया! भाग्य में तेरे है ही नहीं!

यह जो ज्योतिषी को हाथ दिखाने वाला आदमी है, यह भाग्यवादी नहीं है। भाग्यवादी पंडितों के पास नहीं जाएगा, तांत्रिकों के पास नहीं जाएगा। क्योंकि भाग्यवादी यह कह रहा है कि जो होने वाला है, वह होगा; उसमें बदलने का भी कोई उपाय नहीं है।

एक तांत्रिक कह रहा है कि यह मंत्र पूरा कर लो, यह पूजा करवा दो, यह पांच सौ रुपये खराब कर दो, ऐसा करो, तो भाग्य बदल जाएगा। जो बदल सकता है, वह भाग्य ही नहीं है। जो नहीं बदल सकता... ।

और ध्यान रहे, जो नहीं बदल सकता, उसको जानने का कोई उपाय नहीं हो सकता। क्योंकि जानने से भी बदलाहट शुरू हो जाती है। जानना भी एक बदलाहट है।

अगर आपको यह पता चल जाए कि कल सुबह आप मर जाएंगे, तो कल सुबह तक की जो जिंदगी बिना पता चलने में रहती, वही नहीं हो सकती पता चलने के बाद। फर्क हो जाएगा। वह जो बोध आपको आ गया कि मैं मर जाऊंगा कल सुबह, वह आपकी पूरी रात को बदल देगा। यह रात वैसी ही नहीं हो सकती अब, जैसी कि बिना पता चले आप सोए होते। अब आप सो नहीं सकते।

भाग्यवादी तो मानता है कि जो भी होगा, वह होगा। कुछ करने का उपाय नहीं है। करने वाले की कोई सामर्थ्य नहीं है। विराट की लीला है; मैं उसका एक अंग मात्र हूं। एक लहर हूं सागर पर। मेरा अपना कुछ होना नहीं है।

ऐसी समझ एक विधि है, एक उपाय है। ऐसी समझ में जो गहरा उतर जाता है, उसे फिर कुछ भी नहीं खोजना है। परमात्मा भी नहीं खोजना है। परमात्मा खुद उसे खोजता हुआ उसके पास चला आता है।

पर सोचकर! बाकी सब आप खोजें और परमात्मा आपको खोजे, ऐसा नहीं होगा। बाकी सब खोजना है, तो परमात्मा भी आपको ही खोजना पड़ेगा। कुछ भी नहीं खोजना है, तो वह आपको खोज लेगा।

अब हम सूत्र को लें।

इस प्रकार शांति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी है और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित और सुख-दुखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है तथा जो योग में युक्त हुआ योगी निरंतर लाभ-हानि में संतुष्ट है तथा मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

क्या है परमात्मा को प्रिय? यह प्रश्न हजारों-हजारों साल में हजारों बार पूछा गया है।

क्या है परमात्मा को प्रिय? क्योंकि जो उसे प्रिय है, वही हमारे लिए मार्ग है। क्या है उसे प्यारा? काश! हमें यही पता चल जाए, तो फिर हम उसके प्यारे हो सकते हैं। कैसा चाहता है वह हमें? कब हमें चाह सकेगा? कब हमें समझेगा कि हम योग्य हुए उसके आलिंगन के? तो उसकी क्या रुझान है? उसका क्या लगाव है? उसकी क्या पसंद है? उसकी क्या रुचि है? वह अगर हमें पता चल जाए, तो मार्ग का पता चल गया।

क्या है परमात्मा को प्रिय? इसमें बहुत बातें सोचने जैसी हैं।

इसका यह मतलब नहीं है कि जो उसे प्रिय है, उसके साथ वह पक्षपात करेगा; जो उसे अप्रिय है, उसके साथ वह भेद-भाव करेगा। इसका यह मतलब नहीं है। नहीं तो हमें यह भी ख्याल होता है कि जो उसका प्रिय है, उसके पाप भी माफ कर देगा, उसके गुनाह भी क्षमा हो जाएंगे। और जो उसे प्रिय नहीं है, वह पुण्य भी करे, तो पुरस्कार न पा सकेगा।

नहीं; ऐसा नहीं है। परमात्मा के प्रिय होने का अर्थ समझ लें। परमात्मा के प्रिय होने का अर्थ है, एक शाश्वत नियम, ऋत। जिसको लाओत्से ने ताओ कहा है। परमात्मा के प्रिय होने का इतना ही अर्थ है कि वह तो हमें हर क्षण उपलब्ध है, लेकिन जब हम एक खास ढंग में होते हैं, तब हम उसके लिए खुले होते हैं और वह हमारे भीतर प्रवेश कर जाता है। और जब हम उस खास ढंग में नहीं होते हैं, तो वह हमारे पास ही खड़ा अटका रह जाता है, क्योंकि हम अवरोध खड़ा करते हैं।

ऐसे ही जैसे सूरज निकला है और मैं अपनी आंख बंद किए खड़ा हूं। तो सूरज निकला रहे, मैं अंधेरे में खड़ा रहूंगा। और ठीक मेरी पलकों पर सूरज की किरणें नाचती रहेंगी। और प्रकाश इतने करीब था, एक पलक झपने की बात थी और मैं प्रकाश से भर जाता। लेकिन मैं आंख बंद किए हूं, तो मैं अंधेरे में खड़ा हूं।

सूरज को खुली आंखें प्रिय हैं, इसका मतलब समझ लेना। इसका कुल मतलब इतना है कि खुली आंख हो, तो सूरज प्रवेश कर पाता है। बंद आंख हो, तो सूरज प्रवेश नहीं कर पाता। और सूरज आक्रामक नहीं है कि जबरदस्ती आपकी आंख खोल दे। अनाक्रमक है।

प्रेम अनाक्रमक होगा ही। जबरदस्ती आपकी आंख भी खोली जा सकती है कि सूरज चोट करे और आपकी आंख खोल दे। लेकिन इस जगत में अस्तित्व की कोई भी व्यवस्था आक्रामक नहीं है। आपके लिए प्रतीक्षा करेगा। सूरज प्रतीक्षा करेगा कि खोलना जब आंख, तब प्रकाश भर जाएगा।

परमात्मा के लिए प्रिय होने का यही अर्थ है कि कुछ ढंग है व्यक्तित्व का, जब हम खुले होते हैं, रिसेप्टिव होते हैं, ग्राहक होते हैं और परमात्मा भीतर प्रवेश कर पाता है। और कुछ ढंग है व्यक्तित्व का, जब हम बंद होते

हैं, और सब तरफ से द्वार, दरवाजे, खिड़कियों पर ताले पड़े होते हैं, और परमात्मा बाहर-बाहर भटकता रहता है, हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाता।

कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं कि वह कौन-सा ढंग है जो परमात्मा को प्रिय है। कैसे तुम हो जाओ कि वह तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाएगा। समझें।

शांति को प्राप्त हुआ पुरुष!

अशांत चित्त में क्या होता है? अशांत चित्त अपने में ग्रसित होता है। आप रास्ते पर चलते लोगों को देखें। जितना अशांत आदमी होगा, उतना ही रास्ते पर बेहोश चलता हुआ दिखाई पड़ेगा। अनेक लोग खुद से बातचीत करते हुए चलते जाते हैं। होंठ हिल रहे हैं; हाथ हिला रहे हैं। किससे बात कर रहे हैं? कोई वहां है नहीं उनके साथ। खुद से ही, भीतर परेशान हैं। भीतर परेशानी की तरंगें चल रही हैं।

अगर आप भी दस मिनट बैठकर अपना लिख डालें, आपके मन में क्या चलता है, तो आप खुद ही घबड़ा जाएंगे कि यह क्या मेरे भीतर चल रहा है! लगेगा, मैं पागल हूं! आप, जो आपके भीतर चलता है, किसी को भी नहीं बताते। जिसको आप प्रेम करते हैं, उसको भी नहीं बताते जो आपके भीतर चलता है।

तो मनसविद कहते हैं कि अगर कोई आदमी अपने भीतर जो चलता है, सब बता दे, तो फिर दुनिया में मित्र खोजना मुश्किल है। आप सब दबाए हैं भीतर; बाहर तो कुछ-कुछ थोड़ी-सी झलक देते हैं। वह भी काफी दुखदायी हो जाती है। सम्हाले रहते हैं।

यह जो भीतर अशांति का तूफान चल रहा है, यह दीवाल है। इसके कारण आप परमात्मा से नहीं जुड़ पाते। आपके और परमात्मा के बीच में एक तूफान है अशांति का, विचार का, विक्षिप्तता का, पागलपन का। यह हट जाए।

कृष्ण कहते हैं, शांति को प्राप्त हुआ!

और शांति को वही प्राप्त होता है--या तो ध्यान से चले, विचारशून्य हो जाए; या प्रेम से चले और भक्तिपूर्ण हो जाए। या तो सारे विचार समाप्त हो जाएं या सारे विचार प्रेम में डूबकर प्रेममय हो जाएं और प्रेम ही रह जाए, विचार खो जाएं। या तो सब विचार पिघलकर प्रेम बन जाए और या सब विचार भाप बन जाएं, और भीतर शून्य, शांत अवस्था रह जाए।

जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित... ।

और जैसे ही कोई शांत होगा, द्वेष समाप्त हो जाता है। या उलटा भी समझ लें। जैसे ही द्वेष समाप्त होता है, शांत हो जाता है। जब तक आपका द्वेष है कहीं, तब तक आप शांत नहीं हो सकते। क्योंकि जिस से द्वेष है, वही कारण बनेगा आपके भीतर अशांति का।

स्वार्थरहित, सब का प्रेमी, हेतुरहित दयालु... ।

क्या है हमारी अशांति? स्वार्थ। चौबीस घंटे सोचते हैं अपनी ही भाषा में।

सुना है मैंने, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उस दिन उस गांव में एक आदमी की दाढ़ में दर्द था। और जिस रास्ते से लोग जीसस को ले जा रहे थे सूली चढ़ाने, उसी रास्ते पर उसका घर था। सारे गांव से वह परिचित था। लोग देखने जा रहे थे। सारे गांव में तहलका था कि जीसस को आज सूली लग रही है। जो भी गांव का आदमी वहां से निकलता--वह आदमी, आंख में उसके आंसू थे; पीड़ा से कराह रहा था; क्योंकि उसकी दाढ़ में दर्द था।

तो लोग उससे पूछते कि अरे, क्या तुम भी जीसस के प्रेमी हो? वह कहता, भाड़ में जाए जीसस; मेरी दाढ़ में दर्द है। पूरा गांव वहां से निकला। और हर आदमी ने पूछा कि अरे, कभी हमने सोचा नहीं था कि तुम भी, जीसस से तुम्हारा कोई लगाव है! वह कहता, कैसा जीसस! कहां की बातें कर रहे हो! मेरी दाढ़ में दर्द है; रातभर से सो नहीं सका।

जीसस को सूली लग रही है, वह जरा भी मूल्य नहीं है। उसकी दाढ़ में दर्द है, वह मूल्यवान है!

वियतनाम में हजारों लोग मरते रहे हैं, वह सवाल नहीं है। आपके पैर में जरा-सा कांटा लग जाए, वह मूल्यवान है। सारी जमीन पर कुछ होता रहे, आपकी जेब कट जाए, सब गड़बड़ हो गया!

हम जीते हैं, एक स्वार्थ का केंद्र बनाकर। और जितना ही यह स्वार्थ का केंद्र मजबूत होता है, उतनी ज्यादा अशांति होती है। अपने संबंध में जो जितना ज्यादा सोचता है, उतना परेशान होगा। जो अपने संबंध में जितना कम सोचता है, उतनी परेशानी क्षीण हो जाती है। जो इस विराट जगत को चारों तरफ देखता है--इसकी पीड़ा को, इसके सुख को, इसके दुख को--उसे मौका भी नहीं रह जाता यह सोचने का कि मेरे पैर में कांटा है। स्वार्थ की जो बुद्धि है, वह अशांति जन्माती है।

इसलिए कुछ, जैसे जीसस ने सेवा पर बहुत जोर दिया। वह इसी कारण दिया। इसलिए नहीं कि सेवा से दूसरे को लाभ होगा। वह तो होगा, पर वह गौण है। सेवा पर इसलिए जोर दिया कि उससे तू अपना ख्याल भूल सकेगा। और अगर खुद का ख्याल भूलता चला जाए, तो वह समर्पण बन जाता है।

तो कृष्ण कहते हैं, स्वार्थरहित जो व्यक्ति हो, वह परमात्मा के लिए खुला होता है। जो स्वार्थ से भरा हो, वह बंद होता है।

तो चौबीस घंटे में कुछ समय तो स्वार्थरहित होना सीखना चाहिए। फिर धीरे-धीरे उसका आनंद आने लगेगा। कभी स्वार्थरहित छोटा-मोटा कृत्य भी करके देखें। कभी किसी की तरफ यूं ही अकारण मुस्कुराकर देखें।

अकारण कोई मुस्कुराता तक नहीं। हालांकि मुस्कुराहट में कुछ खर्च नहीं होता। लेकिन आप तभी मुस्कुराते हैं, जब कोई मतलब हो। और जब आप मुस्कुराते हैं, तो दूसरा भी सावधान हो जाता है कि जरूर कोई मतलब है। क्योंकि कोई गैर-मतलब के मुस्कुराता भी नहीं है। कोई गैर-मतलब के किसी से राम-राम भी नहीं करता।

गांव में लोग करते थे, अब तो धीरे-धीरे बात समाप्त वहां भी होती जा रही है। गांव में कोई किसी से भी राम-राम कर लेता था अजनबी से भी। तो शहर का आदमी गांव जाए और कोई राम-राम करे, तो वह बहुत डरता है। क्योंकि जिससे जान-पहचान नहीं, वह राम-राम क्यों कर रहा है! जरूर कोई मतलब होगा। मतलब के बिना तो हम राम-राम भी नहीं करते; किसी को नमस्कार भी नहीं करते। करेंगे भी क्यों? जब कोई प्रयोजन होता है।

मैं एक यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। मेरे जो वाइस-चांसलर थे, नए-नए आए थे। तो मैं उनसे मिलने गया। जैसे ही मैं उनसे मिलने पहुंचा, उन्होंने मुझसे कहा, कैसे आए? तो मैंने कहा, जाता हूं। क्योंकि किसी काम से नहीं आया। सिर्फ राम-राम करने आया।

उन्होंने कहा, क्या मतलब! वे थोड़े हैरान हुए कि पढ़ा-लिखा लड़का, राम-राम करने! मैंने कहा, आप अजनबी आए हैं, नए-नए आए हैं। मैं आपके पड़ोस में ही हूं। पड़ोसी हैं। सिर्फ राम-राम करने आया। और अब कभी नहीं आऊंगा। क्योंकि मैंने यह नहीं सोचा था कि आप पूछेंगे, कैसे आए? इसका मतलब यह है कि आपके पास जो लोग आते हैं, काम से ही आते हैं, कोई गैर-काम नहीं आता। और आप भी जिनके पास जाते होंगे, काम

से ही जाते होंगे, गैर-काम नहीं जाते। तो आपकी जिंदगी फिजूल है। सिर्फ काम ही काम है या कुछ और भी है उसमें!

मैं तो चला गया कहकर; वे नाराज भी हुए होंगे, परेशान भी हुए होंगे, सोचते भी रहे होंगे। दूसरे दिन उन्होंने मुझे बुलवाया कि मैं रात सो नहीं सका। तुम्हारा क्या मतलब है? सच में मुझे ऐसा लगने लगा रात, उन्होंने मुझसे कहा, कि मैंने यह पूछकर ठीक नहीं किया कि कैसे आए?

मैंने भी कहा, कम से कम मुझे बैठ तो जाने देते। यह बात पीछे भी हो सकती थी। राम-राम तो पहले हो जाती। मुझे कुछ काम नहीं है और कभी आपसे कोई काम पड़ने का काम भी नहीं है। कोई प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन हम सोच ही नहीं सकते... ।

फिर तो उनसे मेरा काफी संबंध हो गया। लेकिन अब भी वे मुझे कभी मिलते हैं, तो वे कहते हैं, वह मैं पहला दिन नहीं भूल पाता, जिस दिन मैंने तुम से पूछ लिया कि कैसे आए? और तुमने कहा कि सिर्फ राम-राम करने आया; कुछ काम से नहीं आया। उस दिन से पहले मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि बेकाम कोई आएगा!

जिंदगी हमारी धंधे जैसी हो गई है। सब काम है। उसमें प्रेम, उसमें कुछ खेल, उसमें कुछ सहज--नहीं; कुछ भी नहीं है।

स्वार्थरहित का अर्थ है, जीवन के उत्सव में सम्मिलित, अकारण। कोई कारण नहीं है; खुश हो रहे हैं। और सदा अपने को केंद्र नहीं बनाए हुए हैं। सारी दुनिया को सदा अपने से नहीं सोच रहे हैं, कि मेरे लिए क्या होगा! मुझे क्या लाभ होगा! मुझे क्या हानि होगी! हर चीज के पीछे अपने को खड़ा नहीं कर रहे हैं।

चौबीस घंटे में अगर दो-चार घंटे भी ऐसे आपकी जिंदगी में आ जाएं, तो आप पाएंगे कि धर्म ने प्रवेश शुरू कर दिया। और आपकी जिंदगी में कहीं से परमात्मा आने लगा। कभी अकारण कुछ करें। और अपने को केंद्र बनाकर मत करें।

सब का प्रेमी, हेतुरहित दयालु... ।

दया तो हम करते हैं, लेकिन उसमें हेतु हो जाता है। और हेतु बड़े छिपे हुए हैं।

आप बाजार से निकलते हैं और एक भिखमंगा आपसे दो पैसे मांगता है। अगर आप अकेले हों और कोई न देख रहा हो, तो आप उसकी तरफ ध्यान नहीं देते। लेकिन अगर चार साथी साथ में हों, तो इज्जत का सवाल हो जाता है। अब दो पैसे के लिए मना करने में ऐसा लगता है कि लोग क्या सोचेंगे कि अरे, इतने कृपण! ऐसे कंजूस कि दो पैसे न दे सके?

भिखमंगा भी देखता है; अकेले में आपको नहीं छेड़ता। अकेले में आपसे निकालना मुश्किल है। चार आदमी देख रहे हों, भीड़ खड़ी हो, बाजार में हों, पकड़ लेता है पैर। आपको देना पड़ता है। भिखमंगे को नहीं, अपने अहंकार की वजह। हेतु है वहां, कि लोग देख लेंगे, तो समझेंगे कि चलो, दयावान है। देता है। या देते हैं कभी, तो उसके पीछे कोई पुण्य-अर्जन का ख्याल होता है। देते हैं कभी, तो उसके पीछे किसी भविष्य में, स्वर्ग में पुरस्कार मिलेगा, उसका ख्याल होता है।

लेकिन बिना किसी कारण, हेतुरहित दया, दूसरा दुखी है इसलिए! इसलिए नहीं कि आपको इससे कुछ मिलेगा। दूसरा दुखी है इसलिए, दूसरा परेशान है इसलिए अगर दें, तो दान घटित होता है। अगर आप किसी कारण से दे रहे हैं, जिसमें आपका ही कोई हित है... ।

मैं गया था एक कुंभ के मेले में। तो कुंभ के मेले में पंडित और पुजारी लोगों को समझाते हैं कि यहां दो; जितना दोगे, हजार गुना वहां, भगवान के वहां मिलेगा। हजार गुने के लोभ में कई नासमझ दे फंसते हैं। हजार

गुने के लोभ में! कि यहां एक पैसा दो, वहां हजार पैसा लो! यह तो धंधा साफ है। लेकिन देने के पीछे अगर लेने का कोई भी भाव हो, तो दान तो नष्ट हो गया; धंधा हो गया, सौदा हो गया।

कृष्ण कहते हैं, हेतुरहित दयालु अगर कोई हो, तो परमात्मा उसमें प्रवेश कर जाता है। वह परमात्मा को प्यारा है।

सब का प्रेमी... ।

प्रेम हम भी करते हैं। किसी को करते हैं, किसी को नहीं करते हैं। तो जिसको हम प्रेम करते हैं, उतना ही द्वार परमात्मा के लिए हमारी तरफ खुला है। वह बहुत संकीर्ण है। जितना बड़ा हमारा प्रेम होता है, उतना बड़ा द्वार खुला है। अगर हम सबको प्रेम करते हैं, तो सभी हमारे लिए द्वार हो गए, सभी से परमात्मा हममें प्रवेश कर सकता है।

लेकिन हम एक को भी प्रेम करते हैं, यह भी संदिग्ध है। सबको तो प्रेम करना दूर, एक को भी करते हैं, यह भी संदिग्ध है। उसमें भी हेतु है; उसमें भी प्रयोजन है। पत्नी पति को प्रेम कर रही है, क्योंकि वही सुरक्षा है, आर्थिक आधार है। पति पत्नी को प्रेम कर रहा है, क्योंकि वही उसकी कामवासना की तृप्ति है। लेकिन यह सब लेन-देन है। यह सब बाजार है। इसमें प्रेम कहीं है नहीं।

जब आप प्रेम भी कर रहे हैं और प्रयोजन आपका ही है कुछ, तो वह प्रेम परमात्मा के लिए द्वार नहीं बन सकता। इसीलिए हम कुछ को प्रेम करते हैं, जिनसे हमारा स्वार्थ होता है। जिनसे हमारा स्वार्थ नहीं होता, उनको हम प्रेम नहीं करते। जिनसे हमारे स्वार्थ में चोट पड़ती है, उनको हम घृणा करते हैं। मगर हमेशा केंद्र में मैं हूं। जिससे मेरा लाभ हो, उसे मैं प्रेम करता हूं; जिससे हानि हो, उसको घृणा करता हूं। जिससे कुछ भी न हो, उसके प्रति मैं तटस्थ हूं, उपेक्षा रखता हूं; उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

परमात्मा के लिए द्वार खोलने का अर्थ है, सब के प्रति। लेकिन सब के प्रति कब होगा? वह तभी हो सकता है, जब मुझे प्रेम में ही आनंद आने लगे, स्वार्थ में नहीं। इस बात को थोड़ा समझ लें।

जब मुझे प्रेम में ही आनंद आने लगे; प्रेम से क्या मिलता है, यह सवाल नहीं है। कोई पत्नी है, उससे मुझे कुछ मिलता है; कोई बेटा है, उससे मुझे कुछ मिलता है। कोई मां है, उससे मुझे कुछ मिलता है। कोई पिता है, कोई भाई है, कोई मित्र है, उनसे मुझे कुछ मिलता है। उन्हें मैं प्रेम करता हूं, क्योंकि उनसे मुझे कुछ मिलता है। अभी मुझे प्रेम का आनंद नहीं आया। अभी प्रेम भी एक साधन है, और कुछ मिलता है, उसमें मेरा आनंद है।

लेकिन प्रेम तो खुद ही अदभुत बात है। उससे कुछ मिलने का सवाल ही नहीं है। प्रेम अपने आप में काफी है। प्रेम इतना बड़ा आनंद है कि उससे आगे कुछ चाहने की जरूरत नहीं है।

जिस दिन मुझे यह समझ में आ जाए कि प्रेम ही आनंद है, और यह मेरा अनुभव बन जाए कि जब भी मैं प्रेम करता हूं, तभी आनंद घटित हो जाता है; आगे-पीछे लेने का कोई सवाल नहीं है। तो फिर मैं काहे को कंजूसी करूंगा कि इसको करूं और उसको न करूं? फिर तो मैं खुले हाथ, मुक्त-भाव से, जो भी मेरे निकट होगा, उसको ही प्रेम करूंगा। वृक्ष भी मेरे पास होगा, तो उसको भी प्रेम करूंगा, क्योंकि वह भी आनंद का अवसर क्यों छोड़ देना! एक पत्थर मेरे पास होगा, तो उसको भी प्रेम करूंगा, क्योंकि वह भी आनंद का अवसर क्यों छोड़ देना!

जिस दिन आपको प्रेम में ही रस का पता चल जाएगा, उस दिन आप जो भी है, जहां भी है, उसको ही प्रेम करेंगे। प्रेम आपकी श्वास बन जाएगी।

आप श्वास इसलिए नहीं लेते हैं कि उससे कुछ मिलेगा। श्वास जीवन है; उससे कुछ लेने का सवाल नहीं है। प्रेम और गहरी श्वास है, आत्मा की श्वास है; वह जीवन है। जिस दिन आपको यह समझ में आने लगेगा, उस दिन आप प्रेम को स्वार्थ से हटा देंगे। और प्रेम तब आपकी सहज चर्या बन जाएगी।

कृष्ण कहते हैं, प्रेमी सबका; ममता से रहित... ।

यह बड़ा उलटा लगेगा। क्योंकि हम तो समझते हैं, प्रेमी वही है, जो ममता से भरा हो। ममता प्रेम नहीं है। ममता और प्रेम में ऐसा ही फर्क है, जैसे कोई नदी बह रही हो, यह तो प्रेम है। और कोई नदी बंध जाए और डबरा बन जाए और बहना बंद हो जाए और सड़ने लगे, तो ममता है।

जहां प्रेम एक बहता हुआ झरना है; किसी पर रुकता नहीं, बहता चला जाता है। कहीं रुकता नहीं; कोई रुकावट खड़ी नहीं करता। यह नहीं कहता कि तुम पर ही प्रेम करूंगा; तुम्हें ही प्रेम करूंगा। अगर तुम नहीं हो, तो मैं मर जाऊंगा। अगर तुम नहीं हो, तो मेरी जिंदगी गई। तुम्हारे बिना सब असार है। बस, तुम ही मेरे सार हो। ऐसा जहां प्रेम डबरा बन जाता है, वहां प्रेम धारा न रही; वहां प्रेम में सड़ांध पैदा हो गई।

सड़ा हुआ प्रेम ममता है, रुका हुआ प्रेम ममता है। ममता से आदमी परमात्मा तक नहीं पहुंचता। ममता से तो डबरा बन गया। नदी सागर तक कैसे पहुंचेगी? वह तो यहीं रुक गई। उसकी तो गति ही बंद हो गई।

इसलिए कृष्ण तत्काल जोड़ते हैं, सब का प्रेमी, हेतुरहित दयालु, ममता से रहित... ।

प्रेम कहीं रुकता न हो; किसी पर न रुकता हो, बहता जाए; जो भी करीब आए, उसको नहला दे और बहता जाए। कहीं रुकता न हो, कहीं आग्रह न बनाता हो। और कहीं यह न कहता हो कि बस, यही मेरे प्रेम का आधार है।

ऐसा जो करेगा, वह दुख में पड़ेगा और ऐसा प्रेम भी बाधा बन जाएगा। इसलिए ममता का विरोध किया है। वह प्रेम का विरोध नहीं है। वह प्रेम बीमार हो गया, उस बीमार प्रेम का विरोध है।

ममता हटे और प्रेम बढ़े, तो आप परमात्मा की तरफ पहुंचेंगे। लेकिन हमें आसान है दो में से एक। अगर हम प्रेम करें, तो ममता में फंसते हैं। और अगर ममता से बचें, तो हम प्रेम से ही बच जाते हैं। ऐसी हमारी दिक्कत है। अगर किसी से कहो कि ममता मत करो, तो फिर वह प्रेम ही नहीं करता किसी को। क्योंकि वह डरता है कि किया प्रेम, कि कहीं ममता न बन जाए; तो वह प्रेम से रुक जाता है।

ममता से बचते हैं, तो प्रेम रुक जाता है। तब भी दरवाजा बंद हो गया। अगर प्रेम करते हैं, तो फौरन ममता बन जाती है। तो भी दरवाजा बंद हो गया। प्रेम हो और ममता न हो। नदी तो बहे और कहीं सरोवर न बने। इसको ख्याल में रखें।

बच्चे को प्रेम करें। आप अपने बेटे को प्रेम करें, इसमें कुछ भी हर्ज नहीं है। शुभ है। लेकिन वह प्रेम आपके ही बेटे पर समाप्त क्यों हो? वह और थोड़ा बहे। और भी पड़ोसियों के बेटे हैं, उनको भी छुए। क्यों रुके बेटे तक? और सच में अगर आप असली बाप हैं और आपने बेटे का प्रेम जाना है, तो आप चाहेंगे कि जितने बेटे बढ़ जाएं, उतना अच्छा। क्योंकि उतना प्रेम आपको आनंद देगा।

एक बेटा इतना आनंद देता है, अगर सारी जमीन के बेटे आपके बेटे हों, तो कितना आनंद होगा! एक मित्र जब इतना आनंद देता है, तो फिर क्यों कंजूसी कर रहे हैं! बढ़ने दें। सारी पृथ्वी मित्रता बन जाए, तो और गहरा आनंद होगा। अंतहीन आनंद होगा।

जब मनुष्यों को प्रेम करने से इतना आनंद मिलता, तो पशुओं को क्यों वंचित करना! फैलने दें। पौधों को क्यों वंचित करना! फैलने दें। जब प्रेम इतना आनंद देता है, तो रोकते क्यों हैं? उसे बढ़ने दें, उसे फैलने दें। उसे

सारी जमीन को, सारे अस्तित्व को घेर लेने दें। तो आप परमात्मा के लिए प्रिय हो जाएंगे। क्योंकि आप खुल जाएंगे सब तरफ से। आपका रंध्र-रंध्र खुल जाएगा। सब तरफ से प्रभु की किरणें प्रवेश कर सकती हैं।

अहंकार से रहित, सुख-दुखों की प्राप्ति में सम, क्षमावान, अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला। अहंकार से रहित... ।

जितना गहन होता है प्रेम, उतना अहंकार अपने आप शांत और शून्य हो जाता है। जितना कम होता है प्रेम, उतना अहंकार होता है ज्यादा। अहंकार और प्रेम विरोधी हैं। अगर प्रेम बढ़ता है, तो अहंकार पिघल जाता है।

लेकिन बहुत लोग पूछते हैं, एक मित्र ने आज भी पूछा है कि अहंकार से कैसे छुटकारा हो?

अहंकार से सीधे छुटकारा न होगा। आप प्रेम को बढ़ाएं। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ेगा, अहंकार विसर्जित होने लगेगा। क्योंकि जो शक्ति अहंकार बनती है, वही प्रेम बनती है। प्रेम और अहंकार में एक ही शक्ति काम करती है। इसलिए अगर आप बड़े अहंकारी हैं, तो निराश मत हों। आपके पास प्रेम की बड़ी क्षमता छिपी पड़ी है। दुखी मत हों; आपके पास बड़ा स्रोत है। यही ऊर्जा मुक्त हो जाए, तो प्रेम बन जाएगी।

लेकिन सीधा अहंकार से मत लड़ें। आप जो कुछ भी करेंगे सीधा, उससे अहंकार नहीं मिटेगा। आप तो प्रेम की तरफ फैलाव शुरू कर दें। कहीं से भी प्रेम को फैलाना शुरू करें। जिस तरफ लगाव जाता हो, उसी तरफ प्रेम को बहाएं। एक ही ख्याल रखें कि उसको रुकने मत दें। उसे बढ़ते जाने दें। उसकी सीमाएं जितनी विस्तीर्ण होने लगें, होने दें। यह विस्तीर्ण होती सीमा, एक दिन आप अचानक पाएंगे आपके अहंकार का घाव तिरोहित हो गया। आप प्रेम से भर गए हैं और मैं का कोई भाव नहीं रह गया है।

सुख-दुखों की प्राप्ति में सम... ।

सुख आता है, दुख भी आता है। लेकिन आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख के पीछे ही दुख छिपा होता है; उसका ही संगी-साथी है। और दोनों में तलाक का कोई भी उपाय नहीं है। दोनों सदा साथ हैं। उनका जोड़ा कभी छूटता नहीं। जब दुख आता है, तब उसके पीछे सुख छिपा रहता है। लेकिन हमारी आंखें संकीर्ण हैं। जो होता है, उसको ही हम देखते हैं। जो पीछे छिपा है, उसको नहीं देखते हैं।

जब आप खुश हो रहे हैं, तब अब की दफा ध्यान रखना, जब सुख आए, तब ध्यान रखना कि जरूर उसके पीछे उससे जुड़ा हुआ दुख आएगा। और आप घड़ी, दो घड़ी में ही पाएंगे कि दुख आ गया। और इस दुख की क्वालिटी वही होगी, जो आपने सुख भोगा था उसकी थी; वही गुणधर्म होगा।

हर दुख के पीछे उसका सुख है। और हर सुख के पीछे उसका दुख है। रुपए में जैसे दो पहलू होते हैं, ऐसे वे दो पहलू हैं।

मगर हम कभी ध्यान नहीं करते। हमने कभी निरीक्षण नहीं किया। नहीं तो आप यह पहचान जाएंगे कि हर सुख का अनिवार्य दुख है। हर दुख का अनिवार्य सुख है। और दोनों मिलते हैं, एक नहीं मिलता। अगर आप अपना दुख कम करना चाहते हैं, तो आपको अपना सुख कम करना पड़ेगा। अगर आप अपना सुख बढ़ाना चाहते हैं, आपको अपना दुख बढ़ाना पड़ेगा।

इसलिए एक बड़ी अदभुत घटना घटी है इस जमीन पर। अब हमें ख्याल में आती है। जमीन पर जितना सुख बढ़ता जाता है, उतना दुख भी बढ़ता जाता है। यह बड़े मजे की बात है।

विज्ञान ने सुख के बहुत उपाय किए हैं। और सुख निश्चित ही आदमी का बढ़ गया है। लेकिन आदमी जितना आज दुखी है, इतना कभी भी नहीं था। लोगों को लगता है, इसमें बड़ा कंट्राडिक्शन है, इसमें बड़ा विरोधाभास है। विज्ञान ने इतना सुख बढ़ा दिया, तो आदमी इतना दुखी क्यों है?

इसीलिए। इसमें विरोध नहीं है। जितना सुख बढ़ेगा, उसके ही अनुपात में दुख भी बढ़ेगा। वे साथ ही बढ़ेंगे।

एक गांव का आदमी कम दुखी है, क्योंकि कम सुखी भी है। एक आदिवासी कम दुखी है। यह तो हमको भी दिखाई पड़ता है कि कम दुखी है। लेकिन दूसरी बात भी आप ध्यान रखना, वह कम सुखी भी है। एक धनपति ज्यादा सुखी है, ज्यादा दुखी भी है। एक भिखमंगा कम सुखी है, कम दुखी भी है।

जिस मात्रा में सुख बढ़ता है, उसी मात्रा में दुख बढ़ता है। वह उसी के साथ-साथ है। वह उसी की छाया है। आप उससे भाग नहीं सकते। उससे आप बच नहीं सकते।

जिस दिन व्यक्ति को यह दिखाई पड़ जाता है कि सुख-दुख दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं, उस दिन वह समभावी हो जाता है। उस दिन वह कहता है कि अब इसमें सुख को चाहने और दुख से बचने की बात मूढ़तापूर्ण है।

यह तो ऐसे हुआ, जैसे मैं अपने प्रेमी को चाहता हूं और नहीं चाहता कि उसकी छाया उसके साथ मेरे पास आए। और छाया को देखकर मैं दुखी होता हूं। और मैं कहता हूं, छाया नहीं आनी चाहिए, सिर्फ प्रेमी आना चाहिए। वह प्रेमी के साथ उसकी छाया भी आती है। वह आएगी ही। अगर मैं छाया नहीं चाहता हूं, तो मुझे प्रेमी की चाह कम कर देनी पड़ेगी। और अगर मैं प्रेमी को चाहता हूं, तो मुझे छाया को भी चाहना शुरू कर देना पड़ेगा। बस, ये दो उपाय हैं।

दोनों ही अर्थों में बुद्धि सम हो जाती है। या तो सुख को भी मत चाहें, अगर दुख से बचना है। और अगर सुख को चाहना ही है, तो फिर दुख को भी उसी आधार पर चाह लें। और जिस दिन आप दोनों की चाह-अचाह में बराबर हो जाते हैं, उस दिन सम हो जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, जो सम है सुख-दुख की प्राप्ति में, वह प्रभु के लिए उपलब्ध हो जाता है।

क्षमावान, अपराध करने वाले को भी जो अभय देने वाला है।

क्षमा बड़ी कठिन है। क्यों इतनी कठिन है? किसी को भी आप क्षमा नहीं कर पाते हैं। क्या कारण है? क्योंकि आप अपने को नहीं जानते हैं, इसलिए क्षमा नहीं कर पाते।

कभी आप ख्याल करें अब, जिन-जिन चीजों पर आप दूसरों पर नाराज होते हैं, विचार किया आपने कि वे सब चीजें आपके भीतर भी छिपी पड़ी हैं! कोई क्रोध करता है, तो आप कहते हैं, बुरी बात है। लेकिन आपने सोचा कि क्रोध आपके भीतर भी पड़ा है! कोई चोरी करता है, तो आप कहते हैं, पाप! बड़ा शोरगुल मचाते हैं। लेकिन आपने सोचा कि चोर आपके भीतर भी मौजूद है! हो सकता है, इतना कुशल चोर हो कि आप भी नहीं पकड़ पाते। पुलिस वाले तो पकड़ ही नहीं पाते, आप भी नहीं पकड़ पाते। लेकिन क्या चोरी की वृत्ति भीतर मौजूद नहीं है?

हत्या कोई करता है। आप नाराज होते हैं। लेकिन क्या आपने कई बार हत्या नहीं करनी चाही? यह दूसरी बात है कि नहीं की। हजार कारण हो सकते हैं। सुविधा न रही हो, साहस न रहा हो, अनुकूल समय न रहा हो। लेकिन हत्या आपने करनी चाही है। चोरी आपने करनी चाही है।

ऐसा कौन-सा पाप है जो आपने नहीं करना चाहा है? किया हो, न किया हो, यह गौण बात है। और अगर जितने पाप जमीन पर हो रहे हैं, सब आप भी करना चाहे हैं, कर सकते थे, करने की संभावना है, तो इतना क्रोधित क्यों हो रहे हैं दूसरे पर?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं बड़ी उलटी बात। वे कहते हैं कि अगर कोई आदमी चोरी का बहुत ही विरोध करता हो, तो समझ लेना कि उसके भीतर काफी बड़ा चोर छिपा है। अगर कोई आदमी कामवासना का बहुत ही पागल की तरह विरोध करता हो, तो समझ लेना, उसके भीतर कामवासना छिपी है। क्यों? क्योंकि वह उस चीज का विरोध करके अपने को भी दबाने की कोशिश कर रहा है। चिल्लाता है दूसरे पर, नाराज होता है, तो उसको अपने को भी दबाने में सुविधा मिलती है।

जिस चीज का आप विरोध करते हैं बहुत, गौर से ख्याल करना, कहीं आपके भीतर अचेतन में वह दबी पड़ी है। इसीलिए इतना जोर से विरोध कर रहे हैं।

लेकिन जो व्यक्ति जितना आत्म-निरीक्षण करेगा, उतना ही क्षमावान हो जाएगा। क्योंकि वह पाएगा, ऐसा कोई पाप नहीं, जिसे मैं करने में समर्थ नहीं हूं। और ऐसी कोई भूल नहीं है, जो मुझसे न हो सके। तो दूसरे पर इतना नाराज होने की क्या बात है! दूसरा भी मेरे जैसा ही है। वह भी मेरा ही एक रूप है। जो मेरे भीतर छिपा है, वही उसके भीतर छिपा है।

तो क्षमा का भाव पैदा होता है। क्षमा का मतलब यह नहीं है कि आप बड़े महान हैं, इसलिए दूसरे को क्षमा कर दें। वह क्षमा थोथी है। वह तो अहंकार का ही हिस्सा है।

ठीक क्षमा का अर्थ है कि आप पाते हैं कि सारी मनुष्यता आप में है। और मनुष्य जो करने में समर्थ है, वह आप भी समर्थ हैं। मनुष्य जिस नरक तक जा सकता है, आप भी जा सकते हैं। एक बात। इससे क्षमा आती है।

और दूसरी बात, कि आप जिस ऊंचाई तक पहुंच सकते हैं, दूसरा मनुष्य भी उसी ऊंचाई तक पहुंच सकता है। दूसरी बात। निकृष्टतम भी आपके भीतर छिपा है, यह बोध; और श्रेष्ठतम भी दूसरे के भीतर छिपा है, यह बोध; आपके जीवन में क्षमा का जन्म हो जाएगा।

अभी हम उलटा कर रहे हैं। अभी श्रेष्ठतम हम मानते हैं हमारे भीतर है, और निकृष्टतम सदा दूसरे के भीतर है। दूसरे का जो बुरा पहलू है, वह देखते हैं। और खुद का जो भला पहलू है, वह देखते हैं। इससे बड़ी तकलीफ होती है। इससे बड़ी अस्तव्यस्तता फैल जाती है। दोनों देखें।

और जिस नरक में आप दूसरे को देख रहे हैं, उसमें आप भी खड़े हैं कहीं। और जिस स्वर्ग में आप सोचते हैं कि आप हो सकते हैं, या हैं, उसमें दूसरा भी हो सकता है। तब आपके जीवन में क्षमा का भाव आ जाएगा। और यह क्षमा सहज होगी। इससे कोई अहंकार निर्मित नहीं होगा कि मैंने क्षमा किया।

तथा जो योग में युक्त हुआ योगी निरंतर लाभ-हानि में संतुष्ट, मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

परमात्मा को जो प्रिय है, वही उस तक पहुंचने का द्वार है। ये गुण विकसित करें, अगर उसे खोजना है। इन गुणों में गहरे उतरें, अगर चाहना है कि कभी उससे मिलन हो जाए। सीधे परमात्मा की भी फिक्र न की, तो भी हल हो जाएगा। अगर इतने गुण आ गए, तो परमात्मा उपलब्ध हो जाएगा।

एक मित्र ने पूछा है कि अगर हम ठीक जीवन ही जीए चले जाएं, तो क्या परमात्मा से मिलना न होगा?

बिल्कुल हो जाएगा। लेकिन ठीक जीवन! ठीक जीवन का अर्थ ही धर्म है। और ये जितनी विधियां बताई जा रही हैं, ये ठीक जीवन के लिए ही हैं।

उन मित्र ने पूछा है कि धर्म की क्या जरूरत है, अगर हम ठीक जीवन जीएं?

ठीक जीवन बिना धर्म के होता ही नहीं। ठीक जीवन का अर्थ ही धार्मिक जीवन है। शब्दों का ही फासला है। कोई हर्ज नहीं, ठीक जीवन कहें या धार्मिक जीवन कहें। लेकिन ठीक जीवन का क्या अर्थ है?

ये जो गुण कृष्ण ने बताए, ये हैं ठीक जीवन। अहंकारशून्यता, सहज सबके प्रति प्रेम अकारण, क्षमा, एकाग्र चित्त--ये घटनाएं अगर बिना ईश्वर के भी घट जाएं... ।

घटी हैं। महावीर ईश्वर को नहीं मानते हैं। बुद्ध तो आत्मा तक को नहीं मानते हैं। लेकिन महावीर भगवत्ता को उपलब्ध हो गए। जो भगवान को नहीं मानते हैं, उनको लोगों ने भगवान कहा। बुद्ध आत्मा-परमात्मा को कुछ भी नहीं मानते। और बुद्ध जैसा पवित्र, और बुद्ध जैसा खिला हुआ फूल पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ है।

ठीक जीवन पर्याप्त है। लेकिन ठीक जीवन का अर्थ यही है। ठीक जीवन ही तो प्रभु के लिए खुलना है। ठीक जीवन के प्रति ही तो उसका प्रेम है। गैर-ठीक जीवन में हम पीठ किए खड़े होते हैं। ठीक जीवन में हमारा मुंह ईश्वर की तरफ उन्मुख हो जाता है।

उन्मुख हो जाना उसकी तरफ ठीक जीवन है। या ठीक जीवन हो जाए, तो उन्मुखता आ जाती है। अभी हम जैसे हैं, वह विमुखता है।

पांच मिनट रुकें। कोई बीच से उठे न। कीर्तन पूरा करके जाएं।

आठवां प्रवचन

उद्वेगरहित अहंशून्य भक्त

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।। 15।।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। 16।।

तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिकों से रहित है, वह भक्त मेरे को प्रिय है।

और जो पुरुष आकांक्षा से रहित तथा बाहर-भीतर से शुद्ध और दक्ष है अर्थात जिस काम के लिए आया था, उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरंभों का त्यागी मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, भगवान को पाने के लिए इतना कठिन, लंबा और कष्टमय मार्ग क्यों है? उसे पाने के लिए सुगम, सरल और आनंदमय मार्ग क्यों नहीं है?

मार्ग कष्टमय जरा भी नहीं है। और न ही कठिन है। मार्ग तो अति सुगम है, सरल है, और आनंदपूर्ण है। लेकिन हम जैसे हैं, उसके कारण कठिनाई पैदा होती है। कठिनाई मार्ग के कारण पैदा नहीं होती। कठिनाई हमारे कारण पैदा होती है। और अगर प्रभु का रास्ता लगता है कि अति कष्टों से भरा है, तो रास्ता कष्टों से भरा है इसलिए नहीं, हम जिन बीमारियों से भरे हैं, उनको छोड़ने में कष्ट होता है।

अड़चन हमारी है। जटिलता हमारी है। रास्ता तो बिल्कुल सुगम है। आप अगर सरल हो जाएं, तो रास्ता बिल्कुल सरल है। आप अगर जटिल हैं, तो रास्ता बिल्कुल जटिल है। क्योंकि आप ही हैं रास्ता। आपको अपने से ही गुजरकर पहुंचना है। और आपको पहुंचना है, इसलिए आपको बदलना भी होगा।

अब जैसे एक आदमी चोर है, तो चोरी छोड़े बिना एक इंच भी वह प्रार्थना के मार्ग पर न बढ़ सकेगा। लेकिन चोरी में रस है। चोरी का अभ्यास है। चोरी का लाभ दिखाई पड़ता है, तो छोड़ना मुश्किल मालूम होता है।

और परमात्मा तो दूर का लाभ है; चोरी का लाभ अभी और यहीं दिखाई पड़ता है। और परमात्मा है भी या नहीं, यह भी संदेह बना रहता है। चोरी में जो लाभ खो जाएगा, वह प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है; और परमात्मा में जो आनंद मिलेगा, वह बहुत दूर की कल्पना मालूम पड़ती है, सपना मालूम पड़ता है।

तो चोरी छोड़नी कठिन हो जाती है, हिंसा छोड़नी कठिन हो जाती है, क्रोध छोड़ना कठिन हो जाता है। परमात्मा के कारण ये कठिनाइयां नहीं हैं। ये कठिनाइयां हमारे कारण हैं।

अगर आप सरल हो जाएं, तो रास्ता ही नहीं बचता। इतनी भी कठिनाई नहीं रह जाती कि रास्ते को पार करना हो। अगर आप सरल हो जाएं, तो आप पाते हैं कि परमात्मा सदा से आपके पास ही मौजूद था; आपकी कठिनाई के कारण दिखाई नहीं पड़ता था।

रास्ता होगा, तो थोड़ा तो कठिन होगा ही। चलना पड़ेगा। लेकिन इतना भी फासला नहीं है मनुष्य में और परमात्मा में कि चलने की जरूरत हो। लेकिन हम बड़े जटिल हैं, बड़े उलझे हुए हैं।

मैंने सुना है कि एक आदमी भागा हुआ चला जा रहा था एक राजधानी के पास। राह के किनारे बैठे एक आदमी से उसने पूछा कि मैं राजधानी जाना चाहता हूं, कितनी दूर होगी? तो उस आदमी ने कहा, इसके पहले कि मैं जवाब दूं, दो सवाल तुमसे पूछने जरूरी हैं। पहला तो यह कि तुम जिस तरफ जा रहे हो, अगर इसी तरफ तुम्हें राजधानी तक पहुंचना है, तो जितनी जमीन की परिधि है, उतनी ही दूर होगी, क्योंकि राजधानी पीछे छूट गई है। अगर तुम इसी तरफ खोजने का इरादा रखते हो, तो पूरी जमीन घूमकर जब तुम लौटोगे, तो राजधानी आ पाएगी। अगर तुम लौटने को तैयार हो, तो राजधानी बिल्कुल तुम्हारे पीछे है।

तो एक तो यह पूछना चाहता हूं कि किस तरफ जाकर राजधानी खोजनी है? और दूसरा यह पूछना चाहता हूं कि किस चाल से खोजनी है? क्योंकि दूरी चाल पर निर्भर करेगी। अगर चींटी की चाल चलना हो, तो पीछे की राजधानी भी बहुत दूर है। तो तुम्हारी चाल और तुम्हारी दिशा, इस पर राजधानी की दूरी निर्भर करेगी।

परमात्मा कितना दूर है, यह आप पर निर्भर करेगा कि आप किस दिशा में खोज रहे हैं, और इस पर निर्भर करेगा कि आपकी गति क्या है। अगर आप गलत दिशा में खोज रहे हैं, तो बहुत कठिन है। और हम सब गलत दिशा में खोज रहे हैं।

मजा तो यह है कि यहां नास्तिक भी परमात्मा को ही खोज रहा है। परमात्मा का अर्थ है परम आनंद को, अंतिम जीवन के अर्थ को, प्रयोजन को, सार्थकता को, क्या है अभिप्राय जीवन का, इसको नास्तिक भी खोज रहा है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो परमात्मा को न खोज रहा हो।

हां, कोई गलत रास्ते पर खोज रहा हो, गलत दिशा में खोज रहा हो, यह हो सकता है। लेकिन परमात्मा को खोज ही न रहा हो, यह नहीं हो सकता। हो सकता है, अपनी खोज को वह परमात्मा का नाम भी न देता हो। लेकिन सभी खोज उसी के लिए है। आनंद की खोज, अभिप्राय की खोज, अर्थ की खोज, उसकी ही खोज है। अपनी खोज उसकी ही खोज है। अस्तित्व की खोज उसकी ही खोज है। नाम हम क्या देते हैं, यह हम पर निर्भर है।

लेकिन आप सूरज को खोजने चल सकते हैं और सूरज की तरफ पीठ करके चल सकते हैं। तो आप हजारों मील चलते रहेंगे और सूरज दिखाई नहीं पड़ेगा। और एक मजे की बात है कि आप हजारों मील चल चुके हों, और आप पीठ फेर लें, उलटे खड़े हो जाएं, तो सूरज अभी आपको दिखाई पड़ जाएगा।

इससे एक बात ख्याल में ले लें। अगर सूरज की तरफ पीठ करके आप हजार मील चले गए हैं, तो आप यह मत समझना कि जब सूरज की तरफ मुंह करके आप हजार मील चलेंगे, तब सूरज दिखाई पड़ेगा। सूरज तो इसी वक्त मुंह फेरते ही दिखाई पड़ जाएगा।

तो परमात्मा से आप कितने दूर चले गए हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप पीठ फेरने को राजी हों, तो इसी वक्त परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा। उसके बीच और आपके बीच दूरी वास्तविक नहीं है, केवल आपके पीठ के फेरने की है, सिर्फ दिशा की है। वह आपके साथ ही खड़ा है। वह आपके भीतर ही छिपा है।

तो पहली तो बात यह समझ लें कि कठिनाई रास्ते की नहीं है। इसलिए सरल रास्ते की खोज मत करें। सरल होने की खोज करें।

बहुत-से लोग सरल रास्ते की खोज में होते हैं। वे कहते हैं, कोई शार्टकट? उसमें वे बहुत धोखे में पड़ते हैं, क्योंकि परमात्मा तक पहुंचने का कोई शार्टकट रास्ता नहीं है। क्योंकि पीठ ही फेरनी है, अब इसमें और क्या शार्टकट होगा? अगर सिर्फ पीठ फेरनी है और परमात्मा सामने आ जाएगा, तो इससे संक्षिप्त अब और क्या करिएगा? इससे और संक्षिप्त नहीं हो सकता।

लेकिन हम खोज में रहते हैं संक्षिप्त रास्ते की। वह क्यों? वह हम इसलिए खोज में रहते हैं कि कोई ऐसा रास्ता मिल जाए, जो सरल हो। उसका मतलब क्या? उसका मतलब, जो मुझे न बदले।

जब हम पूछते हैं सरल रास्ता, तो हम यह पूछते हैं कि कुछ ऐसी बात बताओ कि जैसा मैं हूं, वैसा ही परमात्मा से मिलन हो जाए; मुझे कुछ भी न करना पड़े। सरल का मतलब है, परमात्मा मुफ्त में मिल जाए। मुझे कुछ भी छोड़ना, तोड़ना, बदलना न पड़े। मैं जैसा हूं, ऐसे को ही मिल जाए, यह आपकी आकांक्षा है भीतरी।

यह कभी भी नहीं होगा। अगर यह होने वाला होता, तो बहुत पहले हो गया होता। आप बहुत जन्मों से यह कर रहे हैं। यह कोई आपकी नई तलाश नहीं है। काफी, लाखों साल की तलाश है। और भूल उसमें वही है कि आप सरल रास्ता खोजते हैं, सरल व्यक्तित्व नहीं खोजते। आप सरल हो जाएं, रास्ता सरल है। और इसकी फिक्र में लगें कि मैं कैसे सरल हो जाऊं।

और जीवन-क्रांति की कोई भी प्रक्रिया शार्टकट नहीं होती। क्योंकि जो हमने अपने को उलटा करने के लिए किया है, उतना तो करना ही पड़ेगा सीधा होने के लिए। इसलिए वह बात ही छोड़ दें सरल की, और ध्यान करें अपनी जटिलता पर।

आपकी जटिलता को समझने की कोशिश करें और आपकी जटिलता कैसे खुलेगी, एक-एक गांठ, उसको खोलने की कोशिश करें। जैसे-जैसे आप खुलते जाएंगे, आप पाएंगे कि परमात्मा आपके लिए खुलता जा रहा है। इधर भीतर आप खुलते हैं, उधर बाहर परमात्मा खुलने लगता है। जिस दिन आप भीतर बिल्कुल खुल गए होते हैं, परमात्मा सामने होता है।

बुद्ध ने कहा है... । जब उन्हें ज्ञान हुआ, और किसी ने पूछा कि आपको क्या मिला है? तो बुद्ध ने कहा, मुझे मिला कुछ भी नहीं है। सिर्फ उसको ही जान लिया है, जो सदा से मिला हुआ था। कोई नई चीज मुझे नहीं मिल गई है। मगर जो मेरे पास ही थी और मुझे दिखाई नहीं पड़ती थी, उसका ही दर्शन हो गया है।

तो बुद्ध ने कहा है कि यह मत पूछो कि मुझे क्या मिला। ज्यादा अच्छा हो कि मुझसे पूछो कि क्या खोया। क्योंकि मैंने खोया जरूर है कुछ, पाया कुछ भी नहीं है। खोया है मैंने अपना अज्ञान। खोई है मैंने अपनी नासमझी, खोई है मैंने गलत चलने की दिशा और गलत ढंग। खोया है मैंने गलत जीवन। पाया है, कहना ठीक नहीं, क्योंकि जो पाया है, वह था ही। अब जानकर मैं कहता हूं कि यह तो सदा से मेरे पास था। सिर्फ मैं गलत था, इसलिए इससे मेरी पहचान नहीं हो पाती थी। जो मेरे भीतर ही छिपा था, उस तक भी मैं नहीं पहुंच पाता था, क्योंकि मैं कहीं और उसे खोज रहा था।

सूफी फकीर औरत हुई है, राबिया। एक दिन लोगों ने देखा कि वह रास्ते पर सांझ के अंधेरे में कुछ खोजती है। तो लोगों ने पूछा, क्या खोजती है? तो उसने कहा, मेरी सुई खो गई है। तो दूसरे लोग भी खोजने में लग गए कि बूढ़ी की सुई मिल जाए। तब एक आदमी को ख्याल आया कि सूरज ढलता जाता है, अंधेरा होता

जाता है। तो उस आदमी ने कहा कि तेरी सुई बड़ी छोटी चीज है और रास्ता बड़ा है। आखिर खोई कहां है? ठीक जगह कहां गिरी है, तो हम खोज भी लें; नहीं तो सूरज ढल रहा है।

तो राबिया ने कहा, यह सवाल ही मत उठाओ, क्योंकि सुई तो मेरे घर में गिरी है, घर के भीतर गिरी है। तो वे सारे लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा, पागल औरत, अगर घर के भीतर सुई गिरी है, तो यहां बाहर क्यों खोजती है? तो उसने कहा, घर में प्रकाश नहीं है, बाहर प्रकाश है। और बिना प्रकाश के खोजूं कैसे? इसलिए यहां खोजती हूं।

आप भी खोज रहे हैं, लेकिन आपको इसका भी ख्याल नहीं है कि खोया कहां है। और जब तक इसका ठीक पता न हो कि परमात्मा को खोया कहां है; खोया भी है या नहीं; या खोया है, तो भीतर या बाहर; तब तक खोज आपकी भटकन ही होगी।

लेकिन आप भी राबिया की तरह हैं। राबिया भी उन लोगों से मजाक कर रही थी। और जब वे सब हंसने लगे और कहने लगे, पागल औरत, जब घर के भीतर सुई खोई है, तो वहीं खोज। और अगर प्रकाश नहीं है, तो प्रकाश वहां ले जा, बजाय इसके कि प्रकाश में खोज। क्योंकि जब उसे खोया ही नहीं, तो प्रकाश पैदा तो नहीं कर देगा! प्रकाश तो केवल बता सकता है, जो मौजूद हो। तो तू प्रकाश भीतर ले जा।

तो राबिया ने कहा कि तुम सब मुझ पर हंसते हो, लेकिन मैं तो दुनिया की रीत से चल रही थी। मैंने सभी लोगों को बाहर खोजते देखा है। और बाहर खोया किसी ने भी नहीं है। मैंने सोचा कि यही उचित है, दुनिया की रीत से ही चलना।

आप कहां खोज रहे हैं? आनंद कहां खोज रहे हैं आप? कोई धन में खोज रहा है; कोई मित्र में, कोई प्रेम में, कोई यश में, कोई प्रतिष्ठा में। वह सारी खोज बाहर है। लेकिन आपको पक्का है कि आपने आनंद कभी बाहर खोया है? और आप आनंद क्यों खोज रहे हैं, अगर आपको आनंद का पहले कोई पता ही नहीं है तो?

यह जरा सोचने जैसी बात है। उस चीज की खोज नहीं हो सकती, जिसका हमें कोई पूर्व-अनुभव न हो। खोजेंगे कैसे?

सबको लगता है कि आनंद नहीं है। इससे एक बात तो साफ है, आपको किसी न किसी गहराई के तल पर यह पता है कि आनंद क्या है। नहीं तो आनंद नहीं है, यह कैसे कहते हैं आप? दुख है, यह कैसे कहते हैं? क्योंकि जिसने कभी अंधेरा न देखा हो, वह प्रकाश को भी नहीं जान सकता। और जिसने कभी प्रकाश न देखा हो, वह यह भी नहीं पहचान सकता कि यह अंधेरा है। अंधेरे की पहचान के लिए प्रकाश का अनुभव चाहिए।

अगर आपको लगता है, यह दुख है, तो आपको कुछ न कुछ आनंद की खबर है। तभी तो आप सोच पाते हैं कि यह वैसा नहीं है, जैसा होना चाहिए। आनंद नहीं है, पीड़ा है, दुख है।

सभी को दुख का अनुभव होता है। इससे अध्यात्म की एक मौलिक धारणा पैदा होती है और वह यह कि सभी को जाने-अनजाने आनंद का अनुभव है। शायद आपको भी पता नहीं है, लेकिन आपके प्राणों की गहराई में आनंद की कोई प्रतीति है अभी भी। उसी से आप तौलते हैं, और पाते हैं कि नहीं, अनुकूल नहीं है, और उसी को आप खोज रहे हैं।

जो आपकी गहराइयों में छिपा है, उसको ही आप खोज रहे हैं। लेकिन खोज रहे हैं बाहर। जहां वह छिपा है, वहां नहीं खोज रहे हैं। लेकिन बाहर खोजने का कारण वही है, जो राबिया का था। वह कारण यही है कि आंखें बाहर खुलती हैं। इसलिए रोशनी बाहर है। हाथ बाहर फैलते हैं, कान बाहर सुनते हैं; सारी इंद्रियां बाहर खुलती हैं। इंद्रियों का प्रकाश बाहर पड़ता है, इसलिए हम बाहर खोज रहे हैं।

हम भीतर हैं और इंद्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं। इसलिए इंद्रियों के द्वारा जो भी खोज है, वह आपको कहीं भी न ले जाएगी। इंद्रियां बाहर की तरफ जाती हैं और आप भीतर की तरफ हैं। आप इंद्रियों के पीछे छिपे हैं। आपकी संपदा पीछे छिपी है, और इंद्रियां बाहर जाती हैं। इंद्रियों का उपयोग यही है। इंद्रियां संसार से जुड़ने का मार्ग हैं। इसलिए बाहर की तरफ जाती हैं।

भीतर तो आंखों की जरूरत ही नहीं है, क्योंकि भीतर तो बिना आंखों के देखा जा सकता है। भीतर कान की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि बिना कान के भीतर सुना जा सकता है। भीतर हाथों की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि बिना हाथों के भीतर स्पर्श हो जाता है। इसलिए इंद्रियों की भीतर की तरफ कोई जरूरत नहीं है। भीतर का सब अनुभव अतींद्रिय है, इंद्रिय के बिना हो जाता है।

इंद्रियों की जरूरत संसार के लिए है। वे इंस्ट्रूमेंट्स हैं, साधन हैं, संसार से जुड़ने के। तो जितना संसार से जुड़ना हो, उतनी सबल इंद्रिय चाहिए।

वैज्ञानिक कहते हैं कि विज्ञान की सारी खोज इंद्रियों को सबल बनाने से ज्यादा नहीं है। आपकी आंख देख सकती है थोड़ी दूर तक। दूरबीन है, वह मीलों तक देख सकती है। फिर और बड़ी दूरबीनें हैं, वे आकाश के तारों को देख सकती हैं। लेकिन आप कर क्या रहे हैं? जो तारा खाली आंख से दिखाई नहीं पड़ता, वह दूरबीन से दिखाई पड़ जाता है। क्योंकि दूरबीन बड़ा सबल यंत्र है। दूर तक उसका सेतु बन जाता है। दूर तक उसका संबंध बन जाता है। खाली आंख से उतना संबंध नहीं बनता।

कान से आप सुनते हैं। रेडियो भी सुनता है, लेकिन वह काफी दूर की बात पकड़ लेता है। आंख से आप देखते हैं। टेलीविजन भी देखता है, लेकिन वह काफी दूर की बात पकड़ लेता है। सारी वैज्ञानिक खोजें इंद्रियों का परिष्कार हैं। विज्ञान का जगत इंद्रियों का जगत है। सारा संसार इंद्रियों से जुड़ा हुआ है।

लेकिन इससे एक उपद्रव पैदा होता है कि आप परमात्मा को भी खोजने इन्हीं इंद्रियों के रास्ते से चले जाते हैं। यह गलती वैसे ही है, जैसे कोई आदमी आंखों से संगीत सुनने की कोशिश करने लगे। आंखें देख सकती हैं, सुन नहीं सकतीं। और कितनी ही सबल आंख हो, तो भी नहीं सुन सकती। सुनने का काम आंख से नहीं हो सकता। सुनने का काम कान से होगा। और कान अगर देखने की कोशिश करने लगे, तो फिर मुसीबत होगी, पागलपन पैदा होगा।

इंद्रियां बाहर का मार्ग हैं, उनसे भीतर की खोज नहीं हो सकती। इंद्रियां पदार्थ से जोड़ देती हैं, उनका परमात्मा से जुड़ना नहीं हो सकता। यह उनकी सीमा है। जैसे आंख देखती है, यह उसकी सीमा है। इसमें कोई कसूर नहीं है।

इंद्रियां बाह्य ज्ञान के साधन हैं। और वह जो छिपा है, वह जो आप हैं, वह भीतर है। उसे खोजना हो, तो इंद्रियों के द्वार बंद करके भीतर डूब जाना होगा। इंद्रियों के सेतु छोड़ देने होंगे। इंद्रियों के रास्तों से लौटकर अपने भीतर ही खड़े हो जाना होगा।

इस भीतर खड़े हो जाने का नाम अध्यात्म है। और भीतर जो खड़ा हो जाता है, वह पाता है कि जिसे मैंने कभी न खोया था, उसे मैं खोज रहा था। जिससे मेरा कभी बिछुड़ना न हुआ था, उसके मिलन के लिए मैं परेशान हो रहा था। जो सदा ही पास था, उसे मैं दूर-दूर तलाश रहा था। और दूर-दूर तलाशने की वजह से उसे नहीं पा रहा था। नहीं पा रहा था, तो और परेशान हो रहा था। और परेशान हो रहा था, तो और दूर खोज रहा था। ऐसे खोज एक विशियस सर्किल, एक दुष्टचक्र बन जाती है।

सरल है बहुत, क्योंकि परमात्मा आपके इतने निकट है कि उसे निकट कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि निकटता में भी थोड़ी-सी दूरी होती है। परमात्मा आपकी श्वास-श्वास में है, रोएं-रोएं में है। ठीक से समझें तो आप परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

एक मित्र ने और पूछा है। उन्होंने पूछा है कि अगर हम परमात्मा ही हैं, तो फिर जानने की क्या जरूरत है?

ये अगर सच में ही पता चल गया है कि आप परमात्मा हैं, तब तो जानने की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर खतरनाक है। पूछते हैं कि अगर हम परमात्मा ही हैं... । वह अगर ही मिटाने के लिए खोज की जरूरत है। वह जो यदि लगा हुआ है, वही तो उपद्रव है।

उन मित्र ने यह भी पूछा है कि परमात्मा को पा लेने से ही क्या होगा, जब वह मिला ही हुआ है?

कुछ भी नहीं होगा, सिर्फ खोज मिट जाएगी। और खोज मिटते ही पीड़ा मिट जाती है, दौड़ मिट जाती है। और जब तक उसे नहीं पा लिया है, खोज जारी रहेगी।

एक और मित्र ने पूछा है कि अगर आदमी ही परमात्मा है, अगर उसके भीतर ही वह छिपा है, तो मिल क्यों नहीं जाता? अड़चन क्यों है?

अड़चन इसलिए है कि यह भी चेतना की सामर्थ्य है कि वह चाहे तो अपने को विस्मरण कर दे। और यह भी चेतना की सामर्थ्य है कि वह चाहे तो अपने को स्मरण कर ले। जरा जटिल है। चेतना का अर्थ ही होता है कि जिसे स्मरण और विस्मरण की शक्ति हो। और दोनों शक्तियां साथ होती हैं।

अगर कोई आदमी कहता है कि मुझे सिर्फ स्मरण की शक्ति है, विस्मरण की नहीं है, तो आप भरोसा मत करना। क्योंकि जो भूल नहीं सकता, वह याद भी नहीं कर सकता। भूलना और याद करना साथ-साथ है। वही याद कर सकता है, जो भूल भी सकता है। जो भूल सकता है, वही याद भी कर सकता है।

तो आप सोचते हैं कि आपके भीतर जो स्मृति की शक्ति है, मेमोरी की, वह विस्मरण पर खड़ी है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर कोई आदमी भूलना बंद कर दे, तो फिर याद करना उसी दिन बंद हो जाएगा।

थोड़ा सोचें, दिनभर में जितनी घटनाएं घटती हैं, अगर वे सब आपको याद रह जाएं, कुछ भी आप भूलें न। आपको पता है, कितनी घटती हैं? हिसाब मनोवैज्ञानिक लगाते हैं, तो कम से कम एक आदमी की इंद्रियों पर दस लाख संघात होते हैं चौबीस घंटे में, कम से कम। यह भी उस आदमी के, जो कुछ ज्यादा न कर रहा हो। ज्यादा करने वाले को तो और ज्यादा होंगे।

दस लाख स्मृतियां बनती हैं। अगर वे सब आपको याद रह जाएं, तो दूसरे दिन आपका पता भी न चलेगा कि कहां आप चले गए। आप पागल हो जाएंगे। अगर दस लाख याद रह जाएं, तो आपको यह भी याद न रहेगा कि आप कौन हैं! आपकी पत्नी कौन है! आपका घर कहां है! पता-ठिकाना क्या है! यह सब गड़बड़ हो जाएगा।

उस दस लाख में से दस भी याद नहीं रह जाती हैं। सब भूल जाते हैं। इसलिए आपकी स्मृति काम कर पाती है। इसलिए आपको पता रहता है कि आप कौन हैं। घर-ठिकाना कहां है। सांझ दफ्तर से ठीक अपने ही घर पहुंच जाते हैं। फिर नहीं पहुंच सकेंगे घर, जो भी दिनभर में घटा है, वह सब याद रह जाए तो।

वह जो विस्मरण है, उसके कारण स्मृति काम करती है। यह जो विरोध है अस्तित्व का, इसे समझ लें।

अस्तित्व ध्रुवीयता से, पोलेरिटी से चलता है। यहां अगर धन विद्युत चाहिए, तो ऋण विद्युत के बिना नहीं हो सकती। यहां अगर पुरुष चाहिए, तो स्त्री के बिना नहीं हो सकता। यहां स्त्री चाहिए, तो पुरुष के बिना नहीं हो सकती। यहां दिन चाहिए, तो रात होगी। और जन्म चाहिए, तो मौत होगी। यहां विपरीत मौजूद रहेगा। और विपरीत से ही सारी व्यवस्था है।

चेतना स्मरण कर सकती है, क्योंकि विस्मरण कर सकती है। यह चेतना का गुण है। वह आपकी चेतना चाहे तो स्मरण कर सकती है कि कौन है। जिस दिन स्मरण करेगी, उस दिन परमात्मा हो जाएगी। और चाहे तो विस्मरण कर सकती है। जब विस्मरण कर दे, तो संसार का एक साधारण हिस्सा हो जाएगी। केवल बात इतनी है कि आपको कैसे पुनर्स्मरण आ जाए।

लेकिन, पूछा है एक और मित्र ने कि आखिर इस खेल की परमात्मा को जरूरत क्या है?

लेकिन, पूछा है एक और मित्र ने कि आखिर इस खेल की परमात्मा को जरूरत क्या है?

यह कोई परमात्मा आपको खेल खिला रहा है, ऐसा नहीं है। आप ही खेल रहे हैं। यह हमारी धारणा में ऐसा बैठा हुआ है कि कोई ऊपर परमात्मा बैठा है, और वह आपको खिला रहा है। ऐसा अगर कोई परमात्मा हो, जो आपको यह खेल खिला रहा है, तो उसकी हालत शैतान से भी बदतर होगी। आपको नाहक सता रहा है!

यह तो ऐसा हुआ, जैसा कि छोटे बच्चे मेंढक को सता रहे हैं; पत्थर मार रहे हैं। क्योंकि वे खेल खेल रहे हैं और मेंढक की जान जा रही है। आप नाहक परेशान हो रहे हैं, कोई परमात्मा ऊपर बैठा हुआ खेल खेल रहा है! वह भी अब तक ऊब गया होता। इतना खेल हो चुका और सार तो कुछ इस खेल में से दिखाई पड़ता नहीं।

नहीं; यह धारणा ही गलत है कि कोई परमात्मा ऊपर बैठकर आपको खेल खिला रहा है। आप, परमात्मा खेल खेल रहे हैं। यह आपकी मौज है। इसे ठीक से समझ लें और गहरे उतर जाने दें। यह आपका ही निर्णय है कि आप अज्ञानी रहना चाहते हैं। इसे मैं गौर से कहता हूं, जोर देकर कहता हूं, क्योंकि इसके परिणाम हैं।

अगर यह किसी और का निर्णय है कि आप अज्ञानी हैं, तो फिर आप अपने निर्णय से ज्ञानी न हो सकेंगे। अगर कोई परमात्मा आपको अज्ञानी रखे हुए है, तो फिर उसकी ही मर्जी होगी, तब आप ज्ञानी हो जाएंगे। अगर कोई जाल आपको फंसाए चला रहा है, तो फिर आप बस के बाहर हैं। आप क्या करें?

यह आपका ही निर्णय है कि आप यह खेल खेल रहे हैं।

छोटे बच्चों को आपने खेल खेलते देखा है? लुकने-छिपने का खेल खेलते हैं। खुद की ही आंखें बंद करके बच्चा खड़ा हो जाता है, ताकि दूसरे छिप जाएं और फिर वह उन्हें खोज सके।

आप खुद ही अपने से छिप रहे हैं और खोज रहे हैं। यह आपकी मौज है। और जिस दिन आप इससे ऊब जाएंगे, खेल खतम करना आपके हाथ में है। जब तक आप कहते हैं कि मैं खतम तो करना चाहता हूं, लेकिन खतम होता नहीं है, तब तक समझना कि आप बेईमानी की बात कह रहे हैं।

आज तक ऐसा कभी हुआ नहीं कि किसी ने खतम करना चाहा हो और खेल चला हो। जो खतम करना चाहता है, उसी वक्त खतम हो जाता है। क्योंकि आपका ही निर्णय खेल का आधार है।

लेकिन आपकी तरकीब ऐसी है कि आप खेलना भी चाहते हैं, और खतम करने का मजा भी लेना चाहते हैं। खेलने का भी मजा, खतम करने का भी मजा। संसार का भी सुख, और परमात्मा का भी आनंद। संसार का भी धन, और निर्वाण का भी सुख! सब साथ लेना चाहते हैं। इसलिए आप उलझन में हैं।

आप अगर सच में ही समझ गए हैं कि यह जीवन दुख है, पीड़ा है, संताप है, नरक है, तो आप भीतर की तरफ लौटना शुरू हो ही जाएंगे। कोई आपको रोक न सकेगा।

बुद्ध घर से गए। उनका सारथि उन्हें छोड़ने गया था। सारथि बड़ा दुखी हो रहा था कि बुद्ध भी कैसा नासमझ है! कैसा नासमझ लड़का हुआ शुद्धोदन को। लोग जन्मों तक तड़पते हैं, तब कहीं ऐसे सम्राट के घर में जीवन मिलता है। ऐसे सुंदर महल, ऐसी सुंदर पत्नी, ऐसा सारा साज-सामान, सारा वैभव छोड़कर यह नासमझ लड़का भागा जा रहा है!

आखिरी, जब बुद्ध उतरने लगे और उन्होंने कहा कि अब रथ को तू वापस ले जा। तो उस बूढ़े सारथि ने कहा कि माना कि तुम मालिक हो और मैं नौकर, लेकिन यह क्षण ऐसा है कि चाहे अशिष्टता भले हो जाए, मुझे कुछ कहना चाहिए। तुम यह क्या कर रहे हो? महलों को छोड़कर जा रहे हो? सारी दुनिया महलों की तरफ आ रही है। सब की आकांक्षा यही है कि कैसे महल में पहुंच जाएं। और तुम महल छोड़कर जा रहे हो? क्या नासमझी कर रहे हो? मुझ ब.ूढे की बात पर ध्यान दो!

तो बुद्ध ने कहा कि जहां तुझे महल दिखाई पड़ते हैं, वहां मुझे आग की लपटों के सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। तो जिनको महल दिखाई पड़ रहे हैं, वे उस तरफ जा रहे हैं। मैं महलों में रहकर लपटें देखकर उस तरफ से हट रहा हूं। अगर महल होते, तो मैं भी रुक जाता। लेकिन महल वहां हैं नहीं।

वह बूढ़ा छन्ना रोने लगा; वह सारथि रोने लगा। उसकी आंख से आंसू झरने लगे। उसने कहा कि तुम यह क्या कह रहे हो? मेरी समझ में नहीं आता। तुम किसी भूल में तो नहीं पड़ गए हो? तुम किसी भ्रम में तो नहीं हो?

बुद्ध ने कहा कि भ्रम में वे लोग हैं, जो महल की तरफ जा रहे हैं। मैं उस जीवन की खोज के लिए निकला हूं अब, जिसमें आग की लपटें नहीं हैं। मैं उस शीतल जीवन की खोज में जा रहा हूं, जहां कोई लपट नहीं है।

मगर हम भी चाहते हैं कि ऐसा शीतल जीवन हो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, शांत हो मन! लेकिन उनकी सब आकांक्षाएं अशांति की हैं। उनकी सब आकांक्षाएं, जिनको वे तृप्त करना चाहते हैं, अशांति की हैं। और शांति भी चाहते हैं! और जिन आकांक्षाओं को परिपोषित करते हैं, उन सब से अशांति पैदा होती है। उनकी मनोदशा ऐसी है कि वे चाहते हैं, अगर शांति मिल जाए, तो शांति से ये सब मनोवासनाएं पूरी कर लें।

यह कंट्राडिक्शन है। यह नहीं हो सकता।

एक युवक मेरे पास आया। विश्वविद्यालय की किसी बड़ी परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा है। उसने मुझे कहा कि मन बड़ा अशांत है। और इसीलिए आपके पास आया हूं। धर्म की, ज्ञान की मुझे कोई जरूरत नहीं है। मुझे तो सिर्फ, अभी परीक्षा पास है, और जीवन दांव पर लगा है; मुझे प्रथम आना है। प्रथम श्रेणी में प्रथम आना है। आप कोई ऐसी तरकीब बता दें कि मेरा मन शांत हो जाए।

मैंने कहा, शांति तू किसलिए चाहता है? उसने कहा कि इसीलिए। अगर शांत हो जाऊं, तो यह प्रथम आने का काम पूरा हो जाए। अशांति में तो यह न हो सकेगा।

उसकी बात तर्कयुक्त है। इतना मन अशांत है, तो कैसे श्रम करूं प्रथम आने का! यह अशांति ही शक्ति खा रही है। इसलिए शांति की तलाश में है। लेकिन उसे पता नहीं कि अशांत क्यों है वह? अशांति इसीलिए है कि प्रथम आना चाहता है। वह जो महत्वाकांक्षा है, वही अशांति ला रही है।

अब बड़ी उपद्रव की बात है। वह चाहता है शांति, ताकि महत्वाकांक्षा पूरी हो सके। और महत्वाकांक्षा से ही अशांति पैदा हो रही है। अन्यथा अशांति का कोई कारण नहीं है।

क्या किया जाए इस युवक के लिए? कोई भी शांति का रास्ता कारगर नहीं होगा। क्योंकि अशांति के बीज तो भीतर गहरे में हैं, उन्हीं से अशांति पैदा हो रही है।

उससे मैंने कहा कि शांति की तू फिक्र छोड़। तू पहले मुझे यह बता कि अशांति क्यों हो रही है? क्योंकि अशांति का कारण हट जाए, तो तू शांत हो जाएगा।

उसने कहा, वह भी मेरी समझ में आता है। आपकी बात भी मेरी समझ में आती है कि अशांति का कारण यही है कि मैं प्रथम आना चाहता हूं। यही उपद्रव है मेरे मन में कि अगर प्रथम न आया, तो क्या होगा! उसी से पीड़ित हो रहा हूं। अगर मैं यही वासना छोड़ दूं प्रथम आने की, तो अशांति का और कोई कारण नहीं है।

तो फिर मैंने कहा, तू ठीक से तय कर ले। अगर महत्वाकांक्षा चाहिए, तो अशांत होने की हिम्मत चाहिए। मैं नहीं कहता कि तू महत्वाकांक्षा छोड़। फिर अशांति को स्वीकार कर। वह उसका हिस्सा है। और अगर शांति चाहिए, तो महत्वाकांक्षा को छोड़। फिर वह साहस कर। वह शांति का अनिवार्य हिस्सा है।

हमारी दुविधा यह है कि हम संसार और परमात्मा में दोनों में जो मिलता हो, दोनों चाहते हैं। अज्ञान में जो फायदा हो, वह भी चाहते हैं; और ज्ञान में जो फायदा हो, वह भी चाहते हैं। वे दोनों फायदे विपरीत हैं। एक होगा, तो दूसरा डूब जाएगा। दूसरा होगा, तो पहला डूब जाएगा। दोनों साथ नहीं हो सकते हैं।

हम पूरब-पश्चिम दोनों तरफ साथ-साथ चलने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए हम कहीं भी नहीं चल पाते। हम बीच में फंस गए हैं। एक टांग पूरब चली गई है; एक टांग पश्चिम चली गई है। हम बीच में अटके हैं और परेशान हो रहे हैं। और हम एक टांग न पूरब से वापस खींचते हैं, न पश्चिम से वापस खींचते हैं। और हमारा इरादा यह है कि इन दोनों नाव पर सवार होकर हम पहुंच जाएंगे दोनों किनारे पर।

डूबेंगे बुरी तरह। यह दो नावों पर सवार आदमी डूबेगा ही। और इसका डूबना बड़ा नारकीय होगा। मगर आपको दिखाई नहीं पड़ता कि आप कैसे दो नावों पर सवार हैं। इधर धन की दौड़ लगी हुई है, उधर शांति की भी तलाश है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, धन पर पकड़ छोड़ दो। धन पर पकड़ अगर छोड़ दें, तो फिर क्या होगा? अगर धन की पकड़ छोड़ दें, तो संसार में कैसे चलेगा?

मैंने कहा कि धन की पकड़ छोड़ दो। वे कहते हैं कि धन के बिना कैसे चलेगा? मैंने नहीं कहा कि धन के बिना चलाओ।

धन की जरूरत एक बात है; धन की पकड़ दूसरी बात है। धन की जरूरत तो पूरी हो जाती है; धन की पकड़ कभी पूरी नहीं होती। धन को जितना पकड़ो, उतनी पकड़ बढ़ती जाती है। धन की जरूरत तो पूरी हो सकती है। जरूरतें सब पूरी हो सकती हैं, पागलपन कोई भी पूरा नहीं हो सकता।

अमेरिका का अरबपति एंड्रू कारनेगी मरा। उसके पास दस अरब रुपए थे। मरते वक्त भी वह यह कहकर मरा है कि मैं असंतुष्ट मर रहा हूं, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपए छोड़ने के थे। दस अरब केवल! जैसे दस नए पैसे, ऐसे दस अरब केवल!

दस अरब रुपए भी पास में हों, तो भी पकड़ पूरी नहीं होती। एंड्रू कारनेगी करेगा क्या दस अरब रुपए का? कोई उपयोग नहीं है। उपयोग का समय तो बहुत पहले समाप्त हो गया। जो भी मिल सकता था रुपए से, वह बहुत पहले मिल चुका। अब दस अरब रुपए से कुछ भी नहीं पाया जा सकता। लेकिन अभी भी दौड़ पूरी नहीं हुई, पकड़ पूरी नहीं हुई।

धन की जरूरत एक बात है; धन की पकड़ दूसरी बात है। धन की पकड़ है पागलपन।

फिर मैं नहीं कहता कि आप धन की पकड़ छोड़ दें। मैं तो तभी कहता हूं, जब आप कहते हैं, शांति चाहिए, आनंद चाहिए, परमात्मा चाहिए--तभी कहता हूं। नहीं तो मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं, खूब जोर से पकड़िए। आपकी मौज है। कौन आपसे छीन रहा है! और आप दुख चाहते हैं, तो मैं कौन हूं कि आपसे कहूं कि दुख मत चाहिए! मजे से चाहिए। आपको वही पसंद है, वही करिए। लेकिन फिर दूसरी बात मत पूछिए।

लेकिन हम बड़े उलटे हैं। यह उलझन ही हमारी जटिलता है। और इसलिए रास्ता सब गड़बड़ हो जाता है।

आप धन में आनंद पाते हैं, मजे से पकड़ते चले जाइए। अगर दुख पाते हैं, तो पकड़ छोड़िए। और ये दोहरी बातें एक साथ पूरी करने की कोशिश मत करिए, कि एक हाथ में धन को भी पकड़े रखेंगे और दूसरे हाथ में परमात्मा को भी पकड़ लेंगे! ये दोनों बातें आपसे नहीं हो सकेंगी, क्योंकि ये कभी किसी से नहीं हो सकी हैं।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप घर-द्वार छोड़कर भाग जाइए। धन की जरूरत है। लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि धन की जरूरत भी वही आदमी पूरा कर पाता है, जिस की धन पर पकड़ नहीं होती। नहीं तो आप सैकड़ों अमीर आदमियों को देखिए, उनसे गरीब आदमी खोजने मुश्किल हैं। धन पर उनकी इतनी पकड़ है कि वे खर्च ही नहीं कर पाते! धन का जो उपयोग है, वह भी नहीं कर पाते। कंजूस आपको दिखाई पड़ते हैं कि नहीं?

मैं एक कंजूस को जानता हूं। वे बीमार थे; मेरे घर के सामने रहते थे; रिटायर्ड डाक्टर थे। अकेले थे, न पत्नी, न बच्चा। शादी उन्होंने कभी की नहीं। कंजूस को शादी करनी नहीं चाहिए! वह महंगा खर्चा है। औरतें खर्चीली हैं। शादी उन्होंने की नहीं, उन्होंने मुझसे कहा कि शादी मैंने इसीलिए नहीं की कि औरतें फिजूलखर्ची हैं।

किराया आता था; दो बड़े बंगले थे। रिटायर हुए थे मिलिटरी से, डाक्टर थे, तो काफी पैसा इकट्ठा था।

एक दिन अचानक उनका पड़ोसी मेरे पास आया और उसने कहा कि डाक्टर बहुत बीमार हैं, आप जरा चलें। मैं गया तो उनका जबड़ा बंद था। वे बेहोश हालत में थे। मैंने पूछा कि क्या गड़बड़ है? फोन करके मैं डाक्टर को बुला लूं?

तो पता है आपको, उस मरते हुए डाक्टर ने मुझे क्या कहा? उसने हाथ से इशारा किया कि रुपए? रुपए मेरे पास नहीं हैं। रुपए कौन देगा? मुंह बंद हो गया था। आंखें खुली थीं। लेकिन हाथ से इशारा किया कि रुपए कौन देगा? मैंने कहा, रुपए का कोई इंतजाम करेंगे। तुम फिक्र न करो।

डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने कहा कि तत्क्षण अस्पताल ले जाना पड़ेगा। यह यहां ठीक होने वाला मामला नहीं है। तो उस मरते हुए डाक्टर ने मुझसे कहा कि पहले ताले में चाबी लगाकर मकान की चाबी मुझे दो। जब चाबी उसको दे दी, तब वह एंबुलेंस में सवार हुआ।

एंबुलेंस में बिठाकर अस्पताल पहुंचाया गया। दो घंटे बाद वे मर गए। मरने के बाद उसके कुर्ते के भीतर पांच हजार रुपए निकले। वह अपने पास ही रखे हुए था। और डाक्टर की पांच रुपए फीस देने के लिए उसने कहा कि... ।

इसको कहता हूं पकड़। अक्सर अमीर आदमी गरीब मर जाते हैं। अमीर होना जरा कठिन है। अमीर होना धन से संबंधित कम है। धन की पकड़ न हो, तो आदमी अमीर होता है।

दो तरह के गरीब हैं दुनिया में। एक, जिनके पास धन नहीं है। एक, जिनके पास धन की पकड़ है। ये दो तरह के गरीब लोग हैं दुनिया में। अमीर आदमी बहुत मुश्किल है पाना।

धन का उपयोग भी आप तभी कर पाते हैं, जब पकड़ न हो।

तो मैं नहीं कहता कि आप धन का उपयोग न करें। पकड़ मत रखें। धन साधन हो, साध्य न बन जाए। और आप धन के नौकर-चाकर न रह जाएं, कि उसी की हिफाजत कर रहे हैं, पहरा दे रहे हैं, इकट्ठा कर रहे हैं और मर जाएं। और मर रहे हैं। इसके सिवा आपका काम क्या है?

लेकिन एक बात ख्याल रख लें कि जिस दिशा में चलें, उस दिशा की तकलीफों को भी स्वीकार करें। हर दिशा की तकलीफ है। हर दिशा का आनंद है। दोनों आपको स्वीकार करने होंगे। इनमें से आप चाहें कि एक को बचा लें और दूसरे को छोड़ दें, तो आप जीवन के विज्ञान को नहीं समझते हैं।

एक और मित्र ने पूछा है कि यदि मनुष्य को अपनी सारी इच्छाएं ही छोड़नी हैं, तो फिर जीवन का लक्ष्य क्या है?

शायद उनका ख्याल हो कि इच्छाओं को पूरा करना ही जीवन का लक्ष्य है! इच्छाएं तो पूरी होती नहीं। कोई इच्छा पूरी नहीं होती। एक इच्छा पूरी होती है, तो दस को पैदा कर जाती है। अब तक किसी ने भी नहीं कहा है कि कोई इच्छा पूरी हो गई। पूरे होने के पहले ही नई संतति पैदा हो जाती है औरशृंखला शुरू हो जाती है।

जीवन का लक्ष्य इच्छाओं को पूरा करना नहीं है। जीवन का लक्ष्य इच्छाओं के बीच से इच्छारहितता को उपलब्ध हो जाना है। जीवन का लक्ष्य इच्छाओं से गुजरकर इच्छाओं के पार उठ जाना है। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति सभी इच्छाओं के पार उठ जाता है, वैसे ही उसे पता चलता है कि जीवन की परम धन्यता इच्छाओं में नहीं थी। इच्छाओं से तो तनाव पैदा होता था, खिंचाव पैदा होता था। इच्छाओं से तो मन दा.ैडता था, थकता था, गिरता था, परेशान होता था।

इच्छाशून्यता से प्राणों का मिलन अस्तित्व से हो जाता है। क्योंकि कोई दौड़ नहीं रह जाती, कोई भाग-दा.ैड नहीं रह जाती। जैसे झील शांत हो जाए और कोई लहरें न हों। तो उस शांत झील में जैसे चांद का प्रतिबिंब बन जाए, ऐसा ही जब इच्छाओं की कोई लहर नहीं होती और हृदय शांत झील हो जाता है, तो जीवन का जो परम रहस्य है, उसका प्रतिबिंब बनने लगता है। आप दर्पण हो जाते हैं। और जीवन का रहस्य आपके सामने खुल जाता है।

इच्छाओं के माध्यम से इच्छाशून्यता को उपलब्ध करना जीवन का लक्ष्य है।

लेकिन मैं कह रहा हूं इच्छाओं के माध्यम से, तो आप जल्दबाजी भी मत करना। परिपक्वता जरूरी है। इच्छाओं को पकने देना। और इच्छाओं से पूरे हृदयपूर्वक गुजरना, ताकि इच्छाओं का रहस्य समझ में आ जाए; उनकी व्यर्थता भी समझ में आ जाए; इच्छाओं की मूढ़ता भी समझ में आ जाए।

लेकिन एक बड़ी कठिनाई हो गई है। हम सब अधकचरे हो गए हैं। अधकचरे हो जाने का कारण यह है कि इसके पहले कि हमें किसी चीज का खुद अनुभव हो, दूसरों के अनुभव और दूसरे के वचन हमें कंठस्थ हो जाते हैं।

सुन लिया हमने कि इच्छाओं से मुक्त होना है। और हमने मान भी लिया कि इच्छाओं से मुक्त होना है। और अभी इच्छाओं की पीड़ा हमने अनुभव नहीं की।

तो हम इच्छाओं में पूरे उतर भी नहीं सकते, क्योंकि यह शिक्षा पीछे से खींचती है कि कहां जा रहे हो पाप में! इच्छाओं से तो बचना है। और यह शिक्षा कारगर भी नहीं होती, क्योंकि इच्छाओं से बचने का अनुभव हमारा अभी पैदा नहीं हुआ। बुद्ध को हुआ होगा। महावीर को हुआ होगा। हमको नहीं हुआ। उनका अनुभव हमारे क्या काम आएगा?

मुझे अनुभव होना चाहिए कि आग जलाती है। आप कहते हैं, आग जलाती है। मुझे कोई अनुभव नहीं है। तो मेरा हाथ खिंचता है आग की तरफ, क्योंकि मुझे लगता है, कितने प्यारे फूल खिल रहे हैं आग में, इन्हें पकड़ लूं। इन फूलों को सम्हाल लूं। इन फूलों को अपनी तिजोड़ी में बंद कर दूं। ये प्यारे फूल मुझे लग रहे हैं। मैंने दूर से इनको देखा है।

लेकिन जब मैं हाथ बढ़ाने लगता हूं, तो आपकी शिक्षा याद आती है कि हाथ मत बढ़ाना। जल जाओगे। हाथ जल जाएगा। आग जलाती है। यह शिक्षा मेरे हाथ को वहां तक भी नहीं पहुंचने देती, जहां मैं जल जाऊं। और यह शिक्षा मेरा अनुभव भी नहीं बनती। इसलिए हाथ बढ़ता ही रहता है और आग तक पहुंचता भी नहीं। बढ़ता भी है, पहुंचता भी नहीं है। ऐसे हम बीच में अटक जाते हैं। आपके सब अनुभव झूठे हो जाते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें पता है कि क्रोध बुरा है, फिर भी क्रोध होता है।

यह हो नहीं सकता। अगर पता हो जाए कि क्रोध बुरा है, तो क्रोध हो नहीं सकता। आपको पता ही नहीं। सुना है। लोग कहते हैं, क्रोध बुरा है। लोग कहते हैं, वह आपने सुन लिया है। उनका कहना आपका ज्ञान नहीं है।

आपको ही ज्ञान करना पड़ेगा।

तो मैं तो कहता हूं, ठीक से क्रोध करो, ताकि जल जाओ। और एक दफा ठीक से जल जाओ, तो दुबारा उस तरफ हाथ नहीं जाएगा।

लेकिन आप ठीक से क्रोध भी नहीं करते हैं। और जो आदमी ठीक से क्रोध नहीं किया है, वह ठीक से शांत नहीं हो सकता। उसकी शांति में भी क्रोध की वासना छिपी रहेगी।

लोग कहते हैं, ब्रह्मचर्य। और आपका मन खिंचता है कामवासना की तरफ। और जब कामवासना की तरफ जाने लगते हैं, तब सब ब्रह्मचारियों की शिक्षाएं याद आती हैं। तब मन में लगता है, यह क्या पाप कर रहा हूं? इस लगने के कारण कि क्या पाप कर रहा हूं, पाप भी ठीक से नहीं कर पाते। पाप का अनुभव भी नहीं हो पाता। अधकचरा रह जाता है सब।

पाप में जाते भी हैं, कर भी नहीं पाते। कोई पीछे खींचता रहता है। पीछे खिंच भी नहीं सकते पूरे, क्योंकि पाप का जब तक परिपक्व अनुभव न हो जाए, तब तक आप खिंच भी नहीं सकते, हट भी नहीं सकते। स्वानुभव के अतिरिक्त कोई जीवन-क्रांति नहीं है।

ठीक कहा होगा, जिन्होंने ब्रह्मचर्य को जाना है। ठीक कहा होगा। और जिस दिन आप जानेंगे, आप भी कहेंगे कि ब्रह्मचर्य अमृत है। और आप भी लोगों को समझाएंगे कि कहां उलझ रहे हो!

स्वभावतः, जब बाप अपने बेटे को देखता है आग की तरफ जाते, तो कहता है, ठहर! आग मत छू लेना। जल जाएगा। वह ठीक ही कहता है। गलत तो कहता नहीं। लेकिन इस बेटे को अनुभव होने दे। अगर बाप समझदार हो, तो बेटे को पकड़ेगा, आग के पास ले जाएगा, और कहेगा, थोड़ा हाथ बढ़ा, आग में डाल। फिर इस बेटे को किसी शास्त्र की जरूरत न रहेगी। फिर यह बेटा खुद ही उचककर खड़ा हो जाएगा, और बाप से कहेगा, यह क्या करते हो? हाथ जला दिया! अब यह बेटा कभी आग के पास न जाएगा।

जो होशियार बाप है, वह अपने ज्ञान को बेटे को नहीं देता; अपने ज्ञान के आधार पर बेटे को अनुभव का मौका देता है। इसे ठीक से समझ लें। इसमें फर्क है।

जो सदगुरु है, वह आपको ज्ञान नहीं देता। वह आपको अनुभव की सुविधा जुटाता है, सिर्फ सुविधा जुटाता है। ज्ञान तो आपको अपना ही होगा। वह केवल अनुभव की सुविधा जुटाता है, जहां आपको अनुभव हो जाए।

गुरजिएफ के पास लोग जाते थे--पश्चिम का एक बहुत कीमती गुरु--तो गुरजिएफ उनको कहता था, तुम अभी शांति की फिक्र छोड़ो; तुम ठीक से क्रोध कर लो। अधूरा क्रोध तुम्हें कभी शांत न होने देगा। तो वह कहता था, तुम जितना क्रोध कर सकते हो, पहले कर लो। तो वह कहता कि तीन महीने तुम्हें क्रोध की साधना के लिए। इस वक्त तुम्हें जो भी मौका मिले, तुम चूकना मत। और जो भी मौका मिले, तलाश में रहना। और जितना क्रोध कर सको, आग जितनी निकाल सको, जहर जितना फेंक सको, फेंकना।

तीन महीने भी बहुत हो जाते। तीन सप्ताह में भी साधक आकर कहता कि मैं थक गया बुरी तरह। और क्या मूढ़ता आप मुझसे करवा रहे हैं!

क्योंकि आपको पता है, अगर जानकर आप क्रोध करेंगे, तो बहुत जल्दी पता चलने लगेगा कि यह मूढ़ता है। लेकिन गुरजिएफ कहता, अभी जल्दी है। अभी तुम कच्चे हो। अभी तीन ही सप्ताह हुए। लोग जन्मों-जन्मों से क्रोध कर रहे हैं, अभी तक नहीं पके। तुम जरा रुको। तुम तीन महीने चलने ही दो। और गुरजिएफ दिए जाता धक्का। धीरे-धीरे साधक को मौका ही न मिलता।

एक महीने अगर आपने तलाश की, तो आपको मौके मिलने कठिन हो जाएंगे कि अब कहां क्रोध करें। और जब खुद आप कर रहे हों, तो आपको खुद ही लगता है कि फिर अब यह मूर्खता करने जा रहे हैं! और इसमें कुछ सार नहीं है सिवाय दुख के, पीड़ा के, परेशानी के। जहर फैलता है। खुद की हानि होती है, किसी को कोई लाभ होता नहीं।

तो फिर गुरजिएफ इंतजाम करता। किसी को कहता कि इस आदमी का अच्छी तरह अपमान करो। ऐसे मौके पर अपमान करो कि यह भूल ही जाए और आ जाए क्रोध में। वह इस तरह की डिवाइस रचता, इस तरह के उपाय करता, जिनमें आदमियों को परेशान करवाता।

अगर फिर भी वह आदमी न परेशान होता, दो महीने बीत गए, अब उपाय भी काम नहीं करते, तो गुरजिएफ शराब पिलाता, कि शायद शराब पीकर नशे में दबा हुआ कुछ निकल आए। शराब पिलाता, रात आधी रात तक शराब पिलाए चला जाता, और फिर उपद्रव खड़े करवाता।

जब तक सब उपाय से क्रोध को पूरा अनुभव न करवा देता, तब तक वह शांति का उपाय न बताता। और फिर शांति का उपाय बड़ा सरल है। क्योंकि जिसका क्रोध से उपद्रव छूट गया, उसको शांत होने के लिए उपाय नहीं करना पड़ता, वह शांत हो जाता है।

जीवन के अनुभव से बचिए मत; उतरिए। और जल्दी भी मत करिए; कोई जल्दी है भी नहीं। बहुत समय है जीवन के पास।

एक ही नुकसान है समय का, अधकचरे अनुभव आपको कहीं भी न ले जाएंगे। अगर मोक्ष चाहिए, तो संसार का परिपक्क अनुभव जरूरी है। और जल्दबाजी परमात्मा बिल्कुल पसंद नहीं करता। और आधे पके फल उसके राज्य में स्वीकृत नहीं हैं। वहां पूरा पका फल होना चाहिए।

आखिरी प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि अगर कोई व्यक्ति अपने को सब भांति परमात्मा में छोड़ दे, लीन कर दे, स्वीकार कर ले उसे, तो उसे परमात्मा मिल जाता है। क्या इसी तरह संसार की चीजें भी मिल सकती हैं?

भूलकर ऐसा मत करना; कुछ न मिलेगा!

संसार की चीजों को पाने के लिए उपाय करना जरूरी है, श्रम करना जरूरी है, चेष्टा करनी जरूरी है, अशांत होना जरूरी है, पागल होना जरूरी है। तो जो जितना पागल है, संसार में उतना सफल होता है।

अभी एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने एक वक्तव्य दिया है। और उसने कहा है कि दुनिया के जितने बड़े राजनेता हैं, इन सबका मानसिक अगर परीक्षण किया जाए, तो ये विक्षिप्त पाए जाएंगे, क्योंकि इनकी सफलता हो ही नहीं सकती, अगर ये बिल्कुल पागल न हों।

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि इंग्लैंड के बड़े राजनीतिज्ञ विंसटन चर्चिल की सफलता का कारण यह था कि विंसटन चर्चिल को किसी ज्योतिषी ने बचपन में बता दिया और फिर उसे यह वहम बैठ गया कि वह पैंतालीस साल से ज्यादा नहीं जीएगा। जिस दिन से उसको यह ख्याल आ गया कि पैंतालीस साल में मेरी मौत है, उस दिन से वह पागल की तरह कांपिटीशन में उतर गया, प्रतिस्पर्धा में। दूसरे लोग, जिनको सत्तर-अस्सी साल कम से कम ख्याल था जीने का, वे धीरे-धीरे चल रहे थे। विंसटन चर्चिल को तो तीस साल कम थे, उसको जल्दी चलना जरूरी था। वह बिल्कुल पागल की तरह चलने लगा।

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि विंसटन चर्चिल की सफलता का कुल कारण इतना था कि उसको यह ख्याल आ गया था कि मेरे पास तीस साल कम हैं। इसलिए मुझे बिल्कुल पूरी ताकत लगाकर पागल हो जाना चाहिए।

अभी हिटलर, विंसटन चर्चिल, स्टैलिन, इनके मनों के अध्ययन जो प्रकाशित हो रहे हैं, उनसे पता चलता है कि ये सब विक्षिप्त थे। लेकिन ये ही विक्षिप्त थे, ऐसा नहीं; दुनिया के सभी राजनीतिज्ञ सफल अगर हो सकते हैं, तो उनको विक्षिप्त होना जरूरी है। विक्षिप्त का मतलब है कि उन्हें, वह जो कर रहे हैं, उसके पीछे बिल्कुल पागल होना जरूरी है। उसमें समझदारी की जरूरत नहीं है। उसमें अंधी दौड़ की जरूरत है।

जो लोग बहुत धन इकट्ठा कर लेते हैं, उनको भी पागल होना जरूरी है। वहां रिलैक्सेशन से न चलेगा।

मित्र ने पूछा है कि क्या शांति से उपलब्धि हो जाएगी?

अगर शांति से संसार की उपलब्धि होती, तो फिर कोई अशांत होता ही नहीं। यह सारा संसार अशांत है इसलिए कि यहां की सब उपलब्धि अशांति से होती है। अशांति कीमत है, संसार की उपलब्धि करनी हो तो।

इसलिए बुद्धिमान आदमी मैं उसको कहता हूं कि अगर उसको संसार की उपलब्धि करनी है, तो अशांत होने के लिए तैयार है। फिर वह यह नहीं कहता कि मुझे शांति चाहिए।

एक मेरे मित्र हैं। कभी-कभी मिनिस्टर हो जाते हैं; कभी-कभी नहीं रह जाते। जब वे नहीं रह जाते, तब वे मेरे पास आते हैं। साधु-संतों के पास जाते ही तब मिनिस्टर हैं, जब वे मिनिस्टर नहीं रह जाते। भूतपूर्व मिनिस्टरों से ही मिलना होता है साधु-संतों का। जो होते हैं, उनसे नहीं होता। और भूतपूर्व इतने हैं मुल्क में कि कोई कमी नहीं है।

वे जब नहीं रह जाते, तो मेरे पास आते हैं। और कहते हैं, कोई शांति का उपाय? मैं उनको कहता हूं, लेकिन शांति की तुम्हें जरूरत कहां है? और अगर तुम शांत हो गए, तो फिर तुम दुबारा मिनिस्टर न हो सकोगे!

वे कहते हैं कि नहीं, कुछ ऐसा बताएं कि शांत भी हो जाऊं, और अभी तो चीफ मिनिस्टर होने की कोशिश है। अशांति नहीं चाहता; चीफ मिनिस्टरशिप चाहता हूं।

तो मैं उनको कहता हूं, आप किसी और के पास जाएं, जो आपको धोखा दे सकता हो। मैं धोखा नहीं दे सकता। मैं तो आपको यही कह सकता हूं, अगर चीफ मिनिस्टर होना है, तो कुशलता से अशांत हों, और अशांति को स्वीकार करें। वह हिस्सा है। रास्ते पर चलता है आदमी, धूल पड़ती है। वह पड़ेगी। उतनी धूल जरूरी है। चीफ मिनिस्टर होना है, तो थोड़े ज्यादा अशांत हों, क्योंकि अभी तो आप सिर्फ मिनिस्टर थे।

संसार में तो जो भी पाना हो, उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। स्वयं को बेचना पड़ेगा। स्वयं को नष्ट करना पड़ेगा। एक पैसा भी मुफ्त नहीं मिलता है। उतनी ही आत्मा खोती है, तब मिलता है। एक सफलता भी मुफ्त नहीं मिलती है, उतना ही अस्तित्व नष्ट होता है, तब मिलती है।

इसलिए जो बहुत सफल हो जाते हैं बाहर की दुनिया में, भीतर बिल्कुल खाली हो जाते हैं। भीतर उनके कुछ भी नहीं बचता। हिटलर के पास आत्मा जैसी कोई चीज नहीं बचती। बच नहीं सकती। अगर आत्मा बचानी हो, तो हिटलर जो कर रहा है, वह नहीं हो सकता।

धन का ढेर लगा लेना हो, तो फिर भीतर दरिद्र होना जरूरी है। भीतर की दरिद्रता आवश्यक है। क्योंकि उसी की कीमत पर मिलता है यह।

संसार में तो श्रम, विश्राम नहीं। संसार में तो अशांति, शांति नहीं। संसार में तो पुरुषार्थ, भाग्य नहीं।

लेकिन परमात्मा को पाने का रास्ता बिल्कुल उलटा है। होगा ही। क्योंकि परमात्मा की दिशा उलटी है। संसार में जाते हैं बाहर की तरफ; परमात्मा में जाते हैं भीतर की तरफ। उलटा हो जाएगा सब।

तो जिन-जिन कामों से संसार में सफलता मिलती है, उन्हीं-उन्हीं कामों से परमात्मा में असफलता मिलती है। इसे ठीक गणित की तरह समझ लें। और जिन कामों से परमात्मा में सहायता मिलती है, उन्हीं कामों से संसार में असफलता मिलती है। और दोनों में साथ-साथ सफलता नहीं मिलती है। नहीं मिल सकती है। नहीं मिलनी चाहिए।

अगर आप परमात्मा को पाने के लिए अशांत हो रहे हैं, तो फिर आपको परमात्मा न मिलेगा। आप परमात्मा को भी संसार की एक वस्तु की भांति समझ रहे हैं। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, उसे पाना हो, तो प्रयत्न भी छोड़ देना पड़ता है। उसे पाना हो, तो उसके पाने की वासना भी छोड़ देनी पड़ती है। उसे पाना हो,

तो उसको भी भूल जाना पड़ता है। क्योंकि फिर उसकी भी खटक बनी रहे कि अभी तक नहीं मिला, अभी तक नहीं मिला, तो उससे भी बेचैनी होती है।

बुद्ध के पास एक युवक आया, सारिपुत्र, फिर बाद में तो महाज्ञानी हुआ। सारिपुत्र जिस दिन आया, उसने बुद्ध से कहा कि मुझे भी तुम जैसा होना है। तो बुद्ध ने कहा, यह ख्याल छोड़, तो हो सकता है। अगर यह ख्याल पकड़ लिया, तो मुसीबत है। क्योंकि जब मैं हुआ मेरे जैसा, तो मुझे यह बिल्कुल ख्याल नहीं था, इसलिए हो पाया। तू यह ख्याल छोड़ दे कि तुझे बुद्ध जैसा होना है।

सारिपुत्र अनेक वर्ष मेहनत किया, लेकिन वह ख्याल नहीं छूटता था कि मुझे भी बुद्ध जैसा होना है। तो बुद्ध ने उसे एक दिन बुलाकर कहा कि सारिपुत्र, तू सब कर रहा है, सिर्फ एक चीज बाधा डाल रही है। यह वासना, कि तुझे मुझ जैसा होना है, यही तुझे मुझ जैसा नहीं होने दे रही है। तू यह वासना छोड़ दे।

और जिस दिन सारिपुत्र यह वासना भी छोड़ पाया, उसी दिन बुद्ध जैसा हो गया।

तो परमात्मा को पाने के लिए, ज्ञानी कहते हैं, प्रयत्न भी... । शुरू में तो प्रयत्न करना होता है, क्योंकि हमारी आदतें खराब हैं। बिना प्रयत्न के हम कुछ समझ ही नहीं सकते। लेकिन उसे भी छोड़ देना होता है। उसका लक्ष्य भी छोड़ देना होता है। वह न मिले, तो भी इतना ही प्रसन्न होना होता है, जितना कि वह मिल जाए तो। यह महत्वाकांक्षा भी छोड़ देनी होती है कि मैं ईश्वर को खोजकर रहूंगा।

और जिस दिन कोई महत्वाकांक्षा नहीं होती, कोई प्रयत्न नहीं होता, और चित्त बिल्कुल शांत और शिथिल होता है... । महत्वाकांक्षा नहीं है, तो अशांति होगी कैसे? कोई तनाव नहीं होता, कोई दौड़ नहीं होती। कहीं पहुंचना नहीं है, ऐसी स्वीकृति विश्राम है। ऐसी स्वीकृति में वह उपलब्ध हो जाता है।

संसार को पाना है, दौड़िए खूब, पागल होकर दौड़िए, शराब पीकर दौड़िए। परमात्मा को पाना है, तो दौड़िए ही मत। और सब तरह के नशे, सब तरह की महत्वाकांक्षाएं छोड़ दीजिए।

अगर संसार पाना है, तो जैसे नदी में कोई तैरता है उलटी धारा की तरफ, वैसे तैरिए। बड़ी ताकत लगानी पड़ेगी। तब भी जरूरी नहीं कि पहुंच जाएं, क्योंकि आप अकेले नहीं तैर रहे हैं। और लोग भी तैर रहे हैं। और लोग भी तैर ही नहीं रहे हैं, आप न पहुंच जाएं, इसमें भी बाधा डाल रहे हैं। और खुद पहुंच जाएं, इसका उपाय कर रहे हैं।

आप अकेले नहीं हैं संसार में। और भी उपद्रव आस-पास चल रहा है बड़ा। अगर साढ़े तीन, चार अरब आदमी हैं, तो हर एक आदमी के खिलाफ चार अरब आदमी काम कर रहे हैं। यहां पहुंचना इतना आसान भी नहीं है। इसमें जो बिल्कुल पागल होगा, जिद्दी होगा, हठी होगा, जो सुनेगा ही नहीं, देखेगा ही नहीं, अंधे की तरह दौड़ा चला जाएगा, वह ही शायद पहुंच पाए।

लेकिन अगर परमात्मा में जाना है, तो तैरने जैसा नहीं है, बहने जैसा है। नदी की धार में अपने को छोड़ दिया। तैरते भी नहीं; हाथ भी नहीं चलाते; नदी ले चली। श्वास-श्वास शांत हो गई, क्योंकि अब कुछ भी करना नहीं है आपको। नदी सब कर रही है; आप अपने को छोड़ दिए हैं।

परमात्मा की उपलब्धि होती है बहने में। संसार की उपलब्धि होती है तैरने में।

अब हम सूत्र को लें।

तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है तथा जो हर्ष और अमर्ष, भय व उद्वेगों से रहित है, वह भक्त मेरे को प्रिय है। और जो पुरुष

आकांक्षा से रहित है तथा बाहर-भीतर से शुद्ध है, दक्ष है और जिस काम के लिए आया था, उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरंभों का त्यागी मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

कृष्ण और भी लक्षण बताते हैं उसके, जो परमात्मा को प्रिय है अर्थात जो परमात्मा के निकट होता चला जाता है, समीप होता चला जाता है। ये गुण समीप लाने वाले गुण हैं। ये गुण परमात्मा की तरफ उन्मुख करने वाले गुण हैं।

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है... ।

यह जरा जटिल है। जिसके कारण किसी को कोई अशांति पैदा नहीं होती। पर इसे समझना पड़ेगा। क्योंकि ऐसे लोग मिल जाएंगे, जो कहेंगे, हमें कृष्ण के कारण अशांति हो रही है। ऐसे लोग मिल जाएंगे, जो कहेंगे कि हमें बुद्ध के कारण अशांति हो रही है।

ऐसे लोग थे। बुद्ध की हत्या करना चाहते थे। अब जो बुद्ध की हत्या करना चाहता होगा, निश्चित ही उसे अशांति उपलब्ध हो रही है। जिन्होंने जीसस को सूली पर लगाया, उनको परेशानी हो रही थी, तभी। तो क्या जीसस ईश्वर के प्यारे नहीं थे? तब तो कृष्ण भी दिक्कत में पड़ जाएंगे, क्योंकि कृष्ण से भी लोगों को अशांति हो रही है। वे भी कृष्ण को नष्ट करने के लिए पूरी कोशिश में लगे हैं।

पर यह सूत्र कहता है, तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है। इसका मतलब समझ लें।

जरूरी नहीं है कि बुद्ध से आप उद्वेग को प्राप्त न हों। बुद्ध के कारण ही जरूरी नहीं है; आपके कारण भी आप उद्वेग को प्राप्त हो सकते हैं। शर्त इतनी है कि बुद्ध अपनी तरफ से आपको उद्विग्न नहीं करते हैं। मगर आप हो सकते हैं। आप अगर अपने ही कारण हो रहे हैं, तो बुद्ध का कोई जिम्मा नहीं है। लेकिन बुद्ध आपको उद्विग्न करने की न तो कोई चेष्टा करते हैं, न उनका कोई रस है। न वे कारण बनते हैं अपनी तरफ से।

आप कारण न बनें किसी के उद्विग्न होने के, यह ध्यान रखना जरूरी है। फिर भी कोई उद्विग्न हो सकता है। क्योंकि उद्विग्न होने में आप अकेले ही भागीदार नहीं होते, होने वाला भी उतना ही भागीदार होता है।

मेरे एक परिचित हैं। अपने बेटे से वे हमेशा परेशान रहते हैं। तो मैंने उनके बेटे को कहा कि तेरे पिता जैसा चाहते हैं, तू वैसा ही कर। और कोई खास बात नहीं चाहते हैं, कर दे। इससे कोई तुझे नुकसान होने वाला नहीं है। उनको शांति होगी।

उनके बेटे ने मुझे कहा कि आपको पता नहीं है। इससे कोई फर्क ही नहीं पड़ता कि मैं क्या करता हूं। वे जो कहते हैं, वह भी करूं, उससे भी उद्विग्न होते हैं।

मैंने कहा, उदाहरण। तो उसने कहा कि जैसे अगर मैं काफी साफ-सुथरे कपड़े पहनूं, जो मुझे पसंद हैं, तो वे चार लोगों के सामने कहेंगे कि देखो, मैंने तो हड्डी तोड़-तोड़कर पैसा कमाया। शाहजादे को देखो! मुफ्त का है। मजा करो। कर लो मजा। जिस दिन मर जाऊंगा, उस दिन भूखे मरोगे।

अगर ऐसा न करो, साफ-सुथरे कपड़े न पहनो, तो भी वे खड़े होकर लोगों के सामने कहते हैं कि अच्छा! तो क्या मैं मर गया? जब मर जाऊं, तब इस हालत में घूमना। अभी तो मजा कर लो। यह हालत आएगी, ज्यादा देर नहीं है। लेकिन अभी से तो मत यह शक्ल लेकर घूमो। मेरे सामने यह शक्ल लेकर मत आओ।

तो उनके बेटे ने मुझे कहा कि बड़ी मुसीबत यह है कि वे जो कहते हैं, अगर उसको भी मानो, तो भी उद्विग्नता में कोई फर्क नहीं पड़ता।

मतलब यह हुआ कि कोई आदमी उद्विग्न होना ही चाहता है, तो कोई भी बहाना खोज सकता है। आप भी ख्याल करना कि जब आप उद्विग्न होते हैं, तो जरूरी नहीं है कि दूसरे ने कारण मौजूद ही किया हो; आप अपने से भी हो सकते हैं।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र उससे कह रहा था कि अच्छी मुसीबत में फंस गया मैं। ऐसी औरत मिल गई कि एक शब्द बोलो कि फंसे। कि फिर वह इस तरह की बातें शुरू कर देती है उस शब्द में से कि उनका कोई अंत ही नहीं आता!

मुल्ला ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। माइन इ.ज ए सेल्फ स्टार्टर। तुम्हें तो शब्द बोलना भी पड़ता है। एक मेरी औरत है! बोलने की जरूरत ही नहीं है। और वह शुरू कर देती है। चुप रहना भी खतरनाक है। क्यों चुप हो? जरूर कोई मतलब है!

ख्याल करना, जरूरी नहीं है कि दूसरा कारण उपस्थित कर रहा हो। सौ में निन्यानबे मौके पर तो आप कारण की तलाश कर रहे होते हैं। उसके भी कारण हैं।

दफ्तर में हैं; मालिक ने कुछ कह दिया। वहां प्रकट नहीं कर सकते। मालिक को जवाब देना मुश्किल है। वहां जरा महंगा सौदा है। नौकरी पर आ सकती है। मगर पी गए। वह पीया हुआ कहां जाएगा? उसको कहीं निकालना पड़ेगा।

आप घर पहुंचकर रास्ता खोज रहे हैं कि पत्नी रोटी जलाकर ले आए; कि चाय थोड़ी ठंडी ले आए। आपको पता भी नहीं है कि आप यह रास्ता देख रहे हैं। ऐसा नहीं कि आप यह सोच रहे हैं। यह अचेतन में है। लेकिन क्रोध की एक मात्रा आपके भीतर खड़ी है। वह रास्ता खोज रही है। मालिक की तरफ न बह सकी, क्योंकि वह जरा पहाड़ी की तरफ चढ़ाई थी। इधर पत्नी की तरफ बह सकती है, यह जरा खाई की तरफ उतार है।

आप किसी की तलाश में हैं, जिसकी तरफ आप बह सकें। आप कोई न कोई बहाना खोज लेंगे। और तब पत्नी चौंकेगी। क्योंकि इसी तरह की रोटी उसने कल भी खिलाई थी। और कल आप नाराज न हुए थे। और यही चाय वह सदा जिंदगी से पिला रही है। आज! उसकी समझ के बाहर है।

इसलिए कभी भी कोई किसी का क्रोध नहीं समझ पाता। क्योंकि क्रोध समझ के बाहर है। जरूरी नहीं है कि वह कारण हो। कारण कहीं और हो। न मालूम कहां हो। हजार कारण दूसरे रहे हों। सब का इकट्ठा मिलकर निकल रहा हो।

उसकी समझ के बाहर है। लेकिन पति परमात्मा है, ऐसा पतियों ने समझाया हुआ है। पतियों ने पत्नियों को समझाया है हजारों साल से कि पति परमात्मा है। यह बेचारे की उसकी अपनी सुरक्षा है। क्योंकि दुनियाभर में पिटकर आता है, अगर घर में भी परमात्मा न हो, तो जीवन अकारण जा रहा है। कहीं कोई उपाय होना चाहिए, जहां वह भी अकड़कर खड़ा हो जाए कि मैं परमात्मा हूं। कई लोग उस पर अकड़ते हैं।

तो पत्नी जो है, वह एक रिलीज है, वह एक सुविधा है। मगर औरतें उपद्रव खड़ा कर रही हैं अब दुनियाभर में। वे कहती हैं, यह हम न मानेंगे अब। इस मुल्क में तो अभी चलता है।

तो पत्नी भी इकट्ठा कर लेती है। पति पर प्रकट नहीं कर सकती। वह बेटे का रास्ता देखेगी, स्कूल से लौट आए। और बेटे को कुछ पता नहीं है। वे अपने मजे से चले आ रहे हैं, खेलते-कूदते। उन्हें पता नहीं है कि घर में क्या उपद्रव तैयार है।

घर में घुसते ही से मां टूट पड़ेगी। कोई भी बहाना खोज लेगी। बहाना ऐसा नहीं कि कोई जानकर खोज रही है। सब अचेतन है, अनकांशस है। यह कपड़ा कहां फट गया? यह स्लेट कैसे टूट गई? यह किताब कैसे फट गई?

वह लड़के की समझ में ही नहीं आएगा, क्योंकि यह तो रोज ही इसी तरह टूटती है और फटती है। पर उसकी समझ के बाहर है कि यह क्या हो रहा है। और वह बिल्कुल अनुभव करता है कि अन्याययुक्त है। लेकिन अन्याय की घोषणा और अन्याय के खिलाफ बगावत कहां करने जाए? एक ही रास्ता है कि मां उसको डांटे-पीटे, तो वह किताब को और फाड़ डाले, स्लेट को और तोड़ डाले, या कमरे में जाकर अपनी गुड़िया की टांग तोड़ दे और चीर-फाड़कर रख दे।

वह जो दफ्तर में पैदा हुआ था, गुड़िया फंसी उसमें। अब गुड़िया का क्या लेना-देना था आपके दफ्तर में बॉस ने क्या कहा था, उससे? लेकिन यह हो रहा है चौबीस घंटे।

इस सूत्र का अर्थ यह नहीं है कि आप शांत हो जाएंगे, तो आपके कारण कोई अशांत न होगा। इस सूत्र का अर्थ है कि आप कारण मत बनना। इसका होश रखना कि मैं कारण न बनूं।

और एक बड़े मजे की घटना घटती है। अगर आप कारण न बनें, तो जब दूसरा आपको जबरदस्ती कारण बना लेता है, तो आप क्रुद्ध नहीं होते, क्योंकि आप जानते हैं कि बेचारा निकाल रहा है। इस बात को, फर्क को समझ लें।

जब आप कारण नहीं बनते किसी की उद्विग्नता का, आप सचेतन रूप से कारण नहीं हैं उद्विग्नता का, और फिर कोई उद्विग्न होता हो, तो आप हंस सकते हैं। और अगर आपको उसमें क्रोध आ जाए, तो आप समझना कि आप कहीं न कहीं कारण थे। यही जांच है, और कोई जांच नहीं है।

अगर आप घर लौटें और पत्नी आप पर टूट पड़े; तो सच में ही आप जरा भी उद्विग्नता का कारण नहीं हैं तो आप हंस सकेंगे। आप रिएक्ट नहीं करेंगे; आप प्रतिक्रिया नहीं करेंगे कि आप और जोर से उछलने-कूदने लगें और सामान तोड़ने लगें। अगर आप वह करते हैं, तो आप कितना ही कहें कि मैं कारण नहीं हूं, आप कारण हैं।

अगर आप कारण नहीं हैं, तो आप बाहर खड़े रह जाएंगे और हंसेंगे कि यह पत्नी कैसी पागल की तरह काम कर रही है; होश में नहीं है! आपके मन में दया का भाव पैदा होगा, क्रोध का भाव पैदा नहीं होगा; कि बेचारी, कुछ अड़चन है, किसी ने सताया है, या दिनभर का फिजूल काम--बरतन साफ करना, रोटी बनाना--रोज की बोरियत, उससे ऊब गई है। लेकिन आपको क्रोध नहीं आएगा।

जिस व्यक्ति के भीतर से दूसरों को उद्विग्न करने के कारण समाप्त हो जाते हैं, वह प्रतिक्रिया से, रिएक्शन से मुक्त हो जाता है। वही लक्षण है।

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है... ।

दूसरी घटना तभी घटेगी, जब पहली घट गई हो। अगर आप किसी के कारण नहीं बनते हैं, तो दूसरा आपका कारण बनना भी चाहे, तो भी बन नहीं सकता है। और अगर दूसरा कारण बनने में समर्थ है अभी, तो आप समझना कि अभी पहली बात घटी नहीं है। दूसरा उसका सहज परिणाम है।

जब आप किसी का कारण नहीं हैं दुख देने का, तो कोई आपको दुख देना भी चाहे तो दे नहीं सकता।

जीसस को सूली पर लटकाया गया, तो भी जीसस ने प्रार्थना की परमात्मा से कि इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते ये क्या कर रहे हैं। ये होश में नहीं हैं। ये बेहोश हैं। इसलिए इनको पापी मत समझना और इन्हें क्षमा कर देना।

यह वही आदमी ऐसी प्रार्थना कर सकता है, जिसको अब कोई फांसी भी दे, तो भी क्रोध का कारण नहीं पैदा कर सकता। ऐसी घटना घट जाए, तो आप प्रभु के समीप होने लगते हैं।

कृष्ण कहते हैं, यह मुझे प्रिय है। और जो हर्ष और अमर्ष, भय व उद्वेगों से रहित है, वह भक्त मुझे प्रिय है।

हर्ष और अमर्ष, भय और उद्वेग से रहित है... ।

इसे थोड़ा समझें। थोड़ा बारीक, थोड़ा सूक्ष्म है।

कोई दुखी होता है, तो आप दुखी होते हैं। किसी के घर कोई मर गया, तो आपको भी आंसू आ जाते हैं। किसी का घर जल गया, तो आप सांत्वना, संवेदना प्रकट करने जाते हैं। लेकिन क्या कभी आपने सोचा कि यह दुख सच्चा है या झूठा है?

अगर यह सच्चा है, तो इसकी कसौटी एक ही है कि जब किसी का मकान बड़ा हो रहा हो, तब आप खुश हों। तो ही जलने पर आपको दुख हो सकता है। और जब कोई जीत रहा हो, तो आप प्रसन्न हों। तो ही उसकी हार से आपको पीड़ा हो सकती है।

कोई गरीब से धनी हो रहा हो, तो आपको हर्ष होता है? पीड़ा होती है। तो फिर दूसरी बात संदिग्ध है कि कोई अमीर से गरीब हो गया हो, तो आपको दुख हो। वह संदिग्ध है; वह नहीं हो सकता। क्योंकि जीवन का तो गणित है। और उसकी सीधी साफ लकीरें हैं। उस हिसाब में कहीं भूल-चूक नहीं है।

इसलिए मनसविद कहते हैं कि आप जब दूसरे के दुख में दुख बताते हैं, तो भीतर आपको सुख होता है। यह बड़ी जटिल है बात और हमें लगता है कि उलटी मालूम पड़ती है। हमको लगता है, यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि जब किसी का घर जल जाता है, तो हम सच में ही दुखी होते हैं, ऐसा हमें लगता है।

लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं, आपके गहरे में थोड़ा-सा सुख होता है। और वह सुख कि अपना घर नहीं जला, एक। इसका जल गया। और जलना ही था, पाप की कमाई थी। यह सब भीतर है। और काफी इतरा रहे थे, रास्ते पर आ गए। देर है उसके न्याय में, अंधेर नहीं है। यह सब भीतर चल रहा है। और ऊपर से सहानुभूति बता रहे हैं। और उस सहानुभूति में भी एक तरह का सुख है कि आज इस हालत में आ गए कि सहानुभूति हम दिखा रहे हैं। भगवान न करे कि कभी हम इस हालत में हों कि कोई हमें सहानुभूति दिखाए।

आपको पता है, जब कोई आपको सहानुभूति दिखाने आता है, तो अच्छा नहीं लगता। खटकता है कि अच्छा, कोई बात नहीं। किस्मत की बात है! कभी मौका आएगा, तो हम भी सहानुभूति बताने आएंगे। ऐसा सदा हमारे यहां थोड़ा ही होता रहेगा! सब के घर होगा।

लेकिन जब आपको कोई सहानुभूति बताता है, तो सच में आपको अच्छा लगता है? अगर आपको अच्छा नहीं लगता, तो निश्चित ही जो बता रहा है, उसको अच्छा लग रहा होगा। उसके अच्छे लगने की वजह से ही आपको भी अच्छा नहीं लग रहा है। और आपको अच्छा न लगने की वजह से उसको भी अच्छा लग रहा है। सब जुड़ा है।

दूसरे की खुशी में आप खुश नहीं होते। दूसरे के दुख में भी आपका दुख झूठा है। तभी आपका दुख सच्चा हो सकता है दूसरे के दुख में, जब दूसरे की खुशी में आपकी खुशी सच्ची हो। और दूसरे की खुशी में आपको खुशी

तभी हो सकती है, जब आप इतने मिट गए हों कि दूसरा दूसरा मालूम न पड़े। नहीं तो नहीं मालूम हो सकती। जब तक मैं हूं, तब तक दूसरे की खुशी में मुझे कैसे खुशी मालूम होगी? उसको मिल गई और मुझे नहीं मिली!

राजनीति में भी दो आदमी चुनाव लड़ते हैं, तो हारा हुआ जाता है जीते वाले को धन्यवाद देने, शुभकामना करने। लेकिन उस शुभकामना में कितना अर्थ होगा! और शुभकामना में कितनी पीड़ा होगी! लेकिन खेल के नियम हैं, वे भी पूरे करने पड़ते हैं। इससे ऊपर-ऊपर सब व्यवस्था बनी रहती है। भीतर-भीतर जहर चलता रहता है, ऊपर-ऊपर व्यवस्था बनी रहती है। ऊपर-ऊपर मुस्कुराहटें लगी रहती हैं, भीतर-भीतर कांटे सरकते रहते हैं और छुरी चलती रहती है।

दूसरा जब तक दूसरा है, तब तक आप उसके दुख में दुखी नहीं हो सकते। दूसरा जब तक दूसरा है, उसके सुख में सुखी नहीं हो सकते। और दूसरा जब दूसरा ही नहीं होगा... । कब नहीं होगा? जब आप नहीं होंगे भीतर, वह भीतर की अस्मिता, अहंकार नहीं होगा।

लेकिन बड़ी जटिलता है। जब अहंकार ही नहीं होता, तो अपने सुख में भी सुख नहीं होता, अपने दुख में भी दुख नहीं होता। और जो व्यक्ति अहंकारशून्य हो जाता है, वह हर्ष-विषाद के परे हो जाता है--न अपना, न दूसरे का।

लेकिन यह थोड़ा सोचने जैसा है कि बुद्ध जैसा व्यक्ति भी तो दूसरों का दुख दूर करने की कोशिश करता है!

जापान में एक फकीर हुआ नान-इन। उससे किसी ने पूछा कि बुद्ध सब दुखों के पार हो गए, लेकिन क्या उन्हें दूसरे का दुख अभी भी छूता है? यह बड़ा विचारणीय है। क्योंकि वे दूसरे के दुख को दूर करने की कोशिश में तो लगे हैं।

तो नान-इन ने कहा है, दूसरे का दुख नहीं छूता। दूसरे का दुखस्वप्न दिखाई पड़ता है, नाइटमेयर।

जैसे कि मैं जाग जाऊं रात। अपना सपना समाप्त हो गया, मैं जाग गया। और आपको मैं देखता हूं पड़ोस में ही, आपके मुंह से फसूकर गिर रहा है, और छाती जोर से धड़क रही है, और आप कंप रहे हैं, और आंख से आंसू बह रहे हैं, और लगता है कि कोई आपकी छाती पर चढ़ा है, कोई आपको सता रहा है। इससे मैं दुखी नहीं होता। मैं हंस सकता हूं, क्योंकि यह सपना है। लेकिन यह सपना मुझे है। आपको असलियत है अभी। और आप पूरी तकलीफ पा रहे हैं। और मैं आपको जगाने की कोशिश भी कर सकता हूं।

इस जगाने का मतलब यह नहीं है कि मैं आपके दुख से दुखी हो रहा हूं। इस जगाने का कुल मतलब इतना ही है कि मैं जानता हूं कि तुम नाहक ही परेशान हो रहे हो, और तुम्हारी परेशानी झूठी है। लेकिन तुम्हारे लिए अभी सच्ची है। क्योंकि तुम सो रहे हो। और तुम जाग जाओ, तो तुम्हारे लिए भी झूठी हो जाएगी।

तो बुद्ध की जो चेष्टा है, या कृष्ण की जो चेष्टा है, वह आपका दुख दूर करने की नहीं है। दुखी तो आप हैं नहीं। लेकिन दुखस्वप्न दूर करने का है।

आप सपना देख रहे हैं बड़े दुख का, और बड़े परेशान हो रहे हैं, और बड़ी करवटें ले रहे हैं। यह जो आपकी दशा है, इससे बुद्ध दुखी नहीं हो रहे हैं। इससे बुद्ध सिर्फ इतना अनुभव कर रहे हैं कि अकारण तुम दुखी हो रहे हो और इस दुख के बाहर आ सकते हो। और जिस भांति वे बाहर आ गए हैं, वह रास्ता कह रहे हैं कि इस भांति तुम भी बाहर आ जाओगे।

कृष्ण का सूत्र कहता है, तथा जो हर्ष और अमर्ष, भय और उद्वेगों से रहित है... ।

जिसे न अब कोई हर्ष होता, न जिसे अब कोई अमर्ष होता। न जिसे अब कोई चीज भयभीत करती है। मौत भी नहीं। क्योंकि मौत भी स्वप्न है। कोई कभी मरता नहीं है, प्रतीत होता है कि हम मरते हैं। जिसकी अंतर-दशा में ऐसा अनुभव होने लगे कि मौत भी घटित नहीं होती मुझे, मौत भी मेरे आस-पास आती है और गुजर जाती है, और मैं अछूता, अस्पर्शित रह जाता हूं, ऐसा व्यक्ति मुझे प्रिय है।

महावीर ने तो अभय को पहला लक्षण कहा है, कि वही आत्मा को उपलब्ध हो सकेगा, जो अभय को उपलब्ध हो जाए।

कृष्ण कहते हैं, जिसका भय नहीं रहा कोई, वह प्रभु को प्रिय है।

लेकिन भय क्या है? एक ही भय है; सब भय की जड़ में एक ही भय है कि मैं मिट न जाऊं, कहीं मैं मिट न जाऊं; मौत कहीं मुझे समाप्त न कर दे। बस, यही भय है सारे भय के पीछे। फिर बीमारी का हो, दुख का हो, सब के गहरे में मौत है।

और जब तक कोई व्यक्ति अहंकार के पार नहीं झांकता, और इंद्रियों के पीछे नहीं देखता, तब तक मौत दिखाई पड़ती ही रहेगी। क्योंकि इंद्रियों के बाहर जो जगत है, वहां मौत है। जिस संसार को आप आंख से देख रहे हैं, वहां मौत है। वहां वास्तविकता है मौत की। वहां मौत ही ज्यादा वास्तविक है; जीवन तो वहां क्षणभंगुर है।

फूल खिला नहीं कि मुरझाना शुरू हो जाता है। बच्चा पैदा नहीं हुआ कि मरना शुरू हो जाता है। वहां सब परिवर्तित हो रहा है। परिवर्तन का अर्थ है कि प्रतिपल मौत घटित हो रही है। इंद्रियों का जहां अनुभव है, उस अनुभव के जगत में मृत्यु प्रतिपल घटित हो रही है। वहां जीवन आश्चर्य है। मृत्यु तथ्य है। वहां जीवन संदिग्ध है।

इसीलिए तो नास्तिक कहते हैं कि जीवन है ही नहीं; सभी पदार्थ है। क्योंकि मौत इतनी घटित हो रही है कि तुम कहां जीवन की बातें लगा रहे हो! यहां जीवन सिर्फ सपना है तुम्हारा। यहां सब मौत है।

एक लिहाज से उनके कहने में सचाई है। बाहर के जगत में जीवन का पता भी नहीं चलता। झलक भी मिलती है, तो वह झलक भी ऐसी लगती है कि शायद सिर्फ मौत को प्रकट करने के लिए आती है। सिर्फ मौत का पता चल जाए, इसलिए जीवन की लकीर कहीं-कहीं झलक में आती है। बाकी चारों तरफ मौत है।

पदार्थ का अर्थ है, मृत्यु। और इंद्रियों से पदार्थ के अतिरिक्त किसी चीज का पता नहीं चलता। इसलिए भय पकड़ता है। वह जो भीतर अमृत है, जो कभी नहीं मरता, वह भी भयभीत होता है मौत को चारों तरफ देखकर। चारों तरफ घटती मौत, आपको भी वहम पैदा होता है कि मैं भी मरूंगा।

जो व्यक्ति इंद्रियों के पार भीतर उतरता है और देखता है, उसे पता चलता है कि यहां जो बैठा है, वह मरता ही नहीं। वह कभी मरा नहीं, वह मर नहीं सकता। यह जो अमृत का बोध न होना शुरू हो जाए, तो आदमी भयभीत रहेगा। फर्क को समझ लें।

जिनको आप कहते हैं निर्भय, उनसे प्रयोजन नहीं है यहां। हम दो तरह के लोगों को जानते हैं। भयभीत, भीरु, कायर; निर्भय, बहादुर। अभय तीसरी बात है। जिसको हम निर्भय कहते हैं, वह भी भयभीत तो होता है, लेकिन भागता नहीं। भयभीत तो वह भी होता है, लेकिन भागता नहीं। जिसको हम कायर कहते हैं, वह भी भयभीत होता है, लेकिन भागता है। कायर और बहादुर में इतना ही फर्क है कि कायर भी भयभीत होता है, बहादुर भी भयभीत होता है; लेकिन कायर भयभीत होकर भाग खड़ा होता है, बहादुर डटा रहता है। बाकी भयभीत दोनों होते हैं।

अभय का अर्थ है, जो भयभीत नहीं होता। उसको बहादुर नहीं कह सकते आप, क्योंकि बहादुरी का भी कोई सवाल नहीं रहा। जब भय ही नहीं, तो बहादुरी क्या? जिसको भय ही नहीं लगता, उसकी बहादुरी का क्या मूल्य है? इसलिए महावीर को बहादुर नहीं कह सकते हैं।

अभय! अभय का अर्थ है, अब न बहादुरी रही, न कायरता रही। वे दोनों खो गईं। अब इस आदमी को यह पता है कि मृत्यु घटती ही नहीं।

तो कृष्ण कहते हैं, वह भक्त मुझे प्रिय है, जिसे अमृत की थोड़ी झलक मिलने लगी, जो भय के पार होने लगा।

और जो पुरुष आकांक्षा से रहित है तथा बाहर-भीतर से शुद्ध है, दक्ष है अर्थात जिस काम के लिए आया था, उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरंभों का त्यागी भक्त मुझे प्रिय है।

आकांक्षा से रहित है... ।

जिसने वासनाओं की व्यर्थता को समझ लिया और अब जो मांग नहीं करता कि मुझे यह चाहिए। जो मिल जाता है, कहता है, बस यही मेरी चाह है। जो नहीं मिलता, उसकी चिंता नहीं है, आकांक्षा भी नहीं है।

हमें तो जो नहीं मिलता, उसका ही ख्याल है। जो मिल जाता है, उसको हम भूल जाते हैं। आपको ख्याल है! जो मिल जाता है, उसको आप भूल जाते हैं। जो नहीं मिलता है, उसका ख्याल बना रहता है। और जब तक नहीं मिलता है, तभी तक ख्याल बना रहता है।

जिस कार को आप खरीदना चाहते हैं और जब तक नहीं खरीदा है, तभी तक वह आपके पास है। जिस दिन आप खरीद लेंगे, उसमें बैठ जाएंगे, वह आपके पास नहीं रही; भूल गई। अब दूसरी कारें आपको दिखाई पड़ने लगेंगी, जो दूसरों के पास हैं।

जिस मकान में आप हैं, वह आपको नहीं दिखाई पड़ता। वह भी दूसरों को दिखाई पड़ता है, जो फुटपाथ पर बैठे हैं। उनको दिखाई पड़ता है कि गजब का मकान है। काश! इसके भीतर होते, तो पता नहीं कैसा आनंद मिलता! और वे भी कभी नहीं देखते कि भीतर जो रह रहा है, उसकी गति भी तो देखो। उसे कोई आनंद-वानंद नहीं मिल रहा है। वह अलग परेशान है। इस मकान में वह रहना ही नहीं चाहता। वह किसी और मकान की खोज कर रहा है।

जो नहीं है, उसका हमें ख्याल है। जो है, उसे हम भूल जाते हैं। जो नहीं है, उससे दुख पाते हैं। जो है, उससे कोई सुख नहीं मिलता।

मैंने सुना है, एक आदमी शाक-सब्जी वाले की दुकान पर केले खरीद रहा था। और केले वाले से उसने पूछा कि कितनी कीमत है? तो उसने कहा, एक रुपया दर्जन। तो उस आदमी ने कहा, गजब की लूट कर रहे हो! सामने की दुकान पर आठ आने दर्जन मिल रहे हैं ये ही केले। तो उस दुकानदार ने कहा, बड़ी खुशी से वहीं से खरीद लें। तो उस आदमी ने कहा, लेकिन आज उसके केले खतम हो गए हैं। तो उस दुकानदार ने कहा कि जब मेरे खतम हो जाते हैं, तब तो मैं चार आने दर्जन बेचता हूं! जब मेरे भी खतम हो जाते हैं, तो मैं भी चार आने दर्जन, मैं तो चार ही आने दर्जन पर बेच देता हूं फिर। वह लूट रहा है। आठ आने दर्जन बता रहा है; लूट रहा है।

मगर इस दुनिया में जो नहीं है, उसका भी काफी मोल-भाव चल रहा है। जो नहीं है, उस पर भी हिसाब लग रहा है। जो नहीं है, उस पर जानें लोग अटकाए हुए हैं, अपनी जानें लगाए हुए हैं। और जो है, वह विस्मृत हो जाता है।

आकांक्षा का अर्थ है, जो नहीं है, उसकी खोज। आकांक्षा-मुक्ति का अर्थ है, जो है, उसमें तृप्ति।

बाहर-भीतर से जो शुद्ध है।

शुद्ध कौन है बाहर-भीतर से? शुद्ध वही है, जो बाहर-भीतर एक-सा है। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है, वह अशुद्ध है।

शुद्ध का क्या अर्थ होता है? आप कब कहते हैं, पानी शुद्ध है? जब पानी में पानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है, तब आप उसे कहते हैं, पानी शुद्ध है। कब आप कहते हैं, दूध शुद्ध है? जब दूध में सिर्फ दूध होता है और कुछ नहीं होता। शुद्ध पानी और शुद्ध दूध को भी मिलाएं, तो दोनों अशुद्ध हो जाते हैं।

यह बड़े मजे की बात है। दोनों शुद्ध थे, तो डबल शुद्ध हो जाने चाहिए। लेकिन शुद्ध पानी शुद्ध दूध में मिलाओ; दोनों अशुद्ध हो गए। न पानी शुद्ध रहा, न दूध शुद्ध रहा। बात क्या हो गई? फारेन एलिमेंट, जो विजातीय है, वह अशुद्धि पैदा करता है। जब दूध दूध था; सिर्फ दूध था एकरस; सिर्फ दूध ही दूध था, बाहर-भीतर एक-सा ही था, तब शुद्ध था। जब पानी एक-सा ही था, तब वह भी शुद्ध था। अब न पानी पानी रह गया, न दूध दूध रह गया। दो पैदा हो गए, द्वंद्व खड़ा हो गया।

जब आप भीतर-बाहर एक-से होते हैं, पानी-पानी, दूध-दूध। जो भी हैं, जैसे भी हैं--बुरे हैं, भले हैं, यह सवाल नहीं है--जैसे भी हैं, बाहर-भीतर एक-से होते हैं, तो आप शुद्ध होते हैं। और जब बाहर-भीतर आप दो तरह के होते हैं, जब आपके भीतर दो आदमी होते हैं, तब वे दोनों ही अशुद्ध हो जाते हैं। बाहर-भीतर की समरसता, एक-सा पन शुद्धि है।

कृष्ण कहते हैं, जो बाहर-भीतर शुद्ध है, एक जैसा है, वह मुझे प्रिय है।

क्योंकि जो बाहर-भीतर एक-सा हो जाता है, उसके भीतर द्वंद्व मिट गया। और जिसके भीतर द्वंद्व मिट गया, वह तैयार हो गया निर्द्वंद्व, अद्वंद्व को अपने भीतर पहुंचाने के लिए। क्योंकि जैसे हम हैं, उससे ही हमारा मिलन हो सकता है। अगर हम द्वंद्व में हैं, तो अद्वैत से हमारा मिलन नहीं हो सकता है। समान से मिलता है समान। इसलिए भीतर और बाहर एक-सा पन!

अगर चोर हैं, तो कोई फिक्र न करें। चोर भी परमात्मा को पा सकता है, लेकिन बाहर-भीतर एक-सा! यही कठिनाई है कि चोर बाहर-भीतर एक-सा नहीं हो सकता। नहीं तो चोरी नहीं चलेगी। अगर वह घोषणा कर दे कि मैं चोर हूं, तो चोरी तत्क्षण समाप्त हो जाएगी।

मैंने सुना है, एक सम्राट अपने कारागृह में गया। उसका जन्मदिन था, और कैदियों को कुछ मिठाई बांटने गया था। और हर कैदी ने कहा कि मैं बिल्कुल निर्दोष हूं महाराज! जालसाजी है, मुझे फंसा दिया गया। यह अपराध झूठा था, गवाह झूठे थे। यह सब अन्याय हो गया है। मुझे मुक्त करो। हर कैदी ने यही कहा।

आखिरी कैदी के पास सम्राट पहुंचा और कहा कि तेरा क्या ख्याल है? तू भी शुद्ध है? तू भी निर्दोष है क्या?

उस आदमी ने कहा कि नहीं महाराज, मैं चोर हूं, और मैंने चोरी की थी। और ठीक न्याययुक्त ढंग से मेरा मुकदमा चला। और जिन्होंने गवाही दी, उन्होंने ठीक ही गवाही दी। और अदालत ने जो फैसला किया, वह उचित है। जितना मेरा पाप था, उसके अनुकूल मुझे दंड मिला है।

सम्राट ने अपने आदमियों को कहा कि इस शैतान को फौरन जेलखाने के बाहर करो। थ्रो दिस क्रुक आउट आफ दि जेल।

सारे कैदी चिल्लाने लगे कि यह क्या अन्याय हो रहा है? यह आदमी अपने मुंह से कह रहा है कि मैं चोर हूं और मुझे ठीक ही हुआ कि दंड मिला, और हम चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि हम निर्दोष हैं, और इस दोषी को जिसने खुद स्वीकार किया, उसको आप बाहर करते हैं!

तो उस सम्राट ने कहा, उसका कारण है। अगर इस शैतान को हम बाहर नहीं करते, तो तुम सब निर्दोष आत्माओं को यह खराब कर देगा।

जब कोई चोर भी इतना खुला हो जाता है, और सहज कह देता है भीतर-बाहर एक, तो परमात्मा आप निर्दोष आत्माओं को बचाने के लिए उसको तत्काल अलग कर देता है। नहीं तो वह आपको खराब कर दे। ऐसे शैतान को यहां नहीं बचने दिया जाता।

आप क्या हैं, यह सवाल नहीं है। अगर आप एकरस अभिव्यक्त हो जाते हैं, जैसे हैं, तो इस जगत में आपके लिए फिर कोई जगह नहीं है। फिर परमात्मा के हृदय में ही आपके लिए जगह है।

दक्ष, जिस काम के लिए आया था, उसे पूरा कर चुका... ।

वह जो मैं कह रहा था, उसी काम के लिए प्रत्येक व्यक्ति आया है कि वासनाओं में उतरकर जान ले कि व्यर्थ हैं। आकांक्षा करके देख ले कि जहर है। संसार में उतरकर देख ले कि आग है। इसी काम के लिए प्रत्येक व्यक्ति आया है। और अगर यही काम आप नहीं कर पा रहे हैं, यह अनुभव नहीं कर पा रहे हैं, तो आप दक्ष नहीं हैं। और जो भी दक्ष हो जाता है, वह परमात्मा के लिए प्रिय है।

पक्षपात से रहित, सब दुखों से छूटा हुआ, सर्व आरंभों का त्यागी मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

आरंभ का अर्थ है, जहां से वासना शुरू होती है। अगर वासना छोड़नी है, तो बीच में नहीं छोड़ी जा सकती; अंत में नहीं छोड़ी जा सकती; प्रारंभ में ही छोड़ी जा सकती है।

आप रास्ते से गुजरे और एक मकान आपको लगा, बहुत सुंदर है। अभी आपको ख्याल भी नहीं है कि वासना का कोई जन्म हो रहा है। आप शायद सोच रहे हों कि आप बड़े सौंदर्य के पारखी हैं, बड़ा एस्थेटिक आपका बोध है, इसलिए मकान आपको सुंदर लग रहा है। लेकिन यह आरंभ है। जो मकान सुंदर लगा, उसके पीछे थोड़ी ही देर में दूसरी बात भी लगेगी कि कब मेरा हो जाए।

आरंभ हमेशा छिपा हुआ है; पता नहीं चलता। आप कहते हैं, एक स्त्री जा रही है, कितनी सुंदर है! और आप सोचते होंगे कि चूंकि आप बड़े चित्रकार हैं, बड़े कलाकार हैं, इसलिए। लेकिन जैसे ही आपने कहा, कितनी सुंदर है, थोड़ी खोज करना, भीतर छिपी है दूसरी वासना, कैसे मुझे उपलब्ध हो जाए!

यह आरंभ है। अगर इस आरंभ में ही नहीं चेत गए, तो वासना पकड़ लेगी। इसलिए सर्व आरंभ का त्यागी। जहां-जहां से उपद्रव शुरू होता हो, उस उपद्रव को ही पहचान लेने वाला, और वहीं त्याग कर देने वाला। अगर वहां त्याग नहीं हुआ, तो मध्य में त्याग नहीं हो सकता। मध्य से नहीं लौटा जा सकता।

कुछ चीजें हैं, हाथ से तीर की तरह छूट जाती हैं, फिर उनको लौटाना मुश्किल है। जब तक तीर नहीं छूटा है और प्रत्यंचा पर सवार है, तब तक चाहें तो आप लौटा ले सकते हैं।

आरंभ का अर्थ है, जहां से तीर छूटता है।

सब आरंभ का त्यागी परमात्मा को प्रिय है।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई बीच से उठे न। कीर्तन करें और फिर जाएं।

नौवां प्रवचन

भक्ति और स्त्रैण गुण

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।। 17।।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः।। 18।।

और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न सोच करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है।

और जो पुरुष शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुखादिक द्वंद्वों में सम है और सब संसार में आसक्ति से रहित है, वह मेरे को प्रिय है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, परमात्मा के प्रेमी भक्त के जो बहुत-से गुण और लक्षण इस अध्याय में कहे गए हैं, वे सब के सब स्त्रैण गुण वाले हैं। इसका क्या कारण है? और समझाएं कि केवल स्त्रैण गुणों पर जोर देने में क्या जीवन का असंतुलन निहित नहीं है? जीवन के विराट संतुलन में स्त्रैण व पौरुष गुणों के सम्यक योगदान का महत्व भक्ति-योग के संदर्भ में क्या है?

भक्ति का मार्ग स्त्री का मार्ग है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि पुरुष उस मार्ग पर नहीं जा सकते हैं। लेकिन पुरुष को भी जाना हो, तो उसके मन में परमात्मा के प्रति प्रेयसी वाली भावदशा चाहिए। भक्ति के मार्ग पर पुरुष भी स्त्री होकर ही प्रवेश करता है। इसे थोड़ा गहराई में समझ लेना जरूरी है।

पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि न तो कोई स्त्री पूरी स्त्री है और न कोई पुरुष पूरा पुरुष। दोनों दोनों में मौजूद हैं। होंगे ही। उसके कारण हैं। क्योंकि चाहे आप पुरुष हों और चाहे स्त्री, आपकी बनावट स्त्री और पुरुष दोनों से हुई है। आप अकेले नहीं हो सकते हैं। न तो पुरुष के बिना आप हो सकते हैं और न स्त्री के बिना आप हो सकते हैं। दोनों का दान है आप में। आप दोनों का मिलन हैं। दोनों आपके भीतर मौजूद हैं। आपकी मां भी मौजूद है, आपके पिता भी।

आप स्त्री और पुरुष दोनों हैं एक साथ। फिर अंतर क्या है? अंतर केवल अनुपात का है। जो पुरुष है, वह साठ प्रतिशत पुरुष है, चालीस प्रतिशत स्त्री है। जो स्त्री है, वह साठ प्रतिशत स्त्री है, चालीस प्रतिशत पुरुष है। यह अनुपात का भेद होगा। लेकिन आप पुरुष हैं, तो आपके भीतर छिपी हुई स्त्री है। और आप स्त्री हैं, तो आपके भीतर छिपा हुआ पुरुष है।

इस सदी के बहुत बड़े विचारक, बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने पश्चिम में इस विचार को पहली दफा स्थापित किया। पूरब में तो यह विचार बहुत पुराना है। हमने अर्धनारीश्वर की मूर्ति बनाई, जिसमें शंकर आधे स्त्री हैं और आधे पुरुष हैं। वह हजारों साल पुरानी हमारी धारणा है। और वह धारणा सच है। लेकिन जुंग

ने पहली दफा पश्चिम में इस सदी में इस विचार को बल दिया कि कोई पुरुष पुरुष नहीं, कोई स्त्री स्त्री नहीं, दोनों दोनों हैं।

इसके बहुत गहरे अर्थ हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर आप पुरुष हैं, तो आपको स्त्री के प्रति जो आकर्षण मालूम होता है, वह आकर्षण आपके भीतर छिपी हुई स्त्री के लिए है। और इसलिए इस दुनिया में किसी भी स्त्री से आप तृप्त न हो पाएंगे। क्योंकि जब तक आपको अपने भीतर की स्त्री से मिलना न हो जाए, तब तक कोई तृप्ति उपलब्ध नहीं हो सकती।

और स्त्री हैं अगर आप, तो पुरुष का जो आकर्षण है, और पुरुष की जो तलाश है, वह कोई भी पुरुष आपको संतुष्ट न कर पाएगा। सभी पुरुष असफल हो जाएंगे। क्योंकि जब तक आपके भीतर छिपे पुरुष से आपका मिलन न हो जाए, तब तक वह खोज जारी रहेगी।

असल में हर आदमी अपने भीतर छिपी हुई स्त्री या पुरुष को बाहर खोज रहा है। कभी-कभी किसी-किसी में उसकी झलक मिलती है, तो आप प्रेम में पड़ जाते हैं। प्रेम का एक ही अर्थ है कि आपके भीतर जो स्त्री छिपी है, उसकी झलक अगर आपको किसी स्त्री में मिल जाती है, तो आप प्रेम में पड़ जाते हैं।

इसलिए जब आप प्रेम में पड़ते हैं, तो न तो कोई तर्क होता है, न कोई कारण होता है। आप कहते हैं, बस, मैं प्रेम में पड़ गया। आप कहते हैं, मेरे वश में नहीं है यह बात। आपके भीतर की स्त्री से जब भी बाहर की किसी स्त्री का कोई भी तालमेल हो जाता है।

लेकिन यह तालमेल ज्यादा देर नहीं चल सकता। क्योंकि यह तालमेल पूरा कभी भी नहीं हो सकता। आपके भीतर जैसी स्त्री पृथ्वी पर कहीं है ही नहीं। वह आपके भीतर ही छिपी है। आपके भीतर जैसा पुरुष पृथ्वी पर कहीं है नहीं। किसी में भनक मिल सकती है थोड़ी। लेकिन जैसे ही आप निकट आएंगे, भनक टूटने लगेगी। जितना निकट आएंगे, उतना ही डिसइलूजनमेंट, उतना ही भ्रम टूट जाएगा।

इसलिए धन्यभागी वे प्रेमी हैं, जो अपनी प्रेयसियों से कभी नहीं मिल पाते हैं, क्योंकि उनका भ्रम बना रहता है। अभागे वे प्रेमी हैं, जिनको उनकी प्रेयसियां मिल जाती हैं, क्योंकि भ्रम टूट जाता है। मिली हुई प्रेयसी ज्यादा देर तक प्रिय नहीं रह जाती। मिला हुआ प्रेमी ज्यादा देर तक प्रिय नहीं रह जाता। क्योंकि भ्रम टूटेगा ही। तालमेल थोड़ा-बहुत हो सकता है। वह भी आभास है।

जुंग कहता है कि जब तक भीतर आपकी स्त्री और आपके पुरुष का अंतर-मिलन न हो जाए, तब तक आप अतृप्त रहेंगे और तब तक कामवासना आपको पकड़े रहेगी।

इसको हमने युगनद्ध कहा है। तंत्र की भाषा में भीतर जब स्त्री और पुरुष का मिलन हो जाता है, उसे हमने युगनद्ध कहा है। वह जो मिलन है, उस मिलन के साथ ही आप अद्वैत हो जाते हैं; एक हो जाते हैं; दो नहीं रह जाते। और वह जो एक की घटना भीतर घटती है, वही परमात्मा का मिलन है।

अभी आप दो हैं। इसका मनोवैज्ञानिक यह पहलू भी समझ लेना जरूरी है कि जो आप ऊपर होते हैं, उससे विपरीत आप भीतर होते हैं। ऊपर पुरुष, तो भीतर स्त्री। ऊपर स्त्री, तो भीतर पुरुष।

एक और मजेदार घटना मनोवैज्ञानिकों के ख्याल में आती है और वह यह कि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, आप में विपरीत लक्षण प्रकट होने लगते हैं। जैसे स्त्रियां पचास के करीब पहुंच-पहुंचकर पुरुष जैसी होने लगती हैं। अनेक स्त्रियों को मूंछ के बाल, दाढ़ी के बाल उगने शुरू हो जाते हैं। उनकी आवाज पुरुषों जैसी भर्राई हुई हो जाती है। उनके गुण पुरुषों जैसे हो जाते हैं। उनका शरीर भी धीरे-धीरे पुरुषों के करीब पहुंचने लगता है।

पचास के बाद पुरुषों में स्त्रैणता आनी शुरू हो जाती है। उनमें गुण स्त्रियों जैसे होने शुरू हो जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, इसका अर्थ यह है कि जो आपके ऊपर-ऊपर था, जिंदगीभर आपने उसका उपयोग करके चुका लिया। और जो भीतर दबा था, वह बिना चुका रह गया। इसलिए आप ऊपर से कमजोर हो गए हैं और भीतर की बात प्रकट होनी शुरू हो गई है।

एक स्त्री पचास साल तक स्त्री के तल पर चुक जाती है, समाप्त हो जाती है। उसने उपयोग कर लिया स्त्री-ऊर्जा का और भीतर का पुरुष बिना उपयोग किया हुआ पड़ा है। और जब ऊपर की स्त्री कमजोर हो जाती है, तो भीतर का पुरुष धक्के मारने लगता है और प्रकट होने लगता है।

पुरुष चुक जाता है पचास साल में अपने पौरुष से। और भीतर की स्त्री अनचुकी, ताजी बनी रहती है। वह प्रकट होनी शुरू हो जाती है।

यह जो पचास साल की उम्र के बाद अंतर पड़ता है, यह बड़ा जटिल है। और इसके कारण हजारों कठिनाइयां पैदा होती हैं। क्योंकि जिंदगीभर आप पुरुष रहे, तो आपने पुरुष के गुणों की तरह अपने को सजाया, संवारा, सुशिक्षित किया। और अचानक आपके भीतर फर्क होता है, नई दुनिया शुरू होती है। उसकी कोई ट्रेनिंग नहीं, उसका कोई प्रशिक्षण नहीं।

जुंग ने सलाह दी है कि पैंतालीस साल के स्त्री-पुरुषों को हमें फिर से स्कूल भेजना चाहिए, क्योंकि उनके भीतर एक क्रांतिकारी फर्क हो रहा है, जिसकी उनके पास कोई तैयारी नहीं है। और जिसकी उनके पास तैयारी है, वह व्यर्थ हो रहा है और एक नई घटना घट रही है। और जब तक हम इस बात को पूरा न कर पाएं, जुंग कहता है, लोग ज्यादा मात्रा में विक्षिप्त होते रहेंगे।

पैंतालीस साल की उम्र खतरनाक उम्र है। उसके बाद सारी मानसिक बीमारियां शुरू होती हैं। लेकिन पैंतालीस साल की उम्र ही धार्मिक होने की उम्र भी है।

और जुंग ने कहा है कि मेरे पास जितने मरीज आते हैं मन के, उनमें अधिक की उम्र पैंतालीस के ऊपर है या पैंतालीस के करीब है। और उनमें अधिक की बीमारी यही है कि उनके जीवन में धर्म नहीं है। अगर धर्म होता, तो वे पागल न होते।

यह जो कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं, भक्ति का जो मार्ग, इसमें वे स्त्रैण गुणों की चर्चा कर रहे हैं। और अर्जुन जैसा पुरुष खोजना मुश्किल है। यह विरोधाभासी लगता है। अर्जुन है क्षत्रिय; पुरुषों में पुरुष। हजारों-हजारों साल में वैसा पुरुष होता है। उससे यह स्त्रैण गुणों की बात! निश्चित ही प्रश्न उठाती है।

लेकिन अगर मेरी बात आपके ख्याल में आ गई, तो उसका मतलब यह है कि अर्जुन का पुरुष तो चुक ही जाने को है। और जीवन के अंतिम हिस्से में जब अर्जुन का पुरुष चुक जाएगा, तब उसकी स्त्री प्रकट होनी शुरू होगी। वह जो विपरीत दबा पड़ा है, वह बाहर आएगा। और उस विपरीत से ही धर्म का मार्ग बनेगा। एक।

दूसरी बात यह भी ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि स्त्रैण होने का आध्यात्मिक अर्थ होता है, ग्राहक होना, रिसेप्टिव होना। पुरुष है आक्रामक, एग्रेसिव, हमलावर। बायोलाजिकली भी, जैविक व्यवस्था में भी पुरुष हमलावर है। स्त्री ग्राहक है। स्त्री गर्भ है। वह स्वीकार करती है, समा लेती है, आत्मसात कर लेती है। हमला नहीं करती है।

भक्ति का मार्ग ग्राहक, स्वीकार करने का मार्ग है। वह स्त्रैण है। वहां परमात्मा को अपने भीतर स्वीकार करना है। श्रद्धापूर्वक, नत होकर, सिर को झुकाकर उसे अपने भीतर झेल लेना है। भगवान के लिए गर्भ बन जाता है भक्त। वह पुरुष है या स्त्री, इससे कोई सवाल नहीं। लेकिन जो गर्भ नहीं बन सकता भगवान के लिए, वह भक्त नहीं बन सकता।

आपको शायद सुनकर हैरानी हो या कभी आपको पता भी हो, एक ऐसा भी भक्तों का संप्रदाय हुआ है, जिनमें पुरुष भी स्त्रियों के कपड़े ही पहनते थे। अब भी बंगाल में उसकी थोड़ी-सी धारा शेष है। वे स्त्री जैसे ही रहते हैं भक्त। और परमात्मा को अपना पति स्वीकार करते हैं। रात सोते भी हैं, तो परमात्मा की मूर्ति साथ लेकर सोते हैं, जैसे कोई प्रेयसी अपने प्रेमी को साथ लेकर सो रही हो।

यह बात हमें बड़ी अजीब-सी लगेगी, क्योंकि हमें इसके भीतर के रहस्य का कोई पता नहीं है। और जिस बात के भीतर के रहस्य का हमें कोई पता न हो, बड़ी अड़चन होती है।

राहुल सांकृत्यायन ने, एक बड़े पंडित ने बड़ा विरोध किया है इस बात का, कि यह क्या पागलपन है! ये पुरुष स्त्रियां बन जाएं, यह कैसी बेहूदगी है! यह कैसा नाटक है! और कोई भी ऊपर से देखेगा, तो ऐसा ही लगेगा।

लेकिन राहुल सांकृत्यायन को कुछ भी पता नहीं है कि भीतर, भक्त के भीतर क्या घटित हो रहा है। यह जो उसका स्त्रैण रूप है ऊपर से, यह तो उसके भीतर की घटना की अभिव्यक्ति मात्र है। वह भीतर से भी स्त्रैण हो रहा है। और आप जानकर हैरान होंगे, कभी-कभी भक्त इस जगह पहुंच गए हैं, जब कि उनकी भाव की स्त्रैणता इतनी गहरी हो गई कि उनके शरीर के अंग तक स्त्रैण हो गए।

रामकृष्ण के जीवन में ऐसी घटना घटी। वह अनूठी है। क्योंकि रामकृष्ण एक बड़ा मूल्यवान प्रयोग किए। वह प्रयोग था कि उन्होंने एक मार्ग से तो परमात्मा को जाना। जानने के बाद दूसरे मार्गों से चलकर भी जानने की कोशिश की, कि दूसरे मार्गों से भी वहीं पहुंचा जा सकता है या नहीं! तो उन्होंने आठ-दस मार्गों का प्रयोग किया। उसमें एक यह भक्ति-मार्गियों का पंथ भी था, जिसमें स्त्री होकर ही साधना करनी है।

तो रामकृष्ण छः महीने तक स्त्री के कपड़े ही पहनते थे। स्त्री जैसे ही उठते-बैठते थे। स्त्रैण भाव से ही जीते थे। और एक ही धारणा मन में थी कि मैं प्रेयसी हूं और परमात्मा प्रेमी है।

बड़ी हैरानी की घटना घटी, जो हजारों लोगों ने देखी है। वह यह कि रामकृष्ण की चाल थोड़े दिन में बदल गई। वे स्त्रियों जैसे चलने लगे।

बहुत कठिन है चलना स्त्रियों जैसा। क्योंकि स्त्री के शरीर का ढांचा अलग है, पुरुष के शरीर का ढांचा अलग है। चूंकि स्त्री के शरीर में गर्भ है, इसलिए बड़ी खाली जगह है। उस खाली जगह की वजह से उसके पैर और ढंग से घूमते हैं। पुरुष के पैर उस ढंग से नहीं घूम सकते।

लेकिन रामकृष्ण ऐसे चलने लगे, जैसे स्त्रियां चलती हैं। यह भी कुछ बड़ी बात न थी। इससे भी बड़ी घटना घटी कि दो महीने के बाद रामकृष्ण के स्तन बढ़ने लगे। यह भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी, क्योंकि एक उम्र में पुरुषों के थोड़े स्तन तो बढ़ ही जाते हैं। जो सबसे बड़ी चमत्कारी घटना घटी, वह यह कि चार महीने के बाद रामकृष्ण को मासिक-धर्म शुरू हो गया। यह मनुष्य जाति के इतिहास में घटी थोड़ी-सी मूल्यवान घटनाओं में से एक है, कि भाव का इतना परिणाम शरीर पर हो सकता है!

इतने अंतःकरणपूर्वक उन्होंने मान लिया कि मैं तुम्हारी प्रेयसी हूं और तुम मेरे प्रेमी हो, यह भावना इतनी गहरी हो गई कि शरीर के रोएं-रोएं ने इसको स्वीकार कर लिया और शरीर स्त्रैण हो गया। साधना के छः महीने के बाद भी रामकृष्ण को छः महीने लग गए वापस ठीक से पुरुष होने में। ये सारे लक्षण विदा होने में फिर छः महीने और लगे।

भक्त का अर्थ है, प्रेयसी का भाव। इसलिए कृष्ण जो भी गुण, लक्षण बता रहे हैं, वे सब स्त्रैण हैं।

क्या आपने कभी ख्याल किया कि दुनिया के सभी धर्मों ने, चाहे वे भक्त-संप्रदाय हों या न हों, जिन गुणों को मूल्य दिया है, वे स्त्रैण हैं। चाहे महावीर उसको अहिंसा कहते हों। चाहे बुद्ध उसको करुणा कहते हों। चाहे जीसस उसको प्रेम कहते हों। ये सब स्त्रैण गुण हैं। स्त्री अगर पूरी तरह प्रकट हो, तो ये गुण उसमें होंगे।

इसलिए इस विचार के कारण जर्मनी के गहन विचारक फ्रेडरिक नीत्शे ने तो बुद्ध, क्राइस्ट, इन सबको स्त्रैण कहा है। और कहा है कि इन्हीं लोगों ने सारी दुनिया को बर्बाद कर दिया। क्योंकि ये जो बातें सिखा रहे हैं, वे लोगों को स्त्रैण बनाने वाली हैं।

नीत्शे ने तो विरोध में यह बात कही है कि मनुष्य जाति को स्त्रैण बना दिया, बुद्ध, क्राइस्ट, इस तरह के लोगों ने। क्योंकि जो शिक्षाएं दीं, उसमें पुरुष के गुणों का कोई मूल्य नहीं है। पौरुष का, तेज का, बल का, आक्रमण का, हिंसा का, संघर्ष का, युद्ध का कोई भाव नहीं है। तो इन्होंने स्त्रैण बना दिया जगत को।

उसकी बात में थोड़ी दूर तक सच्चाई है। लेकिन वे लोग सच में ही स्त्रैण बनाने में सफल नहीं हो पाए। नहीं तो पृथ्वी स्वर्ग हो जाती है।

जीवन में जो भी मूल्यवान है, वह कहीं न कहीं मां से जुड़ा हुआ है। जीवन में जो भी मूल्यवान है, कीमती है, कोमल है, फूल की तरह है, वह कहीं न कहीं स्त्री से संबंधित है।

और पुरुष तो एक बेचैनी है। स्त्री एक समता है। जरूरी नहीं; कि स्त्रियां ऐसा न सोच लें कि वे ऐसी हैं। यह तो स्त्री के परम अर्थ की बात है। परम लक्ष्य पर स्त्री अगर हो, तो ऐसा होगा। अभी तो अधिक स्त्रियां भी पुरुष जैसी हैं और वे पूरी कोशिश कर रही हैं कि पुरुष जैसी कैसे हो जाएं। पश्चिम में वे बड़ी लड़ाई लड़ रही हैं कि पुरुष के जैसी कैसे हो जाएं। कपड़े भी पुरुष जैसे पहनने हैं; काम भी पुरुष जैसा करना है; अधिकार भी पुरुष जैसे चाहिए। सब जो पुरुष कर रहे हैं!

अगर पुरुष सिगरेट पी रहे हैं, तो स्त्रियां भी उसी तरह सिगरेट पीना चाहती हैं। क्योंकि यह असमानता खलती है, अखरती है।

तो जो पुरुष कर रहा है, अगर वह गलत भी कर रहा है, तो स्त्री को भी वह करना ही चाहिए! सारी दुनिया में एक दौड़ है कि स्त्रियां भी पुरुष जैसी कैसे हो जाएं।

इसलिए स्त्रियां यह न सोचें कि जो मैं कह रहा हूं, वह उनके बाबत लागू है। वे सिर्फ यह सोचें कि अगर उनकी स्त्रैणता पूरे रूप में प्रकट हो, तो जो मैं कह रहा हूं, वह सही होगा।

स्त्री अगर पूरे रूप में प्रकट हो... । और स्त्री पूरे रूप में प्रकट हो सकती है। और जब पुरुष भी पूरे रूप में प्रकट होता है, तो स्त्री जैसा हो जाता है। इसके कारण बहुत हैं।

पहले तो बायोलाजिकली समझने की कोशिश करें।

जीवशास्त्री कहते हैं कि स्त्री में संतुलन है, पुरुष में संतुलन नहीं है, शरीर के तल पर भी। जिन वीर्यकणों से मिलकर जीवन का जन्म होता है, रज और वीर्य के मिलन से जो व्यक्तित्व का निर्माण होता है, उसमें एक बात समझने जैसी है। पुरुष के वीर्यकण में दो तरह के वीर्यकण होते हैं। एक वीर्यकण होता है, जिसमें चौबीस सेल होते हैं, चौबीस कोष्ठ होते हैं। और एक वीर्यकण होता है, जिसमें तेईस कोष्ठ होते हैं। स्त्री के जो रजकण होते हैं, उन सबमें चौबीस कोष्ठ होते हैं। उनमें तेईस कोष्ठ वाला कोई रजकण नहीं होता। उनमें सबमें चौबीस कोष्ठ वाले रजकण होते हैं।

जब स्त्री का चौबीस कोष्ठ वाला रजकण, पुरुष के चौबीस कोष्ठ वाले वीर्यकण से मिलता है, तो स्त्री का जन्म होता है, चौबीस-चौबीस। और जब स्त्री का चौबीस कोष्ठ वाला रजकण, पुरुष के तेईस कोष्ठ वाले वीर्यकण से मिलता है, तब पुरुष का जन्म होता है, चौबीस-तेईस।

जीवशास्त्री कहते हैं कि स्त्री संतुलित है, उसके दोनों पलड़े बराबर हैं, चौबीस-चौबीस। और पुरुष में एक बेचैनी है, उसका एक पलड़ा थोड़ा नीचे झुका है, एक थोड़ा ऊपर उठा है।

इसलिए अगर आप, छोटी बच्ची भी हो और छोटा लड़का हो, दोनों को देखें, तो लड़के में आपको बेचैनी दिखाई पड़ेगी। लड़की शांत दिखाई पड़ेगी। लड़का पैदा होते से ही थोड़ा उपद्रव शुरू करेगा। उपद्रव न करे, तो लोग कहेंगे कि लड़का थोड़ा स्त्रैण है, लड़कियों जैसा है। वह जो बेचैनी है, वह जो असंतुलन है, वह काम शुरू कर देगा।

इस बेचैनी की तकलीफें हैं, इसके फायदे भी हैं। समता का लाभ भी है, नुकसान भी है। दुनिया में कोई लाभ नहीं होता, जिसका नुकसान न हो। कोई नुकसान नहीं होता, जिसका लाभ न हो।

पुरुष में जो बेचैनी है, उसी के कारण उसने इतने बड़े साम्राज्य बनाए। पुरुष में जो बेचैनी है, उसी के कारण उसने विज्ञान निर्मित किया, इतनी खोजें कीं। पुरुष में बेचैनी है, इसलिए वह एवरेस्ट पर चढ़ा और चांद पर पहुंचा।

स्त्री में वह बेचैनी नहीं है, इसलिए स्त्रियों ने कोई खोज नहीं की, कोई आविष्कार नहीं किया। वह तृप्त है। वह अपने होने से पर्याप्त है। उसको कहीं कुछ जाना नहीं है। उसकी समझ के बाहर है कि एवरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है!

हिलेरी से, जो आदमी एवरेस्ट पर पहली दफा चढ़ा, उससे उसकी पत्नी ने पूछा कि आखिर एवरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है? बिल्कुल समझ के बाहर है बात कि नाहक, सुख-शांति से घर में रह रहे हो, परेशान हो जाओ; मौत का खतरा लो। जरूरी नहीं कि पहुंचो। अनेक लोग मर चुके हैं। और पहुंचकर भी मिलेगा क्या? अगर पहुंच भी गए, तो फायदा क्या है? आखिर एवरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है?

तो पता है, हिलेरी ने क्या कहा? हिलेरी ने कहा, जब तक एवरेस्ट है, तब तक आदमी बेचैन रहेगा; चढ़ना ही पड़ेगा। यह कोई कारण नहीं है और। लेकिन एवरेस्ट का होना, कि अनचढ़ा एक पर्वत है, आदमी के लिए चुनौती है। क्योंकि एवरेस्ट है, इसलिए चढ़ना पड़ेगा। कोई और कारण नहीं है।

पुरुष में एक बेचैनी है। इसलिए पुरुष युद्ध के लिए आतुर है; संघर्ष के लिए आतुर है। नए संघर्ष खोजता है; नए उपद्रव मोल लेता है। नई चुनौतियां स्वीकार करता है।

चांद पर जाने की कोई जरूरत नहीं है। अभी तो कोई भी जरूरत नहीं थी। लेकिन चांद है, तो रुकना बहुत मुश्किल है। जिस वैज्ञानिक ने पहली दफा चांद की यात्रा का ख्याल दिया, उसने लिखा है कि अब हमारे पास चांद तक पहुंचने के साधन हैं, तो हमें पहुंचना ही है। अब कोई और वजह की जरूरत नहीं है। अब हम पहुंच सकते हैं, तो हम पहुंचेंगे।

तो फायदा है। फायदा है, संसार के तल पर पुरुष के गुणों का फायदा है। इसलिए स्त्रियां पिछड़ जाती हैं। संसार की दौड़ में वे कहीं भी टिक नहीं पातीं। लेकिन नुकसान भी उसका है! तो बेचैनी, अशांति, विक्षिप्तता, पागलपन, वह सब पुरुष का हिस्सा है। स्त्रियां शांत हैं।

इसे आप ऐसा समझें कि अगर बाहर के जगत में खोज करनी हो, तो पुरुष के गुण उपयोगी हैं। पुरुष बहिर्गामी है। अगर भीतर के जगत में जाना हो, तो स्त्री के गुण उपयोगी हैं। स्त्री अंतर्गामी है।

स्त्री और पुरुष जब प्रेम भी करते हैं, तो पुरुष आंख खोलकर प्रेम करना पसंद करता है, स्त्री आंख बंद करके। पुरुष चाहता है कि प्रकाश जला रहे, जब वह प्रेम करे। स्त्रियां चाहती हैं, बिल्कुल अंधेरा हो। पुरुष चाहता है कि वह देखे भी कि स्त्री के चेहरे पर क्या भाव आ रहे हैं, जब वह प्रेम कर रहा है। स्त्री बिल्कुल आंख बंद कर लेती है। वह पुरुष को भूल जाना चाहती है। वह अपने भीतर डूबना चाहती है। प्रेम के गहरे क्षण में भी वह पुरुष को भूलकर अपने भीतर डूबना चाहती है। उसका जो रस है, वह भीतरी है।

पुरुष देखना चाहता है कि स्त्री प्रसन्न हो रही है, आनंदित हो रही है, तो वह प्रसन्न होता है। वह देखता है कि स्त्री दुखी हो रही है, परेशान हो रही है या उसके मन में कोई भाव नहीं उठ रहा है, तो उसका सारा सुख खो जाता है। पुरुष बहिर्दृष्टि है।

इसका मतलब यह हुआ कि अगर आपको भीतर की तरफ जाना है, तो आपके भीतर छिपी जो स्त्री है, उसके गुणों को आपको विकसित करना होगा। और अगर स्त्रियों को भी बाहर की तरफ जाना है, तो उनके भीतर छिपा हुआ जो पुरुष है, उनको उसे विकसित करना होगा।

बहिर्यात्रा पुरुष के सहारे हो सकती है, अंतर्यात्रा स्त्री के सहारे। इसलिए कृष्ण ने स्त्रैण गुणों को इतनी गहराई से कहा है।

एक मित्र ने पूछा है कि कल आपने कहा कि क्रोध को पूरा जानने के लिए क्रोध का पूरा अनुभव जरूरी है। तो कामवासना को पूरा कैसे जाना जाए? क्योंकि अनुभवियों ने कहा है कि कामवासना की तृप्ति कभी भी नहीं हो पाती; जितनी भोगेंगे, उतनी ही बढ़ती जाएगी। तो कामवासना को कैसे पार किया जाए?

पहले तो अनुभवियों से थोड़ा बचना, खुद के अनुभव का भरोसा करना।

इसका यह मतलब नहीं है कि अनुभवियों ने जो कहा है, वह गलत कहा है। इसका कुल मतलब इतना है कि दूसरे के अनुभव को मानकर चलने से आप अनुभव से वंचित रह जाएंगे। और अगर अनुभव से वंचित रह गए, तो अनुभवियों ने जो कहा है, वह आपको कभी सत्य न हो पाएगा।

अनुभवियों ने जो कहा है, वह अनुभव से कहा है। दूसरे अनुभवियों को सुनकर नहीं कहा है। यह फर्क ख्याल में रखना। उन्होंने यह नहीं कहा है कि अनुभवियों ने कहा है, इसलिए हम कहते हैं। उन्होंने कहा है कि हम अपने अनुभव से कहते हैं। तुम भी अगर सच में ही मुक्त होना चाहो, तो अपने अनुभव से ही।

और यह बात गलत है कि अनुभव से कामवासना बढ़ती है। कोई वासना दुनिया में अनुभव से नहीं बढ़ती। और अगर अनुभव से कामवासना बढ़ती है, तो फिर इस दुनिया में कोई भी आदमी उससे मुक्त नहीं हो सकता।

अनुभव से सभी चीजें क्षीण होती हैं। अनुभव से सभी चीजों में ऊब आ जाती है। एक ही भोजन कितना ही स्वादिष्ट हो, रोज-रोज करें, कितने दिन कर पाएंगे? थोड़े दिन में स्वाद खो जाएगा। फिर थोड़े दिन बाद बेस्वाद हो जाएगा। फिर कुछ दिन बाद आप भाग जाना चाहेंगे कि आत्महत्या कर लूंगा, अगर यही भोजन वापस मिला तो।

अनुभव से ऊब आती है। चित्त रस खो देता है। और अगर अनुभव से ऊब नहीं आती, तो समझना कि अनुभव आप ठीक से नहीं ले रहे हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना।

और अनुभव आप ठीक से ले नहीं सकते, क्योंकि अनुभवियों ने जो कहा है, वह आपकी परेशानी किए दे रहा है। अनुभव के पहले आप छूटना चाहते हैं।

यह मित्र पूछते हैं कि कामवासना से कैसे पार जाया जाए?

पहले कामवासना में तो चले जाओ, तो पार भी चले जाना। पार जाने की जल्दी इतनी है कि उसमें भीतर जा ही नहीं पाते, उतर ही नहीं पाते।

एक काम का गहन अनुभव भी पार ले जा सकता है। लेकिन वह कभी गहन हो नहीं पाता। यह पीछे से जान अटकी ही रहती है कि पार कब, कैसे हो जाएं। न पार हो पाते हैं, न अनुभव हो पाता है। और बीच में अटके रह जाते हैं।

जब मैं आपसे कहता हूं कि अनुभव ही मुक्ति है, तो उसका अर्थ ठीक से समझ लें। क्योंकि जो चीज व्यर्थ है, वह अनुभव से दिखाई पड़ेगी कि व्यर्थ है। और किसी तरह दिखाई नहीं पड़ सकती।

जब तक आपको अनुभव नहीं है, आप भला सोचें कि व्यर्थ है, लेकिन सोचने से क्या होगा! रस तो कायम है भीतर। और कितने ही अनुभवी कहते हों कि व्यर्थ है, उनके कहने से क्या व्यर्थ हो जाएगा! और अगर उनके कहने से होता होता, तो अब तक सारी दुनिया की कामवासना तिरोहित हो गई होती।

बाप कितना नहीं समझाता है बेटे को। बेटा सुनता है? लेकिन बाप कहे चला जाता है। और बाप इसकी बिल्कुल फिक्र नहीं करता कि वह भी बेटा था, और उसके बाप ने भी यही कहा था, और उसने भी नहीं सुना था। अगर वह ही सुन लेता, तो यह बेटा कहां से आता! और वह घबड़ाए न। यह बेटा भी बड़ा होकर अपने बेटे को यही शिक्षा देगा। इसमें कोई अंतर पड़ने वाला नहीं है।

किसी का अनुभव काम नहीं पड़ता। बाप का अनुभव आपके काम नहीं पड़ सकता है। आपका अनुभव ही काम पड़ेगा।

बाप गलत कहता है, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं। बाप अपने अनुभव से कह रहा है कि यह सब पागलपन से वह गुजरा है। लेकिन पागलपन से गुजरकर कह रहा है वह। और बिना गुजरे वह भी नहीं कह सकता था। बिना गुजरे कोई भी नहीं कह सकता है। और बिना गुजरे कोई किसी की बात भी नहीं मान सकता है। अनुभव के अतिरिक्त इस जगत में कोई अनुभूति नहीं है। अनुभव से ही गुजरना होगा।

फिर घबड़ाहट भी क्या है इतनी? इतना पार होने की जल्दी भी क्या है? अगर परमात्मा एक अवसर देता है, उसका उपयोग क्यों न किया जाए? और उस उपयोग को पूरा क्यों न समझा जाए? जरूर निहित कोई प्रयोजन होगा। परमात्मा आपसे ज्यादा समझदार है। और अगर उसने आपमें कामवासना रची है, तो उसका कोई निहित प्रयोजन होगा।

महात्मा कितना ही कहते हों कि कामवासना बुरी है, लेकिन परमात्मा नहीं कहता कि कामवासना बुरी है। नहीं तो रचता नहीं। नहीं तो उसके होने की कोई जरूरत न थी। परमात्मा तो रचे जाता है, महात्माओं की वह सुनता नहीं!

जरूर कोई निहित प्रयोजन है। और वह निहित प्रयोजन यह है कि ये महात्मा भी पैदा नहीं हो सकते थे, अगर कामवासना न होती। ये महात्मा भी उसी अनुभव से गुजरकर पार गए हैं। इन्होंने भी उसमें पड़कर जाना है कि व्यर्थ है। वह व्यर्थता का बोध बड़ा कीमती है। वह होगा ही तब, जब आपको अनुभव में आ जाए।

तो जल्दी मत करना। उधार अनुभव का भरोसा मत करना। इसका यह मतलब नहीं है कि आप अनुभवियों को कहो कि तुम गलत हो। आपको इतना ही कहना चाहिए कि हमें अभी पता नहीं है। और हम

उतरना चाहते हैं, और हम जानना चाहते हैं कि क्या है यह कामवासना। और हम इसे पूरा जान लेंगे। तो अगर यह गलत होगी, तो वह जानना मुक्ति ले आएगा। और अगर यह सही होगी, तो मुक्त होने की कोई जरूरत नहीं है।

एक बात निश्चित है कि अब तक जिन्होंने भी ठीक से जान लिया, वे मुक्त हो गए हैं। और दूसरी बात भी निश्चित है कि जिन्होंने नहीं जाना, वे कितना ही सिर पीटें और अनुभवियों की बातें मानते रहें, वे कभी मुक्त नहीं हुए हैं, न हो सकते हैं।

इतनी घबड़ाहट क्या है? इतना डर क्या है? भीतर जो छिपा है, उसे पहचानना होगा। उपयोगी है कि उससे आप गुजरें।

मैंने सुना है कि एक सम्राट ने अपने बेटे को एक फकीर के पास शिक्षा के लिए भेजा। हर माह खबर आती रही कि शिक्षा ठीक चल रही है। साल पूरा हो गया। और वह दिन भी आ गया, जिस दिन फकीर युवक को लेकर राजदरबार आएगा। और सम्राट बड़ा प्रसन्न था। उसने अपने सारे दरबारियों को बुलाया था कि आज मेरा बेटा उस महान फकीर के पास शिक्षित होकर वापस लौट रहा है।

लेकिन जब फकीर लड़के को लेकर दरवाजे पर राजमहल के पहुंचा, तो राजा की छाती बैठ गई। देखा कि फकीर ने अपना बोरिया-बिस्तर सब राजकुमार के सिर पर रखा हुआ है। और कपड़े उसे ऐसे पहना दिए हैं, जैसे कि कोई कुली कपड़े पहने हो।

सम्राट तो बहुत क्रोध से भर गया। और उसने कहा कि मैंने शिक्षा देने भेजा था, मेरे लड़के का इस तरह अपमान करने नहीं! फकीर ने कहा कि अभी आखिरी सबक बाकी है। अभी बीच में कुछ मत बोलो। और अभी साल पूरा नहीं हुआ है, सूरज ढलने को शेष है। अभी लड़का मेरे जिम्मे है। तब उस फकीर ने अपने सामान में से एक कोड़ा निकाला। सब सामान लड़के से नीचे रखवाकर उसे सात कोड़े लगाए दरबार में।

राजा तो चीख पड़ा, लेकिन अपने वचन से बंधा था कि एक साल के लिए दिया था। और सूरज अभी नहीं डूबा था। लेकिन उसने कहा कि कोई हर्ज नहीं, सूरज डूबेगा; और न तुझे फांसी लगवा दी--उस फकीर से कहा--सूरज डूबेगा; तू घबड़ा मत। कोई फिक्र नहीं; तू कर ले। एक साल का वायदा है।

लेकिन और दरबारियों में बूढ़े समझदार लोग भी थे। उन्होंने राजा से कहा कि थोड़ा पूछो भी तो उससे कि वह क्या कर रहा है! आखिर उसका प्रयोजन क्या है?

तो किसी ने पूछा, तो फकीर ने कहा, मेरा प्रयोजन है। यह कल राजा बनेगा। और अनेक लोगों को कोड़े लगवाएगा। इसे कोड़े का अनुभव होना चाहिए। इसे पता होना चाहिए कि कोड़े का मतलब क्या है। कल यह राजा बनेगा और न मालूम कितने लोग इसका सामान ढोने में जिंदगी व्यतीत कर देंगे। इसको पता होना चाहिए कि जो आदमी सड़क पर सामान ढोकर आ रहा है, उसके भीतर की गति कैसी है। इसे राजा होने के पहले उन सब अनुभवों से गुजर जाना चाहिए, जो कि राजा होने के बाद इसको कभी न मिल सकेंगे। लेकिन अगर यह उनसे नहीं गुजरता है, तो यह हमेशा अप्रौढ़ रह जाएगा। तो मैंने सालभर में इसकी एक ही शिक्षा पूरी की है पूरे साल में, कि जो इसको राजा होने के बाद कभी भी न होगा, उस सब से मैंने इसे गुजार दिया है।

यह संसार एक विद्यापीठ है। और परमात्मा आपको बहुत-से अनुभव से गुजार रहा है। बहुत तरह की आगों में जला रहा है। वह जरूरी है। उससे निखरकर आप असली कुंदन, असली सोना बनेंगे। सब कचरा जल जाएगा।

लेकिन आपकी हालत ऐसी है कि कचरे से भरा सोना हैं आप, और आग से गुजरकर जो उस तरफ चले गए हैं अनुभवी, उनकी बातें सुन रहे हैं। और वे कहते हैं कि यह आग है, इससे बचना। लेकिन इसी आग से गुजरकर वे शुद्ध हुए हैं। और अगर उनकी बात मानकर तुम इसी तरफ रुक गए, और तुमने कहा, यह आग है, इससे हम बचेंगे, तो ध्यान रखना कि वह कचरा भी बच जाएगा जो आग में जलता है।

आग से गुजरना। उन अनुभवियों से पूछना कि तुम यह आग से गुजरकर कह रहे हो कि बिना गुजरे! और अगर यह तुम गुजरकर कह रहे हो और मैंने बिना गुजरे यह बात मान ली, तो मैं डूब गया तुम्हारे साथ। उचित है; तुम्हारी बात मैं ख्याल रखूंगा। लेकिन मुझे भी अनुभव से गुजर जाने दो। मेरे भी कचरे को जल जाने दो।

कामवासना आग है, लेकिन उसमें बहुत-सा कचरा जल जाता है। अगर आप बोधपूर्वक, समझपूर्वक, होशपूर्वक कामवासना में उतर पाएं, तो आपका सब कचरा जल जाता है, आप सोना बन जाते हैं। और वह जो सोना है, वही क्रांति है। वह जो सोने की उपलब्धि है, वही क्रांति है।

तो मैं आपसे कहना चाहता हूं, जो आपके अनुभव से आए, उसे आने देना। और जल्दी मत करना। उधार अनुभव मत ले लेना। उनसे ज्ञान तो बढ़ जाएगा, आत्मा नहीं बढ़ेगी। उनसे बुद्धि में विचार तो बहुत बढ़ जाएंगे, लेकिन आप वही के वही रह जाएंगे। आग से गुजरे बिना कोई उपाय नहीं है। सस्ते में कुछ भी मिलता नहीं है।

कामवासना एक पीड़ा है। उसमें सुख तो ऊपर-ऊपर है, भीतर दुख ही दुख है। बाहर-बाहर झलक तो बड़ी रंगीन है, बड़ी इंद्रधनुष जैसी है। लेकिन भीतर हाथ कुछ भी नहीं आता। सिर्फ उदासी, सिर्फ विषाद, सिर्फ आंसू हाथ लगते हैं। लेकिन वे आंसू बाहर से बहुत चमकते हैं और मोती मालूम पड़ते हैं। लेकिन पास जाकर ही पता चलता है कि मोती झूठे हैं और आंसू हैं, और पीछे सिर्फ विषाद रह जाता है। लेकिन इससे गुजरना होगा।

इससे जो बच जाता है... आप बच भी नहीं पाते। बचने का मतलब केवल इतना है कि आप पास ही नहीं जा पाते मोती के पूरे कि पता चल जाए कि वह आंसू की बूंद है, मोती नहीं है। आप जाते भी हैं, क्योंकि भीतर वासना का धक्का है। परमात्मा कह रहा है कि जाओ, क्योंकि अनुभव से गुजरोगे, तो ही निखरोगे। जाओ।

परमात्मा बहुत निःशंक भेज रहा है। एक-एक बच्चे को भेज रहा है। इधर हम सुधार-सुधारकर जिंदगीभर परेशान हो जाते हैं। बूढ़े जब तक सुधर पाते हैं, उनको वह हटा लेता है। और फिर बच्चे पैदा कर देता है। वे फिर बिगड़े के बिगड़े। फिर वही उपद्रव शुरू। फिर वही करेंगे जो अनुभवी कह गए हैं कि मत करना।

यह परमात्मा बच्चे क्यों बनाता है? बूढ़े क्यों नहीं बनाता? आखिर बूढ़े भी पैदा कर सकता था सीधे के सीधे। कोई झगड़ा-झंझट नहीं होती। अनुभवी पैदा हो जाते। लेकिन बूढ़े भी अगर वह पैदा कर दे, तो बच्चे ही होंगे। क्योंकि अनुभव के बिना कोई वार्धक्य, कोई बोध पैदा नहीं होता।

वह बच्चे पैदा करता है। उसकी हिम्मत बड़ी अनूठी है। वह नासमझ पैदा करता है, समझदारों को हटाता है। हम तो मानते ही ऐसा हैं कि जिसकी समझ पूरी हो जाए, फिर उसका जन्म नहीं होता। उसका मतलब, समझदारों को फौरन हटाता है और नासमझों को भेजता चला जाता है।

विद्यालय में नासमझ ही भेजे जाते हैं। जब बात पूरी हो जाती है, विद्यालय के बाहर हो जाते हैं। लेकिन जो बच्चा स्कूल में जा रहा है, वह स्कूल से रिटायर होते हुए प्रोफेसर की बात सुनकर बाहर ही रुक जाए, तो क्या गति होगी?

एक बच्चा अभी स्कूल में प्रवेश कर रहा है। आज पहला दिन है उसके स्कूल में प्रवेश का। उसी दिन कोई बूढ़ा प्रोफेसर रिटायर हो रहा है। वह प्रोफेसर कहता है, कुछ भी नहीं है यहां। जिंदगी हमने ऐसे ही गंवाई। सब बेकार गया। तू अंदर मत जा। तू वापस लौट चल।

बस, यह आपकी हालत है। रिटायर होते लोगों से जरा सावधान। उनकी बात तो सच है। बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, अनुभव से कह रहे हैं। पर आपको भी उस अनुभव से गुजरना ही होगा। आप भी एक दिन वही कहोगे। लेकिन थोड़ा समय पकने के लिए जरूरी है। आग में गुजरना जरूरी है, तो परिपक्वता आती है।

इसलिए डरें मत। परमात्मा ने जो भी जीवन की नैसर्गिक वासनाएं दी हैं, उनमें सहज भाव से उतरें। घबड़ाएं मत। घबड़ाना क्या है? जब परमात्मा नहीं घबड़ाता, तो आप क्यों घबड़ा रहे हैं? जब वह नहीं डरा हुआ है, तो आप क्यों इतने डरे हुए हैं? उतरें।

बस, उतरने में एक ही ख्याल रखें कि पूरी तरह उतरें। ये कचरे ख्याल दिमाग में न पड़े रहें कि गलत है। क्योंकि गलत है, तो उतर ही नहीं पाते, अधूरे ही रह जाते हैं। हाथ भी बढ़ता है और आग तक पहुंच भी नहीं पाता, रुक जाता है बीच में। तो दोहरे नुकसान होते हैं। न तो अनुभव होता है, और न लौटना होता है। अधकचरे, बीच में लटके रह जाते हैं।

इस जमीन पर जो लोग बीच में लटके हैं, उनकी पीड़ा का अंत नहीं है। इधर पीछे से महात्मा खींचते हैं कि वापस लौट आओ। और उधर भीतर से परमात्मा धक्के देता है कि जाओ, अनुभव से गुजरो। इन दोनों की रस्साकसी में आपकी जान निकल जाती है।

मैं कहता हूं कि मत सुनो। निसर्ग की सुनो; स्वभाव की सुनो; वह जो कह रहा है, जाओ। एक ही बात ध्यान रखो कि होशपूर्वक जाओ, समझपूर्वक जाओ। समझते हुए जाओ, क्या है? कामवासना क्या है, इसको किताब से पढ़ने की क्या जरूरत है? इसको उतरकर ही देख लो। और जब उतरो, तो पूरे ध्यानपूर्वक उतरो।

लेकिन मैं जानता हूं लोगों को, वे मेरे पास आते हैं। वे मुझसे कहते हैं, कामवासना से कैसे छूटें? मैं उनसे पूछता हूं, जब तुम कामकृत्य में उतरते हो, तब तुम्हारे दिमाग में कोई और ख्याल तो नहीं होता? वे कहते हैं, हजार ख्याल होते हैं। कभी दुकान की सोचते हैं, कभी बाजार की सोचते हैं, कभी कुछ और सोचते हैं। कभी यह सोचते हैं कि कैसा पाप कर रहे हैं! इसका क्या प्रायश्चित्त होगा?

तो तुम कामवासना में भी जब उतर रहे हो, तब भी तुम्हारी खोपड़ी कहीं और है, तो तुम जान कैसे पाओगे कि यह क्या है! ध्यान बना लो। हटा दो सब विचारों को। जब काम में उतर रहे हो, तो पूरे उतर जाओ, पूरे मनपूर्वक, पूरे प्राण से, पूरा बोध लेकर। दुबारा उतरने की जरूरत न रहेगी।

एक बार भी अगर यह हो जाए कि कामवासना का और ध्यान का मिलन हो जाए, तो वहीं पहला बोध, पहला होश उपलब्ध हो जाता है। सब चीज व्यर्थ दिखाई पड़ती है, बचकानी हो जाती है। दुबारा जाना भी चाहो, तो नहीं जा सकते। बात ही व्यर्थ हो गई।

जब तक यह न हो जाए, तब तक जाना ही पड़ेगा। और प्रकृति कोई अपवाद नहीं मानती। प्रकृति तो उन्हीं को पार करती है, जो पूरी तरह पक जाते हैं। कच्चे लोगों को नहीं निकलने देती। अगर आप कच्चे हैं, तो फिर जन्म देगी। फिर धक्के देगी।

अगर आप कच्चे ही बने रहते हैं, तो अनंत-अनंत जन्मों तक भटकना पड़ेगा। पक्का अगर होना है, तो भय छोड़ें। और निसर्ग को बोधपूर्वक अनुभव करें। मुक्ति वहां है।

एक मित्र ने पूछा है कि कृष्ण कहते हैं, सर्व आरंभों को छोड़ने वाला भक्त मुझे प्रिय है। तो क्या परमात्मा की खोज का आरंभ भी छोड़ देना चाहिए?

अगर आरंभ कर दिया हो, तो छोड़ देना चाहिए। मगर अगर आरंभ ही न किया हो, तो छोड़िएगा क्या खाक? है क्या छोड़ने को आपके पास? आरंभ कर दिया हो, तो छोड़ना ही पड़ेगा। लेकिन आरंभ कहां किया है, जिसको आप छोड़ दें!

हमारी तकलीफ यह है कि हमें यही पता नहीं है कि हमारे पास क्या है! और अक्सर हम वह छोड़ते हैं, जो हमारे पास नहीं है। और उसको पकड़ते हैं, जो है।

आपने परमात्मा की खोज शुरू की है? आरंभ हुआ? अगर हो गया है, तो कृष्ण कहते हैं, उसे भी छोड़ दो। इसी वक्त उपलब्ध हो जाओगे। लेकिन अगर वह हुआ ही नहीं है तो छोड़िएगा कैसे!

आदमी अपने को इस-इस तरह से धोखे देता है कि उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है! बहुत मुश्किल है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आप कहते हैं, प्रयत्न छोड़ना पड़ेगा! तो मैं उनसे पूछता हूं, प्रयत्न कर रहे हो? कर लिया है प्रयत्न, तो छोड़ना पड़ेगा। अभी प्रयत्न ही नहीं किया है, छोड़िएगा क्या?

लोग कहते हैं कि मूर्ति से बंधना ठीक नहीं है, मूर्ति तो छोड़नी है। वे ठीक कहते हैं। लेकिन बंध गए हो, कि छोड़ सको?

आपकी हालत ऐसी है, मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन शादी के दफ्तर में पहुंच गया और उसने जाकर सब पूछताछ की कि तलाक के नियम क्या हैं। सारी बातचीत समझकर वह चलने को हुआ, तो रजिस्ट्रार ने उससे पूछा कि कब तलाक के लिए आना चाहते हो? उसने कहा, अभी शादी कहां की है? अभी तो मैं पक्का कर रहा हूं कि अगर शादी कर लूं, तो तलाक की सुविधा है या नहीं! कोई झंझट में तो नहीं पड़ जाऊंगा!

आप भी तलाक की चिंता में पड़ जाते हैं, इसकी बिना फिक्र किए कि अभी शादी भी हुई या नहीं। आरंभ किया है आपने परमात्मा की खोज का? एक इंच भी चले हैं उस तरफ? एक कदम भी उठाया है? एक आंख भी उस तरफ की है? कभी नहीं की है।

अगर वह आरंभ हो गया है, तो कृष्ण कहते हैं, उसे छोड़ना होगा।

सभी आरंभ छोड़ने होते हैं, तभी तो अंत उपलब्ध होता है। सभी आरंभ छोड़ने होते हैं, तभी तो लक्ष्य उपलब्ध होता है। आरंभ भी एक वासना है। परमात्मा को पाना भी एक वासना है। और कठिनाई यही है कि परमात्मा को पाने के लिए सभी वासनाओं से मन रिक्त होना चाहिए। परमात्मा को पाने की वासना भी बाधा है।

मगर वह आखिरी वासना है, जो जाएगी। अभी मत छोड़ देना; अभी तो वह की ही नहीं है। अभी तो करें। अभी तो मैं कहता हूं, परमात्मा को पाने की जितनी वासना कर सकें, करें। इतनी वासना करें कि सभी वासनाएं उसी में लीन हो जाएं। एक ही वासना रह जाए सभी वासनाओं की मिलकर, एक ही धारा बन जाए, कि परमात्मा को पाना है। धन पाना था, वह भी इसी में डूब जाए। प्रेम पाना था, वह भी इसी में डूब जाए। यश पाना था, वह भी इसी में डूब जाए। सारी वासनाएं डूब जाएं; एक ही वासना रह जाए कि परमात्मा को पाना है। ताकि आपके जीवन की सभी ऊर्जा एक तरफ दौड़ने लगे।

और जिस दिन यह एकता आपके भीतर घटित हो जाए, उस दिन वह वासना भी छोड़ देना कि परमात्मा को पाना है। उसी वक्त परमात्मा मिल जाता है। क्योंकि परमात्मा कहीं दूर नहीं है कि उसे खोजने जाना पड़े; वह यहीं है। जो दूर हो, उसे पाने के लिए चलना पड़ता है। जो पास हो, उसे पाने के लिए रुकना पड़ता है। जिसे खोया हो, उसे खोजना पड़ता है। जिसे खोया ही न हो, उसके लिए सिर्फ शांत होकर देखना पड़ता है।

तो वह जो परमात्मा को पाने की वासना है आखिरी, वह सिर्फ उपाय है सारी वासनाओं को छोड़ देने का। जब सब छूट जाएं, तो उसे भी छोड़ देना है उसी तरह, जैसे पैर में कांटा लग जाए, तो हम एक और कांटा निकाल लाते हैं वृक्ष से, पैर के कांटे को निकालने के लिए।

लेकिन फिर आप जब पैर का कांटा निकालकर फेंक देते हैं, तो दूसरे कांटे का क्या करते हैं जिसने आपकी सहायता की? क्या उसको घाव में रख लेते हैं? कि सम्हालकर रखें, यह कांटा बड़ा परोपकारी है। कि इस कांटे ने कितनी कृपा की कि पुराने कांटे को निकाल दिया। तो अब इसको सम्हालकर रख लें इसी घाव में; कभी जरूरत पड़े।

तो फिर आप मूढ़ता कर रहे हैं। तो कांटा निकालना व्यर्थ गया, क्योंकि दूसरा कांटा भी उतना ही कांटा है। और हो सकता है, दूसरा कांटा पहले कांटे से भी मजबूत हो, तभी तो निकाल पाया। खतरनाक है। यह कांटा जान ले लेगा।

परमात्मा का विचार, उसका ध्यान, इस जगत के सारे कांटों को निकाल देने के लिए है। लेकिन वह भी कांटा है।

पर जल्दी मत करना यह सोचकर कि अगर कांटा है, तो फिर हमको क्या मतलब है! हम तो वैसे ही कांटों से परेशान हैं, और एक कांटा क्या करेंगे? इतनी जल्दी मत करना। वह कांटा इन सारे कांटों को निकालने के काम आ जाता है। और जिस दिन आपका कांटा निकल गया, उस दिन दोनों कांटों को साथ-साथ फेंक देना पड़ता है। फिर उस कांटे को रखना नहीं पड़ता।

जैसे सब वासनाएं खो जाती हैं, अंत में परमात्मा को पाने की वासना भी छोड़ देनी पड़ती है। वह आखिरी वासना है। उसके छूटते ही आपको पता चलता है कि वह मिला ही हुआ है।

हमारी भाषा में अड़चन है। ऐसा लगता है कि परमात्मा कहीं है, जिसको खोजना है। दूर कहीं छिपा है, जिसका पता लगाना है। कहीं दूर है, जिसका रास्ता होगा, यात्रा होगी।

यह भ्रांति है। परमात्मा आपका अस्तित्व है। आपके होने का नाम ही परमात्मा है। आप हैं इसलिए कि वह है। उसी की श्वास है, उसी की धड़कन है। यह आपकी भ्रांति है कि श्वास मेरी है और धड़कन मेरी है। बस, यह भ्रांति भर टूट जाए, तो वह प्रकट है। वह कभी छिपा हुआ नहीं है।

और यह भ्रांति तब तक बनी रहेगी, जब तक आप सोचते हैं कि मुझे कुछ पाना है--परमात्मा पाना है--तो आप बने हैं। आपकी वासना के कारण आप बने हुए हैं। और जब तक वासना है, तब तक आप भी भीतर रहेंगे। नहीं तो वासना कौन करेगा!

और जब वासनाएं सभी खो जाती हैं, आखिरी वासना भी खो जाती है, तो आप भी खो जाते हैं। क्योंकि जब वासना नहीं, तो वासना करने वाला भी नहीं बचता है। वह जब मिट जाता है, तत्क्षण दृष्टि बदल जाती है। जैसे अचानक अंधेरे में प्रकाश हो जाए। और जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था, वहां सब कुछ दिखाई पड़ने लगे। वासना के खोते ही अंधेरा खो जाता है और प्रकाश हो जाता है।

आखिरी सवाल। एक मित्र ने पूछा है कि बुद्ध के शिष्यों में कोई भी उनकी श्रेणी का नहीं हुआ। क्राइस्ट के शिष्यों में भी कोई दूसरा क्राइस्ट नहीं बन सका। महावीर के शिष्य ठीक उनके विपरीत हैं। कृष्ण के शिष्यों में भी कोई कृष्ण नहीं है। क्या फिर भी आप गुरु-शिष्य प्रणाली पर विश्वास करते हैं?

पहली तो बात यह कि आपकी जानकारी बहुत कम है। बुद्ध के शिष्यों में हजारों लोग बुद्ध बने। गौतम बुद्ध नहीं बने। गौतम बुद्ध कोई भी नहीं बन सकता है दूसरा। बुद्ध बने, बुद्धत्व को उपलब्ध हुए।

गौतम बुद्ध, वह जो शुद्धोदन का पुत्र सिद्धार्थ है, उसका जो व्यक्तित्व है, उसका जो ढंग है, वैसा तो किसी का कभी नहीं होने वाला। वैसा तो वह अकेला ही है इस जगत में।

आप भी अकेले हैं, अद्वितीय हैं, बेजोड़ हैं। आप जैसा आदमी न कभी हुआ और न कभी होगा। कोई उपाय नहीं है आप जैसा आदमी होने का। अनरिपीटेबल! आपको पुनरुक्त नहीं किया जा सकता। डिट्टो, आपका कोई आदमी खड़ा नहीं किया जा सकता। आप बिल्कुल बेजोड़ हैं।

यह अस्तित्व एक-एक चीज को बेजोड़ बनाता है। परमात्मा बड़ा अदभुत कलाकार है। वह नकल नहीं करता। बड़े से बड़ा कलाकार भी नकल में उतर जाता है।

एक दफा पिकासो के पास एक चित्र लाया गया। पिकासो के चित्रों की कीमत है बड़ी। उस चित्र की कीमत कोई पांच लाख रुपए थी। और जिस आदमी ने खरीदा था, वह पक्का करने आया था कि यह चित्र ओरिजिनल है? आपका ही बनाया हुआ है? किसी ने नकल तो नहीं की है? तो पिकासो ने चित्र देखकर कहा कि यह नकल है; ओरिजिनल नहीं है।

वह आदमी तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने कहा, लेकिन जिससे मैंने खरीदा है, उसने कहा है कि उसकी आंख के सामने आपने यह चित्र बनाया है!

तो वह आदमी लाया गया। और उस आदमी ने कहा कि हद कर रहे हो; क्या भूल गए? यह चित्र तो मैं मौजूद था तुम्हारे सामने, जब तुमने इसे बनाया। यह तुम्हारा ही बनाया हुआ है। पिकासो ने कहा, मैंने कब कहा कि मैंने नहीं बनाया! लेकिन यह भी नकल है, क्योंकि पहले मैं ऐसा एक चित्र और बना चुका हूं। उसकी नकल है। मैं भी चुक जाता हूं बना-बनाकर, तो फिर रिपीट करने लगता हूं खुद ही को। इसलिए इसको मैं ओरिजिनल नहीं कहता। इससे क्या फर्क पड़ता है कि नकल मैंने की अपने ही चित्र की या किसी और ने की! नकल तो नकल ही है।

लेकिन परमात्मा ने आज तक नकल नहीं की। एक आदमी बस एक ही जैसा है। वैसा दूसरा आदमी फिर दुबारा नहीं होता। इससे मनुष्य बड़ी अदभुत कृति है। मनुष्य को ही क्यों हम कहें, एक बड़े वृक्ष पर एक पत्ते जैसा दूसरा पत्ता भी नहीं खोज सकते आप। इस जमीन पर एक कंकड़ जैसा दूसरा कंकड़ भी नहीं खोज सकते। प्रत्येक चीज मौलिक है, ओरिजिनल है।

तो गौतम बुद्ध जैसा तो कोई भी नहीं हो सकता। इसका यह मतलब नहीं है कि और लोग बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हुए। बुद्ध के शिष्यों में सैकड़ों लोग उपलब्ध हुए।

एक बार तो बुद्ध से भी किसी ने जाकर पूछा--हो सकता है यही मित्र रहे हों--बुद्ध से जाकर किसी ने पूछा कि आप जैसे आप अकेले ही दिखाई पड़ते हैं। आपके पास दस हजार शिष्य हैं, इनमें से कितने लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हैं? बुद्ध ने कहा, इनमें से सैकड़ों लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हैं।

तो उस आदमी ने पूछा, लेकिन इनका कोई पता नहीं चलता! तो बुद्ध ने कहा, मैं बोलता हूं; ये चुप हैं। और ये इसलिए चुप हैं कि जब मैं बोलता हूं, तो इनको परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। और तुम्हें मैं नहीं दिखाई पड़ता; मैं जो बोलता हूं, वह सुनाई पड़ता है। मैं भी चुप हो जाऊं, तो तुम मेरे प्रति भी अंधे हो जाओगे। ये भी जब बोलेंगे, तब तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। ये चुप हैं, क्योंकि मैं बोल रहा हूं; कोई जरूरत नहीं है।

और जो भी उपलब्ध हो जाते हैं, जरूरी नहीं कि बोलें। बोलना अलग बात है। बहुत-से सदगुरु नहीं बोले, चुप रहे हैं। बहुत-से सदगुरु बोले नहीं, नाचे, गाए। उसी से उन्होंने कहा। बहुत-से सदगुरुओं ने चित्र बनाए, पेंटिंग की। उसी से उन्होंने कहा। बहुत-से सदगुरुओं ने गीत गाए, कविताएं लिखीं। उसी से उन्होंने कहा। बहुत-से सदगुरुओं ने उठा लिया एक वाद्य और चल पड़े, और गाते रहे गांव-गांव। और उसी से उन्होंने कहा। जो जैसा कह सकता था, उसने उस तरह कहा। जो मौन ही रह सकता था, वह मौन ही रह गया। उसने अपने मौन से ही कहा।

फिर और भी बहुत कारण हैं। गौतम बुद्ध सम्राट के लड़के थे। सारा देश उनको जानता था। और जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए, तो सारे देश की नजरें उन पर थीं। फिर कोई गरीब का लड़का भी बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ होगा। न उसे कोई जानता है, न सबकी उस पर नजरें हैं।

फिर बुद्ध शिक्षक हैं। सभी शिक्षक नहीं होते। जरूरी भी नहीं है। शिक्षक होना अलग कला है, अलग गुण है। तो बुद्ध समझा सके, कह सके, ढंग से कह सके। इसलिए हमें इतिहास में उनका उल्लेख रह जाता है। इतिहास सभी बुद्धों की खबर नहीं रखता, कुछ बुद्धों की खबर रखता है, जो इतिहास पर स्पष्ट लकीरें छोड़ जाते हैं।

क्राइस्ट को प्रेम करने वाले लोगों में भी लोग उपलब्ध हो गए हैं। लेकिन आपको पता है, क्राइस्ट को प्रेम करने वाले जो उनके बारह शिष्य थे, वे बड़े दीन-हीन थे, बड़े गरीब थे। कोई मछुआ था; कोई लकड़हारा था; कोई बढ़ई था; कोई चमार था। वे सब दीन-हीन गरीब लोग थे, पढ़े-लिखे नहीं थे। फिर भी उपलब्ध हुए; और उन्होंने वह जाना, जो जीसस ने जाना।

लेकिन जीसस को सूली लग गई, यही एक फायदा रहा। सूली लगने की वजह से आपको याद रहे। जीसस की वजह से क्रिश्चियनिटी पैदा नहीं हुई, क्रास की वजह से पैदा हुई। अगर सूली न लगती, तो जीसस कभी के भूल गए होते। वह सूली याददाश्त बन गई। जीसस का सूली पर लटकना एक घटना हो गई; वह घटना इतिहास पर छा गई। इतिहास के अपने ढंग हैं।

लेकिन इस ख्याल में मत रहें कि महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, या बुद्ध के शिष्यों में कोई उनको उपलब्ध नहीं हुआ। हुआ; अपने ढंग से हुआ। ठीक उसी जगह पहुंच गया, जहां वे पहुंचे थे। लेकिन अपने ही ढंग से पहुंचा। कोई नाचता हुआ पहुंचा; कोई चुप होकर पहुंचा; कोई बोलकर पहुंचा। अपने-अपने ढंग थे। उन ढंगों में फर्क हैं। लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्तित्व के पास जो भी समर्पित होने की सामर्थ्य रखता है, वह जरूर पहुंच जाएगा।

समर्पण कला है, सीखने की। और बुद्ध जैसे व्यक्तित्व के पास जब जाएं, तो वहां तो पूरी तरह झुककर सीखने की सामर्थ्य होनी चाहिए। हम झुकने की कला ही भूल गए हैं। इसलिए दुनिया से धर्म कम होता जाता है।

एक मित्र मेरे पास आए थे। समझदार हैं, पढ़े-लिखे हैं, दर्शन का चिंतन करते हैं, विचार करते हैं। बड़े अच्छे सवाल उन्होंने पूछे थे, बड़े गहरे। लेकिन सब सवालों पर पानी फेर दिया जाते वक्त। जाते वक्त उन्होंने कहा कि एक बात और; आप ऊपर क्यों बैठे हैं, मैं नीचे क्यों बैठा हूं, यह और पूछना है!

सीखने आए हैं, लेकिन नीचे भी नहीं बैठ सकते। तो मैंने कहा, पहले ही कहना था। मैं और ऊपर बिठा देता। इसमें कोई अड़चन न थी। लेकिन तब मैं आपसे सीखता। तो जिस दिन आपको मुझे कुछ सिखाने का भाव आ जाए; जरूर आ जाना। और आपको काफी ऊंचाई पर बिठा दूंगा और मैं नीचे बैठकर सीखूंगा। लेकिन सीखने आए हों, तो नीचे बैठना तो बात मूल्य की नहीं है, लेकिन झुकने का भाव मूल्य का है।

वह उनको अखरता रहा होगा। बातें तो बड़ी ऊंची कर रहे थे--परमात्मा की, आत्मा की--लेकिन पूरे वक्त जो बात खली रही होगी, वही आखिरी में निकली, कि नीचे बैठा हूं! बैठ तो गए थे, इतना साहस भी नहीं था कि पहले ही कह देते कि मैं खड़ा रहूंगा, बैठूंगा नहीं। या कुछ ऊंची कुर्सी बुलाएं, उस पर बैठूंगा; नीचे नहीं बैठ सकता। कह देते तो कोई अड़चन न थी। ज्यादा ईमानदारी की बात होती; ज्यादा सच्चे साबित होते। वह तो भीतर छिपाए रखे।

तो उनका परमात्मा का प्रश्न और आत्मा का सब झूठा हो गया। क्योंकि भीतर असली प्रश्न यही था, जो चलते वक्त उन्होंने पूछा, कि अब एक बात और पूछ लूं आखिरी कि आप ऊपर क्यों बैठे हैं, मैं नीचे क्यों बैठा हूं!

झुकने की वृत्ति खो गई है। गुरु और शिष्य के संबंध का और कोई मतलब नहीं है। इतना ही मतलब है कि आप जिसके पास सीखने गए हैं, वहां झुकने की तैयारी से जाना। नहीं तो मत जाना। कौन कह रहा है! अगर झुकने की तैयारी न हो, तो मत जाना।

हालत हमारी ऐसी है कि नदी में खड़े हैं, लेकिन झुक नहीं सकते और प्यासे हैं। और झुकें न, तो बर्तन में पानी कैसे भरे! मगर अकड़े खड़े हैं। प्यासे मर जाएंगे! लेकिन झुकें कैसे? क्योंकि झुकना, और नदी के सामने!

मत झुकें। नदी बहती रहेगी। नदी को आपके झुकने से कुछ मजा नहीं आने वाला है। नदी आपके झुकने के लिए नहीं बह रही है। न झुकाने में कोई रस है। अगर प्यास हो, तो झुक जाना। अगर प्यास न हो, तो खड़े रहना।

लेकिन हमारा मन ऐसा है कि हम अकड़े खड़े रहें, नदी आए हमारे बर्तन में, झुके और भर दे बर्तन को। और फिर धन्यवाद दे कि बड़ी कृपा तुम्हारी कि तुम प्यासे हुए, नहीं तो मेरा नदी होना अकारथ हो जाता!

गुरु-शिष्य का इतना ही अर्थ है कि गुरु है, जिसने पा लिया है, जो अब बह रहा है परमात्मा की तरफ। जिसकी नदी बही जा रही है। और ज्यादा देर नहीं बहेगी। थोड़े दिन में तिरोहित हो जाएगी और सागर में खो जाएगी।

तो बाहर की नदी जो है, वह तो बहती भी रहेगी। उधर हिमालय पर पानी बरसता ही रहेगा हर साल और नदी बहती रहेगी। ये बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट की जो नदियां हैं, ये कोई हमेशा नहीं बहती रहेंगी। कभी प्रकट होती हैं; कभी बहती हैं। फिर सागर में खो जाती हैं। फिर हजारों साल लग जाते हैं। नदी का पाट खो जाता है। कहीं पता नहीं चलता कि नदी कहां खो गई। ये नदियां सरस्वती जैसी हैं; गंगा और यमुना जैसी नहीं। ये तिरोहित हो जाती हैं।

तो जब तक मौका हो, तब तक झुक जाना। मगर लोग ऐसे नासमझ हैं कि जब नदी खो जाती है और सिर्फ रेत का पाट रह जाता है, तब वे लाखों साल तक झुकते रहते हैं।

बुद्ध की नदी पर अभी भी झुक रहे हैं! और जब बुद्ध मौजूद थे, तब वे अकड़कर खड़े रहे। अब झुक रहे हैं। अब वहां रेत है। और वह नदी कभी की खो गई है। वहां नदी थी कभी; अब वहां सिर्फ रेत है।

लेकिन अभी और नदियां बह रही हैं। लेकिन वहां आप मत झुकना, क्योंकि वहां झुके तो प्यास भी बुझ सकती है। बचाना वहां अपने को। यह नदी वाली स्थिति है गुरु की। और शिष्य जब तक शिष्य न हो जाए, झुकना न सीख ले, तब तक कुछ भी नहीं सीख पाता है।

अब हम सूत्र लें।

और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है; न सोच-चिंता करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है। और जो पुरुष शत्रु और मित्र में तथा मान और अपमान में सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुखादिक द्वंद्वों में सम है और सब संसार में आसक्ति से रहित है, वह मुझको प्रिय है।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है; न सोच करता है, न कामना करता है; जो शुभ-अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है।

क्या है इसका अर्थ? आप सोचकर थोड़े हैरान होंगे कि जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है। क्या प्रसन्न होना भी बाधा है? क्या हर्षित होना भी बाधा है? कृष्ण के वचन से लगता है। थोड़ा इसके मनोविज्ञान में प्रवेश करना पड़े।

आप हंसते क्यों हैं? कभी आपने सोचा? क्या आप इसलिए हंसते हैं कि आप प्रसन्न हैं? या आप इसलिए हंसते हैं कि आप दुखी हैं?

उलटा लगेगा, लेकिन आप हंसते इसलिए हैं, क्योंकि आप दुखी हैं। दुख के कारण आप हंसते हैं। हंसना आपका दुख भुलाने का उपाय है। हंसना एंटीडोट है, उससे दुख विस्मृत होता है। आप दूसरे पहलू पर घूम जाते हैं। आपके भीतर बड़ा तनाव है। हंस लेते हैं, वह तनाव बिखर जाता है और निकल जाता है।

इसलिए आप यह मत समझना कि बहुत हंसने वाले लोग, बहुत प्रसन्न लोग हैं। संभावना उलटी है। संभावना यह है कि वे भीतर बहुत दुखी हैं।

नीत्शे ने कहा है कि मैं हंसता रहता हूं। लोग मुझसे पूछते हैं कि क्यों हंसते रहते हो, तो मैं छिपा जाता हूं। क्योंकि बात बड़ी उलटी है। मैं इसलिए हंसता रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। अगर न हंसूं, तो रोने लगूंगा। वे आंसू न दिख जाएं किसी को, वह दीनता न प्रकट हो जाए, तो मैं हंसता रहता हूं। मेरी हंसी एक आवरण है, जिसमें मैं दुख को छिपाए हुए हूं।

दुखी लोग अक्सर हंसते रहते हैं। कुछ भी मजाक खोज लेंगे, कुछ बात खोज लेंगे और हंस लेंगे। हंसने से थोड़ा हलकापन आ जाता है। लेकिन अगर कोई आदमी भीतर से बिल्कुल दुखी न रहा हो, तो फिर हर्षित होने की यह व्यवस्था तो टूट जाएगी। जब भीतर से दुख ही चला गया हो, तो यह जो हंसी थी, यह जो हर्षित होना था, यह तो समाप्त हो जाएगा, यह तो नहीं बचेगा।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह अप्रसन्न रहेगा। पर उसकी प्रसन्नता का गुण और होगा। उसकी प्रसन्नता किसी दुख का विरोध न होगी। उसकी प्रसन्नता किसी दुख में आधारित न होगी। उसकी प्रसन्नता सहज होगी, अकारण होगी।

आपकी प्रसन्नता सकारण होती है। भीतर तो दुख रहता है, फिर कोई कारण उपस्थित हो जाता है, तो आप थोड़ा हंस लेते हैं। लेकिन उसकी प्रसन्नता अकारण होगी। वह हंसेगा नहीं। अगर इसे हम ऐसा कहें कि वह हंसता हुआ ही रहेगा, तो शायद बात समझ में आ जाए। वह हंसेगा नहीं, वह हंसता हुआ ही रहेगा। उसे पता ही नहीं चलेगा कि वह कब हर्षित हो रहा है। क्योंकि वह कभी दुखी नहीं होता। इसलिए भेद उसे पता भी नहीं रहेगा।

कृष्ण का चेहरा ऐसा नहीं लगता कि वे उदास हों। उनकी बांसुरी बजती ही रहती है। लेकिन हमारे जैसा हर्ष नहीं है। हमारा हर्ष रुग्ण है। हम हंसते भी हैं, तो वह रोग से भरा हुआ है, पैथालाजिकल है। उसके भीतर दुख छिपा हुआ है, हिंसा छिपी हुई है, तनाव छिपे हुए हैं। वे उसमें प्रकट होते हैं।

कृष्ण का हंसना एक सहज आनंद का भाव है। उसे हम ऐसा समझें कि सुबह जब सूरज नहीं निकला होता है, रात चली गई होती है और सूरज अभी नहीं निकला होता है, तो जो प्रकाश होता है। आलोक, सुबह के भोर का आलोक। ठंडा, कोई तेजी नहीं है। अंधेरे के विपरीत भी नहीं है, अभी प्रकाश भी नहीं है। अभी बीच में संध्या में है। कृष्ण जैसे लोग, बुद्ध जैसे लोगों की प्रसन्नता आलोक जैसी है। दुख नहीं है; सुख नहीं है; दोनों के बीच में संध्या है।

तो कृष्ण कहते हैं, जो न कभी हर्षित होता है... ।

कभी! कभी तो वही हर्षित होगा, जो बीच-बीच में दुखी हो, नहीं तो कभी का कोई मतलब नहीं है।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है... ।

क्योंकि सब दुखों का कारण द्वेष है। और जो द्वेष करता है, वह दुखी होगा।

आपको पता है, आपके दुख का कारण आपके दुख कम और दूसरों के सुख ज्यादा हैं! आपका मकान हो सकता है काफी हो आपके लिए, लेकिन पड़ोस में एक बड़ा मकान बन गया, अब दुख शुरू हो गया।

एक मित्र के घर मैं रुकता था। बड़े प्रसन्न थे वे। और जब जाता था, तो अपना घर दिखाते थे। स्विमिंग पूल दिखाते थे; बगीचा दिखाते थे। बहुत अच्छा, प्यारा घर था। बड़ा बगीचा था। सब शानदार था। खूब संगमरमर लगाया था। जब मैं उनके घर जाता था, तो घर में रहना मुश्किल था; घर की बातें ही सुननी पड़ती थीं, घर के बाबत ही, कि यह बनाया, यह बनाया। मुझे सुबह से वही देखना पड़ता था। जब भी गया, यही था। वे कुछ न कुछ बनाए जाते थे।

फिर एक बार गया। उन्होंने घर की बात न चलाई। तो मैं थोड़ा परेशान हुआ। क्योंकि वे बिल्कुल पागल थे। वे घर के पीछे दीवाने थे। जैसे घर बनाने को ही जमीन पर आए थे। उसके सिवाय उनके सपने में भी कुछ नहीं था।

उनकी पत्नी भी परेशान थी। वह भी मुझसे बोली थी कि हम तो सोचे थे कि यह घर मेरे लिए बना रहे हैं, घरवाली के लिए बना रहे हैं। अब तो ऐसा लगता है कि घरवाली को घर के लिए लाए हैं! कि घर खाली-खाली न लगे, इसलिए शादी की है, ऐसा मालूम पड़ता है। पहले तो मैं यह सोचती थी, उनकी पत्नी ने मुझे कहा, कि मुझसे शादी की, इसलिए घर बना रहे हैं। अब लगता है, यह ख्याल मेरा गलत था।

लेकिन जब मैंने पाया कि अब वे चुप हैं, घर के बाबत कुछ नहीं कहते, तो मैंने उनसे दोपहर पूछा कि बात क्या है? बड़ी बेचैनी-सी लगती है घर में। आप घर के संबंध में चुप क्यों हैं? उन्होंने कहा, देखते नहीं कि पड़ोस में एक बड़ा घर बन गया है! अब क्या खाक बात करें इसकी! अब रुको। दो-चार साल बाद करेंगे। जब तक इससे ऊंचा न कर लूं... ।

दुखी हैं, उदास हैं। घर उनका वही का वही है। लेकिन पड़ोस में एक बड़ा घर बन गया है। बड़ी लकीर खींच दी किसी ने। उनकी लकीर छोटी हो गई है!

आपके अधिक दुख आपके दुख नहीं हैं, आपके अधिक दुख दूसरों के सुख हैं। और इससे उलटी बात भी आप समझ लेना। आपके अधिक सुख भी आपके सुख नहीं हैं, दूसरे लोगों के दुख हैं।

जब आप किसी का मकान छोटा कर लेते हैं, तब सुखी होते हैं। आपको अपने मकान से सुख नहीं मिलता। और जब कोई आपका मकान छोटा कर देता है, तो दुखी होते हैं। आपको अपने मकान से न दुख मिलता है, न सुख। दूसरों के मकान! द्वेष, ईर्ष्या... ।

कृष्ण कहते हैं, न जो द्वेष करता है, न हर्षित होता है, न चिंता करता है... ।

चिंता क्या है? क्या है चिंता हमारे भीतर? जो हो चुका है, उसको जुगाली करते रहते हैं। आदमी की खोपड़ी को खोलें, तो वह जुगाली कर रहा है। सालों पुरानी बातें जुगाली कर रहा है, कि कभी ऐसा हुआ, कभी वैसा हुआ।

जो अब नहीं है, उसको आप क्यों ढो रहे हैं? या भविष्य की फिक्र कर रहा है, जो अभी है नहीं। या तो अतीत की फिक्र कर रहा है, जो जा चुका। या भविष्य की फिक्र कर रहा है, जो अभी आया नहीं। और जो अभी, यहीं है, वर्तमान, उसे खो रहा है इस चिंता में। और परमात्मा अभी है, यहां। और आप या तो अतीत में हैं या भविष्य में। यह चिंता प्राण ले लेती है। यही चुका देती है।

तो कृष्ण कहते हैं, जो चिंता नहीं करता... । चिंता का मतलब यह कि जो शांत है; यहीं है; न अतीत में उलझा है, न भविष्य में। वर्तमान के क्षण में जो है, निश्चिंत, चिंतनशून्य, विचारमुक्त।

वर्तमान में कोई विचार नहीं है। सब विचार अतीत के हैं या भविष्य के हैं। और भविष्य कुछ भी नहीं है, अतीत का ही प्रक्षेपण है। और हम इसी में डूबे हुए हैं। या तो आप पीछे की तरफ चले गए हैं या आगे की तरफ। यहां! यहां आप बिल्कुल नहीं हैं। और यहीं है परमात्मा, इसलिए आपका मिलन नहीं हो पाता।

कृष्ण कहते हैं, न जो चिंता करता है, न कामना करता है, और शुभ-अशुभ कर्मों के फल का त्यागी है। और जिसने सब शुभ-अशुभ कर्म परमात्मा पर छोड़ दिए कि तू करवाता है। वह भक्तियुक्त पुरुष मुझे प्रिय है।

जो पुरुष शत्रु और मित्र में, मान-अपमान में सम है, सर्दी-गर्मी में, सुख-दुख में सम है, आसक्ति से रहित है, वह पुरुष मुझे प्रिय है।

जो सम है, जो डोलता नहीं है एक से दूसरे पर। हम निरंतर डोलते हैं। जिसको आप प्रेम करते हैं, उसी को घृणा भी करते हैं। सुबह प्रेम करते हैं, सांझ घृणा करते हैं। जिसको आप सुंदर मानते हैं, उसी को कुरूप भी मानते हैं। सांझ सुंदर मानते हैं, सुबह कुरूप मान लेते हैं। जो अच्छा लगता है, वही आपको बुरा भी लगता है। और चौबीस घंटे आप इसी में डोलते रहते हैं द्वंद्व में, घड़ी के पेंडुलम की तरह, बाएं से दाएं, दाएं से बाएं। यह जो डोलता हुआ मन है, विषम, यह मन उपलब्ध नहीं हो पाता अस्तित्व की गहराई को।

कृष्ण कहते हैं, जो सम है। सुख आ जाए, तो भी विचलित नहीं होता। दुख आ जाए, तो भी विचलित नहीं होता।

आप सब हालत में विचलित होते हैं। दुख में तो विचलित होते ही हैं, लाटरी मिल जाए, तो भी हार्ट अटैक होता है। तो भी गए!

मैंने सुना है कि चर्च का एक पादरी बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। एक आदमी को लाटरी मिली लाख रुपए की। उसकी पत्नी को खबर आई। पति तो बाहर गया था। पत्नी घबड़ा गई। घबड़ा गई यह सोचकर कि जैसे ही पति को पता लगेगा कि लाख रुपए की लाटरी मिली है, उनके हृदय के बचने का उपाय नहीं है। वह जानती थी अपने पति को कि एक रुपया मिल जाए, तो वे दीवाने हो जाते हैं। लाख रुपया! पागल हो जाएंगे या मर जाएंगे।

तो उसने सोचा कि कुछ जल्दी उपाय करना चाहिए, इसके पहले कि वे घर आएं। तो उसे ख्याल आया कि पड़ोस में चर्च का पादरी है; होशियार, बुद्धिमान पुरोहित है। उसको जाकर कहे कि कुछ कर दो। कुछ ऐसा इंतजाम जमाओ।

तो चर्च के पादरी को उसने जाकर बताया कि लाख रुपए की लाटरी मिल गई है मेरे पति के नाम। और अब वे आते ही होंगे बाजार से। आप घर चलें मेरे। और जरा इस ढंग से उनको समझाएं, इस ढंग से बात को प्रकट करें कि उनको कोई सदमा न पहुंच जाए सुख का। और वे बच जाएं; कोई नुकसान न हो।

तो पादरी ने पूछा कि तू मुझे क्या देगी? तो उसने कहा, पांच हजार आप ले लेना। पादरी ने कहा, क्या कहा? पांच हजार! उसको हार्ट अटैक हो गया। वह वहीं गिर पड़ा। सच, पांच हजार! वह पहली दुर्घटना चर्च के पादरी के साथ हो गई।

आदमी, सुख हो या दुख, जब भी कुछ तीव्र होता है, तो विचलित हो जाता है। सम का अर्थ है, जो विचलित नहीं होता। जो भी आता है, उसे ले लेता है; कि ठीक है, आया, चला जाएगा। सुबह आई, सांझ आई, अंधेरा आया, प्रकाश आया, सुख-दुख आया, मित्र-शत्रु--ले लेता है चुपचाप और अलिप्त दूर खड़ा देखता रहता है।

ऐसा व्यक्ति, कृष्ण कहते हैं, मुझे प्रिय है।

दो-तीन बातें कल के संबंध में। कल वे ही मित्र यहां आएं, जो सच में ही भक्ति के इस भाव में उतरना चाहते हों, क्योंकि कल प्रयोग का दिन होगा। गीता का एक सूत्र बचा है, वह मैं परसों लूंगा। कल कोई गीता का सूत्र नहीं लूंगा। कल बात नहीं होगी, कुछ कृत्य होगा।

इतने दिन जिन्होंने सुना है, अगर उन्हें लगता हो कि कुछ करने जैसा भी है, सिर्फ सुनने जैसा नहीं है, केवल वे ही लोग आएं। जिनको सुनना है, वे परसों आएं, कल उनके लिए छुट्टी है। जिन्हें कुछ करना है, कल वे ही लोग आएं।

इसे जरा ईमानदारी से ख्याल रख लेना, क्योंकि यहां कोई रुकावट नहीं लगाई जा सकती। अगर आपको नहीं करना है, तो भी आप आ गए, तो कोई रुकावट नहीं लग सकती। लेकिन वह आपकी बेईमानी होगी। आप मत आएं। आते हों, तो करने का तय करके आएं कि यहां कुछ प्रयोग होगा, उसमें सम्मिलित होना है। पहली बात।

दूसरी बात, जो लोग यहां आने वाले हैं, वे एक फूल अपने साथ, कोई भी फूल ले आएं। और पूरे रास्ते एक ही बात मन में पुनरुक्त करते रहें बार-बार जप की तरह, कि यह फूल मेरा अहंकार है, यह फूल मेरी अस्मिता है, यही मेरी ईगो है। उस फूल में अपने सारे अहंकार को समाविष्ट कर दें।

एक ही भाव आंख खोलकर भी करें, फूल को देखें; आंख बंद करके भी करें। फूल को सूंघें और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं सूंघ रहा हूं। छुएं, और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं छू रहा हूं। देखें, और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं देख रहा हूं।

घर से आते वक्त, पूरे रास्ते फूल में ही अपने ध्यान को रखें और अपने अहंकार को पूरा प्रोजेक्ट कर दें। फूल में डुबा दें अपने अहंकार को।

जैसे-जैसे आपका अहंकार फूल में प्रवेश करने लगेगा, आपको फूल भारी मालूम पड़ने लगेगा। अगर आपने ठीक से प्रयोग किया, तो आपको फूल का भारीपन स्पष्ट अनुभव होगा। न केवल फूल भारी होने लगेगा, जैसे-जैसे आपका अहंकार प्रवेश करेगा, फूल कुम्हलाने और मुरझाने लगेगा।

पूरे प्राणों से अपने को उंडेल दें, कि सारा अहंकार मेरा इस फूल में समा जाए। यह भावना करते और सब विचार छोड़कर... । कोई विचार बीच में आ जाए, जैसे ही ख्याल आए, छोड़कर वापस इसी विचार में लग

जाएं कि यह फूल मेरा अहंकार है। आप अगर अपने अहंकार को इस फूल में समाविष्ट कर लाए, तो यहां परिणाम हो सकेगा।

आपको फूल लाकर यहां चुपचाप बैठ जाना है। और कल आप यहां आकर बिल्कुल बातचीत न करें। बिल्कुल जबान बंद कर लें। क्योंकि आपकी बातचीत आपके प्रयोग में बाधा बनेगी। जैसे ही प्रवेश करें ग्राउंड पर, चुपचाप अपनी जगह जाकर बैठ जाएं। फूल को दोनों हाथों के बीच में ले लें और एक ही भाव करते रहें आंख बंद करके, कि इस फूल में मेरा सारा अहंकार प्रवेश कर रहा है। जब तक मैं न आ जाऊं, आपको यह प्रयोग करते रहना है। फिर आने के बाद मैं आपको कहूंगा कि अब क्या आगे करें।

एक घंटे का हम प्रयोग करेंगे। यह प्रयोग सामूहिक शक्तिपात का प्रयोग है। अगर आप अपने अहंकार को छोड़ने को राजी हो गए, अगर आपने अपने अहंकार को फूल में समाविष्ट कर लिया, तो मैं आऊंगा और कहूंगा कि इस फूल को अब फेंक दें। मैं जब तक न कहूं, तब तक आपको रखे बैठे रहना है। उस फूल के गिराते ही आपको लगेगा कि जैसे सिर से पूरा बोझ, एक भार, एक पहाड़ हट गया। और उसके हटने के बाद एक काम हो सकेगा।

बीस मिनट तक पहले चरण में, यहां कुछ संगीत चलता रहेगा और मैं आपकी तरफ देखता रहूंगा। उन बीस मिनट में आपको एकटक मेरी ओर देखते रहना है। चाहे पलक से आंसू बहने लगें, आपको पलक नहीं झपनी है। बीस मिनट आपको एकटक मेरी ओर देखना है। सारी दुनिया मिट गई; मैं हूं और आप हैं। बस, हम दो बचे हैं।

अगर आपको यह ख्याल में आ गया कि हम दो बचे हैं--मैं और आप--तो मैं आप पर काम करना शुरू कर दूंगा। और जो आप वर्षों में अकेले नहीं कर सकते, वह क्षणों में हो सकता है।

लेकिन हिम्मत की जरूरत है कि आप बीस मिनट आंख एकटक मेरी ओर देखते रहें। और आपको किसी को भी नहीं देखना है। यहां इतने लोग हैं, आपको मतलब नहीं। आपको मुझे देखना है। आपके पड़ोस में कोई चीखने-चिल्लाने लगे, रोने लगे, कुछ करने लगे, आपको आंख नहीं फेरनी है। आपको मेरी तरफ देखना है।

यह प्रयोग गुरु-गंभीर है। और इसको अगर आप थोड़ी समझपूर्वक करेंगे, तो बड़े अनुभव को उतर जाएंगे।

बीस मिनट आपको मेरी तरफ देखते रहना है। और जो कुछ आपके भीतर हो, उसे होने देना है। कोई चीखने लगेगा, कोई चिल्लाने लगेगा, कोई रोने लगेगा। किसी ने रोना रोक रखा है सालों से, जन्मों से; घाव भरे हैं, वे बहने लगेंगे। कोई खिलखिला कर हंसने लगेगा। कोई पागल जैसा व्यवहार करने लगेगा। उसकी फिक्र न करें। और आपके भीतर भी कुछ होना चाहे, तो उसे रोकें मत। यह साहस हो, तो ही आना।

पागल होने की हिम्मत हो, तो ही आना। अपने को रोक लिया, तो आपका आना व्यर्थ हुआ और आपके कारण आस-पास की हवा भी व्यर्थ होगी। आप मत आना। आपकी कोई जरूरत नहीं है।

बीस मिनट आपकी सारी बीमारी, सारी विक्षिप्तता को मैं खींचने की कोशिश करूंगा आपकी आंखों के जरिए। अगर आपने मेरे साथ सहयोग किया, तो आपके न मालूम कितने मानसिक तनाव, बीमारी, चिंता गिर जाएगी। आप एकदम हलके हो जाएंगे।

फिर बीस मिनट मौन रहेगा। उस मौन में फिर पत्थर की तरह होकर बैठ जाना है। आंख बंद और शरीर मुर्दे की तरह छोड़ देना है।

फिर बीस मिनट, आखिरी चरण में, आपको अभिव्यक्ति का मौका होगा कि इस बीस मिनट के मौन में आपको जो आनंद उपलब्ध हुआ हो--और गहन आनंद उपलब्ध होगा--और जो शांति आपने जानी हो,

अपरिचित, कभी न जानी, वह आपके भीतर झरने की तरह बहने लगेगी, उसको अभिव्यक्ति देने के लिए बीस मिनट होंगे।

कोई खुशी से नाचेगा, कोई गीत गाएगा, कोई कीर्तन करेगा। लेकिन आपको दूसरे पर ध्यान नहीं देना है। आपको अपने भीतर का ही भाव देखना है, कि अगर मुझे नाचना है, तो नाच लूं; शांत बैठना है, शांत बैठा रहूं; गाना है, तो गा लूं। और किसी की चिंता न करूं।

एक घंटे अगर आप मेरे साथ सहयोग करते हैं, तो मैं आपके भीतर प्रवेश कर सकता हूं। और आपके भीतर से बहुत कुछ बदला जा सकता है।

और यह प्रयोग इसलिए है कि आपको एक झलक मिल जाए। क्योंकि हम उसकी खोज भी कैसे करें, जिसकी हमें झलक ही न हो? जिस परमात्मा का हमें जरा-सा भी स्वाद नहीं है, हम उसकी खोज पर भी कैसे निकलें? थोड़ी-सी झलक हो, थोड़ा-सा उसका स्वर सुनाई पड़ जाए, थोड़े-से उसके आनंद का झरना फूट पड़े, थोड़ा-सा उसका प्रकाश दिखाई पड़ जाए, तो फिर हम भी दौड़ पड़ेंगे। फिर हमारे पैरों का सारा आलस्य मिट जाएगा। और फिर हमारे प्राणों की सारी सुस्ती दूर हो जाएगी। लेकिन एक झलक मिल जाए! जरा-सी झलक! फिर हम उसकी खोज कर लेंगे जन्मों-जन्मों में। फिर वह हमसे बच नहीं सकता। फिर वह कहीं भी हो, हम उसका पता लगा लेंगे।

मैंने सुना है कि एक गांव से जिप्सियों का एक समूह निकलता था। और गांव के एक बच्चे को, जो चर्च के पादरी का बच्चा था, उन्होंने चुरा लिया। उसे उन्होंने अपनी बैलगाड़ी में अंदर बंद करके डाल दिया है और उनका समूह आगे बढ़ने लगा।

जिप्सी अक्सर बच्चे चुरा लेते हैं। वह छोटा बच्चा था। उसकी कुछ समझ में न आ रहा था कि क्या हो रहा है। लेकिन गाड़ी में पड़े हुए उसका ध्यान तो अपने गांव की तरफ लगा था, कि गांव दूर होता जा रहा है!

सांझ का वक्त था और चर्च की घंटियां बज रही थीं। वह घंटी को सुनता रहा। जैसे-जैसे गाड़ी दूर होती गई, घंटी की आवाज धीमी होती गई। लेकिन वह और गौर से सुनता रहा। क्योंकि शायद यह आखिरी बार होगा। अब दोबारा यह मौका आए न आए। वह अपने गांव की आवाज सुन सकेगा या नहीं! और इस गांव की एक ही याददाश्त, यह बजती हुई घंटी का धीमा होते जाना, धीमा होते जाना... ।

और वह इतने गौर से सुनने लगा कि राह पर चलती हुई गाड़ियों की आवाज, घोड़ों की आवाज, जिप्सियों की बातचीत, सब उसे भूल गई। सिर्फ उसे घंटी की आवाज सुनाई पड़ती रही। बड़े दूर तक सन्नाटे में वह सुनता रहा।

फिर वर्षों बीत गए। बड़ा हो गया। उसके गांव की उसे सिर्फ एक ही याद रह गई, वह घंटी की आवाज। अपने बाप का नाम उसे याद न रहा; अपने गांव का नाम याद न रहा; अपने गांव की शक्ल याद न रही। उसका चर्च, उसका घर, कैसा था, वह सब विस्मृत हो गया। वह बहुत छोटा बच्चा था। लेकिन एक बात चित्त में कहीं गहरे उतर गई, वह घंटी की आवाज।

अब घंटी की आवाज से क्या होगा? कैसे वापस खोजे? जवान होकर वह भाग खड़ा हुआ। जिप्सियों को उसने छोड़ दिया। और वह हर गांव के आस-पास सांझ को जाकर खड़ा हो जाता था, जिस भी गांव के पास होता, और घंटी की आवाज सुनता था।

कहते हैं कि पांच साल की निरंतर खोज के बाद आखिर एक दिन एक गांव के पास उसे चर्च की घंटी पहचान में आ गई। यह वही घंटी थी। फिर चर्च से दूर जाकर भी उसने देख लिया। जैसे-जैसे दूर गया, घंटी वैसी ही धीमी होती गई, जैसी पहली बार हुई थी।

फिर वह भागा हुआ चर्च में पहुंच गया। एक स्वर मिल गया। वह चर्च भी पहचान गया। वह पिता के चरणों में गिर पड़ा। पिता बूढ़ा था और मरने के करीब था। और पिता नहीं पहचान पाया। और उसने अपने बेटे से पूछा कि तूने कैसे पहचाना? तू कैसे पहचाना? तू कैसे वापस आया? मैं तक तुझे भूल गया हूं! तो उसने कहा, एक आवाज, इस चर्च की घंटी की आवाज मेरे साथ थी।

कल के इस प्रयोग में अगर आपको थोड़ी-सी भी आवाज परमात्मा की सुनाई पड़ जाए, तो वह आपके साथ रहेगी। और जन्मों-जन्मों में कहीं भी वह आवाज सुनाई पड़ जाए, आप समझेंगे कि परमात्मा का मंदिर निकट है, खोज हो सकती है।

लेकिन कल केवल वे ही लोग आएं, जो प्रयोग करने की तैयारी रखते हों। बाकी--ईमानदारी से--कोई व्यक्ति न आए।

अब हम कीर्तन करें। पांच मिनट बैठे रहें अपनी जगह पर। उठें न। कीर्तन के बाद जाएं।

दसवां प्रवचन

सामूहिक शक्तिपात ध्यान

(NOTE- Today Bhagwan did not talk on Sutra or Questions, he conducted experiment of divine energy descending on the audience.)

जीवन उतना ही नहीं है, जितना आप उसे जानते हैं। आपको जीवन की सतह का भी पूरा पता नहीं है, उसकी गहराइयों का, अनंत गहराइयों का तो आपको स्वप्न भी नहीं आया है। लेकिन आपने मान रखा है कि आप जैसे हैं, वह होने का अंत है।

अगर ऐसा आपने मान रखा है कि आप जैसे हैं, वही होने का अंत है, तो फिर आपके जीवन में आनंद की कोई संभावना नहीं है। फिर आप नरक में ही जीएंगे और नरक में ही समाप्त होंगे।

जीवन बहुत ज्यादा है। लेकिन उस ज्यादा जीवन को जानने के लिए ज्यादा खुला हृदय चाहिए। जीवन अनंत है। पर उस अनंत को देखने के लिए बंद आंखें काम न देंगी। जीवन विराट है और अभी और यहीं जीवन की गहराई मौजूद है। लेकिन आप अपने द्वार बंद किए बैठे हैं। और अगर कोई आपके द्वार भी खटखटाए, तो आप भयभीत हो जाते हैं। और भी मजबूती से द्वार बंद कर लेते हैं।

मैंने आज आपको बुलाया है। मैं आपके द्वार नहीं खटखटाऊंगा, बल्कि आपके द्वार तोड़ ही डालूंगा। पर आपकी तैयारी चाहिए। आप अगर भयभीत रहे, तो आप वंचित रह जाएंगे। भय से अगर आपने आंखें बंद रखीं, तो सूरज निकलेगा भी, तो भी आपके लिए नहीं निकलेगा। आप अंधेरे में ही रह जाएंगे।

यह प्रयोग तो साहस का प्रयोग है। और केवल उन लोगों के लिए है, जो अपने से ऊब चुके हैं भलीभांति। और जो अपने से अच्छी तरह परेशान हो चुके हैं। और जिन्होंने यह भलीभांति समझ लिया है कि जैसे वे हैं, वैसे ही रहने से कोई भी मार्ग नहीं है। तो बदलाहट हो सकती है। तो क्रांति आ सकती है।

सुना है मैंने कि दूर पहाड़ियों में बसा हुआ एक गांव था। खाई में बसा हुआ था, नीचाई पर था। वर्षा आती, नदियों में बाढ़ आती, गांव के घर बह जाते, खेती-बाड़ी नष्ट हो जाती, जानवर बह जाते, बच्चे डूब जाते। झंझावात आते, आंधियां आतीं, पहाड़ से पत्थर गिरते, लोग दब जाते और मर जाते।

उस गांव की जिंदगी बड़े कष्ट में थी। जिंदगी थी ही नहीं, बस मौत से लड़ने का नाम ही जिंदगी था। कभी वर्षा सताती, कभी तूफान सताते। और जीना दूभर था।

लेकिन उस पहाड़ी गांव के लोग मानते थे कि यही ढंग है एक जीने का, क्योंकि बचपन से वे इसी ढंग से परिचित थे। उनके बाप-दादे भी ऐसे ही जीए थे। और उनके बाप-दादों के बाप-दादे भी ऐसे ही जीए थे। यही मुसीबत उनकी कथाओं में थी। यही बाढ़ों का आना और डूब जाना, और पत्थरों का गिरना और मौत घटित होना, और जूझते-जूझते जन्मना और जूझते-जूझते मर जाना, यही उनके सारे पुराण थे।

लेकिन एक बार एक भटकता हुआ यात्री उस पहाड़ी गांव में पहुंच गया। और उसने कहा कि तुम नासमझ हो। तुम्हारी समस्याओं को हल करने का यह कोई उपाय नहीं है। तुम थोड़े अपने मकान ऊंचाइयों पर बनाओ। इस खाई-खंदक को छोड़ो। और इतने सुंदर पहाड़ तुम्हारे चारों तरफ हैं, इनके उतार पर अपने मकान बनाओ।

गांव के लोगों ने पूछा, क्या उससे हमारी समस्याएं हल हो जाएंगी? क्योंकि ऊंचे मकान बनाने से समस्याओं का क्या हल होगा! वर्षा तो आएगी, तूफान तो होंगे, नदियां तो बहेंगी। ये तो नहीं रुक जाएंगी!

उनका सवाल ठीक था। लेकिन उस यात्री ने हंसकर कहा कि तुम घबड़ाओ मत। तुम्हारी समस्याएं बदल जाएंगी, क्योंकि तुम ऊंचाई पर चले जाओगे। तुम नीचाई पर हो, इसलिए समस्याएं हैं। और यहीं, नीचाई पर रहकर अगर तुम समस्याओं को हल करना चाहते हो, तो तुम कभी हल न कर पाओगे।

गांव के लोग हिम्मतवर रहे होंगे। बड़ी हिम्मत की जरूरत है पुरानी आदतों को बदलने के लिए। उन्होंने ऊंचाइयों पर मकान बनाने शुरू कर दिए। और तब उस गांव के लोगों ने एक उत्सव मनाया और उन्होंने कहा, हमें आश्चर्य है कि हमें यह ख्याल पहले क्यों न आया! नदियां अब भी बहेंगी, लेकिन हमारा कोई नुकसान न कर पाएंगी। पत्थर अब भी गिरेंगे, लेकिन अब हम खाई-खंदक में नहीं हैं।

आप जहां जी रहे हैं, वह एक खाई है, जहां सारी मुसीबतें गिरती हैं और आप परेशान होते हैं। यह प्रयोग आपको उस खाई से बाहर निकालकर ऊंचाइयों की तरफ ले चलने का है। लेकिन मुश्किल है पुरानी आदतों को छोड़ना; चाहे वे आदतें कितनी ही तकलीफ क्यों न देती हों।

क्रोध किसको तकलीफ नहीं देता? ईर्ष्या किसको नहीं जलाती? दुश्मनी से किसको आनंद मिला है? लेकिन हम आदी हैं। और अगर कोई कहे कि लाओ मैं तुम्हारा क्रोध ले लूं, तो भी हम संकोच करेंगे और कंजूसी दिखाएंगे।

यह प्रयोग इसीलिए है कि मैं आपसे आपकी सारी बीमारियां मांगता हूं। और आपको रास्ता भी बताता हूं कि आप कैसे वे बीमारियां मुझे दे सकते हैं। वे बीमारियां आपसे छूट सकती हैं, क्योंकि आप बीमारियां नहीं हैं, बीमारियां केवल आपकी आदत हैं। आदतें बदली जा सकती हैं। उन्हें आपने बनाया है, आप उन्हें मिटा सकते हैं।

लेकिन हमारे पास बीमारियों की राशि है। जन्मों-जन्मों से हमने न मालूम कितना उपद्रव भीतर इकट्ठा कर रखा है। कितने आंसू हैं भीतर, जो बहना चाहते थे और नहीं बह सके। कितनी चीख-पुकार है भीतर, जो प्रकट होना चाहती थी, और प्रकट नहीं हो पाई। कितना क्रोध है, कितनी आग है, जो भीतर जल रही है। और उस आग, घृणा, क्रोध, विक्षिप्तता के कारण आपका जीवन सदा एक ज्वालामुखी के ऊपर है। जिसमें कभी भी विस्फोट हो सकता है।

मनसविद कहते हैं कि हर आदमी पागल होने के किनारे ही खड़ा है। और कभी भी पागल हो सकता है। और वे ठीक कहते हैं। पागलपन करीब-करीब सामान्य हालत है। लेकिन मैं आपको एक रास्ता बताता हूं कि आपके भीतर जो भी दबा हो, उसे आप खुले आकाश में छोड़ दें।

किसी के ऊपर क्रोध करने की जरूरत नहीं है, क्रोध खुले आकाश में भी छोड़ा जा सकता है। भीतर जो पागलपन है, उससे किसी को नुकसान पहुंचाने की जरूरत नहीं है। पागलपन को हवा में एवोपरेट, वाष्पीभूत किया जा सकता है।

और जैसे ही आप अपने इस उपद्रव को फेंकने लगेंगे, वैसे ही आप पाएंगे, आपके सिर का बोझ हलका हुआ जा रहा है। और आपके आस-पास की दीवाल टूटती जा रही है। और आप आकाश के लिए खुल रहे हैं। और परमात्मा के लिए रास्ता बन रहा है।

यह प्रयोग समर्पण का प्रयोग है। इसमें आप अपने को छोड़ेंगे, तो ही कुछ हो पाएगा। आपकी बुद्धिमत्ता की इसमें जरूरत नहीं है। आप अपनी बुद्धिमत्ता से तो जी ही रहे हैं। परिणाम आपके सामने है। आप जो हैं, वह

आपकी बुद्धिमत्ता का परिणाम है। उसे बुद्धिमत्ता कहें या बुद्धिहीनता कहें, कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जो भी आप हैं, आपकी बुद्धिमानी का परिणाम है।

यह प्रयोग आपकी बुद्धिमानी का नहीं है। आपको अपनी बुद्धिमानी छोड़ देनी है। उससे आप जीकर काफी देख लिए। एक घंटेभर के लिए मुझे मौका दें कि मैं आपके भीतर प्रवेश कर सकूं और आपको बदल सकूं।

अगर आप राजी हुए, और थोड़ा-सा भी झरोखा आपने खोला, तो मैं एक ताजी हवा की तरह आपके भीतर प्रवेश कर सकता हूं। उसका स्पर्श आह्लादकारी होगा। मैं एक विद्युत-प्रवाह की तरह आपके भीतर आ सकता हूं, उसमें बहुत-सा कचरा जल जाएगा और सोना निखर उठेगा। लेकिन एक साहस आपको करना जरूरी है कि आप अपनी बुद्धिमानी नहीं बरतेंगे। आपकी बिल्कुल जरूरत नहीं है।

वह जो फूल मैंने आपसे लाने को कहा है और कहा है कि ध्यान करते आना कि यह मेरा अहंकार है, वह इसीलिए कहा है। अगर पूरा भाव आपने किया है कि यह फूल मेरा अहंकार है, तो थोड़ी देर बाद जब मैं आपको कहूंगा कि अपने दोनों हाथ उठाकर पूरे मन से भाव करके कि यह फूल मेरा अहंकार है, उसे छोड़ दें। तो उस फूल के गिरते ही आपके भीतर का न मालूम कितना बोझ उसके साथ गिर जाएगा। आप हलके हो जाएंगे।

आपका अहंकार बाधा है। वह हट जाए, तो मैं एक तूफान की तरह यहां बह सकता हूं। और जो मैं कह रहा हूं, वह कोई प्रतीक की भाषा नहीं है। मैं कोई साहित्य की बात नहीं कह रहा हूं। मैं कोई मेटाफर में नहीं बोल रहा हूं। वस्तुतः एक तूफान की तरह मैं आपके आस-पास घूमूंगा। और जैसे कोई तूफान एक वृक्ष को पकड़ ले और उसे हिलाने लगे, और उसके सारे सूखे पत्ते गिर जाएं, और उसकी सारी धूल झड़ जाए, वैसा मैं आपको पकड़ लूंगा। और आप एक वृक्ष की तरह ही कंपने लगेंगे और आपका रोआं-रोआं स्पंदित हो उठेगा। आपकी प्राण-ऊर्जा जागने लगेगी और आपके भीतर शक्ति का एक प्रवाह शुरू हो जाएगा।

जैसे ही आप अपने को छोड़ेंगे, मैं काम करना शुरू कर दूंगा। आपका छोड़ना पहली शर्त है। और उसके बाद आपको कुछ भी नहीं करना है। चीजें होनी शुरू हो जाएंगी। आपको एक ही काम करना है कि आप कुछ मत करना। आप सिर्फ छोड़ देना और प्रतीक्षा करना।

जैसे ही मेरी शक्ति आपकी शक्ति से मिलेगी, आपकी श्वास में परिवर्तन शुरू होगा। वह पहला लक्षण होगा कि आप मुझसे मिल गए हैं। ठीक रास्ते पर हैं। आपने मेरी तरफ छोड़ दिया है अपने आपको। जैसे ही आप छोड़ेंगे, आपकी श्वास बदलने लगेगी। आपकी श्वास तेज और गहरी होने लगेगी। जब यह श्वास तेज और गहरी होने लगे, तो समझना कि पहला लक्षण है। और उसे रोकना मत। उसे और गहरा हो जाने देना। उसे और सहयोग दे देना, ताकि वह पूरी तरह आपको कंपाने लगे, और आपके भीतर चलने लगे, जैसे कि लोहार की धौंकनी चलती है।

वह श्वास आपके भीतर बहुत कुछ लाएगी और आपके भीतर से बहुत कुछ बाहर ले जाएगी। वह श्वास मुझे आपके भीतर लाएगी और आपके सारे कचड़े, कूड़ा-करकट को बाहर फेंकेगी। वह श्वास आपके भीतर विराट का संस्पर्श बनने लगेगी और आपकी क्षुद्रता को बाहर फेंकने लगेगी। आती श्वास में मैं आऊंगा और जाती श्वास में आपसे कुछ ले जाऊंगा। इसलिए जितनी तेज श्वास हो सके, उतना लाभ होगा, क्योंकि उतनी ही तेजी से आप उलीचेंगे। तो जब आपकी श्वास तेज होने लगे, तो साथ देना और बाधा मत डालना।

दूसरा अनुभव, जैसे ही श्वास तेज होगी, आपको तत्काल लगेगा कि आपके शरीर में एक नई विद्युत, एक इलेक्ट्रिसिटी, एक जीवन ऊर्जा दौड़ने लगी। रोआं-रोआं कंपना चाहेगा, नाचना चाहेगा। शरीर में बहुत-सी प्रक्रियाएं शुरू हो जाएंगी। मुद्राएं बनने लगेंगी। कोई एकदम से खड़ा होना चाहेगा। किसी का सिर घूमने लगेगा।

किसी के हाथ ऊपर उठ जाएंगे। कुछ भी हो सकता है। और जो भी हो, उसे आपको रोकना नहीं है, होने देना है। आप जैसे बह रहे हैं एक नदी में। आपको तैरना जरा भी नहीं है। नदी की धार जहां ले जाए।

आपको पता नहीं है कि क्या हो रहा है, रोकना मत। लेकिन मुझे पता है कि क्या हो रहा है। इसलिए आपसे कहता हूं, रोकना मत। अगर आप बहुत क्रोधी हैं, तो आपके दोनों हाथों की अंगुलियों में, मुट्ठियों में क्रोध समाविष्ट है। और जब मैं आपको पकडूंगा, तो वह क्रोध आपकी मुट्ठियों से निकलना शुरू होगा; आपके हाथ कंपने लगेंगे। अगर आप बहुत चिंता से भरे हुए व्यक्ति हैं, तो आपका मस्तिष्क बहुत बोझिल है। आपका सिर कंपने लगेगा और उस सिर से चिंताएं गिरनी शुरू हो जाएंगी। अगर आप बहुत कामुक व्यक्ति हैं, तो आपके काम-केंद्र पर बहुत जोर से ऊर्जा का प्रवाह शुरू होगा। आप घबड़ाना मत। वह प्रवाह ऊपर की तरफ उठेगा, क्योंकि मैं उसे ऊपर की तरफ खींच रहा हूं। वही कुंडलिनी बन जाती है।

आपकी पूरी रीढ़ कंपने लगेगी। उसके साथ-साथ आपका पूरा शरीर कंपने लगेगा। लगेगा कि कोई आपको आकाश की तरफ खींच रहा है। निश्चित ही, मैं आपको आकाश की तरफ खींचूंगा। और अगर आपने बाधा न दी, तो आप इस पूरे प्रयोग में पाएंगे कि आप वेटलेस हो गए; आपका कोई वजन न रहा। जमीन का ग्रेविटेशन, जमीन की कशिश कम हो गई। लेकिन आपको छोड़ना पड़ेगा।

श्वास बढ़ेगी, फिर आपकी प्राण-ऊर्जा बढ़ेगी। और तीसरा, जब संपर्क और गहरा होगा... ।

(रोने-चिल्लाने की आवाजें।)

अभी रुकें; पहले पूरी बात समझ लें। और जब संस्पर्श पूरा गहरा होगा... ।

(चिल्लाने की आवाजें।)

उन्हें थोड़ा सम्हाल दें। अभी रुकें। तो आपके भीतर से आवाजें निकलनी शुरू हो जाएंगी। चीत्कार, हुंकार, या कोई मंत्र का उदघोष, या रोना, चिल्लाना, हंसना, या स्क्रीम, सिर्फ चिल्लाहट, चीख, उसको रोकना मत। उसे हो जाने देना। उसके साथ ही आपके भीतर के न मालूम कितने रोग बाहर हो जाएंगे। आप हलके हो जाएंगे--एक बच्चे की तरह कोमल, और हलके, और निर्दोष।

यह पहला चरण है। बीस मिनट तक यह प्रयोग चलेगा। यहां संगीत चलता रहेगा। आपको एकटक मेरी तरफ देखना है, ताकि मैं आपकी आंखों से प्रवेश कर सकूं। छोड़ना है अपने को और मेरी तरफ देखना है। फिर शेष काम मैं कर लूंगा।

बीस मिनट के बाद संगीत बंद हो जाएगा। और तब आप जिस अवस्था में होंगे, वैसे ही रुक जाना है। कोई अगर खड़ा हो गया हो, तो वह वैसा ही रुक जाएगा। किसी का हाथ अगर आकाश की तरफ उठा हो, तो हाथ को वहीं छोड़ देना है। किसी की गरदन झुक गई है, तो वैसे ही रह जाना है। फिर जो भी अवस्था आपकी हो। बीस मिनट की प्रक्रिया के बाद, मृत, जैसे आप अचानक पत्थर हो गए, वैसे ही रह जाना है। जैसे ही मैं आवाज दूंगा कि रुक जाएं, वैसे ही रुक जाना है। आंख बंद कर लेनी है।

दूसरे चरण में बीस मिनट आंख बंद करके पत्थर की मूर्ति की तरह हो जाना है। कितना ही मन हो कि जरा पैर हिलाऊं, कि जरा आंख खोलूं, कि जरा हाथ बदल लूं, कि जरा करवट बदल लूं, इस मन को रोकना। यह मन बेईमान है। वह जो भीतर शक्ति जगी है, उससे डिस्ट्रैक्ट कर रहा है, उससे हटा रहा है। बिल्कुल बीस मिनट पत्थर की तरह रह जाना। और आप रह सकेंगे। अगर पहले बीस मिनट आपने शरीर को पूरे प्रवाह में बहने दिया, तो दूसरे बीस मिनट में आपको कोई बाधा नहीं आएगी। आप मूर्तिवत हो जाएंगे।

ये दूसरे बीस मिनट में आपके मौन से मैं काम करूंगा। और आपसे मौन में मिलूंगा। शब्दों से मैंने बहुत-सी बातें आपसे कही हैं। लेकिन जो भी महत्वपूर्ण है, वह शब्दों से कहा नहीं जा सकता। और जो भी गहरा है, वह कभी शब्दों से कहा नहीं गया है। उसके लिए तो मौन में ही संवाद हो सकता है। अगर आप प्रयोग में ठीक से उतरे, तो मौन में आपसे कुछ कह सकूंगा, और मौन में कुछ कर भी सकूंगा।

दूसरे चरण में इस बीस मिनट की गहरी शांति में आपको अपूर्व अनुभव होंगे। आनंद से हृदय भर जाएगा। जैसा आनंद आपने कभी भी न जाना होगा। और ऐसा सन्नाटा और ऐसा शून्य और शांति भीतर उतर आएगी, जो बिल्कुल अपरिचित है। आप अपने ही भीतर एक ऊंचाई पाएंगे, जिससे आप कभी भी संबंधित नहीं थे। आप खाई से ऊपर हट गए हैं पहाड़ की चोटियों की तरफ। और वहां आपको नए प्रकाश का अनुभव होगा। और परमात्मा की असीम उपस्थिति प्रतीत होगी।

तीसरे बीस मिनट में अब आपको अपने आनंद को प्रकट करने का अवसर होगा। तब जो भी आपकी मौज में, अहोभाव में पैदा हो जाए--आप नाचना चाहें, गाना चाहें, हंसना चाहें या मौन रहना चाहें--जो भी होना चाहे, बीस मिनट आप परमात्मा के अनुग्रह में डूब जाएंगे।

पहले बीस मिनट में आपकी बीमारियों से आपको मुक्त करना है। दूसरे बीस मिनट में आपके मौन में आपके आनंद को जन्म देना है। तीसरे बीस मिनट में आपके अहोभाव, कृतज्ञता के बोध को विकसित करना है। ये तीन चरण हैं। और आपको सिर्फ इतना करना है कि आप बाधा मत डालना; आप सहयोगी रहना।

कुछ साधारण सूचनाएं। बहुत कुछ होना शुरू होगा, आप दूसरे पर ध्यान मत देना। नहीं तो आप चूक जाएंगे। बच्चों जैसा मत करना। आप छोटे बच्चे नहीं हैं। बगल में अगर कोई चीखने लगे, तो आपको देखने की जरूरत नहीं है; चीखने देना। कोई बगल में नाचने लगे, तो आपको लौटकर देखने की जरूरत नहीं है। नहीं तो आप चूक जाएंगे। उतनी-सी बाधा और आपसे मेरा संबंध टूट जाएगा। आप मेरी तरफ ही देखते रहना। आस-पास कुछ भी हो।

यह पूरा स्थान एक तूफान, एक विक्षिप्तता की स्थिति में हो जाएगा। आप एक ही याद रखना कि आपका मुझसे संबंध है और यहां कोई भी नहीं है। कितना ही मन हो कि जरा यहां देखें, वहां देखें, इस फिजूल बात को रोकना। क्योंकि जिंदगीभर से यहां-वहां देख रहे हैं, उससे कुछ हो नहीं गया है। और आपके देखने से कुछ होगा भी नहीं। आप चूक जाएंगे, समय व्यर्थ हो जाएगा। एक अवसर जरा-सी बचकानी बात से खोया जा सकता है। तो यहां-वहां मत देखना।

और बीस मिनट, शुरू के बीस मिनट आपको एकटक देखना है, पलक झुकानी नहीं है। आंख से आंसू बहने लगें, फिक्र मत करना। कोई आंखें खराब नहीं हो जाने वाली हैं। सिर्फ ताजी हो जाएंगी। थोड़ी धूल बह जाएगी, स्वच्छ हो जाएंगी। आप देखते ही रहना। इतना थोड़ा-सा बल रखना कि मेरी तरफ देखते ही रहें, क्योंकि आंख के द्वारा ही मैं सरलता से प्रवेश कर सकूंगा।

ये तीन चरण ख्याल में रखने हैं।

अब हम शुरू करेंगे। आप जो फूल अपने साथ ले आए हैं, उसे दोनों हाथों के बीच में ले लें। दि फ्लावर दैट यू हैव ब्राट हियर, पुट इट बिट्वीन योर टू पाम्स एंड क्लोज दि पाम्स। दोनों हथेलियों के बीच में फूल को ले लें और हथेलियों को बंद कर लें। और एक बार और पूरे मन से भाव करें कि मेरा अहंकार इस फूल में केंद्रित है। नाउ वन्स मोर प्रोजेक्ट योर ईगो इन दिस फ्लावर एंड फील दिस फ्लावर इ.ज योर ईगो।

नाउ रेज योर बोथ हैंड्स अपवड्र्स। दोनों हाथ ऊपर उठा लें फूल के साथ। फूल को ऊपर ले लें। दोनों हाथ ऊपर ले लें। आखिरी भाव करें कि यह फूल मेरा अहंकार है और मैं इस अहंकार को छोड़ता हूं। और फूल को दोनों हाथों से जमीन की तरफ छोड़ दें। नाउ ड्राप दि फ्लावर एंड विद दिस ड्रापिंग आफ दि फ्लावर योर ईगो ड्राप्स।

अब मेरी ओर देखें। नाउ स्टेयर एट मी फार ट्वेन्टी मिनट्स। डोंट क्रिएट एनी बैरियर। सरेंडर टुवड्र्स मी एंड अलाउ मी टु वर्क।

(चीखना, चिल्लाना, रोना आदि की तीव्र आवाजें। ... बीस मिनट तक प्रयोग जारी रहा।)

रुक जाएं! नाउ स्टाप कंप्लीटली! रुक जाएं जैसे हैं। आंख बंद कर लें। क्लोज योर आइज एंड स्टाप कंप्लीटली, नो मूवमेंट, नो न्वाइज। जरा भी आवाज नहीं, शरीर को भी बिल्कुल रोक लें। शक्ति जाग गई, अब उसे भीतर मौन में काम करने दें। आंख बंद कर लें, कोई भी आंख खुली न रह जाए। आंख बंद करें। क्लोज योर आइज एंड अलाउ दि इनर्जी टु वर्क विदिन। बिल्कुल चुप, जरा भी आवाज नहीं, ताकि मैं आपके मौन में काम कर सकूं।

बीस मिनट के लिए ऐसे हो जाएं जैसे यहां मरघट है। सिर्फ लाशें रह गईं। फार ट्वेन्टी मिनट्स नाउ बी टोटली साइलेंट, एज इफ यू हैव गान डेड। कोई यहां-वहां न हिले, कोई चले-फिरे नहीं। जो जहां है, बिल्कुल मुर्दे की भांति हो जाए। जो लोग देखने आ गए हों, वे भी कृपा करके आंख बंद कर लें और कम से कम बीस मिनट के लिए शांत हो जाएं। हिलें नहीं।

मुझे एक मौका दें कि आपकी शांति में प्रवेश कर सकूं, और आपके हृदय में आनंद का फूल खिला सकूं। नाउ अलाउ मी टु वर्क इन योर साइलेंस।

(दूसरे बीस मिनट तक सब ओर गहन सन्नाटा रहा।)

एक गहरी शांति में उतर गए हैं। एक गहरे आनंद का अनुभव। यू हैव एंटर्ड ए न्यू डायमेंशन आफ साइलेंस। दूसरा चरण पूरा हुआ। दि सेकेंड स्टेप इ.ज ओवर, नाउ यू कैन एंटर दि थर्ड। अब तीसरे में प्रवेश करें।

जो आनंद का अनुभव हुआ है, उसे प्रकट कर सकते हैं। जैसे भी प्रकट करने का भाव आ जाए। नाउ यू कैन एक्सप्रेस योर ब्लिस, योर साइलेंस दि वे यू चूज। यू कैन सिंग, यू कैन डांस, यू कैन लाफ, व्हाटसोएवर यू फील लाइक डूइंग। एंड डोंट बी शाय, सेलिब्रेट इट। संकोच न करें और आनंद को प्रकट होने दें। जितना प्रकट करेंगे, उतना बढ़ेगा। जितना प्रकट करेंगे, उतना बढ़ेगा। डरें मत, आनंद चाहते हैं, तो आनंद को प्रकट होने दें। एक्सप्रेस इट, दि मोर यू एक्सप्रेस दि मोर इट ग्रोज।

(तीसरे बीस मिनट में संगीत बजता रहा। लोग नाचते, गाते रहे। उत्सव चलता रहा। फिर ओशो ने समापन के कुछ शब्द कहे।)

बस रुक जाएं। रुक जाएं, शांत हो जाएं, शांत हो जाएं। शांत हो जाएं और अपनी जगह पर बैठ जाएं। शांत हो जाएं और अपनी जगह पर बैठ जाएं। मौन चुपचाप अपनी जगह पर बैठ जाएं। मुझे कुछ बातें कहनी हैं, उनको कह दूं, फिर आप जाएं। शांत बैठ जाएं, आवाज न करें, भीड़ न करें यहां पास, शांत बैठ जाएं। वहां जगह न हो, तो बाहर निकल जाएं, किनारे पर बैठ जाएं।

देखें, बीच में बाहर से आप लोग आ गए हैं, तो बाहर वापस लौट जाएं, किनारे पर बैठ जाएं। शांत हो जाएं। देखें, बात न करें, अपनी-अपनी जगह बैठ जाएं। जगह न हो, तो बाहर निकल जाएं, किनारे पर बैठ जाएं।

बाहर निकलिए वहां से। समय खराब मत करें, बाहर निकल जाएं। वहां बीच में जगह न हो, तो बाहर हो जाएं। जैसे भीतर आ गए हैं, वैसे बाहर हो जाएं। बातचीत बंद करें। थोड़ा आगे हट आएं, वहां पीछे बैठने की जगह हो जाएगी। बैठ जाएं, अगर आगे जगह न हो, तो थोड़ा आगे हट आएं। आप लोग थोड़ा आगे हट आएं, तो पीछे जगह हो जाए।

बस ठीक है। बैठ जाएं, किसी भी तरह थोड़ी सी जगह बना लें और बैठ जाएं। देखिए, न बैठ सकें, तो खड़े रहें, अब बातचीत बंद कर दें।

जिन मित्रों ने प्रयोग किया, वे पुरस्कृत हुए। लेकिन नासमझों की कोई कमी नहीं है। और आप में बहुत हैं जो नासमझ हैं। कुछ बातें हैं, जो देखने से दिखाई नहीं पड़तीं। और मनुष्य के भीतर क्या घटित होता है, जब तक आपके भीतर घटित न हो, आपको पता नहीं चल सकता। अगर आप बाहर से देख रहे हैं, तो यह भी हो सकता है कि आपको लगे कि दूसरा आदमी पागलपन कर रहा है। लेकिन आखिरी हिसाब में आप पागल सिद्ध होंगे।

कुछ चीजें हैं, जो केवल भीतर ही देखी जा सकती हैं। और जब तक आप न उतर जाएं उसी अनुभव में, तब तक उसके संबंध में आप कुछ भी नहीं जान सकते। कोई प्रेम में है... ।

(एक आदमी शोर मचा रहा है। ओशो समझाते हैं, चुप हो जाएं। खड़े रहने दो, उनको खड़े रहना है तो। लेकिन चुप रहें।)

कोई प्रेम में है, तो बाहर से आप कुछ भी नहीं जान सकते कि उसे क्या हो रहा है। कोई आनंद में है, तो भी बाहर से नहीं जान सकते कि क्या हो रहा है। कोई दुख में है, तो भी बाहर से नहीं जान सकते कि भीतर क्या हो रहा है। भीतर तो आप वही जान सकते हैं, जो आपके भीतर हो रहा हो।

इसलिए भक्त अक्सर पागल मालूम पड़े हैं। और लगा है कि उनके मस्तिष्क खराब हो गए हैं। लेकिन एक बार मस्तिष्क खराब करके भी देखना चाहिए। वह स्वाद ही और है। और अनुभव का रस एक बार आ जाए, तो आप दुनियाभर की समझदारी उसके लिए छोड़ने को राजी हो जाएंगे।

लेकिन कुछ छोटी-सी बातें बाधा बन जाती हैं। एक तो यही बात बाधा बन जाती है कि जो हमें नहीं हो रहा है, वह दूसरे को भी कैसे होगा!

आप मापदंड नहीं हैं और न कसौटी हैं। बहुत कुछ है, जो दूसरे को हो सकता है, जो आपको नहीं हो रहा। और ध्यान रखना, जो दूसरे को हो रहा है, वह आपको भी हो सकता है, थोड़े साहस की जरूरत है। और दुनिया में बड़े से बड़ा साहस एक है और वह साहस है इस बात का कि लोग चाहे हंसें, तो भी नए के प्रयोग करने का साहस।

बड़ा डर हमें होता है कि कोई क्या कहेगा! हम मरते वक्त तक लोगों का ही हिसाब रखते हैं कि कोई क्या कहेगा! इसी में हम जीवन को गंवा देते हैं। पड़ोसी क्या कहेंगे! कोई आपको नाचते और गाते और आनंदित होते देख लेगा, तो क्या कहेगा! पत्नी क्या कहेगी; पति क्या कहेगा; बच्चे आपके क्या कहेंगे! तो आप दूसरों के मंतव्य इकट्ठे करते रहना और जीवन की धार आपके पास से बही जा रही है।

आपके पास से बुद्ध भी गुजरे हैं, और आप उनसे भी चूक गए। और आपके पास से कृष्ण भी गुजरे हैं, और उनसे भी आप चूक गए। और क्राइस्ट भी आपके पास से निकले हैं, लेकिन आपको उनकी कोई सुगंध न लगी। क्योंकि आप हमेशा यह ख्याल कर रहे हैं कि कोई क्या कहेगा! आप नाहक ही वंचित हो जाते हैं।

फिर एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि धर्म तो एक प्रयोग है। और जब तक आप प्रयोग करके न देखें, तब तक आप कुछ भी नहीं कह सकते कि क्या हो सकता है। नए के प्रयोग को करके, देखकर ही निर्णय लेना चाहिए।

यहां दो तरह के लोग हैं। एक जिन्होंने प्रयोग किया है; और एक जो बिना प्रयोग यहां खड़े रहे। और मजे की बात यह है कि जिन्होंने प्रयोग किया है, वे शायद किसी से कुछ भी न कहें। लेकिन जिन्होंने प्रयोग नहीं किया है, वे तैयार हैं। उनका मन अब बिल्कुल तैयार है कि वे जाकर लोगों को कहें कि वहां क्या हुआ।

अगर आपने प्रयोग न किया हो, तो किसी से मत कहना कि वहां क्या हुआ। क्योंकि जो भी आप बोलोगे, वह झूठ होगा। वह आपका अनुभव नहीं है। आपने अनुभव किया हो, तो ही लोगों को कहना कि क्या हुआ, क्योंकि उस बात में कोई सच्चाई है। लेकिन हम ईमानदारी से जैसे जरा भी संबंधित नहीं रहे हैं। और हमारा सारा व्यक्तित्व झूठा हो गया है।

इधर मैं देखता हूं। इधर मैंने देखा, सैकड़ों लोग थे जो हिल रहे थे, लेकिन रोक भी रहे थे। कहीं सच में ही कोई चीज कंपा न जाए!

क्या रोक रहे हैं? आपके पास बचाने को भी क्या है? बड़ा मजा तो यह है कि बचाने को भी कुछ होता, तो भी कोई बात थी। बचाने को कुछ भी नहीं है। आप खो क्या देंगे? आपके पास है क्या, जो नष्ट हो जाएगा? जो भी आपके पास है, वह नष्ट होने योग्य है। लेकिन उसी को बचा रहे हैं!

सुना है मैंने कि फ्रांस में क्रांति हुई, तो बेस्टिले के किले में, जहां कि आजन्म अपराधियों को रखा जाता था, क्रांतिकारियों ने दीवालें तोड़ दीं, और वहां के हजारों कैदियों की जंजीरें तोड़ दीं, और उन्हें मुक्त कर दिया। लेकिन वे कैदी आजन्म कैदी थे। कोई बीस वर्ष से बंद था, कोई चालीस वर्ष से, कोई पचास वर्ष से भी बंद था। उनके हाथों और पैरों की जंजीरें सदा के लिए डाली गई थीं। जब वे मरेंगे, तभी उनकी जंजीरें निकलेंगी।

क्रांतिकारियों ने उनकी जंजीरें तोड़ दीं; उन्हें मुक्त कर दिया। और सोचा कि वे बड़े आनंदित होंगे। लेकिन आपको पता है क्या हुआ! आधे कैदी सांझ होते तक वापस लौट आए और उन्होंने कहा, बाहर हमें अच्छा नहीं लगता है। और उन्होंने कहा कि बिना जंजीरों के हम सो भी न सकेंगे। तीस साल, चालीस साल से जंजीरों के साथ सो रहे थे। अब हमें नींद भी न आएगी। और जंजीरें अब जंजीरें नहीं हैं, हमारे शरीर का हिस्सा हो गई हैं। हमारी जंजीरें वापस लौटा दो। और हमारी जो काली कोठरियां हैं, वे ठीक हैं, क्योंकि सूरज की रोशनी आंख को बहुत खलती है। और फिर इस बाहर की दुनिया में जाकर हम करें भी क्या? हमारे सारे संबंध टूट चुके हैं। हमें कोई पहचानता नहीं। हमारा कोई नाता-रिश्ता नहीं है। यह कारागृह ही हमारा अब घर है। और हम यहीं मरना चाहते हैं।

क्रांतिकारियों ने कभी सोचा भी नहीं था कि कारागृह के कैदी भी वापस लौट आएंगे! उन्होंने सोचा भी नहीं था कि स्वतंत्रता को कोई ठुकराकर वापस लौट आएगा। लेकिन कारागृह से भी मोह हो जाता है और जंजीरों से भी प्रेम बन जाता है।

हम इसी तरह के लोग हैं। हमारा दुख भी हम से छोड़ते नहीं बनता। अगर आप रोना भी चाहते हैं, तो भी रोकते हैं। हंसना भी चाहते हैं, तो भी रोकते हैं। आप कुछ भी छोड़ नहीं सकते। आपकी जंजीरें बड़ी प्रीतिकर हो गई हैं। वे आभूषण मालूम होती हैं। और जब तक आप इन जंजीरों से भरे रहेंगे, परमात्मा का, स्वतंत्रता का आकाश आपको उपलब्ध नहीं हो सकेगा। आपको जंजीरें तोड़नी ही पड़ेंगी। आपको कटघरे तोड़ने ही पड़ेंगे। आपको फेंकना ही पड़ेगा बोझ, जो आप सिर पर लिए हैं। क्योंकि परमात्मा की यात्रा केवल उनके लिए है, जो निर्बोझ हैं, जो हलके हैं। भारी लोगों के लिए वह यात्रा नहीं है।

एक छोटा-सा प्रयोग था, आप न भी कर पाए हों हिम्मत, तो कुछ खो नहीं दिया। घर जाकर अकेले में हिम्मत करने की कोशिश करना। यहां दूसरों का डर रहा होगा। घर चले जाना। द्वार बंद कर लेना। मैं वहां भी आपके साथ काम कर सकता हूं। जैसा प्रयोग यहां किया है, एक फूल को रख लेना। उसमें भाव करना, अहंकार को छोड़ देना। और ठीक तीन चरणों में इस प्रयोग को घर पर होने देना। मैं वहां भी आ सकता हूं।

और एक बार आपको झलक मिल जाए, तो आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। आपका नया जन्म हो जाएगा। और जब तक आपका नया जन्म न हो, तब तक आपका आज का जीवन और जन्म बिल्कुल व्यर्थ है।

इस मुल्क में हम उस आदमी को पूजते रहे हैं, जिसको हम द्विज कहते हैं, ट्वाइस बॉर्न। द्विज हम उसे कहते हैं... । एक जन्म तो वह है, जो मां-बाप से मिलता है। वह असली जन्म नहीं है। एक जन्म वह है, जो आप और परमात्मा के बीच संपर्क से मिलता है। वही असली जन्म है। क्योंकि उसके बाद ही आप जीवन को उपलब्ध होते हैं।

मां-बाप से जो जन्म मिलता है, वह तो मृत्यु में ले जाता है और कहीं नहीं ले जाता। उसको जीवन कहना व्यर्थ है। एक और जीवन है, जो कभी नष्ट नहीं होता। और जब तक उसकी सुगंध, उसकी सुवास, आपको उसका संस्पर्श न हो जाए, तब तक आप जानना कि आप व्यर्थ ही भटक रहे हैं। और जहां हीरे कमाए जा सकते थे, वहां आप कंकड़ इकट्ठे करने में समय को नष्ट कर रहे हैं।

घर जाकर इस प्रयोग को कर लेना। और ऐसा नहीं है कि एक दफे प्रयोग कर लिया, तो काम पूरा हो गया। इसे आप रोज सुबह कर ले सकते हैं। अगर एक तीन महीने आपने इसको नियमित रूप से किया, आप दूसरे आदमी हो जाएंगे, द्विज हो जाएंगे। और आप अनुभव करेंगे कि पहली बार खुले आकाश में, खुली हवाओं में, खुले सूरज में, आपकी यात्रा शुरू हुई। और आप पहली दफा अनुभव करेंगे कि पृथ्वी पर होना धन्यभाग है; और यह जीवन एक सौभाग्य है, अभिशाप नहीं है। और परमात्मा ने इसे एक शिक्षण के लिए दिया है।

जिन मित्रों ने प्रयोग किया है, उनमें से बहुत-से मित्र गहरी झलक लिए हैं। वे इस प्रयोग को घर जारी रखेंगे, तो उनकी गहराई तो बहुत बढ़ जाएगी।

एक बात ध्यान रखें, ध्यान को स्नान जैसा बना लें, रोज का कृत्य। जैसे शरीर को रोज धो लेना पड़ता है, तभी वह ताजा और साफ होता है। ऐसे ही मन को भी रोज धो लें, तभी वह ताजा और साफ होता है। और जिनके मन ताजे और साफ नहीं हैं, वे भगवान का आवास नहीं बन सकते हैं।

उसे हम बुलाते हैं, लेकिन हम तैयार नहीं हैं। उसे हम चाहते हैं कि वह मेहमान बने, लेकिन हमारे भीतर गंदगी और कचरे के सिवाय कुछ भी नहीं है। साधारण अतिथि घर में आता है, तो हम बड़ी तैयारियां और बड़ी सजावट करते हैं। और हम परमात्मा को बुलाते हैं बिना किसी तैयारी के। वहां हमारी कोई सजावट नहीं है। और ध्यान रहे, वह अतिथि आने को तैयार है, लेकिन मेजबान तैयार नहीं है।

थोड़ा इसे तैयार करें। जैसा शरीर को धोते हैं, ऐसा रोज मन को भी धोते रहें। धुलते-धुलते मन दर्पण बन जाता है और उस दर्पण में परमात्मा की छवि उतरनी शुरू हो जाती है।

परमात्मा कोई सिद्धांत नहीं है। दर्शनशास्त्र से उसका कोई संबंध नहीं है। परमात्मा एक अनुभव है। और सारे शास्त्र भी आपके पास हों, तो व्यर्थ हैं, जब तक परमात्मा की अपनी निजी एकाध प्रतीति न हो। और एक छोटी-सी प्रतीति और दुनिया दूसरी हो जाती है। फिर इस दुनिया में कोई दुख नहीं है, और कोई चिंता नहीं है, और कोई मृत्यु नहीं है।

अमृत की तरफ एक इशारा हमने यहां किया है। एक प्रयोग छोटा-सा किया है। जिन्होंने हिम्मत की, वे उसे दोहराएं। जिन्होंने हिम्मत नहीं की, वे भी घर जाकर एकांत में हिम्मत करने की कोशिश करें। अगर आपने ठीक श्रम किया, तो एक बात पक्की है, परमात्मा की तरफ उठाया गया कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता है। कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता है। और छोटा-सा भी प्रयास पुरस्कृत होता है।

हमारी बैठक पूरी हुई।

ग्यारहवां प्रवचन

आधुनिक मनुष्य की साधना

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।। 19।।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।। 20।।

तथा जो निंदा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है एवं जिस-किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष

मेरे को प्रिय है।

और जो मेरे को परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, क्या बंदरों की तरह उछल-कूद से ध्यान उपलब्ध हो सकेगा?

क्योंकि आप बंदर हैं, इसलिए बिना उछल-कूद के आपके भीतर के बंदर से छुटकारा नहीं है। यह ध्यान के कारण उछल-कूद की जरूरत नहीं है, आपके बंदरपन के कारण है।

जो आपके भीतर छिपा है, उसे जन्मों-जन्मों तक दबाए रहें, तो भी उससे छुटकारा नहीं है। उसे झाड़ ही देना होगा, उसे बाहर फेंक ही देना होगा। कचरे को दबा लेने से कोई मुक्ति नहीं होती। उसे झाड़-बुहारकर बाहर कर देना जरूरी है।

बंदर को शांत करने के दो रास्ते हैं, एक रास्ता है कि जोर-जबरदस्ती से उसे बिठा दो, डंडे के डर से कि हिलना मत, डुलना मत, नाचना मत, कूदना मत। ऊपर से बंदर अपने को सम्हाल लेगा, लेकिन भीतर के बंदर का क्या होगा? ऊपर से बंदर अपने को रोक लेगा, लेकिन भीतर और शक्ति इकट्ठी हो जाएगी। और अगर इस तरह बंदर को दबाया, तो बंदर पागल हो जाएगा। बहुत लोग इसी तरह पागल हुए हैं। पागलखाने उनसे भरे पड़े हैं। क्योंकि भीतर जो शक्ति थी, उसने उसको जबरदस्ती दबा लिया, वह शक्ति विस्फोटक हो गई है।

एक रास्ता यह है कि बंदर को नचाओ, कुदाओ, दौड़ाओ। बंदर थक जाएगा और शांत होकर बैठ जाएगा। वह शांति अलग होगी; ऊपर से दबाकर आ गई शांति अलग होगी।

आज मनोविज्ञान इस बात को बड़ी गहराई से स्वीकार करता है कि आदमी के भीतर जो भी मनोवेग हैं, उनका रिप्रेशन, उनका दमन खतरनाक है। उनकी अभिव्यक्ति योग्य है।

लेकिन अभिव्यक्ति का मतलब किसी पर क्रोध करना नहीं है, किसी पर हिंसा करना नहीं है। अभिव्यक्ति का अर्थ है, बिना किसी के संदर्भ में मनोवेग को आकाश में समर्पित कर देना। और जब मनोवेग समर्पित हो जाता है और भीतर की दबी हुई शक्ति छूट जाती है, मुक्त हो जाती है, तो एक शांति भीतर फलित होती है। उस शांति में ध्यान की तरफ जाना आसान है।

यह उछल-कूद ध्यान नहीं है। लेकिन उछल-कूद से आपके भीतर की उछल-कूद थोड़ी देर को फिंक जाती है, बाहर हट जाती है। उस मौन के क्षण में, जब बंदर थक गया है, भीतर उतरना आसान है।

जो लोग आधुनिक मनोविज्ञान से परिचित हैं, वे इस बात को बहुत ठीक से समझ सकेंगे। पश्चिम में अभी एक नई थैरेपी, एक नया मनोचिकित्सा का ढंग विकसित हुआ है। उस थैरेपी का नाम है, स्क्रीम थैरेपी। और पश्चिम के बड़े से बड़े मनोवैज्ञानिक उसके परिणामों से आश्चर्यचकित रह गए हैं। इस थैरेपी, इस चिकित्सा की मूल खोज यह है कि बचपन से ही प्रत्येक व्यक्ति अपने रोने के भाव को दबा रहा है। रोने का उसे मौका नहीं मिला है। पैदा होने के बाद पहला काम बच्चा करता है, रोने का। आपको पता है, अगर आप उसको भी दबा दें, तो बच्चा मर ही जाएगा।

पहला काम बच्चा करता है रोने का, क्योंकि रोने की प्रक्रिया में ही उसकी श्वास चलनी शुरू होती है। अगर हम उसे वहीं रोक दें कि रो मत, तो वह मरा हुआ ही रहेगा, वह जिंदा ही नहीं हो पाएगा। इसलिए बच्चा पैदा हो और अगर न रोए, तो मां-बाप चिंतित हो जाएंगे, डाक्टर परेशान हो जाएगा। रुलाने की कोशिश की जाएगी कि वह रो ले, क्योंकि रोने से उसकी जीवन प्रक्रिया शुरू होगी। लेकिन बच्चे को तो हम रोकते भी नहीं।

लेकिन जैसे-जैसे बच्चा बढ़ने लगता है, हम उसके रोने की प्रक्रिया को रोकने लगते हैं। हमें इस बात का पता नहीं है कि इस जगत में ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जिसका जीवन के लिए कोई उपयोग न हो। अगर उपयोग न होता, तो वह होती ही न।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे के रोने की जो कला है, वह उसके तनाव से मुक्त होने की व्यवस्था है। और बच्चे पर बहुत तनाव हैं। बच्चे को भूख लगी है और मां दूर है या मां काम में उलझी है। बच्चे को भी क्रोध आता है। और अगर बच्चा रो ले, तो उसका क्रोध बह जाता है और बच्चा हलका हो जाता है। लेकिन मां उसे रोने नहीं देगी।

मनसविद कहते हैं कि उसे रोने देना; उसे प्रेम देना, लेकिन उसके रोने को रोकने की कोशिश मत करना। हम क्या करेंगे? बच्चे को खिलौना पकड़ा देंगे कि मत रोओ। बच्चे का मन डाइवर्ट हो जाएगा। वह खिलौना पकड़ लेगा। लेकिन रोने की जो प्रक्रिया भीतर चल रही थी, वह रुक गई। और जो आंसू बहने चाहिए थे, वे अटक गए। और जो हृदय हलका हो जाता बोझ से, वह हलका नहीं हो पाया। वह खिलौने से खेल लेगा, लेकिन यह जो रोना रुक गया, इसका क्या होगा? यह विष इकट्ठा हो रहा है।

मनसविद कहते हैं कि बच्चा इतना विष इकट्ठा कर लेता है, वही उसकी जिंदगी में दुख का कारण है। और वह उदास रहेगा। आप इतने उदास दिख रहे हैं, आपको पता नहीं कि यह उदासी हो सकता था न होती; अगर आप हृदयपूर्वक जीवन में रोए होते, तो ये आंसू आपकी पूरी जिंदगी पर न छाते; ये निकल गए होते। और सब तरह का रोना थैराप्यूटिक है। हृदय हलका हो जाता है। रोने में सिर्फ आंसू ही नहीं बहते, भीतर का शोक, भीतर का क्रोध, भीतर का हर्ष, भीतर के मनोवेग भी आंसुओं के सहारे बाहर निकल जाते हैं। और भीतर कुछ इकट्ठा नहीं होता है।

तो स्क्रीम थैरेपी के लोग कहते हैं कि जब भी कोई आदमी मानसिक रूप से बीमार हो, तो उसे इतने गहरे में रोने की आवश्यकता है कि उसका रोआं-रोआं, उसके हृदय का कण-कण, श्वास, धड़कन-धड़कन रोने में सम्मिलित हो जाए; एक ऐसे चीत्कार की जरूरत है, जो उसके पूरे प्राणों से निकले, जिसमें वह चीत्कार ही बन जाए।

हजारों मानसिक रोगी ठीक हुए हैं चीत्कार से। और एक चीत्कार भी उनके न मालूम कितने रोगों से उन्हें मुक्त कर जाती है। लेकिन उस चीत्कार को पैदा करवाना बड़ी कठिन बात है। क्योंकि आप इतना दबाए हैं कि आप अगर रोते भी हैं, तो रोना भी आपका झूठा होता है। उसमें आपके पूरे प्राण सम्मिलित नहीं होते। आपका रोना भी बनावटी होता है। ऊपर-ऊपर रो लेते हैं। आंख से ही आंसू बह जाते हैं, हृदय से नहीं आते। लेकिन चीत्कार ऐसी चाहिए, जो आपकी नाभि से उठे और आपका पूरा शरीर उसमें समाविष्ट हो जाए। आप भूल ही जाएं कि आप चीत्कार से अलग हैं; आप एक चीत्कार ही हो जाएं।

तो कोई तीन महीने लगते हैं मनोवैज्ञानिकों को, आपको रुलाना सिखाने के लिए। तीन महीने निरंतर प्रयोग करके आपको गहरा किया जाता है।

करते क्या हैं इस थैरेपी वाले लोग? आपको छाती के बल लिटा देते हैं जमीन पर। और आपसे कहते हैं कि जमीन पर लेटे रहें और जो भी दुख मन में आता हो, उसे रोकें मत, उसे निकालें। रोने का मन हो, रोएं; चिल्लाने का मन हो, चिल्लाएं।

तीन महीने तक ऐसा बच्चे की भांति आदमी लेटा रहता है जमीन पर रोज घंटे, दो घंटे। एक दिन, किसी दिन वह घड़ी आ जाती है कि उसके हाथ-पैर कंपने लगते हैं विद्युत के प्रवाह से। वह आदमी आंख बंद कर लेता है, वह आदमी जैसे होश में नहीं रह जाता, और एक भयंकर चीत्कार उठनी शुरू होती है। कभी-कभी घंटों वह चीत्कार चलती है। आदमी बिल्कुल पागल मालूम पड़ता है। लेकिन उस चीत्कार के बाद उसकी जो-जो मानसिक तकलीफें थीं, वे सब तिरोहित हो जाती हैं।

यह जो ध्यान का प्रयोग मैं आपको कहा हूं, ये आपके जब तक मनोवेग--रोने के, हंसने के, नाचने के, चिल्लाने के, चीखने के, पागल होने के--इनका निरसन न हो जाए, तब तक आप ध्यान में जा नहीं सकते। यही तो बाधाएं हैं।

आप शांत होने की कोशिश कर रहे हैं और आपके भीतर वेग भरे हुए हैं, जो बाहर निकलना चाहते हैं। आपकी हालत ऐसी है, जैसे केतली चढ़ी है चाय की। ढक्कन बंद है। ढक्कन पर पत्थर रखे हैं। केतली का मुंह भी बंद किया हुआ है और नीचे से आग भी जल रही है। वह जो भाप इकट्ठी हो रही है, वह फोड़ देगी केतली को। विस्फोट होगा। दस-पांच लोगों की हत्या भी हो सकती है।

इस भाप को निकल जाने दें। इस भाप के निकलते ही आप नए हो जाएंगे और तब ध्यान की तरफ प्रयोग शुरू हो सकता है।

उन मित्र ने यह भी पूछा है कि बुद्ध ने, महावीर ने और लाओत्से ने भी क्या ऐसी ही बात सिखाई है?

नहीं; लाओत्से, और बुद्ध, और महावीर ने ऐसी बात नहीं सिखाई, क्योंकि वे आपको नहीं सिखा रहे थे; वे दूसरे तरह के लोगों को सिखा रहे थे। आप मौजूद होते, तो उनको भी यही सिखाना पड़ता।

बुद्ध और महावीर जिन लोगों से बात कर रहे थे, वे ग्रामीण लोग थे--सीधे, शांत, सरल, निर्दोष, स्वाभाविक। उन्होंने कुछ दमन नहीं किया हुआ था। उन्होंने कुछ रोका नहीं था। जितना आदमी सभ्य होता है, उतना दमित होता है। सभ्यता दमन का एक प्रयोग है।

फ्रायड ने तो यह स्वीकार किया है कि सभ्यता हो ही नहीं सकती, अगर दमन न हो।

इसलिए आप देखें, एक मजे की घटना। आदिवासी सरल हैं, लेकिन सभ्य नहीं हो पाते। दुनिया में छोटे-छोटे कबीले हैं जंगली लोगों के। बड़े अच्छे लोग हैं, प्यारे लोग हैं, सरल हैं, आनंदित हैं, लेकिन सभ्य नहीं हो पाते। आप समझते हैं, क्या कारण है?

आखिर जितनी भी अच्छी कौमें हैं, अच्छी जातियां हैं, जंगलों में छिपी हुई, निर्दोष हैं, वे सभ्य क्यों नहीं हो पातीं? न्यूयार्क और बंबई जैसे नगर वे क्यों नहीं बसा पातीं? आकाश में हवाई जहाज क्यों नहीं उड़ा पातीं? चांद पर क्यों नहीं पहुंच पातीं? एटम और हाइड्रोजन बम क्यों नहीं खोज पातीं? रेडियो और टेलीविजन क्यों नहीं बना पातीं?

ये अच्छे लोग, शांत लोग नाचते तो हैं, लेकिन चांद पर नहीं पहुंच पाते। गीत तो गाते हैं, लेकिन एटम बम नहीं बना पाते। खाने को भी मुश्किल से जुटा पाते हैं; कपड़ा भी न के बराबर, अर्धनग्न। आधे भूखे, लेकिन हैं निर्दोष। चोरी नहीं करते हैं, झूठ नहीं बोलते हैं। वचन दें, तो प्राण भी चले जाएं, तो भी पूरा करते हैं। लेकिन ये लोग सभ्य क्यों नहीं हो पाते? समृद्ध क्यों नहीं हो पाते?

तो फ्रायड का कहना है, और ठीक कहना है, कि ये लोग इतने आनंदित हैं और इतने सरल हैं कि इनके भीतर भाप इकट्ठी नहीं हो पाती, जिससे सभ्यता का इंजन चलता है। इनका क्रोध इकट्ठा नहीं हो पाता, घृणा इकट्ठी नहीं हो पाती, कामवासना इकट्ठी नहीं हो पाती। वही इकट्ठी हो जाए, तो उसी स्टीम, उसी भाप को फिर दूसरी तरफ मोड़ा जा सकता है। तो फिर उससे ही मकान जमीन से उठना शुरू होता है, आकाश तक पहुंच जाता है। वह आपके दमित वेगों की भाप है। नहीं तो झोपड़े से आप आकाश छूने वाले मकान तक नहीं जा सकते।

यह सारी की सारी सभ्यता डाइवर्शन है आपकी शक्तियों का। इसलिए परिणाम साफ है कि कोई आदमी सरल हो, शांत हो, स्वाभाविक हो, तो सभ्यता का यह जाल खड़ा नहीं हो सकता। और सभ्यता का जाल खड़ा करना हो, तो आपके भीतर जितना उपद्रव है, उसके निकलने के सब द्वार बंद करने जरूरी हैं; सब द्वार बंद करके उसे एक ही द्वार से निकलने देना जरूरी है।

इसलिए हमारी शिक्षा की सारी प्रक्रिया आपकी समस्त तरह की वासनाओं को इकट्ठा करके महत्वाकांक्षा में लगाने की प्रक्रिया है, सारी वासनाओं को इकट्ठा करके अहंकार की पूर्ति की दिशा में दौड़ाने की प्रक्रिया है।

इसलिए फ्रायड ने यह भी कहा है कि अगर हम आदमी को सरल बनाने में सफल हो जाएं, तो वह पुनः असभ्य हो जाएगा। अब यह बड़ी कठिनाई है। अगर सभ्यता चाहिए, तो आदमी जटिल होगा, रुग्ण होगा, विक्षिप्त होगा। अगर शांति चाहिए, आनंद चाहिए, स्वाभाविकता चाहिए, तो सभ्यता खो जाएगी। आदमी गरीब होगा, प्रसन्न होगा, समृद्ध नहीं हो सकता।

तो फ्रायड ने तो यह कहा है कि आदमी एक असंभव बीमारी है। या तो यह गरीब होगा, सभ्यता के सुख इसे नहीं मिल सकेंगे, सभ्यता की समृद्धि इसे नहीं मिल सकेगी। और अगर यह समृद्ध होगा, तो यह पागल हो जाएगा, विक्षिप्त हो जाएगा, शांत नहीं रह जाएगा।

बुद्ध और महावीर जिनको समझा रहे थे, वे बड़े सरल लोग थे। उनका कुछ दबा हुआ नहीं था। इसलिए उन्हें ध्यान में सीधे ले जाया जा सकता था। आप सीधे ध्यान में नहीं ले जाए जा सकते। आप बहुत जटिल हैं। आप उलझन हैं एक।

पहले तो आपकी उलझन को सुलझाना पड़े, और आपकी जटिलता कम करनी पड़े, और आपके रोगों से थोड़ा छुटकारा करना पड़े। टेम्परेरी ही सही, चाहे अस्थायी ही हो, लेकिन थोड़ी देर के लिए आपकी भाप को

अलग कर देना जरूरी है, जो आपको उलझाए हुए है। तो आप ध्यान की तरफ मुड़ सकते हैं, अन्यथा आप नहीं मुड़ सकते।

इसलिए दुनिया की सारी पुरानी पद्धतियां ध्यान की, आपके कारण व्यर्थ हो गई हैं। आज उनसे कोई काम नहीं हो रहा है। आपमें सौ में से कभी एकाध आदमी मुश्किल से होता है, जिस पर पुरानी पद्धति पुराने ही ढंग में काम कर पाए। निन्यानबे आदमियों के लिए कोई पुरानी पद्धति काम नहीं कर पाती।

उसका कारण यह नहीं है कि पुरानी पद्धतियां गलत हैं। उसका कुल कारण इतना है कि आदमी नया है और पद्धतियां जिन आदमियों के लिए विकसित की गई थीं, वे पृथ्वी से खो गए हैं। आदमी दूसरा है। यह जो इलाज है, यह आपके लिए विकसित नहीं हुआ था। आपने इस बीच नई बीमारियां इकट्ठी कर ली हैं।

तीन हजार, चार हजार, पांच हजार साल पहले ध्यान के जो प्रयोग विकसित हुए थे, वे उस आदमी के लिए थे, जो मौजूद था। वह आदमी अब नहीं है। उस आदमी का जमीन पर कहीं कोई निशान नहीं रह गया है। अगर कहीं दूर जंगलों में थोड़े से लोग मिल जाते हैं, तो हम उनको जल्दी से शिक्षित करके सभ्य बनाने की पूरी कोशिश में लगे हैं। और हम सोचते हैं, हम बड़ी कृपा कर रहे हैं, उनकी सेवा कर रहे हैं।

अभी एक महिला मेरे पास आई थी। अपना जीवन लगा दिया है आदिवासियों को शिक्षित करने में। वह मेरे पास आई थी कि कुछ रास्ते बताइए कि हम आदिवासियों को कैसे सभ्य बनाएं! मैंने उससे पूछा कि पहले तू मुझे यह बता कि जो सभ्य हो गए हैं, ज्यादा से ज्यादा आदिवासी भी सभ्य होकर यही हो पाएंगे, और क्या होगा! तो तुझे क्या परेशानी हो रही है? और ये जो सभ्य लोग दिखाई पड़ रहे हैं, क्या इनसे तुझे तृप्ति है कि थोड़े आदिवासियों को इन्हीं जैसा बना देने से कोई दुनिया का गौरव और कोई सुख-शांति बढ़ जाएगी?

तो वह बहुत घबड़ा गई। उसने कहा, मैंने अपने जीवन के तीस साल इसी में लगा दिए, लेकिन मुझे कभी किसी ने यह कहा नहीं। यह मैं सोचती हूं, तब तो घबड़ाहट होती है कि शिक्षित होकर ज्यादा से ज्यादा यही होगा। मगर जो शिक्षित हो गए हैं, उनको क्या लाभ है!

मगर उस महिला की भी अपनी मजबूरी है। अपनी कामवासना को दबा लिया है। विवाह नहीं किया है; किसी से कभी प्रेम नहीं किया; ब्रह्मचर्य को मानने वाली है। क्रोध नहीं करती है; अक्रोध का व्रत लिया है। झूठ नहीं बोलती है; सच बोलने की कसम खाई है। इस तरह सब भांति अपने को रोक रखा है। अब वह जो भाप इकट्ठी हो गई है, उसका क्या करना? वह जो जीवन ऊर्जा इकट्ठी हो गई है, उसका क्या करना?

तो वह पागल की तरह आदिवासियों की सेवा में लगी है, बिना इसकी फिक्र किए कि सेवा का परिणाम क्या होगा! तुम्हारी भाप तो निकली जा रही है, लेकिन जिन पर निकल रही है, उनका परिणाम क्या है? क्या फायदा होगा?

आदमी जैसा आज है, ऐसा आदमी जमीन पर कभी भी नहीं था। यह बड़ी नई घटना है। और इस नई घटना को सोचकर ध्यान की सारी पद्धतियों में रेचन, कैथार्सिस का प्रयोग जोड़ना अनिवार्य हो गया है। इसके पहले कि आप ध्यान में उतरें, आपका रेचन हो जाना जरूरी है। आपकी धूल हट जानी जरूरी है।

लेकिन वे मित्र समझदार हैं। और उन्होंने लिखा है कि आप हमें धोखा न दे पाएंगे। इस उछल-कूद से कोई भी लाभ होने वाला नहीं है।

एक बात तो पक्की है कि उन्होंने उछल-कूद नहीं की। और वही उछल-कूद जो बच गई है, उनके इस प्रश्न में निकली है। वे कर लेते, तो हलके हो जाते। और बंदर उनके पास निश्चित है और गहरा है। चैन नहीं पड़ी उनको रात जाकर। वे बेचैन रहे होंगे रातभर; शायद सोए भी न हों; क्योंकि बड़े क्रोध से प्रश्न लिखा है। प्रश्न कम है, गाली-गलौज ज्यादा है। इससे तो बेहतर था कि यहां निकाल ली होती, तो रात हलके सो गए होते और प्रश्न में गाली-गलौज न होती।

और मैं आपको धोखा दे रहा हूं! क्या प्रयोजन हो सकता है? और आपके नाचने से मुझे क्या लाभ होगा? और आप बंदर की तरह उछल-कूद कर लेंगे, तो किसका हित सधने वाला है?

लिखा है कि आप हमें धोखा न दे पाएंगे।

पर तुम्हें धोखा देने की जरूरत भी क्या है? प्रयोजन भी क्या है? पर वे यह कह रहे हैं कि हम धोखे में न आएंगे। वे असल में यह कह रहे हैं कि हम धोखे में न आएंगे। वे यह कह रहे हैं कि हम जैसे हैं, हम ऐसे ही रहेंगे। हम किसी को बदलने का कोई मौका न देंगे।

मत दें। आपकी मर्जी है। आप अपने से प्रसन्न हों, तो यहां मुझे सुनने आने की भी क्या जरूरत है! आप जैसे हैं भले हैं। आपको यहां परेशान होने की भी क्या जरूरत है! आपको ध्यान में आने की भी क्या जरूरत है! लेकिन अगर आने की कोई जरूरत है, अगर चिकित्सक के पास आप जाते हैं, तो बीमार हैं, इस बात की खबर देते हैं।

मैं एक चिकित्सक हूं, इससे ज्यादा नहीं। अगर आप मेरे पास आते हैं, तो आप बीमार होने की खबर देते हैं। और आपकी बीमारी को अगर अलग करने के लिए मैं कोई दवा बताऊं, तो आप कहते हैं, आप हमें धोखा न दे पाओगे। तो आने की कोई जरूरत नहीं है। आप अपने घर मजे में हैं। किसी दिन मुझे जरूरत होगी, मैं आपके घर आ जाऊंगा।

लेकिन आप मत आएं। आप अपने को बचाएं। आप जितना अपने को बचाएंगे, उतना ही लाभ होगा! क्योंकि उतने ही आप परेशान होंगे, पीड़ित होंगे, पागल होंगे। और जिस दिन बात सीमा के बाहर चली जाए, उस दिन कहीं बिजली के शॉक आपको लगाने पड़ेंगे।

मैं कहता हूं, अभी कूद लें, ताकि बिजली के शॉक न लगाने पड़ें। और अभी कूद लें, ताकि पागलखाने में न बिठालना पड़े। अपने पागलपन को अपने ही हाथ से बाहर फेंक दें, ताकि किसी और को आपके पागलपन को फेंकने के लिए कोई उपाय और कोई सर्जरी न करनी पड़े। लेकिन आप नहीं सोचते।

इसे हम कई तरह से समझने की कोशिश करें।

सिर्फ इंगलैंड एक मुल्क है, जहां के स्कूल के बच्चे पत्थर नहीं फेंक रहे हैं; सारी दुनिया में फेंके जा रहे हैं। सिर्फ इंगलैंड अकेला मुल्क है, जहां के बच्चे स्कूल में शिक्षकों को पत्थर नहीं मार रहे हैं, गाली नहीं दे रहे हैं, परेशान नहीं कर रहे हैं। तो सारी दुनिया के विचारशील लोग परेशान हैं कि इंगलैंड में यह क्यों नहीं हो रहा है! सारी दुनिया में बड़े पैमाने पर हो रहा है। तो एक बात खोजी गई और वह यह कि इंगलैंड के हर स्कूल में बच्चों को कम से कम दो घंटे खेल खेलना पड़ रहा है। वही कारण है, और कोई कारण नहीं है।

जो बच्चा दो घंटे तक हाकी की चोट मार रहा है, वह पत्थर फेंकने में उत्सुक नहीं रह जाता। उसने फेंकने का काम पूरा कर लिया। जो बच्चा फुटबाल को लात मार रहा है दो घंटे तक, उसकी इच्छा नहीं रह जाती अब किसी को लात मारने की। लात मारने की वासना निकल गई।

इंगलैंड के मनोवैज्ञानिकों का सुझाव है कि सारी दुनिया में अगर बच्चों के उपद्रव रोकने हैं, तो उनको खेलने की गहन प्रक्रियाएं देनी होंगी, जिनमें उनकी हिंसा निकल जाए। और बच्चों में बड़ी हिंसा है, क्योंकि बच्चों में बड़ी ताकत है।

हमारे स्कूल में बच्चा क्या कर रहा है? पांच-छः घंटे आप उसको बिठा रखते हैं। कोई बच्चा प्रकृति से पांच-छः घंटे एक क्लास के रूम में बैठने को पैदा नहीं हुआ है। प्रकृति ने कोई इंतजाम नहीं किया है, कोई बिल्ट-इन व्यवस्था नहीं है भीतर कि छः घंटे बच्चे को बिठाया जा सके। छः घंटे बच्चे को बिठाने का मतलब है कि छः घंटे जो शक्ति प्रकट होनी चाहती थी, वह रुक रही है, वह रुक रही है।

जरा स्कूल से बच्चे जब छूटते हैं, उनको देखें। जैसे ही छुट्टी होती है, लगता है, वे नरक से छूटे। उछाल रहे हैं बस्ते को, फेंक रहे हैं किताबों को, और इतने आनंदित हो रहे हैं कि जैसे जीवन मिल गया! आपने जरूर उनके साथ कोई अपराध किया है पांच-छः घंटे। नहीं तो इतनी खुशी स्कूल से छूटकर न मिलती।

और यह अपराध जारी रहेगा। यह बीस साल की उम्र, पच्चीस साल की उम्र तक जारी रहेगा। धीरे-धीरे वे इसी दबी हुई व्यवस्था के लिए राजी हो जाएंगे। फिर उनका सारा जीवन गड़बड़ हो जाएगा। क्योंकि ऊर्जा जो दब गई और प्रकट होने का जिसे मार्ग न मिला, वह क्रोध बन जाती है, हिंसा बन जाती है, फिर नए-नए मार्गों से मार्ग खोजती है। फिर वे सब तरह के उपद्रव करेंगे। फिर वे कोई छोटी भी बात का बहाना ले लेंगे और उनकी हिंसा बाहर होने लगेगी।

हम सब हिंसा से भरे हुए लोग हैं। लेकिन अगर समझपूर्वक समझा जाए और जीवन को बदलने की ठीक व्यवस्था का ख्याल रखा जाए, तो हिंसा भी सृजनात्मक हो सकती है। हिंसा भी क्रिएटिव हो सकती है। और क्रोध से भी फूल खिल सकते हैं, अगर अकल हो।

यह जो मैं आपसे कह रहा हूं ध्यान का प्रयोग, यह आपकी हिंसा, आपके क्रोध, आपकी कामवासना, आपकी घृणा, इनको सृजनात्मक रूप से रूपांतरित करने का प्रयोग है। यह एक क्रिएटिव ट्रांसफार्मेशन है। क्योंकि आपका लक्ष्य ध्यान है।

अगर आप चीख भी रहे हैं, तो आपका लक्ष्य ध्यान है। आपके चीखने की ऊर्जा भी ध्यान की तरफ प्रवाहित हो रही है। अगर आप अपने क्रोध को भी फेंक रहे हैं, नाराजगी को भी फेंक रहे हैं, रोने और दुख को भी फेंक रहे हैं, तो भी आपका लक्ष्य ध्यान है। यह ऊर्जा ध्यान की तरफ प्रवाहित हो रही है।

अगर आप थोड़े दिन तैयार हो जाएं मुझसे धोखा खाने को... आप अपने से तो धोखा खा ही रहे हैं बहुत दिन से! यह भी प्रयोग कर लेने जैसा है। तीन महीने में आपसे मैं कुछ छीन न लूंगा, क्योंकि आपके पास कुछ है भी नहीं, जो छीना जा सके।

मेरी दृष्टि में तो आपके पास ऐसी कोई मूल्यवान चीज नहीं है, जो छीनी जा सके। आपके पास हो, तो उसे सम्हालकर आप रखें, मेरे जैसे लोगों के पास न आएं, क्योंकि ऐसे लोग आपको बदलने की कोशिश में ही लगे हुए हैं।

तीन महीने इस प्रयोग को करके देखें। तीन दिन के बाद आपको फर्क दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। और ऐसा नहीं कि इन एक मित्र ने ही पत्र लिखा है। पांच-सात उन मित्रों के भी पत्र हैं, जिनको कल, पहली दफे ही परिणाम दिखाई पड़ना शुरू हुआ।

वे बुद्धिमान लोग हैं। हालांकि इन मित्र ने लिखा है कि हम बुद्धिमानों को आप धोखा न दे पाएंगे। मगर बुद्धिमान वह है, जो प्रयोग करके कुछ कहता है। बुद्धिहीन वह है, जो बिना प्रयोग किए कुछ कहता है। बिना प्रयोग किए आपकी बात का कोई मूल्य ही नहीं है।

पांच-सात मित्रों ने लिखा है। एक मित्र ने लिखा है कि मुझे इतनी शांति कभी अनुभव नहीं हुई। लेकिन बीस मिनट तक मुझसे आवाजें निकलती रहीं, जिनका मुझे ही भरोसा नहीं कि मेरे भीतर कहां से आईं! क्योंकि इस तरह की आवाजें मैंने कभी नहीं की हैं।

आपने न की हों, लेकिन आप करना चाहते हैं। आपके भीतर वे दबी पड़ी हैं। और आप कहीं भी कर नहीं सकते थे। कहीं भी करते, तो आप पागल समझे जाते। यहां आप कर रहे थे, तो आपको ख्याल था कि आप ध्यान में जा रहे हैं, तो आपने अपने को खुला छोड़ दिया। इस खुले भाव से जो भीतर दबा था, वह निकल गया। जैसे मवाद निकल गई हो घाव से। और भीतर घाव हलका और भरने के लिए तैयार हो गया हो। तो उन मित्र ने लिखा है कि ऐसी शांति मुझे जीवन में कभी भी नहीं मिली।

एक मित्र ने लिखा है कि आश्चर्यचकित हूं कि इस भांति नाचने-कूदने से आनंद का कैसे भाव आया!

जब आप नाचते-कूदते हैं हृदयपूर्वक--नकली नाचते-कूदते हों तो कोई बहुत फर्क नहीं होगा, कवायद होगी, थोड़ा व्यायाम हो जाएगा--लेकिन अगर हृदयपूर्वक नाचते हों, तो आप पुनः बच्चे हो गए। आप फिर बचपन में लौट गए। आप फिर छोटे बच्चे की तरह सरल हो गए। और बच्चे जिस आनंद की झलक को देख पाते हैं, उसको आप भी देख पा रहे हैं।

संतों ने कहा है कि बुढ़ापे में जो पुनः बच्चों की भांति हो जाएं, वे ही संत हैं। आप छोटे बच्चे की भांति हो गए। इतने लोगों के सामने छोटा बच्चा भी शर्माएगा नाचने में। और आप नाचे-कूदे। तो आपने भय छोड़ दिया। दूसरों के मंतव्य का भय छोड़ दिया। दूसरे क्या कहेंगे, यह भय छोड़ दिया।

बच्चे में यह भय नहीं होता। दूसरे क्या कहेंगे, उसे प्रयोजन नहीं है। उसके लिए जो आनंदपूर्ण होता है, वह करता है। जैसे-जैसे बड़ा होता है, खुद के आनंद की फिक्र छोड़ देता है, दूसरे क्या कहेंगे, इसका चिंतन करने लगता है। बस, यही बच्चे की विकृति है।

आप फिर बच्चे हो गए और आपने सारी फिक्र छोड़ दी। आप पुनः अकेले हो गए, समाज से मुक्त हो गए। जैसे ही आपने चिंता छोड़ी कि कोई क्या कहेगा, यह जो हलकापन भीतर आया, इस हलकेपन में आनंद की झलक बिल्कुल आसान है। और बच्चे की तरह जो फिर से हो जाए, वह परमात्मा को यहीं अनुभव करने लगेगा अपने चारों ओर। लेकिन बुद्धिमान, अतिशय बुद्धिमान... ।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन को एक लाटरी मिल गई थी। पांच लाख रुपये जीत लिए थे। सारा गांव चकित था। सारे गांव के लोग इकट्ठे हो गए। और लोग मुल्ला से पूछने लगे कि तुमने यही नंबर कैसे चुना! गांव का जो बुद्धिमान था, सबने कहा कि हमारी तरफ से तुम ही पूछ लो। तो गांव का जो बुद्धिमान आदमी था उसने सबकी तरफ से मुल्ला से पूछा कि पूरा गांव एक ही जिज्ञासा से भरा है कि तुमने यह उनहत्तर, सिक्सटी नाइन नंबर तुमने कैसे चुना? किस तरकीब से?

तो मुल्ला ने कहा, अब तुम पूछते हो, तो मैं तुम्हें बता देता हूं। एक स्वप्न में मुझे यह नंबर प्रकट हुआ। एक स्वप्न मैंने देखा रात में कि मैं एक नाटक देख रहा हूं। और वहां मंच पर सात कतारें नर्तकियों की खड़ी हैं और हर कतार में सात नर्तकियां हैं। वे सब नाच रही हैं। तो सात सतैयां उनहत्तर, ऐसा मैंने सोचा और सुबह मैंने उनहत्तर नंबर की टिकट खरीद ली।

पर, उस आदमी ने कहा, अरे, पागल, सात सतैयां उनहत्तर होते ही नहीं। सात सतैयां तो होते हैं उनचास, फोर्टी नाइन!

तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, ओ.के., सो यू बी दि मैथमेटीशियन। तो तुम गणितज्ञ हो जाओ, लेकिन लाटरी मैंने जीती है।

वह जो नाच रहा है, कूद रहा है, वह आपसे कहेगा, सो यू बी दि वाइज मैन, यू बी दि मैथमेटीशियन। वह आपकी फिक्र नहीं करेगा। न मीरा ने आपकी फिक्र की है, न चैतन्य ने आपकी फिक्र की है। वे नाच लिए हैं और वे आपसे कहते हैं, आप हो जाओ बुद्धिमान, हमें रहने दो पागल। क्योंकि हमें पागलपन में जो मिल रहा है, वह हमें नहीं दिखता कि तुम्हारी बुद्धिमानी में भी तुम्हें मिल रहा है।

और एक ही सबूत है बुद्धिमानी का, क्या मिल रहा है? बुद्धिमान कौन है? बुद्धिमानी का एक ही सबूत है कि क्या मिल रहा है जीवन में--कितना आनंद, कितना रस, कितना सौंदर्य, कितना सत्य, कितना परमात्मा। और कोई सबूत बुद्धिमानी का नहीं है।

तो मैं तो आपसे कहूंगा, जिनको बुद्धिमान रहना हो, मजे से बुद्धिमान रहें। लेकिन जिनको जीवन का रस जानना हो, उन्हें सस्ती बुद्धिमानी से बचना जरूरी है।

हां, मैं यह नहीं कहता कि आप मेरी बात मानकर नाचते-कूदते रहें। वह बुद्धिमानी नहीं है। मैं आपसे यह कहता हूं कि मैं जो कह रहा हूं, उसे करके देख लें; और अगर लगता हो कि कुछ है, तो आगे बढ़ जाएं। और लगता हो, कुछ नहीं है, तो छोड़ दें। कौन रोकता है आपको छोड़ने से?

लेकिन छोड़ने के पहले परख लेना जरूरी है। और किसी भी चीज में कुछ नहीं है, ऐसी धारणा बनाने के पहले प्रवेश करना जरूरी है। अनुभव के पहले जो निर्णय लेता है, वह अंधा है।

एक मित्र ने पूछा है कि प्रभु को पा लेने के बाद मान लिया कि मन को शांति मिल जाएगी और मान लिया कि आनंद भी मिल जाएगा, लेकिन फिर हम करेंगे क्या?

आदमी की भी चिंताएं बड़ी अदभुत हैं! वैसे यह चिंता विचारणीय है। निश्चित ही, करने को आपके लिए कुछ भी न बचेगा। मगर यह तो ऐसे ही है, जैसे कोई बीमार पूछे कि मान लिया कि टी.बी. ठीक हो जाएगी, कैंसर ठीक हो जाएगा, सब बीमारियां चली जाएंगी, फिर हम करेंगे क्या? क्योंकि बीमारी के लिए कुछ काम में लगे हैं। दवा लाते हैं; चिकित्सक के पास जाते हैं; अस्पताल में भर्ती होते हैं! और सब ठीक हो गया, तो फिर? फिर हम करेंगे क्या?

लेकिन करना क्या जरूरी है? और करने से मिलता क्या है? न करने की अवस्था ही तो परम लक्ष्य है। ऐसी अवस्था पा लेना, जहां करने को कुछ भी न बचे, वही तो परम तृप्ति है। तृप्ति का अर्थ ही है कि उसके बाद करने को कुछ भी न बचे। अतृप्ति में करना बाकी रहता है, क्योंकि अतृप्ति धक्का देती है कि करो, ताकि मैं तृप्त हो सकूं। लेकिन जब कोई सच में ही तृप्त हो जाता है, तो करने को कुछ भी नहीं बचता।

तो अगर आप डरते हों कि करने को कुछ भी न बचेगा और बिना किए रहने वाले आप नहीं हैं, तो परमात्मा को मत खोजें। तब तो परमात्मा से बचें। और कहीं अगर मिल भी जाए अपने आप, तो भाग खड़े हों; लौटकर मत देखें।

लेकिन करने से क्या पा रहे हैं? और इसका यह अर्थ नहीं है कि जब बीमारियां नहीं रह जातीं, तो स्वास्थ्य कोई अभाव है। स्वास्थ्य की अपनी भाव-दशा है। लेकिन करने की प्रक्रिया बदल जाती है। बीमार आदमी कुछ पाने के लिए करता है। स्वस्थ आदमी कुछ है उसके भीतर, उस आनंद, अहोभाव में करता है।

एक बच्चे को कुछ भी पाना नहीं है, लेकिन नाच रहा है सूरज की रोशनी में। यह भी कृत्य है। लेकिन इस कृत्य में और एक नर्तक के जो कि स्टेज पर नाच रहा है, फर्क है। नर्तक नाच रहा है कि कुछ मिलेगा नाचने के बाद, पुरस्कार। बच्चा नाच रहा है, क्योंकि भीतर ऊर्जा है। ऊर्जा प्रकट होना चाहती है। बच्चा नाच रहा है आनंद से, कुछ पाने के लिए नहीं। नाचना अपने आप में पर्याप्त है।

जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुंचने लगता है, फल की आकांक्षा से कृत्य समाप्त हो जाते हैं। लेकिन कृत्य समाप्त नहीं हो जाते। क्योंकि बुद्ध भी चलते दिखाई पड़ते हैं, परमात्मा को पाने के बाद। बोलते दिखाई पड़ते हैं, उठते हैं, बैठते हैं। बहुत कुछ करते दिखाई पड़ते हैं। हालांकि करने का बुखार चला गया। फीवरिश नहीं है अब कोई करना। जिस दिन बुद्ध मरते हैं, उस दिन वे छाती नहीं पीटते कि अब मैं मर जाऊंगा, तो मेरा किया हुआ अधूरा रह गया। कुछ अधूरा नहीं है। क्योंकि जो भी आनंद से हो रहा था, वह हो रहा था। नहीं हो रहा, तो नहीं हो रहा।

कोई कृष्ण भी चुप नहीं बैठ जाते। कोई महावीर चुप नहीं बैठ जाते। कोई जीसस चुप नहीं बैठ जाते। परमात्मा को पा लेने के बाद भी कृत्य जारी रहता है। कृत्य आपका नहीं रह जाता; परमात्मा का हो जाता है। इसलिए दुख आपका नहीं रह जाता, चिंता आपकी नहीं रह जाती; जैसे सब उसने सम्हाल लिया।

इसे ऐसा समझें कि हम उस तरह के लोग हैं... । नदी में दो तरह की नाव चल सकती है। एक नाव तो, जिसको हाथ की पतवार से चलाना पड़ता है। तो फिर पतवार हमें हाथ में पकड़कर श्रम उठाना पड़ता है। थकेंगे और लड़ेंगे नदी से।

रामकृष्ण ने कहा है कि एक और तरह की नाव भी है, वह है पाल वाली नाव। उसमें पतवार नहीं चलानी पड़ती, हवा का रुख देखकर नाव छोड़ देनी पड़ती है। फिर हवा उसे ले जाने लगती है।

सांसारिक आदमी पतवार वाली नाव जैसा है। आध्यात्मिक व्यक्ति पाल वाली नाव जैसा है। उसने परमात्मा की हवाओं पर छोड़ दिया, अब वह ले जाता है। अब उसको पतवार नहीं चलानी पड़ती।

हालांकि पतवार चलाने का जो पागलपन किसी को सवार हो, वह जरूर पूछेगा कि अगर पाल लगा लें नाव में और हवाएं ले जाने लगें, तो हम क्या करेंगे? क्योंकि हम तो यह खेते हैं पतवार से। यही तो हमारा जीवन है।

लेकिन उसे पता ही नहीं कि पाल वाली नाव का नाविक किस शांति से सो रहा है, या बांसुरी बजा रहा है, या खुले आकाश को देख रहा है, या सूरज के साथ एक मौन चर्चा में संलग्न है।

काम का बोझ हट गया, तो अब जीवन का आनंद सरल है। काम के बोझ से ही तो हम मरे जा रहे हैं, लेकिन मित्र पूछते हैं कि फिर हम क्या करेंगे?

एक और बात ध्यान रखनी जरूरी है कि जब परमात्मा मिलेगा, तो आप होंगे ही नहीं। आप उसके पहले ही विदा हो गए होंगे। इसलिए इस चिंता में मत पड़ें कि आप क्या करेंगे। जब तक आप हैं, तब तक तो वह मिलेगा भी नहीं।

पर इससे भी उनके चित्त को राहत नहीं मिलती। इससे उनको और कष्ट होता है।

आगे उन्होंने पूछा है, और फिर आप कहते हैं कि आदमी मिट जाएगा, तब परमात्मा मिलेगा! तो जब हमें मिलना ही नहीं है वह, तो मेहनत क्यों करें?

इसे कहते हैं नकारात्मक चिंतन की प्रक्रिया। अगर कोई कहे कि ऐसी तृप्ति आपको मिल जाएगी कि कुछ करने को न बचेगा, तो तृप्ति की फिक्र नहीं होती। आपको यह लगता है, फिर करने को नहीं बचेगा, तो हम क्या करेंगे?

अगर कोई कहता है कि आप मिट जाओगे, तब परमात्मा मिलेगा, तो परमात्मा की भी फिक्र छूट गई। फिर तो हमें लगता है, जब हम ही मिट जाएंगे, तो फिर सार भी क्या है ऐसे परमात्मा से मिलने में!

लेकिन आपके होने में क्या सार है? और आपने होकर क्या पाया है? अभी भी, जो कभी भी आपके जीवन में कोई थोड़ी-बहुत आनंद की किरण मिली हो, वह भी तभी मिली है, जब आप मिट गए हैं। किसी के प्रेम में, किसी की मित्रता में, या सुबह खिलते हुए फूल के सौंदर्य को देखकर, या कभी रात आकाश तारों से भरा हो और उसमें लीन होकर अगर आपको कभी थोड़ी-सी झलक मिली है सुख की, तो वह भी इसीलिए मिली है कि आप उस क्षण में खो गए थे। आप नहीं थे।

जीवन में जो भी उतरता है महान, वह तभी उतरता है, जब आप नहीं होते। पर इसका यह मतलब नहीं है कि आप सच में ही नहीं होंगे।

अध्यात्म की भाषा समझने में कई बार तकलीफ होती है, क्योंकि वह भाषा शब्दों का बड़ा मौलिक प्रयोग करती है। जब कहा जाता है कि आप नहीं होंगे, तो उसका मतलब है कि केवल आपका जो मिथ्या व्यक्तित्व है, जो फाल्स सेल्फ है, जो झूठा आवरण है, वह नहीं होगा। आपका जो गहरा केंद्र है, वह तो होगा ही, क्योंकि वह तो परमात्मा ही है।

यह ऐसा ही समझें। मैंने सुना है कि ऐसा हुआ, एक जर्मन जासूस को इंगलैंड भेजा गया दूसरे महायुद्ध के पहले। पांच वर्ष पहले भेज दिया गया, ताकि पांच वर्ष में वह इंगलैंड में रम जाए। ठीक अंग्रेजों जैसा जीने लगे, उठने लगे, बैठने लगे। अंग्रेजी ऐसी बोलने लगे जैसे कि मातृभाषा हो। जर्मन प्रभाव बिल्कुल समाप्त हो जाए--आवाज में, ध्वनि में, आंखों में, चलने में। क्योंकि जर्मन और ढंग से चलता है, अंग्रेज और ढंग से चलता है। हर जाति का अपना व्यक्तित्व है।

तो पांच साल पहले उसे भेज दिया गया। और पांच साल उसने सब तरह के प्रयोग किए और अपने को बिल्कुल स्वाभाविक अंग्रेज बना लिया। फिर युद्ध समाप्त हो गया और पूरे दस साल इंगलैंड में रहने के बाद वह जर्मनी वापस लौटा।

पैदा जर्मन हुआ था, लेकिन दस साल में अभ्यास से अंग्रेज हो गया। जब घर लौटा, तो बड़ी अड़चन शुरू हुई। क्योंकि यह जो अंग्रेजियत उसने सीख ली थी, अब यह वापस अपने जर्मन परिवार में बाधा बनने लगी। घर के लोग उससे कहते कि नकली को छोड़ क्यों नहीं देता? है तो तू जर्मन। तो फिर से बोल अपनी मातृभाषा, जैसी तू बोलता था। और वैसे ही उठ, वैसे ही बैठ, वैसा ही व्यवहार कर, जैसा तू करता था। जैसा हमने तुझे बचपन में जाना, उसकी मां कहती। उसकी पत्नी कहती कि जैसा मैं तुम्हें जानती थी जाने के पहले, ठीक वैसा।

पर वह आदमी कहता कि जरा ठहरो। दस साल अभ्यास करके यह नकली भी स्वाभाविक हो गया है। इसे हटाऊंगा, मिटाऊंगा, पर थोड़ा वक्त लगेगा।

आप जिसको अपना व्यक्तित्व समझ रहे हैं, आप समझ रहे हैं जिसको मेरा होना, वह आपका होना नहीं है। वह केवल सिखावन है, आपका स्वभाव नहीं है।

आप एक घर में पैदा हुए। जब आप पैदा होते हैं, तो न तो आप हिंदू होते हैं, न मुसलमान होते हैं, न ईसाई होते हैं, न जैन होते हैं। आप सिर्फ होते हैं। अगर आपको मुसलमान घर में बड़ा किया जाए, आप मुसलमान हो जाएंगे। और अगर हिंदू घर में बड़ा किया जाए, हिंदू हो जाएंगे। हिंदू का अलग व्यक्तित्व है, मुसलमान का अलग व्यक्तित्व है। अगर जैन घर में बड़ा किया जाए, तो आप जैन हो जाएंगे। उसका अलग व्यक्तित्व है।

लेकिन जब आप पैदा हुए थे, तो आप बिना व्यक्तित्व के पैदा हुए थे। हिंदू, मुसलमान, ईसाइयत, ऊपर से सीखी गई बातें हैं। फिर आप हिंदी सीखें, मराठी सीखें, अंग्रेजी सीखें। जो भाषा आप सीखेंगे, वह आपकी भाषा हो जाएगी। लेकिन जब आप पैदा हुए थे, तो मौन पैदा हुए थे। आपकी कोई भाषा न थी।

फिर आप सीखते चले जाएंगे। और आप जब पचास साल के होंगे, तो आपके चारों तरफ एक ढांचा निर्मित हो जाएगा। भाषा का, व्यवहार का, व्यक्तित्व का, राष्ट्र का, जाति का, आचरण का, धर्म का एक ढांचा खड़ा हो जाएगा। और इसी ढांचे को आप समझेंगे, मैं हूं।

यही ढांचा टूटता है परमात्मा को पाने में, आप नहीं टूटते। वह जो आप लेकर पैदा हुए थे, वह नहीं टूटता। वह तो आप रहेंगे सदा। उसे तो छीनने का कोई उपाय नहीं है। उसे तो परमात्मा भी नहीं छीनेगा।

सच तो यह है कि आप जिसको अभी समझ रहे हैं मेरा होना, इसी ने आपसे आपका असली व्यक्तित्व छीन लिया है। इस नकली को उतारने की प्रक्रिया है धर्म। जब यह उतर जाता है और जो स्वभाव है सहज, जो जन्म के पहले भी आपके पास था और आप मर जाएंगे तब भी आपके पास होगा, वह जब शुद्धतम आपके पास रह जाता है, तो आप परमात्मा से मिलते हैं।

जीसस ने कहा है, जो बचाएगा, वह खो देगा; और जो खोने को राजी है, वही बचाएगा, उसका ही बच रहेगा।

यह जो झूठा है, इसके खोने की बात है। आपके खोने की तो कोई बात ही नहीं है। लेकिन उस आपका आपको ही कोई पता नहीं है, जो नहीं खोएगा। इसलिए घबड़ाहट होती है। इससे डर लगता है। इससे भय होता है।

यह तो हालत हमारी ऐसी है कि जैसे एक अंधा आदमी आए और वह कहे कि मैं अपनी आंखें तो ठीक करवा लूं, लेकिन तब जिस लकड़ी को मैं टेककर चलता हूं, उसका क्या होगा? और मेरी आंखें ठीक हो जाएंगी, तो चिकित्सक कहता है कि यह टेकने वाली लकड़ी तुझे छोड़ देनी पड़ेगी। तो इसको मैं कैसे छोड़ सकता हूं! यही लकड़ी तो मेरा प्राण है। इसी के सहारे तो मैं चलता हूं, जीता हूं, उठता हूं, रास्ता खोजता हूं!

तो उस अंधे आदमी को पता नहीं कि जब आंखें ही मिल जाएं, तो लकड़ी को टेकने की जरूरत ही नहीं रह जाती, और न लकड़ी से खोजने की जरूरत रह जाती है।

जिस दिन आपको परमात्मा मिल जाए, उस दिन आपके अंधेपन में जो व्यक्तित्व काम देता था, उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। घबड़ाएं मत। आपसे वही छीना जा सकता है, जो आपका नहीं है। जो आपका है, उसे छीना ही नहीं जा सकता।

इस सूत्र को, इस महासूत्र को स्मरण रखें सदा, कि आप वही खो सकते हैं, जो आपका है ही नहीं। जो आपका है, उसको छीनने का कोई उपाय नहीं है। स्वभाव का यही अर्थ होता है, जो आपसे छीना न जा सके। जो छीना जा सकता है, उसको आप चाहे पकड़े भी रहें, तो भी वह आपका नहीं है।

एक आदमी धन को पकड़े हुए है; सोचता है, धन छिन जाएगा। लेकिन धन छिनेगा ही, क्योंकि वह आप नहीं हैं। ज्ञानी इसीलिए शरीर को भी नहीं पकड़ते, क्योंकि वे कहते हैं, मौत उसे छीन लेगी। ज्ञानी मन को भी नहीं पकड़ते, क्योंकि ज्ञानी कहते हैं, ध्यान उसे भी छीन लेगा। ज्ञानी तो केवल उसको ही पकड़ते हैं, जो छीना नहीं जा सकता। न ध्यान छीन सकता है, न मृत्यु छीन सकती है, न समाधि छीन सकती है। वह कौन है आपके भीतर, जो कभी भी छीना नहीं जा सकता? वही आप हैं।

इसलिए भयभीत न हों। जो व्यर्थ है, ऊपर-ऊपर है, उसे छोड़ने की तैयारी रखें, ताकि भीतर जो है उसे पाया जा सके।

एक प्रश्न और। एक मित्र बार-बार पूछते हैं--आखिरी दिन के लिए उनका सवाल मैं टालता रहा--पूछते हैं बार-बार कि एक मित्र, श्री सूर्योदय गौड़, आपके खिलाफ पर्चे छापते हैं। आप जवाब क्यों नहीं देते? और उनके खिलाफ कुछ किया क्यों नहीं जाता?

पहली बात, कि वे मेरा ही काम कर रहे हैं, इसलिए उनके खिलाफ कुछ किया नहीं जाना चाहिए। काम के बड़े अनूठे ढंग हैं। और कई दफा मैं सोचता था कि अगर कोई मेरा विरोध न करता हो, तो अपने ही किसी मित्र को कहूं कि तू विरोध कर। क्योंकि बहुत-से लोगों को मैं अपने पास नहीं ला सकता हूं। बहुत-से लोग मेरे विरोध के जरिए ही मेरे पास आ सकते हैं।

कुछ लोग हैं, जो विरोध से ही पास आ सकते हैं। विरोध के कारण ही उनको उत्सुकता पैदा होती है। कोई विरोध करता है, तो ही उनको लगता है कि जाकर देखें, मामला क्या है! कई दफा वे देखने आते हैं और रुक जाते हैं और उनका जीवन भी बदल जाता है।

तो बहुत बार मैं सोचता था, किसी मित्र को कहूं कि मेरे खिलाफ कुछ लिखो, कुछ चर्चा चलाओ, ताकि वे जो सीधे-सीधे नहीं आते, जिनकी आंखें तिरछी हैं, वे विरोध के जरिए आ जाएं। फिर अचानक सूर्योदय गौड़ ने वह काम करना शुरू कर दिया, तो मैं भीतर बड़ा प्रसन्न हुआ। मैंने कहा कि नाहक मैं किसी को कहता, तो मेरा मित्र कोई कितनी ही कोशिश भी करता, तो भी विरोध में वह जान न रहती। बेजान रहता, भीतर से झूठा-झूठा रहता। अब ठीक आदमी अपने आप हाजिर हो गया है। यह जगत कुछ ऐसा है कि यहां जो भी चाहो, वह हाजिर हो जाता है। चाहने की देर है कि लोग मिल जाते हैं।

अब उन पर नाराज होने का कोई कारण नहीं। मैं प्रसन्न हूं। दिनभर मेहनत करते हैं। गरीब आदमी मालूम पड़ते हैं। अपना धंधा, काम छोड़कर इसी काम में लग गए हैं। उनका जीवन मेरे लिए ही समर्पित हो गया है। तो इसलिए उनका कोई विरोध नहीं करता हूं। और उनके विरोध से कुछ हानि नहीं होती है।

सत्य की कोई हानि नहीं है। विरोध से और निखरता है, साफ होता है। और अगर सत्य को भय हो विरोध का, तो जानना चाहिए कि वह सत्य ही नहीं है।

एक मित्र और दो-तीन दिन पहले आए थे। उनका भी प्रश्न ऐसा ही है। इसी संदर्भ में उनकी भी बात कर दूं। वह थोड़ा और जटिल है। उन्होंने मुझे आकर पूछा कि श्रीमती निर्मला देवी श्रीवास्तव के पास गया था, तो वह आपके खिलाफ बड़ी बातें कहती हैं। और वे तो आपके पास आती थीं, आपकी शिष्या थीं और आपके खिलाफ इतनी बातें कहती हैं!

तो मैं अब तक इस संबंध में चुप रहा हूं, क्योंकि वह बड़ा काम कर रही हैं। वह दूसरे ढंग का काम है।

जैसा मैंने कहा कि कुछ ऐसे लोग हैं, जो मेरे विरोध के कारण मेरे पास आते हैं। कुछ ऐसे गलत लोग मेरे पास आ जाते हैं, जिनको दूर हटाने की भी जरूरत पड़ती है। कुछ अपात्र भी मेरे पास आ जाते हैं, जो समय खराब करेंगे और बहुत काम के इस जन्म में तो नहीं हो सकते। उनको भी दूर करने की जरूरत पड़ती है। उनको मैं श्रीमती निर्मला देवी श्रीवास्तव के पास भेजता हूं। वह मुझे उनसे छुटकारा दिलाती रहती हैं। उनको पता नहीं है कि वह मेरा काम कर रही हैं। और अगर उनको यह पता चल जाएगा जो मैं कह रहा हूं, तो वह और जोर से मेरे विरोध में लग जाएंगी। वह मेरा काम है। उन्हें लग जाना चाहिए।

मेरी प्रक्रिया में दो बातें हैं। जो भी लोग जीवन-क्रांति के लिए उत्सुक हैं, मैं चाहता हूं कि मेरे पास आएं, किसी भी बहाने, किसी भी कारण से। लेकिन जो लोग मेरे पास आ जाते हैं, उनमें अनेक लोग गलत कारणों से मेरे पास आ जाते हैं। उनको भी पता नहीं है। और फिर वे मेरा समय भी व्यर्थ करते हैं, मेरी शक्ति भी खराब करते हैं। उनको मैं अपने से दूर भी करना चाहता हूं। उनको मैं अनेक तरह से दूर करता हूं। कभी किसी तरकीब से, कभी किसी तरकीब से उनको दूर कर देता हूं।

मेरे पास जैनियों का एक जत्था इकट्ठा हो गया था। तो उससे मैं परेशान हो गया। परेशान इसलिए हो गया कि उन्हें कुछ भी करना नहीं है, सिर्फ बातें करनी हैं। तो मैंने कोई एक वक्तव्य दे दिया, उससे वे लोग छंटकर गिर गए।

फिर मेरे पास गांधीवादियों का एक जत्था इकट्ठा हो गया। उनको सेवा करनी है, साधना नहीं करनी है। मुझे सेवा में उत्सुकता नहीं है। क्योंकि मैं मानता हूं कि साधना में जो जाए, वही सेवक हो सकता है। और जो साधना में न जाए, उसकी सेवा सब झूठी है और व्यर्थ है। तो मुझे गांधी की आलोचना कर देनी पड़ी। आलोचना करते से ही वे भाग गए। जमीन साफ कर दी; मेरे पास नई जगह बन गई; स्पेस पैदा हो गई। उसमें मैं नए लोगों को बुला पाया।

फिर मेरे बोलने का जो ढंग है, उससे बड़ी गड़बड़ हो जाती है। मेरे बोलने के ढंग से लोगों को ऐसा लगता है कि मैं तार्किक हूं। बोलने के ढंग से ऐसा लगता है कि मैं बुद्धिवादी हूं, रेशनलिस्ट हूं। इसलिए कुछ तार्किक और बुद्धिवादी मेरे पास आ जाते हैं।

मेरे बोलने का ढंग तार्किक है; लेकिन जो मैं कहना चाह रहा हूं, वह तर्क के बिल्कुल बाहर है। मेरी पहुंच का ढंग बुद्धिवादी है, लेकिन मुझसे ज्यादा अबुद्धिवादी खोजना मुश्किल है।

तो उन लोगों को हटाने की जरूरत पड़ी, क्योंकि ये सिर्फ समय खराब करते हैं, चर्चा, चर्चा, चर्चा! इन्हें करना कुछ भी नहीं है--शब्द, शब्द, शब्द। तो मैंने कहा, चलो, कीर्तन शुरू कर दो। कीर्तन होते से ही वे भाग गए। वे अब मेरे पास नहीं आते।

ऐसा मुझे गलत लोगों से छुटकारा भी पाना पड़ता है, ठीक लोगों को बुलाना भी पड़ता है।

एक बात तय है कि सत्य जब भी कहीं हो, तो सभी चीजें उसका सहयोग करती हैं। आप कुछ भी करें--विरोध करें, इनकार करें, खिलाफ बोलें--आप कुछ भी करें, आपका हर करना सत्य के पक्ष में ही पड़ता है, तभी वह सत्य है। सत्य हर चीज का उपयोग कर लेता है, विपरीत का भी, विरोधी का भी।

इसलिए इन सब बातों में पड़ने की, इस सबमें समय खराब करवाने की, इन सब का उत्तर देने की कोई भी जरूरत नहीं है। चीजें अपने आप रास्ता बनाती चली जाती हैं।

एक ही बात का ध्यान होना चाहिए कि हम जो कर रहे हैं, अगर वह सत्य है, तो सत्य सभी का उपयोग कर लेगा। और अंतिम क्षण में, मैंने आपको जो लाभ पहुंचाया, वह अकेला मेरा ही लाभ नहीं होगा, उसमें उन विरोधियों का भी उतना ही हाथ होगा, जिन्होंने विरोध किया। और अंतिम क्षण में सभी चीजें संयुक्त हो जाती हैं, अगर सत्य है तो। लक्ष्य पर पहुंचकर सभी चीजें सत्य हो जाती हैं। तब आप मुझे ही धन्यवाद नहीं देंगे, सूर्योदय गौड़ को भी देंगे, निर्मला देवी श्रीवास्तव को भी देंगे।

जिस दिन आपको सत्य का अनुभव होगा, उस दिन आप दोनों को धन्यवाद देंगे। क्योंकि उन्होंने भी काम किया, उन्होंने भी मेहनत ली।

अब हम सूत्र को लें।

तथा जो निंदा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है एवं जिस-किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष मेरे को प्रिय है। और जो मेरे परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

निंदा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है... ।

निंदा-स्तुति को समान कब समझा जा सकता है? निंदा दुख क्यों देती है? स्तुति सुख क्यों देती है? जब कोई आपकी प्रशंसा करता है, तो भीतर फूल क्यों खिल जाते हैं? और जब कोई निंदा करता है, तो भीतर सब उदास, मृत्यु जैसा क्यों हो जाता है? कारण खोजना जरूरी है, तो ही हम निंदा-स्तुति के पार हो सकें।

जब कोई स्तुति करता है, तो आपके अहंकार को तृप्ति होती है। जब कोई स्तुति करता है, तो असल में वह यह कह रहा है कि जैसा मैं अपने को समझता था, वैसा ही यह आदमी भी समझता है। आप समझते हैं कि आप बहुत सुंदर हैं। और जब कोई कह देता है कि धन्य हैं; कि आपके दर्शन से हृदय प्रफुल्लित हुआ; ऐसा सौंदर्य कभी देखा नहीं! तो आप प्रसन्न होते हैं। क्यों? क्योंकि दर्पण के सामने खड़े होकर यही आपने अपने से कई बार कहा है। यह पहली दफा कोई दूसरा भी आपसे कह रहा है।

और अपनी बात का भरोसा आपको नहीं होता। अपनी बात का आपको भरोसा आपको क्या होगा, अपने पर ही भरोसा नहीं है। जब कोई दूसरा कहता है, तो भरोसा होता है कि ठीक है, बात सच है। वह जो दर्पण के सामने मुझे लगता था, बिल्कुल सही है। यह आदमी भी कह रहा है। और यह क्यों कहेगा! अहंकार को तृप्ति मिलती है। और आपकी सेल्फ इमेज, वह जो प्रतिमा है अपने मन में, वह परिपुष्ट होती है।

जब कोई निंदा करता है और कह देता है कि क्या शक्ल पाई है! भगवान कहीं और देख रहा था, जब आपको बनाया? कि सामान चुक गया था? कि देखकर ही विरक्ति पैदा होती है, संसार से भागने का मन होता है! तब आपको चोट पड़ती है। क्यों चोट पड़ती है? अहंकार को ठेस लगती है।

ऐसा कौन है, जो अपने को सुंदर नहीं मानता? कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी अपने को सुंदर मानता है। लेकिन अपनी मान्यता के लिए भी दूसरों का सहारा चाहिए। क्योंकि हमारी अपनी कोई आत्म-स्थिति तो नहीं है। सुंदर भी हम मानते हैं दूसरों के सहारे, और अगर दूसरे कुरूप कहने लगें, तो फिर सुंदर मानना मुश्किल हो जाता है।

इसलिए चोट लगती है। वे ईंटें खिसका रहे हैं। अगर हर कोई कहने लगे कि तुम कुरूप हो, तो फिर हमारी प्रतिमा डगमगाने लगती है और आत्म-विश्वास हिलने लगता है। और फिर हम दर्पण के सामने भी खड़े होकर हिम्मत से नहीं कह सकते कि नहीं, मैं सुंदर हूं। क्योंकि यह भी तो दूसरों के मंतव्य पर निर्भर है। तो जब दूसरे कुछ कहने लगते हैं, जो विपरीत पड़ता है, तो आपको अपनी प्रतिमा डगमगाती मालूम पड़ती है। घबड़ाहट पैदा होती है, बेचैनी पैदा होती है।

प्रशंसा में अच्छा लगता है, क्योंकि आपके अहंकार को फुसलाया जा रहा है। इसलिए प्रशंसा वही करता है, जो आपसे कुछ पाना चाहता है। वह पाने का रूप कुछ भी हो। प्रशंसा वही करता है, जो आपसे कुछ खींचना चाहता है। क्योंकि प्रशंसा पाकर आप बेहोश हो जाते हैं अहंकार में और आपसे कुछ करवाया जा सकता है।

मूढ़ से मूढ़ आदमी को बुद्धिमान कहो, तो वह भी राजी हो जाता है! अपनी प्रशंसा को इनकार करना बड़ा मुश्किल है। और जब अपनी प्रशंसा को इनकार करना बड़ा मुश्किल है, तो अपनी निंदा को स्वीकार करना बड़ा मुश्किल है।

तो जरूरी नहीं है कि जो निंदक कह रहा हो, वह गलत ही हो; वह सही भी हो सकता है। और सच तो यह है कि जितना सही होता है, उतना ज्यादा खलता है। अगर वह बिल्कुल गलत हो, तो ज्यादा परेशानी नहीं होती। अगर कोई आदमी, आपकी आंखें हैं और वह कहता है अंधा है, तो आप ज्यादा परेशान नहीं होते। क्योंकि कौन सुनेगा इसकी! आंखें आपके पास हैं। लेकिन आप अंधे हैं, और वह आदमी कहता है अंधा है, तो फिर ज्यादा चोट पड़ती है। क्योंकि आपको भी लगता तो है कि वह ठीक ही कहता है। और मन भी नहीं होता मानने का कि यह बात ठीक है।

तो जितने सच्चाई के करीब होती है निंदा, उतना दुख देती है। और स्तुति जितनी झूठ के करीब होती है, उतना सुख देती है। जितने असत्य के करीब होती है स्तुति, उतना सुख देती है। और निंदा जितने सत्य के करीब होती है, उतना दुख देती है। पर इन सब दोनों का केंद्र क्या है?

इन दोनों का केंद्र यह है कि दूसरे क्या कहते हैं, वह मूल्यवान है। क्यों मूल्यवान है? क्योंकि आपका जो अहंकार है, वह दूसरों के हाथ से निर्मित हुआ है, आपकी आत्मा नहीं। आपकी आत्मा तो परमात्मा के हाथ से निर्मित हुई है। लेकिन आपका अहंकार दूसरों के हाथों से निर्मित हुआ है। अहंकार समाज का दान है। आत्मा परमात्मा की देन है।

आत्मा को समाज नहीं छीन सकता। लेकिन अहंकार को समाज छीन सकता है। जिसको आज कहता है, तुम महापुरुष हो; कल पापी कह सकता है। और ऐसे महापुरुष हैं, जो कल पूजे जा रहे थे और दूसरे दिन उन पर जूते फेंके जा रहे हैं। वही समाज, वही लोग! जरूरी नहीं है कि समाज पहले सही था, या अब सही है। बात इतनी है केवल कि समाज दोनों काम कर सकता है।

इसलिए जो आदमी अहंकार के साथ जीता है, आत्मा के साथ नहीं, वह हमेशा चिंतित रहेगा, कौन क्या कह रहा है! निंदा कौन कर रहा है? स्तुति कौन कर रहा है? क्योंकि उसका सारा व्यक्तित्व इसी पर निर्भर है, दूसरों पर। दूसरे क्या कह रहे हैं?

लेकिन जो व्यक्ति भक्त है, साधक है, प्रभु की खोज में लगा है, आत्मा की तरफ चल रहा है, उसके तो पहले कदम पर ही वह इसकी फिक्र छोड़ देता है कि दूसरे क्या कह रहे हैं। वह इसकी फिक्र करता है कि मैं क्या हूं, वह इसकी फिक्र नहीं करता कि लोग क्या कह रहे हैं।

लोग कुछ भी कह रहे हों, मैं क्या हूं, यह उसकी चिंता है। यह उसकी खोज है कि मैं खोज लूं, आविष्कृत कर लूं कि मैं कौन हूं। दूसरों के कहने से क्या होगा? क्या मूल्य है दूसरों के कहने का?

कृष्ण कहते हैं, निंदा-स्तुति को समान जो समझता है... ।

वही समान समझ सकता है, जो दूसरों के मंतव्य से अपने को दूर हटा रहा है। और जो इस बात की खोज में लगा है कि मैं कौन हूं। लोगों की धारणा नहीं, मेरा अस्तित्व क्या है। वह सम हो जाएगा। वह अपने आप सम हो जाएगा। उसके लिए लोगों की स्तुति भी व्यर्थ है; उसके लिए उनकी निंदा भी व्यर्थ है। वह तो बल्कि चकित होगा कि लोग मुझमें इतने क्यों उत्सुक हैं! इतनी उत्सुकता वे अपने में लें, तो उनके जीवन में कुछ घटित हो जाए, जितनी उत्सुकता वे मुझमें ले रहे हैं!

आपको ख्याल है कि आप दूसरों में कितनी उत्सुकता लेते हैं! इतनी उत्सुकता काश आपने अपने में ली होती, तो आज आप कहीं होते। आप कुछ होते। आपके जीवन में कोई नया द्वार खुल गया होता। इतनी ही उत्सुकता से तो आप प्रभु को पा सकते थे।

लेकिन आपकी उत्सुकता दूसरों में लगी है! सुबह उठकर गीता पर पहले ध्यान नहीं जाता; पहला ध्यान अखबार पर जाता है। दूसरों की फिक्र है। वे क्या कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं! पड़ोसी आपके बाबत क्या कह रहे हैं!

कौन क्या कह रहा है आपके बाबत, इसको इकट्ठा करके क्या होगा? मरते वक्त सब हिसाब भी कर लिया और किताब में सब लिख भी डाला कि कौन ने क्या कहा, फिर क्या होगा? मौत आपको जांचेगी, आपके हिसाब-किताब को नहीं।

सुना है मैंने, एक यहूदी फकीर हिलेल मर रहा था। तो किसी ने हिलेल से कहा कि हिलेल, क्या सोच रहे हो मरते क्षण में? तो हिलेल ने एक बड़ी कीमती बात कही। क्योंकि यहूदी मूसा को मानते हैं; हिलेल ने कहा कि जिंदगीभर मैं मूसा की फिक्र करता रहा कि मूसा ने क्या कहा है, क्या समझाया है; उसके वचन का क्या अर्थ है; और मैं मूसा जैसा कैसे हो जाऊं--यही मेरी चिंता, यही मेरी जीवनभर की धारा थी। मरते वक्त मुझे यह ख्याल आ रहा है कि हिलेल, परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तू मूसा क्यों नहीं हुआ। परमात्मा मुझसे पूछेगा, तू हिलेल होने से क्यों चूक गया? मूसा के संबंध में मुझसे पूछेगा ही नहीं वह। वह पूछेगा मेरे संबंध में, और मैं नाहक मूसा के संबंध में परेशान रहा।

और परमात्मा यह भी नहीं पूछेगा कि लोग मेरे संबंध में क्या मानते थे। परमात्मा तो सीधा ही देख लेगा मेरी आत्मा में। वह कोई सर्टिफिकेट तो नहीं मांगेगा, कि प्रमाणपत्र लाए हो चरित्र के? अच्छा आदमी मानते थे लोग कि बुरा आदमी मानते थे तुम्हें? कुछ प्रमाणपत्र ले आए हो जमीन से, वह नहीं पूछेगा। क्योंकि प्रमाणपत्र तो अंधों के काम आते हैं। उसकी आंखें तो मेरी आत्मा में सीधा प्रवेश कर जाएंगी, और वे जान ही लेंगी कि मैं कौन हूं।

तो मैंने नाहक ही अपना जीवन गंवाया। अब जितने भी थोड़े क्षण मेरे पास बचे हैं, अब तुम हट जाओ यहां से, हिलेल ने लोगों से कहा, तुम जिंदगीभर मुझे घेरे रहे। हट जाओ। और मैं शांत होकर उसको देख लेना चाहता हूं, जो मैं हूं; और मौन होकर उसमें उतर जाना चाहता हूं, जो मेरा अस्तित्व है, जो मेरा व्यक्तित्व है।

परमात्मा के सामने जब मैं खड़ा होऊं और वह मुझे सीधा देखे, तो मैं खड़ा हो सकूं शांति से। तुम हट जाओ, हिलेल ने कहा, मेरे पास से भीड़ हट जाए; अब मुझे अकेला हो जाने दो। जिंदगीभर मैं भीड़ से घिरा रहा, दूसरों से।

निंदा और स्तुति से वह व्यक्ति मुक्त हो सकेगा, जो दूसरों की चिंता छोड़ देता है। इसका यह मतलब नहीं है कि दूसरों के प्रति लापरवाह हो जाता है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि स्वार्थी हो जाता है। सच तो यह है कि जो दूसरों के विचार की बहुत चिंता करता है, वह दूसरों की चिंता जरा भी नहीं करता। वह तो उनके विचार की चिंता करता है कि वे मेरे बाबत क्या कह रहे हैं। वह अहंकारी है। उसका दूसरों से कोई लेना-देना नहीं। वह दूसरों के विचार की अपने अहंकार के लिए फिक्र करता है।

लेकिन जो आदमी दूसरों की चिंता छोड़ देता है, उसका अहंकार गिर जाता है। अहंकार दूसरों के सहारे के बिना खड़ा नहीं हो सकता; उसके लिए दूसरों का सहारा चाहिए। वह एक झूठ है, जो दूसरों के सहारे खड़ा होता है। सब झूठ दूसरों के सहारे खड़े होते हैं; सत्य अपने सहारे खड़े होते हैं।

इसलिए धर्म अकेले भी हो सकता है, राजनीति अकेले नहीं हो सकती। राजनीति बड़ा से बड़ा झूठ है। उसको दूसरों के सहारे की जरूरत है। दूसरे का वोट, दूसरे का मत, दूसरे पर सारा खेल खड़ा है। राजनीति का बड़ा से बड़ा नेता भी दूसरों के सहारे खड़ा है। दूसरों की अंगुलियां उसको बड़ा किए हुए हैं। वे हाथ हटा लें, वह नीचे जमीन पर गिर जाएगा और उठने का उसे कोई मौका नहीं रहेगा।

लेकिन धार्मिक व्यक्तित्व किसी के सहारे खड़ा नहीं होता, अपने ही कारण खड़ा होता है। उसे कोई गिरा नहीं सकता, क्योंकि किसी ने उसे सम्हाला ही नहीं है।

कृष्ण कहते हैं कि जो निंदा स्तुति को समान समझने लगा है, मननशील है एवं जिस-किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा संतुष्ट है। और परमात्मा जैसा रखे, वैसा ही होने को राजी है। और परमात्मा जैसा रखे, उसमें भी विधायक खोज लेता है। मननशील का अर्थ है, विधायक को खोज लेने वाला।

हम नकारात्मक को खोज लेने वाले लोग हैं। हमें कांटा दिखाई पड़ता है, फूल दिखाई नहीं पड़ता। अगर एक आदमी के बाबत मैं कहूं कि वह गजब का कलाकार है, उसकी बांसुरी जैसी बांसुरी कोई नहीं बजा सकता। तो आप फौरन कहेंगे, छोड़िए भी, वह क्या बांसुरी बजाएगा! चरित्रहीन है।

यह नकारात्मक चिंतन की प्रक्रिया है। विधायक चिंतन की प्रक्रिया होगी कि मैं आपसे कहूं कि फलां आदमी चरित्रहीन है, उससे बचना। और आप कहें कि क्या! वह चरित्रहीन कैसे हो सकता है? उसकी बांसुरी में ऐसे प्राण हैं; वह बांसुरी इतनी अदभुत बजाता है; चरित्रहीन होगा कैसे? नहीं; मैं नहीं मान सकता हूं कि वह चरित्रहीन है।

तो आप देख रहे हैं उसको, जो फूल है। और जो फूलों को देखता है, उसे और ज्यादा फूल दिखाई पड़ने लगते हैं। और जो कांटों को देखता है, उसे और ज्यादा कांटे दिखाई पड़ने लगते हैं।

जो आप खोजते हैं, वह आपको मिल जाता है। हर आदमी की योग्यता के अनुकूल उसे सब कुछ मिल जाता है। जो आदमी नकारात्मक को खोज रहा है, चारों तरफ उसके नरक खड़ा हो जाता है। सब जगह उसे गलत दिखाई पड़ने लगता है।

कृष्ण कहते हैं, जिस-किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा संतुष्ट है। कैसा भी परमात्मा रखे, वह उसमें भी... ।

सुना है मैंने कि बायजीद एक कोठरी में सोता था। उसमें बड़ी चींटियां थीं। सूफी फकीर हुआ बायजीद। तो उसके शिष्यों ने कहा कि तुम परमात्मा के इतने प्यारे हो और वह इतना भी नहीं कर सकता कि इन चींटियों को हटा ले। और तुम्हें हमेशा काटती हैं और परेशान करती हैं और तुम उघाड़े यहां पड़े रहते हो!

तो बायजीद ने कहा कि तुम्हें मेरे परमात्मा का कुछ पता नहीं। वह चींटियों से मुझे कटवाता है, ताकि मैं उसकी याद रख सकूं; भूलूं न। और जब भी चींटी मुझे काटती है, मैं कहता हूं, हे परमात्मा! याद है; मत कटवा, याद है। चींटी से कटवाता है, ताकि मैं उसकी याद कर सकूं, विस्मरण न हो जाए। और कभी-कभी मैं भूल जाता हूं, तो ठीक ऐन वक्त पर चींटी काट देती है! उसकी बड़ी कृपा है। उसकी बड़ी कृपा है। इन चींटियों को हटा मत देना।

यह जो भाव-दृष्टि है कि वह जैसा रखे! जरूर उसका कोई प्रयोजन होगा। अगर वह आग में डालता है, तो तपाता होगा। अगर वह कांटों में चलाता है, तो परखता होगा। कोई परीक्षा होगी। कोई बात होगी उसकी। उस पर छोड़कर जीने वाला जो संतुष्ट व्यक्ति है, वही मननशील भी है।

और रहने के स्थान में ममता से रहित है... ।

और जहां रखे, लेकिन कोई ममता खड़ी नहीं करता। जिस स्थिति में, जिस स्थान में, फिर यह नहीं कहता कि यहीं रहूंगा। वह जहां हटा दे। वह जहां पहुंचा दे। वह जैसा करे। सभी स्थान उसी के हैं। और सभी स्थितियां उसकी हैं। और सभी द्वारों से वह आदमी पर काम कर रहा है। इस भाव दशा में जो व्यक्ति है, वह ममता नहीं बांधेगा। वह ममता नहीं बांधेगा।

च्वांगत्सू की पत्नी मर गई, तो वह गीत गा रहा था अपनी खंजड़ी बजाकर। सम्राट संवेदना प्रकट करने आया था, क्योंकि च्वांगत्सू जाहिर संत था। तो खुद सम्राट आया कि पत्नी मर गई है, तो मैं जाऊं। लेकिन सम्राट ने देखा कि वह गीत गा रहा है खंजड़ी बजाकर!

तो सम्राट बड़ा मुश्किल में पड़ा। क्योंकि वह बेचारा तैयार करके लाया था। जैसे आप किसी के घर कोई मर जाता है, सब तैयार करके जाते हैं कि क्या कहेंगे। बड़ा मुश्किल का मामला होता है! किसी के घर अगर कोई मर जाए, तो क्या कहना, कैसे कहना, बड़ा परेशानी का काम होता है।

सम्राट बिल्कुल तैयार करके लाया था कि ये-ये बातें कहूंगा; इस तरह संवेदना प्रकट करूंगा। आंख में आंसू भर लूंगा। संत को सांत्वना देकर लौट आऊंगा। लेकिन वह संत बड़ा उलटा निकला। वह खंजड़ी बजा रहा था और गीत गा रहा था। तो अब शोक-संवेदना प्रकट करने का उपाय न रहा। लेकिन राजा को लगा बुरा। क्योंकि वह जिस काम से आया था, वह असफल हुआ। कहने यही आया था कि दुखी मत होओ, ऐसा तो होता ही रहता है। लेकिन इस आदमी से क्या कहो! यह दुखी हो ही नहीं रहा है, बल्कि प्रसन्न हो रहा है!

अपेक्षा पूरी न हो... । आपको पता है, दुखद अपेक्षाएं भी पूरी न हों, तो भी दुख होता है। अगर आप सोच रहे हों कि बड़ी बीमारी है और डाक्टर के पास जाएं। और वह कहे, कुछ नहीं, तो मन में बड़ी उदासी होती है कि बेकार आना हुआ! कुछ नहीं? आपको शक होता है, कहीं डाक्टर की ऐसा तो नहीं कि भूल हो रही है। जरा और बड़े डाक्टर को दिखा लें।

इसलिए जो चालाक डाक्टर हैं, वे बड़े गंभीर हो जाते हैं आपको देखकर। और आपकी बीमारी को इस तरह से लेते हैं जैसे कि बस, ऐसी बड़ी बीमारी किसी को भी कभी नहीं हुई। तब आपका दिल राजी होता है कि ठीक है। आप जैसे बड़े आदमी को छोटी बीमारी हो सकती है! बड़ी ही होनी चाहिए। यह आदमी समझा। अब जरा बात काम की है।

वह सम्राट दुखी हो गया। उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो! मुझे कहना नहीं चाहिए। और मैं उपदेश देने वाला कौन हूं! लेकिन झूठ छिपाया भी नहीं जाता। सच कहना ही चाहिए। यह देखकर मुझे दुख होता है। इतना ही काफी था कि तुम दुख न मनाते। लेकिन गीत गाना, खंजड़ी बजाना, यह जरा जरूरत से ज्यादा है।

लेकिन च्वांगत्सू ने कहा, क्या कह रहे हो! मेरी पत्नी मर गई और मैं सुख भी न मनाऊं! राजा ने कहा, मतलब? तुम बड़ा उलटा वचन बोल रहे हो! तो च्वांगत्सू ने कहा कि परमात्मा ने उसे मेरे पास भेजा, संसार को जानने को। और परमात्मा ने उसे मुझसे छीन लिया, मोक्ष पहचानने को। वह मेरा संसार थी; उसके साथ मेरा संसार भी खो गया। परमात्मा की बड़ी कृपा है। उसने संसार दिखाया भी, उसने संसार छीन भी लिया। हम हर हालत में राजी हैं। अनेक मुझसे कहते थे, पत्नी को छोड़कर भाग जाओ। छोड़ दो संसार। मैंने कहा, वह परमात्मा जब छुड़ाना चाहेगा, छुड़ा लेगा। हम राजी हैं। हम ऐसे ही राजी हैं। आखिर मेरी बात सही निकली। परमात्मा ने उसे उठा लिया।

और फिर जिस पत्नी ने मुझे जीवनभर अनेक-अनेक तरह के अनुभव दिए सुख के और दुख के, उसके लिए क्या इतना भी अनुग्रह न मानूं कि विदाई के क्षण में गीत गाकर विदा न दे सकूं! जिसने अपना पूरा जीवन मेरे सुख-दुख में लगाया, उसके लिए इतना धन्यवाद तो मन में होना ही चाहिए।

तो मैं उसके धन्यवाद के लिए गा रहा हूं और परमात्मा के धन्यवाद के लिए गा रहा हूं कि मैं थोड़ा रुक गया, तेरी राह देखी, तो तूने खुद ही पत्नी छीन ली। हम छोड़कर भागते, तो यह मजा न होता--उसने बड़ी अदभुत बात कही--कि हम छोड़कर भागते, तो यह मजा न होता! अधूरी रहती, कच्ची रहती। हमारा ही छोड़ना होता न। हमारी समझ कितनी है? लेकिन तूने उठा लिया। अब सब कोरा आकाश हो गया। पत्नी के साथ पूरी गृहस्थी विलीन हो गई है। यह तेरी अनुकंपा है।

कृष्ण कहते हैं, जिस हालत में, जिस स्थान में, जिस स्थिति में कोई ममता नहीं; विपरीत हो जाए, तो भी विपरीत में प्रवेश करने का उतना ही सहज भाव बिना किसी आसक्ति के पीछे, ऐसा स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है। और जो मेरे परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

आखिरी बात बहुत समझने जैसी है कि यह जो आनंद की प्रक्रिया है, यह जो प्रभु-प्रेम का मार्ग है, इसको भी कृष्ण कहते हैं, इस अमृत को भी जो निष्काम भाव से सेवन करते हैं।

ऐसा मत करना कि आप सोचें कि अच्छा! यह-यह करने से परमात्मा के प्रिय हो जाएंगे, तो हम भी यह-यह करें। तो आपसे भूल हो जाएगी। तब तो आप परमात्मा पाने के लिए ऐसा कर रहे हैं। तो यह जो करना है, कामवासना से भरा है। इसमें वासना है, इसमें फल की इच्छा है। इसमें आप परमात्मा को पाने के लिए उत्सुक हैं, इसलिए ऐसा कर रहे हैं। आप परमात्मा को पाने के लिए कारण निर्मित कर रहे हैं।

इसका यह मतलब हुआ कि आप परमात्मा को पाने के लिए ठीक सौदा करने की स्थिति में आ रहे हैं कि कह सकें कि हां, अब मुझ में ये-ये गुण हैं, अब मिल जाओ!

तो कृष्ण आखिरी शर्त बड़ी गहरी जोड़ देते हैं। और वह यह कि ये सारे लक्षण निष्काम भाव से हों। यह परमात्मा को पाने की दृष्टि से नहीं, बल्कि इन प्रत्येक लक्षण का अपना ही आनंद है, इसी दृष्टि से। इनसे परमात्मा मिलेगा जरूर, लेकिन मिलने की वासना अगर रही, तो बाधा पड़ जाएगी।

एक मित्र मेरे पास आए। उन्होंने मुझसे कहा कि ब्रह्मचर्य मुझे उपलब्ध करना है। कामवासना से छूटना है। इससे छुटकारा दिलाइए। इस शत्रु का कैसे नाश हो? इस जहर से कैसे बचूं?

तो मैंने उनसे कहा, आप गलत आदमी के पास आ गए। जिन्होंने जहर कहा है, आप उन्हीं के पास जाइए। मैं इसको जहर कहता नहीं। मैं तो इसे एक शक्ति कहता हूं। तो मैं आपको कहता हूं कि इसे ठीक से जानिए, पहचानिए, इसके अनुभव में उतरिए, आप मुक्त हो जाएंगे। लेकिन मुक्त होना परिणाम होगा, फल नहीं। उन्होंने कहा, अच्छी बात है।

वे तीन महीने बाद मेरे पास आए और कहने लगे, अभी तक मुक्त नहीं हुआ!

तो मैंने उनसे कहा, मुक्ति का ख्याल अगर साथ में रखकर ही चल रहे हैं, तो अनुभव पूरा नहीं हो पाएगा। क्योंकि आप पूरे वक्त सोच रहे हैं, कैसे मुक्त हो जाऊं, कैसे भाग जाऊं, कैसे अलग हो जाऊं, कैसे ऊपर उठ जाऊं। तो आप गहरे कैसे उतरिएगा? अगर छूटने की बात पहले ही तय कर रखी है और छूटने के लिए ही गहरे उतरने का प्रयोग कर रहे हैं, तो गहरा उतरना ही नहीं हो पाएगा। और गहरा उतरना नहीं होगा, तो छूटना भी नहीं होगा।

तो मैंने कहा, छूटने की बात तो आप भूल जाइए। आप तो सिर्फ गहरे उतरिए, छूटना घटित होगा। आपको उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है।

परमात्मा पाया जाता है, लेकिन परमात्मा कोई सौदा नहीं है, कि हम कहें कि ये-ये लक्षण मेरे पास हैं, अभी तक नहीं मिले! अब मिलो। मैं सब तरह से तैयार हूं।

तो आप कभी भी न पा सकेंगे, क्योंकि यह तो अहंकार का ही आधार हुआ। परमात्मा पाया जाता है तब, जब आप अपने को इतना भूल गए होते हैं इन लक्षणों में, इतने लीन हो गए होते हैं कि आपको ख्याल ही नहीं होता कि अभी परमात्मा भी पाने को शेष है। जिस क्षण आप इतने शांत और निष्काम होते हैं, सिर्फ होते हैं, इतनी भी वासना मन में नहीं रहती, इतनी भी लहर नहीं होती कि परमात्मा को पाना है, उसी क्षण अचानक आप पाते हैं कि परमात्मा पा लिया गया है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, ये सब बातें भी निष्काम! इनमें पीछे कोई कामवासना न हो। धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

भक्ति-योग नामक बारहवां अध्याय समाप्त। भक्ति-योग की चर्चा समाप्त। उससे आप यह मत समझना कि आपका अध्याय समाप्त। किताब का अध्याय समाप्त। आपका सिर्फ शुरू भी हो जाए, तो बहुत। प्रारंभ भी हो जाए, तो बहुत। यह किताब का अध्याय समाप्त हुआ। आपके जीवन में भक्ति का अध्याय शुरू हो, तो काफी।

तीन बातें अंत में आपको स्मरण करने को कह दूं।

एक, भक्ति का अर्थ है, सत्य को बुद्धि से नहीं, हृदय से पाया जा सकता है। विचार से नहीं, भाव से पाया जा सकता है। चिंतन से नहीं, प्रेम से पाया जा सकता है। पहली बात।

दूसरी बात, भक्ति को पाना हो, तो आक्रामक चित्त बाधा है। ग्राहक चित्त! पुरुष का चित्त बाधा है। स्त्रैण चित्त! एक प्रेयसी की तरह प्रभु को पाया जा सकता है।

तीसरी बात, प्रभु को पाना हो, तो प्रभु को पाने की त्वरा, ज्वर, फीवर, बुखार नहीं चाहिए। प्रभु को पाना हो तो अत्यंत शांत, निष्काम भाव दशा चाहिए। उसको पाने के लिए उसको भी भूल जाना जरूरी है। खूब याद करें उसे, लेकिन अंतिम क्षण में उसे भी भूल जाना जरूरी है, ताकि वह आ जाए। और जब हम बिल्कुल विस्मृत हो गए होते हैं; यह भी न अपना पता रहता, न उसका पता रहता; न यह ख्याल रहता कि कौन खोज रहा है, और न यह ख्याल रहता कि किसको खोज रहा है, बस उसी क्षण, उसी क्षण घटना घट जाती है, और उस अमृत की उपलब्धि हो जाती है।

पांच मिनट रुकेंगे। संन्यासी कीर्तन करेंगे। आपसे आशा है, आप भी अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर ताली बजाएं, ताकि मैं ख्याल ले सकूं कि किन-किन के मन भक्ति के मार्ग पर जाने के लिए तैयार हैं। झूठा कोई हाथ न उठाए। हाथ ऊपर उठा लें, साथ में तालियां बजाएं। कीर्तन में सम्मिलित हों।

बैठे रहें। उठें न, एक पांच मिनट बीच से कोई उठे न! कीर्तन में सम्मिलित हों। अभी कीर्तन शुरू होगा, आप भी ताली बजाएं और कीर्तन में साथ दें।

गीता दर्शन अध्याय 13

पहला प्रवचन

दुख से मुक्ति का मार्गः तादात्म्य का विसर्जन

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। 1।।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।। 2।।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।

स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मेशृणु।। 3।।

उसके उपरांत श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, यह शरीर क्षेत्र है, ऐसे कहा जाता है। और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उनके तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं।

और हे अर्जुन, तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मेरे को ही जान। और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात विकार सहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्व से जानना है, वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है।

इसलिए वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मेरे से सुन।

सुबह से सांझ तक न मालूम कितने प्रकार के दुखी लोगों से मेरा मिलना होता है। एक बात की मैं तलाश करता रहा हूं कि कोई ऐसा दुखी आदमी मिल जाए, जिसके दुख का कारण कोई और हो। अब तक वैसा आदमी खोज नहीं पाया। दुख चाहे कोई भी हो, दुख के कारण में आदमी खुद स्वयं ही होता है। दुख के रूप अलग हैं, लेकिन दुख की जिम्मेवारी सदा ही स्वयं की है।

दुख कहीं से भी आता हुआ मालूम होता हो, दुख स्वयं के ही भीतर से आता है। चाहे कोई किसी परिस्थिति पर थोपना चाहे, चाहे किन्हीं व्यक्तियों पर, संबंधों पर, संसार पर, लेकिन दुख के सभी कारण झूठे हैं। जब तक कि असली कारण का पता न चल जाए। और वह असली कारण व्यक्ति स्वयं ही है। पर जब तक यह दिखाई न पड़े कि मेरे दुख का कारण मैं हूं, तब तक दुख से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि ठीक कारण का ही पता न हो, ठीक निदान ही न हो सके, तो इलाज के होने का कोई उपाय नहीं है। और जब तक मैं भ्रांत कारण खोजता रहूं, तब तक कारण तो मुझे मिल सकते हैं, लेकिन समाधान, दुख से मुक्ति, दुख से छुटकारा नहीं हो सकता।

और आश्चर्य की बात है कि सभी लोग सुख की खोज करते हैं। और शायद ही कोई कभी सुख को उपलब्ध हो पाता है। इतने लोग खोज करते हैं, इतने लोग श्रम करते हैं, जीवन दांव पर लगाते हैं और परिणाम में दुख के

अतिरिक्त हाथ में कुछ भी नहीं आता। जीवन के बीत जाने पर सिर्फ आशाओं की राख ही हाथ में मिलती है। सपने, टूटे हुए; इंद्रधनुष, कुचले हुए; असफलता, विफलता, विषाद!

मौत के पहले ही आदमी दुखों से मर जाता है। मौत को मारने की जरूरत नहीं पड़ती; आप बहुत पहले ही मर चुके होते हैं; जिंदगी ही काफी मार देती है। जीवन आनंद का उत्सव तो नहीं बन पाता, दुख का एक तांडव नृत्य जरूर बन जाता है।

और तब स्वाभाविक है कि यह संदेह मन में उठने लगे कि इस दुख से भरे जीवन को क्या परमात्मा ने बनाया होगा? और अगर परमात्मा इस दुख से भरे जीवन को बनाता है, तो परमात्मा कम और शैतान ज्यादा मालूम होता है। और अगर इतना दुख जीवन का फल है, तो परमात्मा सैडिस्ट, दुखवादी मालूम होता है। लोगों को सताने में जैसे उसे कुछ रस आता हो! तो फिर स्वाभाविक ही है कि अधिक लोग दुख के कारण परमात्मा को अस्वीकार कर दें।

जितना ही मैं इस संबंध में लोगों के मनों की छानबीन करता हूं, तो मुझे लगता है कि नास्तिक कोई भी तर्क के कारण नहीं होता। नास्तिक लोग दुख के कारण हो जाते हैं। तर्क तो पीछे आदमी इकट्ठे कर लेता है।

लेकिन जीवन में इतनी पीड़ा है कि आस्तिक होना मुश्किल है। इतनी पीड़ा को देखते हुए आस्तिक हो जाना असंभव है। या फिर ऐसी आस्तिकता झूठी होगी, ऊपर-ऊपर होगी, रंग-रोगन की गई होगी। ऐसी आस्तिकता का हृदय नहीं हो सकता। आस्तिकता तो सच्ची सिर्फ आनंद की घटना में ही हो सकती है। जब जीवन एक आनंद का उत्सव दिखाई पड़े, अनुभव में आए, तो ही कोई आस्तिक हो सकता है।

आस्तिक शब्द का अर्थ है, समग्र जीवन को हां कहने की भावना। लेकिन दुख को कोई कैसे हां कह सके? आनंद को ही कोई हां कह सकता है। दुख के साथ तो संदेह बना ही रहता है।

शायद आपने कभी सोचा हो या न सोचा हो, कोई भी नहीं पूछता कि आनंद क्यों है? लेकिन दुख होता है, तो आदमी पूछता है, दुख क्यों है? दुख के साथ प्रश्न उठते हैं। आनंद तो निष्प्रश्न स्वीकार हो जाता है। अगर आपके जीवन में आनंद ही आनंद हो, तो आप यह न पूछेंगे कि आनंद क्यों है? आप आस्तिक होंगे। क्यों का सवाल ही न उठेगा।

लेकिन जहां जीवन में दुख ही दुख है, वहां आस्तिक होना थोथा मालूम होता है। वहां तो नास्तिक ही ठीक मालूम पड़ता है। क्योंकि वह पूछता है कि दुख क्यों है? और दुख क्यों है, यही सवाल गहरे में उतरकर सवाल बन जाता है कि इतने दुख की मौजूदगी में परमात्मा का होना असंभव है। इस दुख को बनाने वाला परमात्मा हो सके, यह मानना कठिन है। और ऐसा परमात्मा अगर हो भी, तो उसे मानना उचित भी नहीं है।

जीवन में जितना दुख बढ़ता जाता है, उतनी नास्तिकता बढ़ती जाती है। नास्तिकता को मैं मानसिक, मनोवैज्ञानिक घटना मानता हूं, तार्किक, बौद्धिक नहीं। कोई तर्क के कारण नास्तिक नहीं होता। यद्यपि जब कोई नास्तिक हो जाता है, तो तर्क खोजता है।

सिमॉन वेल ने, एक फ्रेंच विचारक महिला ने लिखा है अपने आत्म-कथ्य में, कि तीस वर्ष की उम्र तक सतत मेरे सिर में दर्द बना रहा, मेरा शरीर अस्वस्थ था। और तब मेरे मन में ईश्वर के प्रति बड़े संदेह उठे। और यह ख्याल मुझे कभी भी न आया कि मेरे शरीर का अस्वास्थ्य ही ईश्वर के संबंध में उठने वाले प्रश्नों का कारण है। और फिर मैं स्वस्थ हो गई और शरीर ठीक हुआ और सिर का दर्द खो गया, तो मुझे पता न चला कि मेरे प्रश्न जो ईश्वर के संबंध में उठते थे संदेह के, वे कब गिर गए। और बहुत बाद में ही मुझे होश आया कि मैं किसी क्षण में आस्तिक हो गई हूं।

वह जो जीवन में स्वास्थ्य की धार बहने लगी, वह जो जीवन में थोड़े से रस की झलक आने लगी, वह जो जीवन में थोड़ा अर्थ और अभिप्राय दिखाई पड़ने लगा, फूल, आकाश के तारे और हवाओं के झोंकों में आनंद की थोड़ी-सी खबर आने लगी, तो सिमॉन वेल का मन नास्तिकता से आस्तिकता की तरफ झुक गया। और तब उसे ख्याल आया कि जब वह नास्तिक थी, तो नास्तिकता के पक्ष में तर्क जुटा लिए थे उसने। और अब जब वह आस्तिक हो गई, तो उसने आस्तिकता के पक्ष में तर्क जुटा लिए।

तर्क आप पीछे जुटाते हैं, पहले आप आस्तिक हो जाते हैं या नास्तिक हो जाते हैं। तर्क तो सिर्फ बौद्धिक उपाय है, अपने को समझाने का। क्योंकि मैं जो भी हो जाता हूं, उसके लिए रेशनलाइजेशन, उसके लिए तर्कयुक्त करना जरूरी हो जाता है। अन्यथा मैं अपने ही सामने अतर्क्य मालूम होऊंगा। मुझे खुद को ही समझाना पड़ेगा कि मैं नास्तिक क्यों हूं। तो एक ही उपाय है कि ईश्वर नहीं है, इसलिए मैं नास्तिक हूं।

लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर आप नास्तिक हैं, तो इसलिए नहीं कि ईश्वर नहीं है, बल्कि इसलिए कि आप दुखी हैं। आपकी नास्तिकता आपके दुख से निकलती है। और अगर आप कहते हैं कि मैं दुखी हूं और फिर भी आस्तिक हूं, तो मैं आपसे कहता हूं, आपकी आस्तिकता झूठी और ऊपरी होगी। दुख से सच्ची आस्तिकता का जन्म नहीं हो सकता, क्योंकि दुख के लिए कैसे स्वीकार किया जा सकता है! दुख के प्रति तो गहन अस्वीकार बना ही रहता है। और तब फिर एक उपद्रव की घटना घटती है।

टाल्सटाय ने लिखा है कि हे ईश्वर, मैं तुझे तो स्वीकार करता हूं, लेकिन तेरे संसार को बिल्कुल नहीं। लेकिन बाद में उसे भी ख्याल आया कि अगर मैं ईश्वर को सच में ही स्वीकार करता हूं, तो उसके संसार को अस्वीकार कैसे कर सकता हूं? और अगर मैं उसके संसार को अस्वीकार करता हूं, तो मेरे ईश्वर को स्वीकार करने की बात में कहीं न कहीं धोखा है।

जब कोई ईश्वर को स्वीकार करता है, तो उसकी समग्रता में ही स्वीकार कर सकता है। यह नहीं कह सकता कि तेरे संसार को मैं अस्वीकार करता हूं। यह आधा काटा नहीं जा सकता है ईश्वर को। क्योंकि ईश्वर का संसार ईश्वर ही है। और जो उसने बनाया है, उसमें वह मौजूद है। और वह जो हमें दिखाई पड़ता है, उसमें वह छिपा है।

जो आदमी दुखी है, उसकी आस्तिकता झूठी होगी; वह छिपे में नास्तिक ही होगा। और जो आदमी आनंदित है, अगर वह यह भी कहता हो कि मैं नास्तिक हूं, तो उसकी नास्तिकता झूठी होगी; वह छिपे में आस्तिक ही होगा।

बुद्ध ने इनकार किया है ईश्वर से। महावीर ने कहा है कि कोई ईश्वर नहीं है। लेकिन फिर भी महावीर और बुद्ध से बड़े आस्तिक खोजना मुश्किल है। और आप कहते हैं कि ईश्वर है, लेकिन आप जैसे नास्तिक खोजना मुश्किल है। बुद्ध ईश्वर को इनकार करके भी आस्तिक ही होंगे, क्योंकि वह जो आनंद, वह जो नृत्य, वह जो भीतर का संगीत गूंज रहा है, वही आस्तिकता है।

सुना है मैंने, यहूदी एक कथा है कि परमात्मा ने अपने एक दूत को भेजा इजराइल। यहूदियों के बड़े मंदिर के निकट, और मंदिर का जो बड़ा पुजारी था, उसके पास वह दूत आया और उसने कहा कि मैं परमात्मा का दूत हूं और यहां की खबर लेने आया हूं।

तो उस पुजारी ने पूछा कि यहां की मैं तुम्हें सिर्फ एक ही खबर दे सकता हूं कि यहां जो आस्तिक हैं, उनकी आस्तिकता में मुझे शक है। और इस गांव में दो नास्तिक हैं, उनकी नास्तिकता में भी मुझे शक है। गांव में दो नास्तिक हैं, उन्हें हमने कभी दुखी नहीं देखा। और गांव में इतने आस्तिक हैं, जो मंदिर में रोज प्रार्थना और

पूजा करने आते हैं, वे सिवाय दुख की कथा के मंदिर में कुछ भी नहीं लाते; सिवाय शिकायतों के उनकी प्रार्थना में और कुछ भी नहीं है। परमात्मा से अगर वे कुछ मांगते भी हैं, तो दुखों से छुटकारा मांगते हैं।

लेकिन दुख से भरा हुआ हृदय परमात्मा के पास आए कैसे! वह दुख में ही इतना डूबा है, उसकी दृष्टि ही इतने अंधेरे से भरी है! इस जगत में एक तो अंधेरा है, जिसे हम प्रकाश जलाकर मिटा सकते हैं। और एक भीतर का अंधेरा है, उस अंधेरे का नाम दुख है। और जब तक हम भीतर आनंद का चिराग न जला लें, तब तक हम भीतर के अंधेरे को नहीं मिटा सकते।

तो उस पुजारी ने पूछा कि हे ईश्वर के राजदूत, मैं तुमसे यह पूछता हूं कि इस गांव में कौन लोग परमात्मा के राज्य में प्रवेश करेंगे? तो उस राजदूत ने कहा कि तुम्हें धक्का तो लगेगा, लेकिन वे जो दो नास्तिक हैं इस गांव में, वे ही परमात्मा के राज्य में प्रवेश करेंगे। उन्होंने कभी प्रार्थना नहीं की है, पूजा नहीं की है, वे मंदिर में कभी नहीं आए हैं, लेकिन उनका हृदय एक आनंद-उल्लास से भरा है, एक उत्सव से भरा है; जीवन के प्रति उनकी कोई शिकायत नहीं है। और इस जीवन के प्रति जिसकी शिकायत नहीं है, यही आस्तिकता है।

मनुष्य दुखी है, और दुख उसे परमात्मा से तोड़े हुए है। और जब मनुष्य दुखी है, तो उसके सारे मन की एक ही चेष्टा होती है कि दुख के लिए किसी को जिम्मेवार ठहराए। और जब तक आप दुख के लिए किसी को जिम्मेवार ठहराते हैं, तब तक यह मानना मुश्किल है कि आप अंतिम रूप से दुख के लिए परमात्मा को जिम्मेवार नहीं ठहराएंगे। अंततः वही जिम्मेवार होगा।

जब तक मैं कहता हूं कि मैं अपनी पत्नी के कारण दुखी हूं, कि अपने बेटे के कारण दुखी हूं, कि गांव के कारण दुखी हूं, पड़ोसी के कारण दुखी हूं--जब तक मैं कहता हूं, मैं किसी के कारण दुखी हूं--तब तक मुझे खोज करूं तो पता चल जाएगा कि अंततः मैं यह भी कहूंगा कि मैं परमात्मा के कारण दुखी हूं।

दूसरे पर जिम्मा ठहराने वाला बच नहीं सकता परमात्मा को जिम्मेवार ठहराने से। आप हिम्मत न करते हों खोज की, और पहले ही रुक जाते हों, यह बात अलग है। लेकिन अगर आप अपने भीतर खोज करेंगे, तो आप आखिर में पाएंगे कि आपकी शिकायत की अंगुली ईश्वर की तरफ उठी हुई है।

सुना है मैंने, एक अरबी कहावत है कि जब परमात्मा ने दुनिया बनाई, तो सबसे पहले वह भी जमीन पर अपना मकान बनाना चाहता था। लेकिन फिर उसके सलाहकारों ने सलाह दी कि यह भूल मत करना। तुम्हारे मकान की एक खिड़की साबित न बचेगी, और तुम भी जिंदा लौट आओ, यह संदिग्ध है। लोग पत्थर मारकर तुम्हारे घर को तोड़ डालेंगे। और तुम एक क्षण को सो भी न पाओगे, क्योंकि लोग इतनी शिकायतें ले आएंगे! रहने की भूल जमीन पर मत करना। तुम वहां से सही-साबित लौट न सकोगे।

कभी अपने मन में आपने सोचा है कि अगर परमात्मा आपको मिल जाए, तो आप क्या निवेदन करेंगे? आप क्या कहेंगे? अपने हृदय में आप खोजेंगे, तो आप पाएंगे कि आप उसको जिम्मेवार ठहराएंगे आपके सारे दुखों के लिए।

धार्मिक व्यक्ति का जन्म ही इस विचार से होता है, इस आत्म-अनुसंधान से कि दुख के लिए कोई दूसरा जिम्मेवार नहीं, दुख के लिए मैं जिम्मेवार हूं। और जैसे ही यह दृष्टि साफ होने लगती है कि दुख के लिए मैं जिम्मेवार हूं, वैसे ही दुख से मुक्त हुआ जा सकता है। और मुक्त होने का कोई मार्ग भी नहीं है।

अगर मैं ही जिम्मेवार हूं, तो ही जीवन में क्रांति हो सकती है। अगर कोई और मुझे दुख दे रहा है, तो मैं दुख से कैसे छूट सकता हूं? क्योंकि जिम्मेवारी दूसरे के हाथ में है। ताकत किसी और के हाथ में है। मालिक कोई

और है। मैं तो केवल झेल रहा हूं। और जब तक यह सारी दुनिया न बदल जाए जो मुझे दुख दे रही है, तब तक मैं सुखी नहीं हो सकता।

इसीलिए कम्युनिज्म और नास्तिकता में एक तालमेल है। और मार्क्स की इस अंतर्दृष्टि में अर्थ है कि मार्क्स मानता है कि जब तक धर्म जमीन पर प्रभावी है, तब तक साम्यवाद प्रभावी न हो सकेगा। इसलिए धर्म की जड़ें काट देनी जरूरी हैं, तो ही साम्यवाद प्रभावी हो सकता है। उसकी बात में मूल्य है, उसकी बात में गहरी दृष्टि है।

क्योंकि धर्म और साम्यवाद का बुनियादी भेद यही है कि साम्यवाद कहता है कि दुख के लिए कोई और जिम्मेवार है। और धर्म कहता है कि दुख के लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेवार है। यह बुनियादी विवाद है। यह जड़ है विरोध की।

साम्यवाद कहता है, समाज बदल जाए, तो लोग सुखी हो जाएंगे; परिस्थिति बदल जाए, तो लोग सुखी हो जाएंगे; व्यवस्था बदल जाए, तो लोग सुखी हो जाएंगे। व्यक्ति के बदलने की कोई बात साम्यवाद नहीं उठाता। कुछ और बदल जाए, मुझे छोड़कर सब बदल जाए, तो मैं सुखी हो जाऊंगा।

लेकिन धर्म का सारा अनुसंधान यह है कि दूसरा मेरे दुख का कारण है, यही समझ दुख है। दूसरा मुझे दुख दे सकता है, इसलिए मैं दुख पाता हूं, इस ख्याल से, इस विचार से। और तब मैं अनंत काल तक दुख पा सकता हूं, दूसरा बदल जाए तो भी। क्योंकि मेरी जो दृष्टि है दुख पाने की, वह कायम रहेगी।

समाज बदल जाए... समाज बहुत बार बदल गया। आर्थिक व्यवस्था बहुत बार बदल गई। कितनी क्रांतियां नहीं हो चुकी हैं! और फिर भी कोई क्रांति नहीं हुई। आदमी वैसा का वैसा दुखी है। सब कुछ बदल गया। अगर आज से दस हजार साल पीछे लौटें, तो क्या बचा है? सब बदल गया है। एक ही चीज बची है, दुख वैसा का वैसा बचा है, शायद और भी ज्यादा बढ़ गया है।

गीता के इस अध्याय में दुख के इस कारण की खोज है। और दुख के इस कारण को मिटाने का उपाय है। और यह अध्याय गहन साधना की तरफ आपको ले जा सकता है। लेकिन इस बुनियादी बात को पहले ही ख्याल में ले लें, तो इस अध्याय में प्रवेश बहुत आसान हो जाएगा।

बहुत कठिन मालूम होता है अपने आप को जिम्मेवार ठहराना। क्योंकि तब बचाव नहीं रह जाता कोई। जब मैं यह सोचता हूं कि मैं ही कारण हूं अपने दुखों का, तो फिर शिकायत भी नहीं बचती। किससे शिकायत करूं! किस पर दोष डालूं! और जब मैं ही जिम्मेवार हूं, तो फिर यह भी कहना उचित नहीं मालूम होता कि मैं दुखी क्यों हूं? क्योंकि मैं अपने को दुखी बना रहा हूं, इसलिए। और मैं न बनाऊं, तो दुनिया की कोई ताकत मुझे दुखी नहीं बना सकती।

बहुत कठिन मालूम पड़ता है। क्योंकि तब मैं अकेला खड़ा हो जाता हूं और पलायन का, छिपने का, अपने को धोखा देने का, प्रवंचना का कोई रास्ता नहीं बचता। जैसे ही यह ख्याल में आ जाता है कि मैं जिम्मेवार हूं, वैसे ही क्रांति शुरू हो जाती है।

ज्ञान क्रांति है। और ज्ञान का पहला सूत्र है कि जो कुछ भी मेरे जीवन में घटित हो रहा है, उसे कोई परमात्मा घटित नहीं कर रहा है; उसे कोई समाज घटित नहीं कर रहा है; उसे मैं घटित कर रहा हूं, चाहे मैं जानूं और चाहे मैं न जानूं।

मैं जिस कारागृह में कैद हो जाता हूं, वह मेरा ही बनाया हुआ है। और जिन जंजीरों में मैं अपने को पाता हूं, वे मैंने ही ढाली हैं। और जिन कांटों पर मैं पाता हूं कि मैं पड़ा हूं, वे मेरे ही निर्मित किए हुए हैं। जो गड्ढे मुझे

उलझा लेते हैं, वे मेरे ही खोदे हुए हैं। जो भी मैं काट रहा हूं, वह मेरा बोया हुआ है, मुझे दिखाई पड़ता हो या न दिखाई पड़ता हो।

अगर यह मुझे दिखाई पड़ने लगे, तो दुख-विसर्जन शुरू हो जाता है। और यह मुझे दिखाई पड़ने लगे, तो आनंद की किरण भी फूटनी शुरू हो जाती है। और आनंद की किरण के साथ ही तत्व का बोध, तत्व का ज्ञान; वह जो सत्य है, उसकी प्रतीति के निकट मैं पहुंचता हूं।

अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।

उसके उपरांत कृष्ण बोले, अर्जुन, यह शरीर क्षेत्र है, ऐसा कहा जाता है। और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उसके तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं। और हे अर्जुन, तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मेरे को ही जान। और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात विकार सहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्व से जानना है, वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है। इसलिए वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मेरे से सुन।

आपका मन उदास है, दुखी है, पीड़ित है। सुबह आप उठे हैं; मन प्रफुल्लित है, शांत है; जीवन भला मालूम होता है। या कि बीमार पड़े हैं और जीवन व्यर्थ मालूम होता है; लगता है, कोई सार नहीं है। जवान हैं और जीवन में गति मालूम पड़ती है; बहुत कुछ करने जैसा लगता है; कोई अभिप्राय दिखाई पड़ता है। फिर बूढ़े हो गए हैं, थक गए हैं, शक्ति टूट गई है; और सब ऐसा लगता है कि जैसे कोई एक दुखस्वप्न था। न कोई उपलब्धि हुई है, न कहीं पहुंचे हैं, और मौत करीब मालूम होती है।

कोई भी अवस्था हो मन की, एक बात--बच्चे में, जवान में, बूढ़े में, सुख का आभास हो, दुख का आभास हो--उसमें एक बात समान है कि मन पर जो भी अवस्था आती है, आप अपने को उसके साथ तादात्म्य कर लेते हैं।

अगर भूख लगती है, तो आप ऐसा नहीं कहते कि मुझे पता चल रहा है कि शरीर को भूख लग रही है। आप कहते हैं, मुझे भूख लग रही है। यह केवल भाषा का ही भेद नहीं है। यह हमारी भीतर की प्रतीति है। सिर में दर्द है, तो आप ऐसा नहीं कहते, न ऐसा सोचते, न ऐसी प्रतीति करते कि सिर में दर्द हो रहा है, ऐसा मुझे पता चल रहा है। आप कहते हैं, मेरे सिर में दर्द है।

जो भी प्रतीति होती है, आप उसके साथ एक हो जाते हैं। वह जो जानने वाला है, उसको आप अलग नहीं बचा पाते। वह जो जानने वाला है, वह खो जाता है। ज्ञेय में खो जाता है ज्ञाता। दृश्य में खो जाता है द्रष्टा। भोग में खो जाता है भोक्ता। कर्म में खो जाता है कर्ता। वह जो भीतर जानने वाला है, वह दूर नहीं रह पाता और एक हो जाता है उससे जिसे जानता है। पैर में दर्द है, और आप दर्द के साथ एक हो जाते हैं।

यही एकमात्र दुर्घटना है। अगर कोई भी मौलिक पतन है, जैसा ईसाइयत कहती है, कोई ओरिजिनल, कोई मूल पाप, अगर कोई एक पतन खोजा जाए, तो एक ही है पतन और वह है तादात्म्य। जानने वाला एक हो जाए उसके साथ, जिसे जा जान रहा है।

दर्द आप नहीं हैं। आप दर्द को जानते हैं। दर्द आप हो भी नहीं सकते। क्योंकि अगर आप दर्द ही हो जाएं, तो फिर दर्द को जानने वाला कोई भी न बचेगा।

सुबह होती है, सूरज निकलता है, तो आप देखते हैं कि सूरज निकला, प्रकाश हो गया। फिर सांझ आती है, सूरज ढल जाता है, अंधेरा आ जाता है। तो आप देखते हैं, रात आ गई। लेकिन वह जो देखने वाला है, न तो सुबह है और न सांझ। वह जो देखने वाला है, न तो सूरज की किरण है, रात का अंधेरा भी नहीं है। वह जो देखने

वाला है, वह तो अलग खड़ा है। वह सुबह को भी देखता है उगते, फिर सांझ को भी देखता है। फिर रात का अंधेरा भी देखता है, दिन का प्रकाश भी देखता है। वह जो देखने वाला है, वह अलग है।

लेकिन जीवन में हम उसे अलग नहीं रख पाते हैं। वह तत्क्षण एक हो जाता है। कोई आपको गाली दे देता है, खट से चोट पहुंच जाती है। आप ऐसा नहीं कर पाते कि देख पाएं कि कोई गाली दे रहा है, और देख पाएं कि मन में चोट पहुंच रही है।

दोनों बातें आप देख सकते हैं। आप देख सकते हैं कि गाली दी गई, और आप यह भी देख सकते हैं कि मन में थोड़ी चोट और पीड़ा पहुंची। और आप दोनों से दूर खड़े रह सकते हैं।

यह जो दूर खड़े रहने की कला है, सारा धर्म उस कला का ही नाम है। वह जो जानने वाला है, वह जानी जाने वाली चीज से दूर खड़ा रह जाए; वह जो अनुभोक्ता है, अनुभव के पार खड़ा रह जाए। सब अनुभव का नाम क्षेत्र है। और वह जो जानने वाला है, उसका नाम क्षेत्रज्ञ है।

तो कृष्ण इस सूत्र में इन दोनों के भेद के संबंध में प्राथमिक प्रस्तावना कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, यह शरीर क्षेत्र है, ऐसा कहा जाता है। और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उसके तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं।

आप शरीर के साथ अपने को जब तक एक कर रहे हैं, तब तक दुख से कोई छुटकारा नहीं है।

अब यह बहुत मजे की और बहुत चमत्कारिक घटना है। शरीर को कोई दुख नहीं हो सकता। शरीर में दुख होते हैं, लेकिन शरीर को कोई दुख नहीं हो सकता। क्योंकि शरीर को कोई बोध नहीं है। इसलिए आप मुर्दा आदमी को दुख नहीं दे सकते। इसीलिए तो डाक्टर इसके पहले कि आपका आपरेशन करे, आपको बेहोश कर देता है। बेहोश होते से ही शरीर को कोई दुख नहीं होता। लेकिन सब दुख शरीर में होते हैं। और वह जो जानने वाला है, उसमें कोई दुख नहीं होता।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

दुख शरीर में घटते हैं; और जाने जाते हैं उसमें, जो शरीर नहीं है। जानने वाला अलग है, और जहां दुख घटते हैं, वह जगह अलग है। और जहां दुख घटते हैं, वहां जानने की कोई संभावना नहीं है। और जो जानने वाला है, वहां दुख के घटने की कोई संभावना नहीं है।

जब कोई मेरे पैर को काटता है, तो पैर के काटने की घटना तो शरीर में घटती है; और अगर जानने वाला मौजूद न हो, तो कोई दुख घटित नहीं होगा। लेकिन जानने की घटना मुझमें घटती है। कटता है शरीर, जानता हूं मैं। यह जानना और शरीर में घटना का घटना इतना निकट है कि दोनों इकट्ठे हो जाते हैं; हम फासला नहीं कर पाते; दोनों के बीच में जगह नहीं बना पाते। हम एक ही हो जाते हैं।

जब शरीर पर कटना शुरू होता है, तो मुझे लगता है, मैं कट रहा हूं। और यह प्रतीति कि मैं कट रहा हूं, दुख बन जाती है। हमारे सारे दुख शरीर से उधार लिए गए हैं। शरीर में कितने ही दुख घटें, अगर आपको पता न चले, तो दुख घटते नहीं। और शरीर में बिल्कुल दुख न घटें, अगर आपको पता चल जाए, तो भी दुख घट जाते हैं। दूसरी बात भी ख्याल में ले लें। शरीर में कोई दुख न घटे, लेकिन आपको प्रतीति करवा दी जाए कि दुख घट रहा है, तो दुख घट जाएगा।

सम्मोहन में सम्मोहित व्यक्ति को कह दिया जाए कि तेरे पैर में आग लगी है, तो पीड़ा शुरू हो जाती है। वह आदमी चीखने-चिल्लाने लगता है। वह रोने लगता है। प्रतीति शुरू हो गई कि पैर में आग लगी है।

सम्मोहित आदमी को कुछ भी कह दिया जाए, वह स्वीकार कर लेता है। उसे वैसा दुख होना शुरू हो जाएगा। कोई दुख शरीर में घट नहीं रहा है, लेकिन अगर जानने वाला मान ले कि घट रहा है, तो घटना शुरू हो जाता है।

आपको शायद ख्याल न हो, जमीन पर जितने सांप होते हैं, उनमें केवल तीन प्रतिशत सांपों में जहर होता है। बाकी सत्तानबे प्रतिशत तो बिना जहर के होते हैं। लेकिन बिना जहर के सांप के काटे हुए लोग भी मरते हैं।

अब यह बड़ी अजीब घटना है। क्योंकि जिस सांप में जहर ही नहीं है, उससे काटा हुआ आदमी मर कैसे जाता है! और इसीलिए तो सांप को झाड़ने वाला भी सफल हो जाता है। क्योंकि सत्तानबे प्रतिशत मौके पर तो कोई जहर होता नहीं, सिर्फ जहर के ख्याल से आदमी मर रहा होता है। इसलिए झाड़ने वाला अगर ख्याल दिला दे कि झाड़ दिया, तो बात खतम हो गई।

इसलिए मंत्र सरलता से काम कर जाता है। झाड़ने वाला सफल हो जाता है। सिर्फ भरोसा दिलाने की बात है, क्योंकि उस सांप ने भी भरोसा दिलाया है कि मुझमें जहर है। उसमें जहर तो था नहीं। भरोसे से आदमी मर रहा है, तो भरोसे से आदमी बच भी सकता है।

लेकिन दूसरी घटना भी संभव है। असली जहर वाले सांप का काटा हुआ आदमी भी मंत्रोपचार से बच सकता है। अगर नकली जहर से मर सकता है, तो असली जहर से भी बचने की संभावना है। अगर यह भ्रांति कि सांप ने मुझे काट लिया है इसलिए मरना जरूरी है मौत बन सकती है, तो यह ख्याल कि सांप ने भला मुझे काटा है, लेकिन मंत्र ने मुझे मुक्त कर दिया, असली जहर से भी छुटकारा दिला सकता है।

अभी पश्चिम में मनसविद बहुत प्रयोग करते हैं और बहुत हैरान हुए हैं। दुनिया में हजारों तरह की दवाइयां चलती हैं। सभी तरह की दवाइयां काम करती हैं। होमियोपैथी भी बचाती है, एलोपैथी भी बचाती है, आयुर्वेद भी बचाता है। और भी, यूनानी हकीम भी बचाता है; नेचरोपैथ भी बचा लेता है। मंत्र से बच जाता है आदमी। किसी की कृपा से भी बच जाता है। डिवाइन हीलिंग, प्रभु-चिकित्सा से भी बच जाता है।

तो सवाल यह है कि आदमी इतने ढंगों से बचता है, तो विचारणीय है कि इसमें कोई वैज्ञानिक कारण है बचने का कि सिर्फ आदमी का भरोसा बचा लेता है!

आपको शायद पता न हो, जब भी कोई नई दवा निकलती है, तो मरीजों पर ज्यादा काम करती है। लेकिन साल दो साल में फीकी पड़ जाती है, फिर काम नहीं करती। जब नई दवा निकलती है, तो मरीजों पर क्यों काम करती है? नई दवा से ऐसा लगता है कि बस, अब सब ठीक हो गया। लेकिन साल, छः महीने में कुछ मरीज फायदा उठा लेते हैं। बाकी इसके बाद फिर फायदा नहीं उठा पाते।

एक बहुत विचारशील डाक्टर ने कहा है कि जब भी नई दवा निकले, तब फायदा पूरा उठा लेना चाहिए, क्योंकि थोड़े ही दिन में दवा काम नहीं करेगी।

नई दवा काम क्यों करती है? थोड़े दिन पुरानी पड़ जाने के बाद दवा का रहस्य और चमत्कार क्यों चला जाता है? तो उस पर बहुत अध्ययन किया गया और पाया गया कि जब नई दवा निकलती है, तो उसके विरोध में कुछ भी नहीं होता। उसकी असफलता की कोई खबर न मरीज को होती है, न डाक्टर को होती है। डाक्टर भी भरोसे से भरा होता है कि दवा नई है, चमत्कार है।

विज्ञापन, अखबार सब खबरें देते हैं कि चमत्कार की दवा खोज ली गई है। डाक्टर भरोसे से भरा होता है। मरीज को दवा देता है और वह कहता है, बिल्कुल घबड़ाओ मत। अब तक तो इस बीमारी का मरीज बच

नहीं सकता था। लेकिन अब वह दवा हाथ में आ गई है कि अब इस मरीज को मरने की कोई जरूरत नहीं है। अब तुम बच जाओगे।

वह जो डाक्टर का भरोसा है, वह मंत्र का काम कर रहा है। उसे पता नहीं कि वह पुरोहित का काम कर रहा है इस क्षण में। उसकी आंखों में जो रौनक है, वह जो भरोसे की बात है, वह जो मरीज से कहना है कि बेफिक्र रह, मरीज को भी यह उत्साह पकड़ जाता है। मरीज बच जाता है।

लेकिन साल, छः महीने में ही अनुसंधान करने वाले दवा में खोज करते हैं कि सच में इसमें ऐसा कुछ है या नहीं है। मेडिकल जरनल्स में खबरें आनी शुरू हो जाती हैं कि इस दवा में ऐसा कोई तत्व नहीं है कि जिस पर इतना भरोसा किया जा सके। खोजबीन शुरू हो जाती है। डाक्टर का भरोसा कम होने लगता है। अब भी वह दवा डाक्टर देता है, लेकिन वह कहता है, शायद काम कर सके, शायद न भी करे। वह जो शायद है, वह मंत्र की हत्या कर देता है। डाक्टर का भरोसा गया; मरीज का भी भरोसा गया।

मैं एक घटना पढ़ रहा था कि एक मरीज पर एक दवा का प्रयोग किया गया। डाक्टर भरोसे से भरा था कि दवा काम करेगी। दवा काम कर गई। वह मरीज सालभर तक ठीक रहा। बीमारी तिरोहित हो गई। लेकिन सालभर बाद अनुसंधानकर्ताओं ने पता लगाया कि उस दवा से इस बीमारी के ठीक होने का कोई संबंध ही नहीं है।

उसके डाक्टर ने मरीज को खबर की कि चमत्कार की बात है कि तुम तो ठीक हो गए, लेकिन अभी खबर आई है, रिसर्च काम कर रही है कि इस दवा में उस बीमारी के ठीक होने का कोई कारण ही नहीं है। वह मरीज उसी दिन पुनः बीमार हो गया। वह सालभर बिल्कुल ठीक रह चुका था।

और कहानी यहीं खतम नहीं होती। छः महीने बाद फिर इस पर खोजबीन चली, किसी दूसरे रिसर्च करने वाले ने कुछ और पता लगाया। उसने कहा कि नहीं, यह दवा काम कर सकती है। और वह मरीज फिर ठीक हो गया।

तो अभी डाक्टरों को शक पैदा हो गया है कि दवाएं काम करती हैं या भरोसे काम करते हैं!

सभी चिकित्सा में जादू काम करता है, मंत्र काम करते हैं। अगर एलोपैथी ज्यादा काम करती है, तो उसका कारण यह नहीं है कि एलोपैथी में ज्यादा जान है। उसका कारण यह है कि एलोपैथी के पास ज्यादा प्रचार का साधन है; ज्यादा मेडिकल कालेज हैं, युनिवर्सिटी हैं, ज्यादा सरकारें हैं, अथारिटी, प्रमाण उसके पास हैं; वह काम करती है।

अनेक चिकित्सकों ने प्रयोग किए हैं, उसे वे प्लेस्बो कहते हैं। दस मरीजों को, उसी बीमारी के दस मरीजों को दवा दी जाती है; उसी बीमारी के दस मरीजों को सिर्फ पानी दिया जाता है। बड़ी हैरानी की बात यह है कि अगर सात दवा से ठीक होते हैं, तो सात पानी से भी ठीक हो जाते हैं। वे सात पानी से भी ठीक होते हैं, लेकिन बात इतनी जरूरी है कि कहा जाए कि उनको भी दवा दी जा रही है।

आदमी का मन, बीमारी न हो, तो बीमारी पैदा कर सकता है। और आदमी का मन, बीमारी हो, तो बीमारी से अपने को तोड़ भी सकता है। मन की यह स्वतंत्रता ठीक से समझ लेनी जरूरी है।

आप अपने शरीर से अलग होकर भी शरीर को देख सकते हैं, और आप अपने शरीर के साथ एक होकर भी अपने को देख सकते हैं। हम सब अपने को एक होकर ही देख रहे हैं। हमारे दुखों की सारी मूल जड़ वहां है।

शरीर में दुख घटित होते हैं और हम अपने को मानते हैं कि शरीर के साथ एक हैं। बच्चा मानता है कि मैं शरीर हूं। जवान मानता है कि मैं शरीर हूं। बूढ़ा मानता है कि मैं शरीर हूं। तो बूढ़ा दुखी होता है, क्योंकि उसको

लगता है, उसकी आत्मा भी बूढ़ी हो गई है। शरीर बूढ़ा हो गया है। आत्मा तो कुछ ब.ूढी होती नहीं। लेकिन बूढ़े शरीर के साथ तादात्म्य बंधा हुआ है। तो जिसने माना था कि जवान शरीर मैं हूं, मानना मजबूरी है अब उसकी, उसे मानना पड़ेगा कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूं। और जिसने माना था शरीर की जिंदगी को अपनी जिंदगी, जब मौत आएगी तो उसे मानना पड़ेगा, अब मैं मर रहा हूं।

लेकिन बचपन से ही हम शरीर के साथ अपने को एक मानकर बड़े होते हैं। शरीर के सुख, शरीर के दुख, हम एक मानते हैं। शरीर की भूख, शरीर की प्यास, हम अपनी मानते हैं।

यह कृष्ण का सूत्र कह रहा है, शरीर क्षेत्र है, जहां घटनाएं घटती हैं। और तुम क्षेत्रज्ञ हो, जो घटनाओं को जानता है।

अगर यह एक सूत्र जीवन में फलित हो जाए, तो धर्म की फिर और कुछ जानकारी करने की जरूरत नहीं है। फिर कोई कुरान, बाइबिल, गीता, सब फेंक दिए जा सकते हैं। एक छोटा-सा सूत्र, कि जो भी शरीर में घट रहा है, वह शरीर में घट रहा है, और मुझमें नहीं घट रहा है; मैं देख रहा हूं, मैं जान रहा हूं, मैं एक द्रष्टा हूं, यह सूत्र समस्त धर्म का सार है। इसे थोड़ा-थोड़ा प्रयोग करना शुरू करें, तो ही ख्याल में आएगा।

एक तो रास्ता यह है कि गीता हम समझते रहते हैं। गीता लोग समझाते रहते हैं। वे कहते रहते हैं, क्षेत्र अलग है और क्षेत्रज्ञ अलग है। और हम सुन लेते हैं, और मान लेते हैं कि होगा। लेकिन जब तक यह अनुभव न बन जाए, तब तक इसका कोई अर्थ नहीं है। यह कोई सिद्धांत नहीं है; यह तो प्रयोगजन्य अनुभूति है। इसे थोड़ा प्रयोग करें।

जब भोजन कर रहे हों, तो समझें कि भोजन शरीर में डाल रहे हैं और आप भोजन करने वाले नहीं हैं, देखने वाले हैं। जब रास्ते पर चल रहे हों, तो समझें कि आप चल नहीं रहे हैं; शरीर चल रहा है। आप तो सिर्फ देखने वाले हैं। जब पैर में कांटा गड़ जाए, तो बैठ जाएं, दो क्षण ध्यान करें। बाद में कांटा निकालें, जल्दी नहीं है। दो क्षण ध्यान करें और समझें कि कांटा गड़ रहा है, दर्द हो रहा है। यह शरीर में घट रहा है, मैं जान रहा हूं।

जो भी मौका मिले क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को अलग करने का, उसे चूकें मत, उसका उपयोग कर लें।

जब शरीर बीमार पड़ा हो, तब भी; जब शरीर स्वस्थ हो, तब भी। जब सफलता हाथ लगे, तब भी; और जब असफलता हाथ लगे, तब भी। जब कोई गले में फूलमालाएं डालने लगे, तब भी स्मरण रखें कि फूलमालाएं शरीर पर डाली जा रही हैं, मैं सिर्फ देख रहा हूं। और जब कोई जूता फेंक दे, अपमान करे, तब भी जानें कि शरीर पर जूता फेंका गया है, और मैं देख रहा हूं। इसके लिए कोई हिमालय पर जाने की जरूरत नहीं है। आप जहां हैं, जो हैं, जैसे हैं, वहीं ज्ञाता को और ज्ञेय को अलग कर लेने की सुविधा है।

न कोई मंदिर का सवाल है, न कोई मस्जिद का, आपकी जिंदगी ही मंदिर है और मस्जिद है। वहां छोटा-छोटा प्रयोग करते रहें। और ध्यान रखें, एक-एक ईंट रखने से महल खड़े हो जाते हैं; छोटे-छोटे प्रयोग करने से परम अनुभूतियां हाथ आ जाती हैं। एक-एक बूंद इकट्ठा होकर सागर निर्मित हो जाता है। और छोटा-छोटा अनुभव इकट्ठा होता चला जाए, तो परम साक्षात्कार तक आदमी पहुंच जाता है। एक छोटे-छोटे कदम से हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।

तो यह मत सोचें कि छोटे-छोटे अनुभव से क्या होगा। सभी अनुभव जुड़ते जाते हैं, उनका सार इकट्ठा हो जाता है। और धीरे-धीरे आपके भीतर वह इंटीग्रेशन, आपके भीतर वह केंद्र पैदा हो जाता है, जहां से आप फिर बिना प्रयास के निरंतर देख पाते हैं कि आप अलग हैं और शरीर अलग है।

बहुत लोग इसको मंत्र की तरह रटते हैं कि मैं अलग हूं, शरीर अलग है। मंत्र की तरह रटने से कोई फायदा नहीं। इसे तो प्रयोग-भूमि बनाना जरूरी है। बहुत लोग बैठकर रोज सुबह अपनी प्रार्थना-पूजा में कह लेते हैं कि मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं। इस कहने से कुछ लाभ न होगा। और रोज-रोज दोहराने से यह जड़ हो जाएगी बात। इसका कोई मन पर असर भी न होगा। आप इसको मशीन की तरह दोहरा लेंगे। इसका अर्थ भी धीरे-धीरे खो जाएगा।

आमतौर से मेरा अनुभव है कि धार्मिक लोग महत्वपूर्ण शब्दों को दोहरा-दोहराकर उनका अर्थ भी नष्ट कर देते हैं। फिर मशीन की तरह दोहराते रहते हैं। पुनरुक्ति करते रहते हैं। तोतों की रटंत हो जाती है। उसका कोई अर्थ नहीं होता।

इसे मंत्र की तरह नहीं, प्रयोग की तरह! इसे चौबीस घंटे में दस, बीस, पच्चीस बार, जितनी बार संभव हो सके, किसी सिचुएशन में, किसी परिस्थिति में तत्क्षण अपने को तोड़कर अलग देखने का प्रयोग करें। स्नान कर रहे हैं और ख्याल करें कि स्नान की घटना शरीर में घट रही है और मैं जान रहा हूं। कुछ भी कर रहे हैं! यहां सुन रहे हैं, तो सुनने की घटना आपके शरीर में घट रही है; और सुनने की घटना घट रही है, इसे आप जान रहे हैं।

वह जानने वाले को धीरे-धीरे निखारकर अलग करते जाएं। जैसे कोई मूर्तिकार छेनी से काटता है पत्थर को, ऐसे ही जानने वाले को अलग काटते जाएं; और जो जाना जाता है, उसे अलग काटते जाएं। अनुभव को अलग करते जाएं, अनुभोक्ता को अलग करते जाएं। जरूर एक दिन वह फासला पैदा हो जाएगा, वह दूरी खड़ी हो जाएगी, जहां से चीजें देखी जा सकती हैं।

हे अर्जुन, यह शरीर क्षेत्र है, ऐसा कहा जाता है। और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उसके तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं।

यह ख्याल में ले लेना जरूरी है कि पूरब के मुल्कों में और विशेषकर भारत में हमारा जोर विचार पर नहीं है, हमारा जोर ज्ञान पर है। हमारा जोर उस बात पर नहीं है कि हम किन्हीं सिद्धांतों को प्रतिपादित करें। हमारा जोर इस बात पर है कि हम जीवन के अनुभव से कुछ सार निचोड़ें। ये दोनों अलग बातें हैं।

इसको आप सिद्धांत की तरह भी प्रतिपादित कर सकते हैं कि आत्मा अलग है, शरीर अलग है; जानने वाला अलग है, जो जाना जाता है, वह अलग है। इसको आप एक फिलासफी, एक तत्व-विचार की तरह खड़ा कर सकते हैं। और बड़े तर्क उसके पक्ष और विपक्ष में भी जुटा सकते हैं; बड़े शास्त्र भी निर्मित कर सकते हैं।

लेकिन भारत की मनीषा का आग्रह सिद्धांतों पर जरा भी नहीं है। जोर इस बात पर है कि जो आप ऐसा मानते हों, तो ऐसा मानते हैं या जानते हैं? ऐसी आपकी अपनी अनुभूति है या ऐसा आपका विचार है?

विचार धोखा दे सकता है। अनुभूति भर धोखा नहीं देती। विचार में डर है। विचार में अक्सर हम उस बात को मान लेते हैं, जो हम मानना चाहते हैं। इसे थोड़ा समझ लें। विचार में एक तरह का विश फुलफिलमेंट, एक तरह की कामनाओं की तृप्ति होती है।

समझें, एक आदमी मौत से डरता है। सभी डरते हैं। तो जो मृत्यु से डरता है, उसे मानने का मन होता है कि आत्मा अमर हो। यह उसकी भीतरी आकांक्षा होती है कि आत्मा न मरे। जब वह गीता में पढ़ता है कि शरीर अलग और आत्मा अलग, और आत्मा नहीं मरती, वह तत्क्षण मान लेता है। मानने का कारण यह नहीं है कि गीता सही है। मानने का कारण यह भी नहीं है कि उसको अनुभव हुआ है। मानने का कारण कुल इतना है कि वह मौत से डरा हुआ है, मृत्यु से भयभीत है। इसलिए कोई भी आसरा देता हो कि आत्मा अमर है, तो वह

कहेगा कि बिल्कुल ठीक। जब वह बिल्कुल ठीक कह रहा है, तो सिर्फ मृत्यु के भय के कारण। वह चाहता है कि आत्मा अमर हो।

लेकिन आपकी चाह से सत्य पैदा नहीं होते। आप क्या चाहते हैं, इससे सत्य का कोई संबंध नहीं है। और आप जब तक चाहते रहेंगे, तब तक आप सत्य को जान भी न पाएंगे। सत्य को जानना पड़ेगा आपको चाह को छोड़कर।

तो विचार अक्सर ही स्वयं की छिपी हुई वासनाओं की पूर्ति होते हैं। और हम अपने को समझा लेते हैं। इसलिए अक्सर मेरा अनुभव यह है कि जो भी मौत से डरे हुए लोग हैं, वे आत्मवादी हो जाते हैं। इसलिए इस मुल्क में दिखाई पड़ेगा।

यह मुल्क इतने दिन तक गुलाम रहा। कोई भी आया और इस मुल्क को गुलाम बनाने में बड़ी आसानी रही। जितनी कम से कम तकलीफ हमने दी गुलाम बनाने वालों को, दुनिया में कोई नहीं देता। और बड़े आश्चर्य की बात है कि हम आत्मवादी लोग हैं! हम मानते हैं, आत्मा अमर है। लेकिन मरने से हम इतने डरते हैं कि हमें कभी भी गुलाम बनाया जा सका। मौत का डर पैदा हुआ कि हम गुलाम हो गए। अगर हमें कोई डरा दे कि मौत करीब है, तो हम कुछ भी करने को राजी हो गए!

यह बड़ा असंगत मालूम पड़ता है। यह होना नहीं चाहिए। आत्मवादी मुल्क को तो गुलाम कोई बना ही नहीं सकता। क्योंकि जिसको यही पता है कि आत्मा नहीं मरती, उसे आप डरा नहीं सकते। और जिसको डरा नहीं सकते, उसे गुलाम कैसे बनाइएगा?

गुलामी का सूत्र तो भय है। जिसको भयभीत किया जा सके, उसको गुलाम बनाया जा सकता है। और जिसको भयभीत न किया जा सके, उसे कैसे गुलाम बनाइएगा? और आत्मवादी को कैसे भयभीत किया जा सकता है?

जो जानता है कि आत्मा मरती ही नहीं, अब उसे भयभीत करने का कोई भी उपाय नहीं है। आप उसका शरीर काट डालें, तो वह हंसता रहेगा। और वह कहेगा कि व्यर्थ मेहनत कर रहे हो, क्योंकि जिसे तुम काट रहे हो, वह मैं नहीं हूं। और मैं तुम्हारे काटने से कटूंगा नहीं। इसलिए काटने पर भरोसा मत करो। तुम काटने से मुझे डरा न सकोगे। तुम काटकर मेरे शरीर को मिटा दोगे, लेकिन तुम मुझे गुलाम न बना सकोगे।

लेकिन आत्मवादी मुल्क इतनी आसानी से गुलाम बनता रहा है उसके पीछे कुछ कारण होना चाहिए। और कारण मेरी समझ में यह है कि हमारा आत्मवाद अनुभव नहीं है। हमारा आत्मवाद मृत्यु के भय से पैदा होता है। अधिक लोग मरने से डरते हैं, इसलिए मानते हैं कि आत्मा अमर है।

अब यह बड़ी उलटी बात है। मरने से जो डरता है, उसे तो आत्मा की अमरता कभी पता नहीं चलेगी। क्योंकि मृत्यु की घटना घटती है शरीर में, और जो डर रहा है मृत्यु से, वह शरीर को अपने साथ एक मान रहा है। इसलिए वह कितना ही मानता रहे आत्मवाद, कि आत्मा सत्य है, आत्मा शाश्वत सत्य है; और वह कितना ही दोहराता रहे मन में कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं आत्मा हूं, लेकिन इन सब के पीछे अनुभव नहीं, इन सब के पीछे एक सिद्धांत, एक विचार है; और विचार के पीछे छिपी एक वासना है।

विचार वासना से मुक्त नहीं हो पाता। विचार वासना का ही बुद्धिगत रूप है।

भारत का जोर है अनुभव पर, विचार पर नहीं। भारत कहता है, इसकी फिक्र छोड़ो कि वस्तुतः शरीर और आत्मा अलग हैं या नहीं। तुम तो यह प्रयोग करके देखो कि जब तुम्हारे शरीर में कोई घटना घटती है, तो

वह घटना शरीर में घटती है या तुममें घटती है? तुम उसे जानते हो? फासले से खड़े होकर देखते हो? या उस घटना के साथ एक हो जाते हो?

कोई भी व्यक्ति थोड़ी-सी सजगता का प्रयोग करे, तो उसे प्रतीति होनी शुरू हो जाएगी कि मैं अलग हूं। और तब दोहराना न पड़ेगा कि मैं शरीर से अलग हूं। यह हमारा अनुभव होगा।

कृष्ण कहते हैं, जो ऐसा जानता है--स्वयं को क्षेत्रज्ञ, शरीर को क्षेत्र--उस तत्व को जानने वाले को ज्ञानी कहते हैं। और हे अर्जुन, तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मेरे को ही जान। और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात विकार सहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्व से जानना है, वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है।

दूसरी प्रस्तावना। पहली तो बात, विचार से यह प्रतीति कभी न हो पाएगी, अनुभव से प्रतीति होगी। और जिस दिन यह प्रतीति होगी कि मैं शरीर नहीं हूं, आत्मा हूं, उस दिन यह भी प्रतीति होगी कि वह आत्मा सभी के भीतर एक है।

ऐसा समझें कि बहुत-से घड़े रखे हों पानी भरे, नदी में ही रख दिए हों। हर घड़े में नदी का पानी भर गया हो। घड़े के बाहर भी नदी हो, भीतर भी नदी हो। लेकिन जो घड़ा अपने को समझता हो कि यह मिट्टी की देह ही मैं हूं, उसे पड़ोस में रखा हुआ घड़ा दूसरा मालूम पड़ेगा। लेकिन जो घड़ा इस अनुभव को उपलब्ध हो जाए कि भीतर भरा हुआ जल मैं हूं, तत्क्षण पड़ोसी भी मिट जाएगा। उसकी मिट्टी की देह भी व्यर्थ हो जाएगी। उसके भीतर का जल ही सार्थक हो जाएगा। जल तो दोनों के भीतर एक है।

चैतन्य तो सबके भीतर एक है। दीए अलग-अलग हैं मिट्टी के, उनके भीतर ज्योति तो एक है, उनके भीतर सूरज का प्रकाश तो एक है।

सब दीयों के भीतर एक ही सूरज जलता है, बड़े से बड़े दीए के भीतर और छोटे से छोटे दीए के भीतर। जो सूरज में है, वही रात जुगनू में भी चमकता है। जुगनू कितनी ही छोटी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सूरज कितना ही बड़ा हो, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। बड़े-छोटे से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो प्रकाश की घटना है, वह जो प्रकाश का तत्व है, वह एक है।

जैसे ही कोई व्यक्ति शरीर से थोड़ा पीछे हटता है, अपने भीतर ही खड़े होकर देखता है कि मैं शरीर नहीं हूं, वैसे ही दूसरी बात भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है, दूसरा द्वार भी खुल जाता है। तब सभी के भीतर वह जो जानने वाला है, वह एक है।

तो कृष्ण कहते हैं, वह जो सभी के भीतर क्षेत्रज्ञ है, वह तू मुझे ही जान। सबके भीतर से मैं ही जान रहा हूं।

यह एक बहुत नया आयाम है। परमात्मा जगत को बनाने वाला नहीं है; परमात्मा सब तरफ से जगत को जानने वाला है, सबके भीतर से।

एक कबूतर बैठकर देख रहा है; एक छोटा बच्चा देख रहा है; अब तो वे कहते हैं कि फूल भी खिलता है, उसके पास भी बड़ी सूक्ष्म आंखें हैं, वह भी देख रहा है। अब तो वे कहते हैं, वृक्षों के पास भी आंखें हैं, वह भी देख रहा है। अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि सभी चीजें देख रही हैं। सभी चीजें अनुभव कर रही हैं। सभी के भीतर अनुभोक्ता बैठा है।

वह जो सबके भीतर से जान रहा है, कृष्ण कहते हैं, वह मैं हूं।

परमात्मा कहीं दूर नहीं है। कहीं फासले पर नहीं है। निकट से भी निकट है।

एक ईसाई फकीर संत लयोला ने एक छोटे-से ध्यान के प्रयोग की बात कही है। वह ध्यान का प्रयोग कीमती है और चाहें तो आप कर सकते हैं और अनूठा है। जिस किसी व्यक्ति को आप बहुत प्रेम करते हों, उसके सामने बैठ जाएं। स्नान कर लें, जैसे मंदिर में प्रवेश करने जा रहे हों। द्वार-दरवाजे बंद कर लें, ताकि कोई आपको बाधा न दे। और एकटक दोनों व्यक्ति एक-दूसरे की आंख में झांकना शुरू कर दें। सिर्फ एक-दूसरे की आंख में झांकें, और सब भूल जाएं। सब तरफ से ध्यान हटा लें और एक-दूसरे की आंख में अपने को उंडेलना शुरू कर दें। चाहे आपका छोटा बच्चा ही हो; जिससे भी आपका लगाव हो।

लगाव हो तो अच्छा, क्योंकि जरा आसानी से आप भीतर प्रवेश कर सकेंगे। क्योंकि जिससे आपका लगाव न हो, उससे हटने का मन होता है। जिससे आपका लगाव हो, उसमें प्रवेश करने का मन होता है। हमारा प्रेम एक-दूसरे में प्रवेश करने की आकांक्षा ही है।

तो जिससे थोड़ा प्रेम हो, उसकी आंखों में झांकें, एकटक, और उससे भी कहें कि वह भी आंखों में झांके। और पूरी यह कोशिश करें कि सारी दुनिया मिट जाए। बस, वे दो आंखें रह जाएं और आप उसमें यात्रा पर निकल जाएं।

एक दो-चार दिन के ही प्रयोग से, एक आधा घंटा रोज करने से आप चकित हो जाएंगे। आपके सारे विचार खो जाएंगे। जो विचार आप लाख कोशिश करके बंद नहीं कर सके थे, वे बंद हो जाएंगे। और एक अनूठा अनुभव होगा। जैसे कि आप दूसरे व्यक्ति में सरक रहे हैं, आंखों के द्वारा उतर रहे हैं। आंखें जैसे रास्ता बन गईं।

अगर इस प्रयोग को आप जारी रखें, तो एक महीने, पंद्रह दिन के भीतर एक अनूठी प्रतीति किसी दिन होगी। और वह प्रतीति यह होगी कि आपको यह समझ में न आएगा कि वह जो दूसरे के भीतर बैठा है, वह आप हैं; या जो आपके भीतर बैठा है, वह आप हैं। शरीर भूल जाएंगे और दो चेतनाएं, घड़े हट जाएंगे और दो जल की धाराएं मिल जाएंगी।

और एक बार आपको यह ख्याल में आ जाए कि दूसरे के भी भीतर जो बैठा है, वह ठीक मेरे ही जैसा चैतन्य है, मैं ही बैठा हूं, तब फिर आप हर दरवाजे पर झांक सकते हैं और हर दरवाजे के भीतर आप उसको ही छिपा हुआ पाएंगे।

आपने वह चित्र देखा होगा, जिसमें कृष्ण सब में छिपे हैं, गाय में भी, वृक्ष में भी, पत्ते में भी, सखियों में भी। वह किसी कवि की कल्पना नहीं है, और वह किसी चित्रकार की सूझ नहीं है। वह किन्हीं अनुभवियों का अनुभव है। एक बार आपको अपनी प्रतीति हो जाए शरीर से अलग, तो आपको पता लगेगा कि यही चैतन्य सभी तरफ बैठा हुआ है। इस चैतन्य की मौजूदगी ही परमात्मा की मौजूदगी का अनुभव है।

जिस क्षण आप शरीर से हटते हैं, यह पहला कदम। दूसरे ही क्षण आप अपने से भी हट जाते हैं, वह दूसरा कदम। शरीर के साथ मैं एक हूं, इससे अहंकार निर्मित होता है। शरीर के साथ मैं एक नहीं हूं, अहंकार टूट जाता है।

ऐसा समझें कि शरीर और आपके बीच जो सेतु है, वह अहंकार है। शरीर और आपके बीच जो तादात्म्य का भाव है, वही मैं हूं। जैसे ही शरीर से मैं अलग हुआ, मैं भी गिर जाता है। फिर जो बच रह जाता है, वही कृष्ण-तत्व है। उसे कोई राम-तत्व कहे, कोई क्राइस्ट-तत्व कहे, जो भी नाम देना चाहे, नाम दे। नाम न देना चाहे, तो भी कोई हर्जा नहीं।

लेकिन शरीर के साथ हटते ही आप भी मिट जाते हैं, आपका मैं होना मिट जाता है। और यह जो न-मैं होने का अनुभव है, कृष्ण कहते हैं, तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मेरे को ही जान।

सब की आंखों से मैं ही झांकता हूं। सभी के हाथों से मैं ही स्पर्श करता हूं। सभी के पैरों से मैं ही चलता हूं। सभी की श्वास भी मैं हूं और सभी के भीतर मैं ही जीता और मैं ही विदा होता हूं। जन्म में भी मैं प्रवेश करता हूं और मृत्यु में भी मैं विदा होता हूं।

व्यक्ति का बोध ही शरीर और चेतना के जोड़ से पैदा होता है। सिर्फ तादात्म्य का ख्याल अस्मिता और अहंकार को जन्म देता है। शरीर से अलग होने का ख्याल, और अस्मिता खो जाती है, अहंकार खो जाता है।

इसलिए बुद्ध ने तो यहां तक कहा कि जैसे ही यह पता चल जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं, वैसे ही यह भी पता चल जाता है कि कोई आत्मा नहीं है।

यह बड़ा कठिन वक्तव्य है। और बहुत जटिल है, और समझने में बड़ी कठिनाई है। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि जैसे ही यह ख्याल मिट गया कि शरीर मैं हूं, वैसे ही आत्मा भी नहीं होती है। लेकिन बुद्ध नकारात्मक ढंग से उसी बात को कह रहे हैं, जिसे कृष्ण विधायक ढंग से कह रहे हैं।

कृष्ण कहते हैं, तुम नहीं होते, मैं होता हूं। कृष्ण कह रहे हैं, तुम्हारा मिटना हो जाता है और कृष्ण का रहना हो जाता है। बुद्ध कहते हैं, मैं मिट जाता हूं। और उसकी कोई बात नहीं करते, जो बचता है। क्योंकि वे कहते हैं, बचने की बात करनी व्यर्थ है। उसे तो अनुभव ही करना चाहिए। वहां तक कहना ठीक है, जहां तक इलाज है। स्वास्थ्य की हम कोई चर्चा न करेंगे। उसका तुम खुद ही अनुभव कर लेना। निदान हम कर देते हैं, चिकित्सा हम कर देते हैं। चिकित्सा के बाद स्वास्थ्य का कैसा स्वाद होगा, उसके लिए हम कोई शब्द न देंगे। क्योंकि सभी शब्द सीमित हैं और बांध लेते हैं। और वह असीम है, जो घटेगा।

इसलिए बुद्ध ने कहा कि शरीर के साथ तादात्म्य के छूटते ही आत्मा भी मिट जाती है। जो बच रहता है, उसे कृष्ण परमात्मा कहते हैं, बुद्ध अनात्मा कहते हैं। वे कहते हैं, इतना पक्का है कि तुम नहीं बचते। बाकी जो बचता है, उसके लिए कुछ भी कहना उचित नहीं है। उस संबंध में चुप रह जाना उचित है।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का, विकार सहित प्रकृति और पुरुष का जो तत्व से भेद जानता है... ।

एक तो आपके भीतर संयोग घटित हो रहा है प्रतिपल, आप एक संगम हैं। आप एक मिलन हैं दो तत्वों का। एक तो प्रकृति है, जो दृश्य है। विज्ञान जिसकी खोज करता है, पदार्थ, जो पकड़ में आ जाता है इंद्रियों के, यंत्रों के और जिसकी खोजबीन की जा सकती है।

और एक आपके भीतर तत्व है, जो इंद्रियों से पकड़ में नहीं आता और फिर भी है। और अगर आपको काटें-पीटें, तो तिरोहित हो जाता है। जो हाथ में आता है, वह पदार्थ रह जाता है। लेकिन आपके भीतर एक तत्व है, जो पदार्थ को जानता है।

वह जो जानने की प्रक्रिया है--मेरे हाथ में दर्द हो रहा है, तो मैं जानता हूं--यह जानना क्या है मेरे भीतर? कितना ही मेरे शरीर को काटा जाए, उस जानने वाले तत्व को नहीं पकड़ा जा सकता। शायद काटने-पीटने की प्रक्रिया में वह खो जाता है। शायद उसकी मौजूदगी को अनुभव करने का कोई और उपाय है। विज्ञान का उपाय उसका उपाय नहीं है।

धर्म उसकी ही खोज है। विज्ञान है ज्ञेय की खोज, क्षेत्र की। और धर्म है ज्ञाता की खोज, क्षेत्रज्ञ की।

याद आता है मुझे, आइंस्टीन ने मरने के कुछ दिन पहले कहा कि सब मैंने जानने की कोशिश की। दूर से दूर जो तारा है, उसे जानने की कोशिश की। पदार्थ के भीतर दूर से दूर छिपी हुई जो अणु शक्ति है, उसे जानने की मैंने कोशिश की। लेकिन इधर बाद के दिनों में मैं इस रहस्य से अभिभूत होता चला जा रहा हूं कि यह जो

जानने की कोशिश करने वाला मेरे भीतर था, यह कौन था? यह कौन था, जो अणु को तोड़ रहा था और खोज रहा था? यह कौन था, जो दूर के तारे की तलाश में था? यह खोज कौन कर रहा था?

आइंस्टीन की पत्नी से निरंतर लोग पूछते थे कि आपके पति ने जो बहुत कठिन और जटिल सिद्धांत प्रस्तावित किया है थिअरी आफ रिलेटिविटी का, सापेक्षता का, उसके संबंध में आप भी कुछ समझती हैं या नहीं?

स्वभावतः, आइंस्टीन की पत्नी को लोग पूछ लेते थे कि आप भी यह सापेक्षता के जटिल सिद्धांत को समझती हैं या नहीं? तो आइंस्टीन की पत्नी निरंतर कहा करती थी कि मुझे इस सिद्धांत का तो कोई पता नहीं। डाक्टर आइंस्टीन ने जो सिद्धांत को जन्म दिया है, उसे तो मैं बिल्कुल नहीं समझती, लेकिन डाक्टर आइंस्टीन को मैं भलीभांति समझती हूं।

आइंस्टीन ने यह बात एक दफा किसी से कहते हुए पत्नी को सुन लिया। तो उस पर वह बहुत सोचता रहा। एक तो आइंस्टीन ने जो खोज की है, वह; और एक पत्नी की भी खोज है। वह कहती है कि मैं डाक्टर आइंस्टीन को समझती हूं। उन्होंने क्या खोजा है, उसका मुझे कुछ पता नहीं। उनके सिद्धांत मेरी समझ के बाहर हैं, लेकिन मैं डाक्टर आइंस्टीन को, खोज करने वाला वह जो छिपा है भीतर, उसको मैं थोड़ा समझती हूं।

तो आइंस्टीन तो विज्ञान के रास्ते से खोज कर रहा है; पत्नी प्रेम के रास्ते से खोज कर रही है। आइंस्टीन तो पदार्थ को तोड़कर खोज कर रहा है। पत्नी किन्हीं अदृश्य रास्तों से बिना तोड़े प्रवेश कर रही है और खोज कर रही है। आइंस्टीन तो इंद्रियों के माध्यम से कुछ विश्लेषण में लगा है। पत्नी किसी अतींद्रिय मार्ग से प्रवेश कर रही है।

प्रेम हो, कि प्रार्थना हो, कि ध्यान हो, सभी उस अदृश्य की खोज हैं, जो सभी दृश्य के भीतर छिपा हुआ है। और जब तक व्यक्ति उसे खोजने नहीं चल पड़ा है, तब तक वह क्षेत्र के जगत में कितना ही इकट्ठा कर ले, दरिद्र ही रहेगा। और कितने ही बड़े महल बना ले, और कितनी ही बड़ी सख्त दीवालें सुरक्षा की तैयार कर ले, असुरक्षित ही रहेगा। और कुछ भी पा ले, आखिर में मरेगा, तब वह पाएगा कि गरीब, दीन, दुखी, भिखारी मर रहा है। क्योंकि असली संपदा का स्रोत क्षेत्र में नहीं है। असली संपदा का स्रोत उसमें है, जो इस क्षेत्र के भीतर छिपा है और जानता है।

ज्ञान मनुष्य की गरिमा है। और ज्ञान का जो तत्व है, वह इस बात में, इस विश्लेषण में, इस भेद-विज्ञान में है कि मैं अपने को पृथक करके देख लूं उससे, जिसमें मैं हूं।

जैसे फूल की सुगंध उड़ जाती है दूर, ऐसे ही व्यक्ति को सीखना पड़ता है अपने शरीर से दूर उड़ने की कला। जैसे सुगंध अदृश्य में खो जाती है और दृश्य फूल खड़ा रह जाता है, ऐसे ही स्वयं के ज्ञान के फूल में निचोड़ करना है और धीरे-धीरे उस ज्ञान को ही बचा लेना है, जो शुद्ध है।

महावीर ने उसे केवल-ज्ञान कहा है। जहां ज्ञाता का भी ख्याल नहीं रह जाता, सिर्फ जानने की शुद्धतम घटना रह जाती है। जहां मैं सिर्फ जानता हूं, और कुछ भी नहीं करता।

एक घड़ीभर के लिए रोज चौबीस घड़ी में से, इस भीतर की खोज के लिए निकाल लें। तेईस घंटे दे दें शरीर के लिए और एक घंटा बचा लें अपने लिए।

वह आदमी व्यर्थ जी रहा है, जिसके पास एक घंटा भी अपने लिए नहीं है। वह आदमी जी ही नहीं रहा, जो एक घंटा भी अपनी इस भीतर की खोज के लिए नहीं लगा रहा है। क्योंकि आखिर में जब सारा हिसाब

होता है, तो जो भी हमने शरीर के तल पर कमाया है, वह तो मौत छीन लेती है; और जो हमने भीतर के तल पर कमाया है, वही केवल मौत नहीं छीन पाती। वही हमारे साथ होता है।

इसे ख्याल रखें कि मौत आपसे कुछ छीनेगी, उस समय आपके पास बचाने योग्य है, कुछ भी? अगर नहीं है, तो जल्दी करें। और एक घंटा कम से कम रोज क्षेत्रज्ञ की तलाश में लगा दें।

इतना ही करें, बैठ जाएं घंटेभर। कुछ भी न करें, एक बहुत छोटा-सा प्रयोग करें। इतना ही करें कि तादात्म्य न करूंगा घंटेभर, आइडेंटिफिकेशन न करूंगा घंटेभर। घंटेभर बैठ जाएं। पैर में चींटी काटेगी, तो मैं ऐसा अनुभव करूंगा कि चींटी काटती है, ऐसा मुझे पता चल रहा है। मुझे चींटी काट रही है, ऐसा नहीं।

इसका यह मतलब नहीं कि चींटी काटती रहे और आप अकड़कर बैठे रहें। आप चींटी को हटा दें, लेकिन यह ध्यान रखें कि मैं जान रहा हूं कि शरीर चींटी को हटा रहा है। चींटी काट रही है, यह भी मैं जान रहा हूं। शरीर चींटी को हटा रहा है, यह भी मैं जान रहा हूं। सिर्फ मैं जान रहा हूं।

पैर में दर्द शुरू हो गया बैठे-बैठे, तो मैं जान रहा हूं कि पैर में दर्द आ गया। फिर पैर को फैला लें। कोई जरूरत नहीं है कि उसको अकड़ाकर बैठे रहें और परेशान हों। पैर को फैला लें। लेकिन जानते रहें कि पैर फैल रहा है कष्ट के कारण, मैं जान रहा हूं।

भीतर एक घंटा एक ही काम करें कि किसी भी कृत्य से अपने को न जोड़ें, और किसी भी घटना से अपने को न जोड़ें। आप एक तीन महीने के भीतर ही गीता के इस सूत्र को अनुभव करने लगेंगे, जो कि आप तीस जन्मों तक भी गीता पढ़ते रहें, तो अनुभव नहीं होगा।

एक घंटा, मैं सिर्फ ज्ञाता हूं, इसमें डूबे रहें। कुछ भी हो, पत्नी जोर से बर्तन पटक दे... । क्योंकि पति जब ध्यान करे, तो पत्नी बर्तन पटकेगी। या पत्नी ध्यान करे, तो पति रेडिओ जोर से चला देगा, अखबार पढ़ने लगेगा; बच्चे उपद्रव मचाने लगेंगे।

जब बर्तन जोर से गिरे, तो आप यही जानना कि बर्तन गिर रहा है, आवाज हो रही है, मैं जान रहा हूं। अगर आपके भीतर धक्का भी लग जाए, शॉक भी लग जाए, तो भी आप यह जानना कि मेरे भीतर धक्का लगा, शॉक लगा। मेरा मन विक्षुब्ध हुआ, यह मैं जान रहा हूं। आप अपना संबंध जानने वाले से ही जोड़े रखना और किसी चीज से मत जुड़ने देना।

इससे बड़े ध्यान की कोई प्रक्रिया नहीं है। कोई जरूरत नहीं है प्रार्थना की, ध्यान की; फिर कोई जरूरत नहीं है। बस, एक घंटा इतना ख्याल कर लें। थोड़े ही दिन में यह कला आपको सध जाएगी। और बताना कठिन है कि कला कैसे सधती है। आप करें, सध जाए, तो ही आपको समझ में आएगा।

करीब-करीब ऐसा, जैसे किसी बच्चे को साइकिल चलाना आप सिखाएं। तो बच्चा यह पूछे कि साइकिल चलाना कैसे आता है, तो आप भला चलाते हों जिंदगीभर से, तो भी नहीं बता सकते कि कैसे आता है। और बच्चा आपसे पूछे कि कोई तरकीब सरल में बता दें, जिससे कि मैं पैर रखूं पैडिल पर, साइकिल पर बैठूं और चल पड़ूं। तो भी आप कहेंगे कि नहीं, वह तरकीब सरल में नहीं बताई जा सकती। दस-पांच दफा तू गिरेगा ही। उस गिरने में ही वह तरकीब निखरती है। क्योंकि वह एक बैलेंस है, जो बताया नहीं जा सकता।

आखिर साइकिल दो चाक पर चल रही है; एक संतुलन है। पूरे वक्त शरीर संतुलित हो रहा है। जरा इधर साइकिल झुकती है, तो शरीर दूसरी तरफ झुक जाता है। और संतुलन गति के साथ ही बन सकता है। अगर गति बहुत धीमी हो जाए, तो संतुलन बिगड़ जाएगा। अगर गति बहुत ज्यादा हो जाए, तो भी संतुलन बिगड़ जाएगा।

तो दो तरह के संतुलन हैं। एक तो गति की एक सीमा, और शरीर के साथ संतुलन, कि बाएं-दाएं कहीं ज्यादा न झुक जाए। आप भी नहीं बता सकते; साइकिल आप चलाते हैं, आप भी नहीं बता सकते कि आप कैसे करते हैं यह संतुलन। आपको पता भी नहीं चलता; यह कला आपको आ जाती है। दो-चार बार आप गिरते हैं, दो-चार बार गिरकर आपको बीच-बीच में ऐसा लगता है कि नहीं गिरे। थोड़ी दूर साइकिल चल भी गई। आपको भीतर संतुलन का अनुभव होना शुरू हो जाता है।

फिर एक दफा आदमी साइकिल चलाना सीख ले, तो फिर जिंदगी में भूलता नहीं। सब चीजें भूल जाती हैं, लेकिन दो चीजें, तैरना और साइकिल चलाना नहीं भूलती हैं। सब चीजें भूल जाती हैं। जो भी आपने सीखी हैं, भूल जाएंगी। फिर से सीखना पड़ेंगी। हालांकि दुबारा आप जल्दी सीख लेंगे, लेकिन सीखना पड़ेंगी। लेकिन साइकिल चलाना और तैरना, दो चीजें हैं, जो आपने पचास साल तक भी न की हों, आप एकदम से बैठ जाएं साइकिल पर--चलेगी!

उसका कारण? तैरना और साइकिल चलाना एक ही तरह की घटना है, संतुलन। और वह संतुलन बौद्धिक नहीं है। वह संतुलन बौद्धिक नहीं है, इसलिए आप बता भी नहीं सकते कि आप कैसे करते हैं। आप करके बता सकते हैं, कि मैं साइकिल चलाकर बताए देता हूं, लेकिन क्या करता हूं, यह मुझे भी पता नहीं है। कुछ करते आप जरूर हैं, लेकिन वह करना इतना सुसंगठित है, इतना इंटिग्रेटेड है, आपका पूरा शरीर, मन सब इतना समाविष्ट है उसमें। और वह आपने सिद्धांत की तरह नहीं सीखा है; वह आपने साइकिल पर गिरकर, चलाकर, उठकर सीखा है। वह आप सीख गए हैं। वह आपकी कला बन गई है।

कला और विज्ञान में यही फर्क है। विज्ञान शास्त्र से भी सीखा जा सकता है। कला सिर्फ अनुभव से सीखी जा सकती है। विज्ञान किताब में लिखकर दिया जा सकता है। कला लिखकर नहीं दी जा सकती है।

इसलिए धर्म में गुरु का इतना स्थान है। उसका स्थान इसीलिए है कि वह कुछ जानता है, जिसको वह भी आपको कह नहीं सकता, वह भी आपको करवा सकता है। आप भी गिरेंगे, उठेंगे, और एक दिन सीख जाएंगे। उसकी छाया में आप भयभीत न होंगे; गिरेंगे तो भी डरेंगे नहीं। उसके भरोसे में, उसकी आस्था में आप आशा बनाए रखेंगे, कि आज गिर रहा हूं, तो कल चलने लगूंगा। उसकी छत्र-छाया में आपको आसानी होगी कला सीख लेने की।

ध्यान एक कला है, गहनतम कला है और करने से ही आती है।

आप इस छोटे-से प्रयोग को करें, एक घड़ी; चाहे कुछ भी हो जाए। बहुत मुश्किल पड़ेगी, क्योंकि बार-बार मन तादात्म्य कर लेगा। पैर में चींटी काटेगी और आप तत्क्षण समझेंगे कि मुझे चींटी ने काट लिया। और आपको पता भी नहीं चलेगा, आपका हाथ चींटी को फेंक देगा और आप समझेंगे कि मैंने चींटी को हटा दिया।

मगर थोड़े दिन कोशिश करने पर--साइकिल जैसा चलाने पर आदमी गिरेगा, उठेगा--बहुत बार तादात्म्य हो जाएगा, उसका मतलब आप गिर गए। कभी-कभी तादात्म्य छूटेगा, उसका मतलब, दो कदम साइकिल चल गई। लेकिन जब पहली दफा दो कदम भी साइकिल चलती है, तो जो आनंद का अनुभव होता है! आप मुक्त हो गए; एक कला आ गई; एक नया अनुभव! आप हवा में तैरने लगे।

जब पहली दफा कोई दो हाथ मारता है, और तैर लेता है, और पानी की ताकत से मुक्त हो जाता है, और पानी अब डुबा नहीं सकता, आप मालिक हो गए, तो वह जो आनंद अनुभव होता है तैरने वाले को, वह जिन्होंने तैरा नहीं है, उन्हें कभी अनुभव नहीं हो सकता। पानी पर विजय मिल गई!

जब आप ध्यान में तैरना सीख जाते हैं, तो शरीर पर विजय मिल जाती है। और वह गहनतम कला है। मगर आप करें, तो ही यह हो सकता है।

और यह सूत्र बड़ा कीमती है। यह साधारण मेथड और विधियों जैसा नहीं है, कि कोई किसी को मंत्र दे देता है, कि मंत्र बैठकर घोंटते रहो। कोई कुछ और कर देता है। यह बहुत सीधा, सरल, साफ है, लेकिन ज्यादा समय लेगा।

मंत्र इत्यादि का जप करने से जल्दी कुछ घटनाएं घटनी शुरू हो जाती हैं। लेकिन उन घटनाओं का बहुत मूल्य नहीं है। मंत्र की यात्रा से जाने वाले व्यक्ति को भी आखिर में इस सूत्र का उपयोग करना पड़ता है और उसे भीतर यह अनुभव करना पड़ता है कि जो मंत्र बोल रहा है, वह मैं नहीं हूं। और वह जो मंत्र का जपन चल रहा है, वह मैं नहीं हूं। उसे अंत में यह भी अनुभव करना पड़ता है कि वह जो ओम का भीतर पाठ हो रहा है, वह भी मैं देख रहा हूं, सुन रहा हूं, मैं नहीं हूं।

इस सूत्र का उपयोग तो करना ही पड़ता है। किसी भी विधि का कोई उपयोग करे, अगर इस सूत्र का बिना उपयोग किए कोई किसी विधि का प्रयोग करता हो, तो वह आज नहीं कल, आत्म-मूर्च्छा में पड़ जाएगा। यह सूत्र बुनियादी है। और सभी विधियों के प्रारंभ में, मध्य में, या अंत में कहीं न कहीं यह सूत्र मौजूद रहेगा।

इससे उचित है कि विधियों की फिक्र ही छोड़ दें। सीधे इस सूत्र पर ही काम करें। एक घंटा निकाल लें, और चाहे कितनी ही अड़चन मालूम पड़े... ।

बड़ी अड़चन मालूम होगी। भीतर सब पसीना-पसीना हो जाएगा--शरीर नहीं, भीतर--बहुत पसीना-पसीना हो जाएंगे। बड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी। हर मिनट पर चूक हो जाएगी। हर बार एक चीज से बचेंगे और दूसरी चीज में तादात्म्य हो जाएगा। लेकिन जारी रखें। किसी चीज से जुड़ें मत। और एक ही ख्याल रखें कि मैं जानने वाला, मैं जानने वाला, मैं जानने वाला।

मैं ऐसा कह रहा हूं, इसका मतलब यह नहीं कि आप भीतर दोहराते रहें कि मैं जानने वाला, मैं जानने वाला। अगर आप यह दोहरा रहे हैं, तो आप भूल में पड़ गए, क्योंकि यह दोहराने वाला शरीर ही है। यह अगर आप दोहरा रहे हैं, तो इसको भी जानने वाला मैं हूं। जो जान रहा है कि यह बात दोहराई जा रही है, कि मैं जानने वाला, मैं जानने वाला। इसको भीतर बारीक काटते जाना है और एक ही जगह खड़े होने की कला सीखनी है कि मैं सिर्फ ज्ञान हूं। शब्द मैं नहीं हूं। ऐसा दोहराना नहीं है भीतर। ऐसा भीतर जानना है कि मैं ज्ञान हूं। और तोड़ना है सब तादात्म्य से। तो आपको पता चलेगा कि शरीर क्षेत्र है, शरीर के भीतर छिपे आप क्षेत्रज्ञ हैं।

और यह जो क्षेत्रज्ञ है, यह कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं। इस भेद को जो जान लेता है, वही ज्ञानी है।

इसलिए वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मेरे से सुन।

कृष्ण कहते हैं, अब मैं तुझसे कहूंगा संक्षेप में वह सब, कि यह शरीर कैसे हुआ है, यह क्षेत्र क्या है, इसका गुणधर्म क्या है। और इसके भीतर जो जानने वाला है, वह क्या है, उसका गुणधर्म क्या है।

लेकिन कृष्ण से इसे सुना जा सकता है, लेकिन कृष्ण से सुनकर इसे जाना नहीं जा सकता।

एक बात सदा के लिए ख्याल में रख लें, और उसे कभी न भूलें, कि ज्ञान कोई भी आपको दे नहीं सकता। यह जितनी गहराई से भीतर बैठ जाए, उतना अच्छा है। ज्ञान कोई भी आपको दे नहीं सकता। मार्ग बताया जा

सकता है, लेकिन चलना आपको ही पड़ेगा। और मंजिल मार्ग बताने से नहीं मिलती; मार्ग जान लिया इससे भी नहीं मिलती; मार्ग चलने से ही मिलती है।

और आपके लिए कोई दूसरा चल भी नहीं सकता। नहीं तो बुद्ध और कृष्ण की करुणा बहुत है। क्राइस्ट और मोहम्मद की करुणा बहुत है। अगर वे चल सकते होते आपके लिए, तो वे चल लिए होते। और अगर ज्ञान दिया जा सकता होता, तो एक कृष्ण काफी थे; सारा जगत ज्ञान से भर जाता, क्योंकि ज्ञान दिया जा सकता। लेकिन कितने ज्ञानी हो जाते हैं और अज्ञान जरा भी कटता नहीं दिखाई पड़ता!

मेरे पास लोग आते हैं। वे पूछते हैं, कृष्ण हुए, महावीर हुए, बुद्ध हुए, क्या फायदा? आदमी तो वैसा का वैसा है। तो क्या सार हुआ?

उनका कहना थोड़ी दूर तक ठीक है। क्योंकि वे सोचते हैं कि अगर एक आइंस्टीन हो जाता है, तो वह जो भी ज्ञान है, फिर सदा के लिए आदमी को मिल जाता है। एक आदमी ने खोज ली कि बिजली क्या है, तो फिर हर आदमी को खोजने की जरूरत नहीं है। आप घर में जब बटन दबाते हैं, तो आपको कोई बिजली का ज्ञाता होने की जरूरत नहीं है, कि आपको पक्का पता हो कि बिजली क्या है और कैसे काम करती है। आप बटन दबाते हैं, खतम हुई बात। अब दुनिया में किसी को जानने की जरूरत नहीं है। बाकी लोग उपयोग कर लेंगे।

विज्ञान का जो ज्ञान है, वह हस्तांतरणीय है। वह एक दूसरे को दे सकता है। वह उधार हो सकता है। क्योंकि बाहर की चीज है, दी जा सकती है।

आपके पिता जब मरेंगे, तो उनकी जो बाह्य संपत्ति है, उसके आप अधिकारी हो जाएंगे। उनका मकान आपको मिल जाएगा। उनकी किताबें आपको मिल जाएंगी। उनकी तिजोड़ी आपको मिल जाएगी। लेकिन उन्होंने जो जाना था अपने अंतरतम में, वह आपको नहीं मिलेगा। उसको देने का कोई उपाय नहीं है। बाप भी बेटे को नहीं दे सकता। उसे दिया ही नहीं जा सकता, जब तक कि आप ही उसे न पा लें।

ज्ञान पाया जा सकता है, दिया नहीं जा सकता। उपलब्ध है; आप पाना चाहें तो पा सकते हैं। लेकिन कोई भी आपको दे नहीं सकता।

तो कृष्ण कहेंगे जरूर, लेकिन अर्जुन को खुद ही पाना पड़ेगा। खतरा यह है कि अर्जुन सुनकर कहीं मान ले, कि ठीक, मैंने भी तो जान लिया।

शब्दों के साथ यह उपद्रव है। ज्ञान तो नहीं दिया जा सकता, लेकिन शब्द दिए जा सकते हैं। शब्द तो उधार मिल जाते हैं। और आप शब्दों को इकट्ठा कर ले सकते हैं। और शब्दों के कारण आप सोच सकते हैं, मैंने भी जान लिया।

आखिर अगर आप गीता को कंठस्थ कर लें, तो आपके पास भी वे ही शब्द आ गए, जो कृष्ण के पास थे। और कृष्ण ने जो कहा था, वह आप भी कह सकते हैं। लेकिन आपका कहा हुआ यांत्रिक होगा, कृष्ण का कहा हुआ अनुभवजन्य था।

अर्जुन के लिए खतरा यही है कि कृष्ण की बातें अच्छी लगें... । और लगेंगी अच्छी, प्रीतिकर लगेंगी, क्योंकि मन की कई वासनाओं को पूरा करने वाली हैं, कई अभीप्साओं को पूरा करने वाली हैं। यह कौन नहीं चाहता कि शरीर से छुटकारा हो!

एक युवती मेरे पास आई इटली से। शरीर उसका भारी है, बहुत मोटा, बहुत वजनी। कुरूप हो गया है। मांस ही मांस हो गया है शरीर पर। चरबी ही चरबी है। उसने मुझे एक बड़े मजे की बात कही। उसने यहां कोई तीन महीने ध्यान किया मेरे पास। और एक दिन आकर उसने मुझे कहा कि आज मुझे ध्यान में बड़ा आनंद

आया। मैंने पूछा, क्या हुआ तुझे? तो उसने कहा, आज मुझे ध्यान में अनुभव हुआ कि मैं शरीर नहीं हूं। और इस शरीर से मुझे बड़ी पीड़ा है; कोई मुझे प्रेम नहीं करता है। और एक युवक मेरे प्रेम में भी गिर गया था, तो उसने मुझसे कहा कि मैं तेरी सिर्फ आत्मा को प्रेम करता हूं, तेरे शरीर को नहीं।

अब किसी स्त्री से आप यह कहिए कि मैं तेरी सिर्फ आत्मा को प्रेम करता हूं, तेरे शरीर को नहीं! तो उस युवक ने कहा कि मैं तेरे शरीर को प्रेम नहीं कर सकता। बिल्कुल असंभव है। मैं तेरी आत्मा को प्रेम करता हूं। लेकिन इससे कोई तृप्ति तो हो नहीं सकती।

उसने कहा, आज मुझे ध्यान में बड़ा आनंद आया, क्योंकि मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं शरीर नहीं हूं। तो मेरी जो एक ग्लानि है मेरे शरीर के प्रति, उससे मुझे छुटकारा हुआ।

तो मैंने उससे पूछा कि यह तुझे ध्यान के कारण हुआ या तेरे मन में सदा से यह भाव है कि किसी तरह यह ख्याल में आ जाए कि मैं शरीर नहीं हूं, तो इस शरीर को दुबला करने की झंझट, इस शरीर को रास्ते पर लाने की झंझट मिट जाए?

तो उसने कहा कि यह भाव तो मेरे मन में पड़ा है। असल में मैं ध्यान करने आपके पास आई ही इसलिए हूं कि मुझे यह पता चल जाए कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं आत्मा हूं। तो शरीर के कारण जो मुझे पीड़ा मालूम होती है, और शरीर के कारण जो प्रत्येक व्यक्ति को मेरे प्रति विकर्षण होता है, उससे जो मुझे दंश और चोट लगती है, उस चोट से मेरा छुटकारा हो जाए।

तो मैंने उससे कहा कि पहले तो तू यह फिक्र छोड़ और यह भाव मन से हटा, नहीं तो तू कल्पना ही कर लेगी ध्यान में कि मैं शरीर नहीं हूं। कल्पना आसान है। सिद्धांत मन में बैठ जाएं, हमारी वासनाओं की पूर्ति करते हों, हम कल्पना कर लेते हैं।

शरीर से कौन दुखी नहीं है? ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो शरीर से दुखी न हो। कोई न कोई दुख शरीर में है ही। किसी के पास कुरूप शरीर है। किसी के पास बहुत मोटा शरीर है। किसी के पास बहुत दुबला शरीर है। किसी के पास कोई रुग्ण शरीर है। किसी का कोई अंग ठीक नहीं है। किसी की आंखें जा चुकी हैं। किसी के कान ठीक नहीं हैं। किसी को कुछ है, किसी को कुछ है। शरीर तो हजार तरह की बीमारियों का घर है।

तो शरीर से तृप्त तो कोई भी नहीं है। इसलिए कोई भी मन में वासना रख सकता है कि अच्छा है, पता चल जाए कि मैं शरीर नहीं हूं। मगर यह वासना खतरनाक हो सकती है। सिद्धांत की आड़ में यह वासना छिप जाए, तो आप कल्पना भी कर ले सकते हैं कि मैं शरीर नहीं हूं। लेकिन उससे कोई सार न होगा, कोई हल न होगा। आप कहीं पहुंचेंगे नहीं। कोई मुक्ति हाथ नहीं लगेगी।

अनुभव--वासनारहित, कल्पनारहित और स्वयं का--उधार नहीं।

ज्ञानीजन क्या कहते हैं, यह सुनने योग्य है। ज्ञानीजन क्या कहते हैं, यह समझने योग्य है। ज्ञानीजन क्या कहते हैं, यह करने योग्य है। लेकिन ज्ञानीजन क्या कहते हैं, यह मानने योग्य बिल्कुल नहीं है। मानना तो तभी, जब करने से अनुभव में आ जाए।

ज्ञानीजन क्या कहते हैं, उसे सुनना, हृदयपूर्वक सुनना। श्रद्धा से भीतर ले जाना। पूरा उसे आत्मसात कर लेना। उस खोज में भी लग जाना। वे क्या करने को कहते हैं, उसे साहसपूर्वक कर भी लेना। लेकिन मानना तब तक मत, जब तक अपना अनुभव न हो जाए। तब तक समझना कि मैं अज्ञानी हूं, और सिद्धांतों से अपने अज्ञान को मत ढांक लेना। और तब तक समझना कि मुझे कुछ पता नहीं है। ऐसा कृष्ण कहते हैं। कृष्ण से प्रेम है,

इसलिए कृष्ण जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। लेकिन ठीक ही है, ऐसा तब तक मैं कैसे कहूं, तब तक मैं न जान लूं।

इसका यह अर्थ नहीं है कि उन पर अश्रद्धा करना। अश्रद्धा की कोई भी जरूरत नहीं है। पूरी श्रद्धा करना। लेकिन मान मत लेना। मेरी बात का फर्क आपको ख्याल में आ रहा है?

मानने का एक खतरा है कि आदमी चलना ही बंद कर देता है। वह कहता है, ठीक है। अक्सर मुझे ऐसा लगता है कि जो लोग जल्दी मान लेते हैं, वे वे ही लोग हैं, जो चलना नहीं चाहते; जिनकी सस्ती श्रद्धा हो जाती है। वे असल में यह कह रहे हैं कि ठीक है। कोई हमें अड़चन नहीं है। ठीक ही है। कहीं चलने की कोई जरूरत भी नहीं है। हम मानते ही हैं कि बिल्कुल ठीक है।

आदमी इनकार करके भी बच सकता है, हां करके भी बच सकता है।

मेरे पास लोग आते हैं, तो मैं अनुभव करता हूं। उनको मैं कहता हूं कि ध्यान करो। वे कहते हैं, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। लेकिन जब वे कह रहे हैं कि बिल्कुल ठीक कहते हैं, तो वे यह कहते हैं कि अब कोई करने की जरूरत नहीं है। हमें तो मालूम ही है। आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं।

दूसरा आदमी आता है, वह कहता है कि नहीं, हमें आपकी बात बिल्कुल नहीं जंचती। वह भी यह कह रहा है कि बात जंचती ही नहीं, तो करें कैसे?

बड़े मजे की बात है। आदमी किस तरह की तरकीबें निकालता है! एक आदमी कहता है कि बिल्कुल नहीं जंचती। मगर वह जितनी तेजी से कहता है, उससे लगता है कि वह डरा हुआ है कि कहीं जंच न जाए, नहीं तो करना पड़े। भयभीत है। वह एक रुकावट खड़ी कर रहा है कि हमें जंचती ही नहीं, इसलिए करने का कोई सवाल नहीं। एक दूसरा आदमी है, वह कहता है, हमें बिल्कुल जंचती है। आपकी बात बिल्कुल सौ टका ठीक है। लेकिन यह दूसरा आदमी भी यह कह रहा है कि सौ टका ठीक है। करने की कोई जरूरत ही नहीं, हमें मालूम ही है कि ठीक है। जो बात मालूम ही है, उसको और मालूम करके क्या करना है!

आदमी आस्तिक होकर भी धोखा दे सकता है खुद को, नास्तिक होकर भी धोखा दे सकता है। दोनों धोखे से बचने का एक ही उपाय है, प्रयोग करना, अनुभव करना।

और जो भी इस रास्ते पर चलते हैं, वे खाली हाथ नहीं लौटते हैं। और जो भी इस रास्ते पर जाते हैं, वे जरूर मंजिल तक पहुंच जाते हैं। क्योंकि यह रास्ता खुद के ही भीतर ले जाने वाला है। और यह मंजिल कहीं दूर नहीं, खुद के भीतर ही छिपी है।

पांच मिनट बैठेंगे; कोई बीच से उठे न। पांच मिनट कीर्तन में लीन होकर सुनें, और फिर जाएं। कोई भी व्यक्ति बीच में उठे न। और जो मित्र बैठे हैं, वे भी बैठकर कीर्तन में साथ दें।

दूसरा प्रवचन

क्षेत्रज्ञ अर्थात निर्विषय, निर्विकार चैतन्य

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।। 4।।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।

इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः।। 5।।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।

एतत क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।। 6।।

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है और नाना प्रकार के छंदों से विभागपूर्वक कहा गया है तथा अच्छी प्रकार निश्चय किए हुए युक्ति-युक्त ब्रह्मसूत्रों के पदों द्वारा भी वैसे ही कहा गया है।

और हे अर्जुन, वही मैं तेरे लिए कहता हूं कि पांच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया भी तथा दस इंद्रियां, एक मन और पांच इंद्रियों के विषय अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और स्थूल देह का पिंड एवं चेतनता और धृति, इस प्रकार यह क्षेत्र विकारों के सहित संक्षेप से कहा गया है।

सूत्र के पहले थोड़े-से प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, शरीर या आत्मा, प्रकृति और पुरुष, ऐसे दो भेदों की चर्चा की गई; फिर भी कृष्ण ने कहा है कि सभी कुछ वे ही हैं। तो समझाएं कि सभी कुछ अगर एक ही है, तो यह भेद, विकार और बिलगाव क्यों है?

यह भेद दिखाई पड़ता है, है नहीं। यह भेद प्रतीत होता है, है नहीं। जो भी प्रतीत होता है, जरूरी नहीं है कि हो। और जो भी है, जरूरी नहीं है कि प्रतीत हो। बहुत कुछ दिखाई पड़ता है। उस दिखाई पड़ने में सत्य कम होता है, देखने वाले की दृष्टि ज्यादा होती है।

जो आप देखते हैं, उस देखने में आप समाविष्ट हो जाते हैं। और जिस भांति आप देखते हैं, जिस ढंग से आप देखते हैं, वह आपके दर्शन का हिस्सा बन जाता है। एक दुखी आदमी अपने चारों तरफ दुख देखता है। अगर आकाश में चांद भी निकला हो, तो वह भी सुंदर प्रतीत नहीं होता। एक आनंदित व्यक्ति सब ओर आनंद देखता है और उसे कांटों में भी फूल जैसा सौंदर्य दिखाई पड़ सकता है। देखने वाले पर निर्भर करता है कि क्या दिखाई पड़ेगा।

जो हम देखते हैं, वह हमारी व्याख्या है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें, क्योंकि धर्म की सारी खोज इस बुनियादी बात को ठीक से समझे बिना नहीं हो सकती। आमतौर से जो हम देखते हैं, हम सोचते हैं, वैसा तथ्य है

जो हम देख रहे हैं। लेकिन समझेंगे, खोजेंगे, विचारेंगे, तो पाएंगे, तथ्य कोई भी नहीं हम देख पाते, सभी हमारी व्याख्या है। जो हम देखते हैं, वह हमारा इंटरप्रिटेशन है।

दो-चार तरफ से सोचें।

कोई चेहरा आपको सुंदर मालूम पड़ता है। और आपके मित्र को, हो सकता है, वही चेहरा कुरूप मालूम पड़े। तो सौंदर्य चेहरे में है या आपके देखने के ढंग में? सौंदर्य आपकी व्याख्या है या चेहरे का तथ्य? अगर सौंदर्य चेहरे का तथ्य है, तो उसी चेहरे में सभी को सौंदर्य दिखाई पड़ना चाहिए। पर किसी को सौंदर्य दिखाई पड़ता है, किसी को नहीं दिखाई पड़ता है। और किसी को कुरूपता भी दिखाई पड़ सकती है उसी चेहरे में।

तो चेहरे को जब आप कुछ भी कहते हैं, उसमें आपकी व्याख्या सम्मिलित हो जाती है। तथ्य खो जाता है और आप आरोपित कर लेते हैं कुछ।

कोई चीज आपको स्वादिष्ट मालूम पड़ सकती है, और किसी दूसरे को बेस्वाद मालूम पड़ सकती है। तो स्वाद किसी वस्तु में होता है या आपकी व्याख्या में? स्वाद वस्तु में होता है या आप में होता है? ऐसा हमें पूछना चाहिए। अगर वस्तु में स्वाद होता हो, तो फिर सभी को स्वादिष्ट मालूम पड़नी चाहिए।

स्वाद आप में होता है, वस्तु को स्वाद आप देते हैं। वह आपका दान है। और जो आप अनुभव करते हैं, वह आपका ही ख्याल है।

तो ऐसा भी हो सकता है कि जो व्यक्ति आज सुंदर मालूम पड़ता है, कल असुंदर मालूम पड़ने लगे। और जो व्यक्ति आज मित्र जैसा मालूम पड़ता है, कल शत्रु जैसा मालूम पड़ने लगे। और जो बात आज बड़ी सुखद लगती थी, कल दुखद हो जाए। क्योंकि कल तक आप बदल जाएंगे, आपकी व्याख्या बदल जाएगी।

जो हम अनुभव करते हैं, वह सत्य नहीं है, वह हमारी व्याख्या है। और सत्य का अनुभव तो तभी होता है, जब हम सारी व्याख्या छोड़ देते हैं; उसके पहले अनुभव नहीं होता। इसलिए सत्य के करीब शून्य-चित्त हुए बिना कोई भी नहीं पहुंच सकता है।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का, आत्मा और शरीर का, संसार का और मोक्ष का, पदार्थ का और परमात्मा का भेद भी हमारी ही व्याख्या है। और अंतिम क्षण में जब सभी व्याख्याएं गिर जाती हैं, तो कोई भेद नहीं रह जाता। लेकिन सारी व्याख्याएं गिर जाएं, तब अभेद का अनुभव होता है।

यह जो अभेद की प्रतीति है और भेद का हमारा अनुभव है, इसे इस भांति खोज करेंगे तो आसानी होगी, जहां-जहां आपको भेद दिखाई पड़ता है, वस्तुतः वहां भेद है?

अंधेरे में और प्रकाश में हमें भेद दिखाई पड़ता है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। अंधेरे को अगर विज्ञान की भाषा में कहें, तो उसका अर्थ होगा, थोड़ा कम प्रकाश। इससे उलटा भी कह सकते हैं। अगर अंधेरा प्रकाश का एक रूप है, तो हम यह भी कह सकते हैं कि प्रकाश भी अंधेरे का एक रूप है। और प्रकाश की व्याख्या में हम कह सकते हैं, थोड़ा कम अंधेरा।

आइंस्टीन ने रिलेटिविटी को जन्म दिया, सापेक्षता को जन्म दिया। और आइंस्टीन ने कहा कि हमारा यह कहना कि यह अंधेरा है और यह प्रकाश है, नासमझी है। क्योंकि प्रकाश और अंधेरा सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। अंधेरा थोड़ा कम प्रकाश है, प्रकाश थोड़ा कम अंधेरा है। हमसे बेहतर आंखें हों, तो अंधेरे में भी देख लेंगी और वहां भी प्रकाश पता चलेगा। और हमसे कमजोर आंखें हों, तो प्रकाश में भी नहीं देख पातीं, वहां भी अंधेरा दिखाई पड़ता है।

आइंस्टीन कहता है, अगर आंख की ताकत बढ़ती जाए, तो अंधेरा प्रकाश होता चला जाएगा। और आंख की ताकत कम होती जाए, तो प्रकाश अंधेरा होता चला जाएगा। फिर दोनों में कोई फासला नहीं है; दोनों में कोई भेद नहीं है।

और इसे ऐसा समझें, अगर आंख हो ही न, तो प्रकाश और अंधेरे में क्या फर्क होगा? एक अंधे आदमी को प्रकाश और अंधेरे में क्या फर्क है? शायद आप सोचते होंगे, अंधे को तो सदा अंधेरे में रहना पड़ता होगा, तो आप गलती में हैं। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधे को अंधेरा दिखाई नहीं पड़ सकता। अंधा भी अंधेरा नहीं देख सकता; क्योंकि देखने के लिए तो आंख चाहिए। कुछ भी देखना हो, अंधेरा देखना हो तो भी।

इसलिए आप सोचते हों कि अंधा जो है, अंधेरे में रहता है, तो आप बिल्कुल गलती में हैं। अंधे को अंधेरे का कोई पता ही नहीं है। ध्यान रहे, जो अंधेरे को देख सकता है, वह तो फिर प्रकाश को भी देख लेगा, क्योंकि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है।

अंधे को न अंधेरे का पता है और न प्रकाश का। आप आंख बंद करते हैं, तो आपको अंधेरा दिखाई पड़ता है, इससे आप यह मत सोचना कि अंधे को अंधेरा दिखाई पड़ता है। बंद आंख भी आंख है, इसलिए अंधेरा दिखाई पड़ता है। अंधे के लिए अंधेरे और प्रकाश में क्या फर्क है? कोई भी फर्क नहीं है। अंधे के लिए न तो अंधेरा है और न प्रकाश है।

इसे हम दूसरी तरह से भी सोचें। अगर परमात्मा के पास आंख हो, तो उसका अर्थ होगा, जैसे अंधा बिल्कुल नहीं देख सकता है, हम थोड़ा देख सकते हैं, परमात्मा पूरा देख सकता हो।

अगर परमात्मा के पास एब्सोल्यूट आइज हों, परिपूर्ण आंखें हों, तो उसे भी अंधेरे और प्रकाश में कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ेगा। क्योंकि अंधेरे में भी वह उतना ही देखेगा, जितना प्रकाश में देखेगा। उसकी आंख सापेक्ष नहीं है। इसलिए अगर परमात्मा देखता होगा, तो उसको भी अंधेरे और प्रकाश का कोई पता नहीं हो सकता। उसकी हालत अंधे जैसी होगी, दूसरे छोर पर।

अगर पूरी आंख हो, तो भी फर्क पता नहीं चलेगा। फर्क पता तो तभी चल सकता है, जब थोड़ा हम देखते हों और थोड़ा हम न देखते हों।

इसे ऐसा समझें कि आप कहते हैं कि गरम है पानी, या आप कहते हैं कि बर्फ बहुत ठंडी है। तो ठंडक और गरमी, लगता है बड़ी विपरीत चीजें हैं। और हमारे अनुभव में हैं। जब गरमी तप रही हो चारों ओर, तब ठंडे पानी का एक गिलास तृप्ति देता है। कितना ही कृष्ण कहें कि सब अद्वैत है, हम यह मानने को राजी न होंगे कि गरम पानी का गिलास भी इतनी ही तृप्ति देगा। और कितना ही आइंस्टीन कहे कि गरमी भी ठंडक का एक रूप है, और ठंडक भी गरमी का एक रूप है, फिर भी हम जानते हैं, ठंडक ठंडक है, गरमी गरमी है। और आइंस्टीन भी जब गरमी पड़ेगी, तो छाया में सरकेगा। और जब ठंड लगेगी, तो कमरे में हीटर लगाएगा। हालांकि वह भी कहता है कि दोनों एक ही चीज के रूप हैं।

परम सत्य तो यही है कि दोनों एक चीज के रूप हैं। लेकिन परम सत्य को जानने के लिए परम प्रज्ञा चाहिए। हमारे पास जो बुद्धि है, वह तो सापेक्ष है। उस सापेक्ष बुद्धि में गरमी गरमी है ठंड ठंड है। और दोनों में बड़ा भेद है; विपरीतता है। लेकिन हमें विपरीतता प्रतीत होती है, वह हमारी सापेक्ष बुद्धि के कारण।

एक छोटा-सा प्रयोग करें। पानी रख लें एक बालटी में। एक हाथ को बर्फ पर रखकर ठंडा कर लें। और एक हाथ को लालटेन के पास रखकर गरम कर लें और फिर दोनों हाथों को उस पानी की बालटी में डुबा दें। आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। क्योंकि एक हाथ कहेगा पानी ठंडा है, और एक हाथ कहेगा पानी गरम है।

और पानी तो बालटी में एक ही जैसा है। लेकिन एक हाथ खबर देगा गरम की, एक हाथ खबर देगा ठंडक की, क्योंकि दोनों हाथों का सापेक्ष अनुभव है। जो हाथ गरम है, उसे पानी ठंडा मालूम पड़ेगा। जो हाथ ठंडा है, उसे पानी गरम मालूम पड़ेगा।

तो इस बालटी के भीतर जो पानी है, उसको आप क्या कहिएगा ठंडा या गरम? अगर बाएं हाथ की मानिए, तो वह कहता है ठंडा; दाएं हाथ की मानिए, तो वह कहता है गरम। और दोनों हाथ आपके हैं। आप क्या करिएगा? तब आपको पता चलेगा कि गरमी और ठंडक सापेक्ष हैं। गरमी और ठंडक दो तथ्य नहीं हैं, हमारी व्याख्याएं हैं। हम अपनी तुलना में किसी चीज को गरम कहते हैं, और अपनी तुलना में किसी चीज को ठंडी कहते हैं।

इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक हमारे पास तुलना करने वाली बुद्धि है और जब तक हमारे पास तौलने का तराजू विचार है, तब तक हमें भेद दिखाई पड़ते रहेंगे।

संसार में भेद हैं, क्योंकि संसार है हमारी व्याख्याओं का नाम। और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, क्योंकि परमात्मा का अर्थ है, उस जगह प्रवेश, जहां हम अपनी व्याख्याएं छोड़कर ही पहुंचते हैं।

इसे हम ऐसा समझें, एक नदी बहती है, तो उसके पास किनारे होते हैं। बाएं तरफ किनारा होता है, दाएं तरफ किनारा होता है। और फिर नदी सागर में गिर जाती है। सागर में गिरते ही किनारे खो जाते हैं। जो नदी सागर में गिर गई है, अगर वह दूसरी नदियों से मिल सके, तो उन नदियों से कहेगी कि किनारे हमारे अस्तित्व का हिस्सा नहीं हैं। किनारे संयोगवश हैं। किनारा होना जरूरी नहीं है नदी होने के लिए, क्योंकि सागर में पहुंचकर कोई किनारा नहीं रह जाता; नदी रह जाती है।

लेकिन किनारे से बंधी नदियां कहेंगी कि यह बात समझ में नहीं आती। बिना किनारे के नदी हो कैसे सकती है? किनारे तो हमारे अस्तित्व के हिस्से हैं।

कृष्ण जब हमसे बोलते हैं, तो वही तकलीफ है। कृष्ण उस जगह से बोलते हैं, जहां नदी सागर में गिर गई। हम उस जगह से सुनते हैं, जहां नदी किनारों से बंधी है।

तो कृष्ण जब अभेद की बात करते हैं, तो हमारी पकड़ के बाहर हो जाती है। भेद की जब बात करते हैं, तो हमारी समझ में आती है। क्योंकि भेद हम भी कर सकते हैं। भेद तो हम करते ही हैं। भेद करना तो हमें पता है, वह कला हमें ज्ञात है। लेकिन अभेद की कला हमें ज्ञात नहीं है। अभेद की कला कठिन भी है, क्योंकि अभेद की कला का अर्थ हुआ कि हमें मिटना पड़ेगा। वह जो भेद करने वाला हमारे भीतर है, उसके समाप्त हुए बिना अभेद का कोई पता नहीं चलेगा।

चारों तरफ हम देखते हैं; सब चीजों की परिभाषा मालूम पड़ती है, सभी चीजों की सीमा मालूम पड़ती है। लेकिन अस्तित्व असीम है, और कहीं भी समाप्त नहीं होता। कहीं कोई सीमा आती नहीं है अस्तित्व की।

आपको लगता है, एक वृक्ष खड़ा है, तो दिखाई पड़ता है, वृक्ष की सीमा है। आप नाप सकते हैं, कितना ऊंचा है, कितना चौड़ा है। पत्ती भी नाप सकते हैं। वजन भी नाप सकते हैं। लेकिन क्या सच में वृक्ष की कोई सीमा है? क्या वृक्ष पृथ्वी के बिना हो सकता है? अगर पृथ्वी के बिना वृक्ष नहीं हो सकता, तो पृथ्वी वृक्ष का हिस्सा है।

जिसके बिना हम नहीं हो सकते, उससे हमें अलग करना उचित नहीं है। पृथ्वी के बिना वृक्ष नहीं हो सकता। उसकी जड़ें पृथ्वी की छाती में फैली हुई हैं; उन्हीं से वह रस पाता है, उन्हीं से जीवन पाता है; उसके बिना नहीं हो सकता। तो पृथ्वी वृक्ष का हिस्सा है। पृथ्वी बहुत बड़ी है। वृक्ष नहीं था, तब भी थी। वृक्ष नहीं हो

जाएगा, तब भी होगी। और अभी भी जब वृक्ष है, तो वृक्ष के भीतर पृथ्वी दौड़ रही है, वृक्ष के भीतर पृथ्वी बह रही है।

लेकिन क्या पृथ्वी ही वृक्ष का हिस्सा है? हवा के बिना वृक्ष न हो सकेगा। वृक्ष भी श्वास ले रहा है। वह भी आंदोलित है, उसका प्राण भी वायु से चल रहा है। वायु के बिना अगर वृक्ष न हो सके, तो फिर वायु से वृक्ष को अलग करना उचित नहीं है; नासमझी है। तो वायुमंडल वृक्ष का हिस्सा है।

लेकिन क्या सूरज के उगे बिना वृक्ष हो सकेगा? अगर कल सुबह सूरज न उगेगा, तो वृक्ष मर जाएगा। दस करोड़ मील दूर सूरज है, लेकिन उसकी किरणों से वृक्ष जीवित है। तो वृक्ष का जीवन कहां समाप्त होता है?

यह तो मैंने स्पेस में, आकाश में उसका फैलाव बताया। समय में भी वृक्ष इसी तरह फैला हुआ है। यह वृक्ष कल नहीं था। एक बीज था इस वृक्ष की जगह, किसी और वृक्ष पर लगा था। उस वृक्ष के बिना यह वृक्ष न हो सकेगा। वह बीज अगर पैदा न होता, तो यह वृक्ष कभी भी न होता। वह बीज आज भी इस वृक्ष में प्रकट हो रहा है।

और अगर हम इसके पीछे की तरफ यात्रा करें, तो न मालूम कितने वृक्ष इसके पीछे हुए, इसलिए यह वृक्ष हो सका है। अनंत तक पीछे फैला हुआ है; अनंत तक आगे फैला हुआ है। अनंत तक चारों तरफ फैला हुआ है। समय और क्षेत्र दोनों में वृक्ष का फैलाव है।

अगर एक वृक्ष को हम ठीक से, ईमानदारी से सीमा तय करने चलें, तो पूरे विश्व की सीमा में हमें वृक्ष मिलेगा। एक छोटे-से व्यक्ति को अगर हम खोजने चलें, तो हमें उसके भीतर पूरा विराट ब्रह्मांड मिल जाएगा।

तो कहां आप समाप्त होते हैं? कहां शुरू होते हैं? न कोई शुरुआत है और न कोई अंत है। इसीलिए हम कहते हैं कि परमात्मा अनादि और अनंत है। आप भी अनादि और अनंत हैं। वृक्ष भी अनादि और अनंत है। पत्थर का एक टुकड़ा भी अनादि और अनंत है। अस्तित्व में जो भी है, वह अनादि और अनंत है।

लेकिन हम सीमाएं बनाना जानते हैं। और सीमाएं बनाना जरूरी भी है; हमारे काम के लिए उपयोगी भी है। अगर मैं आपका पता न पूछूं, आपका घर खोजता हुआ आऊं और कहूं कि वे कहां रहते हैं, जो अनादि और अनंत हैं! जिनका न कोई अंत है, न कोई प्रारंभ है! जो न कभी जन्मे और न कभी मरेंगे; जो निर्गुण, निराकार हैं--वे कहां रहते हैं? तो मुझे लोग पागल समझेंगे। वे कहेंगे, आप नाम बोलिए। आप सीमा बताइए। आप परिभाषा करिए। आप ठीक-ठीक पता बताइए। क्या नाम है? क्या धाम है? यह अनंत और निराकार, इससे कुछ पता न चलेगा।

आपका मुझे पता लगाना हो, तो एक सीमा चाहिए। एक छोटे-से कार्ड पर आपका नाम, आपका टेलीफोन नंबर, आपका पता-ठिकाना, उससे मैं आपको खोज पाऊंगा। और वह सब झूठ है, जिससे मैं आपको खोजूंगा। और जो सत्य है, अगर उससे खोजने चलूं, तो आपको मैं कभी न खोज पाऊंगा।

जिंदगी सापेक्ष है, वहां सभी चीजें कामचलाऊ हैं, उपयोगी हैं। लेकिन जो उपयोगी है, उसे सत्य मत मान लेना। जो उपयोगी है, अक्सर ही झूठ होता है।

असल में झूठ की बड़ी उपयोगिता है। सत्य बड़ा खतरनाक है। और जो सत्य में उतरने जाता है, उसे उपयोगिता छोड़नी पड़ती है।

संन्यास का यही अर्थ है, वह व्यक्ति जिसने उपयोगिता के जगत की फिक्र छोड़ दी। और जो कहता है, चाहे नुकसान उठा लूं, चाहे सब मिट जाए, लेकिन मैं वही जानना चाहूंगा जो है। और इस खोज में अपने को भी खोना पड़ता है।

निश्चित ही, कृष्ण की बात समझ में नहीं आती; कि अगर सभी एक है, तो फिर भेद कैसा?

सभी तो एक है, भेद इसलिए है कि हमारे पास जो बुद्धि है छोटी-सी, वह भेद बिना किए काम नहीं कर सकती।

इसे ऐसा समझें कि एक आदमी अपने मकान के भीतर बंद है। वह जब भी आकाश को देखता है, तो अपनी खिड़की से देखता है। तो खिड़की का जो चौखटा है, वह आकाश पर आरोपित हो जाता है। उसने कभी बाहर आकर नहीं देखा। उसने सदा अपने मकान के भीतर से देखा है। तो खिड़की का चौखटा आकाश पर कस जाता है। और जिस आदमी ने खुला आकाश नहीं देखा, वह यही समझेगा कि यह जो खिड़की का आकार है, यही आकाश का आकार है। खिड़की का आकार आकाश का आकार मालूम पड़ेगा।

आकाश निराकार है। लेकिन कहां से आप देख रहे हैं? आपकी खिड़की कितनी बड़ी है? हो सकता है, आप एक दीवाल के छेद से देख रहे हों, तो आकाश उतना ही बड़ा दिखाई पड़ेगा जितना दीवाल का छेद है।

जब कोई व्यक्ति अपने मकान के बाहर आकर आकाश को देखता है, तब उसे पता चलता है कि यह तो निराकार है। जो आकार दिखाई पड़े थे, वे मेरे देखने की जगह से पैदा हुए थे।

इंद्रियां खिड़कियां हैं। और हम अस्तित्व को इंद्रियों के द्वारा देखते हैं, इसलिए अस्तित्व बंटा हुआ दिखाई पड़ता है, टूटा हुआ दिखाई पड़ता है।

आंख निराकार को नहीं देख सकती, क्योंकि आंख जिस चीज को भी देखेगी उसी पर आंख का आकार आरोपित हो जाएगा। कान निराकार को नहीं सुन सकते, निःशब्द को नहीं सुन सकते। कान तो जिसको भी सुनेंगे, उसको शब्द बना लेंगे और सीमा बांध देंगे। हाथ निराकार को नहीं छू सकते, क्योंकि हाथ आकार वाले हैं; जिसको भी छुएंगे, वहीं आकार का अनुभव होगा।

आप उपकरण से देखते हैं, इसलिए सभी चीजें विभिन्न हो जाती हैं। जब कोई व्यक्ति इंद्रियों को छोड़कर, द्वार-दरवाजे खिड़कियों से पार आकर खुले आकाश को देखता है, तब उसे पता चलता है कि जो भी मैंने अब तक देखा था, वे मेरे ख्याल थे। अब जो मैं देख रहा हूं, वह सत्य है।

मकान के बाहर आकर देखने का नाम ही ध्यान है। इंद्रियों से हटकर, अलग होकर देखने का नाम ही ध्यान है। आंख से मत देखें। आंख बंद करके देखने का नाम ध्यान है। कान से मत सुनें। कान बंद करके सुनने का नाम ध्यान है। शरीर से मत स्पर्श करें। शरीर के स्पर्श से ऊपर उठकर स्पर्श करने का नाम ध्यान है।

और जब सारी इंद्रियों को छोड़कर कोई जरा-सा भी अनुभव कर लेता है, तो उसे कृष्ण की बात की सचाई का पता चल जाएगा। तब उसे कहीं भी सीमा न दिखाई पड़ेगी। तब उसे जन्म और मृत्यु एक मालूम होंगे; तब उसे सृष्टि और स्रष्टा एक मालूम होंगे। एक कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक में यह बात छिपी ही हुई है कि शायद पहले दो थे, अब एक मालूम होते हैं।

इसलिए हमने अपने मुल्क में एक शब्द का प्रयोग नहीं किया। हमने जो शब्द प्रयोग किया है, वह है अद्वैत। ज्ञानी को ऐसा पता नहीं चलेगा कि सब एक है। ज्ञानी को ऐसा पता चलेगा कि दो नहीं हैं। इन दोनों में फर्क है। शब्द तो एक ही हैं।

अद्वैत का मतलब ही होता है एक, एक का मतलब भी होता है अद्वैत। लेकिन सोचकर हमने कहा अद्वैत, एक नहीं। क्योंकि एक से विधायक रूप से मालूम पड़ता है, एक। एक की सीमा बन जाती है। और जहां एक हो सकता है, वहां दो भी हो सकते हैं। क्योंकि एक संख्या है। अकेली संख्या का कोई मूल्य नहीं होता। दो होना

चाहिए, तीन होना चाहिए, चार होना चाहिए, तो एक का कोई मूल्य है। और अगर कोई दो नहीं, कोई तीन नहीं, कोई चार नहीं, तो एक निर्मूल्य हो गया। गणित का अंक व्यर्थ हो गया। उसमें फिर कोई अर्थ नहीं है।

इसलिए भारतीय रहस्यवादियों ने एक शब्द का उपयोग न करके कहा, अद्वैत--नान डुअल। इतना ही कहा कि हम इतना कह सकते हैं कि वहां दो नहीं हैं। निषेध विराट होता है, विधेय में सीमा आ जाती है। इनकार करने में कोई सीमा नहीं आती। दो नहीं हैं। कुछ कहा नहीं, सिर्फ इतना ही कहा कि भेद नहीं है वहां। दो किए जा सकें, इतना भी भेद नहीं है।

यह जो निषेध है, दो नहीं, यह कोई गीता समझने से, ब्रह्मसूत्र समझने से ख्याल में नहीं आ जाएगा। यह दो नहीं तभी ख्याल में आएगा, जब इंद्रियों से हटकर देखने की थोड़ी-सी क्षमता आ जाएगी। यह सारा अध्याय इंद्रियों से हटने की कला पर ही निर्भर है। सारी कोशिश यही है कि आप शरीर से हटकर देखने में सफल हो जाएं। इसलिए प्राथमिक रूप से फासला करना पड़ रहा है। यह बड़ी उलझी हुई जटिल बात है।

कृष्ण पहले सिखा रहे हैं कि तुम जानो कि तुम शरीर नहीं हो। भेद सिखा रहे हैं। पैराडाक्सिकल है, विरोधाभासी है। कृष्ण कह रहे हैं, तुम जानो कि तुम क्षेत्र नहीं हो, शरीर नहीं हो, इंद्रियां नहीं हो। यह तो भेद सिखाना हो गया। लेकिन कृष्ण यह भेद इसीलिए सिखा रहे हैं, क्योंकि इसी भेद के द्वारा तुम्हें अभेद का दर्शन हो सकेगा। शरीर से तुम हटोगे, तो तुम्हें दिखाई पड़ेगा, शरीर भी खो गया, आत्मा भी खो गई; और वही रह गया, जो दोनों के बीच है, जो दोनों में छिपा है।

इसे ऐसा समझें कि आप अपने मकान को जोर से पकड़े हुए हैं। और मैं आपसे कहता हूं कि यह खिड़की छोड़ो, तो तुम्हें खुला आकाश दिखाई पड़ सके। इस खिड़की से थोड़ा दूर हटो। तुम खिड़की नहीं हो। तुम मकान नहीं हो। तुम चाहो तो मकान के बाहर आ सकते हो। तो मैं भेद सिखा रहा हूं। मैं कह रहा हूं, तुम मकान नहीं हो। बाहर हटो। लेकिन बाहर आकर तुम्हें यह भी पता चल जाएगा कि मकान के भीतर जो था, वह भी यही आकाश था, जो मकान के बाहर है।

लेकिन मकान के बाहर आकर दोनों बातें पता चलेंगी, कि जो आकाश मैं भीतर से देखता था, वह सीमित था। सीमा मेरी दी हुई थी। आकार मैंने दिया था; निराकार को मैंने आकार की तरह देखा था। वह मेरी भूल थी, मेरी भ्रांति थी। लेकिन बाहर आकर... इसका यह अर्थ नहीं है कि मकान के भीतर जो आकाश था, वह आकाश नहीं है। बाहर आकर तो आपको यह भी दिखाई पड़ जाएगा कि मकान के भीतर जो था, वह भी आकाश था। मकान की खिड़की से जो दिखाई पड़ता था, वह भी आकाश था। खिड़की भी आकाश का हिस्सा थी। खिड़की भी आज नहीं कल खो जाएगी और आकाश में लीन हो जाएगी।

जिस दिन आकाश के तत्व की पूरी प्रतीति हो जाएगी, उस दिन मकान, खिड़की सभी आकाश हो जाएंगे। लेकिन एक बार मकान के बाहर आना जरूरी है।

भेद निर्मित किया जा रहा है, ताकि आप अभेद को जान सकें। यह बात उलटी मालूम पड़ती है और जटिल मालूम पड़ती है। हम चाहेंगे कि भेद की बात ही न की जाए। अगर अभेद ही है, तो भेद की बात ही न की जाए।

लेकिन बात की जाए या न की जाए, हमें अभेद दिखाई नहीं पड़ता। हमें भेद ही दिखाई पड़ता है। हम चाहें तो भेद के भीतर भी अपने मन को समझा-बुझाकर अभेद की मान्यता स्थापित कर सकते हैं। लेकिन वह काम न आएगी। गहरे में तो हमें भेद मालूम पड़ता ही रहेगा।

कोई कितना कहे कि मित्र और शत्रु दोनों एक हैं। हम अपने को समझा भी लें कि दोनों एक हैं। तब भी हमें मित्र मित्र दिखाई पड़ता रहेगा और शत्रु शत्रु दिखाई पड़ता रहेगा। और मित्र को हम चाहते रहेंगे और शत्रु को न चाहते रहेंगे।

हम जहां खड़े हैं, वहां से भेद अनिवार्य है। और हम जब तक न बदल जाएं, तब तक अभेद का कोई अनुभव नहीं हो सकता। हमारी बदलाहट का पहला चरण है कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद हमारे स्मरण में आ जाए।

अब हम सूत्र को लें।

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है। और नाना प्रकार के छंदों से विभागपूर्वक कहा गया है। तथा अच्छी प्रकार निश्चय किए हुए युक्ति-युक्त ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी वैसा ही कहा गया है।

सच तो यह है कि धर्म के समस्त सूत्र क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की ही बात कहते हैं। उनके कहने में, ढंग में, शब्दों में भेद है। पर वे जिस तरफ इशारा करते हैं, वह एक ही बात है।

कृष्ण कहते हैं, वेद या उपनिषद या ब्रह्मसूत्र या जो परम ज्ञानी ऋषि हुए हैं, उन सब ने भी अनेक-अनेक रूपों में, अनेक-अनेक प्रकार से यही बात कही है।

यह छोटी-सी बात है, लेकिन बहुत बड़ी है। सुनने में बहुत छोटी, और अनुभव में आ जाए, तो इससे बड़ा कुछ भी नहीं है।

अभी वैज्ञानिकों ने अणु का विस्फोट किया, अणु को तोड़ डाला। तो उसके जो संघटक थे अणु के... अणु क्षुद्रतम चीज है। उससे छोटी और कोई चीज नहीं। और जब अणु को भी विभाजित किया, उसके जो संघटक थे, जो सदस्य थे अणु को बनाने वाले, जब उनको तोड़कर अलग कर दिया, तो विराट ऊर्जा का जन्म हुआ।

आज से पचास साल पहले कोई बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी यह नहीं सोच सकता था कि अणु जैसी क्षुद्र चीज में इतनी विराट शक्ति छिपी होगी। और जब लार्ड रदरफोर्ड ने पहली दफा अणु के विस्फोट की कल्पना की, तो रदरफोर्ड ने स्वयं कहा है कि मुझे खुद ही विश्वास नहीं आता था कि इतनी क्षुद्रतम वस्तु में इतनी विराट ऊर्जा छिपी है।

लेकिन हमने हिरोशिमा और नागासाकी में देखा कि अणु के एक छोटे-से विस्फोट में लाखों लोग क्षणभर में जलकर राख हो गए। और अब हम जानते हैं कि इस पृथ्वी को हम किसी भी क्षण नष्ट कर सकते हैं।

पर अणु आंख से दिखाई नहीं पड़ता। आंख की तो बात दूर है, अब तक हमारे पास कोई भी यंत्र नहीं है, जिनके द्वारा अणु दिखाई पड़ता हो। अब तक किसी ने अणु देखा नहीं है। वैज्ञानिक भी अणु का अनुमान करते हैं। सोचते हैं कि अणु है। सोचना उनका सही भी है, क्योंकि अणु को उन्होंने तोड़ भी लिया है। बिना देखे यह घटना घटी है। और इस अदृश्य अणु में, जो इतना छोटा है कि दिखाई नहीं पड़ता, इससे इतनी विराट ऊर्जा का जन्म हुआ। विज्ञान शिखर पर पहुंच गया, परमाणु के विभाजन से।

धर्म ने भी एक तरह का विभाजन किया था। यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ उसी विभाजन की कीमिया है। धर्म ने मनुष्य की चेतना का विभाजन किया था। विज्ञान ने पदार्थ के अणु का विभाजन किया है; धर्म ने चेतना के परमाणु का विभाजन किया था। और उस परमाणु को दो हिस्सों में तोड़ दिया था। दो उसके संघटक हैं, शरीर और आत्मा, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। दोनों को तोड़ने से वहां भी बड़ी विराट ऊर्जा का अनुभव हुआ था।

और जो परमाणु में जितनी अनुभव हो रही है ऊर्जा, वह उस ऊर्जा के सम्मुख कुछ भी नहीं है। क्योंकि परमाणु जड़ है। चैतन्य का कण जब टूटा, जब कोई ऋषि सफल हो गया अपने भीतर के चैतन्य के अणु को तोड़ने में, शरीर से पृथक करने में, तो इन दोनों के पृथक होते ही जो विराट ऊर्जा जन्मी, वह ऊर्जा का अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है।

और फर्क है दोनों में। अणु टूटता है, तो उससे जो ऊर्जा पैदा होती है, उससे मृत्यु घटित होगी। और जब चेतना का अणु टूटता है, तो उससे जो ऊर्जा प्रकट होती है, उससे अमृत घटित होता है। क्योंकि जीवन की ऊर्जा में जब प्रवेश होता है, तो परम जीवन का अनुभव होता है।

यह सूत्र आइंस्टीन के सूत्र जैसा है। इस सूत्र का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर तुम्हारे व्यक्तित्व को संगठित करने वाले दो तत्व हैं, एक तो पदार्थ से आ रहा है और एक चेतना से आ रहा है। चेतना और पदार्थ दोनों के मिलन पर तुम निर्मित हुए हो। तुम्हारा जो अणु है, वह आधा चैतन्य से और आधा पदार्थ से संयुक्त है।

तुम्हारे दो किनारे हैं। तुम्हारी नदी चेतना और पदार्थ, दो के बीच बह रही है। और यह जो पदार्थ है, इसने तुम्हें बाहर से घेरा हुआ है, चारों तरफ तुम्हारी दीवाल बनाई हुई है। कहना चाहिए, तुम्हारी चेतना के अणु की जो दीवाल है, जो घेरा है, वह पदार्थ का है। और जो सेंटर है, जो केंद्र है, वह चेतना का है।

काश, यह संभव हो जाए कि तुम इन दोनों को अलग कर लो, तो जीवन का जो श्रेष्ठतम अनुभव है, वह घटित हो जाए।

सारे धर्मों ने... कृष्ण ने तो बात की है वेद की, ब्रह्मसूत्र की। लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि कृष्ण कोई बाइबिल या कुरान के खिलाफ हैं। कृष्ण के वक्त में अगर बाइबिल और कुरान होते, तो उन्होंने उनकी भी बात की होती। वे नहीं थे। नहीं थे, इसलिए बात नहीं की है। आप यह मत सोचना कि इसलिए बात नहीं की है कि कुरान और बाइबिल में वह बात नहीं है। बात तो वही है।

चाहे जरथुस्त्र के वचन हों, चाहे लाओत्से के, चाहे क्राइस्ट के या मोहम्मद के, धर्म का सूत्र तो एक ही है कि भीतर चेतना और पदार्थ को हम कैसे अलग कर लें। इसके उपाय भिन्न-भिन्न हैं। हजारों उपाय हैं। लेकिन उपायों का मूल्य नहीं है। निष्कर्ष एक है।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है... ।

दुनिया में इतने धर्मों के खड़े होने का कारण सत्यों का विरोध नहीं है, प्रकारों का भेद है। और नासमझ है आदमी कि प्रकार के भेद को परम अनुभव का भेद समझ लेता है।

जैसे किसी एक पहाड़ पर जाने के लिए बहुत रास्ते हों और हर रास्ते वाला दावा करता हो कि मेरे रास्ते के अतिरिक्त कोई पहाड़ पर नहीं पहुंच सकता। न केवल दावा करता हो, बल्कि दो रास्ते वाले लड़ते भी हों। न केवल लड़ते हों, बल्कि लड़ाई इतनी मूल्यवान हो जाती हो कि पहाड़ पर चढ़ना भूल ही जाते हों और लड़ाई में ही जीवन व्यतीत करते हों। ऐसी करीब-करीब हमारी हालत है।

कोई पहाड़ पर चढ़ता नहीं। न मुसलमान को फिक्र है पहाड़ पर चढ़ने की, न हिंदू को फिक्र है। न जैन को फिक्र है, न बौद्ध को फिक्र है। सबको फिक्र यह है कि रास्ता हमारा ठीक है, तुम्हारा रास्ता गलत है। और तुम्हारा रास्ता गलत है, इसको सिद्ध करने में लोग अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। और हमारा रास्ता सही है, इसको सिद्ध करने में अपनी सारी जीवन ऊर्जा लगा देते हैं। लेकिन एक इंचभर भी उस रास्ते पर नहीं चलते, जो सही है।

काश, दूसरे के रास्ते को गलत करने की चिंता कम हो जाए। और जैसे ही दूसरे के रास्ते को गलत करने की चिंता कम हो, वैसे ही अपने रास्ते को सही सिद्ध करने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह तो उसी पहली चिंता का ही हिस्सा है।

दूसरे को गलत करना, खुद को सही सिद्ध करना, दोनों साथ ही जुड़े हैं। और जो आदमी इस उपद्रव में पड़ जाता है, वह रास्ते पर चलना ही भूल जाता है; वह रास्ते के संबंध में विवाद करता रहता है। पंडित--हिंदुओं के, मुसलमानों के, जैनों के--इसी काम में लगे हैं। पंडितों से भटके हुए आदमी खोजना कठिन है। उनका सारा जीवन इसमें लगा हुआ है कि कौन गलत है, कौन सही है। और वे यह भूल ही गए कि जो सही है, वह चलने के लिए है। लेकिन चलने की सुविधा कहां! फुरसत कहां! समय कहां!

और अगर कोई भी चले, तो पहाड़ पर पहुंचकर यह दिखाई पड़ जाता है कि बहुत-से रास्ते इसी चोटी की तरफ आते हैं। लेकिन यह चोटी पर से ही दिखाई पड़ सकता है; नीचे से नहीं दिखाई पड़ सकता। नीचे से तो अपना ही रास्ता दिखाई पड़ता है। चोटी से सभी रास्ते दिखाई पड़ सकते हैं।

यह जो कृष्ण कह रहे हैं, चोटी पर खड़े हुए व्यक्ति की वाणी है। वे कह रहे हैं कि सभी वेद, सभी ऋषि, सभी ज्ञानी इस एक ही तत्व की बात कर रहे हैं।

बहुत प्रकार से उन्होंने कहा है। उनके कहने के प्रकार में मत उलझ जाना। कभी-कभी तो उनके कहने के प्रकार इतने विपरीत होते हैं कि बड़ी कठिनाई हो जाती है।

अगर महावीर और बुद्ध दोनों को आप सुन लें, तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। और दोनों एक साथ हुए हैं। और दोनों एक ही समय में थे और एक ही छोटे-से इलाके, बिहार में थे। लेकिन महावीर और बुद्ध के कहने के ढंग इतने विपरीत हैं कि अगर आप दोनों को सुन लें, तो आप बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। और तब आपको यह मानना ही पड़ेगा कि दोनों में से एक ही ठीक हो सकता है; दोनों ठीक नहीं हो सकते। यह तो हो भी सकता है कि दोनों गलत हों, लेकिन दोनों ठीक नहीं हो सकते, क्योंकि दोनों इतनी विपरीत बातें कहते हैं।

महावीर कहते हैं, आत्मा को जानना परम ज्ञान है। और बुद्ध कहते हैं, आत्मा को मानने से बड़ा अज्ञान नहीं। अगर ये दोनों बातें आपके कान में पड़ जाएं, तो आप समझेंगे, या तो दोनों गलत हैं या कम से कम एक तो गलत होना ही चाहिए। दोनों कैसे सही होंगे? बुद्ध कहते हैं, आत्मा को मानना अज्ञान है। और महावीर कहते हैं, आत्मा को जानना परम ज्ञान है।

मगर जो शिखर पर खड़े होकर देख सकता है, वह हंसेगा और वह कहेगा कि दोनों एक ही बात कह रहे हैं। उनके कहने का ढंग अलग है। ढंग अलग होगा ही। महावीर महावीर हैं; बुद्ध बुद्ध हैं। उनके पास व्यक्तित्व अलग है। उनके सोचने की प्रक्रिया अलग है। उनके चोट करने का उपाय अलग है। आपसे बात करने की विधि अलग है। आपको कैसे बदलें, उसका विधान अलग है।

महावीर कहते हैं, आत्मा को जानना हो तो अहंकार को छोड़ना पड़ेगा, तो परम ज्ञान होगा। और बुद्ध कहते हैं, आत्मा यानी अहंकार। तुमने आत्मा को माना कि तुम किसी न किसी रूप में अपने अहंकार को बचा लोगे। इसलिए आत्मा को मानना ही मत, ताकि अहंकार को बचने की कोई जगह न रह जाए।

बुद्ध जहां भी आत्मा शब्द का उपयोग करते हैं, उनका अर्थ अहंकार होता है। मगर यह तो पहाड़ पर खड़े हों, तो आपको दिखाई पड़े। और तब आप कह सकते हैं कि बुद्ध भी वहीं लाते हैं, जहां महावीर लाते हैं।

लेकिन नीचे रास्तों पर खड़ा हुआ आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। और काफी विवाद चलता है। बौद्ध और जैन अभी तक विवाद कर रहे हैं। बुद्ध और महावीर को गए पच्चीस सौ साल हो गए, पर उनके भीतर कलह अब भी जारी है। वे एक-दूसरे के खंडन में लगे रहते हैं।

यह तो जैन मान ही नहीं सकता कि बुद्ध को ज्ञान हुआ होगा। क्योंकि अगर ज्ञान हुआ होता, तो ऐसी अज्ञान की बात कहते? बौद्ध भी नहीं मान सकता कि महावीर को ज्ञान हुआ होगा। अगर ज्ञान हुआ होता, तो ऐसी अज्ञान की बात कहते कि आत्मा परम ज्ञान है! नीचे बड़ी कलह है।

कृष्ण जैसे व्यक्तियों की सारी चेष्टा होती है कि आपकी शक्ति कलह में व्यय न हो। आप लड़ने में समय और अवसर को न गंवाएं। आप कुछ करें।

इसलिए उचित है, एक बार मन में यह बात साफ समझ लेनी उचित है कि ज्ञानियों के शब्द में चाहे कितना ही फासला हो, ज्ञानियों के अनुभव में फासला नहीं हो सकता। ज्ञानियों के कहने के ढंग कितने ही भिन्न हों, लेकिन उन्होंने जो जाना है, वह एक ही चीज हो सकती है। अज्ञानी बहुत-सी बातें जान सकते हैं। ज्ञानी तो एक को ही जानते हैं।

तो चाहे हमारी समझ में आता हो या न आता हो, मगर व्यर्थ कलह और विवाद में मत पड़ना। और जिसकी बात आपको ठीक लगती हो, उस रास्ते पर चलना शुरू कर देना।

अगर आप महावीर के रास्ते से चले, तो भी आप उसी शिखर पर पहुंच जाएंगे, जहां कृष्ण, और बुद्ध, और मोहम्मद का रास्ता पहुंचता है। अगर आप मोहम्मद के रास्ते से चले, तो भी वहीं पहुंच जाएंगे, जहां कृष्ण और राम का रास्ता पहुंचता है। चलने से पहुंच जाएंगे, किसी भी रास्ते से चलें। सभी रास्ते उस तरफ ले जाते हैं।

मेरी तो अपनी समझ यह है कि ठीक रास्ते पर खड़े होकर विवाद करने की बजाय तो गलत रास्ते पर चलना भी बेहतर है। क्योंकि गलत रास्ते पर चलने वाला भी कम से कम एक अनुभव को तो उपलब्ध हो जाता है कि यह रास्ता गलत है, चलने योग्य नहीं है। वह ठीक रास्ते पर खड़ा आदमी यह भी अनुभव नहीं कर पाता।

गलत को भी गलत की तरह पहचान लेना, सत्य की तरफ बड़ी सफलता है।

सुना है मैंने कि एडीसन बूढ़ा हो गया था। और एक प्रयोग वह कर रहा था, जिसको सात सौ बार करके असफल हो गया था। उसके सब सहयोगी घबड़ा चुके थे। तीन साल! सब ऊब गए थे। उसके नीचे शोध करने वाले विद्यार्थी पक्का मान लिए थे कि अब उनकी रिसर्च कभी पूरी होने वाली नहीं है। और यह बूढ़ा है कि बदलता भी नहीं कि दूसरा कुछ काम हाथ में ले। उसी काम को किए जाता है!

और एक दिन सुबह एडीसन हंसता हुआ आया, तो उसके साथी, सहयोगियों व विद्यार्थियों ने समझा कि मालूम होता है कि उसको कोई कुंजी हाथ लग गई। तो वे सब घेरकर खड़े हो गए और उन्होंने कहा कि आप इतने प्रसन्न हैं, मालूम होता है, आपका प्रयोग सफल हो गया, कुंजी हाथ लग गई।

तो उसने कहा कि नहीं, एक बार और मैं असफल हो गया। लेकिन एक असफलता और कम हो गई। सफलता करीब आती जा रही है। आखिर असफलता की सीमा है। मैंने सात सौ दरवाजे टटोल लिए, तो सात सौ दरवाजे पर भटकने की अब कोई जरूरत न रही। जिस दिन मैंने पहली दफा शुरू किया था, अगर सात सौ एक दरवाजे हों, तो उस दिन सात सौ एक दरवाजे थे, अब केवल एक बचा। सात सौ कम हो गए। इसलिए मैं खुश हूं। रोज एक दरवाजा कम होता जा रहा है। असली दरवाजा ज्यादा दूर नहीं है अब।

जवान साथी उदास होकर बैठ गए। उनकी समझ में यह बात न आई। लेकिन जो इतने उत्साह से भरा हुआ आदमी है, उसके उत्साह का कारण केवल इतना है कि असफलता भी सफलता की सीढ़ी है।

गलत रास्ते पर भी अगर कोई चल रहा है, तो सही पर पहुंच जाएगा। और मैं आपसे कहता हूं, सही रास्ते पर भी खड़ा होकर कोई विवाद कर रहा है, तो गलत पर पहुंच जाएगा।

खड़े होने से रास्ता चूक जाता है। चलने से रास्ता मिलता है। असल में चलना ही रास्ता है। जो खड़ा है, वह रास्ते पर है ही नहीं, क्योंकि खड़े होने का रास्ते से कोई संबंध नहीं है। चलने से रास्ता निर्मित होता है।

गलत पर भी कोई चले, लेकिन चले। और हठपूर्वक, जिदपूर्वक, संकल्पपूर्वक लगा रहे, तो गलत रास्ता भी ज्यादा देर तक उसे पकड़े नहीं रख सकता। जो चलता ही चला जाता है, वह ठीक पर पहुंच ही जाएगा। और जो खड़ा है, वह कहीं भी खड़ा हो, वह गलत पर गिर जाएगा।

लेकिन हम खड़े होकर मजे से विवाद कर रहे हैं, क्या ठीक है, क्या गलत है।

कृष्ण, अर्जुन के मन में यह सवाल न उठे कि और ऋषियों ने क्या कहा है, इसलिए कहते हैं, सभी तत्व के जानने वालों ने बहुत प्रकार से इसी को कहा है। नाना प्रकार के छंदों में, नाना प्रकार की व्याख्याओं में, अच्छी तरह निश्चित किए हुए युक्ति-युक्त ब्रह्मसूत्र के पदों में भी वैसा ही कहा गया है।

इधर एक बात और समझ लेनी जरूरी है कि धर्मशास्त्र भी युक्ति का और तर्क का उपयोग करते हैं, लेकिन वे तार्किक नहीं हैं। तर्कशास्त्री भी तर्क का उपयोग करते हैं, धर्म के रहस्य-अनुभवी भी तर्क का उपयोग करते हैं, लेकिन दोनों के तर्क में बुनियादी फर्क है। तर्कशास्त्री तर्क के द्वारा सोचता है कि सत्य को पा ले। धर्म की यात्रा में चलने वाला व्यक्ति पहले सत्य को पा लेता है और फिर तर्क के द्वारा प्रस्तावित करता है। इन दोनों में फर्क है।

धर्म मानता है कि सत्य को तर्क से पाया नहीं जा सकता, लेकिन तर्क से कहा जा सकता है। धर्म की प्रतीति तर्क से मिलती नहीं, लेकिन तर्क के द्वारा संवादित की जा सकती है।

इसलिए पश्चिम में जब पहली दफे ब्रह्मसूत्रों का अनुवाद हुआ, तो ड्यूसन को और दूसरे विचारकों को एक पीड़ा मालूम होने लगी। और वह यह कि भारतीय मनीषी निरंतर कहते हैं कि तर्क से सत्य को पाया नहीं जा सकता, लेकिन भारतीय मनीषी जब भी कुछ लिखते हैं, तो बड़ा तर्कपूर्ण लिखते हैं। अगर तर्क से पाया नहीं जा सकता, तो इतना तर्कपूर्ण होने की क्या जरूरत है? जब तर्क से सत्य का कोई संबंध नहीं है, तो ब्रह्मसूत्र जैसे ग्रंथ इतने तर्कबद्ध क्यों हैं?

यह संदेह उठना स्वाभाविक है। क्योंकि ऐसी परंपराएं भी रही हैं, जो तर्कहीन हैं। जैसे जापान में झेन है। वह कोई तर्कयुक्त वक्तव्य नहीं देता। उनका ऋषि तर्कहीन वक्तव्य देता है। आप क्या पूछते हैं, उसके उत्तर का उससे कोई संबंध भी नहीं होता है। क्योंकि वह कहता है, तर्क को तोड़ना है।

अगर आप जाकर एक झेन फकीर से पूछें कि सत्य का स्वरूप क्या है? तो हो सकता है, वह आपसे कहे कि बैठो, एक कप चाय पी लो। इसका कोई लेना-देना नहीं है सत्य से। आप पूछें कि परमात्मा है या नहीं? तो हो सकता है, वह आपसे कहे कि जाओ, और जरा हाथ-मुंह धोकर वापस आओ।

आप कहेंगे कि किसी पागल से बात कर रहे हैं। मैं पूछ रहा हूं कि परमात्मा है या नहीं; हाथ-मुंह धोने से क्या संबंध है! लेकिन झेन फकीर का कहना यह है कि परमात्मा से तर्क का कोई संबंध नहीं है, इसलिए मैं तर्क को तोड़ने की कोशिश कर रहा हूं। और अगर तुम अतर्क्य में उतरने को राजी नहीं हो, तो लौट जाओ। यह दरवाजा तुम्हारे लिए नहीं है।

पश्चिम के विचारकों को यह समझ में आता है कि अगर तर्क से मिल सकता हो, तो तर्क की बात करनी चाहिए। अगर तर्क से मिल न सकता हो, तो तर्क की बात ही नहीं करनी चाहिए। ये दोनों बातें समझ में आती हैं।

लेकिन भारतीय शास्त्र दोनों से भिन्न हैं। भारतीय शास्त्र कहते हैं, तर्क से वह मिल नहीं सकता। लेकिन शंकर या नागार्जुन जैसे तार्किक खोजने मुश्किल हैं। बहुत तर्क की बात करते हैं। क्या कारण है?

भारतीय अनुभूति ऐसी है कि तर्क सत्य को जन्म नहीं देता, लेकिन सत्य को अभिव्यक्त कर सकता है; सत्य की तरफ ले जा नहीं सकता, लेकिन असत्य से हटा सकता है। सत्य आपको दे नहीं सकता, लेकिन आपके समझने में सुगमता पैदा कर सकता है। और अगर समझ सुगम हो जाए, तो आप उस यात्रा पर निकल सकते हैं। इसलिए भारतीय शास्त्र अत्यंत तर्कयुक्त हैं; गहन रूप से तर्कयुक्त हैं। और इसलिए कई बार बड़ी कठिनाई होती है।

शंकर जैसा तार्किक जमीन पर कभी-कभी पैदा होता है। एक-एक शब्द तर्क है। और वही शंकर, मंदिर में गीत भी गा रहा है, नाच भी रहा है। तो सोचेगा जो आदमी, उसको कठिन लगेगा कि क्या बात है! एक तरफ तर्क की इतनी प्रगाढ़ योजना, इतनी तर्क की धार; और दूसरी तरफ यह आदमी काली के सामने या मां के सामने गीत गाकर, भजन गाकर नाच रहा है!

हमारी समझ में नहीं पड़ती बात। भजन गाकर, गीत गाकर, नाचकर यह आदमी अनुभव में उतर रहा है। वह अनुभव तर्क से संबंधित नहीं है। वह अनुभव रस से संबंधित है, आनंद से संबंधित है, हृदय से संबंधित है, बुद्धि का उससे कोई लेना-देना नहीं है।

लेकिन जब वह अनुभव इसे उपलब्ध हो जाएगा और यह किसी व्यक्ति को कहने जाएगा, तो कहना बुद्धि से संबंधित है। हृदय और हृदय की क्या बात होगी? बात तो बुद्धि की होती है। और जब वह आपसे बात कर रहा है, तो बुद्धि का उपयोग करेगा। और आपकी बुद्धि को अगर राजी कर ले, तो शायद आपकी बुद्धि से आपको हृदय तक उतारने के लिए भी राजी कर लेगा।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि ब्रह्मसूत्र ने अत्यंत युक्ति-युक्त रूप से यही बात कही है।

कृष्ण जिसे बड़े गीतबद्ध रूप में कह रहे हैं, वही ब्रह्मसूत्र ने युक्ति और तर्क के माध्यम से कही है।

और हे अर्जुन, वही मैं तेरे लिए कहता हूं कि पांच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया भी तथा दस इंद्रियां, एक मन और पांच इंद्रियों के विषय--शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और स्थूल देह का पिंड एवं चेतनता और धृति, इस प्रकार यह क्षेत्र विकारों के सहित संक्षेप में कहा गया है।

इसमें बड़ी कठिनाई मालूम पड़ेगी। इसमें कुछ बड़ी ही क्रांतिकारी बातें कही गई हैं। इस बात को मानने को हम राजी हो सकते हैं कि पदार्थ पंच महाभूत क्षेत्र है, जो जाना जाता है वह।

यह थोड़ा सूक्ष्म है और थोड़ा ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना।

यह हम मान सकते हैं कि पंच महाभूत पदार्थ है, क्षेत्र है, ज्ञेय है। उसे हम जान सकते हैं। हम उससे भिन्न हैं। इंद्रियां, निश्चित ही हम उन्हें जान सकते हैं। आंख में आपके दर्द होता है, तो आप जानते हैं कि दर्द हो रहा है। कान नहीं सुनता, तो आपको समझ में आ जाता है भीतर, कि कान सुन नहीं रहा है, मैं बहरा हो गया हूं। निश्चित ही आप, जो भीतर बैठे हैं, जो जानता है कि कान बहरा हो गया है, मैं सुन नहीं पा रहा हूं, या आंख अंधी हो गई, मुझे दिखाई नहीं पड़ता, भिन्न है।

इंद्रियों से हम अपने को भिन्न जानते हैं। चाहे हम वैसा व्यवहार न करते हों, चाहे हम वैसा आचरण न करते हों, लेकिन हम भी भलीभांति जानते हैं कि हम इंद्रियों से भिन्न हैं।

अगर आपका हाथ कट जाए, तो आप ऐसा नहीं कहेंगे कि मैं कट गया। अगर आपका हाथ कट जाए, तो भी आप जरा भी नहीं कटेंगे। और आपके व्यक्तित्व का जो आभास था, वह पूरा का पूरा बना रहेगा। ऐसा नहीं कि आपको लगे कि आपके व्यक्तित्व का एक हिस्सा भी भीतर कट गया और आपकी आत्मा भी कुछ छोटी हो गई। आप उतने ही रहेंगे; लंगड़े होकर भी उतने ही रहेंगे; अंधे होकर भी आप उतने ही रहेंगे; बीमार होकर भी, बूढ़े होकर भी आप उतने ही रहेंगे। आपके होने के बोध में कोई अंतर नहीं पड़ता।

तो हम भी अनुभव करते हैं कि इंद्रियों से हम भिन्न हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, उनसे भी हम भिन्न हैं, क्योंकि वे अनुभव इंद्रियों के हैं। और जब हम इंद्रियों से भिन्न हैं, तो इंद्रियों के अनुभव से भी भिन्न हैं।

स्थूल देह, पिंड, इन सबसे हम भिन्न हैं। लेकिन बड़ी क्रांति की बात है और वह है, चेतनता और धृति, यह भी कृष्ण ने कहा, ये भी क्षेत्र हैं और इनसे भी हम भिन्न हैं। कांशसनेस और कनसनट्रेशन--चेतनता और धृति।

यह थोड़ा-सा गहन और सूक्ष्म है। और इसे अगर समझ लें, तो कुछ और समझने को बाकी नहीं रह जाता।

पश्चिम के मनसविद मानते हैं कि आप चेतन हो ही तब तक सकते हैं, जब तक चेतन होने को कुछ हो, कांशसनेस मीन्स टु बी कांशस आफ समथिंग। जब भी आप चेतन होते हैं, तो हो ही तब तक सकते हैं, जब तक किसी चीज के प्रति चेतन हों। अगर कोई विषय न हो, तो चेतना भी नहीं हो सकती, ऐसा पश्चिम का मनोविज्ञान प्रस्तावित करता है। और उनकी बात में बड़ा बल है। उनकी बात में बड़ा बल है।

इसलिए वे कहते हैं कि अगर सभी विषय हट जाएं, तो आप बेहोश हो जाएंगे, आप होश खो देंगे। क्योंकि होश तो किसी चीज का ही होता है, होश बिना चीज के हो नहीं सकता।

आपको मैं देख रहा हूं, तो मुझे होश होता है कि मैं आपको देख रहा हूं। लेकिन आप नहीं हैं, मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा, तो मुझे यह भी नहीं होश हो सकता कि मैं देख रहा हूं। हां, अगर मुझे कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा, तो फिर यह एक आब्जेक्ट, विषय बन जाएगा मेरा कि मुझे कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है। इसलिए मुझे पता चलेगा कि मैं हूं, क्योंकि मुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। लेकिन मेरे होने के लिए मुझे किसी चीज का अनुभव होना चाहिए, नहीं तो मुझे अपने होने का अनुभव नहीं होगा।

आप ऐसा समझें कि अगर आपको ऐसी जगह में रख दिया जाए, जहां कोई शब्द, ध्वनि पैदा न होती हो, तो क्या आपको अपने कान का पता चलेगा? कैसे पता चलेगा? अगर कोई ध्वनि न होती हो, कोई शब्द न होता हो, तो आपको अपने कान का पता नहीं चलेगा। आपके पास कान हो तो भी आपको कभी पता नहीं चलेगा कि कान है।

अगर कोई चीज छूने को न हो, कोई चीज स्पर्श करने को न हो, तो आपको कभी पता नहीं चलेगा कि आपके पास स्पर्श की इंद्रिय है। अगर कोई चीज स्वाद लेने को न हो, तो आपको कभी पता न चलेगा कि आपके पास स्वाद के अनुभव की क्षमता है।

मनसविद कहते हैं, इसी भांति अगर कोई भी चीज चेतन होने को न हो, तो आपको अपनी चेतना का भी पता नहीं चलेगा। चेतना भी इसलिए पता चलती है कि संसार है, चारों तरफ चेतन होने के लिए वस्तुएं हैं।

इस विचार को मानने वाली जो धारा है, वह कहती है कि ध्यान अगर सच में--जैसा कि पूरब के मनीषी कहते हैं--घट जाए, तो आप बेहोश हो जाएंगे। क्योंकि जब जानने को कुछ भी शेष न रह जाएगा, तो जानने

वाला नहीं बचेगा, सो जाएगा, खो जाएगा। जानने वाला तभी तक बच सकता है, जब तक जानने को कोई चीज हो। नहीं तो आप जानने वाले कैसे बचेंगे!

तो पश्चिम के मनसविद कहते हैं कि अगर ध्यान ठीक है, जैसा कि कृष्ण ने, पतंजलि ने, बुद्ध ने प्रस्तावित किया है, तो ध्यान में आदमी मूर्च्छित हो जाएगा, होश नहीं रह जाएगा। जब कोई आब्जेक्ट न होगा, जानने को कोई चीज न होगी, तो जानने वाला सो जाएगा।

इसे हम थोड़ा-बहुत अपने अनुभव से भी समझ सकते हैं। अगर रात आपको नींद न आती हो, तो उसका कारण आपको पता है क्या होता है? आपके मन में कुछ विषय होते हैं, जिनकी वजह से नींद नहीं आती; कोई विचार होता है, जिसकी वजह से नींद नहीं आती। आप अपने मन को निर्विचार कर लें, विषय से खाली कर लें, तत्क्षण नींद में खो जाएंगे।

नींद आ जाएगी उसी वक्त, जब कोई चीज जगाने को न रहेगी। और जब तक कोई चीज जगाने को होती है, कोई एक्साइटमेंट होता है, कोई उत्तेजना होती है, तब तक नींद नहीं आती। अगर कोई भी विषय मौजूद न हो, सभी उत्तेजना समाप्त हो जाए, तो आपके भीतर--मनसविद कहते हैं--जो चेतना है, वह खो जाएगी।

कृष्ण भी उसी चेतना के लिए कह रहे हैं कि वह भी क्षेत्र है। कृष्ण भी राजी हैं इस मनोविज्ञान से। वे कहते हैं, यह जो चेतना है, जो पदार्थों के संबंध में आपके भीतर पैदा होती है, यह जो चेतना है, जो विषयों के संदर्भ में पैदा होती है; यह जो चेतना है, जो विषयों से जुड़ी है और विषयों के साथ ही खो जाती है, यह भी क्षेत्र है। तुम इस चेतना को भी अपनी आत्मा मत मानना। यह बड़ी गहन और आखिरी अंतर्खोज की बात है।

इस चेतना को भी तुम अपनी चेतना मत समझना। यह चेतना भी बाह्य-निर्भर है। यह चेतना भी पदार्थजन्य है। और जब इस चेतना के भी तुम ऊपर उठ जाओगे, तो ही तुम्हें पता चलेगा उस वास्तविक ब्रह्मतत्व का, जो किसी पर निर्भर नहीं है; तभी तुम्हें पता चलेगा क्षेत्रज्ञ का।

तो अब इसका अर्थ यह हुआ कि हम तीन हिस्से कर लें। कल हमने दो हिस्से किए थे। अब हम और गहरे जा सकते हैं। हमने दो हिस्से किए थे, ज्ञेय--आब्जेक्ट, जाने जाने वाली चीज। ज्ञाता--जानने वाला, नोअर, सब्जेक्ट। ये दो हमने विभाजन किए थे। अब कृष्ण कहते हैं, यह जो सब्जेक्ट है, यह जो नोअर है, जानने वाला है, यह भी तो जो जानी जाने वाली चीजें हैं, उनसे जुड़ा है। इन दोनों के ऊपर भी दोनों को जानने वाला एक तीसरा तत्व है, जो पदार्थ को भी जानता है और पदार्थ को जानने वाले को भी जानता है। यह तीसरा तत्व, यह तीसरी ऊर्जा तुम हो। और इस तीसरी ऊर्जा को नहीं जाना जा सकता।

इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि जिस चीज को भी तुम जान लोगे, वही तुमसे अलग हो जाएगी। इसे ऐसा समझें। मेरे पास लोग आते हैं। कोई व्यक्ति आता है, वह कहता है, मैं बहुत अशांत हूं, मुझे कोई रास्ता बताएं। कोई ध्यान, कोई विधि, जिससे मैं शांत हो जाऊं। फिर वह प्रयोग करता है। अगर प्रयोग करता है, सच में निष्ठा से, तो शांत भी होने लगता है। तब वह आकर मुझे कहता है कि अब मैं शांत हो गया हूं।

तो उससे मैं कहता हूं, अशांति से छूट गया, अब तू शांति से भी छूटने की कोशिश कर। क्योंकि यह तेरी शांति अशांति से ही जुड़ी है; यह उसका ही एक हिस्सा है। तू अशांति से छूट गया; बड़ी बात तूने कर ली। अब तू इस शांति से भी छूट, जो कि अशांति के विपरीत तूने पैदा की है, और तभी तू परम शांत हो सकेगा। लेकिन उस परम शांति में तुझे यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं शांत हूं।

जब तक आपको पता चलता है कि मैं शांत हूं, तब तक अशांत होने की क्षमता कायम है। जब तक आपको पता चलता है कि बड़े आनंद में हूं, तब तक आप किसी भी क्षण दुख में गिर सकते हैं। जब तक आपको पता

चलता है, मैंने ईश्वर को जान लिया, ईश्वर से आप छूट सकते हैं। जिस चीज का भी बोध है, उसका अबोध हो सकता है।

आखिरी शांति तो उस क्षण घटित होती है, जब आपको यह भी पता नहीं चलता कि मैं शांत हूं। यह तो पता चलता ही नहीं कि मैं अशांत हूं, यह भी पता नहीं चलता कि मैं शांत हूं।

असली ज्ञान तो उस समय घटित होता है, जब आपको यह तो ख्याल मिट ही जाता है कि मैं अज्ञान हूं, यह भी ख्याल मिट जाता है कि मैं ज्ञान हूं।

सुना है मैंने, ईसाइयत में एक बहुत बड़ा फकीर हुआ, संत फ्रांसिस। बड़ी मीठी कथा है कि संत फ्रांसिस जब ज्ञान को उपलब्ध हुआ, जब उसे परम बोध हुआ, तो पक्षी इतने निर्भय हो गए कि पक्षी उसके कंधों पर आकर बैठने लगे, उसके सिर पर आकर बैठने लगे। नदी के किनारे से निकलता, तो मछलियां छलांग लगाकर उसका दर्शन करने लगतीं। वृक्षों के पास बैठ जाता, तो जंगली जानवर आकर उसके निकट खड़े हो जाते, उसको चूमने लगते।

यह बात बड़ी मीठी है। और निश्चित ही, जब कोई बहुत शांत हो जाए, और बहुत आनंद से भर जाए, तो उसके प्रति दूसरे का जो भय है, वह कम हो जाएगा। यह घट सकता है।

लेकिन इधर मैं पढ़ रहा था, एक जापान में फकीर महिला हुई, उसका जीवन। उसके जीवन की कथा के अंत में एक बात कही गई है, जो बड़ी हैरान करने वाली है, पर बड़ी मूल्यवान है और कृष्ण की बात को समझने में सहयोगी होगी।

उस फकीर महिला के संबंध में कहा गया है कि जब वह अज्ञानी थी, तब कोई पक्षी उसके पास नहीं आते थे। जब वह ज्ञानी हो गई, तो पक्षी उसके कंधों पर आकर बैठने लगे। सांप भी उसके पास गोदी में आ जाता। जंगली जानवर उसके आस-पास उसे घेर लेते। लेकिन जब वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गई, तो फिर पक्षियों ने आना बंद कर दिया। सांप उसके पास न आते, जानवर उसके पास न आते। जब वह अज्ञानी थी, तब भी नहीं आते थे; जब ज्ञानी हो गई, तब आने लगे; और जब परम ज्ञानी हो गई, तब फिर बंद हो गए।

तो लोगों ने उससे पूछा कि क्या हुआ? क्या तेरा पतन हो गया? बीच में तो तेरे पास इतने पक्षी आते थे। अब नहीं आते? वह हंसने लगी। उसने तो कोई उत्तर न दिया। लेकिन उसके निकट उसको जानने वाले जो लोग थे, उन्होंने कहा कि जब तक उसे ज्ञान का बोध था, तब तक पक्षियों को भी पता चलता था कि वह ज्ञानी है। अब उसका वह भी बोध खो गया। अब उसे खुद ही पता नहीं है कि वह है भी या नहीं। तो पक्षियों को क्या पता चलेगा! जब उसे खुद ही पता नहीं चल रहा है।

तो झेन में कहावत है कि जब आदमी अज्ञानी होता है और जब आदमी परम ज्ञानी हो जाता है, तब बहुत-सी बातें एक-सी हो जाती हैं, बहुत-सी बातें एक-सी हो जाती हैं। क्योंकि अज्ञान में ज्ञान नहीं था। और परम ज्ञान में ज्ञान है, इसका पता नहीं होता। बीच में ज्ञान की एक घड़ी आती है।

वह ज्ञान की घड़ी यही है। तीन अवस्थाएं--एक तो हम पदार्थ के साथ अपना तादात्म्य किए हैं, शरीर के साथ जुड़े हैं कि मैं शरीर हूं, मैं इंद्रियां हूं। यह एक जगत अज्ञान का। फिर एक बोध का जगत, कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं इंद्रियां नहीं हूं। मगर यह भी शरीर से ही बंधा है।

यह मैं शरीर नहीं हूं, यह भी शरीर से ही जुड़ा है। यह मैं इंद्रियां नहीं हूं, यह भी तो इंद्रियों के साथ ही जुड़ा हुआ संबंध है। कल जानते थे कि मैं इंद्रियां हूं, अब जानते हैं कि मैं इंद्रियां नहीं हूं, लेकिन दोनों के केंद्र में

इंद्रियां हैं। कल तक समझते थे कि मैं शरीर हूं, अब समझते हैं कि शरीर नहीं हूं। लेकिन दोनों के बीच में शरीर है। ये दोनों ही बोध शरीर से बंधे हैं।

फिर एक तीसरी घटना घटती है, जब यह भी पता नहीं रह जाता कि मैं शरीर हूं या शरीर नहीं हूं। जब कुछ भी पता नहीं रह जाता। शरीर की मूर्च्छा तो छूट ही जाती है, वह जो मध्य में आई हुई चेतना का ज्वार था, वह भी खो जाता है। शरीर से पैदा होने वाले दुख से तो छुटकारा हो जाता है, लेकिन फिर शरीर से छूटकर जो सुख मिलते थे, उनसे भी छुटकारा हो जाता है। और एक परम शांत, परम मौन, न जहां ज्ञान है, न जहां ज्ञाता है, न जहां ज्ञेय है, ऐसी जो शून्य अवस्था आ जाती है। इस शून्य अवस्था में ही क्षेत्रज्ञ, वह जो अंतिम छिपा है, वह प्रकट होता है।

न तो मैं चेतनता, न धृति। ध्यान भी नहीं। धृति का अर्थ है, ध्यान, धारणा।

यह थोड़ा ख्याल में ले लेना जरूरी है, क्योंकि बहुत बार हम सीढ़ियों से जकड़ जाते हैं। बहुत बार ऐसा हो जाता है कि जो हमें ले जाता है मंजिल तक, उसको हम पकड़ लेते हैं। लेकिन तब वही मंजिल में बाधा बन जाता है।

तो परम ध्यानियों ने कहा है कि तुम्हारा ध्यान उस दिन पूरा होगा, जिस दिन ध्यान भी छूट जाएगा। जब तक ध्यान को पकड़े हो, तब तक समझना कि अभी पहुंचे नहीं।

प्रार्थना तो उसी दिन पूरी होगी, जिस दिन प्रार्थना करना भी व्यर्थ हो जाएगा। जब तक प्रार्थना करना जरूरी है, तब तक फासला मौजूद है। जब कोई नाव में बैठता है और नदी पार कर लेता है, तो फिर नाव को भी छोड़कर आगे बढ़ जाता है। धर्म भी जब छूट जाता है, तभी परम धर्म में प्रवेश होता है।

तो अगर कोई आखिरी समय तक भी हिंदू बना है, तो अभी समझना कि अभी पहुंचा नहीं। अगर आखिरी समय तक भी जैन बना है, तो समझना कि अभी पहुंचा नहीं। क्योंकि जैन, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, नावें हैं। नदी से पार ले जाने वाली हैं। लेकिन परमात्मा में प्रवेश के पहले नावें छोड़ देनी पड़ती हैं। मंजिल जब आ गई, तो साधनों की क्या जरूरत रही?

लेकिन अगर हम आखिर तक भी नाव को पकड़े रहें--और हो सकता है हमारा मन हमसे कहे, और बात ठीक भी लगे, कि जिस नाव ने इतने कठिन भवसागर को पार करवाया, उसको कैसे छोड़ें--तो फिर हम नाव में ही बैठे रह जाएंगे, तो नाव की भी मेहनत व्यर्थ गई। हमें इस पार तो ले आई, लेकिन हम किनारे उतर नहीं सकते, नाव को पकड़े हुए हैं।

बुद्ध कहते थे कि एक बार कुछ नासमझ, या समझें बड़े समझदार, नदी पार किए। तो जिस नाव में उन्होंने नदी पार की, उतरकर किनारे पर उन सब ने सोचा कि इस नाव की बड़ी कृपा है और इस नाव को हम कैसे छोड़ सकते हैं! तो दो ही उपाय हैं, या तो हम नाव में ही बैठे रहें, और या फिर नाव को हम अपने कंधों पर ले लें, अपने सिर पर रख लें और यात्रा आगे चले। तो उन्होंने नाव को अपने सिर पर उठा लिया।

फिर जब वे गांव से निकलते थे, गांव के लोग बहुत हैरान हुए। उन्होंने पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? हमने कभी नाव को लोगों के सिर पर नहीं देखा! तो उन्होंने कहा कि तुम अकृतज्ञ लोग हो। तुम्हें पता नहीं, इस नाव की कितनी अनुकंपा है। इसने ही हमें नदी पार करवाई। अब कुछ भी हो जाए, हम इस नाव को नहीं छोड़ सकते। अब हम इसको सिर पर लेकर चलेंगे।

जिस नाव ने नदी पार करवाई, वह नाव अगर सिर पर सवार हो जाए, तो बड़ा खतरनाक हो गया काम। रुग्ण हो गई बात। अब ये और कहीं पहुंच ही नहीं सकते; सिर्फ नाव को ही ढोते रहेंगे। अब यह उस तरफ जाना

भी बेकार हो गया। उससे तो अच्छा था कि पहले ही किनारे पर रहते। कम से कम मुक्त तो थे। यह सिर पर बंधी हुई नाव तो न थी। अब ये सदा के लिए गुलाम हो गए।

अधार्मिक आदमी उस तरफ है किनारे पर। और तथाकथित धार्मिक, जो पकड़ लेते हैं धर्मों की नावों को पागलपन से, वे भी कहीं नहीं पहुंचते। आखिरी पड़ाव पर तो सभी कुछ छोड़ देना पड़ता है।

तो कृष्ण कहते हैं, चेतनता भी क्षेत्र, और धृति, ध्यान, धारणा भी। तुम उसे भी छोड़ देना।

जब हम ध्यान करते हैं, तो उसका अर्थ ही होता है कि हम किसी चीज का ध्यान कर रहे हैं। जब हम ध्यान करते हैं, तो उसका अर्थ ही होता है कि हम कुछ कर रहे हैं। जब हम ध्यान करते हैं, तो उसका अर्थ ही होता है कि हम अभी उस भीतर के मंदिर में नहीं पहुंचे; अभी हम बाहर संघर्ष कर रहे हैं, सीढ़ियां चढ़ रहे हैं।

जिस दिन कोई भीतर के मंदिर में पहुंचता है, ध्यान करने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। क्या आवश्यकता है ध्यान की? जब बीमारी छूट गई, तो औषधि को रखकर कौन चलता है? और अगर कोई औषधि को रखकर चलता हो, तो समझना कि बीमारी भला छूट गई, अब औषधि बीमारी हो गई। अब ये औषधि को ढो रहे हैं। पहले ये बीमारी से परेशान थे, अब ये औषधि से परेशान हैं।

मैं एक संत के आश्रम में मेहमान था। उनके भक्त कहते थे कि वे परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। जब भक्त कहते थे, तो मैंने कहा कि जरूर हो गए होंगे। अच्छा ही है। कोई परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाए, इससे अच्छा कुछ भी नहीं है।

लेकिन सुबह मैंने देखा, पूजा-पाठ में वे लगे हैं। तो दोपहर मैंने उनसे पूछा कि अगर आप पूजा-पाठ छोड़ दें, तो कुछ हर्ज है? तो उन्होंने कहा, आप भी कैसी नास्तिकता की बात कर रहे हैं! पूजा-पाठ, और मैं छोड़ दूं! अगर पूजा-पाठ छोड़ दूं, तो सब नष्ट ही हो जाएगा।

तो पूजा-पाठ छोड़ने से अगर सब नष्ट हो जाएगा, तो फिर कुछ मिला नहीं है। तब तो यह पूजा-पाठ पर ही निर्भर है सब कुछ। तब कोई ऐसी संपदा नहीं मिली, जो छीनी न जा सके। पूजा-पाठ बंद होने से छिन जाएगी, अगर यह भय है, तो अभी कुछ मिला नहीं है। अगर नाव छिनने से डर लगता हो, तो आप अभी उस किनारे पर नहीं पहुंचे। अगर उस किनारे पर पहुंच गए हों, तो आप कहेंगे कि ठीक है। अब नाव की क्या जरूरत है! कोई भी ले जाए।

अगर आप दवा की बोतल जोर से पकड़ते हों और कहते हों, मैं स्वस्थ तो हो गया, लेकिन अगर दवा मुझसे छीनी गई, तो मैं फिर बीमार हो जाऊंगा, तो समझना चाहिए कि अभी आप बीमार ही हैं। और बीमारी ने सिर्फ एक नया रूप ले लिया। अब बीमारी का नाम औषधि है।

कई लोग बीमारी से छूट जाते हैं, डाक्टरों से जकड़ जाते हैं। कई लोग संसार छोड़ते हैं, संन्यास से जकड़ जाते हैं। कई लोग पत्नी को छोड़ते हैं, पति को छोड़ते हैं, फिर गुरु से पकड़ जाते हैं। लेकिन पकड़ नहीं जाती। कहीं न कहीं पकड़ जारी रहती है।

जब सभी पकड़ चली जाती है, तभी परमात्मा उपलब्ध होता है। जब तक हम कुछ भी पकड़ते हैं, तब तक हम अपने और उसके बीच फासला पैदा किए हुए हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, न तो चेतनता, न धृति। तुम्हारी धृति भी क्षेत्र है। तुम्हारा ध्यान, तुम्हारी धारणा, तुम्हारा योग, सभी क्षेत्र है।

बड़ी क्रांतिकारी बात है। लेकिन हम गीता पढ़ते रहते हैं, हमें कभी ख्याल नहीं आता कि कोई क्रांति छिपी होगी यहां। हम पढ़ जाते हैं मुर्दे की तरह। हमें ख्याल में भी नहीं आता कि कृष्ण क्या कह रहे हैं।

अगर पश्चिम का मनोविज्ञान भारतीय पढ़ते हैं, तो उनको लगता है कि वे गलत बात कह रहे हैं। चेतना कैसे वस्तुओं से बंध सकती है? अगर चेतना वस्तुओं से बंधी है, तो फिर ध्यान कैसे होगा? लेकिन कृष्ण खुद कह रहे हैं कि चेतनता भी शरीर का ही हिस्सा है। इसके पार एक और ही तरह का चैतन्य है, जो किसी पर निर्भर नहीं है; अनकंडीशनल, बेशर्त, अकारण। लेकिन उसे पाने के लिए इस चेतनता को भी छोड़ देना पड़ता है।

परम गुरु के पास पहुंचना हो, तो गुरु को भी छोड़ देना पड़ता है। जहां सब साधन छूट जाते हैं, वहीं साध्य है।

ये सभी पंच महाभूत, यह शरीर, अहंकार, मन, इंद्रियां, इंद्रियों के विषय, रस, रूप, चेतनता, धृति, ये सभी विकार सहित।

इन सब में विकार है। ये सभी दूषित हैं। इनमें कुछ भी कुंवारा नहीं है। क्यों? विकार का एक ही अर्थ है गहन अध्यात्म में, जो अपने विपरीत के बिना नहीं हो सकता, वह विकारग्रस्त है। इस परिभाषा को ठीक से ख्याल में ले लें। क्योंकि बहुत बार आगे काम पड़ेगी।

जो अपने विपरीत के बिना नहीं हो सकता, वह विकारग्रस्त है। क्योंकि जो विपरीत के बिना नहीं हो सकता, उसमें विपरीत मौजूद है।

समझिए, आप किसी को प्रेम करते हैं। आपके प्रेम में, जिसको आप प्रेम करते हैं, उसके प्रति घृणा भी है या नहीं, इसकी जरा खोज करें। अगर घृणा है, तो यह प्रेम विकारग्रस्त है। और अगर घृणा नहीं है, तो यह प्रेम विकार के बाहर हो जाएगा।

लेकिन फ्रायड कहता है, हमारे सभी प्रेम में घृणा है। जिसको हम प्रेम करते हैं, उसी को घृणा भी करते हैं। इसलिए ऐसा प्रेमी खोजना कठिन है जो कभी अपनी प्रेयसी के मरने की बात न सोचता हो। ऐसी प्रेयसी खोजनी कठिन है जो कभी सपना न देखती हो कि उसका प्रेमी मर गया, मार डाला गया। हालांकि सपना देखकर सुबह बहुत रोती है कि बहुत बुरा सपना देखा। लेकिन सपना आपका ही है, किसी और का नहीं है। देखा, तो उसका मतलब है कि भीतर चाह है।

आप जिसको प्रेम करते हैं, अगर थोड़ी समझ का उपयोग करेंगे, तो पाएंगे, आपके मन में उसी के प्रति घृणा भी है। इसीलिए तो सुबह प्रेम करते हैं, दोपहर लड़ते हैं। सांझ प्रेम करते हैं, सुबह फिर कलह करते हैं।

ऐसे प्रेमी खोजना कठिन हैं जो कलह न करते हों। ऐसे पति-पत्नी खोजने कठिन हैं जिनमें झगड़ा न होता हो। और अगर पति-पत्नी में झगड़ा न होता हो, तो पति-पत्नी दोनों को शक हो जाएगा कि लगता है, प्रेम विदा हो गया।

भारत के गांव में तो स्त्रियां यह मानती ही हैं कि जिस दिन पति मार-पीट बंद कर देता है, वे समझ लेती हैं, वह किसी और स्त्री में उत्सुक हो गया है। साफ ही है, जाहिर ही यह बात है कि अब उसका कोई रस नहीं रहा। इतना भी रस नहीं रहा कि झगड़ा करे। इतनी उदासीनता हो गई है।

पति-पत्नी जब तक झगड़ते रहते हैं, तभी तक आप समझना कि प्रेम है। जिस दिन झगड़ा बंद, तो आप यह मत समझना कि प्रेम इतनी ऊंचाई पर पहुंच गया है। इतनी ऊंचाई पर नहीं पहुंचता। बात ही खतम हो गई। अब झगड़ा करने में भी कोई रस नहीं है। अब ठीक है, एक-दूसरे को सह लेते हैं। अब ठीक है, एक-दूसरे से बचकर निकल जाते हैं। अब इतना भी मूल्य नहीं है एक-दूसरे का कि लड़ें। जब तक झगड़ा जारी रहता है, तब तक वह दूसरा पहलू भी जारी रहता है। लड़ लेते हैं, फिर प्रेम कर लेते हैं।

सच तो यह है कि अगर हम ठीक से समझें, तो हमारा प्रेम वैसा ही है, जैसे श्वास है। आप श्वास लेते ही चले जाएं और छोड़ें न, तो मर जाएंगे। छोड़नी भी पड़ेगी श्वास, तभी आप ले सकेंगे।

खाना और भूख! भूख लगेगी, तो भोजन करेंगे। भूख नहीं लगेगी, तो भोजन कैसे करेंगे? तो भूख जरूरी है भोजन के लिए। फिर भोजन जरूरी है कि अगले दिन की भूख लग सके, इसके लायक आप बच सकें। नहीं तो बचेंगे कैसे?

बड़े मजे की बात है, भोजन करना हो तो भूख जरूरी है। और भूख लगानी हो तो भोजन जरूरी है। ठीक वैसे ही अगर प्रेम करना हो तो बीच-बीच में घृणा का वक्त चाहिए, तब भूख लगती है। फिर प्रेम कर लेते हैं। श्वास बाहर निकल गई, फिर भीतर ले लेते हैं।

हमारी सब चीजें विपरीत से जुड़ी हैं। हमारे प्राण में भी मौत छिपी है। हमारे भोजन में भी भूख छिपी है। हमारे प्रेम में घृणा है। हमारे जन्म में मृत्यु जुड़ी है।

जहां विपरीत के बिना कोई अस्तित्व नहीं होता, वहां विकार है। और उस अस्तित्व को हम विकाररहित कहते हैं, जहां विपरीत की कोई भी जरूरत नहीं है; जहां कोई चीज अपने में ही हो सकती है, विपरीत की कोई आवश्यकता नहीं है। बिना विपरीत के जहां कुछ होता है, वहां कुंवारापन, वहां पवित्रता, वहां निर्दोष घटना घटती है।

इसलिए हम क्राइस्ट के प्रेम को, कृष्ण के प्रेम को पवित्र कह सकते हैं। क्योंकि उसमें घृणा नहीं है; उसमें घृणा का कोई तत्व नहीं है।

लेकिन अगर आपको कृष्ण प्रेम करने को मिल जाएं, तो आपको उनके प्रेम में मजा नहीं आएगा। क्योंकि आपको लगेगा ही नहीं, पक्का पता ही नहीं चलेगा कि यह आदमी प्रेम करता भी है कि नहीं। क्योंकि वह घृणा वाला हिस्सा मौजूद नहीं है। वह विपरीत मौजूद नहीं है। तो आपको पता भी नहीं चलेगा।

अगर बुद्ध आपको प्रेम करें, तो आपको कोई रस नहीं आएगा ज्यादा। क्योंकि बुद्ध का प्रेम बहुत ठंडा मालूम पड़ेगा; उसमें कोई गरमी नहीं दिखाई पड़ेगी। वह गरमी तो घृणा से आती है। गरमी विपरीत से आती है। गरमी कलह से आती है। गरमी संघर्षण से आती है। वह संघर्षण वहां नहीं है।

इस बात को ख्याल में ले लेंगे कि विपरीत की मौजूदगी जिसके लिए जरूरी है, वह विकार है। इसलिए कृष्ण चेतनता को भी विकार कहते हैं। क्योंकि उसके लिए कोई चाहिए दूसरा, उसके बिना चेतना नहीं हो सकती।

इसलिए, आपको ख्याल में है, अगर आप एक दस दिन के लिए काश्मीर चले जाते हैं, तो आपको अच्छा लगता है। क्यों? क्योंकि काश्मीर में सब नया है और आपको ज्यादा चेतन होना पड़ता है। बंबई में जिस रास्ते से आप रोज निकलते हैं, वहां जिंदगीभर से निकल रहे हैं, वहां आपको चेतन होने की जरूरत ही नहीं है। वहां से आप मूर्च्छित, सोए हुए निकल जाते हैं। वृक्ष होगा, होगा। वह आप देखते नहीं। पास से लोग निकल रहे हैं, वह आप देखते नहीं।

लेकिन आप दस दिन के लिए छुट्टी पर काश्मीर जाते हैं। सब नया है। नए पदार्थ, नए आब्जेक्ट, नए विषय, आपको चेतन होना पड़ता है; जरा रीढ़ सीधी करके, आंख खोलकर गौर से देखना पड़ता है। लेकिन एक-दो दिन बाद फिर आप वैसे ही ढीले पड़ जाएंगे। क्योंकि वे ही चीजें फिर बार-बार क्या देखनी!

तो काश्मीर में जो आदमी रह रहा है, डल झील में जो आपकी नाव को चलाएगा, वह उतना ही ऊबा हुआ है डल झील से, जितना आप बंबई से ऊबे हुए हैं। वह भी बड़ी योजनाएं बना रहा है कि कब मौका हाथ

लगे और बंबई जाकर छुट्टियों में घूम आए। उसको भी बंबई में इतना ही मजा आएगा, जितना आपको डल झील पर आ रहा है। और दस दिन आप भी डल झील पर रह गए, तो आप वैसे ही डल हो जाएंगे जैसे बंबई में थे। कोई फर्क नहीं रहेगा। चेतनता खो जाएगी।

इसलिए चेतना के लिए हमें रोज नई चीजों की जरूरत पड़ती है; नई चीजों की रोज जरूरत पड़ती है। वही भोजन रोज करने पर चेतना खो जाती है, बेहोशी आ जाती है, मूर्च्छा हो जाती है।

वही पत्नी रोज-रोज देखकर मूर्च्छा आने लगती है; तो फिल्म जाकर एक फिल्म स्टार को देख आते हैं। रास्ते पर स्त्रियों को झांककर देख लेते हैं। लोग नंगी तस्वीरें देखते रहते हैं बैठकर एकांत में। उन पर ध्यान करते रहते हैं। उससे थोड़ी चेतनता आ जाती है, थोड़ा एक्साइटमेंट आता है। लौटकर घर की पत्नी भी थोड़ी-सी नई मालूम पड़ती है, थोड़ी आंख की धूल गिर गई होती है।

नया विषय चाहिए। अगर आपको सभी विषय पुराने मिल जाएं, और वहां कुछ भी नया न घटित होता हो, तो आप बेहोश हो जाएंगे, आप मूर्च्छित हो जाएंगे।

इस पर पश्चिम में बहुत प्रयोग होते हैं। इस प्रयोग को वे सेंस डिप्राइवेशन कहते हैं। एक आदमी को एक ऐसी जगह बंद कर देते हैं, जहां कोई भी घटना न घटती हो। स्वर-शून्य, साउंड-प्रूफ, गहन अंधकार, आंखों पर पट्टियां, हाथ पर सब इस तरह के कपड़े कि वह अपने को भी न छू सके। सब हाथ-पैर बंधे हुए। भोजन भी इंजेक्शन से पहुंच जाएगा। उसको भोजन भी नहीं करना है।

छत्तीस घंटे में ही आदमी बेहोश हो जाता है, वह भी बहुत सजग आदमी। नहीं तो छः घंटे में आदमी बेहोश हो जाता है। छः घंटे कोई संवेदना नहीं, कोई सेंसेशन नहीं, तो आदमी बेहोश होने लगता है। क्या करेगा? होश खोने लगता है।

बहुत होश रखने वाला आदमी, छत्तीस घंटे में वह भी बेहोश हो जाता है। क्योंकि करोगे क्या! होश रखने को कुछ भी तो नहीं है। न कोई आवाज होती, न कोई ट्रैफिक का शोरगुल होता, न कोई रेडियो बजता, न कोई घटना घटती। कुछ भी नहीं हो रहा है। तो आप धीरे-धीरे, धीरे-धीरे इस न होने की अवस्था में बेहोश हो जाएंगे।

कृष्ण कहते हैं, ऐसी चेतना भी, जो किसी चीज पर निर्भर है, वह भी विकारग्रस्त है। ऐसा ध्यान भी, जो किसी पर निर्भर है, वैसा ध्यान भी विकारग्रस्त है। और जब इस सारे क्षेत्र के पार कोई हो जाता है, तो क्षेत्रज्ञ का अनुभव होता है।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई भी उठे नहीं। कोई भी एक व्यक्ति बीच से उठता है, तो अड़चन होती है। पांच मिनट कीर्तन में भाग लें। कीर्तन के पूरे होने पर जाएं।

तीसरा प्रवचन

रामकृष्ण की दिव्य बेहोशी

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।। 7।।
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।। 8।।

और हे अर्जुन, श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दंभाचरण का अभाव, प्राणिमात्र को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी की सरलता, श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की सेवा-उपासना, बाहर-भीतर की शुद्धि, अंतःकरण की स्थिरता, मन और इंद्रियों सहित शरीर का निग्रह तथा इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दोषों का बारंबार दर्शन करना, ये सब ज्ञान के लक्षण हैं।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि चेतना के खो जाने पर प्राप्त समाधि क्या मूर्च्छा की अवस्था है? रामकृष्ण परमहंस कई दिनों तक मृतप्राय अवस्था में लेटे रहते थे!

चेतना के खो जाने पर बहुत बार बाहर से मूर्च्छा जैसी प्रतीति होती है। रामकृष्ण अनेक बार, हमारे लिए बाहर से देखने पर, अनेक दिनों के लिए मूर्च्छित हो जाते थे। शरीर ऐसे पड़ा रहता था, जैसे बेहोश आदमी का हो। पानी और दूध भी प्रयासपूर्वक, जबरदस्ती ही देना पड़ता था।

जहां तक बाहर का संबंध है, वे मूर्च्छित थे; और जहां तक भीतर का संबंध है, वे जरा भी मूर्च्छित नहीं थे। भीतर तो होश पूरा था। लेकिन यह होश, यह चेतना हमारी चेतना नहीं है।

कल कृष्ण के सूत्र में हमने समझा कि चेतना दो तरह की हो सकती है। एक तो चेतना जो किसी वस्तु के प्रति हो और किसी वस्तु के द्वारा पैदा हुई हो। चेतना, जो कि किसी वस्तु का प्रत्युत्तर हो। आप बैठे हैं, कोई जोर से आवाज करता है; आपकी चेतना उस तरफ खिंच जाती है, ध्यान आकर्षित होता है। आप बैठे हैं, मकान में आग लग जाए, तो सारा जगत भूल जाता है। आपकी चेतना मकान में आग लगी है, उसी तरफ खिंच जाती है।

मकान में आग लगी हो, तो आप बहुत चेतन हो जाएंगे, अगर नींद भी आ रही हो, तो खो जाएगी। आपको ऐसी एकाग्रता कभी न मिली होगी, जैसी मकान में आग लग जाए, तो तब मिलेगी। आपने लाखों बार कोशिश की होगी कि सारी दुनिया को भूलकर कभी क्षणभर को परमात्मा का ध्यान कर लें। लेकिन जब भी ध्यान के लिए बैठे होंगे, हजार बातें उठ आई होंगी, हजार विचार आए होंगे। एक परमात्मा के विचार को छोड़कर सभी चीजों ने मन को घेर लिया होगा। लेकिन मकान में आग लग गई हो, तो सब भूल जाएगा। सारा संसार जैसे मिट गया। मकान में लगी आग पर ही चित्त एकाग्र हो जाएगा।

यह भी चेतना है। लेकिन यह चेतना बाहर से पैदा हुई है; यह बाहर की चोट में पैदा हुई है; यह बाहर पर निर्भर है। तो कृष्ण ने कहा कि ऐसी चेतना भी शरीर का ही हिस्सा है। वह भी क्षेत्र है।

फिर क्या ऐसी भी कोई चेतना हो सकती है, जो किसी चीज पर निर्भर न हो, जो किसी के द्वारा पैदा न होती हो, जो हमारा स्वभाव हो? स्वभाव का अर्थ है कि किसी कारण से पैदा नहीं होगी; हम हैं, इसलिए है; हमारे होने में ही निहित है।

जब कोई आवाज करता है और आपका ध्यान उस तरफ जाता है, तो यह ध्यान का जाना आपके होने में निहित नहीं है। यह आवाज के द्वारा प्रतिपादित हुआ है, यह बाई-प्रोडक्ट है; यह आपका स्वभाव नहीं है।

ऐसा सोचें कि बाहर से कोई भी संवेदना नहीं मिलती, बाहर कोई घटना नहीं घटती, और फिर भी आपका होश बना रहता है। इस चेतना को हम आत्मा कहते हैं। और बाहर से पैदा हुई जो चेतना है, वह धारणा है, ध्यान है। कृष्ण ने उसे भी शरीर का हिस्सा माना है।

रामकृष्ण जब बेहोश हो जाते थे, तो उनकी धृति खो गई, उनका ध्यान खो गया, उनकी धारणा खो गई। अब बाहर कोई कितनी भी आवाज करे, तो उनकी चेतना बाहर न आएगी। लेकिन अपने स्वरूप में वे लीन हो गए हैं; अपने स्वरूप में वे परिपूर्ण चैतन्य हैं। जब उनकी समाधि टूटती थी, तो वे रोते थे और वे चिल्ला-चिल्ला कर कहते थे कि मां मुझे वापस वहीं ले चल। यहां कहां तूने मुझे दुख में वापस भेज दिया! उसी आनंद में मुझे वापस लौटा ले।

जिसको हम मूर्च्छा समझेंगे, वह उनके लिए परम आनंद था। बाहर से सब इंद्रियां भीतर लौट गई हैं। बाहर जो ध्यान जाता था, वह सब वापस लौट गया। जैसे गंगा गंगोत्री में वापस लौट गई। वह जो चेतना बाहर आती थी दरवाजे तक, अब नहीं आती; अपने में लीन और थिर हो गई।

हमारे लिए तो रामकृष्ण मूर्च्छित ही हो गए। और अगर पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों से पूछें, तो वे कहेंगे, हिस्टीरिकल है; यह घटना हिस्टीरिया की है। क्योंकि पश्चिम के मनोविज्ञान को अभी भी उस दूसरी चेतना का कोई पता नहीं है।

अगर रामकृष्ण पश्चिम में पैदा होते, तो उन्हें पागलखाने ले जाया गया होता। और जरूर मनसविदों ने उनकी चिकित्सा की होती और जबरदस्ती होश में लाने के प्रयास किए जाते। एक्टीवायजर दिए जाते, जिनसे कि वे ज्यादा सक्रिय हो जाएं। इंजेक्शन लगाए जाते, शरीर में हजार तरह की कोशिश की जाती, ताकि चेतना वापस लौट आए। क्योंकि पश्चिम का मनोविज्ञान बाहर की चेतना को ही चेतना समझता है। बाहर की चेतना खो गई, तो आदमी मूर्च्छित है, मरने के करीब है।

रोमां रोला ने लिखा है कि सौभाग्य की बात है कि रामकृष्ण पूरब में पैदा हुए, अगर पश्चिम में पैदा होते, तो हम उनका इलाज करके उनको ठीक कर लेते। ठीक कर लेने का मतलब कि उन्हें हम साधारण आदमी बना लेते, जैसे आदमी सब तरफ हैं। और वह जो परम अनुभूति थी, उसको पश्चिम में कोई भी पहचान न पाता।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक और मनोवैज्ञानिक है, आरड़ी.लैंग। आरड़ी.लैंग का कहना है कि पश्चिम में जितने लोग आज पागल हैं, वे सभी पागल नहीं हैं; उनमें कुछ तो ऐसे हैं, जो किसी पुराने जमाने में संत हो सकते थे। लेकिन वे पागलखानों में पड़े हैं। क्योंकि पश्चिम की समझ भीतर की चेतना को स्वीकार नहीं करती। तो बाहर की चेतना खो गई, कि आदमी विक्षिप्त मान लिया जाता है।

हम रामकृष्ण को विमुक्त मानते हैं। फर्क क्या है? हिस्टीरिया और रामकृष्ण की मूर्च्छा में फर्क क्या है? जहां तक बाहरी लक्षणों का संबंध है, एक से हैं। रामकृष्ण के मुंह से भी फसूकर गिरने लगता था; हाथ-पैर लकड़ी की तरह जकड़ जाते थे; मुर्दे की भांति वे पड़ जाते थे। हाथ-पैर में पहले कंपन आता था, जैसे हिस्टीरिया के मरीज को आता है। और इसके बाद वे जड़वत हो जाते थे। सारा होश खो जाता था। अगर उस समय हम

उनके पैर को भी काट दें, तो उनको पता नहीं चलेगा। यही तो हिस्टीरिया के मरीज को भी घटित होता है। कोमा में पड़ जाता है, बेहोशी में पड़ जाता है। लेकिन फर्क क्या है?

इस घटना में ऊपर से देखने में तो कोई फर्क नहीं है। और अगर हम चिकित्सक के पास जाएंगे, तो वह भी कहेगा, यह भी हिस्टीरिया का एक प्रकार है। लेकिन भीतर से बड़ा फर्क है। क्योंकि हिस्टीरिया का मरीज जब वापस लौटता है अपनी मूर्च्छा से, तो वही का वही होता है जो मूर्च्छा के पहले था। रामकृष्ण जब अपनी मूर्च्छा से वापस लौटते हैं, तो वही नहीं होते जो मूर्च्छा के पहले थे। वह आदमी खो गया।

अगर वह आदमी क्रोधी था, तो अब यह आदमी क्रोधी नहीं है। अगर वह आदमी अशांत था, तो अब यह आदमी अशांत नहीं है। अगर वह आदमी दुखी था, तो अब यह आदमी दुखी नहीं है। अब यह परम आनंदित है।

हिस्टीरिया का मरीज तो हिस्टीरिया की बेहोशी के बाद वैसा का वैसा ही होता है, जैसा पहले था। शायद और भी विकृत हो जाता है। बीमारी उसे और भी तोड़ देती है। लेकिन समाधि में गया व्यक्ति नया होकर वापस लौटता है; पुनरुज्जीवित हो जाता है। उसके जीवन में नई हवा और नई सुगंध और नया आनंद फैल जाता है।

पश्चिम में वे लक्षण से सोचते हैं; हम परिणाम से सोचते हैं। हम कहते हैं कि समाधि के बाद जो घटित होता है, वही तय करने वाली बात है कि समाधि समाधि थी या मूर्च्छा थी।

रामकृष्ण सोने के होकर वापस आते। और जिस मूर्च्छा से कचरा जल जाता हो और सोना निखर आता हो, उसको मूर्च्छा कहना उचित नहीं है। वह जो रामकृष्ण का वासनाग्रस्त व्यक्तित्व था, वह समाप्त हो जाता है; और एक अभूतपूर्व, एक परम ज्योतिर्मय व्यक्तित्व का जन्म होता है। तो जिस मूर्च्छा से ज्योतिर्मय व्यक्तित्व का जन्म होता हो, उसको हम बीमारी न कहेंगे; उसको हम परम सौभाग्य कहेंगे। परिणाम से निर्भर होगा।

रामकृष्ण की बेहोशी बेहोशी नहीं थी। क्योंकि अगर वह बेहोशी होती, तो रामकृष्ण का वह जो दिव्य रूप प्रकट हुआ, वह प्रकट नहीं हो सकता था। बेहोशी से दिव्यता पैदा नहीं होती। दिव्यता तो परम चैतन्य से ही पैदा होती है; परम होश से ही पैदा होती है। पर हमारे लिए देखने पर तो रामकृष्ण बेहोश हैं। लेकिन भीतर वे परम होश में हैं।

ऐसा समझें कि द्वार-दरवाजे सब बंद हो गए, जहां से किरणें बाहर आती थीं होश की। इंद्रियां सब शांत हो गईं और भीतर का दीया भीतर ही जल रहा है; उसकी कोई किरण बाहर नहीं आती। इसलिए हम पहचान नहीं पाते। लेकिन यह बेहोशी बेहोशी नहीं है।

अगर फिर भी कोई जिद्द करना चाहे कि यह बेहोशी ही है, तो यह बड़ी आध्यात्मिक बेहोशी है। और यह शब्द उचित नहीं है। हम तो इसे परम होश कहते हैं। और पश्चिम के मनोविज्ञान को आज नहीं कल यह भेद स्वीकार करना पड़ेगा। इस संबंध में खोजबीन शुरू हो गई है।

अभी तक तो फ्रायड के प्रभाव में उन्होंने संतों को और पागलों को एक ही साथ रख दिया था। जीसस के संबंध में ऐसी किताबें लिखी हैं पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों ने, जिनमें सिद्ध करने की कोशिश की है कि जीसस भी न्यूरोटिक थे, विक्षिप्त थे।

स्वभावतः, कोई आदमी जो कहता है, मैं ईश्वर का पुत्र हूं, हमें पागल ही मालूम पड़ेगा। कोई आदमी जो यह दावा करता है कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं, हमें पागल मालूम पड़ेगा। या तो हम समझेंगे कि धूर्त है या हम समझेंगे पाखंडी है या हम समझेंगे पागल है। कौन आदमी अपने होश में दावा करेगा कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं! जीसस के वक्तव्य पागल के वक्तव्य मालूम होते हैं।

लेकिन जो व्यक्ति भी भीतर की चेतना को अनुभव करता है, ईश्वर का पुत्र तो छोटा वक्तव्य है, वह ईश्वर ही है। मंसूर या उपनिषद के ऋषि जब कहते हैं, अहं ब्रह्मास्मि, हम ब्रह्म हैं, तो पश्चिम का मनोवैज्ञानिक समझेगा कि बात कुछ गड़बड़ हो गई; दिमाग कुछ खराब हो गया।

उनका सोचना भी ठीक है, क्योंकि ऐसे पागल भी हैं। आज पागलखानों में अगर खोजने जाएं, तो बहुत-से पागल हैं। कोई पागल कहता है, मैं अडोल्फ हिटलर हूं। कोई पागल कहता है कि मैं बैनिटो मुसोलिनी हूं। कोई पागल कहता है कि मैं स्टैलिन हूं। कोई पागल कहता है, मैं नेपोलियन हूं।

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि एक आदमी ने बर्ट्रेंड रसेल को पत्र लिखा। बर्ट्रेंड रसेल की एक किताब प्रकाशित हुई, उसमें उसने कुछ जूलियस सीजर के संबंध में कोई बात कही थी। एक आदमी ने पत्र लिखा कि आपकी किताब बिल्कुल ठीक है, सिर्फ एक वक्तव्य गलत है।

रसेल को आश्चर्य हुआ। क्योंकि किताब में बहुत-सी क्रांतिकारी बातें थीं, जो लोगों को पसंद नहीं पड़ेंगी। यह कौन आदमी है, जो कहता है कि सब ठीक है, सिर्फ एक बात गलत है! तो रसेल ने उसे निमंत्रण दिया कि तुम भोजन पर मेरे घर आओ। मैं भी जानना चाहूंगा कि जिस आदमी को मेरी सारी बातें ठीक लगी हैं, उसे कौन-सी बात गलत लगी! वह मेरे लिए भी विचारणीय है।

रसेल ने प्रतीक्षा की। सांझ को वह आदमी आया। उसने कहा, बाकी किताब बिल्कुल ठीक है। मैं आपकी सब किताबें पढ़ता रहा हूं। सभी किताबें ठीक हैं। पर एक बात इसमें आपने बिल्कुल गलत लिखी है।

रसेल ने बड़ी जिज्ञासा, उत्सुकता से पूछा कि कौन-सी बात गलत लिखी है? तो उसने कहा कि आपने किताब में लिखा है कि जूलियस सीजर मर गया है। यह गलत है!

जूलियस सीजर को मरे सैकड़ों साल हो गए हैं। रसेल बहुत चौंका कि उसने गलती भी क्या खोजी है कि जूलियस सीजर मर गया है, यह आपने लिखा है, यह बिल्कुल गलत है। तो रसेल ने पूछा, आपके पास प्रमाण? उसने कहा कि प्रमाण की क्या जरूरत है! मैं जूलियस सीजर हूं।

मनोविज्ञान कहेगा, यह आदमी पागल है। लेकिन मंसूर कहता है, मैं ब्रह्म हूं। उपनिषद के ऋषि कहते हैं, हम स्वयं परमात्मा हैं। रामतीर्थ ने कहा है कि यह सृष्टि मैंने ही बनाई है; ये चांद-तारे मैंने ही चलाए हैं। रामतीर्थ से कोई पूछने आया कि सृष्टि किसने बनाई? तो रामतीर्थ ने कहा, क्या पूछते हो! मैंने ही बनाई है।

निश्चित ही, यह स्वर भी पागलपन का मालूम पड़ता है। और ऊपर से देखने पर, जो आदमी कहता है, मैं जूलियस सीजर हूं, वह कम पागल मालूम पड़ता है बजाय रामतीर्थ के, जो कहते हैं, ये चांद-तारे? ये मैंने ही इन्हीं अंगुलियों से चलाए हैं। यह सृष्टि मैंने ही बनाई है।

ये वक्तव्य बिल्कुल एक से हैं ऊपर से और भीतर से बिल्कुल भिन्न हैं। और भिन्नता का प्रमाण क्या होगा? भिन्नता का प्रमाण यह होगा कि यह जूलियस सीजर जो अपने को कह रहा है, यह दुखी है, पीड़ित है, परेशान है। इसे नींद नहीं है, चैन नहीं है; बेचैन है। और यह जो रामतीर्थ कह रहे हैं कि जगत मैंने ही बनाया, ये परम आनंद और परम शांति में हैं।

ये क्या कह रहे हैं, इस पर निर्भर नहीं करता। ये क्या हैं, उसमें खोजना पड़ेगा। और आप भला नहीं कहते कि जूलियस सीजर हैं या महात्मा गांधी हैं या जवाहरलाल नेहरू हैं, ऐसा आप कोई दावा नहीं करते, तो भी आप ठीक होश में नहीं हैं, तो भी आप विक्षिप्त हैं। और रामतीर्थ यह दावा करके भी विक्षिप्त नहीं हैं कि जगत मैंने ही बनाया है। रामतीर्थ का यह वक्तव्य किसी बड़ी गहरी अनुभूति की बात है।

रामतीर्थ यह कह रहे हैं कि इस जगत की जो परम चेतना है, वह मेरे भीतर है। जिस दिन उसने इस जगत को बनाया, मैं भी उसमें सम्मिलित था। मेरे बिना यह जगत भी नहीं बन सकता, क्योंकि मैं इस जगत का हिस्सा हूं। और परमात्मा ने जब यह जगत बनाया, तो मैं उसके भीतर मौजूद था। मेरी मौजूदगी अनिवार्य है; क्योंकि मैं मौजूद हूं।

इस जगत में कुछ भी मिटता नहीं। विनाश असंभव है। एक रेत के कण को भी नष्ट नहीं किया जा सकता। वह रहेगा ही। आप कुछ भी करो, मिटाओ, तोड़ो, फोड़ो, कुछ भी करो, वह रहेगा; उसके अस्तित्व को मिटाया नहीं जा सकता। जो चीज अस्तित्व में है, वह शून्य में नहीं जा सकती।

तो चेतना कैसे शून्य में जा सकती है! मैं हूं, इसका अर्थ है कि मैं था और इसका अर्थ है कि मैं रहूंगा। कोई भी हो रूप, कोई भी हो आकार, लेकिन मेरा विनाश असंभव है। विनाश घटता ही नहीं। जगत में केवल परिवर्तन होता है, विनाश होता ही नहीं। न तो कोई चीज निर्मित होती है और न कोई चीज विनष्ट होती है। केवल चीजें बदलती हैं, रूपांतरित होती हैं, नए आकार लेती हैं, पुराने आकार छोड़ देती हैं। लेकिन विनाश असंभव है।

विज्ञान भी स्वीकार करता है कि विनाश संभव नहीं है। धर्म और विज्ञान एक बात में राजी हैं, विनाश असंभव है।

तो रामतीर्थ अगर यह कहते हैं कि मैंने ही बनाया था, तो यह वक्तव्य बड़ा अर्थपूर्ण है। यह किसी पागल का वक्तव्य नहीं है। सच तो यह है कि उस आदमी का वक्तव्य है, जो पागलपन के पार चला गया है। और जो अब यह देख सकता है, अनंतशृंखला जीवन की; और जो अब अपने को अलग नहीं मानता है, उस अनंतशृंखला का एक हिस्सा मानता है।

बाहर से देखने पर बहुत बार पागलों के वक्तव्य और संतों के वक्तव्य एक से मालूम पड़ते हैं; भीतर से खोजने पर उनसे ज्यादा भिन्न वक्तव्य नहीं हो सकते। इसलिए पश्चिम में अगर धर्म की अप्रतिष्ठा होती जा रही है, तो उसमें सबसे बड़ा कारण मनोविज्ञान की अधूरी खोजें हैं। मनोविज्ञान जो बातें कहता है, वे आधी हैं और आधी होने से खतरनाक हैं।

साधारण आदमी बीच में है। साधारण आदमी से जो नीचे गिर जाता है, पागल हो जाता है। वह भी एबनार्मल है, वह भी असाधारण है। साधारण आदमी से जो ऊपर चला जाता है, वह भी एबनार्मल है, वह भी असाधारण है। और पश्चिम दोनों को एक ही मान लेता है। साधारण आदमी से नीचे कोई गिर जाए, तो पागल हो जाता है; ऊपर कोई उठ जाए, तो महर्षि हो जाता है। दोनों असाधारण हैं; दोनों साधारण नहीं हैं। और पश्चिम की यह मूलभूत भ्रांत धारणा है कि साधारण स्वस्थ है। इसलिए साधारण से जो भी हट जाता है, वह अस्वस्थ है।

तो रामकृष्ण अस्वस्थ हैं, बीमार हैं, पैथालाजिकल हैं। उनका इलाज होना चाहिए। हमने जिनकी पूजा की है, पश्चिम उनका इलाज करना चाहेगा।

लेकिन पश्चिम में भी विरोध के स्वर पैदा होने शुरू हो गए हैं। और पश्चिम में भी नए मनोवैज्ञानिकों की एक कतार खड़ी होती जा रही है, जो कह रही है कि हमारी समझ में भ्रांति है। और हम बहुत-से लोगों को इसलिए पागल करार देते हैं कि हमें पता ही नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। उनमें बहुत-से लोग असाधारण प्रतिभा के हैं।

एक बहुत मजे की बात है कि असाधारण प्रतिभा के लोग अक्सर पागल हो जाते हैं। इसलिए पागलपन में और असाधारण प्रतिभा में कोई संबंध मालूम पड़ता है। अगर पिछले पचास वर्षों के सभी असाधारण व्यक्तियों की आप खोजबीन करें, तो उनमें से पचास प्रतिशत कभी न कभी पागल हो गए। पचास प्रतिशत! और जो उनमें श्रेष्ठतम है, वह जरूर एक बार पागलखाने हो आता है। निजिंस्की या वानगाग या मायकोवस्की, नोबल प्राइज पाने वाले बहुत-से लोग जिंदगी में कभी न कभी पागल होने के करीब पहुंच जाते हैं या पागल हो जाते हैं। क्या कारण होगा? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमारे पागलपन की व्याख्या में कुछ भूल है?

असाधारण प्रतिभा का आदमी ऐसी चीजें देखने लगता है, जो साधारण आदमी को दिखाई नहीं पड़तीं। इसलिए साधारण आदमियों से उसका संबंध टूट जाता है। असाधारण प्रतिभा का आदमी ऐसे अनुभव से गुजरने लगता है, जो सबका अनुभव नहीं है। वह अकेला पड़ जाता है। अगर वह आपसे कहे, तो आप भरोसा नहीं करेंगे।

जीसस कहते हैं कि शैतान मेरे पास खड़ा हो गया और मेरे कान में कहने लगा कि तू ऐसा काम कर। मैंने कहा, हट शैतान!

अगर कोई आदमी--आपकी पत्नी, आपका पति आपसे आकर कहे कि आज रास्ते पर अकेला था; शैतान मेरे पास में आ गया और कान में कहने लगा, ऐसा कर। तो आप फौरन संदिग्ध हो जाएंगे। फोन उठाकर डाक्टर को खबर करेंगे कि कुछ गड़बड़ हो गई है।

अगर आपके पति ऐसी खबर दें... । ऋषि कहते हैं, देवताओं से उनकी बात हो रही है। अगर आपकी पत्नी आपसे कहे कि आज सुबह इंद्र देवता से चर्चा हो गई, तो आप क्या करिएगा? दफ्तर जाइएगा? फिर दफ्तर नहीं जाएंगे। आप चिंता में पड़ जाएंगे कि अब बाल-बच्चों का क्या होगा! यह स्त्री पागल हो गई।

और अगर यह आपकी दृष्टि पत्नी या पति के बाबत है, तो आप कितनी ही बातें करते हों, आप उपनिषद और वेद पढ़कर मान नहीं सकते कि ये बातें ज्ञानियों की हैं। आप कितनी ही श्रद्धा दिखाते हों, वह झूठी होगी। क्योंकि भीतर तो आप समझेंगे कि कुछ दिमाग इनका खराब है। कहां देवता! कहां देवियां! यह सब क्या हो रहा है?

रामकृष्ण बातें कर रहे हैं काली से। घंटों उनकी चर्चा हो रही है। अगर आप देख लेते, तो आप क्या समझते? आपको तो काली दिखाई नहीं पड़ती। आपको तो सिर्फ रामकृष्ण बातें करते दिखाई पड़ते।

तो आप पागलखाने में देख सकते हैं, लोग बैठे हैं, अकेले बातें कर रहे हैं, बिना किसी के। दोनों तरफ से जवाब दे रहे हैं। तो स्वभावतः यह ख्याल उठेगा कि कुछ विक्षिप्तता है। विक्षिप्तता में और असाधारणता में कुछ संबंध मालूम पड़ता है। या फिर हमारी व्याख्या की भूल है।

असाधारण व्यक्ति ऐसी चीजों को देख लेते हैं, जो साधारण व्यक्तियों को कभी दिखाई नहीं पड़ सकतीं; और ऐसे अनुभव को उपलब्ध हो जाते हैं, जिसका साधारण व्यक्ति को कभी स्वाद नहीं मिलता। फिर वे ऐसी बातें कहने लगते हैं, जो साधारण व्यक्ति के समझ के पार पड़ती हैं। फिर उनके जीवन में ऐसी घटनाएं होने लगती हैं, जो हमारे तर्क, हमारे नियम, हमारी व्यवस्था को तोड़ती हैं।

हमारी जिंदगी एक राजपथ है, बंधा हुआ रास्ता है। असाधारण लोग रास्ते से नीचे उतर जाते हैं; पगडंडियों पर चलने लगते हैं। और ऐसी खबरें लाने लगते हैं, जिनका हमें कोई भी पता नहीं है, जो हमारे नक्शों में नहीं लिखी हैं, जो हमारी किताबों में नहीं हैं, जो हमारे अनुभव में नहीं हैं। पहली बात यही ख्याल में आती है कि इस आदमी का दिमाग खराब हो गया।

रामकृष्ण भी पागल मालूम पड़ेंगे। रामकृष्ण ही क्यों, रामकृष्ण जैसे जितने लोग हुए हैं दुनिया में कहीं भी, वे सब पागल मालूम पड़ेंगे। लेकिन एक फर्क ख्याल रख लेंगे, तो भेद साफ हो जाएगा।

अगर कोई पागलपन आपको शुद्ध कर जाता हो, अगर कोई पागलपन आपको मौन और शांत और आनंदित कर जाता हो, अगर कोई पागलपन आपको जीवन के उत्सव से भर जाता हो, अगर कोई पागलपन आपके जीवन को चिंता और वासना से छुटकारा दिला देता हो, अगर कोई पागलपन आपके जीवन में संसार का जो बंधन है, जो कष्ट है, जो पीड़ा है, जो जंजीरें हैं, उन सब को तोड़ देता हो, तो ऐसा पागलपन सौभाग्य है और परमात्मा से ऐसे पागलपन की प्रार्थना करनी चाहिए।

और अगर कोई समझदारी आपकी जिंदगी को तकलीफों से भर देती हो, और कोई समझदारी आपकी जिंदगी को पीड़ा और तनाव से घेर देती हो, और कोई समझदारी आपकी जिंदगी को कारागृह बना देती हो, और कोई समझदारी आपको सिवाय दुख और सिवाय नर्क के कहीं न ले जाती हो, तो परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि ऐसी समझदारी से मेरा छुटकारा हो।

यही मैं मूर्च्छा के लिए भी कहूंगा। कोई मूर्च्छा अगर आपके जीवन में आनंद की झलक ले आती हो, तो वह मूर्च्छा चैतन्य से ज्यादा कीमती है। और सिर्फ कोई होश आपको निरंतर तोड़ता जाता हो, तनाव और चिंता से और संताप से भरता हो, तो वह होश मूर्च्छा से बदतर है।

कसौटी क्या है? कसौटी है आपका अंतिम फल, क्या आप हो जाते हैं। ऊपर के लक्षण बिल्कुल मत देखें। परिणाम क्या होता है! अंत में आपके जीवन में कैसे भूल लगते हैं!

तो रामकृष्ण के जीवन में जो फूल लगते हैं, वे किसी पागल के जीवन में नहीं लगते। रामकृष्ण के जीवन से जो सुगंध आती है, वह किसी मूर्च्छित, कोमा में, हिस्टीरिया में पड़ गए व्यक्ति के जीवन से नहीं आती। उसी सुगंध के सहारे हम उन्हें परमहंस कहते हैं। और अगर उस सुगंध की आप फिक्र छोड़ दें, और सिर्फ लक्षण देखें और डाक्टर से जांच करवा लें, तो वे भी मूर्च्छित हैं, और हिस्टीरिया के बीमार हैं, और उनके इलाज की जरूरत है।

दो तरह की चेतना है। एक चेतना जो बाहर के दबाव से पैदा होती है--प्रतिक्रिया, रिएक्शन। उस चेतना को कृष्ण कहते हैं, वह क्षेत्र का ही हिस्सा है, वह छोड़ने योग्य है। एक और चेतना है, जो किसी कारण से पैदा नहीं होती; जो मेरा स्वभाव है, जो मेरा स्वरूप है, जो मेरे भीतर छिपी है, जिसका झरना मैं लेकर ही पैदा हुआ हूं, या ज्यादा उचित होगा कहना कि मैं और उसका झरना एक ही चीज के दो नाम हैं। मैं वह झरना ही हूं।

लेकिन इस झरने का पता तभी चलेगा, जब हम बाहर के आघात से पैदा हुई चेतना से अपने को मुक्त कर लें। नहीं तो हमारा ध्यान निरंतर बाहर चला जाता है और भीतर ध्यान पहुंच ही नहीं पाता। समय ही नहीं मिलता, अवसर ही नहीं मिलता।

हमारी जिंदगी में दो काम हैं। जिसको हम जागना कहते हैं, वह जागना नहीं है। जिसको हम जागना कहते हैं, वह बाहर की चोट में हमारी चेतना का उत्तेजित रहना है। बाहर की चोट में चेतना का उत्तेजित रहना है। और जिसको हम नींद कहते हैं, वह भी नींद नहीं है। वह भी केवल थक जाने की वजह से है। बाहर की उत्तेजना अब हमको उत्तेजित नहीं कर पाती, हम थककर पड़ जाते हैं। जिसको हम नींद कहते हैं, वह थकान है। और जिसको हम जागरण कहते हैं, वह चोटों के बीच चुनाव, चुनौती के बीच हमारे भीतर होती प्रतिक्रिया है।

कृष्ण और बुद्ध और क्राइस्ट दूसरे ढंग से जागते हैं और दूसरे ढंग से सोते हैं। उनकी नींद थकान नहीं है; उनकी नींद विश्राम है। उनका जागरण बाहर का आघात नहीं है; उनका जागरण भीतर की स्फुरणा है। और जो

व्यक्ति थककर नहीं सोया है, वह नींद में भी जागता रहता है। इसलिए कृष्ण ने कहा है कि योगी, जब सब सोते हैं, तब भी जागता है।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह रातभर बैठा रहता है आंखें खोले। कई पागल वैसी कोशिश भी करते हैं कि रातभर आंखें खोले बैठे रहो। क्योंकि योगी रात सोता नहीं है। इसलिए नासमझ यह सोचने लगते हैं कि अगर रात न सोए, तो योगी बन जाएंगे! या नींद कम करो--चार घंटा, तीन घंटा, दो घंटा--जितना कम सोओ, कम से कम उतने योगी हो गए।

कृष्ण का वैसा मतलब नहीं है। योगी भरपूर सोता है; आपसे ज्यादा सोता है; आपसे गहरा सोता है। लेकिन उसकी नींद शरीर में घटती है, क्षेत्र में घटती है; क्षेत्रज्ञ जागा रहता है। शरीर विश्राम में होता है, भीतर वह जागा होता है। वह रात करवट भी बदलता है, तो उसे करवट बदलने का होश होता है। रात उसकी बेहोश नहीं है।

और ध्यान रहे, उसकी रात बेहोश नहीं है--कृष्ण ने दूसरी बात नहीं कही है, वह भी मैं आपसे कहता हूं--आपका दिन भी बेहोश है। योगी रात में भी जागता है; भोगी दिन में भी सोता है। इसका यह मतलब नहीं है कि दिन में अगर आप घंटे, दो घंटे सो जाते हों, उससे मेरा मतलब नहीं है। भोगी दिन में भी सोता है, उसका मतलब यह है कि उसके भीतर की चेतना तो जागती ही नहीं। केवल आघात, चोट उसको जगाए रखती है।

अभी मनसविद कहते हैं कि जितना शोरगुल चल रहा है दुनिया में, बड़े शहरों में, उसकी वजह से लोग बहरे होते जा रहे हैं। और सौ साल अगर इसी रफ्तार से काम आगे जारी रहा, तो सौ साल के बाद शहरों में कान वाला आदमी मिलना मुश्किल हो जाएगा। इतना आघात पड़ रहा है कि कान धीरे-धीरे जड़ हो जाएंगे। वैसे अभी भी आप बहुत कम सुनते हैं; और अच्छा ही है। अगर सब सुनें, जो हो रहा है चारों तरफ, तो आप पागल हो जाएंगे।

और इसलिए आज नए बच्चे हैं, तो रेडियो बहुत जोर से चलाते हैं। धीमी आवाज से चेतना में कोई चोट ही नहीं पड़ती, काफी शोरगुल हो। नए जो संगीत हैं, नए युवक-युवतियों के जो नृत्य हैं, वे भयंकर शोरगुल से भरे हैं। जितना शोरगुल हो उतना ही अच्छा, थोड़ा अच्छा लगता है। क्योंकि छोटे-मोटे शोरगुल से तो कोई चोट ही नहीं पैदा होगी। तेज चुनौती चाहिए, तेज आघात चाहिए, तो थोड़ा-सा रस मालूम होता है कि पैदा हो रहा है। लेकिन यह कब तक चलेगा?

पश्चिम में उन्होंने नए रास्ते निकाले हैं। केवल चोट से भी काम नहीं चलता, तो बहुत तरह के प्रकाश लगा लेते हैं। प्रकाश बदलते रहते हैं तेजी से। बहुत जोर से शोर मचता रहता है। कई तरह के नाच, कई तरह के गीत चलते रहते हैं। एक बिल्कुल विक्षिप्त अवस्था हो जाती है। तब घंटेभर उस विक्षिप्त अवस्था में रहकर किसी आदमी को लगता है, कुछ जिंदगी है; कुछ जीवन का अनुभव होता है!

हम इतने मर गए हैं कि जब तक बहुत चोट न हो, तो जीवन का भी कोई अनुभव नहीं होता। धीमे स्वर तो हमें सुनाई ही न पड़ेंगे। और जीवन के नैसर्गिक स्वर सभी धीमे हैं। वे हमें सुनाई नहीं पड़ेंगे। रात का सन्नाटा हमें सुनाई नहीं पड़ेगा। हृदय की अपनी धड़कन हमें सुनाई नहीं पड़ेगी।

आपने कभी अपने खून की चाल की आवाज सुनी है? वह बहुत धीमी है; वह सुनाई नहीं पड़ेगी। लेकिन आवाज तो हो रही है। बक मिनिस्टर फुलर ने लिखा है कि मैं पहली दफा एक ऐसे भवन में गया, एक विज्ञान की प्रयोगशाला में, जो पूर्णरूपेण साउंड-प्रूफ थी, जहां कोई आवाज बाहर से भीतर नहीं जा सकती थी। लेकिन

मुझे भीतर दो तरह की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं। तो मुझे जो वैज्ञानिक दिखाने ले गया था, उससे मैंने पूछा कि यह क्या बात है! आप तो कहते हैं, एब्सोल्यूट साउंड-प्रूफ है। लेकिन यहां दो तरह की आवाजें आ रही हैं!

तो वैज्ञानिक हंसने लगा। उसने कहा, वे आवाजें बाहर से नहीं आ रही हैं, वह आपके खून की चाल की आवाज है। आपका हृदय धड़क रहा है, वह आपने कभी ठीक से सुना नहीं। अब यहां कोई आवाज नहीं है, तो आपके हृदय की धड़कन जोर से आ रही है। और आपका खून जो चल रहा है शरीर के भीतर, उसमें जो घर्षण हो रहा है, उसकी आवाज आ रही है। ये दो आवाजें आपके भीतर हैं। आप अंदर ले आए। बाहर से कोई आवाज भीतर नहीं आ सकती।

आपने कभी अपने खून की आवाज सुनी है? नहीं सुनी है। खून की आवाज तो आपको सुनाई नहीं पड़ती है और बहुत-से लोग बैठकर भीतर ओंकार का नाद सुनने की कोशिश करते हैं! वह अति सूक्ष्म है; वह आपको कभी सुनाई नहीं पड़ सकती।

अब यह खून की आवाज तो स्थूल आवाज है; जैसे झरने की आवाज होती है, वैसे खून की भी आवाज है। लेकिन वही आपको सुनाई नहीं पड़ी; आप सोच रहे हैं कि ओंकार का नाद सुनाई पड़ जाए! वह तो परम गूढ़, परम सूक्ष्म, आखिरी आवाज है। जब सब तरह से व्यक्ति पूर्ण शांत हो जाता है, तभी वह सुनाई पड़ती है। तब भीतर निनाद होने लगता है; तब वह जो ओम भीतर गूंजता है, वह पैदा हुआ ओम नहीं है। इसलिए हमने उसको अनाहत नाद कहा है।

आहत नाद का अर्थ है, जो चोट से पैदा हो। अनाहत नाद का अर्थ है, जो बिना चोट के अपने आप पैदा होता रहे। वह सुनाई पड़ेगा। लेकिन तब हमें अपनी चेतना को बाहर के आघात से छुटकारा कर लेना जरूरी है।

रामकृष्ण जब मूर्च्छित हैं, तब उन्होंने बाहर की तरफ से अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लिए हैं। अब वे भीतर का अनाहत नाद सुन रहे हैं। अब उन्हें भीतर का ओंकार सुनाई पड़ रहा है।

लेकिन हर से मूर्च्छित होना जरूरी नहीं है। और भी विधियां हैं, जिनमें बाहर भी होश रखा जा सकता है और भीतर भी। लेकिन वे थोड़ी कठिन हैं, क्योंकि दोहरी प्रक्रिया हो जाती है।

बुद्ध कभी बेहोश नहीं हुए। रामकृष्ण जैसा बेहोश होकर गिरे, ऐसा बुद्ध के जीवन में कोई उल्लेख नहीं है कि वे बेहोश हुए हों। न कृष्ण के जीवन में हमने सुना है, न जीसस के जीवन में सुना है, न मोहम्मद के जीवन में सुना है कि बेहोश हो गए। रामकृष्ण के जीवन में वैसी घटना है। और कुछ संतों के जीवन में वैसी घटना है।

तो बुद्ध कभी बेहोश नहीं हुए बाहर से भी। तो बुद्ध की प्रक्रिया रामकृष्ण की प्रक्रिया से ज्यादा कठिन है। बुद्ध कहते हैं, दोनों तरफ होश रखा जा सकता है, भीतर भी और बाहर भी। जरूरत नहीं है बाहर से बंद करने की। बाहर भी होश रखा जा सकता है और भीतर भी। हम बीच में खड़े हो सकते हैं। वह जो परम चेतना है, बाहर और भीतर के बीच की देहली पर खड़ी हो सकती है। और दोनों तरफ होश रख सकते हैं।

लेकिन अति जटिल है बात। इसलिए उचित है कि रामकृष्ण की तरफ से ही चलें; दूसरी घटना भी घट जाएगी बाद में। रामकृष्ण ने आधा काम बांट लिया है। बाहर की तरफ से होश छोड़ दिया है, सारा होश भीतर ले गए हैं। एक दफा भीतर का होश सध जाए, तो फिर बाहर भी होश साधा जा सकता है।

रामकृष्ण का प्रयोग सरल है बुद्ध के प्रयोग से। और साधारण आदमी को रामकृष्ण का प्रयोग ज्यादा आसान है, बजाय बुद्ध के प्रयोग के। क्योंकि बुद्ध के प्रयोग में दो काम एक साथ साधने पड़ेंगे; ज्यादा समय लगेगा; और ज्यादा कठिनाई होगी; और अत्यंत अड़चनों से गुजरना पड़ेगा। रामकृष्ण की प्रक्रिया बड़ी सरल है।

बाहर को छोड़ ही दें एक बार और भीतर ही डूब जाएं। एक दफा भीतर का रस अनुभव में आ जाए, तो फिर बाहर भी उसे जगाए रखा जा सकता है।

एक और मित्र ने पूछा है कि ऐसा सुना है कि देवताओं को भी अगर मुक्ति चाहिए हो, तो मनुष्य का शरीर धारण करना पड़ता है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के बीच का तादात्म्य टूटना क्या देव-योनि में संभव नहीं है? मनुष्य होने की क्या जरूरत है? अगर क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का संबंध टूटने से ही परम ज्ञान घटित होता है, तो देवता इस संबंध को क्यों नहीं तोड़ सकते? इसके लिए मनुष्य के शरीर में आने की जरूरत क्या है?

बडा टेक्निकल, थोड़ा तकनीकी सवाल है। लेकिन समझने जैसा है और आपके काम का भी है। देवता तो यहां मौजूद नहीं हैं, लेकिन आपके भी काम का है, क्योंकि आपको भी कुछ बात समझ में आ सकेगी।

देव-योनि से मुक्ति संभव नहीं, इसका बड़ा गहरा कारण है। और मनुष्य-योनि से मुक्ति संभव है, बड़ी गहरी बात है। और इससे आप यह मत सोचना कि कोई मनुष्य-योनि का बड़ा गौरव है इसमें। ऐसा मत सोच लेना। कुछ अकड़ मत जाना इससे कि देवताओं से भी ऊंचे हम हुए, क्योंकि इस मनुष्य-योनि से ही मुक्ति हो सकती है।

नहीं; ऊंचे-नीचे का सवाल नहीं है; अकड़ने की कोई बात नहीं है। सच तो, अगर ठीक से समझें, तो थोड़ा दीन होने की बात है। कारण यह है कि देव-योनि का अर्थ है कि जहां सुख ही सुख है। और जहां सुख ही सुख है, वहां मूर्च्छा घनी हो जाती है। दुख मूर्च्छा को तोड़ता है। दुख मुक्तिदायी है। पीड़ा से छूटने का मन होता है। सुख से छूटने का मन ही नहीं होता।

आप भी संसार से छूटना चाहते हैं, तो क्या इसलिए कि सुख से छूटना चाहते हैं? दुख से छूटना चाहते हैं। दुख से छूटना चाहते हैं, इसलिए संसार से भी छूटना चाहते हैं। अगर कोई आपको तरकीब बता दे कि संसार में भी रहकर और दुख से छूटने का उपाय है, तो आप मोक्ष का नाम भी न लेंगे। आप भूलकर फिर मोक्ष की बात न करेंगे। फिर आप कृष्ण वगैरह को कहेंगे कि आप जाओ मोक्ष। हम यहीं रहेंगे। क्योंकि दुख तो छोड़ा जा सकता है, सुख मिल सकता है, फिर मोक्ष की क्या जरूरत है?

संसार को छोड़ने का सवाल ही इसलिए उठता है कि अगर हम दुख को छोड़ना चाहते हैं, तो सुख को भी छोड़ना पड़ेगा। वे दोनों साथ जुड़े हैं।

संसार में सुख और दुख मिश्रित हैं। सब सुखों के साथ दुख जुड़ा हुआ है। सुख पकड़ा नहीं कि दुख भी पकड़ में आ जाता है। आप सुख को लेने गए और दुख की जकड़ में फंस जाते हैं। सुख चाहा और दुख के लिए दरवाजा खुल जाता है।

स्वर्ग या देव-योनि का अर्थ है, जहां सुख ही सुख है। जहां सुख ही सुख है, वहां छोड़ने का ख्याल ही न उठेगा। इसलिए देवता गुलाम हो जाते हैं, छोड़ने का ख्याल ही नहीं उठता।

नरक से भी मुक्ति नहीं हो सकती और स्वर्ग से भी मुक्ति नहीं हो सकती। जिन्होंने ये वक्तव्य दिए हैं, उन्होंने बड़ी गहरी खोज की है। क्योंकि नरक में दुख ही दुख है, और अगर दुख ही दुख हो, तो आदमी दुख का आदी हो जाता है। यह थोड़ा समझ लें।

अगर दुख ही दुख जीवन में हो, सुख की कोई भी अनुभूति न हो, तो आदमी दुख का आदी हो जाता है। और जहां सुख का कोई अनुभव ही न हो, वहां सुख की आकांक्षा भी धीरे-धीरे तिरोहित हो जाती है। सुख की आकांक्षा वहीं पैदा होती है, जहां आशा हो।

इसलिए दुनिया में जितनी सुख की आशा बढ़ती है, उतना दुख बढ़ता जाता है। पांच सौ साल पीछे शूद्र इतने ही दुख में था, जितना आज दुख में है। शायद ज्यादा दुख में था। लेकिन दुखी नहीं था, क्योंकि उसे कभी ख्याल ही नहीं था कि शूद्र के अतिरिक्त कुछ होने का उपाय है। अब उसे पता है; अब आशा खुली है। अब उसे पता है कि शूद्र होना जरूरी नहीं है, वह ब्राह्मण भी हो सकता है। शूद्र होना अनिवार्य नहीं है। अब गांव की सड़क ही साफ करना जिंदगी की कोई अनिवार्यता नहीं है; अब वह राष्ट्रपति भी हो सकता है। आशा का द्वार खुल गया है।

अब वह सड़क पर बुहारी तो लगा रहा है, लेकिन बड़े दुख से। वहीं वह पांच सौ साल पहले भी बुहारी लगा रहा था, लेकिन तब कोई दुख नहीं था। क्योंकि दुख इतना मजबूत था, उसके बाहर जाने की कोई आशा नहीं थी, कोई उपाय नहीं था, इसलिए बात ही खतम हो गई थी।

नरक में कोई साधना नहीं करता, और स्वर्ग में भी कोई साधना नहीं करता। क्योंकि नरक में दुख इतना गहन है और आशा का कोई उपाय नहीं है, कि आदमी उस दुख से ही राजी हो जाता है। जब दुख आखिरी हो, तो हम राजी हो जाते हैं। जब तक आशा रहती है, तब तक हम लड़ते हैं।

इसे थोड़ा समझ लें। जब तक आशा रहती है, तब तक हम लड़ते हैं। और जहां तक आशा रहती है, वहां तक हम लड़ते हैं। और जब आशा टूट जाती है, हम शांत होकर बैठ जाते हैं। लड़ाई खतम हो गई।

स्वर्ग में भी कोई साधना नहीं करता है, क्योंकि सुख से छूटने का ख्याल ही नहीं उठता। सुख से छूटने का कोई सवाल ही नहीं है।

मनुष्य दोनों के बीच में है। मनुष्य दोनों है, नरक भी और स्वर्ग भी। मनुष्य आधा नरक और आधा स्वर्ग है। और दोनों मिश्रित है। वहां दुख भी सघन है और सुख की आशा भी। और हर सुख के बाद दुख मिलता है, यह अनुभूति भी है। इसलिए मनुष्य चौराहा है; उसके नीचे नरक है, उसके ऊपर स्वर्ग है। स्वर्ग में आदमी सुख से राजी हो जाता है, नरक में दुख से राजी हो जाता है; मनुष्य की अवस्था में किसी चीज से कभी राजी नहीं हो पाता। मनुष्य असंतोष है। वह असंतुष्ट ही रहता है। कुछ भी हो, संतोष नहीं होता। इसलिए साधना का जन्म होता है।

जहां असंतोष अनिवार्य हो, कोई भी स्थिति हो। आप झोपड़े में हों, तो दुखी होंगे; और आप महल में हों, तो दुखी होंगे। आपका होना, मनुष्य का होना ही ऐसा है कि वह तृप्त नहीं हो सकता। अतृप्ति वहां बनी ही रहेगी। उसके होने के ढंग में ही उपद्रव है। वह बीच की कड़ी है। आधा उसमें स्वर्ग भी झांकता है, आधा नरक भी झांकता है।

मनुष्य के पास अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। वह आधा-आधा है; अधूरा-अधूरा है; सीढ़ी पर लटका हुआ है; त्रिशंकु की भांति है। इसलिए जो मनुष्य साधना नहीं करता, वह असाधारण है। जो मनुष्य साधना में नहीं उतरता, वह असाधारण है। नरक में नहीं उतरता, समझ में आती है बात। स्वर्ग में नहीं उतरता, समझ में आती है। अगर आप साधना में नहीं उतरते, तो आप चमत्कारी हैं। क्योंकि आपका होना ही असंतोष है। और अगर आपको इस असंतोष से भी साधना का ख्याल पैदा नहीं होता, तो आश्चर्य है।

जगत में बड़े से बड़ा आश्चर्य यह है कि कोई मनुष्य हो और साधक न हो। यह बड़े से बड़ा आश्चर्य है। स्वर्ग में देवता होकर कोई साधक हो, यह आश्चर्य की बात होगी। नरक में होकर कोई साधक हो, यह भी आश्चर्य की बात होगी। मनुष्य होकर कोई साधक न हो, यह बड़े आश्चर्य की बात है। क्योंकि आपके होने में असंतोष है। और असंतोष से कोई कैसे तृप्त हो सकता है! साधना का इतना ही मतलब है कि जैसा मैं हूं, उससे मैं राजी नहीं हो सकता; मुझे स्वयं को बदलना है।

इसलिए मनुष्य को चौराहा कहा है ज्ञानियों ने। स्वर्ग से भी लौट आना पड़ेगा। जब पुण्य चुक जाएंगे, तो सुख से लौट आना पड़ेगा। और जब पाप चुक जाएंगे, तो नरक से लौट आना पड़ेगा।

और मनुष्य की योनि से तीन रास्ते निकलते हैं। एक, दुख अर्जित कर लें, तो नरक में गिर जाते हैं; सुख अर्जित कर लें, तो स्वर्ग में चले जाते हैं। लेकिन दोनों ही क्षणिक हैं, और दोनों ही छूट जाएंगे। जो भी अर्जित किया है, वह चुक जाएगा, खर्च हो जाएगा। ऐसी कोई संपदा नहीं होती, जो खर्च न हो। कमाई खर्च हो ही जाएगी।

नरक भी चुक जाएगा, स्वर्ग भी चुक जाएगा, जब तक कि यह ख्याल न आ जाए कि एक तीसरा रास्ता और है, जो कमाने का नहीं, कुछ अर्जित करने का नहीं, बल्कि जो भीतर छिपा है, उसको उघाड़ने का है। स्वर्ग भी कमाई है, नरक भी। और आपके भीतर जो परमात्मा छिपा है, वह कमाई नहीं है; वह आपका स्वभाव है। वह मौजूद ही है। जिस दिन आप स्वर्ग और नर्क की तरफ जाना बंद करके स्वयं की तरफ जाना शुरू कर देते हैं, उस दिन फिर लौटने की कोई जरूरत नहीं है।

मुसलमान फकीर औरत हुई है, राबिया। एक दिन लोगों ने देखा कि वह बाजार में भागी जा रही है। उसके एक हाथ में पानी का एक कलश है और एक हाथ में एक जलती हुई मशाल है। लोगों ने कहा कि राबिया, क्या तू पागल हो गई? शक तो हमें बहुत बार होता था तेरी बातें सुनकर कि तू पागल हो गई है। अब तूने यह क्या किया है! यह क्या खेल, नाटक कर रही है? कहां भागी जा रही है? और यह पानी और यह मशाल किसलिए?

तो राबिया ने कहा कि इस पानी में मैं तुम्हारे नर्क को डुबाना चाहती हूं और इस मशाल से तुम्हारे स्वर्ग को जलाना चाहती हूं। और जब तक तुम स्वर्ग और नरक से न छूट जाओ, तब तक तुम्हारा परमात्मा से कोई मिलना नहीं हो सकता।

अब हम सूत्र को लें।

और हे अर्जुन, श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दंभाचरण का अभाव, प्राणिमात्र को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमा-भाव, मन-वाणी की सरलता, श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अंतःकरण की स्थिरता, मन और इंद्रियों सहित शरीर का निग्रह तथा इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुख और दोषों का बारंबार दर्शन करना, ये सब ज्ञान के लक्षण हैं।

कौन है ज्ञानी? क्योंकि कल कृष्ण ने कहा कि ज्ञानी जान लेता है तत्व से इस बात को कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अलग हैं। तो जरूरी है, अब हम समझ लें कि ज्ञानी कौन है? कौन जान पाएगा इस भेद को? कौन इस भेद को जानकर अभेद को उपलब्ध होगा? तो अब ज्ञानी के लक्षण हैं। एक-एक लक्षण पर ख्याल कर लेना जरूरी है।

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव--शुरू बात, क्योंकि ज्ञान के साथ तत्क्षण श्रेष्ठता का भाव पैदा होता है कि मैं श्रेष्ठ हूं, दूसरे निकृष्ट हैं; मैं जानता हूं, दूसरे नहीं जानते हैं; मैं ज्ञानी हूं, दूसरे अज्ञानी हैं। ज्ञान के साथ जो सबसे पहला रोग, जिससे बचना जरूरी है, वह श्रेष्ठता का अहंकार है।

ब्राह्मण की अकड़ हम देखते हैं। अब उसकी कम होती जा रही है, क्योंकि चारों तरफ से उस पर हमला पड़ रहा है। नहीं तो ब्राह्मण की अकड़ थी। ब्राह्मण की शक्ल ही देखकर कह सकते हैं कि वह ब्राह्मण है। उसके नाक का ढंग, उसके आंख का ढंग, उसके चेहरे का रोब! चाहे वह भीख मांगता हो, लेकिन फिर भी ब्राह्मण पहचाना जा सकता है कि वह ब्राह्मण है। उसकी आंख, उसका श्रेष्ठता का भाव, एक अरिस्टोक्रेसी, एक गहरा आभिजात्य, भीतर मैं श्रेष्ठ हूं! चाहे वह नंगा फकीर हो, चाहे कपड़े फटे हों, चाहे हाथ में भिक्षा का पात्र हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन भीतर एक दीप्ति श्रेष्ठता की जलती रहेगी।

एक बड़े मजे की घटना घटी है मनुष्य के इतिहास में। और वह यह कि हिंदुस्तान में हमने ब्राह्मण को क्षत्रिय के ऊपर रख दिया था; तलवार के ऊपर ज्ञान को रख दिया था। इसलिए हिंदुस्तान में कभी क्रांति नहीं हो सकी। क्योंकि दुनिया में जब भी कोई उपद्रव होता है, उसकी जड़ में ब्राह्मण होता है। कहीं भी हो, समझदार ही उपद्रव करवा सकता है; नासमझ तो पीछे चलते हैं। अगर यह पश्चिम में इतनी क्रांति की बात चलती है... ।

मार्क्स को मैं ब्राह्मण कहता हूं। लेनिन को, ट्राटस्की को ब्राह्मण कहता हूं। ब्राह्मण का मतलब, इंटेलिजेंसिया; वह जो सोचती है, विचारती है। उस सोचने-विचारने वाले की श्रेष्ठता को अगर आपने जरा भी चोट पहुंचाई, तो वह उपद्रव खड़ा कर देता है। वह फौरन लोगों को भड़का देता है।

सिर्फ हिंदुस्तान अकेला मुल्क है, जहां पांच हजार साल में कोई क्रांति नहीं हुई। इसका राज क्या है? सारी दुनिया में क्रांति हुई, हिंदुस्तान में क्रांति नहीं हुई। उसका सीक्रेट क्या है? सीक्रेट है कि हमने ब्राह्मण को, जो उपद्रव कर सकता है, उसको पहले ही ऊपर रख दिया। उसको कहा कि तू तो श्रेष्ठ है।

फिर एक बड़े मजे की घटना घटी कि ब्राह्मण भूखा मरता रहा, दीन रहा, दुखी रहा, लेकिन कभी उसने बगावत की बात नहीं की, क्योंकि उसकी भीतरी श्रेष्ठता सुरक्षित है। और जब वह श्रेष्ठ है, तो कोई दिक्कत नहीं है।

रूस फिर इसका अनुगमन कर रहा है। कोई सोच भी नहीं सकता, लेकिन रूस इसका फिर अनुगमन कर रहा है। आज रूस ने सब वर्ग तो मिटा दिए, लेकिन ब्राह्मण को ऊपर बिठा रखा है। जिसको वे एकेडेमीसिएंस कहते हैं वहां। वे जितने भी बुद्धिवादी लोग हैं--लेखक हैं, कवि हैं, वैज्ञानिक हैं, डाक्टर हैं, वकील हैं--जिनसे उपद्रव की कोई भी संभावना है, उनका एक आभिजात्य वर्ग बना दिया है।

रूस में लेखक इतना समादृत है, जितना जमीन पर कहीं भी नहीं। कवि इतना समादृत है, जितना जमीन पर कहीं भी नहीं। वैज्ञानिक, सोचने-समझने वाला आदमी समादृत है। उसको ऊपर बिठा दिया है। उसको फिर ब्राह्मण की कोटि में रख दिया है। रूस में क्रांति तब तक नहीं हो सकती अब, जब तक यह ब्राह्मण का आभिजात्य न टूटे।

दो प्रयोग हुए हैं। हिंदुस्तान ने प्रयोग किया था पांच हजार साल पहले। रूस उसका अनुकरण कर रहा है, जाने-अनजाने। ब्राह्मण को ऊपर बिठा दो, फिर उपद्रव नहीं होगा। उसकी श्रेष्ठता सुरक्षित रहे, फिर कोई बात नहीं है। भीख मांग सकता है वह, लेकिन उसकी भीतरी अकड़ कायम रहनी चाहिए। आप उसको सिंहासन पर भी बिठा दो और कहो कि विनम्र हो जाओ, भीतर की अकड़ छोड़ दो, वह सिंहासन को लात मार देगा। ऐसे सिंहासन का कोई मूल्य नहीं है। उसे भीतर का सिंहासन चाहिए।

जैसे ही किसी व्यक्ति को ज्ञान का जरा-सा स्वाद लगता है कि एक भीतरी श्रेष्ठता पैदा होनी शुरू हो जाती है। उसकी चाल बदल जाती है। उसकी अकड़ बदल जाती है।

कृष्ण कहते हैं, ज्ञान का लेकिन पहला लक्षण वे कह रहे हैं, श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव।

ब्राह्मण को विनयी होना चाहिए; यह उसका पहला लक्षण है। यह होता नहीं। नहीं होता, इसीलिए पहला लक्षण बताया। जो नहीं होता, उसकी चिंता पहले कर लेनी चाहिए। जो बहुत कठिन है, उसकी फिक्र पहले कर लेनी चाहिए।

ज्ञान आए, तो उसके साथ-साथ विनम्रता बढ़ती जानी चाहिए। अगर ज्ञान के साथ विनम्रता न बढ़े, तो ज्ञान जहर हो जाता है। ज्ञान के साथ विनम्रता समानुपात में बढ़ती जाए, तो ज्ञान जहर नहीं हो पाता और अमृत हो जाता है।

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दंभाचरण का अभाव... ।

आचरण दो तरह से होता है। एक तो आचरण होता है, सहज-स्फूर्त। और एक आचरण होता है, दंभ आयोजित। आप रास्ते पर जा रहे हैं और एक भूखा आदमी हाथ फैला देता है। आप दो पैसे उसके हाथ में रख देते हैं, सहज दया के कारण, वह भूखा है इसलिए।

लेकिन रास्ते पर कोई भी नहीं है, अकेले हैं, और भूखा आदमी हाथ फैलाता है, आप बिना देखे निकल जाते हैं। रास्ते पर लोग देखने वाले मौजूद हैं, तो आप दो पैसे दे देते हैं। अगर साथ में मित्र मौजूद हैं, या ऐसा समझ लीजिए कि आपकी लड़की की शादी हो रही है और लड़का लड़की को देखने आया है, वह आपके साथ है, और भिखमंगा हाथ फैला देता है; दो पैसे की जगह आप दो रुपए दे देते हैं।

ये दो रुपए आप दामाद को दे रहे हैं, होने वाले दामाद को। आप एक दंभ का आचरण कर रहे हैं। आप उसको दिखला रहे हैं कि मैं क्या हूं! इसका भिखारी से कोई लेना-देना नहीं है। भिखारी से कोई संबंध ही नहीं है। भिखारी को आपने पैसे दिए ही नहीं। और आपको कोई न भीतर दया है, न कोई करुणा है, न कोई सवाल है। आप एक दंभ आरोपित कर रहे हैं, एक आयोजन कर रहे हैं। तो आप अच्छे आदमी भी हो सकते हैं दंभ-आचरण के कारण।

ध्यान रहे, सहज बुरा आदमी भी बेहतर है। कम से कम सहज तो है। और जो सहज है, वह कभी अच्छा हो सकता है। क्योंकि बुराई दुख देती है। दुख कोई भी नहीं चाहता। आज नहीं कल सुख की तरफ जाएगा; खोजेगा; तो बुराई को छोड़ेगा। लेकिन हम झूठे अच्छे आदमी हैं। यह बहुत खतरनाक स्थिति है। झूठे अच्छे आदमी का मतलब है कि हम अच्छे बिल्कुल नहीं हैं और बाहर हमने एक अच्छा आरोपण कर रखा है। रिस्पेक्टिबिलिटी... ।

मां-बाप बच्चों से कहते हैं कि देख, इज्जत मत गंवा देना, हमारा ख्याल रखना, किसका बेटा है। वे उसको यह नहीं कह रहे हैं कि अच्छा काम करना अच्छा है। वे यह कह रहे हैं, अच्छा काम करना अहंकार-पोषक है। वे यह कह रहे हैं, घर की इज्जत का ख्याल रखना। वे उससे यह नहीं कह रहे हैं कि अच्छे होने में तेरा आनंद होना चाहिए। वे यह कह रहे हैं, घर की इज्जत का सवाल है, प्रतिष्ठा का सवाल है, वंश का सवाल है।

वे उसको अहंकार सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि समझना कि तू किसका बेटा है। वे उसको झूठ सिखा रहे हैं। वह लड़का अब दंभ से आचरण करेगा। वह अच्छा भी होगा, तो अच्छे के पीछे भी वासना यही होगी कि आदर-सम्मान मिले।

रिस्पेक्टिबिलिटी दंभाचरण है, आदर की तलाश। लेकिन हमने सारा आचरण आदर पर खड़ा कर रखा है। हम एक-दूसरे को यही समझा रहे हैं, सिखा रहे हैं। सारी शिक्षा, सारा संस्कार, कि अगर बुरे हुए, तो बेइज्जती होगी। और बेइज्जती से आदमी डरता है, इसलिए बुरा नहीं होता।

आपको असलियत का तो तब पता चले, जब आप लोगों से कह दें कि कोई फिक्र नहीं, बुरे हो जाओ, बेइज्जती नहीं होगी। और अगर हम एक ऐसा समाज बना लें, जिसमें बुरे होने से बेइज्जती न होती हो, तब आपको पता चलेगा कि कितने आदमी अच्छे हैं। अभी तो बुराई से बेइज्जती मिलती है, अहंकार को चोट लगती है, तो आदमी अच्छा होने की कोशिश करता है। अच्छे होने की आकांक्षा में भी अच्छे होने का ख्याल नहीं है, अच्छे होने की आकांक्षा में अहंकार का पोषण है।

कृष्ण कहते हैं ज्ञानी के लिए लक्षणों में, दंभाचरण का अभाव। वह आचरण सहज करेगा; जो ठीक लगता है, वही करेगा। जो आनंदपूर्ण है, वही करेगा। सिर्फ इसलिए कुछ नहीं करेगा कि लोग क्या कहेंगे। लोग अच्छा कहेंगे या बुरा कहेंगे, यह उसकी विचारधारा न होगी।

हम तो हर समय यही सोचते हैं कि लोग क्या कहेंगे। लोगों की हमारी फिक्र इतनी ज्यादा है कि अगर मैं आपको कह दूं कि कल सुबह आप मरने वाले हैं, तो जो आपको पहले ख्याल आएगा, वह यह है कि मरघट मुझे कौन लोग पहुंचाने जाएंगे। फलां आदमी जाएगा कि नहीं? मिनिस्टर जाएगा कि नहीं? गवर्नर जाएगा कि नहीं? मरने के बाद अखबार में मेरी खबर छपेगी कि नहीं? लोग क्या कहेंगे?

बहुत लोगों के मन में यह इच्छा होती है कि मरने के बाद लोग मेरे संबंध में क्या कहेंगे, उसका कुछ पता चल जाए। इस तरह की लोगों ने कोशिश भी की है।

एक आदमी ने, राबर्ट रिप्ले ने अपने मरने की खबर उड़ा दी। सिर्फ इसलिए कि अखबारों में पता चल जाए, और कौन-कौन क्या-क्या कहता है, उसे मैं एक दफा पढ़ तो लूं। वह मरने के ही करीब था, डाक्टरों ने कहा था कि अब बस, चौबीस घंटे, छत्तीस घंटे से ज्यादा नहीं बच सकते। तो उसने अपने सेक्रेटरी को बुलाया और कहा कि तू एक काम कर। तू खबर कर दे कि मैं मर गया। मैं अपनी खबर अखबारों में पढ़ लेना चाहता हूं कि मेरे मरने के बाद लोग मेरे संबंध में क्या कहते हैं।

दूसरे दिन जब उसने खबर पढ़ ली और अच्छी-अच्छी बातें पढ़ लीं उसके संबंध में, क्योंकि मरने के बाद लोग अच्छी बातें कहते ही हैं, शिष्टाचारवश। और शायद इसलिए भी कि जब हम मरेंगे, तो लोग भी ख्याल रखेंगे। बाकी और तो कुछ खास बात... ।

जब आप किसी आदमी के संबंध में सुनें कि सभी लोग अच्छी बातें कर रहे हैं, समझ लेना कि मर गया। नहीं तो जिंदा आदमी के बाबत सभी लोग अच्छी बात कर ही नहीं सकते। बड़ा कठिन है, बड़ा कठिन है।

अखबारों में अच्छी बातें सुनकर रिप्ले बहुत संतुष्ट हो गया। और उसने कहा कि अब अखबार वालों को खबर कर दो कि मेरी तस्वीर निकाल लें मरने की खबर पढ़ते हुए। मैं मनुष्य-जाति के इतिहास का पहला आदमी हूं, जिसने अपने मरने की खबर पढ़ी। फिर उसने अखबारों में दूसरी खबर छपवाई।

निश्चित ही वह पहला आदमी था, जिसने अपने मरने की खबर पढ़ी और जिसने अपनी मृत्यु पर लोगों के द्वारा दिए गए संदेश पढ़े।

दूसरों की फिक्र इतनी है कि आदमी मरते क्षण में भी अपनी फिक्र नहीं करता। जिंदगी की तो बात ही अलग, मौत भी आ रही हो, तो दूसरों की चिंता होती है।

आप यह जो दूसरों की चिंता करके जीते हैं, तो आपका सारा आचरण दंभ-आचरण होगा।

ज्ञानी सहज जीएगा; उसके भीतर जो है, वैसा ही जीएगा; परिणाम जो भी हो। दुख मिले, तो दुख झेलने को राजी रहेगा। सुख मिले, तो सुख झेलने को राजी रहेगा। समभाव से जो भी परिणाम हो, उसको झेलेगा, लेकिन जीएगा सहजता से। आपकी तरफ देखकर नहीं जीएगा। वह किसी तरह का आरोपण, किसी तरह का मुखौटा, किसी तरह के वस्त्र आपकी नजर से नहीं पहनेगा। उसे जो ठीक लगेगा, जो उसका आंतरिक आनंद होगा।

दंभाचरण का अभाव, प्राणिमात्र को किसी प्रकार भी न सताना... ।

वह भी ज्ञान का लक्षण है। क्यों? क्योंकि जितना ही हम किसी को सताते हैं, उतने ही हम सताए जाते हैं। यह कोई दूसरे पर दया करने के लिए नहीं है ज्ञानी का लक्षण। यह सिर्फ ज्ञानी की बुद्धिमत्ता है, उसका सहज बोध है, कि जब मैं किसी को सताता हूं, तो मैं अपने सताने के लिए आयोजन कर रहा हूं।

सिर्फ अज्ञानी ही दूसरे को सता सकता है, क्योंकि उसका मतलब है कि उसे पता ही नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूं। अपने लिए ही कांटे बो रहा हूं। यह अज्ञानी ही कर सकता है।

ज्ञानी तो देखता है जीवन के अंतः-संबंधों को, कि जो मैं करता हूं, वही मुझ पर वापस लौट आता है। जगत एक प्रतिध्वनि है। जो भी मैं बोलता हूं, वही मुझ पर बरस जाता है। अगर मैं गाली फेंकता हूं, तो गालियां मेरे पास लौट आती हैं। और अगर मैं मुस्कुराहट फेंकता हूं, तो हजार मुस्कुराहटें मेरी तरफ वापस लौट आती हैं। जगत वही लौटा देता है, जो हम उसे देते हैं। यह ज्ञानी का अनुभव है, यह कोई सिद्धांत नहीं है। वह जानता है कि मैं दुख दूंगा, तो मैं दुख देने के लिए लोगों को आमंत्रित कर रहा हूं।

आप किसी को दुख देकर देखें। सीधी-सी बात है कि जब आप किसी को दुख देते हैं, तो आप उसको प्रेरित करते हैं कि वह आपको दुख दे।

इसे आप ऐसा समझें कि जब कोई आपको दुख देता है, तो आपके मन में क्या होता है? जब कोई आपको दुख देता है, तो जो पहली बात आपके मन में बनती है, वह यह कि इसको कैसे दुगुना दुख दें। आप उपाय में लग जाते हैं कि इसको कैसे दुख दें। यह सीधा-सा, सरल-सा नियम है। इसलिए ज्ञानी प्राणिमात्र को भी किसी प्रकार से नहीं सताना चाहता है।

क्षमा भाव... ।

क्षमा का अर्थ लोग समझते हैं कि दूसरे पर दया करना। नहीं, वैसा अर्थ नहीं है। क्योंकि दया में भी अहंकार है। क्षमा बड़ी सूक्ष्म बात है।

क्षमा का अर्थ है, मनुष्य की कमजोरी को समझना और यह जानना कि मैं खुद भी कमजोर हूं, दूसरा भी कमजोर है। खुद की कमजोरी का अनुभव ज्ञानी को होता है, वह अपनी सीमाएं जानने लगता है; अपनी सीमाएं जानने के कारण वह प्रत्येक मनुष्य के प्रति क्षमावान हो जाता है, क्योंकि वह समझता है कि सबकी कमजोरी है। जो ज्ञानी आपकी कमजोरी के प्रति क्षमावान नहीं, समझना कि उसने अभी अपना आत्म-विश्लेषण नहीं किया।

मैंने सुना है, यहूदी फकीर बालशेम के पास एक युवक आया। उस युवक ने कहा कि मैं महापापी हूं। कोई भी सुंदर स्त्री मुझे रास्ते पर दिखती है, तो उसे भोगने का मन होता है। फिर मैं कुढ़ता हूं, परेशान होता हूं। कोई भी अच्छी चीज दिखाई पड़े, तो चोरी करने का मन होता है। कर न पाऊं, यह दूसरी बात है, लेकिन मन तो हो जाता है। जरा-सा कोई मुझे दुख पहुंचा दे, तो उसकी हत्या करने का मन होता है। मैं महापापी हूं। तो मुझे कोई कठोर दंड दो।

बालशेम ने कहा कि तूने स्वीकार किया, इतना काफी है। बस, तू इसको स्मरण रखना कि जो तुझे होता है, ऐसा ही दूसरे को भी होता है। तो अगर तुझे कल पता चले कि फलां आदमी फलां की स्त्री के प्रति बुरी तरह से देख रहा था, तो तू निंदा से मत भर जाना। तू समझना कि मनुष्य कमजोर है, क्योंकि तू कमजोर है। तू क्षमा को जन्म देना।

पर उस युवक ने कहा कि नहीं, मुझे सजा दो, मुझे दंड दो। बालशेम ने कहा कि अगर मैं तुझे दंड दूं, तो तू भी दूसरे को दंड देना चाहेगा और क्षमा कभी पैदा न होगी। अगर मैं तुझे कहूं कि तुझे इतना दंड देता हूं, क्योंकि तूने दूसरे की स्त्री की तरफ बुरी नजर से देखा; तो तू दंड झेल लेगा, लेकिन तेरा अहंकार मजबूत होगा। और कल अगर किसी ने कहा कि फलां आदमी दूसरे की स्त्री की तरफ बुरी नजर से देख रहा है, तो तू चाहेगा कि इसको दंड दिया जाए। तू क्षमावान नहीं होगा। मैं तुझे यही दंड देता हूं कि कोई दंड नहीं देता। सिर्फ तू इतना ख्याल रखना, जब दूसरे में कोई भूल देखे, तो ख्याल रखना कि वे सारी भूलें और भी बड़े रूप में तेरे भीतर मौजूद हैं। दूसरा क्षम्य है।

ज्ञानी विश्लेषण करता है अपना। उस विश्लेषण से सारी मनुष्यता से उसकी पहचान हो जाती है। ज्ञानी का यह अनिवार्य लक्षण है कि ज्ञानी निंदा नहीं करेगा, दंडित नहीं करेगा; वह यह नहीं कहेगा कि तुम महापापी हो और नरक में सड़ोगे। वह तुम्हारे ऊपर खड़े होकर तुम्हें नीचा दिखाने की कोशिश भी नहीं करेगा। क्योंकि उसने अपना विश्लेषण किया है, उसने अपनी स्थिति भी जानी है। और अपनी स्थिति को जानकर वह पूरी मनुष्यता की स्थिति से परिचित हो गया है।

लेकिन उस युवक ने कहा कि नहीं, जब तक आप मुझे दंड न देंगे, तब तक मैं जाऊंगा नहीं। मैं इतना बड़ा पापी हूं! तो बालशेम ने कहा, तू कुछ भी पापी नहीं है। तुझसे बड़ा मैं रहा हूं। तू कुछ भी नहीं है। तुझसे बड़ा मैं रहा हूं। और मैं भी किसी दिन एक गुरु के पास गया था और दंड मैंने भी चाहा था।

अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। बड़े दंड से भी प्रसन्न होता है। कोई दंड नहीं मिल रहा है, तो उसे लग रहा है कि मुझे समझा ही नहीं जा रहा है। समझ रहे हैं कि कोई छोटा-मोटा पापी! मैं बार-बार कह रहा हूं कि मैं बड़ा पापी हूं। मुझे कोई बड़ा दंड दो। बड़े दंड में भी मजा रहेगा। कोई छोटा-मोटा पापी नहीं हूं; कोई आम पापी नहीं हूं--चलता-फिरता, ऐरा-गैरा--खास पापी हूं।

तो बालशेम ने कहा, मैं भी किसी गुरु के पास गया था। और मैंने भी कहा था, मैं महापापी हूं; मुझे बड़ा दंड दो। मेरे गुरु ने कहा था कि तुझे दंड नहीं दूंगा। और याद रखना तू भी किसी को दंड मत देना, सिर्फ क्षमा का भाव देना।

कृष्ण कहते हैं, ज्ञानी का लक्षण है क्षमा का भाव।

वह जानता है, आदमी कमजोर है। वह जानता है, आदमी मुश्किल में है। वह जानता है, आदमी बड़ी दुविधा में है। वह जानता है कि आदमी जैसा भी है, बड़ी जटिलता में है। इसलिए उसे दोषी क्या ठहराना!

अगर आप कुछ भूल कर लेते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। स्वाभाविक मालूम होता है। सच तो यह है कि अगर आप भूल नहीं करते हैं, तो बड़ा अस्वाभाविक मालूम होता है। आदमी इतना कमजोर, इतनी शक्तियों का दबाव, इतनी जटिलताएं, इतनी मुसीबतें, उनके बीच में भी आदमी किसी तरह अपने को सम्हाले रहता है।

कृष्ण कहते हैं, क्षमा का भाव, मन-वाणी की सरलता... ।

सरलता को थोड़ा ख्याल में ले लेना चाहिए कि उसका क्या अर्थ होता है। सरलता का अर्थ होता है, बिना किसी कपट के। सरलता का अर्थ होता है, सीधा-सीधा। सरलता का अर्थ होता है, बिना किसी योजना को बनाए, बिना किसी कैलकुलेशन के, बिना किसी गणित के।

छोटे बच्चे में सरलता होती है। अगर उसको क्रोध आ गया है, तो वह आग की तरह जल उठता है, भभक उठता है। उस क्षण ऐसा लगता है, सारी दुनिया को नष्ट कर देने की उसकी मर्जी है। और क्षणभर बाद वह फूल की तरह मुस्कुरा रहा है। और जिसको वह मारने को खड़ा हो गया था, नष्ट कर देने को, उसी के साथ खेल रहा है। जो भीतर था, उसने बाहर ले आया; जैसा था, वैसा ही बाहर ले आया। उसने यह नहीं सोचा कि लोग क्या सोचेंगे। उसने यह नहीं सोचा कि दुनिया क्या कहेगी। उसने यह नहीं सोचा कि इससे नरक जाऊंगा या स्वर्ग जाऊंगा। उसने कुछ सोचा ही नहीं, जो भीतर था, वह बाहर ले आया।

बच्चे में सरलता है। और इसलिए बच्चा अभी रो रहा है, अभी मुस्कुरा सकता है। कई दफे बड़ों को बड़ी हैरानी होती है कि ये बच्चे भी किस तरह के हैं! अभी रो रहा था, अभी मुस्कुरा रहा है। बड़े धोखेबाज मालूम पड़ते है, पाखंडी मालूम पड़ते हैं। इतने जल्दी यह हो कैसे सकता है कि अभी यह रो रहा था, अभी मुस्कुरा रहा है! आप रोएं, तो दो-चार दिन लग जाएंगे मुस्कुराने में। क्योंकि वह रोना आप में सरकता ही रहेगा। पर आप कारण समझते हैं?

अभी एक मित्र आए; सालभर पहले पत्नी चल बसी। वे अभी तक नहीं हंस पा रहे हैं। सालभर हो गया, रो ही रहे हैं। वे मुझसे बोले कि मुझे किसी तरह रोने से छुटकारा दिलाइए। मैंने कहा कि अगर मेरी आप समझते हों, तो मेरा समझना ऐसा है कि आप ठीक से रोए नहीं हैं। नहीं तो सालभर कैसे रोते! आप ऐसे ही कुनकुने-कुनकुने रो रहे हैं, ल्यूकवार्म। शक्ल लंबी बनाए हुए हैं। दिल खोलकर नहीं रो लिए। छाती पीटकर, नाचकर, कूदकर, जैसा करना हो, ठीक से रो लें। चौबीस घंटे निकाल लें, मैंने उनसे कहा, छुट्टी के और चौबीस घंटे रो लें। चौबीस साल रोने की बजाय चौबीस घंटे रो लें। फिर हंसी अपने आप आ जाएगी। रोना निकल जाए, तो हंसी आ जाती है।

वह छोटा बच्चा एक क्षण में रोता है, एक क्षण में हंसता है। उसका कारण यह नहीं है कि वह धोखा दे रहा है। उसका कारण यह नहीं है कि उसकी हंसी झूठी है। उसका कारण यह है कि उसका रोना इतना सच्चा था कि निकल गया; बात खतम हो गई। अब वह हंस रहा है।

आपका रोना भी झूठा है, हंसना भी झूठा है। ऊपर से चिपकाया हुआ है। दोनों ही झूठे हैं। जिंदगी चल रही है झूठ में। दोनों तरफ झूठ के चक्के लगाए हुए हैं गाड़ी में। कहीं नहीं पहुंच रही है जिंदगी, तो कहते हैं, कहीं पहुंचती नहीं। प्रयोजन क्या है? लक्ष्य नहीं मिलता!

वह लक्ष्य मिलेगा क्या! दोनों चक्के झूठे हैं। वे दिखाई पड़ते हैं, पेंटेड हैं। चक्के नहीं हैं।

सरलता का अर्थ है, जैसा भीतर हो, वैसा ही बाहर प्रकट कर देना। बड़ी कठिनाई होगी। आप कहेंगे, आप उपद्रव की बात कह रहे हैं। उपद्रव की है, इसीलिए तो कम लोग सरल हो पाते हैं। जटिल आप इसीलिए तो हो जाते हैं, क्योंकि सरल होना मुश्किल है। अगर सरल होंगे, तो बहुत-सी कठिनाइयां झेलनी पड़ेंगी। बहुत-सी कठिनाइयां झेलनी पड़ेंगी, बहुत-सी अड़चनें झेलनी पड़ेंगी। इसीलिए तो आदमी उनसे बचने के लिए कठिन हो जाता है, जटिल हो जाता है।

एक आदमी सुबह-सुबह मिलता है। मन में होता है कि इस दुष्ट की शक्ल कहां से दिखाई पड़ गई! अब दिनभर खराब हुआ। और उससे आप नमस्कार करके कहते हैं कि धन्यभाग कि आप दिखाई पड़ गए। बड़ी कृपा

है। बड़े दिनों में दिखाई पड़े। बड़े दिन से बड़ी इच्छा थी। और भीतर कह रहे हैं, यह दुष्ट कहां से सुबह दिखाई पड़ गया!

अब यह जो भीतर और बाहर हो रहा है, अगर आप सीधे ही कह दें कि महानुभाव, कहां से दिखाई पड़ गए आप सुबह से; दिनभर खराब हो गया। तो आप कठिनाई में पड़ेंगे। क्योंकि यह आदमी झंझट डालेगा। यह आपको फिर ऐसे ही जाने नहीं देगा। फिर दिन तो दूर है, यह अभी आपको उपद्रव खड़ा कर देगा। यह शक्ल फिर दिनभर में करेगी, वह तो अलग रही बात; लेकिन यह अभी कोई मुसीबत खड़ी कर देगा। तो आप ऊपर एक झूठा आवरण खड़ा कर लेते हैं। जिंदगी की जरूरतें आपको झूठा बना देती हैं।

लेकिन ज्ञानी के लिए, कृष्ण कहते हैं, कठिनाई भला हो, लेकिन उसको मन-वाणी की सरलता चाहिए। वह वैसी ही बात कह देगा, जैसी है। इसका यह मतलब नहीं है कि वह किसी को चोट पहुंचाना चाहता है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि वह किसी को अपमानित करना चाहता है। इसका सिर्फ इतना मतलब है कि वह जैसा भीतर है, चाहता है कि लोग उसे बाहर भी वैसा ही जानें। फिर इसके कारण जो भी कठिनाई झेलनी पड़े, वह झेल लेगा। लेकिन अपने को झूठा नहीं करेगा।

दो उपाय हैं, या तो बाहर की कठिनाई से बचने के लिए भीतर जटिल हो जाएं; और या फिर बाहर की कठिनाई झेलने की तैयारी हो, तो भीतर सरल हो जाएं।

संतत्व की सबसे बड़ी तपश्चर्या सरलता है। कोई धूप में खड़ा होना संतत्व नहीं है। और न कोई सिर के बल खड़े होकर अभ्यास करे, तो कोई संत हो जाएगा। ये सब कवायदें हैं और इनका कोई बहुत बड़ा मूल्य नहीं है। संतत्व की असली संघर्ष की तपश्चर्या है सरलता, क्योंकि तब आपको बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ेंगी। बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ेंगी, क्योंकि चारों तरफ आपने झूठ का जाल बिछा रखा है।

आपने ऐसे आश्वासन दे रखे हैं, जो आप पूरे नहीं कर सकते। आपने ऐसे वक्तव्य दे रखे हैं, जो असत्य हैं। आपने सबको धोखे में रख छोड़ा है और आपके चारों तरफ एक झूठी दुनिया खड़ी हो गई है। सरलता का अर्थ है, यह दुनिया गिरेगी, खंडहर हो जाएगा। क्योंकि आप अपनी पत्नी से कहते ही चले जा रहे हैं कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। वह मानती नहीं। वह रोज पूछती है कि प्रेम करते हैं? हजार ढंग से पूछती है कि आप मुझे प्रेम करते हैं?

पति-पत्नी एक-दूसरे से पूछते हैं बार-बार, तरकीबें निकालते हैं पूछने की, कि आप मुझे अभी भी प्रेम करते हैं? क्योंकि भरोसा तो दोनों को नहीं आता; आ भी नहीं सकता। क्योंकि दोनों धोखा दे रहे हैं। पत्नी भी जानती है कि जब मैं ही नहीं करती हूं प्रेम, तो दूसरे का क्या भरोसा! पति भी जानता है कि जब मैं ही नहीं करता हूं प्रेम, तो पत्नी का क्या भरोसा!

इसलिए दोनों छिपी नजरों से जांच करते रहते हैं कि प्रेम है भी या नहीं। और एक-दूसरे से पूछते रहते हैं। और जब एक-दूसरे से पूछते हैं, तो गले लगकर एक-दूसरे को आश्वासन देते हैं कि अरे, तेरे सिवाय जन्मों-जन्मों में न किसी को किया है, न कभी करूंगा।

जन्मों-जन्मों की बात कर रहे हैं और भीतर सोच रहे हैं कि इसी जन्म में अगर छुटकारा हो सके! वह भीतर चल रहा है।

संतत्व की सबसे बड़ी तपश्चर्या है, सरल हो जाना। शुरू में बहुत कठिनाई होगी। लेकिन कठिनाई शुरू में ही होगी, थोड़े ही दिन में कठिनाइयां शांत हो जाएंगी। और थोड़े दिन में आप पाएंगे कि कठिनाइयों के ऊपर उठ गए। और जब आप सरल हो जाएंगे, तो लोग आपकी बात का बुरा भी न मानेंगे।

शुरू में तो बहुत बुरा मानेंगे, क्योंकि आप एकदम बदलेंगे और लगेगा कि यह क्या हो गया! यह आदमी कल तक क्या था, आज क्या हो गया! एकदम पतन हो गया इस आदमी का। कल तक कहता था प्रेम, आज कहता है कि एक क्षण प्रेम का मुझे कोई पता ही नहीं है। मैंने कभी तुझे प्रेम किया नहीं है।

शुरू में कठिनाई होगी, लेकिन जैसे-जैसे सरलता बढ़ती जाएगी, प्रकट होने लगेगी, वैसे-वैसे कठिनाई विदा हो जाएगी। और एक मजा है, सरलता में झेली गई कठिनाई भी सुख देती है और जटिलता में आया सुख भी दुख ही हो जाता है। क्योंकि हम भीतर इतनी गांठों से भर जाते हैं कि सुख हममें प्रवेश ही नहीं कर सकता। हम भीतर इतने अशांत हो जाते हैं कि अब कोई शांति की किरण हममें प्रवेश नहीं कर सकती।

तो कृष्ण कहते हैं, मन-वाणी की सरलता, श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की सेवा-उपासना... ।

इतनी क्यों बातें जोड़नी? श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की सेवा-उपासना। क्या जरूरत है इतनी बातें जोड़ने की गुरु की उपासना में?

कारण है। किसी को भी गुरु स्वीकार करना मनुष्य के लिए अति कठिन है। इस जगत में कठिनतम बातों में यह बात है कि किसी को गुरु स्वीकार करें। क्योंकि गुरु स्वीकार करने का अर्थ होता है, मैंने अपने को स्वीकार किया कि मैं अज्ञानी हूं। गुरु को स्वीकार करने का अर्थ होता है, मैंने स्वीकारा कि मैं अज्ञानी हूं। यह बड़ी कठिन बात है। हमारा मानना होता है कि हम तो ज्ञानी हैं ही।

तो शिष्य बनना बहुत कठिन है। शायद सर्वाधिक कठिन बात कही जा सकती है, शिष्य बनना, सीखने की तैयारी। अहंकार को छोड़ना पड़े पूरा।

और फिर किसी को गुरु स्वीकार करना, किसी को अपने से ऊपर स्वीकार करना, बड़ा जटिल है। मन तो यही कहता है कि मुझसे ऊपर कोई भी दुनिया में नहीं है। और सब हैं, मुझसे नीचे हैं। हर आदमी अपने को शिखर पर मानता है। यह सहज मन की दशा है।

तो किसी को अपने से ऊपर मानना बड़ी कठिन है बात। हम कामचलाऊ ढंग से मान लेते हैं। इसलिए किसी को शिक्षक बना लेना आसान है, गुरु बनाया कठिन है। और फर्क है गुरु और शिक्षक में। शिक्षक का मतलब है, यह कामचलाऊ संबंध है। तुमसे हम सीख लेते हैं, उसके बदले में हम तुम्हें कुछ दे देते हैं। तुम्हारी फीस ले लो। हम तुम्हें धन दे देते हैं, तुम हमें ज्ञान दे दो; बात खतम हो गई। यह गुरु का संबंध नहीं है।

शिक्षक का संबंध ऐसा है, रास्ते पर किसी आदमी से पूछा कि स्टेशन का रास्ता किधर जाता है। बस, इतनी बात है। उसने रास्ता बता दिया। आपने उसको धन्यवाद दे दिया, अपने रास्ते पर चले गए। कुछ लेना-देना नहीं है। शिक्षक और विद्यार्थी का संबंध ऐसा है, उसमें कामचलाऊ रिश्ता है, उपयोगिता का संबंध है।

गुरु और शिष्य का रिश्ता गैर-उपयोगिता का है और उसमें कोई कामचलाऊ बात नहीं है। और इसीलिए गुरु को शिष्य कुछ भी तो नहीं दे सकता। प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं दे सकता; कोई धन नहीं दे सकता।

पुराने दिनों में तो व्यवस्था यह थी कि गुरु भोजन भी विद्यार्थी को देगा, आश्रम में रहने की जगह भी देगा। उसकी सब भांति फिक्र करेगा, जैसे पिता अपने बेटे की फिक्र करे। ज्ञान भी देगा और बदले में कुछ भी नहीं लेगा।

आप कठिनाई में पड़ेंगे उस आदमी के साथ, जो बदले में कुछ न ले। जो बदले में कुछ ले ले, उससे तो हमारा नाता-रिश्ता समानता का हो जाता है। जो बदले में कुछ न ले, उससे हमारा नाता-रिश्ता समानता का कभी नहीं हो पाता। वह ऊपर होता है, हम नीचे होते हैं।

तो इतने आग्रहपूर्वक कृष्ण कहते हैं, श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की सेवा-उपासना।

श्रद्धा-भक्ति की बहुत जरूरत पड़ेगी। और इसका एक मनोवैज्ञानिक रूप भी समझ लेना जरूरी है।

मनसविद कहते हैं कि जिस व्यक्ति से भी हम कुछ लेते हैं और उसके उत्तर में नहीं दे पाते, उसके प्रति हमारे मन में दुश्मनी पैदा होती है। क्योंकि उस आदमी ने हमें किसी तरह नीचा दिखाया है।

एक मेरे मित्र हैं। बड़े धनपति हैं और बड़े दंभी हैं। और बड़े भले आदमी हैं। और जब भी कोई मुसीबत में हो, तो उसकी सहायता करते हैं। कम से कम उनके रिश्तेदारों में तो कोई भी मुसीबत में हो, तो वे हर हालत में सहायता करते हैं। मित्र, परिचित, कोई भी हो, सहायता करते हैं।

एक दिन मेरे पास आकर वे कहने लगे कि मैंने जिंदगी में सिवाय दूसरों की सहायता के कुछ भी नहीं किया, लेकिन कोई भी मेरा उपकार नहीं मानता है! उलटे लोग मेरी निंदा करते हैं। जिनकी मैं सहायता करता हूं, वे ही निंदा करते हैं। जिनको मैं पैसे से सब तरह की सुविधा पहुंचाता हूं, वे ही मेरे दुश्मन बन जाते हैं। तो कारण क्या है? किस वजह से ऐसा हो रहा है?

तो मैंने उनसे कहा कि आप उनको भी कुछ उत्तर देने का मौका देते हैं कि नहीं? तो उन्होंने कहा कि उसकी तो कोई जरूरत ही नहीं है। मेरे पास पैसा है, मैं उनकी सहायता कर देता हूं। तो फिर, मैंने कहा कि कठिनाई है। क्योंकि वे क्या करें! जब आप उनकी सहायता करते हैं, तो आपको लगता है कि आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं; लेकिन जिसकी सहायता की जाती है, वह आदमी तो अनुभव करता है कि उसका अपमान हुआ। ऐसा मौका आया कि किसी की सहायता लेनी पड़ी। और फिर लौटा सकता नहीं है, आप किसी को लौटाने देते नहीं हैं। तो फिर वह आपका दुश्मन हो जाएगा। वह आपका उत्तर किसी न किसी तरह तो देगा।

दो ही उपाय हैं, या तो आप उसकी कोई सहायता लें और उसको भी ऊपर होने का कोई मौका दें। और नहीं तो फिर वह आपकी सहायता झूठी थी, धोखे की थी, आप आदमी बुरे हैं, ये सब खबरें फैलाकर अपने मन को यह सांत्वना दिलाएगा कि इतने बुरे आदमी से नीचे होने का कोई सवाल ही नहीं; इस बुरे आदमी से तो मैं ही ऊपर हूं। यह वह कंसोलेशन, सांत्वना खोज रहा है।

आदमी के मन की बड़ी जटिलता है।

गुरु से आप ज्ञान लेते हैं, लौटा तो कुछ भी नहीं सकते। क्योंकि ज्ञान कैसे लौटाया जा सकता है! उससे जो मिलता है, उसका कोई प्रत्युत्तर नहीं हो सकता। इसलिए भारत में बड़े आग्रहपूर्वक यह कहा है कि श्रद्धा और भक्ति सहित... ।

अगर बहुत प्रगाढ़ श्रद्धा हो, तो ही शिष्य गुरु के विरोध में जाने से बच सकेगा, नहीं तो दुश्मन हो जाएगा। आज नहीं कल शिष्य के दुश्मन हो जाने की संभावना है। वह दुश्मन हो ही जाएगा। वह कोई न कोई बहाना और कोई न कोई कारण खोजकर शत्रुता में खड़ा हो जाएगा, तभी उसको राहत मिलेगी कि झंझट मिटी; इस आदमी के बोझ से मुक्त हुआ।

इसलिए हमने बहुत खोजबीन करके श्रद्धा और भक्ति को अनिवार्य शर्त माना है शिष्य की, तभी शिष्य गुरु के साथ उसके मार्ग पर चल सकता है और दुश्मन होने से बच सकता है। नहीं तो गुरु का शिष्य दुश्मन हो ही जाएगा।

इसे हम ऐसा समझें कि बेटे बाप के दुश्मन हो जाते हैं। इसलिए हमने बाप के प्रति बहुत श्रद्धा का भाव पैदा करने की कोशिश की है, नहीं तो बेटे बाप के दुश्मन हो ही जाएंगे। क्योंकि बाप से सब मिलता है; और लौटाने का क्या है।

पर बाप से तो जो मिलता है, वह लौटाया भी जा सकता है, क्योंकि बाह्य वस्तुएं हैं। गुरु से जो मिलता है, वह तो लौटाया ही नहीं जा सकता है। वह तो ऐसी घटना है कि उसको लौटाने का सिर्फ एक उपाय है कि तुम किसी और को शिष्य बना देना। बस, वही उपाय है; और कोई उपाय नहीं है। जो तुमने गुरु से पाया है, वह तुम किसी और शिष्य को दे देना, यही उपाय है। गुरु तक लौटाने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की उपासना। बाहर-भीतर की शुद्धि, अंतःकरण की स्थिरता, मन-इंद्रियों सहित शरीर का निग्रह... ।

इन सबके संबंध में मैंने काफी बात पीछे की है।

लोक-परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुख और दोषों का बारंबार दर्शन, ये सब ज्ञान के लक्षण हैं।

आखिरी बात जिसकी अभी चर्चा नहीं हुई, उसकी हम बात कर लें। जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, दुख इत्यादि में बारंबार दोषों का दर्शन, ये सब ज्ञान के लक्षण हैं।

जब आप पर कोई बीमारी आती है, कोई दुख आता है, कोई असफलता घटित होती है, कोई संताप घेर लेता है, तब आप क्या करते हैं? तब आप तत्क्षण यही सोचते हैं कि किन्हीं दूसरे लोगों की शरारत, शड्यंत्र के कारण आप कष्ट पा रहे हैं। तो यह अज्ञानी का लक्षण है।

ज्ञानी का लक्षण यह है कि जब भी वह दुख पाता है, तब वह सोचता है कि जरूर मैंने कोई दोष किया, मैंने कोई पाप किया, मैंने कोई भूल की, जिसका मैं फल भोग रहा हूं। ज्ञान का लक्षण यह है कि जब भी दुख मिले, तो अपने दोष की खोज करना। जरूर कहीं न कहीं मैंने बोया होगा, इसलिए मैं काट रहा हूं।

अज्ञानी दूसरे को दोषी ठहराता है, ज्ञानी सदा अपने को दोषी ठहराता है। और इसलिए अज्ञानी दोष से कभी मुक्त नहीं होता; ज्ञानी दोष से मुक्त हो जाता है। अगर मुझे यह प्रगाढ़ प्रतीति होने लगे--और होगी ही--अगर हर दुख में, हर पीड़ा में, हर रोग में, हर मृत्यु में मैं यही जानूंगा कि मेरी कोई भूल है, तो निश्चित ही आगे उन भूलों को करना मुश्किल हो जाएगा। जिन दोषों से इतना दुख पैदा होता है, उनको करना असंभव हो जाएगा। मेरा मन संस्कारित हो जाएगा। मुझे यह स्मरण गहरे में बैठ जाएगा, तीर की तरह चुभ जाएगा।

अगर सभी दुख मेरे ही कारण से पैदा हुए हैं, तो फिर आगे मेरे दुख पैदा होने मुश्किल हो जाएंगे, क्योंकि मैं अपने कारणों को हटाने लगूंगा। लेकिन अज्ञानी के दुख दूसरों के कारण से पैदा होते हैं। इसलिए उसके हाथ में कोई ताकत ही नहीं है, वह कुछ कर सकता नहीं। दूसरे जब बदलेंगे, सारी दुनिया जब बदलेगी, तब वह सुखी हो सकता है!

अज्ञानी सुखी होगा, जब सारी दुनिया बदल जाएगी और कोई गड़बड़ नहीं करेगा, तब। ऐसा कभी होने वाला नहीं है। ज्ञानी अभी सुखी हो सकता है, इसी क्षण सुखी हो सकता है। क्योंकि वह मानता है कि दुख मेरे ही किसी दोष के कारण हैं।

मुसलमान फकीर इब्राहीम एक रास्ते से गुजरता था। उसके शिष्य साथ थे। इब्राहीम के प्रति उनका बड़ा आदर, बड़ा भाव, बड़ा सम्मान था। वह आदमी भी वैसा पवित्र था। अचानक इब्राहीम के पैर में पत्थर की चोट लगी और जमीन पर गिर पड़ा, पैर लहूलुहान हो गया।

शिष्य बहुत चकित हुए, शिष्य बहुत हैरान हुए। शिष्यों ने कहा कि यह किसी की शरारत मालूम पड़ती है। कल शाम को हम निकले थे, तब यह पत्थर यहां नहीं था। और सुबह आप यहां से निकलेंगे और मस्जिद जाएंगे सुबह के अंधेरे में, किसी ने यह पत्थर जानकर यहां रखा है। दुश्मन काम कर रहे हैं।

इब्राहीम ने कहा, पागलो, फिजूल की बातों में मत पड़ो। रुको। और इब्राहीम घुटने टेककर परमात्मा को धन्यवाद देने बैठ गया। प्रार्थना करने के बाद उसने कहा, हे परमात्मा, तेरी बड़ी कृपा है। पाप तो मैंने ऐसे किए हैं कि आज फांसी लगनी चाहिए थी; सिर्फ पत्थर की चोट से तूने मुझे छुड़ा दिया। तेरी अनुकंपा अपार है।

ज्ञानी का लक्षण है, जब भी कोई पीड़ा आए, तो खोजना, कहीं अपनी कोई भूल, अपना कोई दोष, जिसके कारण यह दुख आ रहा होगा।

ये कृष्ण ने ज्ञान के लक्षण कहे हैं। इन लक्षणों को जो भी पूरा करने लगे, वह धीरे-धीरे ज्ञान के मंदिर की तरफ बढ़ने लगता है।

और मंदिर बहुत दूर नहीं है। जहां आप खड़े हैं, बहुत पास है। लेकिन जिस ढंग से आप खड़े हैं, बहुत दूर है, क्योंकि आप पीठ किए खड़े हैं। इन लक्षणों के विपरीत आप सब कुछ कर रहे हैं। आपकी पीठ है मंदिर की तरफ। इसलिए अगर आप और गहन अंधकार में, और अज्ञान में, और दुख में प्रवेश करते चले जाते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई भी व्यक्ति बीच से न उठे। बीच से उठने में बाधा पड़ती है। पांच मिनट कीर्तन में भाग लें, और फिर जाएं।

चौथा प्रवचन

समत्व और एकीभाव

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।। 9।।
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।। 10।।
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। 11।।

तथा पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना अर्थात मन के अनुकूल और प्रतिकूल के प्राप्त होने पर हर्ष-शोकादि विकारों का न होना।

और मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थितिरूप ध्यान-योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में अरति, प्रेम का न होना।

तथा अध्यात्म-ज्ञान में नित्य स्थिति और तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को सर्वत्र देखना, यह सब तो ज्ञान है; और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है, ऐसे कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, मैं बहुत बेचैन हूं और मेरे पास इतनी बेचैनी है कि सारी शक्ति इस बेचैनी में ही समाप्त हो जाती है। तो मैं इस बेचैनी का क्या उपयोग कर सकता हूं और इस बेचैनी का कारण क्या है?

मनुष्य का होना ही बेचैनी है। कम या ज्यादा, लेकिन ऐसा मनुष्य खोजना कठिन है, जो बेचैन न हो। मनुष्य बेचैन होगा ही।

नीत्शे ने कहा है कि मनुष्य ऐसे है, जैसे एक पुल, दो किनारों पर टिका हुआ, बीच में अधर लटका हुआ। पीछे पशु का जगत है और आगे परमात्मा का आयाम, और मनुष्य बीच में लटका हुआ है। वह पशु भी नहीं है और अभी परमात्मा भी नहीं हो गया है। पशु होने से थोड़ा ऊपर उठ आया है। लेकिन उसकी जड़ें पशुता में फैली हुई हैं। और किसी भी मूर्च्छा के क्षण में वह वापस पशु हो जाता है। और आगे विराट परमात्मा की संभावना है। उसमें से दिव्यता के फूल खिल सकते हैं।

भविष्य है; वह भविष्य भी खींचता है। अतीत खींचता है, क्योंकि अतीत में हमारा अनुभव है, हमारी जड़ें हैं। और भविष्य भी खींचता है, क्योंकि भविष्य में हमारी संभावना और आशा है। और मनुष्य भविष्य और अतीत के बीच में एक तनाव है।

कोई जानवर इतना बेचैन नहीं है, जितना मनुष्य। पशुओं की आंखों में झांकें; कोई बेचैनी नहीं है, कोई अशांति नहीं है। पशु अपने होने से राजी है। कुत्ता कुत्ता है। बिल्ली बिल्ली है। शेर शेर है। और आप किसी शेर से

यह नहीं कह सकते कि तू कुछ कम शेर है या किसी कुत्ते से भी नहीं कह सकते कि तू कुछ कम कुत्ता है। लेकिन आदमी से आप कह सकते हैं कि तू कुछ कम आदमी है। सभी आदमी बराबर आदमी नहीं हैं, लेकिन सभी कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। कुत्ता जन्म से ही कुत्ता है। आदमी जन्म से केवल एक बीज है। हो भी सकता है, न भी हो।

आदमी को छोड़कर सभी पशु पूरे के पूरे पैदा होते हैं; आदमी अधूरा है। उस अधूरे में बेचैनी है। और पूरे होने के दो रास्ते हैं। या तो आदमी वापस नीचे गिरकर पशु हो जाए, तो थोड़ी राहत मिलती है। क्रोध में आपको जो राहत मिलती है, हिंसा में जो राहत मिलती है, संभोग में जो राहत मिलती है, शराब में जो राहत मिलती है, वह नीचे पशु हो जाने की राहत है। आप वापस गिरकर यह ख्याल छोड़ देते हैं कि कुछ होना है। आप राजी हो जाते हैं, नीचे गिरकर।

लेकिन वह राहत बहुत थोड़ी देर ही टिक सकती है। वह राहत इसलिए थोड़ी देर ही टिक सकती है, क्योंकि पीछे गिरने का प्रकृति में कोई उपाय नहीं है। कोई बूढ़ा बच्चा नहीं हो सकता वापस। थोड़ी देर को अपने को भुला सकता है; बच्चों के खिलौनों में भी डूब सकता है थोड़ी देर को, गुड्डा-गुड्डी का विवाह भी रचा सकता है। और थोड़ी देर को शायद भूल भी जाए कि मैं बूढ़ा हूं। लेकिन यह भूलना ही है। कोई बूढ़ा वापस बच्चा नहीं हो सकता।

और यह भूलना कितनी देर चलेगा? यह विस्मरण कितनी देर चलेगा? यह थोड़ी देर में टूट जाएगा। असलियत ज्यादा देर तक नहीं भुलाई जा सकती। और जैसे ही यह टूटेगा, बूढ़ा वापस बूढ़ा हो जाएगा।

आदमी पशु हो सकता है। आप क्रोध में थोड़ी देर मजा ले सकते हैं, लेकिन कितनी देर? और जैसे ही क्रोध के बाहर आएंगे, पश्चात्ताप शुरू हो जाएगा। आप शराब पीकर थोड़ी देर को भूल सकते हैं, लेकिन कितनी देर? शराब के बाहर आएंगे और पश्चात्ताप शुरू हो जाएगा।

जितनी भी मूर्च्छा की विधियां हैं, वे पशु होने के मार्ग हैं। आदमी, आदमी जैसा है, वैसा रहे, तो बेचैन है। या तो पीछे गिरे, तो चैन मिलता है। लेकिन चैन क्षणभर का ही होता है। जिनको हम सुख कहते हैं, वे पशुता के सुख हैं। और इसलिए सुख क्षणभंगुर होता है। क्योंकि हम पशु सदा के लिए नहीं हो सकते। पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है। आगे जाने का ही एकमात्र उपाय है।

और दूसरा उपाय है कि आदमी बेचैनी के बाहर हो जाए कि वह परमात्मा के साथ अपने को एक होना जान ले। उसके भीतर जो छिपा है, वह पूरा प्रकट हो जाए। मनुष्य अपना भविष्य बन जाए। वह जो हो सकता है, वह हो जाए। तो वैसी ही शांति आ जाएगी, जैसी गाय की आंख में दिखाई पड़ती है। इसलिए संतों की आंखों में अक्सर पशुओं जैसी सरलता वापस लौट आती है। लेकिन वह पशुओं जैसी है, पाशविक नहीं है।

पशु भी शांत है। इसलिए शांत है कि अभी उसे बेचैनी का बोध ही नहीं हुआ। अभी विकास का ख्याल पैदा नहीं हुआ। अभी आगे बढ़ने की आकांक्षा पैदा नहीं हुई। अभी आकाश को छूने और स्वतंत्रता की तरफ उड़ने के पंख नहीं लगे। अभी स्वप्न नहीं पैदा हुआ सत्य का। वह सोया हुआ है। जैसा सोया हुआ आदमी शांत होता है, ऐसा पशु भी शांत है।

संत भी शांत हो जाता है। लेकिन स्वप्न पूरा हो गया, इसलिए। सत्य पा लिया, इसलिए। संत पूरा हो गया। अब वह अधूरा नहीं है। अधूरे में बेचैनी रहेगी।

तो आप अकेले बेचैन हैं, ऐसा नहीं है। मनुष्य ही बेचैन है। और इस बेचैनी का, पूछा है, क्या उपयोग करें? इस बेचैनी का उपयोग करें, वह जो भविष्य है उसको पाने के लिए; वह जो आप हो सकते हैं, वह होने के लिए। इस बेचैनी में मत उलझे रहें। और इस बेचैनी को ढोते मत रहें। इसका उपयोग कर लें।

हम भी बेचैनी का उपयोग करते हैं, लेकिन हम उपयोग दो ढंग से करते हैं। दोनों ढंग से खतरा होता है। या तो हम बेचैनी का उपयोग करते हैं बेचैनी को निकाल लेने में। क्रोध में, हिंसा में, घृणा में, ईर्ष्या में, प्रतिस्पर्धा में, संघर्ष में हम बेचैनी को निकालने का उपयोग करते हैं। उससे बेचैनी समाप्त नहीं होगी, क्योंकि बेचैनी का वह कारण नहीं है।

जब तक आपके भीतर की मूर्ति नहीं निखरती, और जब तक आपके भीतर का स्वभाव प्रकट नहीं होता, और जब तक आप में छिपा हुआ बीज फूल नहीं बनता, तब तक आपकी बेचैनी दूर नहीं होगी। हां, थोड़ी देर को आप किसी पर बेचैनी उलीच सकते हैं। उस उलीचने में राहत मिलेगी। लेकिन आप अपनी शक्ति को व्यर्थ खो रहे हैं। जिस शक्ति से बड़ी यात्रा हो सकती थी, उससे आप केवल लोगों को और स्वयं को दुख दे रहे हैं। एक तो हम यह उपयोग करते हैं।

और दूसरा हम यह उपयोग करते हैं कि जब हम बेचैनी को नहीं निकाल पाते और बेचैनी को नहीं फेंक पाते, तो फिर हम बेचैनी को भुलाने के लिए उपयोग करते हैं। तो कोई शराब पी लेता है, कोई सिनेमाघर में जाकर बैठ जाता है। कोई संगीत सुनने लगता है। हम कोशिश करते हैं कि यह जो भीतर चलता हुआ तूफान है, यह भूल जाए, यह याद में न रहे। यह भी समय और शक्ति का अपव्यय है।

एक तीसरा और ठीक मार्ग है। और वह यह है, इस बेचैनी को समझें, और इस बेचैनी को साधना में रूपांतरित करें। यह बेचैनी साधना बन सकती है। इसे भुलाने की कोई जरूरत नहीं है। और न इसे रुग्ण और हिंसा के मार्गों पर प्रेरित करने की जरूरत है। इस बेचैनी का आध्यात्मिक उपयोग हो सकता है। यह बेचैनी सीढ़ी बन सकती है। यह बेचैनी शक्ति है; यह उबलता हुआ ऊर्जा का प्रवाह है। इस प्रवाह को आप ऊपर की तरफ ले जा सकते हैं। छोटे-से प्रयोग करें।

आपको ख्याल नहीं होगा। आपको क्रोध आ जाए, तो आप सोचते हैं, एक ही रास्ता है कि क्रोध को प्रकट करो। या एक रास्ता है कि क्रोध को दबा लो और पी जाओ। लेकिन पी लिया गया क्रोध आगे-पीछे प्रकट होगा। पी लिया गया क्रोध पीया नहीं जा सकता, वह जहर उबलता ही रहेगा और कहीं न कहीं निकलेगा। और तब खतरे ज्यादा हैं। क्योंकि वह उन लोगों पर निकलेगा, जिनसे उसका कोई संबंध भी नहीं था। और कहीं न कहीं उसकी छाया पड़ेगी और जीवन को नुकसान पहुंचेगा।

माइकलएंजलो ने लिखा है कि जब भी मुझे क्रोध पकड़ लेता है, तब मैं छैनी उठाकर अपनी मूर्ति को बनाने में लग जाता हूं; पत्थर तोड़ने लगता हूं। और लिखा है माइकलएंजलो ने कि मैं हैरान हो जाता हूं कि पांच-सात मिनट पत्थर तोड़ने के बाद मैं पाता हूं कि मैं हलका हो गया; क्रोध तिरोहित हो गया। किसी आदमी को तोड़ने की जरूरत नहीं रही।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब आपको क्रोध आए, तो आप छोटे-से प्रयोग करें। और आप हैरान होंगे कि क्रोध नई यात्रा पर निकल सकता है। माइकलएंजलो मूर्ति बना लेता है क्रोध से। सृजनात्मक हो जाता है क्रोध।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आपको क्रोध आए, तो आप इतना ही करें कि जोर से मुट्ठी बांधें पांच बार और खोलें। और आपका क्रोध तिरोहित हो जाएगा। आप कहेंगे, इतना आसान नहीं है। लेकिन करके देखें। जितनी जोर से मुट्ठी बांध सकते हों, पूरी ताकत लगा दें, और खोलें, फिर बांधें और खोलें--पांच बार। और फिर लौटकर अपने भीतर देखें कि क्रोध कहां है! आप हैरान होंगे कि क्रोध हलका हो गया; या खो भी गया, या समाप्त भी हो गया।

जापान में वे सिखाते हैं बच्चों को कि जब भी क्रोध आए, तब तुम गहरी श्वास लो और छोड़ो। आप एक पंद्रह-बीस श्वास गहरी लेंगे और छोड़ेंगे, और आप पाएंगे कि क्रोध विलीन हो गया। न तो उसे दबाना पड़ा, और न किसी पर प्रकट करना पड़ा। और बीस गहरी श्वास स्वास्थ्य के लिए लाभपूर्ण है। वह सृजनात्मक हो गया।

जो बंधे हुए रास्ते हैं, वे ही आखिरी रास्ते नहीं हैं। अध्यात्म, जीवन की समस्त बेचैनी का नया उपयोग करना सिखा है। जैसे जब आपको क्रोध आए, तो आप आंख बंद कर लें और क्रोध पर ध्यान करें। मुट्ठी बांधकर भी शक्ति व्यर्थ होगी। श्वास लेंगे, तो थोड़ा-सा उपयोग होगा स्वास्थ्य के लिए। मूर्ति बनाएंगे, तो थोड़ा-सा सृजनात्मक काम होगा।

लेकिन क्रोध जब आए, तो आंख बंद करके क्रोध पर ध्यान करें। कुछ भी न करें, सिर्फ क्रोध को देखें कि क्रोध क्या है। क्रोध का दर्शन करें। साक्षी बनकर बैठ जाएं। जैसे कोई और क्रोध में है और आप देख रहे हैं। और अपनी क्रोध से भरी प्रतिमा को पूरा का पूरा निरीक्षण करें।

थोड़े ही निरीक्षण में आप पाएंगे, क्रोध समाप्त हो गया, क्रोध विलीन हो गया। जैसा मुट्ठी बांधने से विलीन होता है, पत्थर तोड़ने से विलीन होता है, वैसा निरीक्षण से भी विलीन होता है।

लेकिन निरीक्षण से जब विलीन होता है क्रोध, तो क्रोध में जो शक्ति छिपी थी, वह आपकी अंतर-आत्मा का हिस्सा हो जाती है। जब मुट्ठी से आप क्रोध को विलीन करते हैं, तो शक्ति बाहर चली जाती है। जब आप पत्थर तोड़ते हैं, तो भी बाहर चली जाती है। लेकिन जब आप सिर्फ शुद्ध निरीक्षण करते हैं, सिर्फ एक विटनेस होकर भीतर रह जाते हैं कि क्रोध उठा है, मैं इसे देखूंगा। और कुछ भी न करूंगा; इस क्रोध के पक्ष में, विपक्ष में कुछ भी न करूंगा, सिर्फ देखूंगा। यह भी न कहूंगा कि क्रोध बुरा है। यह भी न कहूंगा कि क्रोध नहीं करना चाहिए। यह भी न कहूंगा कि मुझे क्रोध क्यों होता है। मैं सिर्फ देखूंगा। जैसे आकाश में एक बादल जा रहा हो, ऐसे भीतर क्रोध के बादल को देखूंगा। जैसे रास्ते से कोई गुजर रहा हो, ऐसे भीतर से गुजरते क्रोध को देखूंगा। सिर्फ देखूंगा, कुछ करूंगा नहीं।

और आप चकित हो जाएंगे। कुछ ही क्षणों में, देखते ही देखते, क्रोध शांत हो गया है। और वह जो क्रोध की शक्ति थी, वह आपको भीतर उपलब्ध हो गई है।

ज्ञानी जीवन की समस्त बेचैनी को, निरीक्षण और साक्षी के द्वारा अंतर्यात्रा के उपयोग में ले आता है। वह फ्यूल बन जाती है, वह ईंधन बन जाती है। और इसलिए कई बार ऐसा हुआ है कि महाक्रोधी क्षणभर में आध्यात्मिक हो गए हैं।

हमने वाल्मीकि की कथा सुनी है। ऐसी बहुत कथाएं हैं। और हमें हैरानी होती है कि इतने क्रोधी, हिंसक, हत्यारे तरह के व्यक्ति क्षणभर में कैसे आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कर गए? राज, उसका रहस्य यही है।

असल में अगर आपके पास क्रोध की शक्ति भी नहीं है, तो आपके पास ईंधन भी नहीं है, आप उपयोग क्या करिएगा? इसलिए साधारण क्रोधी आध्यात्मिक नहीं हो पाता। ख्याल करना। साधारण कामवासना से भरा व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं हो पाता। साधारण दुष्टता से भरा व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं हो पाता। उसके पास जो कुछ भी है, उसमें वह कुनकुना ही हो सकता है, उबल नहीं सकता। उसके पास शक्ति क्षीण है।

इसलिए आप घबड़ाना मत। अगर बेचैनी ज्यादा है, सौभाग्य है। अगर कामवासना प्रगाढ़ है, सौभाग्य है। अगर क्रोध भयंकर है, बड़ी परमात्मा की कृपा है। इसका अर्थ है कि आपके पास ईंधन है। अब यह दूसरी बात है कि ईंधन से आप यात्रा करेंगे कि घर जला लेंगे। इसमें जल मरेंगे या इस ऊर्जा का उपयोग करके यात्रा पर निकल जाएंगे, यह आपके हाथ में है।

परमात्मा ने जो भी दिया है, वह सभी उपयोगी है। चाहे कितना ही विकृत दिखाई पड़ता हो, और चाहे कितना ही खतरनाक और पापपूर्ण मालूम पड़ता हो, जो भी मनुष्य को मिला है, उस सबकी उपयोगिता है। और अगर उपयोग आप न कर पाएं, तो आपके अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है।

कुछ लोग हैं, जिनको अगर खाद दे दिया जाए, तो घर में ढेर लगाकर गंदगी भर लेंगे। उनका घर दुर्गंध से भर जाएगा। और कुछ लोग हैं, जो खाद को बगीचे में डाल लेंगे। और उसी खाद से फूल निकल आएंगे, और उनका घर सुगंध से भर जाएगा। जो खाद को ही सम्हालकर बैठ जाएंगे, वे भगवान को गाली देंगे कि हम पर यह किस भांति का अभिशाप है कि यह खाद हमारे ऊपर डाल दिया है! जो जानते हैं, वे खाद से फूल निर्मित कर लेते हैं।

फूलों की जो सुगंध है, वह खाद की ही दुर्गंध है। फूलों में जो रंग है, वह खाद का ही है; वह सब खाद ही रूपांतरित हुआ है।

मनुष्य के पास क्रोध, घृणा, हिंसा खाद है; अध्यात्म का फूल खिल सकता है। अगर आप थोड़े-से साक्षी को जगाने की कोशिश करें। साक्षी-भाव माली बन जाता है।

तो बेचैनी से घबड़ाएं मत, अशांति से घबड़ाएं मत। भीतर पागलपन उबलता हो, भयभीत न हों। उसका उपयोग करें। उसके साक्षी होना शुरू हो जाएं। और जब भी कोई चीज भीतर पकड़े, तो उसको अवसर समझें, कि वह ध्यान का एक मौका है, उस पर ध्यान करें।

लेकिन हम उलटा करते हैं। जब क्रोध आ जाए, तो हम राम-राम जपते हैं। हम सोचते हैं कि हम ध्यान कर रहे हैं। राम-राम जपना तो सिर्फ डायवर्शन है। वह तो क्रोध उबल रहा है, आप अपने मन को कहीं और लगा रहे हैं, ताकि इस क्रोध में न उलझना पड़े। यह तो इस तरह राम-राम जपकर आप सिर्फ अपने को थोड़ी देर के लिए बचा रहे हैं, मस्तिष्क को हटा रहे हैं।

लेकिन क्रोध वहां पड़ा है, वह बदलेगा नहीं। आपके हटने से नहीं बदलेगा; आपके जम जाने से और देखने से बदलेगा। आप पीठ कर लेंगे, तो क्रोध और घाव बना देगा भीतर, और जड़ें जमा लेगा। आप अपनी दोनों आंखें क्रोध पर गड़ा दें। और यह क्षण है कि आप होशपूर्वक क्रोध को देख लें।

कामवासना मन को पकड़े, तो भागें मत। घबड़ाएं मत। राम-राम मत जपें। कामवासना को सीधा देखें। सीधा साक्षात्कार जरूरी है वासनाओं का। लेकिन आदमी को भागना सिखाया गया है। उसको कहा गया है, जहां भी कुछ बुरा दिखाई पड़े, भाग खड़े होओ।

लेकिन भागोगे कहां? बुरा तुम्हारे भीतर है, वह तुम्हारे साथ चला जाएगा। अपने से भागने का कोई भी रास्ता नहीं है। अगर बुराई कहीं बाहर होती, तो हम भाग भी जाते। वह हमारे भीतर खड़ी है, उसको बदलना पड़ेगा। इस खाद का उपयोग करना पड़ेगा। और इसका उपयोग करना बहुत कठिन नहीं है।

कठिनाई सिर्फ दो हैं। एक, कि हम पहले से ही दुर्भाव बनाए बैठे हैं। जो आदमी खाद का दुश्मन बना बैठा है, वह खाद का उपयोग न कर पाएगा। हम पहले से ही माने बैठे हैं, क्रोध बुरा है, घृणा बुरी है, सब बुरा है। और उस सबसे हम भरे हैं। बुरे की जो धारणा है, वह देखने नहीं देती। बुरे की जो धारणा है, वह निष्पक्ष विचार नहीं करने देती। बुरे की जो धारणा है, वह समझने के पहले ही भागने और लड़ने में लगा देती है।

तो एक तो धारणाएं छोड़ें। निर्धारणापूर्वक देखना शुरू करें। तथ्य उन्हीं के सामने प्रकट होते हैं, जो बिना धारणा के उन्हें देखते हैं। जो धारणा से देखते हैं, वे तो अपनी ही धारणा को परिपुष्ट कर लेते हैं।

दूसरी बात, भागने की आदत छोड़ें। पूरी पृथ्वी पर हमें पलायन सिखाया गया है, भागो, बचो। भागने से कोई भी कभी जीत को उपलब्ध नहीं होता। तो क्रोध आ गया है, तो आप रेडियो खोल लेते हैं। मन में कामवासना उठी है, तो रामायण पढ़ने लगते हैं। घृणा मन में उठ गई है, हिंसा का भाव आता है, तो मंदिर चले जाते हैं।

भागें मत। भागने से कुछ भी न होगा। वह जो छिपा है भीतर, वह मजबूत होता रहेगा। न तो उसे मंदिर मिटा सकता है, न रामायण मिटा सकती है। कोई भी उसे मिटा नहीं सकता। सिवाय आपके साक्षात्कार के कोई उसे मिटा नहीं सकता। आपको उसे आंख गड़ाकर देखना ही पड़ेगा। अपने भीतर जो है, उसका नग्न दर्शन जरूरी है।

लेकिन भागने वाला दर्शन नहीं कर पाता। और भागने वाला धीरे-धीरे कमजोर हो जाता है। और जितना भागता है, उतने ही शत्रु उसका पीछा करते हैं। क्योंकि वे शत्रु बाहर नहीं हैं। वे आपके साथ हैं, आपमें ही हैं। आपके हिस्से हैं।

दो बातें, एक तो पक्ष छोड़ें। पक्ष के कारण बड़ी कठिनाई है।

मैंने सुना है कि आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में एक फुटबाल मैच हो रहा था। और दो दल थे। प्रोटेस्टेंट ईसाई, उनका एक दल था; और कैथोलिक ईसाई, उनका एक दल था। हजारों लोग देखने इकट्ठे हुए थे, प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक दोनों ही, क्योंकि दोनों के दल थे। और मामला सिर्फ फुटबाल का नहीं था, धर्म का हो गया था। जो जीतेगा... फुटबाल का ही सवाल नहीं है कि फुटबाल में जीत गया। अगर कैथोलिक पार्टी जीत गई, तो कैथोलिक धर्म जीत गया। और अगर प्रोटेस्टेंट पार्टी जीत गई, तो प्रोटेस्टेंट धर्म जीत गया।

तो भारी कशमकश थी, और भारी उत्तेजना थी, और दोनों दलों के लोग दोनों तरफ मौजूद थे अपने-अपने दल को प्रोत्साहन देने के लिए। और तब कैथोलिक दल ने बहुत अच्छा खेल लिया। विजय के करीब आते मालूम पड़े। एक आदमी उछल-उछलकर उनको प्रोत्साहन दे रहा था। वह इतनी खुशी में आ गया था कि अपनी टोपी भी उछाल रहा था। उसके पास के लोगों ने समझा कि यह कैथोलिक मालूम पड़ता है।

फिर हवा बदली और प्रोटेस्टेंट दल तेजी से जीतता हुआ मालूम पड़ने लगा। लेकिन वह जो आदमी टोपी उछाल रहा था, वह अब भी टोपी उछालता रहा और नाचता रहा।

तब आस-पास के लोग जरा चिंतित हुए। तो पड़ोसी ने पूछा कि माफ करें, आप कैथोलिक हैं या प्रोटेस्टेंट? आप किसके पक्ष में नाच रहे हैं? किसकी खुशी में नाच रहे हैं? क्योंकि पहले जब कैथोलिक जीत रहे थे, तब भी आप टोपी उछाल रहे थे। तब भी बड़े आप आनंदित हो रहे थे। और अब जब कि कैथोलिक हार रहे हैं और प्रोटेस्टेंट जीत रहे हैं, तब भी आप आनंदित हो रहे हैं। तो आप किसके पक्ष में आनंदित हो रहे हैं?

उस आदमी ने कहा, मैं किसी के पक्ष में आनंदित नहीं हो रहा हूं, मैं तो खेल का आनंद ले रहा हूं। जिस आदमी ने पूछा था, उसने अपनी पत्नी से कहा कि यह आदमी नास्तिक मालूम होता है।

खेल का आनंद ले रहा हूं, उस आदमी ने कहा। बड़ी कीमत की बात कही। उसने कहा, मुझे इससे मतलब नहीं कि कौन जीत रहा है। लेकिन खेल इतना आनंदपूर्ण हो रहा है कि मैं उसका आनंद ले रहा हूं। मैं किसी पक्ष में नहीं हूं। तो उस आदमी को लगा कि यह नास्तिक होना चाहिए, क्योंकि जो कैथोलिक भी नहीं है और प्रोटेस्टेंट भी नहीं है... ।

आप मन का थोड़ा आनंद लेना सीखें। लेकिन आप पहले से ही या तो कैथोलिक हैं या प्रोटेस्टेंट हैं। पहले से ही माने बैठे हैं और मन की शक्तियों का आनंद नहीं ले पाते हैं। पहले से ही मान लिया है कि क्रोध बुरा है,

कामवासना पाप है, लोभ बुरा है। यह बुरा है, वह बुरा है; यह अच्छा है। सब माने बैठे हैं। पता आपको कुछ भी नहीं है। क्योंकि अगर आपको ही पता हो कि क्या बुरा है, तो बुरा फौरन बंद हो जाए। अगर आपको ही पता हो कि क्या भला है, तो भला आपकी जिंदगी में आ जाए। आपको कुछ पता नहीं है। सुना है; लोगों ने कहा है; हजारों-हजारों साल की हवा और संस्कार है। तो बस, आप उनको मानकर बैठे हैं। और उससे बड़ी अड़चन में पड़े हुए हैं।

क्रोध बुरा है, यह मालूम है, और क्रोध होता है। इसलिए अड़चन दोहरी हो गई है। क्रोध का दुख तो भोगना ही पड़ता है, फिर क्रोध किया, इसका भी दुख भोगना पड़ता है। यह दोहरा दुख हो गया। क्रोध ही काफी था आदमी को परेशान करने के लिए। अब आप एक और दुश्मन खड़ा कर लिए कि क्रोध बुरा है। तो पहले क्रोध करें, उसका दुख भोगें; और फिर क्रोध किया, इसका दुख भोगें। कामवासना बुरी है, पहले कामवासना का दुख भोगें। और फिर कामवासना में उतरे, यह पाप किया, इसका दुख भोगें। और इस तरह जीवन और जटिल हो गया है।

कामवासना क्या है? क्रोध क्या है? मन की सारी ऊर्जाएं क्या हैं? इनका निष्पक्ष दर्शन सीखें। और आप बड़े आनंदित होंगे। और उस आनंद से ही आपके जीवन में बेचैनी बदलनी शुरू हो जाएगी और चैन निर्मित होने लगेगा।

दूसरी बात, भागना बंद कर दें।

वैज्ञानिक कहते हैं कि दो ही उपाय हैं, या तो भागो या लड़ो। जिंदगी में यही है। अगर एक शेर आप पर हमला कर दे, तो दो ही उपाय हैं, या तो भागो या लड़ो। अगर लड़ सकते हो, तो ठीक। नहीं तो भाग खड़े होओ। दो ही उपाय हैं।

बाहर की जिंदगी में अगर संघर्ष की स्थिति आ जाए, तो दो ही विकल्प हैं, लड़ो या भागो। लेकिन भीतर की जिंदगी में एक तीसरा विकल्प भी है, जागो। वह तीसरा विकल्प ही धर्म है।

बाहर की जिंदगी में तो कोई उपाय नहीं है। दो ही मार्ग हैं। अगर शेर हमला कर दे, तो क्या करिएगा? या तो लड़िए या भागिए। दो में से कुछ चुनना ही पड़ेगा।

लेकिन भीतर दो विकल्प की जगह तीन विकल्प हैं। या तो लड़ो, या भागो, या जागो। न लड़ो, और न भागो, सिर्फ खड़े होकर जाग जाओ। जो भी हो रहा है, उसे देख लो। जागते ही ऊर्जा रूपांतरित होती है। और बेचैनी आनंद की यात्रा पर निकल जाती है। वह नाव बन जाती है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मन-वाणी की सरलता अर्थात भीतर-बाहर एक जैसा होना, धार्मिकता व ज्ञान का लक्षण आपने कहा। यदि व्यक्ति जैसा भीतर है, वैसा ही व्यवहार बाहर भी करने लगे, तो वर्तमान समाज व नीति व्यवस्था में बड़ी अराजकता का आना अवश्यंभावी दिखता है। इस अराजकता से बचने का क्या कोई मध्य मार्ग या किसी नैतिक अनुशासन को आप जरूरी नहीं मानते?

पहली तो बात यह समझ लेनी चाहिए कि इसके पहले कि आप समाज के संबंध में सोचें, स्वयं के संबंध में सोचें। तत्क्षण लोग समाज के संबंध में सोचना शुरू कर देते हैं कि समाज में क्या होगा। पहली विचारणा तो यह है कि आप में क्या हो रहा है। दूसरी विचारणा समाज की हो सकती है।

तो पहले तो यह ठीक से समझ लें कि जब तक जो आपके भीतर है, आप बाहर प्रकट नहीं करते, तो आप झूठे होते जा रहे हैं, आप झूठे हो गए हैं। एक कागज की प्रतिमा हो गए हैं। असली आदमी भीतर दबा है। और झूठा आदमी ऊपर आपकी छाती पर चढ़ा है। यह झूठा आपके लिए बोझ हो गया है। इस झूठ की पर्त बढ़ती चली जाती है। और जितनी इस झूठ की पर्त बढ़ती है, जिंदगी उतनी बुरी, बेहूदी, निराश, उबाने वाली हो जाती है। क्योंकि केवल स्वभाव के साथ ही रस का संबंध हो सकता है। झूठ के साथ जीवन में कोई रस, कोई अर्थ नहीं जुड़ पाता।

तो पहले तो यह देखें कि आप भीतर जो है, उसे बाहर न लाकर आप झूठे हो गए हैं। और आप ही झूठे नहीं हो गए हैं, सभी झूठे हो गए हैं।

इसलिए हमने एक समाज निर्मित किया है, जो झूठ का समाज है। जब व्यक्ति झूठा होगा, तो समाज भी झूठा होगा। और जब व्यक्ति का आधार ही झूठ होगा, तो समाज की सारी की सारी व्यवस्था झूठ हो जाएगी। फिर हम लाख उपाय करें कि समाज अच्छा हो जाए, वह अच्छा नहीं हो सकता। क्योंकि ईंट गलत है, तो मकान अच्छा नहीं हो सकता। इकाई गलत है, तो जोड़ अच्छा नहीं हो सकता।

तो पहले तो व्यक्ति को सहज, स्वाभाविक कर लेना जरूरी है। तो पहली तो बात यह ख्याल रखें कि अगर समाज भी आप अच्छा चाहते हैं, तो उसके लिए सच्चा व्यक्ति जरूरी है। सच्चे व्यक्ति के बिना अच्छा समाज नहीं होगा। और अच्छाई अगर झूठ है, तो समाज ऊपर से कितना ही अच्छा दिखाई पड़े, भीतर सड़ता रहेगा। सड़ रहा है। सब अच्छी-अच्छी बातें ऊपर हैं। और सब बुरी-बुरी बातें नीचे बह रही हैं।

ऐसा लगता है कि बुरी बातें तो हमारी आत्मा हो गई हैं और अच्छी बातें हमारे वस्त्र हो गई हैं। उन वस्त्रों से हम किसको धोखा दे रहे हैं? कोई उससे धोखे में नहीं आ रहा है, क्योंकि सभी भी वही धोखा कर रहे हैं।

दूसरी बात यह ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि समाज में अराजकता फैल सकती है, उसका कारण यह नहीं है कि सत्य से अराजकता फैलती है। उसका कारण यह है कि असत्य का अगर समाज हो, तो सत्य से अराजकता फैलती है। अगर सभी लोग झूठ बोलते हों, तो वहां कोई आदमी सच बोले, तो उससे अराजकता फैलेगी। जहां सभी लोग बेईमान हों, वहां कोई आदमी ईमानदार हो जाए, तो उससे अराजकता फैलेगी।

आपने वह कहानी सुनी होगी कि एक सम्राट नग्न रास्ते पर निकला है, लेकिन एक आदमी ने उसे भरोसा दिलवा दिया है कि वह देवताओं के वस्त्र पहने हुए है। एक धोखेबाज आदमी ने उससे लाखों रुपए ले लिए, और उससे कहा है कि मैं तुझे देवताओं के वस्त्र ला दूंगा। और एक दिन वह देवताओं के वस्त्र लेकर आ गया है। और उसने सम्राट को कहा कि आप अपने वस्त्र उतारते जाएं, मैं देवताओं के वस्त्र निकालता हूं।

सम्राट ने अपनी टोपी निकाली। उसने पेटी में से खाली हाथ बाहर निकाला। सम्राट ने देखा कि टोपी तो हाथ में नहीं है। उसने कहा, तुम्हारा हाथ खाली है! उस आदमी ने सम्राट के कान में कहा कि मैं जब चलने लगा, तो देवताओं ने मुझ से कहा था, ये वस्त्र केवल उसी को दिखाई पड़ेंगे, जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो।

उस सम्राट को तत्क्षण टोपी दिखाई पड़ने लगी। क्योंकि अब यह झंझट की बात हो गई। उसने कहा, अहा, ऐसी सुंदर टोपी तो मैंने कभी देखी नहीं! और उसने टोपी सिर पर रख ली, जो थी ही नहीं।

लेकिन टोपी का ही मामला नहीं था। फिर उसके बाकी वस्त्र भी निकलते चले गए। दरबारी घबड़ाए; क्योंकि वह सम्राट नग्न हुआ जा रहा था। लेकिन जब आखिरी वस्त्र भी निकल गया, तब उस आदमी ने जोर से कहा कि दरबारियो, अब तुम्हें मैं एक और खबर बताता हूं। जब मैं चलने लगा, तो देवताओं ने कहा था कि ये वस्त्र उसी को दिखाई पड़ेंगे, जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो।

सम्राट ने कहा कि कितने सुंदर वस्त्र हैं! दरबारी आगे बढ़ आए एक-दूसरे से वस्त्रों की तारीफ करने में। क्योंकि अगर कोई पीछे रह जाए, तो कहीं शक न हो जाए कि यह कहीं किसी और से तो पैदा नहीं हुआ। एक-दूसरे से बढ़-बढ़कर तारीफ करने लगे।

जो थोड़े डर भी रहे थे तारीफ करने में, क्योंकि राजा बिल्कुल नग्न था, उन्होंने भी देखा कि जब इतने लोग तारीफ कर रहे हैं, तो गलती अपनी ही होगी। जब इतने लोग कह रहे हैं कि ऐसे वस्त्र कभी देखे नहीं, अदभुत, अलौकिक! तो शक अपने पर ही हुआ आदमियों को, कि इसका मतलब यही है कि मेरी मां मुझे धोखा दे गई! मैं अपने ही बाप का बेटा नहीं मालूम पड़ता। अब इसको बताने से क्या सार है! वह भी आदमी आगे बढ़कर तारीफ करने लगा।

यह हालत सभी की थी। लेकिन उस बेईमान आदमी ने कहा कि देवताओं ने कहा है कि पहली दफा पृथ्वी पर ये वस्त्र जाते हैं, तो इनका जुलूस निकलना जरूरी है। रथ तैयार करवाएं, और राजधानी में जुलूस निकलेगा।

राजधानी में हवा की तरह खबर फैल गई कि सम्राट को देवता के वस्त्र मिले हैं। लेकिन एक शर्त है। वे उसी को दिखाई पड़ते हैं, जो अपने ही बाप से पैदा हो।

लाखों लोग रास्तों के किनारे खड़े थे। सभी को वस्त्र दिखाई पड़ते थे। सिर्फ एक छोटा बच्चा, जो अपने बाप के कंधे पर बैठा हुआ था, उसने अपने बाप के कान में कहा, लेकिन पिताजी, राजा नंगा है! उसने कहा, चुप रह नासमझ। अभी तेरी उम्र नहीं है। जब तू बड़ा होगा, तो अनुभव से तुझे भी वस्त्र दिखाई पड़ने लगेंगे।

वह लड़का अराजकता फैला रहा था। सारे नगर को, सबको वस्त्र दिखाई पड़ रहे थे। अगर सारा समाज झूठ को पकड़े हो, तो सत्य अराजकता लाता है। लेकिन ऐसी अराजकता स्वागत के योग्य है।

संन्यासी का अर्थ ही यही है कि वह समाज के झूठ को मानने को राजी नहीं है। संन्यासी अराजक है, असामाजिक है। वह यह कह रहा है कि तुम्हारे झूठ मानने को मैं राजी नहीं हूं। मैं उसी ढंग से जीऊंगा, जिस ढंग से मुझे ठीक लगता है। चाहे इसके लिए मुझे कुछ भी कष्ट झेलना पड़े। वह कष्ट तपश्चर्या है।

आप यह मत सोचें कि सत्य की यात्रा पर कोई कष्ट न होगा। अगर ऐसा होता कि सत्य की यात्रा पर कोई कष्ट न होता, तो दुनिया में इतना झूठ होता ही नहीं। सत्य की यात्रा पर कष्ट है। इसीलिए तो लोग झूठ के साथ राजी हैं। झूठ सुविधापूर्ण है। सत्य असुविधापूर्ण है। झूठ में कनवीनिएंस है। क्योंकि चारों तरफ झूठ है।

वह बाप अपने बेटे से क्या कह रहा था? वह यही कह रहा था कि उपद्रव खड़ा मत कर। यही सुविधापूर्ण है। जब सबको वस्त्र दिखाई पड़ रहे हों, तो अपने को भी वस्त्र देखना ही सुविधापूर्ण है। झंझट खड़ी करनी उचित नहीं है।

यह जो कृष्ण का सूत्र है कि मन-वाणी की सरलता, सहजता, यह आपको खतरे में तो ले ही जाएगी। खतरे में इसलिए ले जाएगी, क्योंकि चारों तरफ जो लोग हैं, वे मन-वाणी से सरल नहीं हैं, जटिल हैं, छद्म, झूठ, चालाकी से भरे हैं। वे वही नहीं कहते हैं, जो कहना चाहते हैं। वे वही नहीं प्रकट करते हैं, जो प्रकट करना चाहते हैं। और ये इतनी परतें हो गई हैं झूठ की कि उनको खुद भी पता नहीं है कि वे क्या कहना चाहते हैं; उनको खुद भी पता नहीं है कि वे क्या करना चाहते हैं; उनको खुद भी पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं।

तो निश्चित ही, जब कोई व्यक्ति यह निर्णय और संकल्प करेगा कि मैं सरल हो जाऊंगा, तो अड़चनें आएंगी, कठिनाइयां खड़ी होंगी। उन कठिनाइयों के डर से ही तो लोग झूठ के साथ राजी हैं। साधक का अर्थ है कि वह इन कठिनाइयों को झेलने को राजी होगा।

इसका यह अर्थ नहीं है कि आप जान-बूझकर समाज में अराजकता फैलाएं। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आप जान-बूझ कर लोगों को परेशानी में डालें। इसका कुल इतना अर्थ है कि जब भी आपके सामने यह सवाल उठे कि मैं अपनी आत्मा को बेचूं और सुविधा को खरीदूं या सुविधा को तोड़ने दूं और आत्मा को बचाऊं, तो आप आत्मा को बचाना और सुविधा को जाने देना।

यह कोई जरूरी नहीं है कि आप चौबीस घंटे उपद्रव खड़ा करते रहें। लेकिन इतना ख्याल रखना जरूरी है कि आत्मा न बेची जाए किसी भी कीमत पर। सुविधा के मूल्य पर स्वयं को न बेचा जाए, इतना ही ख्याल रहे, तो आदमी धीरे-धीरे सरलता को उपलब्ध हो जाता है। और कठिनाई शुरू में ही होगी। एक बार आपका सत्य के साथ तालमेल बैठ जाएगा, तो कठिनाई नहीं होगी।

सच तो यह है, तब आपको पता चलेगा कि झूठ के साथ मैंने कितनी कठिनाइयां झेलीं और व्यर्थ झेलीं, क्योंकि उनसे मिलने वाला कुछ भी नहीं है।

सत्य के साथ झेली गई कठिनाई का तो परिणाम है, फल है। झूठ के साथ झेली गई कठिनाई का कोई परिणाम नहीं है, कोई फल नहीं है। एक झूठ बोलो, तो दस झूठ बोलने पड़ते हैं। क्योंकि एक झूठ को बचाना हो, तो दस झूठ की दीवाल खड़ी करनी जरूरी है। और फिर दस झूठ के लिए हजार बोलने पड़ते हैं। और इस सिलसिले का कोई अंत नहीं होता। और एक झूठ से हम दूसरे पर पोस्टपोन करते जाते हैं, कहीं पहुंचते नहीं।

सत्य के लिए कोई इंतजाम नहीं करना होता। सत्य के लिए कोई दूसरे सत्य का सहारा नहीं लेना पड़ता।

वाइल्ड ने लिखा है कि झूठ बोलना केवल उन्हीं के लिए संभव है, जिनकी स्मृति बहुत अच्छी हो। जिनकी स्मृति कमजोर है, उन्हें भूलकर झूठ नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि झूठ में बहुत हिसाब रखना पड़ेगा। एक झूठ बोल दिया, तो फिर उसका हिसाब रखना पड़ता है सदा। फिर उसी झूठ के हिसाब से सब बोलना पड़ता है।

तो वाइल्ड ने लिखा है कि मेरी चूंकि स्मृति कमजोर है, इसलिए मैं सत्य का ही भरोसा करता हूं। क्योंकि उसे बोलने में याद रखने की कोई जरूरत नहीं है।

झूठ के लिए स्मृति तो मजबूत चाहिए। इसीलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो समाज अशिक्षित हैं, वहां झूठ कम प्रचलित होता है। क्योंकि झूठ के लिए शिक्षित होना जरूरी है। जो समाज असभ्य हैं, वे कम बेईमान होते हैं। क्योंकि बेईमानी के लिए जितनी कुशलता चाहिए, वह उनके पास नहीं होती। जैसे ही लोगों को शिक्षित करो, बेईमानी बढ़ने लगती है उसी अनुपात में। लोगों को शिक्षा दो, उसी के साथ झूठ बढ़ने लगता है, क्योंकि अब वे कुशलता से झूठ बोल सकते हैं। झूठ के लिए कला चाहिए। सत्य के लिए बिना कला के भी सत्य के साथ जीया जा सकता है। झूठ के लिए आयोजन चाहिए।

हम जिस समाज में जी रहे हैं, वह सब आयोजित है। इस आयोजन के बीच से छूटना हो, तो कठिनाई शुरू में होगी, लेकिन कठिनाई अंत में नहीं होगी।

इस बात को ऐसा समझें कि असत्य के साथ पहले सुविधा होती है, बाद में असुविधा होती है। सत्य के साथ पहले असुविधा होती है, बाद में सुविधा होती है। जिनको हम संसार के सुख कहते हैं, वे पहले सुख मालूम पड़ते हैं, पीछे दुख मालूम पड़ते हैं। और जिनको हम अध्यात्म की तपश्चर्या कहते हैं, वह पहले कष्ट मालूम पड़ती है और पीछे आनंद हो जाता है।

इसको सूत्र की तरह याद कर लें। पहली ही घटना को सब कुछ मत समझना, अंतिम घटना सब कुछ है।

तो पहले अगर असुविधा भी हो, तो उसकी फिक्र न करके यही ध्यान रखना कि बाद में क्या होगा, अंतिम फल क्या होगा, अंतिम परिणाम क्या होगा। नहीं तो लोग जहर की गोली भी शक्कर में लिपटी हो तो खा

लेते हैं। क्योंकि पहले स्वाद मीठा मालूम पड़ता है। पहले स्वाद से सावधान होना जरूरी है। अंतिम स्वाद को ध्यान में रखना जरूरी है।

अंतिम प्रश्न। एक और मित्र ने पूछा है कि अनेक सदगुरुओं के व्यवहार व जीने के ढंग में श्रेष्ठता का अभिमान और दंभाचरण दिखाई पड़ता है। तथाकथित ज्ञानी व वास्तविक धार्मिक व्यक्ति को बाहर से कैसे पहचाना जाए? क्योंकि भीतर से पहचानना अत्यंत कठिन है!

यह थोड़ा समझने जैसा है कि जब भी आपको समझने के लिए कुछ कहा जाता है, तत्काल आप दूसरों के संबंध में सोचना शुरू कर देते हैं। कृष्ण ने यह नहीं कहा है कि ज्ञानी का लक्षण यह है कि वह पता लगाए कि कौन दंभाचरण में है और कौन नहीं है। कृष्ण ने यह नहीं कहा है कि ज्ञानी इसका पता लगाने निकलता है कि कौन गुरु दंभी है और कौन गुरु दंभी नहीं है। कृष्ण ने कहा है कि तुम दंभाचरण में हो या नहीं, इसकी फिक्र करना।

लेकिन हम? हमें अपनी तो फिक्र ही नहीं है। हम जैसे निस्वार्थ आदमी खोजना बहुत कठिन है! हमें अपनी बिल्कुल फिक्र नहीं है। हमें सारी दुनिया की फिक्र है। कौन सदगुरु दंभाचरणी है, इसका कैसे पता लगाएं! मुझे एक कहानी याद आ गई।

मैंने सुना, एक गांव में शराब के खिलाफ बोलने के लिए एक महात्मा का आगमन हुआ। उनका देश शराब के विपरीत सप्ताह मना रहा था। तो महात्मा ने बहुत समझाया, शराब के खिलाफ बहुत-सी बातें समझाईं। और फिर जोर देने के लिए उसने कहा कि तुम्हें पता है कि गांव में सब से बड़ी हवेली किसकी है? शराब बेचने वाले की। और पैसा उसका कौन चुकाता है? तुम। और तुम्हें पता है कि गांव में किसकी स्त्री सबसे ज्यादा कीमती गहने पहनती है? शराब बेचने वाले की। और उसका मूल्य तुम अपने खून से चुकाते हो।

जब सभा पूरी हो गई, तो एक जोड़ा, पति-पत्नी, उसके पास आया और महात्मा के चरणों में सिर रखकर उन्होंने कहा कि आपकी बड़ी कृपा है। आपने जो उपदेश दिया, उससे हमारा जीवन बदल गया। तो महात्मा ने कहा कि बड़ी खुशी की बात है। क्या तुमने शराब न पीने का तय कर लिया? उन्होंने कहा कि नहीं, हमने एक शराब की दुकान खोलने का तय कर लिया है। आपने ऐसी हृदय को चोट पहुंचाने वाली बातें कहीं कि अब हम सोचते हैं, सब धंधा छोड़कर शराब ही बेचने का धंधा कर लें।

सुना है मैंने, एक गांव में एक बहुत बड़ा कंजूस धनपति था। उससे कभी कोई दान मांगने में सफल नहीं हो पाया था। और गांव में बड़ी तकलीफ थी। कोई प्लेग फैल गई थी। कोई बीमारी आ गई थी। तो मजबूरी की वजह से दान मांगने लोग उसके घर भी गए। उन्होंने दान की प्रशंसा में बहुत बातें कहीं। और उन्होंने कहा कि दान से बड़ा धर्म जगत में दूसरा नहीं है। और यह समय ऐसी असुविधा का है कि आप जरूर कुछ दान करें।

उस कंजूस ने कहा कि मुझे दान के संबंध में थोड़ा और समझाओ। जो चंदा मांगने आए थे, बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि यह बड़ा शुभ लक्षण था। क्योंकि पहले तो वह दरवाजा ही नहीं खोलता था। भीतर भी आ जाए कोई दान मांगने, तो तत्काल बाहर निकालता था। उसने कहा कि बैठो प्रेम से। मुझे जरा दान के संबंध में और थोड़ा समझाओ।

उन्होंने कहा, कुछ आशा है। यह पहला मौका था कि उसने दान मांगने वालों को इतने प्रेम से बिठाया। फिर तो उसने पानी वगैरह भी बुलाकर पिलाया। और कहा कि जरा और, मुझे दान के संबंध में पूरा ही समझा

दो। वे समझे कि अब कोई दिक्कत नहीं रही। कहीं और दान मांगने न जाना पड़ेगा। सभी कुछ यह आदमी दे देगा। इसके पास इतना है कि यह अकेला भी काफी है गांव की बीमारी के मुकाबले में।

जब वे सारी बात कह चुके, तो उस कृपण कंजूस ने कहा कि मैं तुम्हारी बात से इतना प्रभावित हो गया हूं कि जिसका कोई हिसाब नहीं! तो उन्होंने कहा, अब आपका क्या इरादा है? दान मांगने वाले एकदम मुंह बा के बोले कि अब आपका क्या इरादा है? उसने कहा, इरादा क्या! मैं भी तुम्हारे साथ दान मांगने चलता हूं। जब दान इतनी बड़ी चीज है, तो मैं भी लोगों को समझाऊंगा।

कृष्ण कह रहे हैं कि दंभाचरण ज्ञानी का लक्षण नहीं है। आप पूछ रहे हैं कि कई दंभाचरणी हैं, उनका कैसे पता लगाएं? कृष्ण का उनसे कुछ लेना-देना नहीं है। कृष्ण आपसे कह रहे हैं।

और आप दूसरे का पता लगाएंगे कैसे? पहले तो कोई जरूरत नहीं है। दूसरा अपने दंभ के लिए कष्ट खुद पाएगा; आप कष्ट नहीं पाएंगे। अपने दंभ के कारण दूसरा नरक में जाएगा; आपको नहीं जाना पड़ेगा। अपने दंभ के कारण दूसरे के स्वर्ग का द्वार बंद होगा; आपका द्वार बंद नहीं होगा। आप क्यों परेशान हैं? दूसरा दंभी है या नहीं, यह उसकी चिंता है। आप कृपा करें और अपनी चिंता करें। अपने पर थोड़ी कृपा करनी जरूरी है।

फिर अगर आप पता लगाना भी चाहें, तो लगाने का कोई उपाय नहीं है। जब तक कि आप पूरी तरह दंभ-शून्य न हो जाएं, तब तक आप दूसरे में दंभ है या नहीं, इसका कोई पता नहीं लगा सकते। क्योंकि आपका जो दंभ है, वह व्याख्या करेगा। आपके भीतर जो दंभ बैठा है, वह व्याख्या करेगा। आपके भीतर जो अहंकार है, उसके कारण आप दूसरे में भी कुछ देख लेंगे, जो दूसरे में शायद न भी हो।

समझें ऐसा, कि अगर आप कृष्ण के पास खड़े हों दंभ से भरे हुए, तो आपको कृष्ण की बातें बहुत दंभपूर्ण मालूम होंगी। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, सब छोड़कर मेरी शरण आ। अब इससे ज्यादा अहंकार की और क्या बात हो सकती है! सब छोड़--सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज--सब धर्म-वर्म छोड़, मेरे चरण में आ जा, मेरी शरण आ जा।

अगर आप ईमानदारी से कहें; आप खड़े हों कृष्ण के पास, तो आप कहेंगे कि यह आदमी हद का अहंकारी है। इससे ज्यादा अहंकारी और कोई मिलेगा, जो अपने ही मुंह से अपने ही चरणों में आने का प्रचार कर रहा है!

आपके भीतर दंभ हो, तो कृष्ण का यह वचन दंभपूर्ण मालूम होगा। और आपके भीतर दंभ न हो, तो कृष्ण का यह वचन करुणापूर्ण मालूम होगा। यह सिर्फ करुणा है कृष्ण की कि वे अर्जुन से कह रहे हैं, तू व्यर्थ यहां-वहां मत भटक। और यहां जोर चरणों का नहीं है, यहां जोर समर्पण का है। लेकिन दंभी आदमी को सुनाई पड़ेगा कि कृष्ण अपने पैरों का प्रचार कर रहे हैं कि मेरे पैरों में आ जा। कृष्ण सिर्फ इतना कह रहे हैं उससे कि तू झुकना सीख ले। पैरों में आना तो सिर्फ बहाना है। तू समर्पण की कला सीख ले, तू झुक जा।

लेकिन आपको दंभपूर्ण मालूम पड़ेगा। आपके भीतर का दंभ होगा, तो अड़चन देगा। इसलिए जब तक आपके भीतर का अहंकार न मिट जाए, तब तक आप न जान पाएंगे कि कौन अहंकार-शून्य है, और कौन अहंकार-शून्य नहीं है।

पर इस चिंता में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। आप अपनी ही चिंता कर लें, पर्याप्त है। सदगुरुओं को सदगुरुओं पर छोड़ दें। उनका नरक-स्वर्ग उनके लिए है। उनकी तकलीफें वे भोगेंगे। न तो उनके पुण्य में आप भागीदार हो सकते हैं, न उनके पाप में। आप सिर्फ अपने में ही भागीदार हो सकते हैं। आप अकेले हैं। और दायित्व आपका आपके ऊपर है। समय मत खोएं, अवसर मत खोएं, शक्ति को व्यर्थ मत लगाएं।

फिर सदगुरुओं के ढंग हैं अपने, उनकी अपनी व्यवस्थाएं हैं, जिनको पहचानना बड़ी जटिल बात है।

मुसलमान फकीर हुआ, बायजीद। तो बायजीद, अक्सर नए लोग आते थे, तो उनके साथ बड़ा बेरुखा व्यवहार करता था। बड़ा बेरुखा, जैसे कि वे आदमी ही न हों। बायजीद बहुत विनम्र आदमी था। उससे विनम्र आदमी खोजना कठिन है। लेकिन नए आगंतुक लोगों से वह बड़ा बेरुखा और बड़ा बुरा व्यवहार करता था।

उसके शिष्य उससे कहते थे कि तुम अचानक, जब भी कोई नए लोग आते हैं, तो तुम इतने सख्त क्यों हो जाते हो? हम तुम्हें जानते हैं भलीभांति, जैसे ही नए लोग जाते हैं, तुम एकदम पिघल जाते हो; तुम नवनीत जैसे कोमल हो। लेकिन तुम पत्थर जैसे कठोर क्यों हो जाते हो नए लोगों के लिए? और फिर नए लोग तुम्हारे संबंध में बड़ी बुरी धारणा ले जाते हैं। वे सारी जगह खबर करते हैं कि यह आदमी बहुत दुष्ट मालूम होता है, अहंकारी मालूम होता है, क्रोधी मालूम होता है।

तो बायजीद कहता था, इसीलिए, ताकि व्यर्थ की भीड़-भड़क्का मेरी तरफ न आने लगे। मेरे पास समय कम है, काम ज्यादा है। और मैं केवल चुने हुए लोगों के ऊपर ही काम करना चाहता हूं। मैं पत्थरों को नहीं घिसना चाहता, सिर्फ हीरों को निकालना चाहता हूं। जिसमें इतनी भी अकल नहीं है कि जो मेरे झूठे अहंकार को पहचान सके, उसके साथ मेहनत करने को मैं राजी नहीं हूं।

लेकिन कोई-कोई बायजीद का यह दंभ और क्रोध देखकर भी रह जाते थे। क्योंकि जो समझदार हैं, वे कहते थे कि पहला ही परिचय काफी नहीं है। थोड़ी निकटता से; थोड़ा रुककर; थोड़े दिन ठहरकर। जल्दी निर्णय नहीं लेना है। जो थोड़े दिन रुक जाते थे, वे सदा के लिए बायजीद के हो जाते थे। अगर आप गए होते, तो आप लौट गए होते।

ऐसे फकीर हुए हैं, हमारे मुल्क में हुए हैं, जो बेहूदी गालियां देते हैं। उनमें कुछ परम ज्ञानी हुए हैं। आप उनके पास जाएंगे, तो वे मां-बहन की और भद्दी गालियां देंगे, जो आप कभी सोच ही नहीं सकते कि संत पुरुष देगा।

खुद रामकृष्ण गालियां देते थे। और कारण कुल इतना था कि जो इतनी जल्दी निर्णय ले ले, कि यह आदमी गलत है, क्योंकि गाली दे रहा है, इस आदमी के साथ मेहनत करनी उचित नहीं है। जो इतनी जल्दी निर्णय ले लेता है, वह ओछा आदमी है। उसके साथ मेहनत करने की कोई जरूरत नहीं है।

जो आदमी समझदार है, वह सोचेगा कि जब रामकृष्ण गाली दे रहे हैं, तो गाली में भी कोई मतलब होगा। थोड़ा रुकना चाहिए। जल्दी करने की जरूरत नहीं है। रामकृष्ण जैसा आदमी अकारण गाली नहीं देगा; अगर गाली दे रहा है, तो कोई प्रयोजन होगा, कोई मतलब होगा। तो जरा मैं रुकूं और निर्णय करने की जल्दी न करूं। जो रुक जाता, वह सदा के लिए रुक जाता। जो भाग जाता, वह सदा के लिए भाग जाता।

सदगुरुओं के अपने ढंग हैं, अपनी व्यवस्थाएं हैं। कहना कठिन है कि वे किस लिए क्या कर रहे हैं। आप उस झंझट में पड़ना ही मत। अगर आपको गुरु खोजना हो, तो धैर्यपूर्वक, बिना निर्णय लिए निकट रहने की क्षमता जुटाना। और जितना बड़ा गुरु होगा, उतनी ज्यादा धैर्य की परीक्षा लेगा। क्योंकि उतनी ही बड़ी संपदा देने के पहले वह आपकी पात्रता को पूरी तरह परख लेना चाहेगा। कोई छोटा-मोटा गुरु होगा, तो आपकी कोई परीक्षा भी नहीं लेगा। क्योंकि उसको डर है कि कहीं भाग न जाओ। वह आपको फांसने ही बैठा है।

छोटा-मोटा गुरु तो ऐसा है, जैसे कि मछली को पकड़ने के लिए आटा लगाकर कांटे में बैठा हुआ है। वह बड़े प्यार से कहेगा, आइए बैठिए। आपको सिर आंखों पर लेगा। आपके अहंकार को फुसलाएगा। आप राजी होंगे। लगेगा कि बढ़िया बात है; यह आदमी ऊंचा है। कितना विनम्र है! कि मुझसे कहा, आइए बैठिए। जिसे कोई नहीं कहता, आइए बैठिए; इतने बड़े आदमी ने मुझसे कहा, आइए बैठिए!

आपको शायद पता न हो; रूजवेल्ट जब अमेरिका का इलेक्शन जीता प्रेसिडेंट का। इलेक्शन जीतने के बाद उसने अपने पहले वक्तव्य में, किसी ने उससे पूछा कि आपके जीतने की जो विधियां आपने उपयोग कीं, उसमें खास बात क्या थी? तो उसने कहा, छोटे आदमियों को आदर देना। उसने दस हजार आदमियों को निजी पत्र लिखे थे। उनमें ऐसे आदमी थे, कि जैसे टैक्सी ड्राइवर था, जिसकी टैक्सी में बैठकर वह स्टेशन से घर तक आया होगा।

रूजवेल्ट की आदत थी कि वह टैक्सी ड्राइवर से उसका नाम पूछेगा, पत्नी का नाम पूछेगा, बच्चे का नाम पूछेगा। वह टैक्सी ड्राइवर तो आगे गाड़ी चला रहा है; पीछे देख नहीं रहा है। लेकिन रूजवेल्ट नोट करता रहेगा, पत्नी का नाम, बच्चे का नाम; बच्चे की तबियत कैसी है; बच्चा किस क्लास में पढ़ता है। टैक्सी ड्राइवर फूला नहीं समा रहा है। पंडित नेहरू आपसे पूछ रहे हों तो... ।

और फिर दो साल बाद एक पत्र आएगा टैक्सी ड्राइवर के नाम, कि तुम्हारी पत्नी की तबीयत खराब थी पिछली बार तुम्हारे गांव जब आया था, अब उसकी तबीयत तो ठीक है न? तुम्हारे बच्चे तो ठीक से स्कूल में पढ़ रहे हैं न? और इस बार मैं चुनाव में खड़ा हुआ हूं, थोड़ा ख्याल रखना।

वह किसी भी पार्टी का हो, पागल हो गया। अब उसको दल-वल का कोई सवाल नहीं है। अब रूजवेल्ट से निजी संबंध हो गया। अब वह यह कार्ड लेकर घूमेगा।

छोटे आदमी के अहंकार को फुसलाना राजनीतिज्ञ का काम है, संतों का काम नहीं है। संत आपके अहंकार को तोड़ना चाहते हैं, फुसलाना नहीं चाहते हैं।

तो रामकृष्ण गाली देते हैं; रूजवेल्ट कहता है, आइए बैठिए। वह फर्क है। पर कहना मुश्किल है कि संत का क्या प्रयोजन है। आप जल्दी मत करें। निर्णय सदा अपने बाबत लें, दूसरे के बाबत कभी मत लें।

और संत तो खतरनाक हैं; उनके बाबत तो निर्णय लें ही मत। उनको उनके निर्णय पर छोड़ दें। अगर आपको कुछ लाभ उनसे लेना हो, तो धैर्यपूर्वक, बिना निर्णय के लाभ ले लें। निश्चित ही, अगर आपने धैर्य रखा, तो आप जिस गुरु के पास हैं, उस गुरु की वास्तविक प्रतिमा प्रकट हो जाएगी। अगर आपने जल्दी की, तो आप हो सकता है, कभी किसी बुद्ध के पास आकर भी किनारे से निकल जाएं और वंचित रह जाएं।

अब हम सूत्र को लें।

तथा पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना अर्थात मन के अनुकूल तथा प्रतिकूल के प्राप्त होने पर हर्ष-शोकादि विकारों का न होना।

इस संबंध में एक बात ख्याल ले लेनी चाहिए। समता! दुख हो या सुख, प्रिय घटना घटे या अप्रिय, सफलता हो या असफलता, यश या अपयश, दोनों का बराबर मूल्य है। दोनों में से किंचित भी एक को वांछनीय और एक को अवांछनीय न मानना ज्ञानी का लक्षण है। समत्व ज्ञानी की आधारशिला है।

लेकिन यह होगा कैसे? क्योंकि जब सफलता मिलती है, तो प्रीतिकर लगती है। कोई हम तय थोड़े ही करते हैं कि जब सफलता मिले तो हम खुश हों। हम सफलता मिलते ही खुश हो जाते हैं। यह हमें खुश होने के लिए कुछ करना थोड़े ही पड़ता है, यह हमारा कोई निर्णय थोड़े ही है।

जब प्रियजन घर आए, तो हम प्रसन्न हो जाते हैं। कोई प्रसन्न होने के लिए चेष्टा थोड़े ही करनी पड़ती है। और जब कोई गाली दे, अपमान करे, तो हम दुखी हो जाते हैं। दुखी होने के लिए हमें सोचना थोड़े ही पड़ता है।

चुनाव का मौका कहां है? जो होता है, वह जब हो जाता है, तब हमें पता चलता है। जब हम दुखी हो जाते हैं, तब पता चलता है कि दुखी हो गए।

कृष्ण कहते हैं, समता। यह समता कैसे घटेगी? इसके घटने की प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया ख्याल में लेनी चाहिए।

कोई भी अनुभव भीतर पैदा हो, उसे अचेतन पैदा न होने दें। उसमें सजगता रखें। कोई गाली दे, तो इसके पहले कि क्रोध आए, एक पांच क्षण के लिए बिल्कुल शांत हो जाएं। क्रोध को कहें कि पांच क्षण रुको। दुख को कहें, पांच क्षण रुको। पांच क्षण का अंतराल देना जरूरी है। तो आपके पास पर्सपेक्टिव, दृष्टि पैदा हो सकेगी। पांच क्षण बाद सोचें कि मुझे दुखी होना है या नहीं। दुख को चुनाव बनाएं। दुख को मूर्च्छित घटना न रहने दें। नहीं तो फिर आप कुछ भी न कर पाएंगे।

गुरजिएफ ने लिखा है कि मेरे पिता ने मरते क्षण मुझे एक मंत्र दिया, उसी मंत्र ने मेरे पूरे जीवन को बदल दिया। मरते वक्त--गुरजिएफ तो बहुत छोटा था, नौ साल का था--पिता ने कहा, मेरे पास देने को तेरे लिए कुछ भी नहीं है। लेकिन एक संपत्ति मेरे पास है, जिससे मैंने जीवन में परम आनंद अनुभव किया। वह मैं कुंजी तुझे दे जाता हूं। अभी तो तेरी समझ भी नहीं है कि तू समझ पाए। इसलिए अभी जो मैं कहता हूं, तू सिर्फ याद रखना। किसी दिन समझ आएगी, तो उस दिन समझ लेना।

तो गुरजिएफ के पिता ने कहा कि तू एक ही ख्याल रखना, कोई भी प्रतीति, दुख की या सुख की, तत्क्षण मत होने देना। थोड़ी जगह। अगर कोई गाली दे, तो उससे कहकर आना कि चौबीस घंटे बाद मैं जबाब दूंगा। और चौबीस घंटे के बाद बराबर जवाब देना। अगर तुझे लगे कि छुरा भोंकना हो, तो चौबीस घंटे बाद छुरा भोंक देना जाकर। लेकिन चौबीस घंटे का बीच में अंतराल देना।

गुरजिएफ ने लिखा है कि मेरी पूरी जिंदगी बदल दी इस बात ने। क्योंकि मरते बाप की बात थी। इसके बाद बाप मर गया। तो मन पर टंकी रह गई। और एक आश्वासन दिया था बाप को, तो पूरा करना था। तो किसी ने अगर गाली दी, तो मैं कहकर आया कि क्षमा करें। बाप को एक वचन दिया है, चौबीस घंटेभर बाद आपको जवाब दूंगा।

और चौबीस घंटेभर बाद न तो गाली का जवाब देने योग्य लगा, न गाली में कोई मूल्य मालूम पड़ा, बात ही व्यर्थ हो गई। चौबीस घंटे बाद जाकर गुरजिएफ कह आता कि आपने गाली दी, बड़ी कृपा की। लेकिन मेरे पास कोई जवाब देने को नहीं है।

गाली का जवाब तो तत्काल ही दिया जा सकता है। ध्यान रखना, गाली की प्रक्रिया है, उसका जवाब तत्काल दिया जा सकता है। उसमें देरी की, कि आप चूके।

डेल कार्नेगी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि एक स्त्री ने उसे पत्र लिखा। वह रेडियो पर बोला लिंकन के ऊपर। लिंकन की कोई जन्मतिथि थी, उस पर व्याख्यान दिया। और व्याख्यान में उसने लिंकन के संबंध में कुछ गलत तथ्य बोल दिए। तो एक स्त्री ने उसे पत्र लिखा कि जब तुम्हें लिंकन के संबंध में कुछ भी पता नहीं, तो कम से कम व्याख्यान देने की जुर्रत तो मत करो। वह भी रेडियो पर! सारे मुल्क ने सुना। और लोग हंसे होंगे। अपनी भूल सुधार करो और क्षमा मांगो। उसने बहुत क्रोध से पत्र लिखा था।

डेल कार्नेगी ने उसी वक्त क्रोध से जवाब लिखा। जितना जहरीला पत्र था, उतना ही जहरीला जवाब लिखा। लेकिन रात देर हो गई थी, तो उसने सोचा, सुबह पत्र डाल देंगे। पत्र को वैसे ही टेबल पर रखकर सो गया।

सुबह उठकर डालते वक्त दुबारा पढ़ना चाहा। तो पत्र को दुबारा पढ़ा तो उसे लगा कि यह जरा ज्यादा है, इतने क्रोध की कोई जरूरत नहीं। वह गरमी कम हो गई, लोहा ठंडा हो गया। तो उसने सोचा, दूसरा पत्र लिखूं; यह उचित नहीं है। उसने दूसरा पत्र लिखा, उसमें थोड़ी-सी क्रोध की रेखा रह गई थी। तब उसे ख्याल आया कि अगर रात के बारह घंटे में इतना फर्क हो गया, तो मैं बारह घंटे और रुकूं। जल्दी क्या है जवाब देने की! और देखूं कि क्या फर्क होता है।

बारह घंटे बाद पत्र को पढ़ा, तो उसे लगा कि यह भी ज्यादा है। उसने तीसरा पत्र लिखा। लेकिन तब उसने तय किया कि मैं सात दिन रोज सुबह-सांझ पत्र को पढ़ूंगा और सातवें दिन पत्र को लिखूंगा--फाइनल।

सातवें दिन जो पत्र लिखा, वह प्रेमपूर्ण था, क्षमायाचना से भरा था। उसमें उसने लिखा कि आपने मेरी गलती दिखाई, उसके लिए मैं जितना अनुगृहीत होऊं, उतना कम है। और आगे भी कभी मेरी कोई गलती दिखाई पड़े, तो मुझे खबर देना। वह स्त्री उससे मिलने आई। और सदा के लिए मित्रता खड़ी हो गई।

क्या होता है--फासला। हम जल्दी में होते हैं। जो भी होता है, मूर्च्छा में कर लेते हैं। समता अगर चाहिए हो, तो फासला पैदा करने की कला सीखनी चाहिए। लेकिन हम होशियार लोग हैं। हम फासले में भी धोखा दे सकते हैं।

मैंने सुना है, एक बाप ने देखा कि उसका बेटा एक दूसरे बच्चे को, पड़ोसी के बच्चे को दबाए हुए लान में, छाती पर बैठा हुआ है। तो उसने चिल्लाकर कहा कि मुन्ना, कितनी दफा मैंने तुझे कहा कि किसी से भी झगड़ने, मार-पीट करने के पहले सौ तक गिनती पढ़ा कर। तो उसने कहा, वही मैं कर रहा हूं। सौ तक गिनती पढ़ रहा हूं। लेकिन यह निकलकर भाग न जाए सौ तक गिनती जब तक मैं पढ़ूं, इसलिए इसको दबाकर रखा हुआ है। सौ की गिनती पूरी होते ही इसे ठिकाने लगा दूंगा।

सौ की गिनती कही इसलिए थी कि फासला पैदा हो जाए। किसी को मारने के पहले सौ तक गिनती पढ़ना। मुन्ना होशियार है। वह उसको दबाकर बैठा है बच्चे को, कि अगर सौ तक गिनती हमने पढ़ी, तब तक यह निकल गया, तो मारेंगे किसको!

तो आप भी ऐसी होशियारी मत करना। अन्यथा कोई सार नहीं है। फासला पैदा करना है इसलिए, ताकि समता आ जाए। फासला हो जाए, तो दुख दुख नहीं देता, और सुख सुख नहीं देता। सुख और दुख दोनों मूर्च्छित अनुभव हैं। तत्क्षण हो जाते हैं, मूर्च्छा में हो जाते हैं।

जैसे कोई बिजली का बटन दबाता है, ऐसे ही आपके भीतर बटन दब जाते हैं। आप सुखी हो जाते हैं, दुखी हो जाते हैं। बिजली का बटन दबाने पर बिजली कह नहीं सकती कि मैं नहीं जलूंगी। मजबूर है, यंत्र है। लेकिन आप यंत्र नहीं हैं।

जब कोई गाली दे, तो क्रोधित होना, तत्क्षण बिजली की बटन की तरह काम हो रहा है। आप यंत्र की तरह व्यवहार कर रहे हैं। रुकें। उसने गाली दी; ठीक। लेकिन आप अपने मालिक हैं। गाली लेने में जल्दी मत करें। किसी ने सम्मान किया, वह उसकी बात है। किसी ने आपकी खुशामद की, चापलूसी की, वह उसकी बात है। लेकिन आप जल्दी मत करें, और एकदम पिघल न जाएं। रुकें, थोड़ा समय दें। थोड़े फासले पर खड़े होकर देखें कि क्या हो रहा है।

और आप पाएंगे कि जितना आप फासला बढ़ाते जाएंगे, सुख-दुख समान होते जाएंगे। जितने करीब होंगे, सुख-दुख में बड़ा फासला है। जितने फासले पर होंगे, सुख-दुख का फासला कम होने लगता है। जब कोई व्यक्ति

दूर से खड़े होकर देख सकता है, सुख और दुख एक ही हो जाते हैं। क्योंकि दूरी से दिखाई पड़ता है, सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उस दिन समता उपलब्ध हो जाती है।

कृष्ण कहते हैं, समता ज्ञानी का लक्षण है। और मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थितिरूप ध्यान-योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में अरति, प्रेम का न होना।

और मुझ परमेश्वर में एकीभाव। बड़े दंभ की बात है, मुझ परमेश्वर में एकीभाव! कृष्ण कहे ही चले जाते हैं कि मुझ परमेश्वर के साथ तू ऐसा संबंध बना।

अहंकारी पढ़ेगा, तो बड़ी अड़चन में पड़ेगा। वह तो अर्जुन का बड़ा निकट संबंध था, बड़ी आत्मीयता थी, इसलिए अर्जुन ने एक भी बार नहीं पूछा कि क्या बार-बार रट लगा रखी है, मुझ परमात्मा में। उसने एक भी बार यह सवाल नहीं उठाया कि क्यों अपने को परमात्मा कह रहे हो? और क्यों अपने ही मुंह से कहे चले जा रहे हो कि मैं परमात्मा हूं?

वह इतना आत्मीय था, इतना निकट था, कि कृष्ण को जानता था कि यह घोषणा किसी अहंकार की घोषणा नहीं है। यह कहना सिर्फ अर्जुन को समर्पण के लिए राजी करने का उपाय है।

मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थितिरूप ध्यान-योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति... ।

भक्ति अव्यभिचारिणी, इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। व्यभिचार का अर्थ होता है, अनेक के साथ लगाव। व्यभिचारिणी कहते हैं हम उस स्त्री को, जो पति को भी दिखा रही है कि प्रेम करती है, और उसके प्रेमी भी हैं, उनसे भी प्रेम कर रही है। और प्रेम एक खिलवाड़ है। क्षणभर भी कोई उसे एकांत में मिल जाए, तो उससे भी प्रेम शुरू हो जाएगा। मन में किसी एक की कोई जगह नहीं है।

व्यभिचार का अर्थ है, मन में एक की जगह नहीं है। मन खंडित है। बहुत प्रेमी हैं, बहुत पति हैं; उसका अर्थ है व्यभिचार। एक! तो मन अव्यभिचारी हो जाता है।

और बड़े मजे की बात है, समझने जैसी है, कि यह इतना जो जोर है एक प्रेमी पर, यह प्रेमी के हित में नहीं है। असल में प्रेम करने वाला अगर एक व्यक्ति को प्रेम करने में समर्थ हो जाए, तो उसके सारे खंड मन के इकट्ठे हो जाते हैं और वह एकीभाव को उपलब्ध हो जाता है।

जितने आपके प्रेम होंगे, उतने आपके खंड होंगे, उतने आपके हृदय के टुकड़े होंगे। अगर आपके दस-पांच प्रेमी हैं, तो आपके हृदय के दस-पांच स्वर होंगे, दस-पांच टुकड़े होंगे। आप एक आदमी नहीं हो सकते, दस प्रेम अगर आपके हैं; आप दस आदमी होंगे। आपके भीतर एक भीड़ होगी।

यह जो इतना जोर है अव्यभिचारिणी भक्ति पर, कि एक का भाव है तो एक का ही भाव रह जाए, इसका अर्थ यह है कि जितना ही एक का भाव रहने लगेगा, उतना ही भीतर भी एकत्व घनीभूत होने लगेगा; इंटीग्रेशन भीतर फलित हो जाएगा। इसलिए प्रेमी भी योग को उपलब्ध हो जाता है, और योगी प्रेमी हो जाता है।

अगर कोई पूरे मन से किसी एक व्यक्ति को प्रेम कर सके, तो उस प्रेम में भी एकत्व घटित हो जाता है। भीतर इंटीग्रेशन हो जाता है; भीतर सारे खंड जुड़ जाते हैं। अनेक स्वर समाप्त हो जाते हैं। एक ही स्वर और एक ही भाव रह जाता है। उस एक भाव के माध्यम से प्रवेश हो सकता है अनंत में। अनेक को छोड़कर एक; और तब एक भी छूट जाता है और अनंत उपलब्ध होता है।

कृष्ण कहते हैं, अव्यभिचारिणी भक्ति!

अनन्य रूप से मुझ एक में ही तू समर्पित हो जा। तेरे मन में यह ख्याल भी न रहे कि कोई और भी हो सकता है, जिसके प्रति समर्पण होना है। अगर उतना-सा ख्याल भी रहा, तो समर्पण पूरा नहीं हो सकता।

इधर मेरे पास अनेक लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम इस गुरु के पास गए, फिर उस गुरु के पास गए, फिर उस गुरु के पास गए। वे गुरुओं के पास घूमते रहते हैं। उनकी यह व्यभिचारिणी मन की दशा उन्हें कहीं भी पहुंचने नहीं देती। उनसे मैं कहता हूं, तुम एक गुरु के पास रुक जाओ। वे कहते हैं, हमें पक्का कैसे पता लगे कि वही गुरु ठीक है, जब तक हम बहुतों के पास न जाएं! मैं उनसे कहता हूं कि वह गलत हो तो भी तुम एक के पास रुक जाओ। क्योंकि उसके गलत और सही होने का उतना बड़ा सवाल नहीं है, तुम्हारा एक के प्रति रुक जाना तुम्हारे लिए क्रांतिकारी घटना बनेगी। वह गलत होगा, वह वह जाने। उससे तुम चिंता मत लो। तुम उसकी फिक्र मत करो।

कई बार ऐसा भी होता है कि गलत गुरु के पास भी ठीक शिष्य सत्य को उपलब्ध हो जाता है। यह बात उलटी मालूम पड़ेगी। लेकिन हम जानते हैं, हमने एकलव्य की कथा पढ़ी है। गलत गुरु का सवाल ही नहीं है; गुरु था ही नहीं वहां। वहां तो सिर्फ मूर्ति बना रखी थी उसने द्रोणाचार्य की। उस मूर्ति के सहारे भी वह उस कुशलता को उपलब्ध हो गया जो एकाग्रता है।

कैसे यह हुआ? क्योंकि मूर्ति तो कुछ सिखा नहीं सकती। द्रोणाचार्य खुद भी इतना नहीं सिखा पाए अर्जुन को, जितना उनकी पत्थर की मूर्ति ने एकलव्य को सिखा दिया।

तो द्रोणाचार्य का कोई हाथ नहीं है उसमें। अगर कुछ भी है हाथ, तो एकलव्य के भाव का ही है। वह उस पत्थर की मूर्ति के पास इतना एकीभाव होकर रुक गया, इतनी अव्यभिचारिणी भक्ति थी उसकी कि पत्थर की मूर्ति के निकट भी उसे जीवंत गुरु उपलब्ध हो गया।

और गुरु द्रोणाचार्य इस योग्यता के गुरु नहीं थे, जितना एकलव्य ने उनको माना और फल पाया। क्योंकि गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य को धोखा दिया। और अपने संपत्तिशाली शिष्य के लिए एकलव्य का अंगूठा कटवा लिया।

द्रोणाचार्य की उतनी योग्यता नहीं थी, जितनी एकलव्य ने मानी। लेकिन यह बात गौण है। द्रोणाचार्य की योग्यता थी या नहीं, यह सवाल ही नहीं है। एकलव्य की यह अनन्य भाव-दशा, और एकलव्य की यह महानता, कि इस गुरु ने जब अंगूठा मांगा, तब उसकी भी समझ में तो आ ही सकता था। आ ही गया होगा। साफ ही बात है। अंगूठा कट जाने पर वह धनुर्विद नहीं रह जाएगा।

और द्रोणाचार्य ने अंगूठा इसीलिए मांगा कि जब उसके निशाने देखे, और उसकी तन्मयता और एकाग्रता और उसकी कला देखी, तो द्रोणाचार्य के पैर कंप गए। उन्हें लगा कि अर्जुन फीका पड़ जाएगा। अर्जुन की अब कोई हैसियत इस एकलव्य के सामने नहीं हो सकती। थी भी नहीं। क्योंकि अर्जुन का इतना भाव द्रोणाचार्य के प्रति कभी भी नहीं था, जितना भाव एकलव्य का द्रोणाचार्य के प्रति था। और द्रोणाचार्य अर्जुन को तो उपलब्ध थे, एकलव्य को उपलब्ध भी नहीं थे।

यह कथा बड़ी मीठी और बड़ी अर्थपूर्ण है। एकलव्य ने अंगूठा भी काटकर दे दिया। मैं मानता हूं कि उसकी धनुर्विद्या तो खो गई अंगूठा कटने से, लेकिन उसने भीतर जो योग उपलब्ध कर लिया अंगूठा काटकर... ।

उस एकलव्य के लिए कृष्ण को गीता कहने की जरूरत नहीं पड़ी। वह अंगूठा काटने के क्षण में ही उस परम एकत्व को उपलब्ध हो गया होगा। क्योंकि जरा भी संदेह न उठा! ऐसी असंदिग्ध अवस्था में अगर

परमात्मा उपलब्ध न हो, तो फिर कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। तो बाहर की कला तो खो गई, लेकिन वह भीतर की कला को उपलब्ध हो गया।

इसकी फिक्र छोड़ना; मैं लोगों को कहता हूं, इसकी फिक्र छोड़ो कि गुरु ठीक है या नहीं। तुम कैसे पता लगाओगे? तुम हजार के पास घूमकर और कनफ्यूज्ड हो जाओगे, तुम और उलझ जाओगे। तुम्हें कुछ पता होने वाला नहीं है। तुम जितनों के पास जाओगे, उतने खंडित हो जाओगे। तुम बेहतर है, कहीं रुकना सीखो। रुकने में खूबी है। बेहतर है, एक के प्रति समर्पित होना सीखो। समर्पण में राज है। वह किसके प्रति, यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है।

और कई दफा तो ऐसा होता है कि गलत के प्रति समर्पण ज्यादा कीमती परिणाम लाता है। इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि ठीक के प्रति समर्पण तो स्वाभाविक है। आपकी कोई खूबी नहीं है उसमें। वह आदमी ठीक है, इसलिए समर्पण आपको करना पड़ रहा है। आपकी कोई खूबी नहीं है। लेकिन आदमी गलत हो और आप समर्पण कर सकें, तो खूबी निश्चित ही आपकी है।

तो कभी-कभी बहुत-से गुरु अपने आस-पास गलत वातावरण स्थापित कर लेते हैं। वह भी समर्पण का एक हिस्सा है। क्योंकि अगर उनके बाबत सभी अच्छा हो, तो समर्पण करने में कोई खूबी नहीं, कोई चुनौती नहीं है। वे अपने आस-पास बहुत-सा जाल खड़ा कर लेते हैं, जो कि गलत खबर देता है। और उस क्षण में अगर कोई समर्पित हो जाता है, तो समर्पण की उस दशा में अव्यभिचारिणी भक्ति का जन्म होता है।

कृष्ण कहते हैं, एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में अरति, प्रेम का न होना... ।

आप भीड़ खोजते हैं हमेशा। और अक्सर भीड़ खोजने वाला गलत भीड़ खोजता है। क्योंकि भीड़ खोजना ही गलत मन का लक्षण है।

दूसरे से कुछ भी मिल सकता नहीं। आप जरा सोचें, आप क्या करते हैं दूसरे से मिलकर? कुछ थोड़ी निंदा, पास-पड़ोस की कुछ अफवाहें। किसकी पत्नी भाग गई! किसके बेटे ने धोखा दिया! कौन चोरी कर ले गया! कौन बेईमान है! ये सारी आप बातें करते हैं। यह रस अकेले में नहीं आता, इसके लिए दो-चार लोग चाहिए, इसके लिए आप भीड़ खोजते हैं।

एक दिन चौबीस घंटे अपनी चर्चा का ख्याल करें। आप कहां बैठते हैं? क्यों बैठते हैं? क्यों बातें करते हैं ये? क्या रस है इसमें? और अगर यह रस आपका कायम है, तो ज्ञान कभी उपलब्ध न होगा, क्योंकि यह सारा अज्ञान को बचाने की व्यवस्था कर रहे हैं आप।

कृष्ण कहते हैं, ज्ञानी का लक्षण है, एकांत का रस। ज्ञानी ज्यादा से ज्यादा अकेले रहना चाहेगा।

क्यों? क्योंकि अकेले में ही स्वयं का साक्षात्कार हो सकता है; और अकेले में ही भीड़ के प्रभाव और संस्कारों से बचा जा सकता है। और अकेले में ही आदमी शांत और मौन हो सकता है। और अकेले में ही धीरे-धीरे भीतर सरककर उस द्वार को खोल सकता है, जो परमात्मा का द्वार है।

दूसरे के साथ रहकर कोई कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता है। चाहे बुद्ध, चाहे महावीर, चाहे मोहम्मद, परमात्मा के पास पहुंचने के पहले एकांत में सरक गए थे। महावीर बारह वर्ष तक मौन हो गए थे। बुद्ध छः वर्ष तक जंगल में चले गए थे। मोहम्मद तीस दिन तक बिल्कुल एकांत पर्वत पर रह गए थे। जीसस को तैंतीस वर्ष की उम्र में उनको फांसी हुई। ईसाइयों के पास केवल तीन साल की कहानी है, आखिरी तीन साल की। बाकी तीस साल चुप मौन साधना में गुजरे।

यह जो मौन में सरक जाना है, एकांत का रस है, यह ज्ञानी का लक्षण है। भीड़ का रस, समूह का रस, क्लब, मित्र की तलाश खतरनाक है।

लेकिन आप यह मत सोचना कि क्लब ही सिर्फ क्लब है। लोग तो धर्म-कथाओं में भी इसीलिए चले जाते हैं। विशेषकर स्त्रियां तो इसीलिए पहुंच जाती हैं धर्म-कथाओं में कि वहां जाकर वे सब चर्चा कर लेती हैं, जिसका कि उन्हें मौका कहीं नहीं मिलता। सब जमाने भर की स्त्रियां वहां मिल जाती हैं। जमाने भर के रोग और कहानियां उन्हें वहां मिल जाते हैं। वहां वे सब चर्चा कर लेती हैं। कथा तो बहाना है।

मंदिर में भी आप जा सकते हैं; हो सकता है, परमात्मा से मिलने न जा रहे हों। वहां भी आप गपशप करने जा रहे हों, जो लोग मंदिर आते हैं उनसे। यह भी हो सकता है, आप किसी गुरु के पास भी इसीलिए जाते हों कि थोड़ा आस-पास के उपद्रव की खबरें सुन आएं। लेकिन कुछ एकांत की तलाश न हो।

ध्यान रखना जरूरी है कि आप अकेले ही सत्य से मिल सकते हैं, भीड़ को साथ लेकर जाने का कोई उपाय नहीं है। आपका निकटतम मित्र भी आपके साथ समाधि में नहीं जाएगा। आपकी पत्नी भी आपके साथ ध्यान में प्रवेश नहीं कर सकती। आपका बेटा भी आपके साथ भक्ति के जगत में नहीं प्रवेश करेगा। वहां आप अकेले होंगे। इसलिए अकेले होने का थोड़ा रस! और जब भी मौका मिल जाए, तो अकेले होने में मजा!

लेकिन हम तो घबड़ाते हैं। जरा अकेले हुए कि लगता है कि मरे। जरा अकेले हुए कि डर लगता है। जरा अकेले हुए कि लगता है, ऊब जाएंगे, क्या करेंगे!

एक बहुत मजे की बात है। आप अपने से इतने ऊबे हुए हैं कि आप अपने साथ थोड़ी देर भी नहीं रह सकते। और जब कोई आपके साथ ऊब जाता है, तो आप सोचते हैं, वह आदमी बुरा है। जब आप खुद ही अपने साथ ऊब जाते हैं, तो दूसरे तो ऊबेंगे ही।

अकेले में थोड़ी देर खुद ही से बातें करिए। एक दिन ऐसा प्रयोग करिए। जापान में एक विधि है ध्यान की। वे साधक को कहते हैं कि जो भी तेरे भीतर चलता हो, उसको जोर-जोर से बोल। भीतर मत बोल, जोर-जोर से बोल। बैठ जा एकांत में और जो भी भीतर चलता हो, उसको जोर से बोल।

आप घबड़ा जाएंगे, अगर भीतर जो जैसा है, उसको जोर से बोलेंगे। घंटेभर में आप कहेंगे कि मैं भी कहां का बोरियत पैदा करने वाला आदमी हूं!

लेकिन यही आप दूसरों से बोल रहे हैं। और जब दूसरे आपसे बोर होते हैं, तो आप समझते हैं, इनकी समझ नहीं है। जरा समझ का... मैं तो बड़ी ऊंची बातें कर रहा हूं और ये ऊब रहे हैं! लेकिन जब हर आदमी अपने से ऊबा है, तो ध्यान रहे, वह दूसरे को भी उबाएगा।

और दूसरे आपकी कुछ देर तक बात सुनते हैं, उसका कारण आप जानते हैं? इसलिए नहीं कि आपकी बात में कोई रस है। बल्कि इसलिए कि जब आप बंद हो जाएं, तब वे बोलें। और कोई कारण नहीं होता। कि अब आप उबा लिए काफी, अब हमको भी उबाने दो।

इसलिए सब से ज्यादा बोर करने वाला आदमी वह मालूम पड़ता है, जो कि आपको मौका ही नहीं देता। और कोई कारण नहीं है। वह बोले ही चला जाता है। वह आपको अवसर ही नहीं देता। इसलिए आप कहते हैं, बहुत बोर करने वाला आदमी है। उसका केवल मतलब इतना है कि आप ही बोर किए जा रहे हैं! मुझको भी बोर करने का मौका दें। एक अवसर मुझे भी दें, तो मैं भी आपको ठीक करूं। लेकिन जो असली बोर करने की कला में कुशल हैं, वे मौका नहीं देते।

आदमी अपने साथ इतनी ज्यादा पीड़ा अनुभव करता है, और सोचता है, दूसरों को सुख देगा। पति पत्नी को सुख देना चाहता है, पत्नी पति को सुख देना चाहती है। पत्नी सोचती है कि पति के लिए स्वर्ग बना दे, लेकिन अकेली घड़ीभर नहीं रह सकती, नरक मालूम होने लगता है। तो जब अकेले रहकर पत्नी को खुद नरक मालूम होने लगता है, तो यह पति के लिए नरक ही बना सकती है, स्वर्ग बनाएगी कैसे!

कोई किसी दूसरे के लिए स्वर्ग नहीं बना पाता, क्योंकि हम अकेले अपने साथ रहने को राजी नहीं हैं।

इस जमीन पर उन लोगों के निकट कभी-कभी स्वर्ग की थोड़ी-सी हवा बहती है, जो अपने साथ रहने की कला जानते हैं। इसे थोड़ा समझ लेना। जो आदमी एकांत में रहने की कला जानता है, उसके पास आपको कभी थोड़े-से रस की बूंदें मिल सकती हैं, कोई अमृत की थोड़ी झलक मिल सकती है। लेकिन जो अपने साथ रहना जानता ही नहीं, उसका तो जीवन से कोई संस्पर्श नहीं हुआ है।

कृष्ण कहते हैं, शुद्ध देश में, एकांत में, अपने भीतर की शुद्धता में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में अरति... ।

अगर कभी जाना भी हो किसी के पास, तो ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिए, जो आपको संसार की तरफ न ले जाता हो। जो आपको संन्यास की तरफ ले जाता हो। जो आपको उठाता हो वस्तुओं के पार। जो आपको जीवन के परम मंदिर की तरफ इशारा करता हो। अगर जाना ही हो किसी के पास, तो ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिए। अन्यथा भीड़ से, समूह से बचना चाहिए।

तथा अध्यात्म-ज्ञान में नित्य स्थिति और तत्वज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को सर्वत्र देखना, यह सब तो ज्ञान है; और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है; ऐसा कहा है। परमात्मा को सर्वत्र देखना, यह तो ज्ञान है। और इससे विपरीत जो है, वह अज्ञान है।

बड़ा कठिन है परमात्मा को सर्वत्र देखना। अपने ही भीतर नहीं देख सकते, तो बाहर कैसे देख सकेंगे! पहले तो अपने ही भीतर देखना जरूरी है कि परमात्मा मौजूद है। चाहे कितना ही विकृत हो, कितना ही उलझा हो, बंधन में हो, कारागृह में हो, है तो परमात्मा ही। चाहे कितनी ही बेचैनी में, परेशानी में हो, है तो परमात्मा ही। अपने भीतर भी परमात्मा देखना शुरू करना चाहिए, और अपने आस-पास भी देखना शुरू करना चाहिए। धीरे-धीरे यह परमात्म-भाव ऐसा हो जाना चाहिए कि परमात्मा ही दिखाई पड़े, बाकी लोग उसके रूप दिखाई पड़ें। यह भाव-दशा बन जाती है। लेकिन अपने से ही शुरू करना पड़े।

और जैसे कोई पत्थर फेंके पानी में, तो पहले छोटा-सा वर्तुल उठता है पत्थर के चारों तरफ। फिर वर्तुल फैलता जाता है, और दूर अनंत किनारों तक चला जाता है। ऐसा पहली दफा परमात्मा का पत्थर अपने भीतर ही फेंकना जरूरी है। फिर वर्तुल उठता है, लहरें फैलने लगती हैं, और चारों तरफ पहुंच जाती हैं।

जब तक आप अपने में देखते हैं पाप, नरक, और आपको कोई परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता, तब तक आपको किसी में भी दिखाई नहीं पड़ सकता। आप कितना ही मंदिर की मूर्ति पर जाकर सिर पटकें और आपको चाहे कृष्ण और राम भी मिल जाएं, तो भी आपको परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता।

जिस धोबी ने राम के खिलाफ वक्तव्य दिया, और जिसकी वजह से राम को सीता को निकाल देना पड़ा, वह राम के गांव का निवासी था; उसको राम में राम दिखाई नहीं पड़ा। उसको सीता में सीता दिखाई नहीं पड़ी। उसको तो सीता में भी दिखाई पड़ी व्यभिचारिणी स्त्री। वह खुद व्यभिचारी रहा होगा। जो हमारे भीतर होता है, वह हमें दिखाई पड़ता है।

तो राम भी पास खड़े हों, तो आपको गड़बड़ ही दिखाई पड़ेंगे। आपको तो कुछ अड़चन ही मालूम होगी। आपको लगेगा, कुछ न कुछ बात है।

एक मित्र ने थीसिस लिखी है, राम के ऊपर एक शोध-ग्रंथ लिखा है। और शोध-ग्रंथ में उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि शबरी बूढ़ी स्त्री नहीं थी, जवान स्त्री थी। और राम का संबंध प्रेम का था शबरी से, भक्ति का नहीं था।

इन मित्र को मैं जानता हूं। वे कभी-कभी मुझसे मिलने आते थे। मैंने उनसे पूछा कि यह ठीक हो या गलत हो, मुझे कुछ पता नहीं। और इसमें मुझे कोई रस भी नहीं कि राम का शबरी से प्रेम था या नहीं। लेकिन तुम्हें शोध करने का यह ख्याल कैसे पैदा हुआ? सच हो भी सकता है। मुझे कुछ पता नहीं कि राम का क्या संबंध था और न मेरी कोई उत्सुकता है कि किसी के संबंधों की जानकारी करूं। न मेरा कोई अधिकार है; न मैं कोई इंसपेक्टर हूं, जो तय किया गया है कि पता लगाएं कि किसका किससे प्रेम है। यह शबरी और राम के बीच की बात है। लेकिन तुम्हें यह ख्याल कैसे आया? तुम्हें ख्याल तो अपने ही किसी अनुभव से आया होगा। और तुम्हारे देखने की दृष्टि से ही तो शोध पैदा हुई है; राम की घटना से पैदा नहीं हुई। क्योंकि राम पर तो बहुत लोग शोध करते हैं, लेकिन यह शोध किसी ने भी नहीं की है।

इन सज्जन ने खोजबीन की है कि सीता का निकालना, धोबी का तो बहाना था, राम सीता को निकालना ही चाहते थे।

राम के मन में क्या था, यह तो पता लगाने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जो आदमी यह खोज कर रहा है, इसके मन की स्थिति तो सोचने जैसी हो जाती है।

आप जब तक अपने भीतर परमात्मा को न देख पाएं, तब तक राम में भी दिखाई नहीं पड़ेगा। और जिस दिन आप अपने भीतर देख पाएं, उस दिन रावण में भी दिखाई पड़ेगा। क्योंकि अपनी सारी पीड़ाओं, दुखों, चिंताओं, वासनाओं के बीच भी जब आपको भीतर की ज्योति दिखाई पड़ने लगती है, तो आप जानते हैं कि चाहे कितना ही पाप हो चारों तरफ, भीतर ज्योति तो परमात्मा की ही है। चाहे कांच पर कितनी ही धूल जम गई हो, और चाहे कांच कितना ही गंदा हो गया हो, लेकिन भीतर की ज्योति तो निष्कलुष जल रही है। ज्योति पर कोई धूल नहीं जमती, और ज्योति कभी गंदी नहीं होती।

हां, ज्योति के चारों तरफ जो कांच का घेरा है, वह गंदा हो सकता है। जब आप अपने गंदे से गंदे घेरे में भी उस ज्योति का अनुभव कर लेते हैं, तत्क्षण सारा जगत उसी ज्योति से भर जाता है।

ज्ञानी का लक्षण है, परमात्मा का सर्वत्र अनुभव करना।

पांच मिनट रुकेंगे। बीच से कोई उठे न। कीर्तन पूरा हो जाए, तब जाएं।

पांचवां प्रवचन

समस्त विपरीतताओं का विलय--परमात्मा में

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।। 12।।
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।। 13।।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। 14।।

और हे अर्जुन, जो जानने योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य अमृत और परमानंद को प्राप्त होता है, उसको अच्छी प्रकार कहूंगा। वह आदिरहित परम ब्रह्म अकथनीय होने से न सत कहा जाता है और न असत ही कहा जाता है।

परंतु वह सब ओर से हाथ-पैर वाला एवं सब ओर नेत्र, सिर और मुख वाला तथा सब ओर से श्रोत वाला है, क्योंकि वह संसार में सब को व्याप्त करके स्थित है।

और संपूर्ण इंद्रियों के विषयों को जानने वाला है, परंतु वास्तव में सब इंद्रियों से रहित है। तथा आसक्तिरहित है और गुणों से अतीत हुआ भी अपनी योगमाया से सब को धारण-पोषण करने वाला और गुणों को भोगने वाला है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि श्रद्धा क्या है और अंध-श्रद्धा क्या है?

गीता के इस अध्याय को समझने में यह प्रश्न भी उपयोगी होगा।

अंध-श्रद्धा से अर्थ है, वस्तुतः जिसमें श्रद्धा न हो, सिर्फ ऊपर-ऊपर से श्रद्धा कर ली गई हो। भीतर से आप भी जानते हों कि श्रद्धा नहीं है, लेकिन किसी भय के कारण या किसी लोभ के कारण या मात्र संस्कार के कारण, समाज की शिक्षा के कारण स्वीकार कर लिया हो।

ऐसी श्रद्धा के पास आंखें नहीं हो सकतीं। क्योंकि आंखें तो तभी उपलब्ध होती हैं श्रद्धा को, जब हृदय उसके साथ हो। तो अंध-श्रद्धा बुद्धि की ही बात है। यह थोड़ा समझना पड़ेगा।

क्योंकि आमतौर से लोग समझते हैं कि अंध-श्रद्धा हृदय की बात है, बुद्धि की नहीं। अंध-श्रद्धा बुद्धि की ही बात है; श्रद्धा हृदय की बात है। बुद्धि सोचती है लाभ-हानि, हित-अहित, परिणाम, और उनके हिसाब से श्रद्धा को निर्मित करती है।

आप भगवान में श्रद्धा रखते हैं। इसलिए नहीं कि आपके हृदय का कोई तालमेल परमात्मा से हो गया है, बल्कि इसलिए कि भय मालूम पड़ता है। बचपन से डराए गए हैं कि अगर परमात्मा को न माना, तो कुछ अहित हो जाएगा। यह भी समझाया गया है कि परमात्मा को माना, तो स्वर्ग मिलेगा, पुण्य होगा, भविष्य में सुख पाएंगे।

मन डरता है। मन भयभीत होता है। मन लोभ के पीछे दौड़ता है। लेकिन भीतर गहरे में आप जानते हैं कि आपका परमात्मा से कोई संबंध नहीं है।

यह जो ऊपर की श्रद्धा है, जबरदस्ती आरोपित श्रद्धा है, यह अंधी होगी। क्योंकि हृदय का तालमेल न हो, तो आंख नहीं हो सकती। और ऐसी श्रद्धा सदा ही तर्क से डरेगी, यह उसकी पहचान होगी। ऐसी श्रद्धा सदा ही तर्क से डरेगी, क्योंकि भीतर तो पता ही है कि परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। वह है या नहीं, यह भी पता नहीं है। ऊपर-ऊपर से माना है। अगर कोई खंडन करने लगे, तर्क देने लगे, तो भीतर भय होगा। भय दूसरे से नहीं होता, भीतर अपने ही छिपा होता है।

अगर मेरी श्रद्धा ऊपर-ऊपर है, अंधी है, तो मैं डरूंगा कि कोई मेरी श्रद्धा न काट दे। कोई विपरीत बातें न कह दे। विपरीत बातों से डर नहीं आता। क्योंकि मेरी श्रद्धा कमजोर है, इसलिए डर है कि टूट न जाए। और मेरी श्रद्धा ऊपर-ऊपर है, फट सकती है, छिद्र हो सकते हैं। और छिद्र हो जाएं, तो मेरे भीतर जो अश्रद्धा छिपी है, उसका मुझे दर्शन हो जाएगा।

ध्यान रहे, दुनिया में कोई आदमी आपको संदेह में नहीं डाल सकता। संदेह में डाल ही तब सकता है, जब संदेह आपके भीतर भरा हो। और श्रद्धा की पर्त भर हो ऊपर। पर्त तोड़ी जा सकती है, तो संदेह आपका बाहर आ जाएगा।

जो आस्तिक नास्तिक से भयभीत होता है, वह आस्तिक नहीं है। और जो आस्तिक डरता है कि कहीं ईश्वर के विपरीत कोई बात सुन ली, तो कुछ खतरा हो जाएगा, वह आस्तिक नहीं है; उसे अभी आस्था उपलब्ध नहीं हुई; वह अपने से ही डरा हुआ है। वह जानता है कि कोई भी जरा-सा कुरेद दे, तो मेरे भीतर का संदेह बाहर आ जाएगा। वह संदेह बाहर न आए, इसलिए वह पागल की तरह अपने भरोसे के लिए लड़ता है।

अंधे लोग लड़ते हैं, उद्विग्न हो जाते हैं, उत्तेजित हो जाते हैं। वे आपका सिर तोड़ने को राजी हो जाएंगे, लेकिन आपकी बात सुनने को राजी नहीं होंगे। वे केवल एक ही बात की खबर दे रहे हैं, वे आपसे नहीं डरे हुए हैं, वे खुद अपने से डरे हुए हैं। और कहीं आप उनकी उनसे ही मुलाकात न करवा दें, इससे आपसे डरे हुए हैं।

अंध-श्रद्धा लोभ और भय से जन्मती है; श्रद्धा अनुभव से जन्मती है। और जो आदमी अंध-श्रद्धा में पड़ जाएगा, उसकी श्रद्धा सदा के लिए बांझ हो जाएगी, उसे श्रद्धालु होने का मौका ही नहीं मिलेगा। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि नास्तिक होना बेहतर है, बजाय झूठे आस्तिक होने के। क्योंकि नास्तिक होने में एक सच्चाई तो है कि आप कहते हैं, मुझे पता नहीं है। जिस बात का मुझे पता नहीं है, मैं भरोसा नहीं करूंगा। और एक संभावना है नास्तिक के लिए कि अगर उसे कभी पता चलना शुरू हो जाए, तो वह भरोसा करेगा। लेकिन जिसने झूठा भरोसा कर रखा है, वह सच्चे भरोसे तक कैसे पहुंचेगा? झूठा भरोसा उसे यह ख्याल दिला देता है कि मुझे तो श्रद्धा उपलब्ध हो गई है।

इस जमीन पर धर्म का न होना इसी कारण है, क्योंकि लोग झूठे आस्तिक हैं, इसलिए सच्ची आस्तिकता उपलब्ध नहीं हो पाती। और जब तक हम झूठी आस्तिकता का भरोसा रखेंगे, तब तक जमीन अधार्मिक रहेगी। आप अपने से ही पूछें, सच में आपको ईश्वर में कोई भरोसा है?

मेरे एक शिक्षक थे, नास्तिक थे। उनकी मरण-तिथि पर मैं उनके घर मौजूद था। बहुत बीमार थे, उनको देखने गया था। फिर उनके चिकित्सक ने कहा कि एक-दो दिन से ज्यादा बचने की उम्मीद नहीं है, तो रुक गया था। नास्तिक थे सदा के, कभी मंदिर नहीं गए। ईश्वर की बात से ही चिढ़ जाते थे। धर्म का नाम किसी ने लिया

कि वे विवाद में उतर जाते थे। लेकिन मरने की थोड़ी ही घड़ीभर पहले मैंने देखा कि वे राम-राम, राम-राम जप रहे हैं। धीमे-धीमे उनके होंठ हिल रहे हैं।

तो मैंने उन्हें हिलाया और मैंने पूछा, यह क्या कर रहे हैं आखिरी वक्त? तो उन्होंने बड़ी दयनीयता से मेरी तरफ देखा और उनके आखिरी शब्द ये थे कि आखिरी वक्त भय पकड़ रहा है। पता नहीं, ईश्वर हो, तो हर्ज क्या है राम-राम कर लेने में! नहीं हुआ तो कोई बात नहीं; अगर हुआ तो आखिरी क्षण स्मरण कर लिया।

यह भयभीत चित्त है। इसलिए अक्सर बूढ़े लोग आस्तिक हो जाते हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में बूढ़े स्त्री-पुरुष दिखाई पड़ते हैं। और पुरुषों की बजाय स्त्रियां ज्यादा दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि स्त्रियां ज्यादा भयभीत होती हैं। और बूढ़ा होते-होते हर आदमी स्त्रैण हो जाता है और भयभीत होने लगता है, डरने लगता है। हाथ-पैर कंपने लगते हैं। जवानी का भरोसा चला जाता है। मौत करीब आने लगती है। जैसे-जैसे मौत करीब आती है, भय की छाया बढ़ती है। भय की छाया बढ़ती है, तो भगवान का भरोसा बढ़ता है।

यह भरोसा झूठा है। इस भरोसे का असलियत से कोई संबंध नहीं है। यह तो डर से पैदा हो रहा है। और डर से जो पैदा हो रहा है, उससे कोई क्रांति नहीं हो सकती जीवन में।

बच्चों को हम डराकर धार्मिक बना लेते हैं। और सदा के लिए इंतजाम कर देते हैं कि वे कभी धार्मिक न हो पाएंगे। बच्चों को डराया जा सकता है। मां-बाप शक्तिशाली हैं; समाज शक्तिशाली है; शिक्षक शक्तिशाली है। हम बच्चों को डर के आधार पर मंदिरों में झुका देते हैं, मस्जिदों में नमाज पढ़वा देते हैं, प्रार्थना करवा देते हैं। बच्चे मजबूरी में, डर की वजह से झुक जाते हैं, प्रार्थना कर लेते हैं। और फिर यह भय ही उन्हें सदा झुकाए रखता है।

लेकिन इस कारण कभी सच्ची श्रद्धा का जन्म नहीं होता। जिस आदमी को नकली हीरे-मोती असली मालूम पड़ गए, वह असली की खोज ही नहीं करेगा।

धार्मिक व्यक्ति भय से प्रभावित नहीं होता, न लोभ से आंदोलित होता है। धार्मिक व्यक्ति तो सत्य की तलाश में होता है। और उस तलाश के लिए कोई दूसरी प्रक्रिया है। उस तलाश के लिए ऊपर-ऊपर से थोपने का कोई उपाय नहीं है, न कोई लाभ है। उस तलाश के लिए भीतर उतरने की जरूरत है। आप जिस दिन अपने भीतर उतरना सीख जाएंगे, उसी दिन आपको सम्यक श्रद्धा भी उपलब्ध होने लगेगी।

जो व्यक्ति अपने भीतर जितना गहरा जाएगा, परमात्मा में उसकी उतनी ही श्रद्धा हो जाएगी। जो व्यक्ति अपने से बाहर जितना भटकेगा, वह कितनी ही परमात्मा की बातें करे, उसकी श्रद्धा झूठी और अंधी होगी।

परमात्मा तक पहुंचने की एक ही सीढ़ी है, वह आप स्वयं हैं। न तो किसी मंदिर में जाने से उसकी श्रद्धा पैदा होगी, न किसी मस्जिद में जाने से पैदा होगी। उसका मंदिर, उसकी मस्जिद, उसका गुरुद्वारा आप हैं। वह आपके भीतर छिपा है। आप जैसे-जैसे अपने भीतर उतरेंगे, वैसे-वैसे उसका स्वाद, उसका रस, उसका अनुभव आने लगेगा। और उस अनुभव के पीछे जो श्रद्धा जन्मती है, वही श्रद्धा है। लेकिन नकली सिक्कों से जो राजी हो गया, वह भीतर कभी जाता नहीं।

झूठी श्रद्धा की कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि जिस पर हम भरोसा कर रहे हैं, वह भीतर बैठा है। उस पर भरोसा करने की कोई जरूरत नहीं है, उसका तो अनुभव ही किया जा सकता है। और जिसका अनुभव किया जा सकता है, उसका भरोसा क्या करना? क्या जरूरत?

आप सूरज पर विश्वास नहीं करते। कोई आपसे पूछे कि आपकी सूरज में श्रद्धा है? तो आप हंसेंगे कि आप कैसा व्यर्थ का सवाल पूछते हैं! सूरज है; श्रद्धा का क्या सवाल? श्रद्धा का सवाल तो तभी उठता है उन चीजों के संबंध में, जिनका आपको पता नहीं है।

आपसे कोई नहीं पूछता कि आपकी पृथ्वी में श्रद्धा है? पृथ्वी है, श्रद्धा का क्या सवाल है। लेकिन लोग पूछते हैं, ईश्वर में श्रद्धा है? आत्मा में श्रद्धा है? और आप कभी नहीं सोचते कि ये भी असंगत सवाल हैं। लेकिन आप कहते हैं, श्रद्धा है या नहीं है। क्योंकि जिन चीजों के संबंध में पूछा जा रहा है, वे आपको अनुभव की नहीं मालूम होतीं।

लेकिन धर्म का यही आग्रह है कि वे भी उतने ही अनुभव की है, जितना पृथ्वी और सूरज; शायद इससे भी ज्यादा अनुभव की हैं। क्योंकि यह तो हो भी सकता है कि सूरज का हमें भ्रम हो रहा हो। क्योंकि सूरज बाहर है और हमारा उससे सीधा मिलना कभी नहीं होता।

वैज्ञानिक कहते हैं कि हम किसी भी चीज को सीधा नहीं देख सकते। सूरज को आपने कभी देखा नहीं है आज तक। क्योंकि सूरज को आप देखेंगे कैसे सीधा? सूरज की किरणें आती हैं, वे आपकी आंख पर पड़ती हैं। वे किरणें आपकी आंख में रासायनिक परिवर्तन पैदा करती हैं। वे रासायनिक परिवर्तन आपके भीतर विद्युत-प्रवाह पैदा करते हैं। वे विद्युत-प्रवाह आप तक पहुंचते हैं, उनकी चोट। वह चोट आपको अनुभव होती है।

आज तक सूरज कभी आपने देखा नहीं। सूरज को देखने का कोई उपाय नहीं है। अभी आप मुझे देख रहे हैं। लेकिन मैं आपको दिखाई नहीं पड़ रहा। आपको दिखाई तो भीतर रासायनिक परिवर्तन हो रहे हैं। सीधा पदार्थ को अनुभव करने का कोई उपाय नहीं है। बीच में इंद्रियों की मध्यस्थता है।

इसलिए यह तो हो भी सकता है कि सूरज न हो। सूरज के संबंध में जो श्रद्धा है, वह कामचलाऊ है। लेकिन स्वयं का अनुभव अगर हो जाए, तो जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह कामचलाऊ नहीं है। वह आत्यंतिक, अल्टिमेट है। उसमें फिर कोई संदेह नहीं हो सकता। सिर्फ एक अनुभव है स्वयं की आत्मा का, जो असंदिग्ध कहा जा सकता है; बाकी सब अनुभव संदिग्ध हैं। सब में धोखा हो सकता है।

पिछले महायुद्ध में एक सैनिक फ्रांस के एक अस्पताल में भरती हुआ। उसके पैर में भयंकर चोट पहुंची थी और असह्य पीड़ा थी और पीड़ा के कारण वह बेहोश हो गया था। चिकित्सकों ने देखा कि उसका पैर बचाना असंभव है, और अगर पैर नहीं काट दिया गया, तो पूरे शरीर में भी जहर फैल सकता है। इसलिए घुटने के नीचे का हिस्सा उन्होंने काट दिया। वह बेहोश था।

सुबह जब उसे होश आया, तो उसके पास खड़ी नर्स से उसने पहली बात यही कही कि मेरे पैर में बहुत तकलीफ हो रही है, मेरे पंजे में असह्य पीड़ा है। पंजा तो था नहीं। इसलिए पीड़ा तो हो नहीं सकती पंजे में। पैर तो काट दिया था। लेकिन उसे तो पता नहीं था; वह तो बेहोशी में था। होश आते ही उसने जो पहली बात कही, उसने कहा कि मेरे पंजे में बहुत पीड़ा है। वह तो बंधा कंबल में पड़ा हुआ है। उसे कुछ पता नहीं है।

नर्स हंसने लगी। उसने कहा कि फिर से थोड़ा सोचो। सच में पंजे में पीड़ा है? उस आदमी ने कहा, इसमें भी कोई झूठ होने का सवाल है? असह्य पीड़ा हो रही है मुझे। उस नर्स ने कहा, लेकिन तुम्हारा पैर तो काट दिया गया है, इसलिए यह तो माना नहीं जा सकता कि तुम्हारे पंजे में पीड़ा हो रही है। जो पंजा अब है ही नहीं, उसमें पीड़ा कैसे हो सकती है?

नर्स ने कंबल उघाड़ दिया। उस आदमी ने देखा, उसके घुटने के नीचे का पैर तो कट गया है। लेकिन उसने कहा कि मैं देख रहा हूं कि मेरे घुटने के नीचे का पैर कट गया है, लेकिन फिर भी मुझे पंजे में ही पीड़ा हो रही है; मैं क्या कर सकता हूं!

डाक्टर बुलाए गए। उन्होंने बड़ी खोजबीन की। यह पहला मौका था कि कोई आदमी ऐसी पीड़ा की बात कर रहा है, जो अंग ही न बचा हो! आपका सिर किसी ने काट दिया और आप कह रहे हैं, सिर में दर्द हो रहा है!

पैर बचा ही नहीं, तो पंजे में दर्द नहीं हो सकता। घुटने में दर्द हो सकता है, क्योंकि वहां से काटा गया है। लेकिन वह आदमी कहता है, घुटने में मुझे दर्द नहीं; मुझे दर्द तो पंजे में है।

तो उसका बहुत अन्वेषण किया गया। और पाया गया कि दर्द जब आपके पंजे में होता है, तो उससे सीधा तो आपकी मुलाकात होती नहीं। पंजे से स्नायुओं का जाल फैला हुआ है मस्तिष्क तक। वे स्नायु कंपते हैं, उनके कंपन से आपको दर्द का पता चलता है। पंजा तो काट दिया गया। लेकिन जो स्नायु पंजे के दर्द में कंपना शुरू हुए थे, वे अब भी कंप रहे हैं। इसलिए उनके कारण उस आदमी को खबर मिल रही है कि पंजे में दर्द हो रहा है। पंजा नहीं है, और पंजे में दर्द हो रहा है!

उस आदमी के अन्वेषण से यह तय हुआ कि बाहर से जो भी घटनाएं आपको मिल रही हैं, उनके बाबत पक्का नहीं हुआ जा सकता। निश्चित नहीं है; संदिग्ध है। बिना पंजे के दर्द हो सकता है। बिना आदमी के मौजूद आपको आदमी दिखाई पड़ सकता है। अगर आपके भीतर वे ही स्नायु कंपित कर दिए जाएं, जो आदमी के मौजूद होने पर कंपित होते हैं, तो आपको आदमी दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।

अभी उन्होंने चूहों पर बहुत-से प्रयोग किए। स्लेटर ने एक यंत्र छोटा-सा बनाया है। जब कोई व्यक्ति, पुरुष-स्त्री, पशु-पक्षी, कोई भी संभोग करता है, तो संभोग में जो रस आता है वह रस कहां आता है? क्योंकि संभोग तो घटित होता है यौन-केंद्र के पास और रस आता है मस्तिष्क में, तो जरूर मस्तिष्क में कोई तंतु कंपते होंगे जिनके कारण रस आता है।

तो स्लेटर ने उन तंतुओं की खोज की चूहों में। और उसने एक छोटा-सा यंत्र बनाया। और मस्तिष्क से इलेक्ट्रोड जोड़ दिए, बिजली के तार जोड़ दिए। और जैसे ही वह बटन दबाता, चूहा वैसे ही आनंदित होने लगता, जैसा संभोग में होता है। फिर तो उसने एक ऐसा यंत्र बनाया कि बटन चूहे के सामने ही लगा दी। और चूहे को ही अनुभव हो गया। जब चूहे ने बार-बार बटन स्लेटर को दबाते देखा और उसे आनंद आया भीतर, तो चूहा खुद बटन दबाने लगा।

फिर तो स्लेटर ने लिखा है कि चूहे ने खाना-पीना सब बंद कर दिया। वह एकदम बटन दबाता ही चला जाता, जब तक कि बेहोश न हो जाता। एक चूहे ने छः हजार बार बटन दबाया। दबाता ही गया। दबाएगा, आनंदित होगा, फिर दबाएगा, फिर आनंदित होगा। छः हजार बार उसने संभोग का रस लिया। और संभोग तो हो नहीं रहा; मस्तिष्क में तंतु हिल रहे हैं।

स्लेटर का कहना है कि यह यंत्र अगर कभी विकसित हुआ, तो मनुष्य संभोग से मुक्त भी हो सकता है। लेकिन यह खतरनाक यंत्र है। अगर चूहा छः हजार बार दबाता है, तो आप साठ हजार बार दबाएंगे। चूहे को इतना रस आ रहा है, तो चूहों की कामुकता के बाबत कोई बहुत ज्यादा खबर नहीं है, लेकिन आदमी तो बहुत कामुक मालूम होता है। वह तो फिर दबाता ही रहेगा। चूहा भी जब तक बेहोश होकर नहीं गिर गया, एक्झास्टेड, तब तक वह दबाता ही रहा।

जो कुछ भी बाहर घटित हो रहा है, वह आपके मस्तिष्क में पहुंचता है तंतुओं के द्वारा। इसलिए उसके बाबत सचाई नहीं है कि बाहर सच में घटित हो रहा है या सिर्फ तंतु खबर दे रहे हैं। आपको धोखे में डाला जा सकता है।

सिर्फ अनुभव तो एक है असंदिग्ध, जिस पर श्रद्धा हो सकती है। और वह अनुभव है भीतर का, जो इंद्रियों के माध्यम से घटित नहीं होता। जिसका सीधा साक्षात्कार होता है।

तो जितना कोई व्यक्ति अपने भीतर उतरता है, उतना ही परमात्मा में श्रद्धा बढ़ती है। इसलिए महावीर ने तो कहा है, परमात्मा की बात ही मत करो। सिर्फ आत्मा को जान लो और तुम परमात्मा हो जाओगे। इसलिए महावीर ने परमात्मा की बात के लिए भी मना कर दिया। न तो उसकी बात करो, न उस पर श्रद्धा करो। तुम सिर्फ आत्मा को जान लो और तुम परमात्मा हो जाओगे। क्योंकि उसके जानने में ही वह अनुभव तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा, जो परम और आत्यंतिक है।

श्रद्धा का अर्थ है, अनुभव पर आधारित। अंध-श्रद्धा का अर्थ है, लोभ, भय पर आधारित। आप अपने भीतर खोज करें कि आपकी श्रद्धाएं लोभ पर आधारित हैं, भय पर आधारित हैं या अनुभव पर आधारित हैं। अगर लोभ और भय पर आधारित हैं, तो आप अंध-श्रद्धा में जी रहे हैं।

और जो अंध-श्रद्धा में जी रहा है वह धार्मिक नहीं है, और वह बड़े खतरे में है। वह अपने जीवन को ऐसे ही नष्ट कर देगा। श्रद्धा में जीने की शुरुआत ही धार्मिक होने की शुरुआत है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि कल आपने कहा कि एक के प्रति अनन्य प्रेम व श्रद्धा को अव्यभिचारिणी की संज्ञा दी तथा अनेक के प्रति प्रेम व श्रद्धा को व्यभिचारिणी कहा। साधारणतः स्थिति उलटी लगती है। अर्थात एक के प्रति प्रेम मोह व आसक्ति बन जाती है और अनेक के प्रति प्रेम मुक्ति व प्रेम का विस्तार तथा प्रार्थना बन जाती है। दूसरी बात यह कि अनेक को प्रेम कर पाना प्रेम का विस्तार व विकास लगता है, व्यभिचारी भाव नहीं। इस विरोधाभास के संबंध में कुछ कहें।

दो बातें हैं। एक तो एक और अनंत, और इन दोनों के बीच में है अनेक। या तो अनंत को प्रेम करें, तो मुक्त हो जाएंगे। और या एक को प्रेम करें, तो मुक्त हो जाएंगे। अनेक उलझा देगा। अनेक व्यभिचार है, अनंत नहीं। या तो एक को प्रेम करें कि सारा प्रेम एक पर आ जाए। इसलिए नहीं कि एक का प्रेम मुक्त करेगा। कल भी मैंने कहा, एक पर अगर प्रेम करेंगे, तो आप भीतर एक हो जाएंगे।

प्रेम तो कला है स्वयं को रूपांतरित करने की। अगर एक को प्रेम किया, तो आप एक हो जाएंगे। और या फिर अनंत को प्रेम करें, तो आप अनंत हो जाएंगे।

लेकिन अनेक को प्रेम मत करें, नहीं तो आप खंड-खंड हो जाएंगे।

एक का प्रेम मोह बन सकता है, अनेक का प्रेम भी मोह बनेगा; सिर्फ जरा बदलता हुआ मोह रहेगा। एक का प्रेम आसक्ति बन सकता है, तो अनेक का प्रेम भी आसक्ति बनेगा। और एक का प्रेम जब इतनी आसक्ति और इतना कष्ट देता है, तो अनेक का प्रेम और आसक्ति और भी ज्यादा कष्ट देगा।

लोग सोचते हैं कि अनेक को प्रेम करने से प्रेम मुक्त होगा, गलत ख्याल में हैं। और जो भी वैसा सोचते हैं, वे असल में रुग्ण हैं। जैसे लार्ड बायरन, इस तरह के लोग, डान जुआन टाइप के लोग, जो एक को प्रेम, दो को प्रेम, तीन को प्रेम, इसी चक्कर में भटकते रहते हैं।

पहले तो लोग सोचते थे, मनोवैज्ञानिक भी सोचते थे कि जो डान जुआन टाइप का आदमी जो है, यह बड़ा प्रेमी है। इसके पास इतना प्रेम है कि एक व्यक्ति पर नहीं चुकता, इसलिए बहुत-से व्यक्तियों को प्रेम करता फिरता है। लेकिन अब मनसविद मानते हैं कि यह रुग्ण है। बहुत प्रेम नहीं है, प्रेम है ही नहीं। इसको प्रेम करना ही नहीं आता। और इसलिए केवल व्यक्तियों को बदलता चला जाता है।

और जितना आप व्यक्तियों को बदलेंगे, उतना छिछला हो जाएगा प्रेम। क्योंकि गहराई के लिए समय चाहिए। और गहराई के लिए आत्मीयता चाहिए। और गहराई के लिए निकट साहचर्य चाहिए।

अगर एक व्यक्ति रोज एक स्त्री बदल लेता है और प्रेम करता चला जाता है, तो उसका प्रेम शरीर से गहरा कभी भी नहीं हो पाएगा। क्योंकि शरीर से ज्यादा संबंध ही नहीं हो पाएगा। मन तो तब संबंधित होता है, जब दो व्यक्ति सुख-दुख में साथ रहते हैं। और आत्मा तो तब संबंधित होती है, जब धीरे-धीरे, धीरे-धीरे दूसरे की मौजूदगी भी पता नहीं चलती कि दूसरा मौजूद है। जब दो व्यक्ति एक कमरे में इस भांति होते हैं, जैसे एक ही व्यक्ति हो, दो हैं ही नहीं, तब कहीं भीतर की आत्मा का संबंध स्थापित होता है।

एक का प्रेम आसक्ति बन सकता है। जरूरी नहीं है कि बने। बनाने वाले पर निर्भर करता है। और जो एक के साथ आसक्ति बना लेगा, वह अनेक के साथ भी आसक्ति बना लेगा। एक के साथ प्रेम प्रार्थना भी बन सकता है। वह बनाने वाले पर निर्भर है।

जिस व्यक्ति को आप प्रेम करते हैं, अगर वह प्रेम केवल शरीर का ही प्रेम न हो, अगर उसके भीतर के मनुष्यत्व का और उसके भीतर की आत्मा का भी प्रेम हो; और धीरे-धीरे बाहर गौण हो जाए, और भीतर प्रमुख हो जाए; और धीरे-धीरे उसका आकार और रूप भूल जाए और उसका निराकार और निर्गुण स्मरण में रहने लगे, तो वह प्रेम प्रार्थना बन गया।

और अच्छा है कि एक के साथ ही यह प्रेम प्रार्थना बने। क्योंकि एक के साथ गहराई आसान है; अनेक के साथ गहराई आसान नहीं है। अनेक के साथ प्रेम ऐसा ही है, जैसे एक आदमी एक हाथ जमीन यहां खोदे, दो हाथ जमीन कहीं और खोदे, तीन हाथ जमीन कहीं और खोदे, और जिंदगीभर इस तरह खोदता रहे और कुआं कभी भी न बने। क्योंकि कुआं बनाने के लिए एक ही जगह खोदते जाना जरूरी है। साठ हाथ, सौ हाथ एक ही जगह खोदे, तो शायद जल-स्रोत उपलब्ध हो पाए।

दो व्यक्तियों के बीच अगर गहरा प्रेम हो, तो वे एक ही जगह खोदते चले जाते हैं। खोदते-खोदते एक दिन शरीर की पर्त टूट जाती है, मन की पर्त भी टूट जाती है और एक-दूसरे के भीतर के चैतन्य का संस्पर्श शुरू होता है। पति-पत्नी अगर गहरे प्रेम में हों, तो एक-दूसरे में परमात्मा को खोज ले सकते हैं। दो प्रेमी परमात्मा को खोज ले सकते हैं। उनका प्रेम धीरे-धीरे प्रार्थना बन जाएगा।

लेकिन अगर यह लगता हो कि इसमें खतरा है, तो खतरा इस कारण नहीं लगता कि एक व्यक्ति के प्रति प्रेम में खतरा है। खतरा अपने ही किसी दोष के कारण लगता है।

तो दूसरा उपाय है। और वह दूसरा उपाय है, अनंत के प्रति प्रेम। तब फिर एक का ख्याल ही छोड़ दें; अनेक का भी ख्याल छोड़ दें। फिर रूप का ख्याल ही छोड़ दें, शरीर का ख्याल ही छोड़ दें। फिर तो अनंत का, शाश्वत का, जो चारों तरफ मौजूद निराकार है, उसके प्रेम में लीन हों। फिर पत्थर से भी प्रेम हो, वृक्ष से भी प्रेम हो, आकाश में घूमते हुए बादल के टुकड़े से भी प्रेम हो। फिर व्यक्तियों का सवाल न रहे; फिर अनंत के साथ प्रेम हो। तो भी व्यभिचार पैदा न होगा।

एक के साथ अव्यभिचार हो सकता है और अनंत के साथ अव्यभिचार हो सकता है। दोनों के बीच में व्यभिचार पैदा होगा।

और आदमी बहुत बेईमान है। और अपने को धोखा देने में बहुत कुशल है। अभी पश्चिम में इसकी बहुत तेज हवा है। क्योंकि पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि एक के साथ प्रेम जड़ता बन जाता है, कुंठा बन जाता है, अवरोध हो जाता है; प्रेम तो मुक्त होना चाहिए। और मुक्त प्रेम मुक्ति लाएगा। तो उसका परिणाम केवल

गहरी अनैतिकता है। न तो कोई मुक्ति आ रही है, न कोई प्रेम आ रहा है, न कोई प्रार्थना आ रही है। लोग व्यक्तियों को बदलते जा रहे हैं और व्यक्तियों के साथ एक तरह का खिलवाड़ शुरू हो गया है। वह जो पवित्रता है, वह जो आत्मीयता है, उसका उपाय ही नहीं रहा।

आज एक स्त्री है, कल दूसरी स्त्री है। आज एक पति है, कल दूसरा पति है। पति-पत्नी का भाव ही गिरता जा रहा है। दो व्यक्तियों के बीच जैसे क्षणभर का संबंध है। न कोई दायित्व है, न कोई गहरा लगाव है, न कोई कमिटमेंट। नहीं, कुछ भी नहीं है। एक ऊपर के तल पर मिलना-जुलना है। यह मिलना-जुलना खतरनाक है। और इसके परिणाम पश्चिम में प्रकट होने शुरू हो गए हैं।

आज पश्चिम में प्रेम की इतनी चर्चा है, और प्रेम बिल्कुल नहीं है। क्योंकि प्रेम के लिए अनिवार्य बात थी कि एक व्यक्ति के साथ गहरी संगति हो। और एक व्यक्ति के प्रति ऐसा भाव हो कि जैसे उस व्यक्ति के अतिरिक्त अब तुम्हारे लिए जगत में और कोई नहीं है, तो ही उस व्यक्ति में गहरे उतरना संभव हो पाएगा।

कृष्ण ने जो कहा है, अव्यभिचारिणी भक्ति, उसका प्रयोजन यही है।

एक मित्र को मैं जानता हूं। वे कहते हैं, कुरान भी ठीक, गीता भी ठीक, बाइबिल भी ठीक, सभी ठीक। मस्जिद भी ठीक, मंदिर भी ठीक। लेकिन न तो उन्हें मंदिर में रस है और न मस्जिद में; न गीता में, न कुरान में। सबको ठीक कहने का मतलब ऐसा नहीं है कि वे जानते हैं कि सब ठीक है। सबको ठीक कहने का मतलब यह है कि हमें कोई मतलब ही नहीं है। सभी ठीक है। उपेक्षा का भाव है। कोई रस नहीं है, कोई लगाव नहीं है। एक इनडिफरेंस है।

इस उपेक्षा से कोई आस्तिकता तो पैदा होगी नहीं। क्योंकि इस उपेक्षा से कोई काम ही नहीं हो सकता। न मंदिर में झुकते हैं वे, न मस्जिद में झुकते हैं।

यह भी हो सकता है, ऐसे लोग भी हैं, जो मंदिर के सामने भी झुक जाते हैं, मस्जिद के सामने भी झुक जाते हैं। लेकिन उनका झुकना औपचारिक है। लेकिन एक अनन्य भाव नहीं है।

वह जो आदमी कहता है कि नहीं, मस्जिद में ही भगवान हैं; भला हमें उसकी बात जिद्दपूर्ण मालूम पड़े, और परम ज्ञान की दृष्टि से जिद्दपूर्ण है। परम ज्ञान की दृष्टि से मंदिर में भी है, मस्जिद में भी है, गुरुद्वारा में भी है। लेकिन परम ज्ञान की दृष्टि से! वह अभी परम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। अभी तो उचित है कि उसका एक के प्रति ही पूरा भाव हो। वह अभी मंदिर में ही पूरा डूब जाए या मस्जिद में ही पूरा डूब जाए।

जिस दिन वह मस्जिद में पूरा डूब जाएगा, उस दिन मस्जिद में ही मंदिर भी प्रकट हो जाएगा। लेकिन वह बाद की बात है। अभी मस्जिद में भी डूबा नहीं, मंदिर में भी डूबा नहीं। और वह कहता है, सब ठीक है। मंदिर में भी सिर झुका लेता हूं, मस्जिद में भी सिर झुका लेता हूं। उसका हृदय कहीं भी नहीं झुकेगा।

यह ऐसा है, जैसे आपका किसी स्त्री से प्रेम हो जाए। जब आपका किसी स्त्री से प्रेम हो जाता है, तो आपको लगता है, ऐसी सुंदर स्त्री जगत में दूसरी नहीं है। यह कोई सच्ची बात नहीं है। क्योंकि न तो आपने सारी जगत की स्त्रियां देखी हैं, न जांच-परख की है, न तौला है। यह वक्तव्य गलत है। और यह आप कैसे कह सकते हैं बिना दुनियाभर की स्त्रियों को जाने हुए कि तुझसे सुंदर कोई भी नहीं है!

लेकिन आपकी भाव-दशा यह है। अगर आज सारी दुनिया की स्त्रियां भी खड़ी हों, तो भी आपको यही लगेगा कि यही स्त्री सबसे ज्यादा सुंदर है। सौंदर्य स्त्री में नहीं होता, आपके प्रेम के भाव में होता है। और जब किसी स्त्री पर आपका प्रेम-भाव आरोपित हो जाता है, तो वही सुंदर है। सारा जगत फीका हो जाता है। इस क्षण में, इस भाव-दशा में, यही सत्य है।

और आप ज्ञान की बातें मत करें, कि आप कहें कि नहीं, दूसरी स्त्री भी सुंदर है; यह भी सुंदर है और सभी सुंदर हैं। सुंदर तो सभी हैं। और यह बात कहनी ठीक नहीं है, क्योंकि गणित के हिसाब से ठीक नहीं बैठती। तो आप कभी प्रेम में ही न पड़ पाएंगे। और अगर सच में आप प्रेम में पड़ जाएं, तो उस क्षण में एक स्त्री, एक पुरुष आपको परम सुंदर मालूम पड़ेगा।

उसमें अगर आप लीन हो सकें, तो धीरे-धीरे स्त्री का व्यक्तित्व खो जाएगा। और स्त्रैण तत्व का सौंदर्य दिखाई पड़ने लगेगा। और गहरे उतरेंगे, तो स्त्रैण तत्व भी खो जाएगा, सिर्फ चैतन्य का सौंदर्य अनुभव में आने लगेगा। जितने गहरे उतरेंगे, सीमा टूटती जाएगी और असीम प्रकट होने लगेगा। लेकिन प्राथमिक क्षण में तो यही भाव पैदा होगा कि इससे ज्यादा सुंदर और कोई भी नहीं है।

बहुत बार धार्मिक, सामाजिक सुधार करने वाले लोग, बहुत तरह के नुकसान पहुंचा देते हैं। वे समझा देते हैं, अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। वे बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। और फिर भी गलत कह रहे हैं। क्योंकि जिस आदमी को ऐसा लग गया, अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, न तो अल्लाह के प्रति डूबने की क्षमता आएगी और न राम के प्रति डूबने की क्षमता आएगी।

प्राथमिक क्षण में तो ऐसा मालूम होना चाहिए कि अल्लाह ही सत्य है, राम वगैरह सब व्यर्थ। या राम ही सत्य है, अल्लाह वगैरह सब व्यर्थ। प्राथमिक क्षण में तो यह प्रेम का ही भाव होना चाहिए। अंतिम अनुभव में पता चल जाएगा, शिखर पर पहुंचकर, कि सभी रास्ते यहीं आते हैं।

लेकिन जमीन पर बैठा हुआ आदमी, जो पहाड़ पर चढ़ा नहीं, वह कहता है, सभी रास्ते वहीं जाते हैं। फिर वह चलेगा कैसे! चलना तो एक रास्ते पर होता है। सभी रास्तों पर कोई भी नहीं चल सकता। चलने के लिए तो यह भाव होना चाहिए कि यही रास्ता जाता है, बाकी कोई रास्ता नहीं जाता। तो ही हिम्मत, उत्साह पैदा होता है। लेकिन जो चला नहीं है, बैठा है अभी दरवाजे पर ही यात्रा के, वह कहता है, सभी रास्ते वहां जाते हैं। वह चल ही नहीं पाएगा, पहला कदम ही नहीं उठेगा।

तो जो अंतिम रूप से सत्य है, वह प्रथम रूप से सत्य हो, यह जरूरी नहीं है। और जो प्रथम रूप से सत्य मालूम होता है, वह अंत में भी बचेगा, यह भी जरूरी नहीं है।

आखिर में तो न अल्लाह उसका नाम है और न राम उसका नाम है। उसका कोई नाम ही नहीं है। लेकिन प्राथमिक रूप से तो कोई एक नाम को ही पकड़कर चलना, अगर चलना हो। अगर बैठना हो, तो सभी नाम बराबर हैं। जिस आदमी को चलना नहीं है, वह आदमी इस तरह की बातें कर सकता है। लेकिन जिसको चलना है, उसका सिर तो एक जगह झुकना चाहिए। क्योंकि झुकने के लिए जो अनन्य भाव न हो, तो पूरा समर्पण नहीं हो सकता।

मस्जिद में गया हुआ आदमी सोचता है, मंदिर भी ठीक, गिरजा भी ठीक, गुरुद्वारा भी ठीक, तो झुक नहीं सकता। वह जो झुकने की दशा चाहिए कि डूब जाए पूरा, वह नहीं हो सकता। वह तो होगा अनन्य भाव से।

तो कृष्ण जो कहते हैं अव्यभिचारिणी भक्ति, उसका अर्थ है, एक के प्रति। फिर सवाल यह नहीं है कि वह अल्लाह के प्रति हो, कि राम के प्रति हो, कि बुद्ध के प्रति हो, कि महावीर के प्रति हो, यह सवाल नहीं है। किसी के प्रति हो, वह एक के प्रति हो।

इस संबंध में यह बात समझ लेनी जरूरी है कि दुनिया के जो पुराने दो धर्म हैं, यहूदी और हिंदू, बाकी सब धर्म उनकी ही शाखाएं हैं। इस्लाम, ईसाइयत यहूदी धर्म की शाखाएं हैं। जैन, बौद्ध हिंदू धर्म की शाखाएं हैं। लेकिन मौलिक धर्म दो हैं, हिंदू और यहूदी। और दोनों के संबंध में एक बात सच है कि दोनों ही नान-कनवर्टिंग

हैं। न तो यहूदी पसंद करते हैं कि किसी को यहूदी बनाया जाए समझा-बुझाकर। और न हिंदू पसंद करते रहे हैं कि किसी को समझा-बुझाकर हिंदू बनाया जाए। दोनों की मान्यता यह रही है कि किसी की भी जो अनन्य श्रद्धा हो, उससे उसे जरा भी हिलाया न जाए। उसकी जो श्रद्धा हो, वह उसी श्रद्धा से आगे बढ़े। और अगर कोई व्यक्ति आधे जीवन में परिवर्तित कर लिया जाए, तो उसकी श्रद्धा कभी भी अनन्य न हो पाएगी।

एक बच्चा हिंदू की तरह पैदा हुआ और तीस साल तक हिंदू भाव में बड़ा हुआ। और फिर तीस साल के बाद उसे यहूदी बना दिया जाए। वह यहूदी भला बन जाए, लेकिन भीतर हिंदू रहेगा, ऊपर यहूदी रहेगा। और ये दो परतें उसके भीतर रहेंगी। इन दो परतों के कारण वह कभी भी एक भाव को और एक समर्पण को उपलब्ध नहीं हो पाएगा।

इसलिए दुनिया के ये पुराने दो धर्म नान-कनवर्टिंग थे। इन्होंने कहा, हम किसी को बदलेंगे नहीं। अगर कोई बदलने को भी आएगा, तो भी बहुत विचार करेंगे, बहुत सोचेंगे, समझेंगे--तब। जहां तक तो कोशिश यह करेंगे उसको समझाने की कि वह बदलने की चेष्टा छोड़ दे। वह जहां है, जिस तरफ चल रहा है, वहीं अनन्य भाव से चले। वहीं से पहुंच जाए।

इसमें बड़ी समझने की बात है, बहुत विचारने की बात है। क्योंकि व्यक्ति को हम जितनी ज्यादा दिशाएं दे दें, उतना ही ज्यादा चलना मुश्किल कर देते हैं।

कृष्ण का यह कहना कि तू अनन्य भाव से एक के प्रति समर्पित हो जा, इसका प्रयोजन है। क्योंकि तब तू भीतर भी एक और इंटिग्रेटेड हो जाएगा। और वह जो तेरे भीतर एकत्व घटित होगा, वही तुझे परमात्मा की तरफ ले जाने वाला है।

अगर यह बात ठीक न लगती हो, तो अनेक विकल्प नहीं है। विकल्प है फिर, अनंत। तो फिर अनंत के प्रति समर्पित हो जाएं। दो के बीच चुनाव कर लें। लेकिन अनेक खतरनाक है। अनेक दोनों के बीच में है, और उससे व्यभिचार पैदा होता है। और आप खंड-खंड हो जाते हैं, टूट जाते हैं। और आपका टूटा हुआ व्यक्तित्व किसी भी गहरी यात्रा में सफल नहीं हो सकता।

अब हम सूत्र लें।

और हे अर्जुन, जो जानने के योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य अमृत और परम आनंद को प्राप्त होता है, उसको अच्छी प्रकार कहूंगा।

जो जानने के योग्य है... ।

इसे थोड़ा हम ख्याल में ले लें। बहुत-सी बातें जानने की इच्छा पैदा होती है, जिज्ञासा पैदा होती है, कुतूहल पैदा होता है। लेकिन हम यह कभी नहीं सोचते कि सच में वे बातें जानने योग्य भी हैं या नहीं। कुतूहल काफी नहीं है। क्योंकि कुतूहल से कुछ हल न होगा, समय और शक्ति व्यय होगी।

बहुत-सी बातें हम जानने की कोशिश करते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि जानकर क्या करेंगे। बच्चों जैसी उत्सुकता है। अगर बच्चों को साथ ले जाएं, तो वे कुछ भी पूछेंगे, कुछ भी सवाल उठाते जाएंगे। और ऐसा भी नहीं है कि सवालों से उन्हें कुछ मतलब है। अगर आप जवाब न दें, तो एक-दो क्षण बाद वे दूसरा सवाल उठाएंगे। पहले सवाल को फिर न उठाएंगे।

बच्चों की तो बात छोड़ दें। मेरे पास बड़े-बूढ़े आते हैं, उनसे भी मैं चकित होता हूं। आते हैं सवाल उठाने। कहते हैं कि बड़ी जिज्ञासा है। और मैं दो मिनट कुछ और बातें करता हूं, फिर वे घंटेभर बैठते हैं, लेकिन दुबारा

वह सवाल नहीं उठाते। फिर वे चले जाते हैं। वह सवाल कुछ मूल्य का नहीं था। वह सिर्फ कुतूहल था, क्यूरिआसिटी थी।

अभी तो पश्चिम के वैज्ञानिक भी यह सोचने लगे हैं कि हमें विज्ञान के कुतूहल पर भी रोक लगानी चाहिए। क्योंकि विज्ञान कुछ भी पूछे चला जाता है, कुछ भी खोजे चला जाता है, बिना इसकी फिक्र किए कि इसका परिणाम क्या है? इससे होगा क्या? इसको जान भी लेंगे, तो क्या होगा?

जानने को तो बहुत है, और आदमी के पास समय तो थोड़ा है। जानने को तो अनंत है, और आदमी की तो सीमा है। जानने के तो कितने आयाम हैं, और अगर आदमी ऐसा ही जानता रहे सभी रास्तों पर, तो खुद समाप्त हो जाएगा और कुछ भी जान न पाएगा।

तो कृष्ण कहते हैं, जो जानने योग्य है... ।

जिसको जानने का मन होता है, वह जानने योग्य है, जरूरी नहीं है। फिर जानने योग्य क्या है? क्या है परिभाषा जानने योग्य की? जानने की जिज्ञासा तो बहुत चीजों की पैदा होती है--यह भी जान लें, यह भी जान लें, यह भी जान लें।

कृष्ण कहते हैं--और भारत की पूरी परंपरा कहती है--कि जानने योग्य वह है, जिसको जानने पर फिर कुछ जानने को शेष न रह जाए। अगर फिर भी जानने को शेष रहे, तो वह जानने योग्य नहीं था। उससे तो प्रश्न थोड़ा आगे हट गया और कुछ हल न हुआ।

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि जब मैं बच्चा था और मेरी पहली दफा उत्सुकता दर्शन में बढ़ी, तो मैं सोचता था, दर्शनशास्त्र में सभी प्रश्नों के उत्तर हैं। नब्बे वर्ष का बूढ़ा होकर अब मैं यह कह सकता हूं कि मेरी धारणा बिल्कुल गलत थी और परिणाम बिल्कुल दूसरा निकला है। दर्शनशास्त्र के पास उत्तर तो हैं ही नहीं, सिवाय प्रश्नों के। और पहले मैं सोचता था कि खोज करने से प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे, और नब्बे वर्ष तक मेहनत करके अब मैं पाता हूं कि खोज करने से एक प्रश्न में से दस प्रश्न निकल आते हैं, उत्तर वगैरह कुछ भी मिलता नहीं है।

पूरे दर्शनशास्त्र का इतिहास पुराने प्रश्नों में से नए प्रश्न निकालने का इतिहास है। उत्तर कुछ भी नहीं है। और जो लोग उत्तर देने की कोशिश भी करते हैं, उनका उत्तर भी कोई मानता नहीं है। उन उत्तर में से भी दस प्रश्न लोग खड़े करके पूछने लगते हैं। एक प्रश्न दूसरे प्रश्न को जन्म देता है, उत्तर कहीं दिखाई नहीं पड़ते। कारण कुछ होगा। और कारण यही है।

धर्म पूछता है उसी प्रश्न को, जो पूछने योग्य है। और जानना चाहता है वही, जो जानने योग्य है। और दर्शनशास्त्र जानना चाहता है कुछ भी, जो भी जानने योग्य लगता है; जिसमें भी कुतूहल पैदा हो जाता है।

दर्शनशास्त्र खुजली की तरह है। खुजाने का मन होता है, इसकी बिना फिक्र किए कि परिणाम क्या होगा। खुजाते वक्त अच्छा भी लगता है। लेकिन फिर लहू निकल आता है और पीड़ा होती है!

धर्म कहता है, खुजाने के पहले पूछ लेना जरूरी है कि परिणाम क्या होगा। जिस जानने से और जानने के सवाल उठ जाएंगे, वह जानना व्यर्थ है। पर एक ऐसा जानना भी है, जिसको जानकर सब जानने की दौड़ समाप्त हो जाती है। वह कब होगी? उस बात को भी ठीक से समझ लेना चाहिए। आखिर आदमी जानना ही क्यों चाहता है?

इसे हम ऐसा समझें कि अगर कोई मृत्यु न हो, तो दुनिया में दर्शनशास्त्र होगा ही नहीं। मृत्यु के कारण आदमी पूछता है, जीवन क्या है? मृत्यु के कारण आदमी पूछता है, शरीर ही सब कुछ तो नहीं है, आत्मा भीतर

है या नहीं? मृत्यु के कारण आदमी पूछता है, जब शरीर गिर जाएगा तो क्या होगा? मृत्यु के कारण आदमी पूछता है, परमात्मा है या नहीं है?

थोड़ी कल्पना करें एक ऐसे जगत की, जहां मृत्यु नहीं है, जीवन शाश्वत है। वहां न तो आप पूछेंगे आत्मा के संबंध में, न परमात्मा के संबंध में। वहां दर्शनशास्त्र का जन्म ही नहीं होगा।

सारा दर्शनशास्त्र मृत्यु से जन्मता है।

इसलिए धर्म कहता है, जब तक अमृत का पता न चल जाए, तब तक तुम्हारे प्रश्नों का कोई अंत न होगा, क्योंकि तुम मृत्यु के कारण पूछ रहे हो। जब तक तुम्हें अमृत का पता न चल जाए, तब तक तुम पूछते ही रहोगे, पूछते ही रहोगे। और कोई भी उत्तर दिया जाए, हल न होगा, जब तक कि अमृत का अनुभव न मिल जाए।

इसलिए बुद्ध अक्सर कहते थे उनके पास आए लोगों से, कि तुम प्रश्नों के उत्तर चाहते हो या समाधान? जो भी आदमी आता उसको तो एकदम से समझ में भी न पड़ता कि फर्क क्या है? कोई आदमी आकर पूछता कि ईश्वर है या नहीं? तो बुद्ध कहते, तू उत्तर चाहता है कि समाधान? तो वह आदमी तो पहले चौंकता ही कि दोनों में फर्क क्या है? तो बुद्ध कहते, उत्तर अगर चाहिए, तो उत्तर तो हां या न में दिया जा सकता है, कि ईश्वर है या ईश्वर नहीं है। लेकिन तुझे उत्तर मिलेगा नहीं। क्योंकि मेरे कहने से क्या होगा! उत्तर तो मैं दे सकता हूं; समाधान तुझे खोजना पड़ेगा। उत्तर तो ऐसे मुफ्त मिल सकता है, समाधान साधना से मिलेगा। उत्तर तो ऊपरी होगा, समाधान आंतरिक होगा। तो तू ईश्वर है या नहीं, इसका उत्तर चाहता है कि समाधान? उत्तर चाहिए, तो शास्त्र में भी मिल जाएगा। और अगर समाधान चाहिए, तो फिर साधना की तैयारी करनी पड़ेगी। समाधान तो तेरे रूपांतरण से होगा।

तो कृष्ण कहते हैं, जो जानने योग्य है और जिसको जानकर मनुष्य अमृत को प्राप्त होता है... ।

वही जानने योग्य है, जिसको जानकर आदमी अमृत को प्राप्त होता है। और अमृत परमानंद है, मृत्यु दुख है।

हमारे सभी दुखों के पीछे मृत्यु छिपी है। अगर आप खोज करेंगे, तो आप जिन बातों को भी दुख मानते हैं, उन सबके पीछे मृत्यु की छाया मिलेगी। चाहे ऊपर से दिखाई भी न पड़े, थोड़ा खोज करेंगे, तो पाएंगे, सभी दुखों के भीतर मृत्यु छिपी है। जहां भी मृत्यु की झलक मिलती है, वहीं दुख आ जाता है।

बुढ़ापे का दुख है, बीमारी का दुख है, असफलता का दुख है, सब मृत्यु का ही दुख है। धन छिन जाए, तो दुख है; वह भी मृत्यु का ही दुख है। क्योंकि धन से लगता है, इस जीवन को सुरक्षित करेंगे। धन छिन गया, असुरक्षित हो गए।

मकान जल जाए, तो दुख होता है। वह भी मकान के जलने का दुख नहीं है। मकान की दीवारों के भीतर मालूम होता था, सब ठीक है, सुरक्षित है। मकान के बाहर आकाश के नीचे खड़े होकर मौत ज्यादा करीब मालूम पड़ती है।

धन पास में न हो, तो मौत पास मालूम पड़ती है। धन पास में हो, तो मौत जरा दूर मालूम पड़ती है। धन की दीवार बीच में खड़ी हो, तो हम मौत को टाल सकते हैं, कि अभी कोई फिक्र नहीं; देखेंगे। और फिर धन हमारे पास है, कुछ न कुछ इंतजाम कर लेंगे। चिकित्सा हो सकती है, डाक्टर हो सकता है। कुछ होगा। हम मृत्यु को पोस्टपोन कर सकते हैं। वह हो या न, यह दूसरी बात है। लेकिन हम अपने मन में सोच सकते हैं कि इतनी जल्दी नहीं है कुछ, कुछ उपाय किया जा सकता है। धन पास में न हो, प्रियजन पास में न हों, अकेले आप खड़े हों आकाश के नीचे, मकान जल गया हो, मौत एकदम पास मालूम पड़ेगी।

सफल होता है आदमी, तो मौत बहुत दूर मालूम पड़ती है। असफल होता है आदमी, तो ख्याल आने लगते हैं उदासी के, मरने का भाव होने लगता है।

जहां भी दुख है, समझ लेना कि वहां मौत कहीं न कहीं से झांक रही है।

तो हम मृत्यु को जानते हुए और मृत्यु में जीते हुए कभी भी आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकते। हम भुला सकते हैं अपने को, कि मौत दूर है, लेकिन दूर से भी उसकी काली छाया पड़ती ही रहती है। हमारे सभी सुखों में मौत की छाया आकर जहर घोल देती है, कितने ही सुखी हों। बल्कि सच तो यह है कि सुख के क्षण में भी मौत की झलक बहुत साफ होती है, क्योंकि सुख के क्षण में भी तत्क्षण दिखाई पड़ता है कि क्षणभर का ही है यह सुख। वह जो क्षणभर का दिखाई पड़ रहा है, वह मौत की छाया है।

पढ़ रहा था मैं हरमन हेस के बाबत। जिस दिन उसे नोबल प्राइज मिली, उसने अपने मित्र को एक पत्र में लिखा है कि एक क्षण को मैं परम आनंदित मालूम हुआ। लेकिन एक क्षण को! और तत्क्षण उदासी छा गई, अब क्या होगा? अभी तक एक आशा थी कि नोबल प्राइज। वह मिल गई; अब? घनघोर अंधेरा घेर लिया। अब जीवन व्यर्थ मालूम पड़ा, क्योंकि अब कुछ पाने योग्य भी नहीं। मौत करीब दिखाई पड़ने लगी।

आदमी दौड़ता रहता है, जब तक सुख नहीं मिलता। जब मिलता है, तब अचानक दिखाई पड़ता है, अब? अब क्या होगा? जिस स्त्री को पाना था, वह मिल गई। जिस मकान को बनाना था, वह मिल गया। बेटा चाहिए था, बेटा पैदा हो गया। अब?

सुख के क्षण में सुख क्षणभंगुर है, तत्क्षण दिखाई पड़ जाता है। सुख के क्षण में सुख जा चुका, यह अनुभव में आ जाता है। सुख के क्षण में दुख मौजूद हो जाता है।

मौत सब तरफ से घेरे हुए है, इसलिए कृष्ण कहते हैं, अमृत और परमानंद को जिससे प्राप्त हो जाए, वही ज्ञान है। और ऐसी जानने योग्य बातें मैं तुझसे अच्छी प्रकार कहूंगा।

वह आदिरहित परम ब्रह्म अकथनीय होने से न सत कहा जाता है और न असत ही कहा जाता है।

यह बहुत सूक्ष्म बात है। थोड़ा ध्यानपूर्वक समझ लेंगे।

वह आदिरहित परम ब्रह्म अकथनीय होने से न सत कहा जाता है और न असत ही कहा जाता है।

परमात्मा को हम न तो कह सकते कि वह है, और न कह सकते कि वह नहीं है। कठिन बात है। क्योंकि हमें तो लगता है, दोनों बातों में से कुछ भी कहिए तो ठीक है, समझ में आता है। या तो कहिए कि है, या कहिए कि नहीं है। दुनिया में जो आस्तिक और नास्तिक हैं, वे इसी विवाद में होते हैं।

इसलिए अगर कोई पूछे कि गीता आस्तिक है या नास्तिक? तो मैं कहूंगा, दोनों नहीं है। कोई पूछे कि वेद आस्तिक हैं या नास्तिक? तो मैं कहूंगा, दोनों नहीं हैं। धार्मिक हैं, आस्तिक-नास्तिक नहीं हैं। क्योंकि आस्तिकता-नास्तिकता तो जीवन को दो हिस्सों में तोड़ लेती हैं। आस्तिक कहता है, ईश्वर है। नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है। लेकिन दोनों एक ही भाषा का उपयोग कर रहे हैं। आस्तिक कहता है, है में हमने ईश्वर को पूरा कह दिया। और नास्तिक कहता है कि नहीं है में हमने पूरा कह दिया। उनमें फर्क शब्दों का है। लेकिन दोनों दावा करते हैं कि हमने पूरे ईश्वर को कह दिया।

गीता कहती है कि कोई भी शब्द उसे पूरा नहीं कह सकता। क्योंकि शब्द छोटे हैं और वह बहुत बड़ा है। हम कहेंगे है, तो भी आधा कहेंगे, क्योंकि नहीं होना भी जगत में घटित होता है। वह भी तो परमात्मा में ही घटित हो रहा है। नहीं है अगर परमात्मा के बाहर हो, तो इसका अर्थ हुआ कि जगत के दो हिस्से हो गए। कुछ

परमात्मा के भीतर है, और कुछ परमात्मा के बाहर है। तब तो परमात्मा दो हो गए; तब तो जगत विभाजित हो गया।

अगर हम कहें कि परमात्मा सिर्फ जीवन है, तो फिर मौत किस में होगी? और अगर हम कहें कि परमात्मा सिर्फ सुख है, तो दुख किस में होगा? और अगर हम कहें कि परमात्मा सिर्फ स्वर्ग है, तो फिर नर्क कहां होगा? फिर हमें नर्क को अलग बनाना पड़ेगा परमात्मा से। उसका अर्थ हुआ कि हमने अस्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ दिया। और अस्तित्व दो हिस्सों में टूटा हुआ नहीं है; अस्तित्व एक है।

परमात्मा ही जीवन है और परमात्मा ही मृत्यु। दोनों है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, वह अकथनीय है। क्योंकि जब कोई चीज दोनों हो, तो अकथनीय हो जाती है। कथन में तो तभी तक होती है, जब तक एक हो और विपरीत न हो।

अरस्तू ने कहा है कि आप दोनों विपरीत बातें एक साथ कहें, तो वक्तव्य व्यर्थ हो जाता है।

जैसे कि अगर आप मुझसे पूछें कि आप यहां हैं या नहीं हैं? मैं कहूं कि मैं यहां हूं भी और नहीं भी हूं, तो वक्तव्य व्यर्थ हो गया। अदालत आपसे पूछे कि आपने हत्या की या नहीं की? और आप कहें, हत्या मैंने की भी है और मैंने नहीं भी की है, तो आपका वक्तव्य व्यर्थ हो गया। क्योंकि दोनों विपरीत बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।

अरस्तू का तर्क कहता है, एक ही बात सही हो सकती है। और यही बुनियादी फर्क है, भारतीय चिंतना में और यूनानी चिंतना में, पश्चिम और पूरब के विचार में।

पश्चिम कहता है कि विपरीत बातें साथ नहीं हो सकती हैं, कंट्राडिक्टरीज साथ नहीं हो सकते। या तो ऐसा होगा, या वैसा होगा; दोनों एक साथ नहीं हो सकते। इसलिए पश्चिम कहता है, या तो कहो गॉड इ.ज, ईश्वर है; या कहो गॉड इ.ज नाट, ईश्वर नहीं है। लेकिन गीता कहती है, गॉड इ.ज एंड इ.ज नाट, बोथ; ईश्वर है भी, नहीं भी है।

वह सत भी है, असत भी है; या तो यह उपाय है कहने का। और या दूसरा उपाय यह है कि न तो वह सत है, और न वह असत है। और चूंकि दोनों को एक साथ उपयोग करना पड़ता है, इसलिए अकथनीय है; कहा नहीं जा सकता। कहने में आधे को ही कहना पड़ता है। क्योंकि भाषा द्वंद्व पर निर्भर है, भाषा द्वैत पर निर्भर है, भाषा विरोध पर निर्भर है। भाषा में अगर दोनों विरोध एक साथ रख दिए जाएं, तो व्यर्थ हो जाता है, अर्थ खो जाता है। इसलिए अकथनीय है। लेकिन क्यों नहीं कहा जा सकता ईश्वर को कि है?

थोड़ा समझें। हम कह सकते हैं, टेबल है, कुर्सी है, मकान है। इसी तरह हम कह नहीं सकते कि ईश्वर है। क्योंकि मकान कल नहीं हो जाएगा। कुर्सी कल जलकर राख हो जाएगी, मिट जाएगी। टेबल परसों नहीं होगी। मकान आज है, कल नहीं था। जब हम कहते हैं, मकान है, तो इसमें कई बातें सम्मिलित हैं। कल मकान नहीं था, और कल मकान फिर नहीं हो जाएगा। और जब हम कहते हैं, ईश्वर है, तो क्या हम ऐसा भी कह सकते हैं कि कल ईश्वर नहीं था और कल ईश्वर नहीं हो जाएगा?

हर है के दोनों तरफ नहीं होता है। मकान कल नहीं था, कल फिर नहीं होगा, बीच में है। हर है के दोनों तरफ नहीं होता है। इसलिए ईश्वर है, यह कहना गलत है। क्योंकि उसके दोनों तरफ नहीं नहीं है। वह कल भी था, परसों भी था। कल भी होगा, परसों भी होगा। वह सदा है।

तो जो सदा है, उसको है कहना उचित नहीं। क्योंकि हम है उन चीजों के लिए कहते हैं, जो सदा नहीं हैं। और जिसके लिए है कहना ही उचित न हो, उसके लिए नहीं है कहने का तो कोई अर्थ नहीं रह जाता।

ईश्वर अस्तित्व ही है। नहीं और है, दोनों उसमें समाविष्ट हैं। उसका ही एक रूप है है; और उसका ही एक रूप नहीं है। कभी वह प्रकट होता है, तब है मालूम होता है। और कभी अप्रकट हो जाता है, तब नहीं है मालूम होता है।

एक बीज है। अगर मैं आपसे पूछूं कि बीज में वृक्ष है या नहीं? तो आपको कहना पड़ेगा कि दोनों बातें हैं। क्योंकि बीज में वृक्ष है, इस अर्थ में, कि वृक्ष हो सकता है; अगर हम बो दें, तो वृक्ष हो जाएगा। और जो कल हो सकता है, वह आज भी कहीं न कहीं छिपा होना चाहिए, नहीं तो कल होगा कैसे। फिर हर कोई बीज बो देने से हर कोई वृक्ष नहीं हो जाएगा। जो वृक्ष छिपा है, वही होगा। नहीं तो हम आम बो दें और नीम पैदा हो जाए। नीम बो दें और आम पैदा हो जाए। लेकिन नीम से नीम पैदा होगी। इसका एक मतलब साफ है कि नीम में नीम का ही वृक्ष छिपा था। जो बीज है आज, वह कल वृक्ष हो सकता है, इसलिए वृक्ष उसमें है--अव्यक्त, अप्रकट, अनमैनिफेस्ट।

फिर कल वृक्ष हो गया। अगर मैं आपसे पूछूं कि बीज कहां है? कल बीज था, वृक्ष छिपा था। आज वृक्ष है, बीज छिप गया। बीज अब भी है, लेकिन अब छिप गया। अप्रकट है। लेकिन हम कहेंगे, बीज नहीं है।

नहीं अप्रकट रूप है, और है प्रकट रूप है। ईश्वर दोनों है, कभी प्रकट है, कभी अप्रकट है। जगत उसका है रूप है, पदार्थ उसका है रूप है, और आत्मा उसका नहीं रूप है।

यह थोड़ा जटिल है। इसलिए बुद्ध ने आत्मा को नथिंगनेस कहा है, नहीं। यह जो दिखाई पड़ता है, यह परमात्मा का है रूप है। और जो भीतर नहीं दिखाई पड़ता है, वह उसका नहीं रूप है। और जब तक दोनों को हम न जान लें, तब तक हम मुक्त नहीं हो सकते।

है को तो हम जानते हैं, नहीं है को भी जानना होगा। इसलिए ध्यान मिटने का उपाय है, नहीं होने का उपाय है। प्रेम मिटने का उपाय है, नहीं होने का उपाय है। समर्पण, भक्ति, श्रद्धा, सब मिटने के उपाय हैं, ताकि नहीं रूप को भी आप जान लें।

जो न सत है, जो न असत है, या जो दोनों है, वह अकथनीय है। उसे कहा नहीं जा सकता। इसलिए सभी शास्त्र उस संबंध में बहुत कुछ कहकर भी यह कहते हैं कि कुछ कहा नहीं जा सकता।

हमारा सब कहना बच्चों की चेष्टा है। हमारा सब कहना प्रयास है आदमी का, कमजोर आदमी का, सीमित आदमी का। जैसे कोई आकाश को मुट्ठी में बांधने की कोशिश कर रहा हो।

निश्चित ही, मुट्ठी में भी आकाश ही होता है। जब आप मुट्ठी बांधते हैं, तो जो आपके भीतर है मुट्ठी के, वह भी आकाश ही है। लेकिन फिर भी क्या आप उसको आकाश कहेंगे? क्योंकि आकाश तो यह विराट है।

आपकी मुट्ठी में भी आकाश ही होता है, लेकिन पूरा आकाश नहीं होता। क्योंकि आपकी मुट्ठी भी आकाश में ही है, पूरे आकाश को मुट्ठी नहीं घेर सकती। मुट्ठी आकाश से बड़ी नहीं हो सकती।

मनुष्य की चेतना परमात्मा को पूरा अपनी मुट्ठी में नहीं ले पाती, क्योंकि मनुष्य की चेतना स्वयं ही परमात्मा के भीतर है। फिर भी हम कोशिश करते हैं। उस कोशिश में थोड़ी-सी झलकें मिल सकती हैं। लेकिन झलक भी तभी मिल सकती है, जब कोई सहानुभूति से समझने की कोशिश कर रहा हो। अगर जरा भी सहानुभूति की कमी हो, तो झलक भी नहीं मिलेगी, झलक भी खो जाएगी।

शब्द असमर्थ हैं। लेकिन अगर सहानुभूति हो, तो शब्दों में से कुछ सार-सूचना मिल सकती है।

परंतु वह सब ओर से हाथ-पैर वाला एवं सब ओर से नेत्र, सिर और मुख वाला है तथा सब ओर से श्रोत वाला है, क्योंकि वह संसार में सब को व्याप्त करके स्थित है।

लेकिन इसका यह मतलब मत समझना कि वह अकथनीय है, निराकार है, निर्गुण है, न कहा जा सकता सत, न असत, तो हमसे सारा संबंध ही छूट गया। फिर आदमी को लगता है कि ऐसी चीज, शून्य जैसी, उससे हमारा क्या लेना-देना! फिर हम किसके सामने रो रहे हैं? और किससे प्रार्थना कर रहे हैं? और किसकी पूजा कर रहे हैं? और किसके प्रति समर्पण करें? जो न है, न नहीं है, जो अकथनीय है। कृष्ण खुद जिसको कहने में समर्थ न हों, उसके बाबत बात ही क्या करनी है! फिर बेहतर है, हम अपने काम-काज की दुनिया में लगे रहें। ऐसे अकथनीय के उपद्रव में हम न पड़ेंगे। क्योंकि जिसे कहा नहीं जा सकता, समझा नहीं जा सकता, उससे संबंध भी क्या निर्मित होगा!

तो तत्क्षण दूसरे वचन में ही कृष्ण कहते हैं, परंतु वह सब ओर से हाथ-पैर वाला, सब ओर से नेत्र, सिर, मुख वाला, कान वाला है, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त कर के स्थित है।

जैसे उसका प्रकट और अप्रकट रूप है, वैसे ही उसका आकार और निराकार रूप है। जैसा उसका निराकार और आकार रूप है, वैसा ही उसका सगुण और निर्गुण रूप है। वह दोनों है, दोनों विपरीतताएं एक साथ। इसलिए अगर कोई चाहे तो उससे बात कर सकता है। कोई चाहे तो उसके कान में बात डाल सकता है। कोई कान आपके सामने नहीं आएगा। लेकिन अगर आप पूरे हृदयपूर्वक उससे कुछ कहें, तो उस तक पहुंच जाएगा, क्योंकि सभी तरफ उसके कान हैं।

कृष्ण यह कह रहे हैं, सब ओर से कान वाला, सब ओर से हाथ वाला... ।

अगर आप हृदयपूर्वक अपने हाथ को उसके हाथ में दे दें, असंदिग्ध मन से, तो शून्य आकाश भी उसका हाथ बन जाएगा। और आपके हाथ को वह सम्हाल लेगा। लेकिन यह निर्भर आप पर है। क्योंकि अगर यह हृदय पूरा हो, तो यह घटना घट जाएगी, क्योंकि सब कुछ वही है। हर जगह उसका हाथ उठ सकता है। हर हवा की लहर उसका हाथ बन सकती है। लेकिन वह बनाने की कला आपके भीतर है। अगर यह श्रद्धा पूरी हो, तो यह घटना घट जाएगी। लेकिन अगर जरा-सा भी संदेह हो, तो यह घटना नहीं घटेगी।

लोग कहते हैं कि हमारा संदेह तो तब मिटेगा, जब घटना घट जाए। वे भी ठीक ही कहते हैं। संदेह तभी मिटेगा, जब घटना घट जाए। लेकिन तब बड़ी कठिनाई है। कठिनाई यह है कि जब तक संदेह न मिटे, घटना भी नहीं घटती। यह बड़ी उलझन की बात है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक बार नदी में तैरना सीखने गया। लेकिन पहली दफा पानी में उतरा और गोता खा गया, और मुंह में पानी चला गया, और नाक में पानी उतर गया। तो घबड़ाकर बाहर निकल आया। उसने कहा, कसम खाता हूं भगवान की, अब जब तक तैरना न सीख लूं, पानी में न उतरूंगा।

लेकिन जो उसे सिखाने ले गया था, उसने कहा, नसरुद्दीन, अगर यह कसम तुम्हारी पक्की है, तो तुम तैरना सीखोगे कैसे? क्योंकि जब तक तुम पानी में न उतरो, तैरना न सीख पाओगे। और तुमने खा ली कसम कि जब तक तैरना न सीख लूं, पानी में न उतरूंगा। अब बड़ी मुश्किल हो गई। पानी में उतरोगे, तभी तैरना भी सीख सकते हो।

थोड़ा डूबने की, गोता खाने की तैयारी चाहिए। थोड़ा जीवन को संकट में डालने की तैयारी चाहिए, तो ही कोई तैरना सीख सकता है। अब कोई घाट पर बैठकर तैरना नहीं सीख सकता।

अगर आपको लगता हो कि संदेह तो हम तभी छोड़ेंगे, जब उसका हाथ हमारे हाथ को पकड़ ले, तो बड़ी कठिनाई में हैं आप। क्योंकि उसका हाथ तो सब तरफ मौजूद है। लेकिन जिसका संदेह छूट गया, उसी के लिए

हाथ उसकी पकड़ में आता है। आप तभी पकड़ पाएंगे--उसका हाथ तो मौजूद है--आप तभी पकड़ पाएंगे, जब आपका संदेह छूट जाए।

तो कुछ प्रयोग करने पड़ेंगे, जिनसे संदेह छूटे। कुछ प्रयोग करने पड़ेंगे, जिनसे श्रद्धा बढ़े। कुछ प्रयोग करने पड़ेंगे, जिनसे वह खुला आकाश उसके हाथ, उसके कान, उसकी आंखों में रूपांतरित हो जाए।

एक ही बात मेरे ख्याल में आती है। खुद पर विश्वास करने की कोई भी जरूरत नहीं है, हमें खुद पर विश्वास होता ही है। आप हैं, इतना पक्का है। ऐसा कोई भी आदमी नहीं है, जिसको यह शक हो कि मैं नहीं हूं।

क्या आपको कभी कोई ऐसा आदमी मिला, जिसको शक हो कि मैं नहीं हूं। इस शक के लिए भी तो खुद का होना जरूरी है। कौन करेगा शक? एक बात असंदिग्ध है कि मैं हूं। इसलिए इस मैं हूं के साथ कुछ प्रयोग करने चाहिए, जो असंदिग्ध है।

और जैसे-जैसे इस मैं हूं में प्रवेश होता जाएगा, वैसे-वैसे ही संदेह बिल्कुल समाप्त हो जाएंगे। और जिस दिन मैं हूं की पूरी प्रतीति होती है, हाथ फैला दें, और परमात्मा का हाथ हाथ में आ जाएगा। आंख खोलें, और उसकी आंख आपकी आंख के सामने होंगी। बोलें, और उसके कान आपके होंठों से लग जाएंगे।

कृष्ण कहते हैं, वह सब ओर से हाथ-पैर वाला है, क्योंकि सब को व्याप्त करके वही स्थित है। और संपूर्ण इंद्रियों के विषयों को जानने वाला है, परंतु वास्तव में सब इंद्रियों से रहित है।

वह आपके बाहर ही है, ऐसा नहीं है; वह आपके भीतर भी है। हमारा और उसका संबंध ऐसे है, जैसे मछली और सागर का संबंध।

सुना है मैंने, एक दफा एक मछली बड़ी मुसीबत में पड़ गई थी। कुछ मछुए नदी के किनारे बैठकर बात कर रहे थे कि जल जीवन के लिए बिल्कुल जरूरी है, जल के बिना जीवन नहीं हो सकता। मछली ने भी सुन लिया। मछली ने सोचा, लेकिन मैं तो बिना जल के ही जी रही हूं। यह जल क्या है? ये मछुए किस चीज की बात कर रहे हैं? तो इसका अर्थ यह हुआ कि अभी तक मुझे जीवन का कोई पता ही नहीं चला! क्योंकि मछुए कहते हैं कि जल के बिना जीवन नहीं हो सकता। जल तो जीवन के लिए अनिवार्य है।

तो मछली पूछती फिरने लगी जानकार मछलियों की तलाश में। उसने बड़ी-बड़ी मछलियों से जाकर पूछा कि यह जल क्या है? उन्होंने कहा, हमने कभी सुना नहीं। हमें कुछ पता नहीं। अगर तुझे पता ही करना है, तो तू नदी की धार में बहती जा। सागर में सुनते हैं कि और बड़ी-बड़ी ज्ञानी मछलियां हैं, वे शायद कुछ बता सकें।

तो मछली यात्रा करती हुई सागर तक पहुंच गई। वहां भी उसने मछलियों से पूछा। एक मछली ने उसे कहा कि हां, पूछने से कुछ सार नहीं है। और एक दफा यह पागलपन मुझे भी सवार हो गया था, कि जल क्या है? सुना था कथाओं में, शास्त्रों में पढ़ा था, कि जल क्या है? लेकिन उसका कोई पता नहीं था। पता तो तब चला जब एक दफे मैं मछुए के जाल में पकड़ गई, और मछुए ने मुझे बाहर खींच लिया। बाहर खिंचते ही पता चला कि जिसमें मैं जी रही थी, वह जल था। तड़पने लगी प्यास से।

तो तुझे अगर जल का पता करना है, तो पूछने से पता नहीं चलेगा। तू छलांग लगाकर किनारे पर थोड़ी देर तड़प ले। क्योंकि जल में ही हम पैदा हुए हैं। जल ही बाहर है और जल ही भीतर है। इसलिए कुछ पता नहीं चलता। दोनों तरफ जल है।

मछली जल ही है; और जल में ही पैदा हुई है; और जल में ही कल क्षीण होकर लीन हो जाएगी। आदमी और परमात्मा के बीच जल और मछली का संबंध है। हम उसी में हैं। इसलिए हम पूछते फिरते हैं, परमात्मा कहां है? खोजते फिरते हैं, परमात्मा कहां है? और वह कहीं नहीं मिलता।

मछली को तो सुविधा है किनारे उतर जाने की, तड़प ले। हम को वह भी सुविधा नहीं है। ऐसा कोई किनारा नहीं है, जहां परमात्मा न हो। इसलिए परमात्मा के बीच रहकर हम परमात्मा से प्यासे रह जाते हैं। वही भीतर है, वही बाहर है।

कृष्ण कहते हैं, संपूर्ण इंद्रियों को जानने वाला भी वही है। भीतर से वही आंख में से देख रहा है। बाहर वही दिखाई पड़ रहा है फूल में। भीतर आंख से वही देख रहा है। और सब इंद्रियों के भीतर से जानते हुए भी सब इंद्रियों से रहित है।

इसका थोड़ा प्रयोग करें, तो ख्याल में आ जाए। क्योंकि यह कोई तर्क-निष्पत्ति नहीं है। यह कोई तर्क का वक्तव्य होता, तो हम गणित और तर्क से इसको समझ लेते। ये सभी वक्तव्य अनुभूति-निष्पन्न हैं।

थोड़ा प्रयोग कर के देखें। थोड़ा आंख बंद कर लें और भीतर देखने की कोशिश करें। आप चकित होंगे, थोड़े ही दिन में आपको भीतर देखने की कला आ जाएगी। इसका मतलब यह हुआ कि आंख जब नहीं है, बंद है, तब भी आप भीतर देख सकते हैं।

कान बंद कर लें और थोड़े दिन भीतर सुनने की कोशिश करें। एक घंटेभर कान बंद करके बैठ जाएं और सुनने की कोशिश करें भीतर। पहले तो आपको बाहर की ही बकवास सुनाई पड़ेगी। पहले तो जो आपने इकट्ठा कर रखा है कानों में संग्रह, कान उसी को मुक्त कर देंगे और वही कोलाहल सुनाई पड़ेगा। लेकिन धीरे-धीरे, धीरे-धीरे-धीरे कोलाहल शांत होता जाएगा और एक ऐसी घड़ी आएगी कि आपको भीतर का नाद सुनाई पड़ने लगेगा। वह नाद बिना कान के सुनाई पड़ता है। फिर अगर कोई आपके कान बिल्कुल भी नष्ट कर दे, तो भी वह नाद सुनाई पड़ता रहेगा।

अंधा भी आत्मा को देख सकता है। अंधा भी भीतर के अनुभव में उतर सकता है। और बहरा भी ओंकार के नाद को सुन सकता है। लेकिन हम उस दिशा में मेहनत नहीं करते। हम तो बहरे को निंदित कर देते हैं कि तुम बहरे हो; तुम्हारा जीवन व्यर्थ है।

अगर दुनिया कभी ज्यादा समझदार होगी, तो हम बहरे को सिखाएंगे वह कला, जिसमें वह भीतर का नाद सुन ले। क्योंकि बहरा हमसे ज्यादा आसानी से सुन सकता है। क्योंकि हम तो बाहर के कोलाहल में बुरी तरह उलझे होते हैं। बहरे को भीतर का नाद जल्दी सुनाई पड़ सकता है।

और अंधे को भीतर का दर्शन जल्दी हो सकता है। लेकिन हम तो निंदित कर देते हैं। क्योंकि हमारी बाहर आंखों की दुनिया है; जो बाहर नहीं देख सकता, वह अंधा है, वह जीवन से व्यर्थ है। जो बाहर नहीं सुन सकता, वह व्यर्थ है। जो बोल नहीं सकता, वह बेकार है।

लेकिन भीतर के प्रवेश के लिए मूक होना पड़ता है, बहरा होना पड़ता है और अंधा होना पड़ता है।

और जब कोई अंधा होकर भी भीतर देख लेता है, बहरा होकर भी भीतर सुन लेता है, तब हमें पता चल जाता है कि वह जो भीतर छिपा है, वह इंद्रियों से जानता है, लेकिन इंद्रियों से रहित है। वह इंद्रियों के बिना भी जान सकता है।

तथा आसक्तिरहित और गुणों से अतीत हुआ निर्गुण भी है, अपनी योगमाया से सब का धारण-पोषण करने वाला और गुणों को भोगने वाला भी है।

इन सारे वक्तव्यों में विरोधों को जोड़ने की कोशिश की गई है। वह कोशिश यह है कि हम परमात्मा को विभाजित न करें। और हम यह न कहें कि वह ऐसा है और ऐसा नहीं है। वह दोनों है। निर्गुण भी है, और गुणों को भोगने वाला भी है।

मनुष्य के मन को सबसे बड़ी कठिनाई यही है, विपरीत को जोड़ना। हमें तोड़ना तो आता है, जोड़ना बिल्कुल नहीं आता। हम तो किसी भी चीज को बड़ी आसानी से तोड़ लेते हैं। तोड़ने में हमें जरा अड़चन नहीं होती। क्योंकि बुद्धि की व्यवस्था ही तोड़ने की है। बुद्धि खंडक है। जैसे कि कोई आपने अगर कांच का प्रिज्म देखा हो; तो प्रिज्म से किरण को गुजारें प्रकाश की, वह सात टुकड़ों में टूट जाती है।

इंद्रधनुष दिखाई पड़ता है वर्षा में, वह इसीलिए दिखाई पड़ता है। वर्षा में कुछ पानी के कण हवा में टंगे रह जाते हैं। सूरज की किरण उन कणों से निकलती है; वे कण प्रिज्म का काम करते हैं। वे किरण को सात टुकड़ों में तोड़ देते हैं। सूरज की किरण तो सफेद है। लेकिन पानी के लटके कणों में से गुजरकर सात टुकड़ों में टूट जाती है। इसलिए आपको इंद्रधनुष दिखाई पड़ता है।

मनुष्य की बुद्धि भी प्रिज्म का काम करती है और चीजों को तोड़ती है। जब तक आप बुद्धि को हटाकर देखने की कला न पा जाएं, तब तक आपको इंद्रधनुष दिखाई पड़ेगा, चीजें टूटी हुई अनेक रंगों में दिखाई पड़ेंगी। अगर आप इस प्रिज्म को हटा लें, तो चीज एक रंग की हो जाती है, सफेद हो जाती है।

सफेद कोई रंग नहीं है। सफेद सब रंगों का जोड़ है। सफेद में सब रंग छिपे हैं। इसलिए स्कूल में बच्चों को सिखाया जाता है, तो एक छोटा-सा चाक बना लेते हैं। चाक में सात रंग की पंखुड़ियां लगा देते हैं। और फिर चाक को जोर से घुमाते हैं। चाक जब जोर से घूमता है, तो सात रंग नहीं दिखाई पड़ते, चाक सफेद रंग का दिखाई पड़ने लगता है। सफेद सातों रंगों का जोड़ है। सातों रंग सफेद के टूटे हुए हिस्से हैं।

जगत इंद्रधनुष है। इंद्रियों से टूटकर जगत का इंद्रधनुष निर्मित होता है। इंद्रियों को हटा दें, मन को हटा दें, बुद्धि को हटा दें, तो सारा जगत शुभ्र, एक रंग का हो जाता है। वहां सभी विरोध मिल जाते हैं। वहां काला और हरा और लाल और पीला, सब रंग एक हो जाते हैं।

यह जो कृष्ण कह रहे हैं, यह इंद्रधनुष मिटाने वाली बातें हैं। वे कह रहे हैं, निर्गुण भी वही, सगुण भी वही, सब गुण उसी के हैं; और फिर भी कोई गुण उसका नहीं है।

इस तरह की बातों को पढ़कर पश्चिम में तो लोग समझने लगे कि ये भारत के ऋषि-महर्षि, अवतार, ये थोड़े-से विक्षिप्त मालूम होते हैं। ये इस तरह के वक्तव्य देते हैं, जिनमें कोई अर्थ ही नहीं है।

क्योंकि अरस्तू ने कहा है कि ए इ.ज ए, एंड कैन नेवर बी नाट ए--अ अ है और न-अ कभी नहीं हो सकता। इस आधार पर आज की सारी शिक्षण-पद्धति विकसित हुई है कि विरोध इकट्ठे नहीं हो सकते। और यह क्या बात है, वेद, उपनिषद, गीता एक ही बात कहे चले जाते हैं कि वह दोनों है!

इसे हम समझ लें ठीक से। इसे कहने का कारण है।

आपकी बुद्धि को तोड़ने के लिए यह कहा जा रहा है, आपकी बुद्धि को समझाने के लिए नहीं। यह कृष्ण अर्जुन की बुद्धि को समझाने की कोशिश नहीं कर रहे हैं; यह अर्जुन की बुद्धि को तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। क्योंकि बुद्धि समझ भी ले, तो भी बुद्धि के पार न जाएगी। बुद्धि तो टूट जाए, तो ही अर्जुन पार जा सकता है।

यह वक्तव्य बुद्धि विनाशक है। वह जो खंड-खंड करने वाली बुद्धि है, उसको तोड़ने का उपाय है, उसे व्यर्थ करने का उपाय है। और जब दोनों विरोध एक साथ दे दिए जाएं, तो बुद्धि व्यर्थ हो जाती है। फिर सोचने को कुछ भी नहीं बचता।

थोड़ा सोचें, निर्गुण भी वही, सगुण भी वही, क्या सोचिएगा? इसलिए दो पंथ हमने निर्मित कर लिए हैं। निर्गुणवादियों ने अलग पथ निर्मित कर लिया है। उन्होंने कहा कि नहीं, वह निर्गुण है। सगुणवादियों ने अलग पंथ निर्मित कर लिया। उन्होंने कहा कि नहीं, वह सगुण है; निर्गुण कभी नहीं है।

ये दोनों बातें बुद्धिगत हैं। अगर निर्गुण है, तो सगुण नहीं हो सकता। सगुण है, तो निर्गुण नहीं हो सकता। हमने दो पंथ निर्मित कर लिए। ये दोनों पंथ अधार्मिक हैं, क्योंकि दोनों पंथ बुद्धिगत बात को मानते हैं। बुद्धि के पार नहीं जाते।

धर्म विरोध को जोड़ने वाला है। वह कहता है, वह दोनों है और दोनों नहीं है। जो व्यक्ति इस बात को समझने में राजी हो जाएगा कि दोनों है, उसको समझने की कोशिश में अपनी समझ ही छोड़ देनी पड़ेगी।

एक घटना मुझे याद आती है। झेन फकीर हुआ रिंझाई, वह खड़ा था अपने मंदिर के द्वार पर। मंदिर के ऊपर लगी हुई पताका हवा में हिल रही थी। रिंझाई के दो शिष्य मंदिर के सामने से गुजर रहे थे। उन्होंने खड़े होकर पताका की तरफ देखा। सुबह का सूरज था, हवाएं थीं, और पताका कंप रही थी, और जोर से आवाज कर रही थी।

रिंझाई के एक शिष्य ने कहा कि मैं पूछता हूं, हवा हिल रही है या पताका हिल रही है? हिल कौन रहा है? दूसरे शिष्य ने कहा, हवा हिल रही है। पहले शिष्य ने कहा कि गलत, पताका हिल रही है। बड़ा विवाद हो गया।

अब हवा और पताका जब हिलते हैं, तो कौन हिल रहा है? आसान है एक के पक्ष में वक्तव्य देना। लेकिन सच में कौन हिल रहा है? रिंझाई खड़ा सुन रहा था, वह बाहर आया। और उसने कहा कि न तो पताका हिल रही है और न हवा हिल रही है; तुम्हारे मन हिल रहे हैं।

लेकिन रिंझाई के शिष्यों को बात जमी नहीं। तो रिंझाई का बूढ़ा गुरु मौजूद था, जिंदा था। तो उन्होंने कहा, यह बात हमें जमती नहीं है। यह तो और उपद्रव हो गया। हमारा तो दो ही का विवाद था। और अब एक तीसरा वक्तव्य और हो गया कि मन हिल रहा है। पताका हिल रही है; हवा हिल रही है; मन हिल रहा है। हम बूढ़े गुरु के पास जाएंगे।

वे तीनों बूढ़े गुरु के पास गए। बूढ़े गुरु ने कहा कि जब तक तुम देखते हो, हवा हिल रही है, पताका हिल रही है, मन हिल रहा है--जब तक तुम विभाजित करते हो तीन में--तब तक तुम न समझ पाओगे। संसार हिलने का नाम है। यहां सभी कुछ हिल रहा है। और सभी चीजें अलग-अलग नहीं हिल रही हैं, सब चीजें जुड़ी हैं। हवा भी हिल रही है; पताका भी हिल रही है; मन भी हिल रहा है। तीनों जुड़े हैं। तीनों हिल रहे हैं। संसार कंपन है।

लेकिन गुरु ने कहा कि रिंझाई थोड़ा ठीक कहता है तुम दोनों से, क्योंकि न तो तुम पताका का हिलना रोक सकते हो और न हवा का हिलना रोक सकते हो, लेकिन मन का हिलना तुम रोक सकते हो। और अगर मन का हिलना रुक जाए, तो पताका भी नहीं हिलेगी, हवा भी नहीं हिलेगी; सब हिलना बंद हो जाएगा। तुम्हारा मन हिलता है, इसलिए तुम हिलने को अनुभव कर पाते हो।

हमारी जो बुद्धि है, वह विरोधों में बंटी है। वह चीजों को बांटती है, एनालाइज करती है, विश्लिष्ट करती है। वह कहती है, यह जन्म है, यह मौत है। वह कहती है, यह मित्र है, यह शत्रु है। वह कहती है, यह जहर है, यह अमृत है। वह कहती है, यह अच्छा है, और यह बुरा है। हर चीज को बांटती है।

यह कृष्ण का पूरा प्रयास यही है कि बांटो मत। जगत को, अस्तित्व को एक की तरह देखो। बांटो मत। निर्गुण भी वही, गुणों वाला भी वही है।

इस पर अगर थोड़े प्रयास करेंगे, इस तरह की विपरीत बातों को अगर एक साथ आंख बंद करके ध्यान करेंगे, तो बहुत आनंद आएगा। मन तो कहेगा कि एक कुछ भी तय कर लो जल्दी, या तो निर्गुण या सगुण।

इसे जरा प्रयोग करके देखें। आंख बंद करके कभी बैठ जाएं अपने मंदिर में, अपनी मस्जिद में और कहें कि वह दोनों है। और फिर अपने से पूछें कि क्या राजी हैं? मन कहेगा कि नहीं, दोनों नहीं हो सकते। एक कुछ भी हो सकता है। मन फौरन कहेगा कि या तो मान लो कि सगुण है, या मान लो कि निर्गुण है।

तो मुसलमान मान लिए कि निर्गुण है। तो मूर्तियां तोड़ते फिरे, क्योंकि सगुण को नहीं बचने देना है। उनको लगा कि जब निर्गुण है, तो फिर सगुण को तोड़ देना है।

एक आदमी मूर्ति-पूजा कर रहा है। वह कहता है, भगवान सगुण है, इसलिए हम मूर्ति बनाते हैं। एक आदमी कहता है, वह निर्गुण है, इसलिए हम मूर्ति तोड़ते हैं। लेकिन दोनों मूर्ति की तरफ ध्यान लगाए हुए हैं, एक तोड़ने के लिए, एक बनाने के लिए।

मुसलमानों से ज्यादा मूर्ति-पूजक खोजना बहुत मुश्किल है, क्योंकि मूर्ति को तोड़ना भी उसके ही साथ संबंधित हो जाना है। आखिर मूर्ति पर इतना ध्यान देने की जरूरत क्या है! अगर वह निर्गुण है और सगुण नहीं है, तो मूर्ति को तोड़ने से क्या फायदा है? कोई अर्थ नहीं है।

लेकिन आदमी का मन ऐसा है कि वह एक पक्ष में हो जाए, तो दूसरे पक्ष के खिलाफ कोशिश करता है; तो ही एक पक्ष में रह सकता है। डर लगता है कि कहीं दूसरा पक्ष ठीक न हो; तो मिटा दो दूसरे पक्ष को।

लेकिन कुछ मिट सकता नहीं। पत्थर की मूर्तियां टूट सकती हैं। ये आदमी भी सब मूर्तियां हैं। इनको कैसे तोड़िएगा? वृक्ष भी एक मूर्ति है। पत्थर को भी तोड़ दो, तो वह जो टूटा हुआ पत्थर है, वह भी मूर्ति है; वह भी एक मूर्त रूप है; वह भी आकार है। आकार कैसे मिटाइएगा?

अस्तित्व में दोनों समाविष्ट हैं, निराकार भी, आकार भी। न तो बनाने की कोई जरूरत है, न मिटाने की कोई जरूरत है। बनाने और मिटाने का अगर कोई काम ही करना हो, तो भीतर करना जरूरी है कि भीतर इस मन को इस हालत में लाना जरूरी है कि जहां यह दोनों विरोधों को एक साथ स्वीकार कर ले।

जैसे ही दोनों विरोध एक साथ स्वीकार होते हैं, मन गिर जाता है और समाप्त हो जाता है। और अमन की स्थिति पैदा हो जाती है। वह अमनी स्थिति ही समाधि है।

यह सारा प्रयोजन कृष्ण का इतना ही है कि आप दोनों को एक साथ स्वीकार करने को राजी हो जाएं। राजी होते ही आप रूपांतरित हो जाएंगे। और जब तक आप राजी न होंगे और एक पक्ष में झुकेंगे, तब तक आप बदल नहीं सकते हैं, तब तक आप द्वंद्व में ही घिरे रहेंगे।

दो में से एक को चुनना द्वैत को समर्थन करना है। दोनों को एक साथ स्वीकार कर लेना, अद्वैत की उपलब्धि है।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई उठे न बीच से। कीर्तन पूरा हो जाए, फिर जाएं। कीर्तन के बाद दो मिनट सिर्फ संगीत चलता है, उस वक्त भी न उठें। एक पांच मिनट पूरा बैठे रहें।

छठवां प्रवचन

स्वयं को बदलो

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।। 15।।
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।। 16।।
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। 17।।

तथा वह परमात्मा चराचर सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचर रूप भी वही है। और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है अर्थात जानने में नहीं आने वाला है। तथा अति समीप में और अति दूर में भी स्थित वही है।

और वह विभागरहित एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर संपूर्ण भूतों में पृथक-पृथक के सदृश स्थित प्रतीत होता है। तथा वह जानने योग्य परमात्मा भूतों का धारण-पोषण करने वाला और संहार करने वाला तथा सब का उत्पन्न करने वाला है।

और वह ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जाता है। तथा वह परमात्मा बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में स्थित है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, आप बोलते हैं, तो ठीक लगता है। कभी-कभी कोई शांत ध्यान का प्रयोग-सूत्र भी दे दिया करते हैं; यहां तक तो ठीक है। लेकिन जब आपके कीर्तन का प्रयोग चलता है, तो मन में वैसा भाव आता ही नहीं कि जैसा मंच पर सभी लोग इतनी तेजी से नाचा करते हैं!

तीन बातें समझनी चाहिए। एक, बोला हुआ ठीक लगना बहुत मूल्य का नहीं है। बोला हुआ ठीक लगता है, यह सिर्फ मनोरंजन हो सकता है, यह केवल एक बौद्धिक व्यायाम हो सकता है। या यह भी हो सकता है कि आप जो सुनना चाहते हैं, उससे तालमेल बैठ जाता है, इसलिए रसपूर्ण लगता है। यह भी हो सकता है कि इतनी देर मन बोलने में उलझ जाता है, तो आपकी चिंताएं, परेशानियां, अशांति भूल जाती है। बहुत कारण हो सकते हैं।

इसलिए भी अच्छा लग सकता है बोलना कि गीता आपको प्रीतिकर हो, आपके धर्म का ग्रंथ हो, तो आपके अहंकार को पोषण मिलता हो कि गीता ठीक है। आपकी सांप्रदायिक संस्कार वाली मनःस्थिति को सहारा मिलता हो कि हमारा मानना बिल्कुल ठीक है, गीता महान ग्रंथ है।

लेकिन सिर्फ बोलना ठीक लगे, तो कोई भी लाभ नहीं है; नुकसान भी हो सकता है। कुछ लोग शब्दों में ही जीते हैं। जीवनभर पढ़ते हैं, सुनते हैं, और कभी कुछ करते नहीं। ऐसे लोग जीवन को ऐसे ही गंवा देंगे, और मरते समय सिवाय पछतावे के कुछ भी हाथ न रहेगा। क्योंकि मैंने क्या कहा गीता के संबंध में, वह मरते वक्त

काम आने वाला नहीं है। आपने क्या किया! सुना, वह मूल्य का नहीं है। क्या किया, वही मूल्य का है। लेकिन करने में कठिनाई मालूम पड़ती है।

सुनने में आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता। मैं बोलता हूं, आप सुनते हैं; करना आपको कुछ भी नहीं पड़ता। सुनने में आपको करना ही क्या पड़ता है? विश्राम करना पड़ता है। करने में आपसे शुरुआत होती है। और जैसे ही कुछ करने की बात आती है, वैसे ही तकलीफ शुरू हो जाती है।

उन मित्र ने भी पूछा है कि कभी-कभी आप कोई ध्यान का शांत प्रयोग-सूत्र भी दे दिया करते हैं, यहां तक तो ठीक है... ।

क्योंकि वह प्रयोग भी उन्होंने किया नहीं है। वह भी मैं दे दिया करता हूं; यहां तक ठीक है। वह शांत प्रयोग भी उन्होंने किया नहीं है। वह भी सुन लिया है। कीर्तन में अड़चन आती है, क्योंकि यहां कुछ लोग करते हैं।

अब यहां कुछ लोग करते हैं, तो उससे बचने के दो उपाय हैं। या तो आप समझें कि ये पागल हैं, तब आपको कोई अड़चन न होगी। इनका दिमाग खराब हो गया है, हिप्नोटाइज्ड हो गए हैं, या नाटक कर रहे हैं; बनकर कर रहे हैं; या कुछ पैसे ले लिए होंगे, इसलिए कर रहे हैं। ऐसा सोच लें, तो आपको सुविधा रहेगी, सांत्वना रहेगी। आपको करने की फिर कोई जरूरत नहीं है।

कुछ लोग करने से इस तरह बचते हैं, वे अपने मन को समझा लेते हैं कि कुछ गलत हो रहा है। इसलिए फिर खुद को करने की तो कोई जरूरत नहीं रह जाती।

तकलीफ तो उन लोगों को होती है, जिनको यह भी नहीं लगता कि गलत हो रहा है और करने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते। ये मित्र उसी वर्ग में हैं। उनको लगता है कि ठीक हो रहा है। लेकिन इतना लगना काफी नहीं है। करने की हिम्मत बड़ी दूसरी बात है। क्योंकि जैसे ही आप करना शुरू करते हैं कुछ, बहुत-से परिणाम होंगे।

पहला तो यह साहस करना पड़ेगा, पागल होने का साहस। क्योंकि धर्म साधारण आदमी करता नहीं, सुनता है। और जब भी धर्म को कोई करने लगता है, तो बाकी लोग उसको पागल समझते हैं। कबीर को भी लोग पागल समझते हैं। मीरा को भी लोग पागल समझते हैं। बुद्ध को भी लोग पागल समझते हैं। क्राइस्ट को भी लोग पागल समझते हैं। यह तो बहुत बाद में लोग उनको समझ पाते हैं कि वे पागल नहीं हैं। यह भी वे तभी समझ पाते हैं, जब बात इतनी दूर हो जाती है कि उनसे सीधा संबंध नहीं रह जाता।

आप भी जब पहली दफा धर्म के जीवन में उतरेंगे, तो आस-पास के लोग आपको पागल समझना शुरू कर देंगे। संसार ने यह इंतजाम किया हुआ है कि उसके जाल के बाहर कोई जाए, तो उसके मार्ग में सब तरह की बाधाएं खड़ी करनी हैं। और यह उचित भी है, क्योंकि अगर सभी लोगों को धर्म की तरफ जाने में आसानी दी जाए, तो बाकी लोग जो धार्मिक न होंगे, उनको बड़ा कष्ट होना शुरू हो जाएगा। अपने कष्ट से बचने के लिए वे धार्मिक व्यक्ति को पागल करार देकर सुविधा में रहते हैं। वे समझ लेते हैं कि दिमाग खराब हो गया है। आसानी हो जाती है।

आप कृष्ण को पूजते भला हों, लेकिन कृष्ण अगर आपको मिल जाएं, तो आप उनको भी पागल ही समझेंगे। वे तो मिलते नहीं; मूर्ति को आप पूजते रहते हैं। असली कृष्ण खड़े हो जाएं, तो शायद आप घर में टिकने भी न दें। शायद आप रात घर में ठहरने भी न दें। क्योंकि इस आदमी का क्या भरोसा! हो सकता है आपकी पत्नी इसके लगाव में पड़ जाए, सखी बन जाए, गोपी हो जाए। तो आप घबड़ाएंगे।

जीवित कृष्ण से तो आप परेशान हो जाएंगे। मरे हुए कृष्ण को पूजना बिल्कुल आसान है। क्योंकि मरे हुए कृष्ण से आपकी जिंदगी में कोई फर्क नहीं होता।

जीसस को मानने वाले लोगों को भी अगर जीसस मिल जाएं, तो वे उनको फिर सूली पर चढ़ा देंगे। क्योंकि वह आदमी अब भी वैसा ही खतरनाक होगा।

समय बहुत जब बीत जाता है और कथाएं हाथ में रह जाती हैं, जिनको सुनने और पढ़ने का मजा होता है, तब धर्म की अड़चन मिट जाती है।

तो यहां जब कुछ लोग कीर्तन कर रहे हैं, तो वे लोग तो हिम्मत करके पागल हो रहे हैं। अगर आपको लगता है कि ठीक कर रहे हैं, तो सम्मिलित हो जाएं। सम्मिलित होने में आपको भय छोड़ना पड़ेगा। लोग क्या कहेंगे, यह पहला भय है; और गहरे से गहरा भय है। लोग क्या समझेंगे?

एक महिला मेरे पास कुछ ही दिन पहले आई। और उसने मुझे कहा कि मेरे पति ने कहा है कि सुनना तो जरूर, लेकिन भूलकर कभी कीर्तन में सम्मिलित मत होना। तो मैंने उससे पूछा कि पति को क्या फिक्र है तेरे कीर्तन में सम्मिलित होने से? तो उसने कहा, पति मेरे डाक्टर हैं; प्रतिष्ठा वाले हैं। वे बोले कि अगर तू कीर्तन में सम्मिलित हो जाए, तो लोग मुझे परेशान करेंगे कि आपकी पत्नी को क्या हो गया! तो तू और सब करना, लेकिन कीर्तन भर में सम्मिलित मत होना।

घर से लोग समझाकर भेजते हैं कि सुन लेना, करना भर मत कुछ, क्योंकि करने में खतरा है। सुनने तक बात बिल्कुल ठीक है। करने में अड़चन मालूम होती है, क्योंकि आप पागल होने के लिए तैयार नहीं हैं। और जब तक आप पागल होने के लिए तैयार नहीं हैं, तब तक धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है।

तो सुनें मजे से; फिर चिंता में मत पड़ें। जिस दिन भी करेंगे, उस दिन आपको दूसरे क्या कहेंगे, इसकी फिक्र छोड़ देनी पड़ेगी।

दूसरे बहुत-सी बातें कहेंगे। वे आपके खिलाफ नहीं कह रहे हैं, वे अपनी आत्म-रक्षा कर रहे हैं। क्योंकि अगर आपको ठीक मानें, तो वे गलत लगेंगे। इसलिए उपाय एक ही है कि आप गलत हैं, तो वे अपने को ठीक मान सकते हैं। और निश्चित ही उनकी संख्या ज्यादा है। आपको गलत होने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

बड़े से बड़ा साहस समूह के मत से ऊपर उठना है। लोग क्या कहेंगे, यह फिक्र छोड़ देनी है। इस फिक्र के छोड़ते ही आपके भीतर भी रस का संचार हो जाएगा। यही द्वार बांधा हुआ है, इसी से दरवाजा रुका हुआ है। यह फिक्र छोड़ते ही से आपके पैर में भी थिरकन आ जाएगी, और आपका हृदय भी नाचने लगेगा, और आप भी गा सकेंगे।

और अगर यह फिक्र छोड़कर आप एक बार भी गा सके और नाच सके, तो आप कहेंगे कि अब दुनिया की मुझे कोई चिंता नहीं है। एक बार आपको स्वाद मिल जाए किसी और लोक का, तो फिर कठिनाई नहीं है लोगों की फिक्र छोड़ने में।

कठिनाई तो अभी है कि उसका कोई स्वाद भी नहीं है, जिसे पाना है। और लोगों से जो प्रतिष्ठा मिलती है, उसका स्वाद है, जिसको छोड़ना है। जिसको छोड़ना है, उसमें रस है; और जिसको पाना है, उसका हमें कोई रस नहीं है। इसलिए डर लगता है। हाथ की आधी रोटी भी, मिलने वाली स्वर्ग में पूरी रोटी से ज्यादा मालूम पड़ती है। स्वाभाविक है; सीधा गणित है।

लेकिन अगर इस दशा में, जिसमें आप हैं, आप सोचते हैं सब ठीक है, तो मैं आपसे नहीं कहता कि आप कोई बदलाहट करें। और आपको लगता हो कि सब गलत है, जिस हालत में आप हैं, तो फिर हिम्मत करें और थोड़े परिवर्तन की खोज करें।

शांत प्रयोग करना हो, शांत प्रयोग करें। सक्रिय प्रयोग करना हो, सक्रिय प्रयोग करें। लेकिन कुछ करें।

अधिक लोग कहते हैं कि शांत प्रयोग ही ठीक है। क्योंकि अकेले में आंख बंद करके बैठ जाएंगे, किसी को पता तो नहीं चलेगा। लेकिन अक्सर शांत प्रयोग सफल नहीं होता। क्योंकि आप भीतर इतने अशांत हैं कि जब आप आंख बंद करके बैठते हैं, तो सिवाय अशांति के भीतर और कुछ भी नहीं होता। शांति तो नाम को भी नहीं होती। वह जो भीतर अशांति है, वह चक्कर जोर से मारने लगती है। जब आप शांत होकर बैठते हैं, तब आपको सिवाय भीतर के उपद्रव के और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

इसलिए उचित तो यह है कि वह जो भीतर का उपद्रव है, उसे भी बाहर निकल जाने दें। हिम्मत से उसको भी बह जाने दें। उसके बह जाने पर, जैसे तूफान के बाद एक शांति आ जाती है, वैसी शांति आपको अनुभव होगी। तूफान तो धीरे-धीरे विलीन हो जाएगा और शांति स्थिर हो जाएगी।

यह कीर्तन का प्रयोग कैथार्सिस है। इसमें जो नाच रहे हैं लोग, कूद रहे हैं लोग, ये उनके भीतर के वेग हैं, जो निकल रहे हैं। इन वेगों के निकल जाने के बाद भीतर परम शून्यता का अनुभव होता है। उसी शून्यता से द्वार मिलता है और हम अनंत की यात्रा पर निकल जाते हैं।

लेकिन कुछ करें। कम से कम शांत प्रयोग ही करें। अभी शांत करेंगे, तो कभी सक्रिय भी करने की हिम्मत आ जाएगी। लेकिन सुनने पर भरोसा मत रखें। अगर सुनने से मुक्ति होती होती, तो सभी की हो गई होती। सभी लोग काफी सुन चुके हैं। कुछ करना होगा। करने से जीवन बदलेगा और क्रांति होगी।

मैं जो बोलता भी हूं, तो प्रयोजन बोलना नहीं है। बोलना तो सिर्फ बहाना है, ताकि आपको करने की तरफ ले जा सकूं। और अगर आप बोलने से ही खुश होकर चले जाते हैं, तो प्रयोजन व्यर्थ गया। वह लक्ष्य नहीं था।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि गीता में बार-बार कृष्ण का कहना है कि मैं ही परम ब्रह्म हूं। सब छोड़कर मेरी शरण आ जाओ, मैं तुम्हें मुक्त करूंगा। लेकिन यह वचन अन्य-धर्मी स्वीकार नहीं करते। और आपने कहा है कि ठीक जीवन जीने की कला ही गीता है। फिर भी अन्य-धर्मी कृष्ण को परमात्मा मानने को राजी नहीं हैं। और कहते हैं, गीता वैष्णव संप्रदाय का धार्मिक ग्रंथ है।

अन्य-धर्मियों की फिक्र क्या है आपको? और आप अन्य-धर्मियों का कौन-सा ग्रंथ मानने को तैयार हैं? आप कुरान पढ़ते हैं? और आप मानने को तैयार हैं कि कुरान परमात्मा का वचन है? आप बाइबिल पढ़ते हैं? और आप मानने को तैयार हैं कि जीसस ईश्वर का पुत्र है? और अगर आप मानने को तैयार नहीं हैं, तो आप अपने कृष्ण को किसी दूसरे को मनाने के लिए क्यों परेशान हैं!

और फिर दूसरे से प्रयोजन क्या है? आपको कृष्ण की बात ठीक लगती है, उसे जीवन में उतारें। अपने को बदलें। जिसको मोहम्मद की बात ठीक लगती हो, वह मोहम्मद की बात को जीवन में उतार ले, और अपने को बदल ले। जब आप दोनों बदल चुके होंगे, तो दोनों एक से होंगे; जरा भी फर्क न होगा।

लेकिन गीता वाले को फिक्र है कि किसी तरह मुसलमान को राजी कर ले कि गीता महान ग्रंथ है।

इससे क्या हल है? तुम्हें तो पता है कि गीता महान ग्रंथ है और तुम्हारी जिंदगी में कुछ भी नहीं हो रहा, तो मुसलमान भी मान लेगा कि गीता महान ग्रंथ है, तो क्या फर्क हो जाएगा? बीस करोड़ हिंदू तो मान रहे हैं, कुछ फर्क तो हो नहीं रहा है। तुम तो माने ही बैठे हो कि गीता महान गं्रथ है और कृष्ण परम ब्रह्म हैं, तो तुम्हारे जीवन में कुछ नहीं हो रहा, तो तुम दूसरे की क्या फिक्र कर रहे हो!

दूसरे की हमें चिंता है नहीं। असल में हमें खुद ही भय है और शक है कि कृष्ण भगवान हैं या नहीं! और जब तक कोई शक करने वाला मौजूद है, तब तक हमारे शक को भी हवा मिलती है।

अब मुसलमान कहता है कि हम नहीं मानते, तुम्हारी गीता में कुछ सार है; तो हमें खुद ही डर पैदा होता है कि कहीं यह ठीक तो नहीं है। इससे हम पहले इसको राजी करने को उत्सुक हो जाते हैं।

ध्यान रहे, जब भी आदमी किसी दूसरे को राजी करने में बहुत श्रम उठाता है, तो उसका मतलब यह है कि वह खुद संदिग्ध है। वह जब तक सबको राजी न कर लेगा, तब तक उसका खुद भी मन राजी नहीं है। वह खुद भी डरा हुआ है कि बात पक्की है या नहीं! क्योंकि इतने लोग शक करते हैं।

बीस करोड़ हिंदू हैं, तो कोई अस्सी करोड़ मुसलमान हैं। तो बीस करोड़ हिंदू जिसको मानते हैं, अस्सी करोड़ मुसलमान तो इनकार करते हैं। कोई एक अरब ईसाई हैं, वे इनकार करते हैं। कोई अस्सी करोड़ बौद्ध हैं, वे इनकार करते हैं। तो सारी दुनिया तो इनकार करती है बीस करोड़ हिंदुओं को छोड़कर!

तो शक पैदा होता है कि यह गीता अगर सच में परम ब्रह्म का वचन होता, तो साढ़े तीन, चार अरब आदमी सभी स्वीकार करते। दो-चार न करते, तो हम समझ लेते कि दिमाग फिरा है। यहां तो हालत उलटी है। दो-चार स्वीकार करते हैं, बाकी तो स्वीकार नहीं कर रहे हैं। तो भीतर संदेह पैदा होता है। उस संदेह से ऐसे सवाल उठते हैं।

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कौन स्वीकार करता है या कौन स्वीकार नहीं करता। तुम्हारी जिंदगी बदल जाए, तो बात सत्य है। तुम कृष्ण की बात मानकर अपनी जिंदगी को बदल लो। तुम अकेले काफी हो। कोई पूरी दुनिया में स्वीकार न करे, लेकिन तुम अकेले अगर अपनी जिंदगी में स्वर्ण ले आते हो और कचरा जल जाता है, तो कृष्ण की बात सही है। सारी दुनिया इनकार करती रहे, तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता।

लेकिन खुद तो हम कोई परिवर्तन लाना नहीं चाहते; हम सब दूसरे को कनवर्ट करने में लगे हैं। हम जैसे अजीब लोग खोजने मुश्किल हैं। हमारी हालत ऐसी है कि जैसे घर में हमारे कुआं हो, जिसमें अमृत भरा हो। हम तो उसको कभी नहीं पीते, हम पड़ोसियों को समझाते हैं कि आओ, हमारे पास अमृत का कुआं है, उसको पीओ। और पड़ोसी भी उसको कैसे माने, क्योंकि हमने खुद ही अमृत का कोई स्वाद नहीं लिया है।

अगर आपके घर में अमृत का कुआं होता, तो पहले आप पीते, फिर दूसरे की फिक्र करने जाते। और सच तो यह है कि अगर अमृत आपने पी लिया होता और आप अमर हो गए होते और मृत्यु आपके जीवन से मिट गई होती, तो किसी को समझाने जाने की जरूरत नहीं थी। पड़ोसी खुद ही पूछने आता कि मामला क्या है! तुम ऐसे अमृत आनंद को उपलब्ध कैसे हो गए? क्या पीते हो? क्या खाते हो? क्या राज है तुम्हारा? तुम्हें पड़ोसी के पास कहने की जरूरत न होती।

तुम्हें जरूरत इसलिए पड़ती है कि तुम्हारे कुएं पर तुम्हें खुद ही भरोसा नहीं है। तुमने खुद ही कभी उसका पानी पीकर नहीं देखा। तुम पहले पड़ोसी को पिलाने की कोशिश में लगे हो। शायद तुम्हें डर है कि पता नहीं जहर है या अमृत। पहले पड़ोसी पर देख लें परिणाम क्या होता है, फिर अपना सोचेंगे।

क्या फिक्र है तुम्हें? अपने शास्त्र को दूसरों पर लादने की चिंता क्यों है? अपने को बदलो। तुम्हारी बदलाहट दूसरों को दिखाई पड़ेगी और उन्हें लगेगा कि कुछ सार है, तो वे भी तुम्हारे शास्त्र में से शायद कुछ ले लें। लेकिन लें या न लें, इसे लक्ष्य बनाना उचित नहीं है।

सभी लोग ऐसा सोचते हैं। मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं कि गीता इतना महान ग्रंथ है, मुसलमान क्यों नहीं मानता? ईसाई क्यों नहीं मानता?

महान ग्रंथ उनके पास भी हैं। और गीता से इंचभर कम महान नहीं हैं। लेकिन महान ग्रंथ से तुमको भी मतलब नहीं है, उनको भी मतलब नहीं है।

तुम जब गीता को महान कहते हो, तो तुम यह मत सोचना कि तुम्हें पता है कि गीता महान है। गीता को तुम महान सिर्फ इसलिए कहते हो कि गीता तुम्हारी है। और गीता को महान कहने से तुम्हारे अहंकार को रस आता है। गीता महान है, इसके पीछे यह छिपा है कि मैं महान हूं, क्योंकि मैं गीता को मानने वाला हूं।

कुरान महान है, तो मुसलमान सोचता है, मैं महान हूं। बाइबिल महान है, तो ईसाई सोचता है, मैं महान हूं।

अगर कोई कह दे, गीता महान नहीं है, तो तुम्हें चोट लगती है। वह इसलिए नहीं कि तुम्हें गीता का पता है। वह चोट इसलिए लगती है कि तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है।

हमारे अहंकार के बड़े जाल हैं। हम कहते हैं, भारत महान देश है। भारत-वारत से किसी को लेना-देना नहीं है। कि चीन महान देश है। मतलब हमें अपने से है। भारत इसलिए महान देश है, क्योंकि आप जैसा महान व्यक्ति भारत में पैदा हुआ। और कोई कारण नहीं है। अगर आप इंग्लैंड में पैदा होते, तो इंग्लैंड महान देश होता। आप जर्मनी में पैदा होते, तो जर्मनी महान देश होता। जहां आप पैदा होते, वही देश महान होने वाला था।

कोई जमीन पर एकाध देश है, जो यह कहता हो, हम महान नहीं हैं? कोई एकाध जाति है, जो कहती हो, हम महान नहीं हैं? कोई एकाध धर्म है, जो कहता हो, हम महान नहीं हैं?

सब अहंकार की घोषणाएं हैं। धर्म का इससे कोई भी संबंध नहीं है।

पर हम अहंकार की सीधी घोषणा नहीं कर सकते। अगर कोई आदमी खड़े होकर कहे कि मैं महान हूं, तो हम सबको एतराज होगा। सीधी घोषणा खतरनाक है। क्योंकि सीधी घोषणा से दूसरों के अहंकार को चोट लगती है। क्योंकि अगर मैं कहूं कि मैं महान हूं, तो फिर आप? आप तत्क्षण छोटे हो जाएंगे। तो आप फौरन इनकार करेंगे कि यह बात नहीं मानी जा सकती। आपका दिमाग खराब है।

लेकिन मैं कहता हूं, हिंदू धर्म महान है। हिंदुओं के बीच तो यह बात स्वीकार कर ली जाएगी, क्योंकि मेरे अहंकार से किसी के अहंकार की टक्कर नहीं होती। हिंदुओं के अहंकार को भी मेरे अहंकार के साथ पुष्टि मिलती है। हां, मुसलमान इनकार करेगा।

लेकिन अगर मैं कहूं, भारत महान है। तो भारत में रहने वाले सभी लोग स्वीकार कर लेंगे, क्योंकि उनके अहंकार को चोट नहीं लगती। चीन के अहंकार को चोट लगेगी, जर्मनी के अहंकार को चोट लगेगी।

अगर कहीं हमने किसी दिन मंगल पर या किसी और तारे पर मनुष्यता खोज ली या मनुष्य जैसे प्राणी खोज लिए, तो हम घोषणा कर सकेंगे, पृथ्वी महान है। फिर पृथ्वी पर किसी को चोट नहीं लगेगी। लेकिन मंगल ग्रह पर जो आदमी होगा, उसको फौरन चोट लगेगी।

ये सारी घोषणाएं छिपे हुए अहंकार की घोषणाएं हैं, परोक्ष घोषणाएं हैं। आपके कृष्ण परम ब्रह्म हैं, तो जीसस परम ब्रह्म क्यों नहीं हैं? वे भी परम ब्रह्म हैं। और जीसस ही क्यों? परम ब्रह्म तो हर एक के भीतर छिपा

है। किसी के भीतर प्रकट हो गया है और किसी के भीतर अप्रकट है। सच तो यह है कि परम ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लेकिन बड़ी कठिनाई है।

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है... । बर्ट्रेंड रसेल तो विचारशील से विचारशील व्यक्तियों में एक है। और जिसका पूरा भरोसा बुद्धि और तर्क पर है। उसने भी लिखा है कि जब मैं सोचता हूं, तो मुझे लगता है कि बुद्ध से महान व्यक्ति जमीन पर दूसरा नहीं हुआ। जब मैं सोचता हूं निष्पक्ष भाव से, तो मुझे लगता है, बुद्ध से महान व्यक्ति जमीन पर दूसरा नहीं हुआ। लेकिन मेरे भीतर छिपा हुआ ईसाई, जिसको मैं वर्षों पहले त्याग कर चुका हूं... ।

क्योंकि बर्ट्रेंड रसेल ने ईसाइयत का त्याग कर दिया था। उसने एक बहुत अदभुत किताब लिखी है, जिसका नाम है, व्हाय आई एम नाट ए क्रिश्चियन--मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? लेकिन बचपन तो ईसाइयत में बड़ा हुआ था। मां-बाप ने धर्म तो ईसाइयत दिया था; संस्कार तो ईसाइयत के थे। फिर सोच-विचार करके ईसाई धर्म का त्याग कर दिया।

तब भी बर्ट्रेंड रसेल कहता है कि मैं ऊपर से विचार करके कहता हूं कि बुद्ध से महान कोई भी नहीं। लेकिन भीतर मेरे हृदय में कोई कहता है कि बुद्ध कितने ही महान हों, लेकिन जीसस से महान हो नहीं सकते। भीतर कोने में कोई छिपा हुआ कहता है। और ज्यादा से ज्यादा मैं इतना ही कर सकता हूं कि बुद्ध और जीसस दोनों समान हैं। बड़ा-छोटा कोई भी नहीं, ज्यादा से ज्यादा। लेकिन जीसस को बुद्ध से नीचे रखना मुश्किल हो जाता है।

इसलिए नहीं कि बुद्ध से नीचे हैं या ऊंचे हैं, ये बातें मूढ़तापूर्ण हैं। जो व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गया, उसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। न वह किसी से नीचे है और न किसी से ऊपर है। असल में ज्ञान को उपलब्ध होते ही व्यक्ति तुलना के बाहर हो जाता है।

बुद्ध और कृष्ण और महावीर और क्राइस्ट किसी से ऊंचे-नीचे नहीं हैं। यह ऊंचे-नीचे की भाषा ही उस लोक में व्यर्थ है। यह तो हमारी भाषा है। यहां हम ऊंचे-नीचे होते हैं। जैसे ही अहंकार छूट गया। कौन ऊंचा होगा और कौन नीचा होगा? क्योंकि ऊंचा-नीचा अहंकार की तौल है।

बुद्ध भी अहंकारशून्य हैं और क्राइस्ट भी अहंकारशून्य हैं और कृष्ण भी, तो ऊंचा-नीचा कौन होगा! ऊंचा-नीचा तभी तक कोई हो सकता है, जब तक अहंकार का भाव है।

तो यह आप जो कहते हैं कि कृष्ण ब्रह्म हैं, ऐसा दूसरे धर्म के लोग क्यों नहीं मानते? इसीलिए नहीं मानते हैं कि इससे उनके अहंकार की कोई तृप्ति नहीं होती; और आप इसीलिए मानते हैं कि आपके अहंकार की तृप्ति होती है। बहुत दूर के धर्मों को तो छोड़ दें, जैन भी राजी नहीं हैं आपसे मानने को, जो कि बिल्कुल आपके पड़ोस में रह रहा है। और आपके और उसके धर्म में कोई बुनियादी फर्क नहीं दिखता, वह भी मानने को राजी नहीं है। जैन को तो छोड़ दें, राम-भक्त, जो कि हिंदू है, वह भी इस बात को मानने को राजी नहीं है।

असल में हम मानते उसी बात को हैं, जिससे हमारा अहंकार खिलता है। जिससे हमारे अहंकार में खिलावट नहीं आती, हम मानते-वानते नहीं हैं।

यह धार्मिक आदमी की चिंता ही नहीं है लेकिन। धार्मिक आदमी इसकी फिक्र करता है कि जो मुझे ठीक लगता है, उस रास्ते से चलूं और अपने को बदल लूं, और नए जीवन को उपलब्ध हो जाऊं। वह रास्ता कृष्ण के मार्ग से मिले, तो ठीक; और क्राइस्ट के मार्ग से मिले, तो ठीक। मार्गों की चिंता ही नासमझ करते हैं। मंजिल की चिंता!

लेकिन कुछ लोग होते हैं, आम नहीं खाते, गुठलियां गिनते हैं। इस तरह के लोग उसी कोटि में हैं। उन्हें फुर्सत ही नहीं है आम को चखने की। वे गुठलियां गिनते रहते हैं!

इन मित्र ने यह भी पूछा है कि क्या निराकार परमात्मा ही कृष्ण नहीं हैं?

निराकार परमात्मा सभी के भीतर है। कृष्ण के भीतर भी है। कृष्ण के भीतर वह ज्योति पूरी प्रकट होकर दिखाई पड़ रही है, क्योंकि सारे परदे गिर गए हैं। आपके भीतर परदे हैं, इसलिए वह ज्योति दिखाई नहीं पड़ रही है। ज्योति में कोई अंतर नहीं है। किसी का दीया ढंका है और किसी का दीया उघड़ा है। बस, उतना ही फर्क है। दीए में कोई फर्क नहीं है, ज्योति में कोई फर्क नहीं है।

कृष्ण में और आपमें जो अंतर है, वह भीतर की ज्योति का नहीं है, बाहर के आवरण का है।

अभी भी कई भक्तों को और संतों को कृष्ण का साक्षात दर्शन होता है। चौबीस घंटे मुझे भी कृष्ण के सिवाय दूसरा कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तो निराकार परमात्मा भक्तों के लिए साकार रूप लेते हैं, क्या यह सच है?

आप भाव से जिसका भी स्मरण करते हैं, वह आपके लिए रूपवान हो जाता है, वह आपके लिए रूपायित हो जाता है। आपका भाव निर्माता है, स्रष्टा है। भाव सृजनात्मक है। कोई कृष्ण आ जाते हैं, ऐसा नहीं है; कोई क्राइस्ट आ जाते हैं, ऐसा नहीं है। लेकिन भाव क्रिएटिव है। आप जब गहन भाव से स्मरण करते हैं, तो आपकी चेतना ही उस रूप की हो जाती है जिस रूप का आपने स्मरण किया है। आप कृष्णमय हो जाते हैं, अपने ही भाव के कारण। कोई क्राइस्टमय हो जाता है, अपने ही भाव के कारण।

आपने शायद सुना होगा, ईसाई फकीर हैं बहुत-से, आज भी जीवित हैं, जिनको स्टिगमेटा निकलता है। स्टिगमेटा है, जहां-जहां जीसस को खीले ठोंके गए थे हाथों में। हाथ में, पैर में जीसस को खीले ठोंककर सूली पर लटकाया गया था। तो ऐसे ईसाई फकीर हैं, जो इतने जीससमय हो जाते हैं कि शुक्रवार के दिन, जिस दिन जीसस को सूली हुई थी, उस दिन उनके हाथ और पैर में छेद हो जाते हैं और खून बहने लगता है।

इसके तो वैज्ञानिक परीक्षण हुए हैं। खुले समूह के सामने फकीर आंख बंद किए बैठा रहा है और ठीक समय पर--डाक्टरों ने सारी परीक्षा कर ली है--और उसके हाथ में से खून बहना शुरू हो जाता है। और ठीक चौबीस घंटे बाद खून की धारा बंद हो जाती है, घाव पुर जाता है। इतना भाव से एक हो जाता है कि मैं जीसस हूं, कि जीसस के शरीर पर जो घटना घटी थी, वह उसके शरीर पर घटनी शुरू हो जाती है।

इसलिए जीसस के भक्त को जीसस दिखाई पड़ते हैं। कृष्ण के भक्त को कृष्ण दिखाई पड़ते हैं। राम के भक्त को राम दिखाई पड़ते हैं। कृष्ण के भक्त को क्राइस्ट कभी दिखाई नहीं पड़ते। क्राइस्ट के भक्त को कृष्ण कभी नहीं दिखाई पड़ते। भाव जब सघन हो जाता है, तो आपकी चेतना रूपांतरित हो जाती है, उसी भाव में एक हो जाती है।

वह जो कृष्ण आपको दिखाई पड़ते हैं, वह आपके ही भीतर की ज्योति है, जो आपको बाहर दिखाई पड़ रही है भाव के कारण। कोई कृष्ण वहां खड़े हुए नहीं हैं।

इसलिए आप दूसरे को नहीं दिखा सकते हैं कि मुझे कृष्ण दिखाई पड़ रहे हैं, तो आप दस मुहल्ले के लोगों को बुला लें और उनको कहें कि तुम भी देखो, मुझे दिखाई पड़ रहे हैं। या आप फोटोग्राफर को लिवा लाएं और कहें कि फोटो निकालो; मुझे कृष्ण दिखाई पड़ रहे हैं। कोई फोटो नहीं आएगा। और पड़ोसी को, किसी को दिखाई नहीं पड़ेंगे। पड़ोसी तय करके जाएंगे कि आपका दिमाग खराब हो गया है।

सब्जेक्टिव है, आंतरिक है, आत्मिक है। आपका ही भाव साकार हुआ है। और यह कला बड़ी अदभुत है। यह भाव अगर पूरी तरह साकार होने लगे, तो आप मनुष्य की हैसियत से मिटते जाएंगे और परमात्मा की हैसियत से प्रकट होने लगेंगे। अपने भाव से यह सृजन की क्षमता को उपलब्ध कर लेना स्रष्टा हो जाना है। यही क्रिएटर हो जाना है।

लेकिन आप इससे ऐसा मत समझ लेना कि आपको कृष्ण का स्मरण आता है, इसलिए जिसको क्राइस्ट का स्मरण आता है उसको गलती हो रही है। आप ऐसा भी मत समझ लेना कि कृष्ण के आपको दर्शन होते हैं, इसलिए सभी को कृष्ण के दर्शन से ही परमात्मा की प्राप्ति होगी। इस भूल में आप मत पड़ना। अपने-अपने भाव, अपना-अपना मार्ग, अपनी-अपनी प्रतीति।

और भूलकर भी दूसरे की प्रतीति को छूना मत, और गलत मत कहना। अपनी प्रतीति बता देना कि मुझे ऐसा होता है, और मुझे यह आनंद हो रहा है। लेकिन दूसरे की प्रतीति को गलत कहने की कोशिश मत करना, क्योंकि वह अनधिकार है, वह ट्रेसपास है। और दूसरे के भाव को नुकसान पहुंचाना अधार्मिक है।

आपको ऐसा भी लगता हो कि यह गलत हो रहा है दूसरे को, तो भी आप जल्दी मत करना, क्योंकि दूसरे के संबंध में आपको कुछ भी पता नहीं है। थोड़ा धैर्य रखना। और अगर दूसरे के संबंध में कुछ भी कहना हो, तो दूसरा जो प्रयोग कर रहा है, वह प्रयोग खुद भी कर लेना और फिर ही कहना।

रामकृष्ण को ऐसा ही हुआ। रामकृष्ण को लोग आकर पूछते थे कि इस्लाम धर्म कैसा? ईसाइयत कैसी? तंत्र के मार्ग कैसे हैं? तो रामकृष्ण ने कहा कि मैं जब तक उन प्रयोगों को नहीं किया हूं, कुछ भी नहीं कह सकता। तो लोग पूछते हैं, तो रामकृष्ण ने कहा कि मैं सब प्रयोग करूंगा।

तो रामकृष्ण छः महीने के लिए मुसलमान की तरह रहे। पृथ्वी पर यह प्रयोग पहला था, अपने ढंग का था। रामकृष्ण छः महीने तक मंदिर नहीं जाते थे, मस्जिद ही जाते थे। और छः महीने तक नमाज ही पढ़ते थे, प्रार्थना नहीं करते थे। छः महीने तक उन्होंने हिंदुओं जैसे कपड़े पहनने बंद कर दिए थे और मुसलमान जैसे कपड़े पहनने लगे थे। छः महीने उन्होंने अपने को इस्लाम में पूरी तरह डुबा लिया।

और जब इस्लाम से भी उन्हें वही अनुभव हो गया, जो अनुभव उन्होंने काली की प्रार्थना और पूजा करके पाया था, तब उन्होंने कहा कि ठीक है, यह रास्ता भी वहीं आता है। यह रास्ता भी वहीं ले जाता है। इस रास्ते से चलने वाले भी वहीं पहुंच जाएंगे, जहां दूसरे रास्तों से चलने वाले पहुंचते हैं।

फिर तो रामकृष्ण ने कोई छः धर्मों के अलग-अलग प्रयोग किए। और सभी धर्मों से जब वे एक ही समाधि को पहुंच गए, तब उन्होंने यह वक्तव्य दिया कि रास्ते अलग हैं, लेकिन पर्वत का शिखर एक है। और अलग-अलग रास्तों से, कभी-कभी विपरीत दिशाओं में जाने वाले रास्तों से भी आदमी उसी एक शिखर पर पहुंच जाता है।

तो जल्दी मत करना। दूसरे पर कृपा करना। दूसरे को चोट पहुंचाने की कोशिश मत करना। एक ही ध्यान रखना कि आपकी पूरी शक्ति अपने ही प्रयोग में लगे। और धीरे-धीरे आपकी चेतना आपके ही भाव के साथ एक हो जाए।

परमात्मा को निकट लाने की एक ही कला है। और वह कला यह है कि आप अपने भाव को पूरा का पूरा उसमें डुबा दें।

इसके दो उपाय हैं। अगर आपके मन की वृत्ति सगुण की हो, तो आप कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध, महावीर, कोई भी प्रतीक चुन लें; कोई भी रूप, कोई भी आकार चुन लें; और उसी आकार में अपने को लीन करने लगें।

लेकिन अगर आकार में आपकी रुचि न हो, तो जरूरत नहीं है किसी आकार की भी। तब आप निराकार ध्यान में सीधे उतरने लगें। तब आप अनंत और अनादि का, शाश्वत और सनातन का, निराकार आकाश का ही भाव करें--किसी मूर्ति का, किसी बिंब का, किसी प्रतीक का नहीं।

यह भी आपको खोज लेना चाहिए कि आपके लिए क्या उचित होगा। आपका अपना भीतरी झुकाव और लगन, आपका भीतरी ढांचा क्या है, यह आपको ठीक से समझ लेना चाहिए। क्योंकि सभी लोगों को सभी बातें ठीक नहीं होंगी; सभी मार्ग सभी के लिए ठीक नहीं होंगे।

जो आदमी निर्गुण को समझ ही नहीं सकता, वह आदमी निर्गुण के पीछे पड़ जाएगा, तो कष्ट पाएगा और कभी भी उपलब्धि न होगी।

इसे आप ऐसा समझें। स्कूल में बच्चे भर्ती होते हैं। सभी बच्चों को गणित नहीं जमता, क्योंकि गणित बिल्कुल निराकार है। गणित का कोई आकार तो है नहीं। गणित तो एब्सट्रैक्ट है। सभी बच्चों को गणित नहीं जमता। जिन बच्चों को गणित नहीं जमता, या जिनको गणित में बिल्कुल रस नहीं आता, या जिनको गणित में कोई गति नहीं होती, उन्हें भूलकर भी निराकार और निर्गुण की बात में नहीं पड़ना चाहिए। मैं सिर्फ एक उदाहरण दे रहा हूं। जिनकी गणित पर पकड़ नहीं बैठती, उनको निराकार और निर्गुण की बात ही नहीं करनी चाहिए। क्योंकि गणित तो स्थूलतम निराकार की यात्रा है। ध्यान तो परम यात्रा है।

आइंस्टीन जैसा व्यक्ति निराकार में उतर सकता है सरलता से, क्योंकि सारा खेल ही निराकार गणित का है।

गणित बाहर कहीं भी नहीं है, केवल बुद्धि के निराकार में है। अगर आदमी मर जाए, तो गणित बिल्कुल मिट जाएगा। क्योंकि गणित का कोई सवाल ही नहीं है। आप कहते हैं, एक, दो, तीन, चार--ये कहीं भी नहीं हैं। यह सिर्फ ख्याल है, सिर्फ एक निराकार भाव है।

इस तरह का कोई व्यक्ति हो कि उसका निराकार से, एब्सट्रैक्ट से कोई संबंध न बैठता हो, तो उसे साकार की यात्रा करनी चाहिए। जैसे मीरा है। तो मीरा को निराकार से कोई रस नहीं, कोई संबंध नहीं है। वह तो कृष्ण को जितना रसपूर्ण देख पाती है, नाचते हुए, बांसुरी बजाते हुए, उतनी ही लीन हो जाती है।

स्त्रियां अक्सर निराकार की तरफ नहीं जा सकतीं। क्योंकि स्त्रैण मन आकृति को प्रेम करता है, आकार को प्रेम करता है। पुरुष अक्सर निराकार की तरफ जा सकते हैं। क्योंकि पुरुष मन एब्सट्रैक्ट है, निर्गुण की तलाश करता है।

लेकिन सभी पुरुष पुरुष नहीं होते और सभी स्त्रियां स्त्रियां नहीं होतीं। बहुत-सी स्त्रियां पुरुष के ढांचे की होती हैं, बहुत-से पुरुष स्त्री के ढांचे के होते हैं। यह ढांचा केवल शरीर का नहीं, मन का भी है।

तो आपको ठीक पता लगा लेना चाहिए कि आपका भीतरी ढांचा क्या है। इसलिए गुरु की बड़ी उपयोगिता है। क्योंकि आपको शायद यह समझ में भी न आ सके कि आपका ढांचा क्या है। और शायद आप गलत ढांचे पर प्रयोग करते रहें और परेशान होते रहें। अनेक लोग परेशान होते हैं और वे यही समझते हैं कि

अपने कर्मों के फल के कारण उपलब्धि नहीं हो रही है। अक्सर तो कर्मों के फल का कोई संबंध नहीं होता। उपलब्धि में भूल इसलिए होती है कि आपसे तालमेल नहीं पड़ता, जिस विधि का आप प्रयोग कर रहे हैं।

जो आप प्रयोग कर रहे हैं। और जो आप हैं, उन दोनों में कोई संगति नहीं बैठती, उनमें विरोध है। तो आप जन्मों-जन्मों तक कोशिश करते रहें, वह रेत से तेल निकालने जैसी चेष्टा है। वह कभी सफल न होगी। और आप शायद यही सोचते रहेंगे कि कर्मों के फल के कारण बाधा पड़ रही है। कर्मों के फल के कारण बाधा पड़ती है, लेकिन इतनी बाधा नहीं पड़ती, जितनी बाधा ढांचे के विपरीत अगर कोई मार्ग चुन ले तो पड़ती है।

इसलिए गुरु का उपयोग है कि वह आपके ढांचे के संबंध में खोज कर सकता है।

पश्चिम में मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि आपको अपने मन के संबंध में उतना पता नहीं है, जितना कि मनसविद को पता है। और मनसविद आपका विश्लेषण करके आपके संबंध में वे बातें जान लेता है, जो आपको ही पता नहीं थीं।

तो आप यह मत समझ लेना कि चूंकि आप हैं, इसलिए आप अपने संबंध में सब जानते हैं। आप अपने संबंध में एक प्रतिशत भी नहीं जानते। निन्यानबे प्रतिशत तो आपको अपने बाबत ही पता नहीं है। और उसके लिए कोई दूर से निष्पक्ष खड़े होकर देखने वाला चाहिए, जो ठीक से पहचान ले कि क्या-क्या आपके भीतर छिपा है। अगर वह आपके भीतर को ठीक से पहचान ले और पकड़ ले, तो मार्ग चुनना आसान हो जाए।

अनंत मार्ग हैं और अनंत तरह के लोग हैं। और ठीक मार्ग ठीक व्यक्ति को मिल जाए, तो कभी-कभी क्षण में भी मुक्ति फलित हो जाती है। लेकिन वह तभी, जब बिल्कुल ठीक मार्ग और ठीक व्यक्ति से मिल जाए।

यह करीब-करीब वैसा है, जैसे आप रेडिओ लगाते हैं। और आपकी सुई अगर ढीली हो, तो दो-दो, चार-चार स्टेशन एक साथ पकड़ती है। कुछ भी समझ में नहीं आता। फिर आप धीमे-धीमे, धीमे-धीमे ट्यून करते हैं। और जब ठीक जगह पर सुई रुक जाती है, ठीक स्टेशन पर, तो सभी स्पष्ट हो जाता है।

करीब-करीब आपके बीच और विधि के बीच जब तक ठीक ट्यूनिंग न हो जाए, तब तक सत्य की कोई प्रतीति नहीं होती। तब तक बहुत बार आपको बहुत मार्ग बदलने पड़ते हैं; बहुत बार बहुत-सी विधियां बदलनी पड़ती हैं।

लेकिन अगर आदमी सजग हो, तो बिना गुरु के भी मार्ग खोज ले सकता है। समय थोड़ा ज्यादा लगेगा। अगर आदमी समर्पणशील हो, तो गुरु के सहारे बहुत जल्दी घटना घट सकती है।

आखिरी सवाल। एक मित्र पूछते हैं कि मैंने सुना है कि रामकृष्ण परमहंस जब भी गुह्य ज्ञान के बारे में बताते थे, तभी बीच-बीच में रुक जाते थे, और कहते थे, मां मुझे सच बोलने को नहीं देती। इसका क्या अर्थ है?

सत्य बोला नहीं जा सकता; बोलने की कोशिश की जा सकती है। और जिनको सत्य का कोई पता नहीं है, उन्हें यह अनुभव कभी नहीं होता कि सत्य बोला नहीं जा सकता। जिन्हें सत्य का पता ही नहीं है, वे मजे से बोल सकते हैं। उन्हें कभी ख्याल भी न आएगा कि सत्य को शब्द में रखना अत्यंत कठिन, करीब-करीब असंभव है।

जिनको भी सत्य का पता है, उन्हें बहुत बार भीतर यह अड़चन आ जाती है; बहुत बार यह अड़चन आ जाती है। उन्हें मालूम है कि क्या है सत्य, लेकिन कोई शब्द उससे मेल नहीं खाता। अगर वे कोई भी शब्द चुनते हैं, तो पाते हैं कि उससे कुछ भूल हो जाएगी। वे जो कहना चाहते हैं, वह तो कहा नहीं जाएगा। और कई बार

ऐसा लगता है कि जो वे नहीं कहना चाहते, वह भी इस शब्द से ध्वनित हो जाएगा। बहुत बार ऐसा होता है कि यह शब्द का उपयोग तो किया जा सकता है, लेकिन सुनने वाला गलत समझेगा। तो रुकावट हो जाती है।

रामकृष्ण का मतलब वही है। वह उनके काव्य की भाषा है कि वे कहते हैं, मां रोक लेती है सत्य को कहने से। वह उनकी काव्य-भाषा है। लेकिन असली कारण... कोई रोकता नहीं है; सत्य ही रोक लेता है। क्योंकि सत्य शब्द के साथ बैठ नहीं पाता।

फिर रामकृष्ण की तकलीफ दूसरी भी है। क्योंकि वे शब्द के संबंध में बहुत कुशल भी नहीं थे। बेपढ़े-लिखे थे। बुद्ध इस तरह नहीं रुकते। रामकृष्ण दूसरी कक्षा तक मुश्किल से पढ़े थे। पढ़ना-लिखना नहीं हुआ था। शब्द से उनका कोई बहुत संबंध न था। और फिर उन्हें अनुभव तो वही हुआ, जो बुद्ध को हुआ।

लेकिन बुद्ध सुशिक्षित थे, शाही परिवार से थे। जो भी हो सकता था संस्कार श्रेष्ठतम, वह उन्हें उपलब्ध हुआ था। जो भी आभिजात्य की भाषा थी, जो भी काव्य की, कला की भाषा थी, जो भी श्रेष्ठतम था साहित्य में, उसका उन्हें पता था। तो बुद्ध नहीं रुकते हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि बुद्ध कह पाते हैं सत्य है वह। नहीं।

तो बुद्ध ज्यादा कुशल हैं। वे बीच-बीच में नहीं रुकते, वे पहले ही घोषणा कर देते हैं। बुद्ध जिस गांव में जाते थे, वे कहलवा देते थे कि ग्यारह प्रश्न मुझसे कोई न पूछे।

उन ग्यारह प्रश्नों में वे सब बातें आ जाती थीं, जो गुह्य सत्य के संबंध में हैं। वे कहते थे, इन्हें छोड़कर तुम कुछ भी पूछो। ये ग्यारह प्रश्न मुझसे मत पूछो। क्योंकि इनके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ये अव्याख्येय हैं।

रामकृष्ण ग्राम्य थे। उनकी भाषा ग्रामीण की थी। उनके प्रतीक भी ग्राम्य थे। उनकी कहानियां भी ग्राम्य थीं। उन्होंने पहले से घोषणा नहीं की थी, लेकिन जब वे बोलते थे, तो बीच-बीच में अड़चन आ जाती थी। वे कुछ कहना चाहते थे और वह नहीं प्रकट होता था। कोई शब्द नहीं मिलता था।

लेकिन यह घटना तभी घटती है, जब आपके पास कुछ महत्वपूर्ण कहने को हो। अगर आप बाजार में चीजें खरीदने और बेचने की ही भाषा को, और उतना ही आपके पास कहने को हो, तो यह अड़चन कभी नहीं आती। लेकिन जैसे ही आप ऊपर उड़ते हैं और समाज और बाजार की भाषा के बाहर की दुनिया में प्रवेश करते हैं, वैसे ही कठिनाई आनी शुरू हो जाती है।

रवींद्रनाथ ने छः हजार गीत लिखे हैं। शायद दुनिया में किसी कवि ने इतने गीत नहीं लिखे। पश्चिम में शेली को वे कहते हैं महाकवि। लेकिन उसके भी दो हजार गीत हैं। रवींद्रनाथ के छः हजार गीत हैं, जो संगीत में बद्ध हो सकते हैं।

मरने के तीन या चार दिन पहले एक मित्र ने आकर रवींद्रनाथ को कहा कि तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि पृथ्वी पर अब तक हुए महाकवियों में तुम्हारा सबसे बड़ा दान है--छः हजार गीत, जो संगीत में बंध सकते हैं! और प्रत्येक गीत अनूठा है। तुम्हें मृत्यु का कोई भय नहीं होना चाहिए और न कोई दुख लेना चाहिए, क्योंकि तुम काम पूरा कर चुके हो; तुम फुलफिल्ड हो। आदमी तो वह दुखी मरता है, जिसका कुछ काम अधूरा रह गया हो। तुम्हारा काम तो जरूरत से ज्यादा पूरा हो गया है।

रवींद्रनाथ ने कहा कि रुको, आगे मत बढ़ो। मेरी हालत दूसरी ही है। मैं इधर परमात्मा से प्रार्थना किए जा रहा हूं कि अभी तो मैं अपना साज बिठा पाया था; अभी मैंने गीत गाया कहां! अभी तो मैं ठोंक-पीट करके अपना साज बिठा पाया था। और अब गाने का वक्त करीब आता था कि इस शरीर के विदा होने का वक्त करीब

आ गया! ये छः हजार गीत तो मेरी कोशिश हैं सिर्फ, उस गीत को गाने के लिए, जो मैं गाना चाहता हूं। अभी उसे गा नहीं पाया हूं। और यह तो वक्त जाने का आ गया! वह गीत तो अनगाया रह गया है, जो मेरे भीतर उबलता रहा है। उसी को गाने के लिए ये छः हजार मैंने प्रयास किए थे। ये सब असफल गए हैं। मैं सफल नहीं हो पाया। जो मैं कहना चाहता था, वह अभी भी अनकहा मेरे हृदय में दबा है।

असल में जितनी ही ऊंचाई की प्रतीति और अनुभूति होगी, शब्द उतने ही नीचे पड़ जाएंगे। बाजार की भाषा ऐसे रह जाती है, जैसे कोई आकाश में उड़ गया दूर, और बाजार की भाषा बहुत नीचे रह गई। अब उससे कोई संबंध नहीं जुड़ता।

और आकाश की कोई भाषा नहीं है। अभी तक तो नहीं है। कवि बड़ी कोशिश करते हैं; कभी-कभी कोई एक झलक ले आते हैं। संतों ने बड़ी कोशिश की है; और कभी-कभी कोई एक झलक शब्दों में उतार दी है। लेकिन सब झलकें अधूरी हैं। क्योंकि सब शब्द आदमी के हैं और अनुभूति परमात्मा की है। आदमी बहुत छोटा है और अनुभूति बहुत बड़ी है। इतना बड़ा हो जाता है अनुभव कि वाणी सार्थक नहीं रह जाती।

इसलिए रामकृष्ण बीच-बीच में रुक जाते थे। लेकिन वे भक्त थे; उनकी भाषा भक्त की है। जो मैंने कहा, ऐसा उत्तर वे नहीं देते। वे कहते कि मां ने रोक लिया। मां सत्य नहीं बोलने देती। बात यही है।

मां क्यों रोकेगी सत्य बोलने से? लेकिन रामकृष्ण तो सत्य और मां को एक ही मानते हैं। उनके लिए मां सत्य है, सत्य मां है। वह मां उनके लिए सत्य का साकार रूप है। तो वे कहते हैं, मां रोक लेती है। वे कभी-कभी बीच में रुक जाते थे। बहुत देर तक चुप रह जाते थे। फिर बात शुरू करते थे। वह कहीं और से शुरू होती थी। जहां से उन्होंने शुरू की थी, जहां टूट गई थी, बीच में अंतराल आ जाता था। इन अंतरालों का एक कारण और है।

रामकृष्ण अनेक बार बीच-बीच में समाधि में भी चले जाते थे। और कभी भी कोई ईश्वर-स्मरण आ जाए, तो उनकी समाधि लग जाती थी। कभी तो ऐसा होता कि रास्ते पर चले जा रहे हैं और किसी ने किसी से जयरामजी कर ली, और वे खड़े हो गए, और आंख उनकी बंद हो गई। यह नाम सुनकर ही, राम का स्मरण सुनकर ही वे समाधि में चले गए। उनको सड़क पर ले जाते वक्त भी ध्यान रखना पड़ता था। कोई मंदिर की घंटी बज रही है और धूप जल रही है, उनको सुगंध आ गई और घंटी की आवाज सुन ली, वे समाधि में चले गए।

तो कभी-कभी बोलते वक्त भी, जैसे ही वे करीब आते थे सत्य के कहने के, उसका स्मरण आते ही वे लीन हो जाते थे, इसलिए भी अंतराल हो जाता था।

अब हम सूत्र को लें।

तथा वह परमात्मा चराचर सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचर रूप भी वही है। और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय अर्थात जानने में नहीं आने वाला है। तथा अति समीप में और अति दूर में भी स्थित वही है। और वह विभागरहित एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर संपूर्ण भूतों में पृथक-पृथक के सदृश स्थित प्रतीत होता है। तथा वह जानने योग्य परमात्मा भूतों का धारण-पोषण करने वाला और संहार करने वाला तथा सब का उत्पन्न करने वाला है। और वह ज्योतियों की भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जाता है। तथा वह बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सब के हृदय में स्थित है।

तीन महत्वपूर्ण बातें। पहली बात, परमात्मा के संबंध में जब भी कुछ कहना हो, तो भाषा में जो भी विरोध में खड़ी हुई दो अतियां हैं, एक्सट्रीम पोलेरिटीज हैं, उन दोनों को एक साथ जोड़ लेना जरूरी है। क्योंकि दोनों अतियां परमात्मा में समाविष्ट हैं। और जब भी हम एक अति के साथ परमात्मा का तादात्म्य करते हैं, तभी हम भूल कर जाते हैं और अधूरा परमात्मा हो जाता है। और हमारा परमात्मा के संबंध में जो वक्तव्य है, वह असत्य हो जाता है, वह पूरा नहीं होता।

मगर मनुष्य का मन ऐसा है कि वह एक अति को चुनना चाहता है। हम कहना चाहते हैं कि परमात्मा स्रष्टा है। तो दुनिया के सारे धर्म, सिर्फ हिंदुओं को छोड़कर, कहते हैं कि परमात्मा स्रष्टा है, क्रिएटर है। सिर्फ हिंदू अकेले हैं जमीन पर, जो कहते हैं, परमात्मा दोनों है, स्रष्टा भी और विनाशक भी, क्रिएटर और डिस्ट्रायर।

यह बहुत विचारणीय है और बहुत मूल्यवान है। क्योंकि परमात्मा स्रष्टा है, यह तो समझ में आ जाता है। लेकिन वही विनाशक भी है, वही विध्वंसक भी है, यह समझ में नहीं आता।

आपके बेटे को जन्म दिया, तब तो आप परमात्मा को धन्यवाद दे देते हैं कि परमात्मा ने बेटे को जन्म दिया। और आपका बेटा मर जाए, तो आपकी भी हिम्मत नहीं पड़ती कहने की कि परमात्मा ने बेटे को मार डाला। क्योंकि यह सोचते ही कि परमात्मा ने बेटे को मार डाला, ऐसा लगता है, यह भी कैसा परमात्मा, जो मारता है!

लेकिन ध्यान रहे, जो जन्म देता है, वही मारने वाला तत्व भी होगा। चाहे हमें कितना ही अप्रीतिकर लगता हो। हमारी प्रीति और अप्रीति का सवाल भी नहीं है। जो बनाता है, वही मिटाएगा भी। नहीं तो मिटाएगा कौन?

और अगर मिटने की क्रिया न हो, तो बनने की क्रिया बंद हो जाएगी। अगर जगत में मृत्यु बंद हो जाए, तो जन्म बंद हो जाएगा। आप यह मत सोचें कि जन्म जारी रहेगा और मृत्यु बंद हो सकती है। उधर मृत्यु बंद होगी, इधर जन्म बंद होगा। और अनुपात निरंतर वही रहेगा। उधर मृत्यु को रोकिएगा, इधर जन्म रुकना शुरू हो जाएगा।

इधर चिकित्सकों ने, चिकित्साशास्त्र ने मृत्यु को थोड़ा दूर हटा दिया है, बीमारी थोड़ी कम कर दी है, तो सारी दुनिया की सरकारें संतति-निरोध में लगी हैं। वह लगना ही पड़ेगा। उसका कोई उपाय ही नहीं है। और अगर सरकारें संतति-निरोध नहीं करेंगी, तो अकाल करेगा, भुखमरी करेगी, बीमारी करेगी। लेकिन जन्म और मृत्यु में एक अनुपात है। उधर आप मृत्यु को रोकिए, तो इधर जन्म को रोकना पड़ेगा।

अब इधर हिंदुस्तान में बहुत-से साधु-संन्यासी हैं, वे कहते हैं, संतति-निरोध नहीं होना चाहिए। उनको यह भी कहना चाहिए कि अस्पताल नहीं होने चाहिए। अस्पताल न हों, तो संतति-निरोध की कोई जरूरत नहीं है। इधर मौत को रोकने में सब राजी हैं कि रुकनी चाहिए। संत-महात्मा लोगों को समझाते हैं, अस्पताल खोलो; मौत को रोको। मौत को हटाओ; बीमारी कम करो। और वही संत-महात्मा लोगों को समझाते हैं कि बर्थ कंट्रोल मत करना। इससे तो बड़ा खतरा हो जाएगा। यह तो परमात्मा के खिलाफ है।

अगर बर्थ कंट्रोल परमात्मा के खिलाफ है, तो दवाई भी परमात्मा के खिलाफ है। क्योंकि परमात्मा बीमारी दे रहा है और तुम दवा कर रहे हो! परमात्मा मौत ला रहा है और तुम इलाज करवा रहे हो! तब सब चिकित्सा परमात्मा के विरोध में है। चिकित्सा बंद कर दो, संतति-निरोध की कोई जरूरत ही नहीं रहेगी। लोग अपने आप ही ठीक अनुपात में आ जाएंगे। इधर मौत रोकी, इधर जन्म रुकता है।

आप सोच लें, अगर किसी दिन विज्ञान ने यह तरकीब खोज निकाली कि आदमी को मरने की जरूरत नहीं, तो हमें सभी लोगों को बांझ कर देना पड़ेगा, क्योंकि फिर पैदा होने की कोई जरूरत नहीं।

जन्म और मृत्यु एक ही धागे के दो छोर हैं। उनमें एक संतुलन है।

यह सूत्र पहली बात यह कर रहा है कि परमात्मा दोनों अतियों का जोड़ है। सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है।

बहुत लोग हैं, जो मानते हैं, परमात्मा बाहर है। आम आदमी की धारणा यही होती है कि कहीं आकाश में परमात्मा बैठा है। एक बहुत बड़ी दाढ़ी वाला बूढ़ा आदमी, वह सारी दुनिया को सम्हाल रहा है सिंहासन पर बैठा हुआ! इससे बड़ा खतरा भी होता है कभी-कभी।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक कार्ल गुस्ताव जुंग ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मुझे बचपन में यह समझाया गया कि परमात्मा आकाश में बैठा हुआ है अपने सिंहासन पर और दुनिया का काम कर रहा है, तो उसने लिखा है कि मैं अपने बाप से कह तो नहीं सका, लेकिन मुझे सदा एक ही ख्याल आता था कि वह अगर पेशाब, मल-मूत्र त्याग करता होगा, तो वह सब हम ही पर गिरता होगा। आखिर वह सिंहासन पर बैठा-बैठा कब तक बैठा रहता होगा; कभी तो मल-मूत्र त्याग करता होगा!

उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि यह बात मेरे मन में बुरी तरह घूमने लगी। छोटा बच्चा ही था। किसी से कह तो सकता नहीं, क्योंकि किसी से कहूं तो वह पिटाई कर देगा कि यह भी क्या बात कर रहे हो, परमात्मा और मल-मूत्र! लेकिन जब परमात्मा सिंहासन पर बैठता है आदमियों की तरह, जैसे आदमी कुर्सियों पर बैठते हैं; और जब परमात्मा की दाढ़ी-मूंछ और सब आदमी की तरह है, तो फिर मल-मूत्र भी होना ही चाहिए। किसी से, जुंग ने लिखा है, मैं कह तो नहीं सका, तो फिर मुझे सपना आने लगा। कि वह बैठा है अधर में और मल-मूत्र गिर रहा है!

आम आदमी की धारणा यही है कि वह कहीं आकाश में बैठा हुआ है--बाहर। इसलिए आप मंदिर जाते हैं, क्योंकि परमात्मा बाहर है। यह एक अति है।

एक दूसरी अति है, जो मानते हैं कि परमात्मा भीतर है; बाहर का कोई सवाल नहीं। इसलिए न कोई मंदिर, न कोई तीर्थ; न बाहर कोई जाने की जरूरत। परमात्मा भीतर है।

यह सूत्र कहता है कि दोनों बातें अधूरी हैं। जो कहते हैं, परमात्मा भीतर है, वे भी आधी बात कहते हैं। और जो कहते हैं, परमात्मा बाहर है, वे भी आधी बात कहते हैं। और दोनों गलत हैं, क्योंकि अधूरा सत्य असत्य से भी बदतर होता है। क्योंकि वह सत्य जैसा भासता है और सत्य नहीं होता। परमात्मा बाहर और भीतर दोनों में है।

वह परमात्मा चराचर सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है।

क्योंकि बाहर-भीतर उसके ही दो खंड हैं। हमारे लिए जो बाहर है और हमारे लिए जो भीतर है, वह उसके लिए न तो बाहर है, न भीतर है। दोनों में वही है।

ऐसा समझें कि आपके कमरे के भीतर आकाश है और कमरे के बाहर भी आकाश है। आकाश बाहर है या भीतर? आपका मकान ही आकाश में बना है, तो आकाश आपके मकान के भीतर भी है और बाहर भी है। दीवालों की वजह से बाहर-भीतर का फासला पैदा हो रहा है। यह शरीर की दीवाल की वजह से बाहर-भीतर का फासला पैदा हो रहा है। वैसे बाहर-भीतर वह दोनों नहीं है; या दोनों है।

सूत्र कहता है, बाहर भीतर दोनों है परमात्मा। चर-अचर रूप भी वही है।

चर-अचर रूप भी वही है। जो बदलता है, वह भी वही है; जो नहीं बदलता, वह भी वही है।

यहां भी हम इसी तरह का द्वंद्व खड़ा करते हैं कि परमात्मा कभी नहीं बदलता और संसार सदा बदलता रहता है। लेकिन बदलाहट में भी वही है और गैर-बदलाहट में भी वही है। दोनों द्वंद्व को वह घेरे हुए है।

सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है, जानने में आने वाला नहीं है।

बहुत सूक्ष्म है। सूक्ष्मता दो तरह की है। एक तो कोई चीज बहुत सूक्ष्म हो, तो समझ में नहीं आती। या कोई चीज बहुत विराट हो, तो समझ में नहीं आती। न तो यह अनंत विस्तार समझ में आता है और न सूक्ष्म समझ में आता है। दो चीजें छूट जाती हैं।

दो छोर हैं, विराट और सूक्ष्म। सूक्ष्म को कहना चाहिए, शून्य जैसा सूक्ष्म। एक से भी नीचे, जहां शून्य है। दो तरह के शून्य हैं। एक से भी नीचे उतर जाएं, तो एक शून्य है। और अनंत का एक शून्य है। ये दोनों समझ में नहीं आते। परमात्मा दोनों अर्थों में सूक्ष्म है। विराट के अर्थों में भी, शून्य के अर्थों में भी। और इसलिए अविज्ञेय है। समझ में आने जैसा नहीं है।

पर यह तो बड़ी कठिन बात हो गई। अगर परमात्मा समझ में आने जैसा ही नहीं है, तो समझाने की इतनी कोशिश! सारे शास्त्र, सारे ऋषि एक ही काम में लगे हैं कि परमात्मा को समझाओ। और वह समझ में आने योग्य नहीं है। फिर यह समझाने से क्या सार होगा!

समझ में आने योग्य नहीं है, इसका यह मतलब आप मत समझना कि वह अनुभव में आने योग्य नहीं है। समझ में तो नहीं आएगा, लेकिन अनुभव में आ सकता है।

जैसे अगर मैं आपको समझाने बैठूं नमक का स्वाद, तो समझा नहीं सकता। परमात्मा तो बहुत दूर है, नमक का स्वाद भी नहीं समझा सकता। और अगर आपने कभी नमक नहीं चखा है, तो मैं लाख सिर पटकूं और सारे शास्त्र इकट्ठे कर लूं और दुनियाभर के विज्ञान की चर्चा आपसे करूं, तो भी आखिर में आप पूछेंगे कि आपकी बातें तो सब समझ में आईं, लेकिन यह नमकीन क्या है?

उसका उपाय एक ही है कि एक नमक का टुकड़ा आपकी जीभ पर रखा जाए। शास्त्र-वास्त्र की कोई जरूरत नहीं है। जो समझ में आने वाला नहीं है, वह भी अनुभव में आने वाला हो जाएगा। और आप कहेंगे कि आ गया अनुभव में--स्वाद।

परमात्मा का स्वाद आ सकता है। इसलिए कोई प्रत्यय के ढंग से, कंसेप्ट की तरह समझाए, कोई सार नहीं होता। इसीलिए तो हम परमात्मा के लिए कोई स्कूल नहीं खोल पाते, कोई पाठशाला नहीं बना पाते। या बनाते हैं तो उससे कोई सार नहीं होता।

कितनी ही धर्म की शिक्षा दो, कोई धर्म नहीं होता। सीख-साख कर आदमी वैसे का ही वैसा कोरा लौट जाता है। और कई दफे तो और भी ज्यादा चालाक होकर लौट जाता है, जितना वह पहले नहीं था। क्योंकि अब वह बातें बनाने लगता है। अब वह अच्छी बातें करने लगता है। वह धर्म की चर्चा करने लगता है। और स्वाद उसे बिल्कुल नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है, समझ में आने वाला नहीं है। अति समीप है और अति दूर भी है।

पास है बहुत; इतना पास, जितना कि आप भी अपने पास नहीं हैं। असल में पास कहना ठीक ही नहीं है, क्योंकि आप ही वही हैं। और दूर इतना है, जितने दूर की हम कल्पना कर सकें। अगर संसार की कोई भी सीमा हो, विश्व की, तो उस सीमा से भी आगे। कोई सीमा है नहीं, इसलिए अति दूर और अति निकट। ये दो अतियां हैं, जिन्हें जोड़ने की कृष्ण कोशिश कर रहे हैं।

विभागरहित, उसका कोई विभाजन नहीं हो सकता। और सभी विभागों में वही मौजूद है। तथा वह जानने योग्य परमात्मा भूतों का धारण-पोषण करने वाला और संहार करने वाला और उत्पन्न करने वाला, सभी वही है।

वही बनाता है, वही सम्हालता है, वही मिटाता है। यह धारणा बड़ी अदभुत है। और एक बार यह ख्याल में आ जाए, वही बनाता है, वही सम्हालता है, वही मिटाता है, तो हमारी सारी चिंता समाप्त हो जाती है।

यह एक सूत्र आपको निश्चिंत कर देने के लिए काफी है। यह एक सूत्र आपको सारे संताप से मुक्त कर देने के लिए काफी है। क्योंकि फिर आपके हाथ में कुछ नहीं रह जाता। न आपको परेशान होने का कोई कारण रह जाता है। और न आपको शिकायत की कोई जरूरत रह जाती है। और न आपको कहने की जरूरत रह जाती है कि ऐसा क्यों है? बीमारी क्यों है? बुढ़ापा क्यों है? मौत क्यों है? कुछ भी पूछने की जरूरत नहीं रह जाती। आप जानते हैं कि वही एक तरफ से बनाता है और दूसरी तरफ से मिटाता है। और वही बीच में सम्हालता भी है।

इसलिए हमने परमात्मा का त्रिमूर्ति की तरह प्रतीक निर्मित किया है। उसमें तीन मूर्तियां, तीन तरह के परमात्मा की धारणा की है। शिव, ब्रह्मा, विष्णु, वह हमने तीन धारणा की हैं। ब्रह्मा सर्जक है, स्रष्टा है। विष्णु सम्हालने वाला है। शिव विनष्ट कर देने वाला है। लेकिन त्रिमूर्ति का अर्थ तीन परमात्मा नहीं है। वे केवल तीन चेहरे हैं। मूर्ति तो एक है। वह अस्तित्व तो एक है, लेकिन उसके ये तीन ढंग हैं।

और वही ज्योतियों की ज्योति, माया से अति परे कहा जाता है। तथा वह परमात्मा बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में स्थित है।

अविज्ञेय है, समझ में न आने वाला है, और फिर भी जानने योग्य वही है। ये बातें उलझन में डालती हैं। और लगता है कि एक-दूसरे का विरोध है। विरोध नहीं है। समझ में तो वह नहीं आएगा, अगर आपने समझदारी बरती। अगर आपने कोशिश की कि बुद्धि से समझ लेंगे, तर्क लगाएंगे, गणित बिठाएंगे, आर्ग्यू करेंगे, प्रमाण जुटाएंगे, तो वह आपकी समझ में नहीं आएगा। क्योंकि सभी प्रमाण आपके हैं, आपसे बड़े नहीं हो सकते। सभी तर्क आपके हैं; आपके अनुभव से ज्यादा की उनसे कोई उपलब्धि नहीं हो सकती। और सभी तर्क बांझ हैं; उनसे कोई अनुभव नहीं मिल सकता।

लेकिन जानने योग्य वही है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि जानने की कोई और कीमिया, कोई और प्रक्रिया हमें खोजनी पड़ेगी। बुद्धि उसे जानने में सहयोगी न होगी। क्या बुद्धि को छोड़कर भी जानने का कोई उपाय है? क्या कभी आपने कोई चीज जानी है, जो बुद्धि को छोड़कर जानी हो?

अगर आपके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव हो, तो शायद थोड़ा-सा ख्याल आ जाए। प्रेम के अनुभव में आप बुद्धि से नहीं जानते; कोई और ढंग है जानने का, कोई हार्दिक ढंग है जानने का।

मां अपने बेटे को बुद्धि के ढंग से नहीं जानती। सोचती नहीं उसके बाबत; जानती है। हृदय की धड़कन से जुड़कर जानती है। वह उसे पहचानती है। वह पहचान कुछ और मार्ग से होती है। वह मार्ग सीधा-सीधा खोपड़ी से नहीं जुड़ा हुआ है। वह शायद हृदय की धड़कन से और भाव, अनुभूति से जुड़ा हुआ है।

परमात्मा को जानने के लिए बुद्धि उपकरण नहीं है। बुद्धि को रख देना एक तरफ मार्ग है। इसलिए सारी साधनाएं बुद्धि को हटा देने की साधनाएं हैं। और बुद्धि को जो एक तरफ उतारकर रख दे, जैसे स्नान करते वक्त किसी ने कपड़े उतारकर रख दिए हों, ऐसा प्रार्थना और ध्यान करते वक्त कोई बुद्धि को उतारकर रख दे,

बिल्कुल निर्बुद्धि हो जाए, बिल्कुल बच्चे जैसा हो जाए, बाल-बुद्धि हो जाए, जिसे कुछ बचा ही नहीं, सोच-समझ की कोई बात ही न रही, तो तत्क्षण संबंध जुड़ जाता है।

क्यों ऐसा होता होगा? ऐसा इसलिए होता है कि बुद्धि तो बहुत संकीर्ण है। बुद्धि का उपयोग है संसार में। जहां संकीर्ण की हम खोज कर रहे हैं, क्षुद्र की खोज कर रहे हैं, वहां बुद्धि का उपयोग है। लेकिन जैसे ही हम विराट की तरफ जाते हैं, वैसे ही बुद्धि बहुत संकीर्ण रास्ता हो जाती है। उस रास्ते से प्रवेश नहीं किया जा सकता है। उसको हटा देना, उसे उतार देना।

संतों ने न मालूम कितनी तरकीबों से एक ही बात सिखाई है कि कैसे आप अपनी बुद्धि से मुक्त हों। इसलिए बड़ी खतरनाक भी है। क्योंकि हमें तो लगता है कि बुद्धि को बचाकर कुछ करना है, बुद्धि साथ लेकर कुछ करना है, सोच-विचार अपना कायम रखना है। कहीं कोई हमें धोखा न दे जाए। कहीं ऐसा न हो कि हम बुद्धि को उतारकर रखें, और इसी बीच कुछ गड़बड़ हो जाए। और हम कुछ भी न कर पाएंगे।

तो बुद्धि को हम हमेशा पकड़े रहते हैं, क्योंकि बुद्धि से हमें लगता है, हमारा कंट्रोल है, हमारा नियंत्रण है। बुद्धि के हटते ही नियंत्रण खो जाता है। और हम सहज प्रकृति के हिस्से हो जाते हैं। इसलिए खतरा है और डर है। इस डर में थोड़ा कारण है। वह ख्याल में ले लेना जरूरी है।

अगर आपको क्रोध आता है, तो बुद्धि एक तरफ हो जाती है। जब क्रोध चला जाता है, तब बुद्धि वापस आती है। और तब आप पछताते हैं। जब कामवासना पकड़ती है, तो बुद्धि एक तरफ हो जाती है। और जब काम-कृत्य पूरा हो जाता है, तब आप उदास और दुखी और चिंतित हो जाते हैं कि फिर वही भूल की। कितनी बार सोचा कि नहीं करें, फिर वही किया। फिर बुद्धि आ गई।

एक बात ख्याल रखें, प्रकृति भी तभी काम करती है, जब बुद्धि बीच में नहीं होती। आपके भीतर जो निम्न है, वह भी तभी काम करता है, जब बुद्धि नहीं होती। अगर आप बुद्धि को सजग रखें, तो आप क्रोध भी नहीं कर पाएंगे और कामवासना में भी नहीं उतर पाएंगे।

अगर दुनिया बिल्कुल बुद्धिमान हो जाए, तो संतान पैदा होनी बंद हो जाएगी, संसार उसी वक्त बंद हो जाएगा। क्योंकि नीचे की प्रकृति की भी सक्रियता तभी हो सकती है, जब आप बुद्धि का नियंत्रण छोड़ दें। क्योंकि प्रकृति तभी आपके भीतर काम कर पाती है, जब आपकी बुद्धि बीच में बाधा नहीं डालती।

वह जो श्रेष्ठ प्रकृति है, जिसको हम परमात्मा कहते हैं, वह भी तभी काम करता है, जब आपकी बुद्धि नहीं होती। पर इसमें एक खतरा है, जो समझ लेने जैसा है। वह यह कि चूंकि हम नीचे की प्रकृति से डरे हुए हैं, इसलिए बुद्धि के नियंत्रण को हम हमेशा कायम रखते हैं। हम डरे हुए हैं। अगर बुद्धि को छोड़ दें, तो क्रोध, हिंसा, कुछ भी हो जाए। अगर बुद्धि को हम छोड़ दें, तो हमारे भीतर की वासनाएं स्वच्छंद हो जाएं, तो हम तो अभी पागल की तरह न मालूम क्या कर गुजरें।

कितनी बार हत्या करने की सोची है बात! लेकिन बुद्धि ने कहा, यह क्या कर रहे हो? पाप है। जन्मों-जन्मों तक भटकोगे, नरक में जाओगे। और न भी गए नरक में, तो अदालत है, कोर्ट है, पुलिस है। और कहीं भी न गए, तो खुद की कांसिएंस है, अंतःकरण है, वह कचोटेगा सदा, कि तुमने हत्या की। फिर क्या मुंह दिखाओगे? कैसे चलोगे रास्ते पर? कैसे उठोगे? तो बुद्धि ने रोक लिया है।

अगर आज कोई कहे कि बुद्धि का नियंत्रण छोड़ दो, तो पहला ख्याल यही आएगा, अगर नियंत्रण छोड़ा कि उठाई तलवार और किसी की हत्या कर दी। क्योंकि वह तैयार बैठा है भाव भीतर।

नीचे की प्रकृति के डर के कारण हम बुद्धि को नहीं छोड़ पाते। और हमें ऊपर की प्रकृति का कोई पता नहीं है। क्योंकि वह भी बुद्धि के छोड़ने पर ही काम करती है।

इसे हम ऐसा भी समझें। अगर कोई आदमी बीमार हो, तो चिकित्सक पहली फिक्र करते हैं कि उसको नींद ठीक से आ जाए। क्योंकि वह जगा रहता है, तो शरीर की प्रकृति को काम नहीं करने देता, बाधा डालता रहता है। नींद आ जाए, तो शरीर अपना काम पूरा कर ले; प्रकृति उसके शरीर को ठीक कर दे; उसके घाव भर दे; उसकी बीमारी को दूर कर दे।

इसलिए चिकित्सक की पहली चिंता होती है कि मरीज सो जाए। बाकी काम दूसरा है, नंबर दो पर है। दवा वगैरह नंबर दो पर है। पहला काम है कि मरीज सो जाए। क्यों इतनी चिंता है? क्योंकि मरीज की बुद्धि दिक्कत दे रही है। सो जाए, तो प्रकृति काम कर सके।

आप भी जब सोते हैं, तभी आपका शरीर स्वस्थ हो पाता है। दिनभर में आप उसको अस्वस्थ कर लेते हैं।

आपको पता है, बच्चा जब पैदा होता है तो बाईस घंटे सोता है, बीस घंटे सोता है। और मां के पेट में नौ महीने चौबीस घंटे सोता है। फिर जैसे-जैसे उम्र बड़ी होने लगती है, नींद कम होने लगती है। फिर बूढ़ा और कम सोता है। फिर बुढ़ापे में कोई आदमी दो ही घंटे, तीन घंटे ही सो ले, तो बहुत।

बूढ़े बहुत परेशान होते हैं। सत्तर साल के बूढ़े भी मेरे पास आ जाते हैं। वे कहते हैं, कुछ नींद का रास्ता बताइए।

नींद की आपको जरूरत नहीं रही है अब। जैसे-जैसे शरीर मरने के करीब पहुंचता है, प्रकृति शरीर में काम करना कम कर देती है। उसकी जरूरत नहीं है। बनाने का काम बंद हो जाता है।

बच्चा चौबीस घंटे सोता है, क्योंकि प्रकृति को बनाने का काम करना है। अगर बच्चा जग जाए, तो बाधा डालेगा। उसकी बुद्धि बीच में आ जाएगी। वह कहेगा, टांग जरा लंबी होती, जो अच्छा था। नाक जरा ऐसी होती, तो अच्छा था। आंख जरा और बड़ी होती, तो मजा आ जाता। वह गड़बड़ डालना शुरू कर देगा।

तो नौ महीने प्रकृति उसको एक दफे भी होश नहीं देती। बेहोश, प्रकृति अपना काम करती है। जैसे ही बच्चा पूरा हो जाता है, बाहर आ जाता है। लेकिन तब भी बाईस घंटे सोता है। अभी बहुत काम होना है। अभी उसकी पूरी जिंदगी की तैयारी होनी है।

जैसे ही बच्चे के शरीर का काम पूरा हो जाता है, वैसे ही नींद एक जगह आकर रुक जाती है--छः घंटा, सात घंटा, आठ घंटा। काम प्रकृति का पूरा हो गया। अब ये आठ घंटे तो रोज के काम के लिए हैं। रोज में आप शरीर को जितना तोड़ लेंगे, उतना प्रकृति रात में पूरा कर देगी। दूसरे दिन आप सुबह ताजा होकर काम में लग जाएंगे।

बूढ़ा तो अब मरने के करीब है, उसको तीन घंटा भी जरूरत से ज्यादा है। क्योंकि अब प्रकृति कुछ बना नहीं रही है, सिर्फ तोड़ रही है। इसलिए नींद कम होती जा रही है।

प्रकृति भी काम करती है, जब आप बुद्धि से बीच में बाधा नहीं डालते। यह मैं इसलिए उदाहरण दे रहा हूं कि जो नीचे की प्रकृति के संबंध में सच है, वही ऊपर की प्रकृति के संबंध में भी सच है। जब आप परमात्मा को भी बाधा नहीं डालते और बुद्धि को हटा लेते हैं, तब वह भी काम करता है। लेकिन नीचे के भय के कारण हम ऊपर से भी भयभीत होते हैं। नीचे के डर के कारण, हम ऊपर की तरफ भी नहीं खुलते।

इसलिए मेरा कहना है कि प्रकृति को भी परमात्मा का बाह्य रूप समझें। उससे भी भयभीत न हों। उससे भी भयभीत न हों, उसमें भी उतरें। उससे भी डरें मत। उससे भी भागें मत। उसको भी घटने दें। उसमें भी बाधा

मत डालें और नियंत्रण मत बनाएं। बिना बाधा डाले, बिना नियंत्रण बनाए, होश को कायम रखें। वह अलग बात है। फिर वह बुद्धि नहीं है।

बुद्धि का अर्थ है, बाधा डालना, नियंत्रण करना। ऐसा न हो, ऐसा हो। उपाय करना। होश का अर्थ है, साक्षी होना। हम कोई बाधा न डालेंगे। अगर क्रोध आ रहा है, तो हम क्रोध के भी साक्षी हो जाएंगे। और कामवासना आ रही है, तो हम कामवासना के भी साक्षी हो जाएंगे। हम देखेंगे; हम बीच में कुछ निर्णय न करेंगे कि अच्छा है, कि बुरा है; होना चाहिए, कि नहीं होना चाहिए; मैं रोकूं, कि न रोकूं; करूं, कि न करूं; हम कुछ भी निर्णय न लेंगे। हम सिर्फ शांत देखेंगे; जैसे दूर खड़ा हुआ कोई आदमी चलते हुए रास्ते को देख रहा हो। आकाश में पक्षी उड़ रहे हों और आप देख रहे हों, ऐसा हम देखेंगे।

नीचे की प्रकृति को भी दर्शन करना सीखें, तो बुद्धि हटेगी और साक्षी जगेगा। और जब नीचे का भय न रह जाएगा, तो आप ऊपर की तरफ भी बुद्धि को हटाकर रख सकेंगे। क्योंकि आपको भरोसा आ जाएगा कि बुद्धि को ढोने की कोई भी जरूरत नहीं है। और जैसे ही बुद्धि हटती है, परमात्मा ज्ञात होना शुरू हो जाता है।

वह अविज्ञेय है बुद्धि से। लेकिन बुद्धि के हटते ही प्रज्ञा से, साक्षी भाव से वही ज्ञान योग्य है, वही जानने योग्य है, वही अनुभव योग्य है।

आखिरी बात इस संबंध में ख्याल ले लें, क्योंकि साक्षी का सूत्र बहुत मूल्यवान है। और अगर आप साक्षी के सूत्र को ठीक से समझ लें, तो परमात्मा का कोई भी रहस्य आपसे अनजाना न रह जाएगा। और इस साक्षी के सूत्र को समझने के लिए छोटा-छोटा प्रयोग करें। कुछ भी छोटा-मोटा काम कर रहे हों, तो कर्ता बनकर मत करें, साक्षी बनकर करें, ताकि थोड़ा अनुभव होने लगे कि देखने वाले का अनुभव क्या है।

भोजन कर रहे हैं। साक्षी हो जाएं। अचानक ख्याल आए, एक गहरी श्वास लें और देखने लगें कि आप देख रहे हैं अपने शरीर को भोजन करते हुए। पहले थोड़ी अड़चन होगी, थोड़ा-सा विचित्र मालूम पड़ेगा, क्योंकि दो की जगह तीन आदमी हो गए। अभी भोजन था, करने वाला था; भूख थी, करने वाला था। अब एक यह तीसरा और आ गया, देखने वाला।

यह देखने वाले की वजह से थोड़ी कठिनाई होगी। एक तो भोजन करना धीमा हो जाएगा। आप ज्यादा चबाएंगे, आहिस्ता उठाएंगे। क्योंकि यह देखने वाले की वजह से क्रियाओं में जो विक्षिप्तता है, वह कम हो जाती है। शायद इसीलिए हम देखने वाले को बीच में नहीं लाते, क्योंकि जल्दी ही डालकर भागना है। किसी तरह अंदर कर देना है भोजन को और निकल पड़ना है।

अगर आप चलेंगे भी होशपूर्वक, तो आप पाएंगे, आपकी गति धीमी हो गई।

बुद्ध चलते हैं। उनके चलने की गति ऐसी शांत है, जैसे कोई परदे पर फिल्म को बहुत धीमी स्पीड में चला रहा हो; बहुत आहिस्ता है।

बुद्‌ध से कोई पूछता है कि आप इतने धीमे क्यों चलते हैं? तो बुद्ध ने कहा कि उलटी बात है। तुम मुझ से पूछते हो कि मैं इतना धीमा क्यों चलता हूं! मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम पागल की तरह क्यों चलते हो? यह इतना ज्वर, इतना बुखार चलने में क्यों है? चलने में इतनी विक्षिप्तता क्यों है? मैं तो होश से चलता हूं, तो सब कुछ धीमा हो जाता है।

ध्यान रहे, जितना होश होगा, उतनी आपकी क्रिया धीमी हो जाएगी। और जितना कर्ता शून्य होगा, उतना क्रियाओं में से उन्माद, ज्वर चला जाएगा; क्रियाएं शांत हो जाएंगी।

और ध्यान रहे, शांत क्रियाओं से पाप नहीं किया जा सकता। अगर आप किसी की हत्या करने जा रहे हैं और धीमे-धीमे जा रहे हैं, तो पक्का समझिए, हत्या-वत्या नहीं होने वाली है। अगर आप किसी का सिर तोड़ने को खड़े हो गए हैं और बड़े आहिस्ता से तलवार उठा रहे हों, तो इसके पहले कि तलवार उसके सिर में जाए, म्यान में वापस चली जाएगी।

उतने धीमे पाप होता ही नहीं। पाप के लिए ज्वर, त्वरा, तेजी चाहिए। और जो आदमी तेजी से जी रहा है, वह चाहे पाप कर रहा हो, न कर रहा हो, उससे बहुत पाप अनजाने होते रहते हैं। उसकी तेजी से ही होते रहते हैं। उसके ज्वर से ही हो जाते हैं। ज्वर ही पाप है।

बुद्ध कहते हैं, जैसे ही होश से करोगे, सब धीमा हो जाएगा।

रास्ते पर चलते वक्त अचानक ख्याल कर लें; एक गहरी श्वास लें, ताकि ख्याल साफ हो जाए और धीमे से देखें कि आप चल रहे हैं।

खाली बैठे हैं; आंख बंद कर लें और देखें कि आप बैठे हुए हैं। आंख बंद करके बराबर आप देख सकते हैं कि आपकी मूर्ति बैठी हुई है। एक पैर की तरफ से देखना शुरू करें कि पैर की क्या हालत है। दब गया है। परेशान हो रहा है। चींटी काट रही है। ऊपर की तरफ बढ़ें। पूरे शरीर को देखें कि आप देख रहे हैं। आप देखते-देखते ही बड़ी गहरी शांति में उतर जाएंगे, क्योंकि देखने में आदमी साक्षी हो जाता है।

रात बिस्तर पर लेट गए हैं। सोने के पहले एक पांच मिनट आंख बंद करके पूरे शरीर को भीतर से देख लें।

शायद आपको पता हो या न हो, पश्चिम तो अभी एनाटॉमी की खोज कर पाया है कि आदमी के शरीर में क्या-क्या है। क्योंकि उन्होंने सर्जरी शुरू की, आदमी को काटना शुरू किया। यह कोई तीन सौ साल में ही आदमी को काटना संभव हो पाया, क्योंकि दुनिया का कोई धर्म लाश को काटने के पक्ष में नहीं था। तो पहले सर्जन जो थे, वे चोर थे। उन्होंने लाशें चुराईं मुरदाघरों से; काटा, आदमी को भीतर से देखा। लेकिन योग हजारों साल से भीतर आदमी के संबंध में बहुत कुछ जानता है।

अब ये पश्चिम के सर्जन कहते हैं कि पूरब में योग को कैसे पता चला आदमी के भीतर की चीजों का? वह पता काटकर नहीं चला है। वह योगी के साक्षी भाव से चला है।

अगर आप भीतर साक्षी भाव से प्रवेश करें और घूमने लगें, तो थोड़े दिन में आप अपने शरीर को भीतर से देखने में समर्थ हो जाएंगे। आप भीतर का हड्डी, मांस-मज्जा, स्नायु-जाल सब भीतर से देखने लगेंगे। और एक बार आपको भीतर से शरीर दिखाई पड़ने लगे, कि आप शरीर से अलग हो गए। क्योंकि जिसने भीतर से शरीर को देख लिया, वह अब यह नहीं मान सकता कि मैं शरीर हूं। वह देखने वाला हो गया; वह द्रष्टा हो गया।

चौबीस घंटे में जब भी आपको मौका मिल जाए, कोई भी क्रिया में, साक्षी को सम्हालें। साक्षी के सम्हालते दो परिणाम होंगे। क्रिया धीमी हो जाएगी; कर्ता क्षीण हो जाएगा; और विचार और बुद्धि कम होने लगेंगे, विचार शांत होने लगें। बुद्धि का ऊहापोह बंद हो जाएगा।

कोई छोटा-सा प्रयोग। कुछ नहीं कर रहे हैं; श्वास को ही देखें। श्वास भीतर गई, बाहर गई। श्वास भीतर गई, बाहर गई। आप उसको ही देखें।

लोग मुझसे पूछते हैं, कोई मंत्र दे दें। मैं उनसे कहता हूं, मंत्र वगैरह न लें। एक मंत्र परमात्मा ने दिया है, वह श्वास है। उसको देखें। श्वास पहला मंत्र है। बच्चा पैदा होते ही पहला काम करता है श्वास लेने का। और आदमी जब मरता है, तो आखिरी काम करता है श्वास छोड़ने का। श्वास से घिरा है जीवन।

जन्म के बाद पहला काम श्वास है; वह पहला कृत्य है। आप श्वास लेकर ही कर्ता हुए हैं। इसलिए अगर आप श्वास को देख सकें, तो आप पहले कृत्य के पहले पहुंच जाएंगे। आपको उस जीवन का पता चलेगा, जो श्वास लेने के भी पहले था, जो जन्म के पहले था।

अगर आप श्वास को देखने में समर्थ हो जाएं, तो आपको पता चल जाएगा कि मृत्यु शरीर की होगी, श्वास की होगी, आपकी नहीं होने वाली। आप श्वास से अलग हैं।

बुद्ध ने बहुत जोर दिया है अनापानसती-योग पर, श्वास के आने-जाने को देखने का योग। वे अपने भिक्षुओं को कहते थे, तुम कुछ भी मत करो; बस एक ही मंत्र है, श्वास भीतर गई, इसको देखो; श्वास बाहर गई, इसको देखो। और जोर से मत लेना। कुछ करना मत श्वास को; सिर्फ देखना। करने का काम ही मत करना। सिर्फ देखना।

आंख बंद कर ली, श्वास ने नाक को स्पर्श किया, भीतर गई, भीतर गई। भीतर पेट तक जाकर उसने स्पर्श किया। पेट ऊपर उठ गया। फिर श्वास वापस लौटने लगी। पेट नीचे गिर गया। श्वास वापस आई। श्वास बाहर निकल गई। फिर नई श्वास शुरू हो गई। यह वर्तुल है। इसे देखते रहना।

अगर आप रोज पंद्रह-बीस मिनट सिर्फ श्वास को ही देखते रहें, तो आप चकित हो जाएंगे, बुद्धि हटने लगी। साक्षी जगने लगा। आंख खुलने लगी भीतर की। हृदय के द्वार, जो बंद थे जन्मों से, खुलने लगे, सरकने लगे। उस सरकते द्वार में ही परमात्मा की पहली झलक उपलब्ध होती है।

साक्षी द्वार है; बुद्धि बाधा है।

पांच मिनट रुकेंगे। कीर्तन में सम्मिलित हों बैठकर। अगर सम्मिलित न हो सकें, तो कम से कम साक्षी भाव से देखें।

सातवां प्रवचन

पुरुष-प्रकृति-लीला

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।

मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।। 18।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। 19।।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।

पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।। 20।।

हे अर्जुन, इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान अर्थात ज्ञान का साधन और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप संक्षेप से कहा गया, इसको तत्व से जानकर मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

और हे अर्जुन, प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी मेरी माया और पुरुष अर्थात क्षेत्रज्ञ, इन दोनों को ही तू अनादि जान और रागद्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक संपूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान।

क्योंकि कार्य और करण के उत्पन्न करने में प्रकृति हेतु कही जाती है और पुरुष सुख-दुखों के भोक्तापन में अर्थात भोगने में हेतु कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि व्यक्ति का ढांचा, उसका व्यक्तित्व जानने के लिए गुरु का उपयोग होता रहा है। पर क्या हम किसी के सम्मोहन में, हिप्नोसिस में अपना टाइप, अपना ढांचा नहीं जान सकते? क्या सम्मोहन का प्रयोग साधना के लिए खतरनाक भी हो सकता है?

सम्मोहन एक बहुत पुरानी प्रक्रिया है। लाभप्रद भी है, खतरनाक भी। असल में जिस चीज से भी लाभ पहुंच सकता हो, उससे खतरा भी हो सकता है। खतरा होता ही उससे है, जिससे लाभ हो सकता हो। जिसमें लाभ की शक्ति है, उसमें नुकसान की शक्ति भी होती है।

तो सम्मोहन कोई होमियोपैथिक दवा नहीं है कि जिससे सिर्फ लाभ ही पहुंचता हो और नुकसान न होता हो।

सम्मोहन के संबंध में बड़ी भ्रांतियां हैं। लेकिन पश्चिम में तो भ्रांतियां टूटती जा रही हैं। पूरब में भ्रांतियों का बहुत जोर है। और आश्चर्य की बात तो यह है कि पूरब ही सम्मोहन का पहला खोजी है। लेकिन हम उसे दूसरा नाम देते थे। हमने उसे योग-तंद्रा कहा है। नाम हमारा बढ़िया है। नाम सुनते ही अंतर पड़ जाता है।

हिप्नोसिस का मतलब भी तंद्रा है। वह भी ग्रीक शब्द हिप्नोस से बना है, जिसका अर्थ नींद होता है।

दो तरह की नींद संभव है। एक तो नींद, जब आपका शरीर थक जाता है, रात आप सो जाते हैं। वह प्राकृतिक है। दूसरी नींद है, जो चेष्टा करके आप में लाई जा सकती है, इनड्यूस्ड स्लीप। योग-तंद्रा या सम्मोहन या हिप्नोसिस वही दूसरी तरह की नींद है।

रात जब आप सोते हैं, तब आपका चेतन मन धीरे-धीरे, धीरे-धीरे शांत हो जाता है। और अचेतन मन सक्रिय हो जाता है। आपके मन की गहरी परतों में आप उतर जाते हैं। सम्मोहन में भी चेष्टापूर्वक यही प्रयोग किया जाता है कि आपके मन की ऊपर की पर्त, जो रोज सक्रिय रहती है, उसे सुला दिया जाता है। और आपके भीतर का मन सक्रिय हो जाता है।

भीतर का मन ज्यादा सत्य है। क्योंकि भीतर के मन को समाज विकृत नहीं कर पाया है। भीतर का मन ज्यादा प्रामाणिक है। क्योंकि भीतर का मन अभी भी प्रकृति के अनुसार चलता है। भीतर के मन में कोई पाखंड, कोई धोखा, भीतर के मन में कोई संदेह, कोई शक-सुबहा कुछ भी नहीं है। भीतर का मन एकदम निर्दोष है। जैसे पहले दिन पैदा हुए बच्चे का जैसा निर्दोष मन होता है, वैसा निर्दोष मन भीतर है। धूल तो ऊपर-ऊपर जम गई है। मन के बाहर की परतों पर कचरा इकट्ठा हो गया है। भीतर जैसे हम प्रवेश करते हैं, वैसा शुद्ध मन उपलब्ध होता है।

इस शुद्ध मन को हिप्नोसिस के द्वारा संबंधित, हिप्नोसिस के द्वारा इस शुद्ध मन से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। स्वभावतः, लाभ भी हो सकता है, खतरा भी।

अगर कोई खतरा पहुंचाना चाहे, तो भी पहुंचा सकता है। क्योंकि वह भीतर का मन संदेह नहीं करता है। उससे जो भी कहा जाता है, वह मान लेता है। वह परम श्रद्धावान है।

अगर एक पुरुष को सम्मोहित करके कहा जाए कि तुम पुरुष नहीं, स्त्री हो, तो वह स्वीकार कर लेता है कि मैं स्त्री हूं। उससे कहा जाए कि अब तुम उठकर चलो, तुम स्त्री की भांति चलोगे। तो वह पुरुष, जो कभी स्त्री की भांति नहीं चला, स्त्री की भांति चलने लगेगा। उस पुरुष को कहा जाए कि तुम्हारे सामने यह गाय खड़ी है--और वहां कोई भी नहीं खड़ा है--अब तुम दूध लगाना शुरू करो, तो वह बैठकर दूध लगाना शुरू कर देगा।

वह जो अचेतन मन है, वह परम श्रद्धावान है। उससे जो कहा जाए, वह उस पर प्रश्न नहीं उठाता। वह उसे स्वीकार कर लेता है। यही श्रद्धा का अर्थ है। वह यह नहीं कहता कि कहां है गाय? वह यह नहीं कहता कि मैं पुरुष हूं, स्त्री नहीं हूं। वह संदेह करना जानता ही नहीं। संदेह तो मन की ऊपर की पर्त, जो तर्क सीख गई है, वही करती है।

इसका लाभ भी हो सकता है, इसका खतरा भी है। क्योंकि उस परम श्रद्धालु मन को कुछ ऐसी बात भी समझाई जा सकती है, जो व्यक्ति के अहित में हो, जो उसको नुकसान पहुंचाए। मृत्यु तक घटित हो सकती है। सम्मोहित व्यक्ति को अगर भरोसा दिला दिया जाए कि तुम मर रहे हो, तो वह भरोसा कर लेता है कि मैं मर रहा हूं।

उन्नीस सौ बावन में अमेरिका में एंटी-हिप्नोटिक एक्ट बनाया गया। यह पहला कानून है हिप्नोसिस के खिलाफ दुनिया में कहीं भी बना। क्योंकि चार लड़के विश्वविद्यालय के एक छात्रावास में सम्मोहन की किताब पढ़कर प्रयोग कर रहे थे। और उन्होंने एक लड़के को, जिसको बेहोश किया था, भरोसा दिला दिया कि तू मर गया है। वे सिर्फ मजाक कर रहे थे। लेकिन वह लड़का सच में ही मर गया। वह हृदय में इतने गहरी बात पहुंच गई--वहां कोई संदेह नहीं है--मृत्यु हो गई, तो मृत्यु को स्वीकार कर लिया। शरीर और आत्मा का संबंध तत्क्षण छूट गया। तो हिप्नोसिस के खिलाफ एक कानून बनाना पड़ा।

अगर मृत्यु तक पर भरोसा हो सकता है, तो फिर किसी भी चीज पर भरोसा हो सकता है।

तो सम्मोहन का लाभ भी उठाया जा सकता है। पश्चिम में बहुत बड़ा सम्मोहक था, कूए। कूए ने लाखों मरीजों को ठीक किया सिर्फ सम्मोहन के द्वारा। अब तक दुनिया का कोई चिकित्सक किसी भी चिकित्सा पद्धति

से इतने मरीज ठीक नहीं कर सका है, जितना कूए ने सिर्फ सम्मोहन से किया। असाध्य बीमारियां दूर कीं। क्योंकि भरोसा दिला दिया भीतर कि यह बीमारी है ही नहीं। इस भरोसे के आते ही शरीर बदलना शुरू हो जाता है।

कूए ने हजारों लोगों की शराब, सिगरेट, और तरह के दुर्व्यसन क्षणभर में छुड़ा दिए, क्योंकि भरोसा दिला दिया। मन को गहरे में भरोसा आ जाए, तो शरीर तक परिणाम होने शुरू हो जाते हैं।

तो लाभ भी हो सकता है। अगर आपको ध्यान नहीं लगता है, सम्मोहन में अगर आपको सुझाव दे दिया जाए, दूसरे दिन से ही आपका ध्यान लगना गहरा हो जाएगा। आप प्रार्थना करते हैं, लेकिन व्यर्थ के विचार आते हैं। सम्मोहन में कह दिया जाए कि प्रार्थना के क्षण में कोई भी विचार न आएंगे, तो प्रार्थना आपकी परम शांत और आनंदपूर्ण हो जाएगी, कोई विचार का विघ्न न रह जाएगा। आपकी साधना में सहयोग पहुंचाया जा सकता है।

योग के गुरु सम्मोहन का प्रयोग करते ही रहे हैं सदियों से। लेकिन कभी उसका प्रयोग जाहिर और सार्वजनिक नहीं किया गया। वह निजी गुरु के और शिष्य के बीच की बात थी। और जब गुरु किसी शिष्य को इस योग्य मान लेता था कि अब उसके अचेतन में प्रवेश करके काम शुरू करे, तो ही प्रयोग करता था। और जब कोई शिष्य किसी गुरु को इस योग्य मान लेता था कि उसके चरणों में सब कुछ समर्पित कर दे, तभी कोई गुरु उसके भीतर प्रवेश करके सम्मोहन का प्रयोग करता था।

रास्ते पर काम करने वाले सम्मोहक भी हैं। स्टेज पर प्रयोग करने वाले सम्मोहक भी हैं। उनके साथ आपका कोई श्रद्धा का नाता नहीं है। उनके साथ आपका नाता भी है, तो व्यावसायिक हो सकता है कि आप पांच रुपया फीस दें और वह आपको सम्मोहित कर दे। लेकिन जो आदमी पांच रुपए में उत्सुक है सम्मोहित करने को, वह आपको नुकसान पहुंचा सकता है।

इस तरह की घटनाएं दुनियाभर के पुलिस थानों में रिपोर्ट की गई हैं कि किसी ने किसी को सम्मोहित किया और उससे कहा कि रात तू अपनी तिजोरी में चाबी लगाना भूल जाना; या रात तू अपने घर का दरवाजा खुला छोड़ देना। पोस्ट हिप्नोटिक सजेशन! आपको अभी बेहोश किया जाए, आपको बाद के लिए भी सुझाव दिया जा सकता है कि आप अड़तालीस घंटे बाद ऐसा काम करना। तो आप अड़तालीस घंटे बाद वैसा काम करेंगे और आपको कुछ समझ में नहीं आएगा कि आप क्यों कर रहे हैं। या आप कोई तरकीब खोज लेंगे, कोई रेशनलाइजेशन, कि मैं इसलिए कर रहा हूं।

मैं एक युवक पर प्रयोग कर रहा था पोस्ट हिप्नोटिक सजेशन के। उसे मैंने बेहोश किया और उसे मैंने कहा कि छः घंटे बाद तू मेरी फलां नाम की किताब को उठाएगा और उसके पंद्रहवें पेज पर दस्तखत कर देगा। फिर वह होश में आ गया। छः घंटे बाद की बात है। वह अपने काम में लग गया। मैंने वह किताब अलमारी में बंद करके ताला लगा दिया।

ठीक छः घंटे बाद उसने आकर मुझे कहा कि मुझे आपकी फलां नाम की किताब पढ़नी है। मैंने पूछा कि तुझे अचानक क्या जरूरत पड़ गई? उसने कहा कि नहीं, मुझे कई दिन से ख्याल है पढ़ने का। अभी मेरे पास सुविधा है, तो मैं पढ़ना चाहता हूं। मैंने उसे चाबी दी और उसने खोला; और जब मैं भीतर पहुंचा कमरे में, तो वह किताब पढ़ नहीं रहा था, वह पंद्रह नंबर के पृष्ठ कर दस्तखत कर रहा था।

जब वह पकड़ गया दस्तखत करते, तो बहुत घबड़ाया; और उसने कहा कि मेरी समझ के बाहर है, लेकिन मुझे बड़ी बेचैनी हो रही थी कि कुछ करना है। और कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करना है। और

दस्तखत करते ही मेरा मन एकदम हलका हो गया, जैसे कोई बोझ मेरे ऊपर से उतर गया है। पर मैंने क्यों दस्तखत किए हैं, मुझे कुछ पता नहीं है।

तो ऐसी रिपोर्ट की गई हैं पुलिस में कि किसी सम्मोहक ने किसी को सम्मोहित कर दिया और उससे कहा कि तू जाते वक्त अपने पैसे की थैली यहीं छोड़ जाना; अपना मनीबैग यहीं छोड़ जाना; या अपनी चेक बुक यहीं छोड़ जाना। वह आदमी चेक बुक वहीं छोड़ गया जाते वक्त। तब तो खतरे हो सकते हैं।

अचेतन मन बड़ा शक्तिशाली है। आपके चेतन मन की कोई भी शक्ति नहीं है। आपका चेतन मन तो बहुत ही कमजोर है। इसीलिए तो आप संकल्प करते हैं कि सिगरेट नहीं पीऊंगा, छोड़ दूंगा; और घंटेभर भी संकल्प नहीं चलता है। क्योंकि जिस मन से आपने किया है, वह बहुत कमजोर मन है। उसकी ताकत ही नहीं है कुछ। अगर यही संकल्प भीतर के मन तक पहुंच जाए, तो यह महाशक्तिशाली हो जाता है। फिर उसे तोड़ना असंभव है।

सम्मोहन के द्वारा व्यक्ति का ढांचा खोजा जा सकता है। लेकिन सम्मोहित ऐसे व्यक्ति से ही होना, जिस पर परम श्रद्धा हो। व्यावसायिक सम्मोहन करने वाले व्यक्ति से सम्मोहित मत होना। क्योंकि उसकी आपमें उत्सुकता ही व्यावसायिक है। आपसे कोई आत्मिक और आंतरिक संबंध नहीं है। और जब तक आत्मिक और आंतरिक संबंध न हो, तब तक किसी व्यक्ति को अपने इतने भीतर प्रवेश करने देना खतरनाक है।

इसलिए गुरु तो प्रयोग करते रहे हैं। लेकिन इस प्रयोग को सदा ही निजी समझा गया है। यह सार्वजनिक नहीं है। दो व्यक्तियों के बीच की निजी बात है। कभी-कभी तो... यह प्रयोग पूरा भी तभी हो सकता है, जब कि बहुत निकट और प्रगाढ़ संबंध हों।

जैसे कि स्टेज पर कोई सम्मोहित कर रहा है आपको, तो आप कितने ही सम्मोहित हो जाएं, आपके भीतर एक हिस्सा असम्मोहित बना रहता है। क्योंकि आपको डर तो रहता ही है कि पता नहीं, यह आदमी क्या करवाए! तो अगर वह कहे कि गाय का दूध लगाओ, तो आप लगा लेंगे। वह कहे कि आप स्त्री की तरह चलो, तो चल लेंगे। लेकिन अगर वह कोई ऐसी बात कहे, जो आपके अंतःकरण के विपरीत पड़ती है, अनुकूल नहीं पड़ती है, या आपकी नैतिक दृष्टि के एकदम खिलाफ है, तो आप तत्क्षण जाग जाएंगे और इनकार कर देंगे।

जैसे किसी जैन को जो बचपन से ही गैर-मांसाहारी रहा है, सम्मोहित करके अगर कहा जाए कि मांस खा लो; वह फौरन जग जाएगा; वह सम्मोहन टूट जाएगा उसी वक्त।

किसी सती स्त्री को, जिसका अपने पति के अलावा कभी किसी के प्रति कोई भाव पैदा नहीं हुआ है, अगर उसे कहा जाए सम्मोहन में कि इस व्यक्ति को चूम लो, उसकी फौरन नींद खुल जाएगी, सम्मोहन टूट जाएगा। लेकिन अगर स्त्री का मन दूसरे पुरुषों के प्रति जाता रहा हो, तो सम्मोहन नहीं टूटेगा, क्योंकि इसमें कुछ खास विरोध नहीं हो रहा है। शायद उसकी दबी हुई इच्छा ही पूरी हो रही है।

तो जब कोई व्यावसायिक रूप से किसी को सम्मोहित करता है, तो आपके भीतर एक हिस्सा तो सजग रहता ही है। बहुत गहरे प्रवेश नहीं हो सकता। लेकिन जब कोई गुरु और शिष्य के संबंध में सम्मोहन घटित होता है, तो प्रवेश बहुत आंतरिक हो जाता है। व्यक्ति अपने को पूरा छोड़ देता है। इसलिए समर्पण का इतना मूल्य है, श्रद्धा का इतना मूल्य है।

सम्मोहन के माध्यम से निश्चित ही व्यक्ति के टाइप का पता लगाया जा सकता है। सम्मोहन के द्वारा व्यक्ति के पिछले जन्मों में प्रवेश किया जा सकता है। सम्मोहन के द्वारा व्यक्ति के भीतर कौन-से कारण हैं, जिनके कारण वह परेशान और उलझा हुआ है, वे खोजे जा सकते हैं। और सम्मोहन के माध्यम से बहुत-सी बातों का

निरसन किया जा सकता है, रेचन किया जा सकता है; बहुत-सी बातें मन से उखाड़कर बाहर फेंकी जा सकती हैं।

हम जो भी करते हैं ऊपर-ऊपर से, वह ऐसा है, जैसे कोई किसी वृक्ष की शाखाओं को काट दे। शाखाएं कटने से वृक्ष नहीं कटता, नए पीके निकल आते हैं। वृक्ष समझता है कि आप कलम कर रहे हैं। जब तक जड़ें न उखाड़ फेंकी जाएं, तब तक कोई परिवर्तन नहीं होता। वृक्ष फिर से सजीव हो जाता है।

आप मन के ऊपर-ऊपर जो भी कलम करते हैं, वह खतरनाक है। वह फायदा नहीं करती, नए अंकुर निकल आते हैं। वही बीमारियां और घनी होकर पैदा हो जाती हैं। जड़ उखाड़कर फेंकना हो, तो गहरे अचेतन में जाना जरूरी है।

लेकिन सम्मोहन अकेला मार्ग नहीं है। अगर आप ध्यान करें, तो खुद भी अपने भीतर इतने ही गहरे जा सकते हैं। सम्मोहन के द्वारा दूसरा व्यक्ति आपके भीतर गहरे जाता है और आपको सहायता पहुंचा सकता है। ध्यान के द्वारा आप स्वयं ही अपने भीतर गहरे जाते हैं और अपने को बदल सकते हैं।

जिन लोगों को ध्यान में बहुत कठिनाई होती हो, उनके लिए सम्मोहन का सहारा लेना चाहिए। लेकिन अत्यंत निकट संबंध हो किसी गुरु से, तभी। और जो व्यक्ति ध्यान में सीधे जा सकते हों, उनको सम्मोहन के विचार में नहीं पड़ना चाहिए। उसकी कोई भी जरूरत नहीं है।

और सम्मोहन का भी सहारा इसीलिए लेना चाहिए कि ध्यान में गहरे जाया जा सके, बस। और किसी काम के लिए सहारा नहीं लेना चाहिए। क्योंकि बाकी सब काम तो ध्यान में गहरे जाकर किए जा सकते हैं। सिर्फ ध्यान न होता हो, तो ध्यान में कैसे मैं गहरे जाऊं, सम्मोहन का इसके लिए सहारा लिया जा सकता है।

सम्मोहन गहरी प्रक्रिया है और बड़ी वैज्ञानिक है। और मनुष्य के बहुत हित में सिद्ध हो सकती है। लेकिन स्वभावतः, जो भी हितकर हो सकता है, वह खतरनाक भी है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि हमें नीचे बह रही प्राकृतिक ऊर्जा के ऊपर ऊर्ध्वगमन की चेष्टा क्यों करनी चाहिए?

कोई नहीं कहता है कि आप चेष्टा करें। आपकी ऊर्जा नीचे बह रही है, उससे दुख हो रहा है, उससे पीड़ा हो रही है, उससे जीवन व्यर्थ रिक्त हो रहा है। तो आपको ही लगता हो कि पीड़ा हो रही है, दुख हो रहा है, जीवन व्यर्थ जा रहा है, तो ऊपर ले जानी चाहिए। कोई आपसे कह नहीं रहा है कि आप ऊपर ले जाएं। और किसी के कहने से आप कभी ऊपर ले भी न जाएंगे।

लेकिन नीचे का अनुभव ही पीड़ादायी है। ऊर्जा का नीचे जाने का अर्थ है दुख, ऊर्जा का ऊपर जाने का अर्थ है आनंद। लेकिन नीचे जाती ऊर्जा अगर सिर्फ दुख ही देती हो, तब तो सभी लोग रुक जाएंगे। लेकिन नीचे जाती ऊर्जा सुख का प्रलोभन देती है और अंत में दुख देती है। इसीलिए तो इतने लोग उसमें बहे चले जाते हैं।

नीचे बहती हुई ऊर्जा आशा बंधाती है कि सुख मिलेगा। आशा ही रहती है, दुख मिलता है। लेकिन हम इतने बुद्धिहीन हैं कि प्रथम और अंतिम को कभी जोड़ नहीं पाते। हजार बार दुख पाकर भी फिर जब नया प्रलोभन आता है, तो हम उसी मछली की तरह व्यवहार करते हैं, जो अनेक बार आटे को पकड़ने में कांटे से पकड़ गई है, लेकिन फिर जब आटा लटकाता है मछुआ, तो फिर मछली आटे को पकड़ लेती है।

आटे और कांटे में मछली संबंध नहीं जोड़ पाती। हम भी नहीं जोड़ पाते कि हम जहां-जहां सुख की आशा रखते हैं, वहां-वहां दुख मिलता है, सुख मिलता नहीं। लेकिन इसका हम संबंध नहीं जोड़ पाते।

जहां भी आपको दुख मिलता हो, आप थोड़ा सोचें कि वहां आपने सुख चाहा था। सुख न चाहा होता, तो दुख मिल ही नहीं सकता। दुख मिलता ही तब है, जब हमने सुख चाहा हो। आटे को कोई मछली पकड़ेगी, तो ही कांटे से जकड़ सकती है। लेकिन जब कांटे से मछली जकड़ जाती है, तब वह भी नहीं सोच पाती कि इस आटे के कारण मैं कांटे में फंस गई हूं। आप भी नहीं सोच पाते कि जब दुख में आप उलझते हैं, तो किसी सुख की आशा में फंस गए हैं।

नीचे बहती ऊर्जा पहले सुख का आश्वासन देती है, फिर दुख में गिरा देती है। ऊपर उठती ऊर्जा पहले कष्ट, तप, साधना, जो कि कठिन है; द्वार पर ही मिलता है दुख ऊपर जाती साधना में; लेकिन अंत में सुख हाथ आता है।

तो आप एक बात ठीक से समझ लें, दुख अगर पहले मिल रहा हो और पीछे सुख मिलता हो, तो आप समझना कि ऊर्जा ऊपर की तरफ जा रही है। और अगर सुख पहले मिलता हुआ लगता हो और पीछे दुख हाथ में आता हो, तो ऊर्जा नीचे की तरफ जा रही है। यह लक्षण है कि आपकी शक्ति कब निम्न हो रही है और कब ऊर्ध्व हो रही है।

कोई भी आपसे नहीं कहता कि आप अपनी जीवन शक्ति को ऊपर ले जाएं। लेकिन आप आनंद चाहते हैं, तो जीवन शक्ति को ऊपर ले जाना पड़ेगा।

समस्त धर्म जीवन शक्ति को ऊपर ले जाने की विधियां है। सारा योग, सारा तंत्र, सब एक ही बात की चेष्टा है कि आपके जीवन की जो ऊर्जा नीचे गिरती है, वह ऊपर कैसे जाए। और एक बार ऊपर जाने लगे, तो दूसरे जगत का प्रारंभ हो जाता है।

देखा आपने, पानी नीचे की तरफ बहता है। लेकिन पानी को गरम करें और पानी भाप बन जाए, तो ऊपर की तरफ उड़ना शुरू हो जाता है। पानी ही है। लेकिन सौ डिग्री पर भाप बन गया, और क्रांतिकारी अंतर हो गया। आयाम बदल गया। दिशा बदल गई। पहले नीचे की तरफ बहता था; पहले कहीं भी पानी होता, तो वह गड्ढे की तलाश करता; अब आकाश की तलाश करता है।

आपके भीतर जो जीवन है, जो एनर्जी है, जो ऊर्जा है, वह भी एक विशेष प्रक्रिया से गुजरकर ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाती है। उस ऊपर उठती हुई ऊर्जा को हमने कुंडलिनी कहा है।

साधारणतः जैसा आदमी पैदा होता है प्रकृति से, वह ऊर्जा नीचे की तरफ जाती है। जमीन का ग्रेविटेशन उसे नीचे की तरफ खींचता है। जमीन की कशिश नीचे की तरफ खींचती है। और आप नीचे की तरफ चौबीस घंटे खिंच रहे हैं। और जिंदगी उतार है। बच्चा जितना पवित्र होता है, बूढ़ा उतना पवित्र नहीं रह जाता। बड़ी अदभुत बात है!

बच्चा जैसा निर्दोष होता है, बूढ़ा वैसा निर्दोष नहीं रह जाता। होना तो उलटा चाहिए। क्योंकि जीवन होना चाहिए एक विकास। यह तो हुआ पतन।

अगर हम बूढ़े आदमी के मन को खोल सकें, तो हम पाएंगे कि बूढ़ा आदमी डर्टी, एकदम गंदा हो जाता है। जीवन की सारी की सारी वासना तो बनी रहती है और शक्ति सब खो जाती है। और वासना मन में घूमती है। जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है, शरीर की शक्ति तो खोती जाती है और वासना चित्त को घेरती है। क्योंकि चित्त कभी भी बूढ़ा नहीं होता, वह जवान ही बना रहता है। तो बड़ी गंदगी घिर जाती है।

बच्चे और बूढ़े में विकास न दिखाई देकर, पतन दिखाई पड़ता है। कारण सिर्फ एक है, कि बच्चे की ऊर्जा अभी बहनी शुरू नहीं हुई है। जैसे-जैसे वह बड़ा होगा, ऊर्जा नीचे की तरफ बहनी शुरू होगी। और अगर कोई प्रयोग न किए जाएं, तो ऊर्जा ऊपर की तरफ न बहेगी।

इन मित्र ने यह भी पूछा है कि अगर साक्षी-भाव या साधना लानी पड़ती है, तब तो फिर वह अप्राकृतिक हो गई। तो क्या प्रकृति का विरोध करना ठीक है?

प्रकृति नीचे भी है और ऊपर भी है। जब भाप आकाश की तरफ उड़ती है, तब भी प्राकृतिक नियमों का ही अनुगमन कर रही है। और जब पानी नीचे की तरफ बहता है, तब भी प्राकृतिक नियमों का ही अनुगमन कर रहा है।

ऊपर की तरफ ले जाने वाले नियम भी प्राकृतिक हैं। और नीचे की तरफ ले जाने वाले नियम भी प्राकृतिक हैं। चुनाव आपको कर लेना है। और मनुष्य स्वतंत्र है चुनाव के लिए, यही मनुष्य की गरिमा है। मनुष्य की खूबी यही है। पशुओं से उसमें विशेषता है, तो सिर्फ एक, कि पशु चुनाव करने को स्वतंत्र नहीं है। उसको कोई च्वाइस नहीं है। उसकी ऊर्जा नीचे की तरफ ही बहेगी। वह चुनाव नहीं कर सकता ऊपर की तरफ बहने का। वह चाहे तो भी नहीं कर सकता। वह चाह भी नहीं सकता।

पशु बंधा हुआ है, नीचे की तरफ ही बहेगा। मनुष्य को संभावना है। अगर वह कुछ न करे, तो नीचे की तरफ बहेगा। अगर कुछ करे, तो ऊपर की तरफ भी बह सकता है। मनुष्य के पास उपाय है।

और जो मनुष्य चुनाव नहीं करता, वह पशु ही बना रह जाता है। वह कभी मनुष्य नहीं बन पाता। क्योंकि फिर पशु में और उसमें कोई फर्क नहीं है। एक ही शुरुआत है फर्क की और वह यह है कि हम चुन सकते हैं। हम चाहें तो ऊपर की तरफ भी बह सकते हैं।

एक बड़े मजे की बात है। चूंकि हम ऊपर की तरफ भी बह सकते हैं, इसलिए हम पशु से भी ज्यादा नीचे गिर सकते हैं। अगर आदमी पशु होना चाहे, तो सभी पशुओं को मात कर देता है। दुनियाभर के सारे जंगली जानवरों को भी इकट्ठा कर लें, तो भी हिटलर का मुकाबला नहीं कर सकते, चंगेजखां का मुकाबला नहीं कर सकते।

दुनिया का कोई पशु आदमी जैसा पशु नहीं हो सकता, अगर आदमी पशु होना चाहे। क्योंकि जितने आप ऊपर उठ सकते हैं, उतने ही अनुपात में नीचे गिर सकते हैं। जितने बड़े शिखर पर चढ़ने की संभावना है, उतनी ही बड़ी खाई में गिर जाने की भी संभावना साथ ही जुड़ी हुई है। शिखर और खाई साथ-साथ चलते हैं। पतन और विकास साथ-साथ चलते हैं।

लेकिन कोई भी पशु बहुत नीचे नहीं गिर सकता। आप जंगल में चले जाएं, तो आप पता भी नहीं लगा सकते कि कौन-सा सिंह ज्यादा पशु है। सभी सिंह एक जैसे पशु हैं। भूख लगती है, चीर-फाड़कर खा जाते हैं। लेकिन दो सिंहों में कोई फर्क नहीं किया जा सकता। एक सिंह नीचा गिर गया है और एक सिंह ऊंचा है, ऐसा आप फर्क नहीं कर सकते।

आदमी ऊपर उठना चाहे, तो बुद्ध और कृष्ण भी और क्राइस्ट भी उसमें पैदा हो जाते हैं। और नीचे गिरना चाहे, तो चंगेज और नादिर और हिटलर और स्टैलिन भी पैदा हो जाते हैं। कोई अड़चन नहीं है। और आदमी कुछ न करे, तो साधारण किस्म का पशु रह जाता है।

ऊपर की तरफ जाने के लिए श्रम करना होगा। लेकिन श्रम के कारण आप यह मत समझ लेना कि वह अप्राकृतिक है। आदमी जमीन पर चलता है। नाव में पानी में चलता है। हवाई जहाज में हवा में चलता है। अब अंतरिक्ष यान हमने बनाए हैं, वे आकाश में हवा के पार भी चले जाते हैं। अप्राकृतिक कुछ भी नहीं है। क्योंकि अप्राकृतिक तो घटित ही नहीं हो सकता।

हवा में जब आदमी उड़ रहा है हवाई जहाज में, तब भी प्रकृति के नियमों का ही उपयोग कर रहा है। और जब आदमी नहीं उड़ता था, तो उसका मतलब यह नहीं है कि तब नियम नहीं थे। नियम थे, हमें उनका पता नहीं था।

तो जब आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होते हैं, तब भी आप प्रकृति के ही नियमों का काम कर रहे हैं। और जब आप कामवासना में गिरते हैं, तब भी प्रकृति के ही नियमों का काम हो रहा है।

एक हवाई जहाज जब हवा में उड़ता है, तब भी प्रकृति के नियम काम रहे हैं। और जब हवाई जहाज में कुछ गड़बड़ हो जाती है और हवाई जहाज ऊपर से नीचे गिरकर जमीन पर टकराता है, तब भी प्रकृति के ही नियम काम कर रहे हैं।

आप कितने ढंग से प्रकृति के नियमों का अपने अनुकूल उपयोग करते हैं, उस मात्रा में आपके जीवन में आनंद फलित होता है। और आप किस मात्रा में प्रकृति के नियमों का उपयोग नहीं कर पाते अपने अनुकूल या अपने को नियमों के अनुकूल नहीं बना पाते, उस मात्रा में दुख होता है।

ऊपर की यात्रा भी प्राकृतिक ही है, अप्राकृतिक नहीं; लेकिन उच्चतर प्रकृति की तरफ है। नीचे की यात्रा भी प्राकृतिक है, लेकिन निम्न है। और जो निम्न है, वह दुख लाता है। और जो निम्न है, वह नरक बन जाता है। और जो श्रेष्ठ है, उच्च है, वह स्वर्ग बन जाता है और आनंद की संभावना के द्वार खुल जाते हैं।

लेकिन कोई आपसे कह नहीं रहा है कि आप ऐसा करें। और किसी के कहने से आप करेंगे भी नहीं।

तो मैं तो आपसे इतना ही कह रहा हूं कि आप पहचानें कि अगर आप दुख में हैं, तो आप पहचान लें कि आप नीचे की तरफ जा रहे हैं। और आपको अगर दुख में ही रहना हो, तो फिर कुशलता से नीचे की तरफ जाएं। लेकिन नीचे की तरफ जाकर सुख की आशा न करें। वह आशा गलत है। और आपको लगता हो कि दुख को बदलना है जीवन से और आनंद की यात्रा करनी है, तो ऊपर की तरफ उठना शुरू हों। और ऊपर की तरफ उठने में पहले कष्ट होगा; उसको ही हमने तप कहा है।

जब भी कोई पहाड़ की तरफ चढ़ेगा, तो परेशानी होगी। पहाड़ से उतरते वक्त कोई परेशानी नहीं होती। सभी चढ़ाव कष्टपूर्ण हैं। लेकिन सभी चढ़ावों के अंत पर विश्राम है। और कष्ट के बाद जो विश्राम है, उसका स्वाद, उसका मूल्य ही कुछ और है।

और बहुत मजे की बात है। अगर एक हवाई जहाज से आपको एवरेस्ट पर उतार दिया जाए, तो आपको वह आनंद कभी उपलब्ध न होगा, जो हिलेरी और तेनसिंह को चढ़कर एवरेस्ट पर पहुंचकर हुआ है। आप भी उसी जगह खड़े हो जाएंगे हवाई जहाज से उतरकर, जिस जगह हिलेरी और तेनसिंह जाकर खड़े हुए थे। लेकिन जो आनंद उनको मिला था, वह आपको न मिलेगा। क्योंकि आनंद सिर्फ मंजिल में ही नहीं है, यात्रा में भी है। और यात्रा से मंजिल अगर अलग कर ली जाए, तो कोरी, निस्सार, रसहीन हो जाती है।

इसलिए शार्टकट खोजने की फिक्र नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जितना शार्टकट आप खोज लेंगे, उतना ही मंजिल का रस चला जाएगा। यात्रा का अपना सुख है। और यात्रा का सुख ही इकट्ठा होकर मंजिल पर उपलब्ध

होता है। जो यात्रा से बचने की कोशिश करता है, वह एक दफे पहुंच भी सकता है। लेकिन उस पहुंचने में कोई भी रस न होगा, कोई भी रस न होगा।

जो लोग बद्री और केदार की यात्रा पैदल करते रहे थे, उनका मजा और था। अब बस से जा सकते हैं; अब वह बात न रही। कल हवाई जहाज से सीधा उतरेंगे; कोई रस न रह जाएगा। क्योंकि यात्रा और मंजिल दो चीजें नहीं हैं। यात्रा का ही अंतिम पड़ाव है मंजिल। और जिसने यात्रा ही काट दी, एक अर्थ में उसकी मंजिल ही कट गई।

यात्रा के कष्ट से भयभीत न हों, क्योंकि मंजिल के सुख में उसका भी अनुदान है।

इसी संदर्भ में एक मित्र ने और पूछा है कि स्लेटर ने चूहे के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड्स डालकर उसके मस्तिष्क के विशेष तंतु कंपित करके संभोग का आनंद दिलाया। समाधि भी अस्तित्व से एक तरह का संभोग है। क्या यह संभव नहीं है कि मस्तिष्क के कोई तंतु समाधिस्थ अवस्था में कंपित होते हों? और इनकी वैज्ञानिक व्यवस्था की जा सके, तो फिर साधारण आदमी को भी उसके समाधि वाले तंतुओं को कंपित करके समाधि का अनुभव दिया जा सकता है। फिर साधना की, योग की कोई जरूरत न रहेगी। योग तो कहता है कि समाधि को उपलब्ध करने वाला सहस्रार चक्र तक मस्तिष्क में छिपा हुआ है!

निश्चित ही, स्लेटर जैसे मनोवैज्ञानिकों का यही ख्याल है कि समाधि भी यंत्रों के द्वारा पैदा की जा सकती है। न केवल ख्याल है, बल्कि यंत्र भी निर्मित हो गए हैं। न केवल यंत्र निर्मित हो गए हैं, हजारों-लाखों लोग पश्चिम में यंत्रों का उपयोग भी कर रहे हैं। कोई हजार रुपए की कीमत का यंत्र है। उस यंत्र से आप मस्तिष्क में तार जोड़ देते हैं, यंत्र को चला देते हैं और यंत्र आपके मस्तिष्क के भीतर की तरंगों की खबर देने लगता है।

एक खास तरंग, जिसको पश्चिम में वे अल्फा कहते हैं, अल्फा तरंग में आदमी ध्यान की अवस्था में पहुंच जाता है। तो यंत्र खबर देने लगता है कि आपमें कब अल्फा पैदा होती है। और जैसे ही अल्फा पैदा होती है, यंत्र आवाज करता है और आप समझ जाते हैं कि अल्फा तरंग पैदा हो गई। अब इसी तरंग में आपको ठहरे रहना है।

यंत्र की सहायता से आप थोड़े दिन में ठहरना सीख जाते हैं। बहुत कठिन नहीं है। दो-चार दिन में आप ठहरना सीख जाते हैं। क्योंकि आपको अंदाज हो जाता है; यंत्र खबर देता है कि ठीक यही चीज अल्फा है। क्योंकि यंत्र आवाज करता है और आप पहचान जाते हैं कि अल्फा भीतर पैदा हो रही है। बस, अब इसी तरंग में रुक जाना है। एक दो-चार दिन के अभ्यास से... ।

मेरे पास वह यंत्र है। इधर मैं उस पर प्रयोग किया हूं। दो-चार दिन के अभ्यास से आप ध्यान अनुभव करने लगते हैं। बहुत शांति और विश्राम अनुभव होता है। ध्यान जो लोग करते हैं, जब वे ध्यान की अवस्था में हैं, तब यह यंत्र लगा दिया जाए, तो फौरन अल्फा की आवाज देना शुरू कर देता है।

तो अब तो पश्चिम में वे इसकी भी जांच करने में सफल हो गए हैं कि कौन आदमी ध्यान में है, कौन नहीं है। अब आप झूठा दावा नहीं कर सकते, क्योंकि यंत्र खबर देगा कि आप ध्यान में हैं या नहीं हैं। आप ऐसे ही नहीं कह सकते कि मैं ध्यान में हूं। क्योंकि वह यंत्र को धोखा नहीं दिया जा सकता। आप धोखा देने की कोशिश करेंगे, फौरन अल्फा चली जाएगी, क्योंकि धोखा देने का ख्याल भी बाधा है। जरा-सा कोई विचार आएगा, यंत्र आवाज बंद कर देगा। जैसे ही विचार बंद होंगे, यंत्र आवाज देने लगेगा।

इस यंत्र पर काफी काम चल रहा है। लेकिन इस यंत्र से जो पैदा होता है, वह भी यात्रारहित मंजिल है। और इसलिए एक बहुत मजे की बात ख्याल में वहां भी आनी शुरू हो गई है कि इस यंत्र से भी अल्फा पैदा हो जाती है और ध्यान करने वालों को भी अल्फा पैदा होती है। लेकिन ध्यान करने वाला कहता है, परम आनंद मुझे मिल रहा है। और यह अल्फा, यंत्र से पैदा हुआ वाला आदमी कहता है, मुझे थोड़ी शांति मालूम पड़ रही है। दोनों के वक्तव्य में बुनियादी भेद है।

ध्यान करने वाला कहता है, मुझे परम आनंद मिल रहा है। और यंत्र दोनों के बाबत एक ही खबर दे रहा है कि अल्फा! यंत्र में कोई फर्क नहीं है। जो समाधि का प्रयोग कर के पहुंचा है उसके बाबत, और जो केवल मशीन के साथ तारतम्य बिठाया है उसके बाबत, यंत्र एक-सी खबर देता है। लेकिन मशीन से जिसने सीखा है, वह कहता है, मुझे थोड़ी शांति मालूम पड़ती है। और जो ध्यान से आया है, वह कहता है, मुझे आनंद मालूम पड़ता है। तब बड़ी कठिनाई है।

तब अभी विचारकों को संदेह पैदा होने लगा है कि यंत्र से जो चीज पैदा हो रही है, वह शायद बाह्य रूप से एक-सी है, लेकिन भीतरी हिस्से पर भिन्न है। क्योंकि जिस आदमी ने तीस साल ध्यान किया है, वह कहता है, मुझे परम आनंद की, परम ब्रह्म की अनुभूति हो रही है। और यह मशीन से तो तीन महीने में उतनी स्थिति पैदा हो जाएगी, जितनी बुद्ध को वर्षों में पैदा हुई है। महावीर को वर्षों में--वर्षों में भी कहना ठीक नहीं, जन्मों में पैदा हुई। उतना तो तीन महीने में यह यंत्र पैदा कर देगा।

लेकिन जिन लोगों में तीन महीने में इस यंत्र ने वह हालत पैदा कर दी, वे बुद्ध नहीं हो जाते। न तो उनके जीवन में कोई परिवर्तन होता है, न उनके जीवन में कोई सत्य, न उनके जीवन में कोई प्रफुल्लता, न उनके जीवन में कोई उत्सव आता है। उनके जीवन में वह सुगंध नहीं दिखाई पड़ती, जो बुद्ध के जीवन में दिखाई पड़ती है।

तो कुछ बुनियादी भीतरी फर्क होगा। वह फर्क क्या है? क्योंकि यंत्र तो कहता है, दोनों में एक-सी तरंगें पैदा हो रही हैं। वह फर्क है, यात्रा का फर्क। वह फर्क है, असली फूल और बाजार से खरीद लाए फूल--अपने बगीचे में पैदा किए गए फूल और जाकर बाजार से एक फूल खरीद लाएं हैं, टूटा हुआ, उसमें जो फर्क है।

यह जो यंत्र से पैदा हो रहा है, यह ऊपर से चेष्टित और आरोपित है। मन यह अभ्यास सीख लेगा, और इस यंत्र के साथ तालमेल बिठा लेगा। तालमेल बैठ जाने से शांति मालूम पड़ेगी। और जिन लोगों को अशांति से तकलीफ है, उनके लिए यंत्र उपयोगी है। लेकिन ध्यान की पूर्ति नहीं होगी। ध्यान की पूर्ति असंभव है।

इसको हम ऐसा समझें। स्लेटर का जो प्रयोग मैंने आपसे कहा कि चूहे को उसने संभोग का प्रयोग करा दिया यंत्र से, और चूहा प्रयोग करता चला गया। इसमें भी वही फर्क है।

अगर किसी स्त्री से आपका प्रेम है--जो जरा मुश्किल बात है। क्योंकि आमतौर से तो लोग सोचते हैं कि सभी को प्रेम है। प्रेम इतनी ही कठिन बात है, जैसा कभी-कभी कोई वैज्ञानिक होता है। कभी-कभी कोई कवि होता है। कभी-कभी कोई दार्शनिक होता है। कभी-कभी कोई चित्रकार होता है। ऐसे ही कभी-कभी कोई प्रेमी होता है। प्रेमी भी सब लोग होते नहीं।

अगर सच में ही किसी पुरुष को किसी स्त्री से प्रेम है, तो उस स्त्री के साथ संभोग में जो आनंद उसे उपलब्ध होगा, वह स्लेटर का यंत्र पैदा नहीं करवा सकता। हां, अगर आपको स्त्री से कोई प्रेम नहीं है और आप किसी वेश्या के पास संभोग करने चले गए हैं, तो जो आपको क्षणभर की जो प्रतीति होगी संभोग में--मुक्तता की, खाली हो जाने की, बोझ के उतर जाने की--वह स्लेटर के यंत्र से भी हो जाएगी।

यंत्र के द्वारा भी वह संभोग पैदा हो सकता है, जो उस व्यक्ति के साथ आपको पैदा होता है, जिससे आपका कोई गहरा प्रेम नहीं है। लेकिन अगर प्रेम है, तो यंत्र फिर उस संभोग को पैदा नहीं कर सकता।

अगर आपको सिर्फ मन की थोड़ी-सी शांति चाहिए, जो कि ट्रैंक्वेलाइजर से भी पैदा हो जाती है, तो वैसी ही शांति आपको अल्फा तरंगें पैदा करने वाले यंत्र से भी पैदा हो जाएगी।

लेकिन अगर ध्यान आपकी कोई आत्मिक यात्रा है; जैसी बुद्ध की खोज है, महावीर की खोज है, ऐसी अगर कोई खोज है, जिस पर आपका पूरा जीवन समर्पित है; यह कोई शांति की तलाश नहीं है, सत्य की तलाश है; यह केवल दुख और बोझ के कम होने की बात नहीं है, आनंद में स्थापित होने की बात है; यह कोई कामचलाऊ जिंदगी ठीक से चल सके, इसलिए थोड़ी शांति रहे, ऐसी व्यवस्था नहीं है, बल्कि परम मुक्ति कैसे अनुभव हो, उसकी खोज है; तो फिर यंत्र से यह आनंद, यह समाधि, यह ध्यान उपलब्ध नहीं होगा।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कोई यंत्र का विरोध कर रहा हूं। मैं सिर्फ इतना कह रहा हूं कि यंत्र का भी उपयोग करना अच्छा है। उससे कम से कम शांति तो मिलेगी। और यह भी ख्याल आएगा कि जब यंत्र से इतनी शांति मिल सकती है, तो ध्यान से कितनी संभावना हो सकती है और समाधि से कितना... !

एक झलक उससे मिलेगी, वह झलक अपने आप में बुरी नहीं है। लेकिन अगर कोई सोचता हो कि यंत्र योग की जगह ले लेंगे, तो भूल में है। कोई अगर सोचता हो कि यंत्र प्रेम की जगह ले लेंगे, तो भूल में है।

वह जो आंतरिक है, उसकी जगह कोई भी यंत्र नहीं ले सकता। लेकिन अगर आपकी जिंदगी सिर्फ बाह्य है, तो यंत्र उसकी जगह ले सकते हैं।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान अर्थात ज्ञान का साधन और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप संक्षेप से कहा गया। इसको तत्व से जानकर मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संबंध में, ज्ञान और ज्ञान के साधन के संबंध में, कृष्ण कहते हैं, मैंने थोड़ी-सी बातें कहीं। इनको अगर कोई तत्व से जान ले, तो वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

तत्व से जानकर! इसे हम समझ लें।

एक तो जानकारी है सूचना की। कोई कहता है, हम सुन लेते हैं और हम भी जान लेते हैं। वह तत्व से जानना नहीं है। एक जानकारी है अनुभव की, स्वयं के साक्षात की। हम ही जानते हैं। तब हम तत्व से जानते हैं।

एक आदमी कहता है कि सागर का जल खारा है। हम समझ गए। जल भी हमने देखा है। सागर भी हमने देखा है। खारेपन का भी हमको पता है। समझ गए। वाक्य का अर्थ हमारी समझ में आ गया कि सागर का जल खारा है। लेकिन यह अर्थ शाब्दिक है। हमने सागर के जल को कभी चखा नहीं। और बिना चखे हमें कुछ पता न चलेगा। चखकर जो हमें पता चलेगा, वह तत्व से ज्ञान होगा। अनुभव से अपने जो ज्ञान होता है, वह तत्व है। दूसरे से भी उसके संबंध में खबर मिल सकती है।

खतरा यह है कि हम दूसरे से मिली खबरों को भी अपना ज्ञान समझ लेते हैं। इसी तरह दुनिया में अनेक लोग अज्ञानी के अज्ञानी मर जाते हैं, इस भ्रांति में कि वे जानते हैं, इस भ्रांति में कि उन्हें ज्ञान है।

रोज मुझे ऐसे लोगों से मिलना हो जाता है, जिन्हें शास्त्र कंठस्थ हैं। अगर कृष्ण भी मिल जाएं और फिर से उनसे कहा जाए कि गीता कहो, तो दोहरा न सकेंगे। क्योंकि कृष्ण को कोई यह कंठस्थ नहीं है। बहुत-सी बातें छूट जाएंगी, बहुत-सी नई जुड़ जाएंगी। सब ढांचा बदल जाएगा। लेकिन इनको जिनको गीता कंठस्थ है, इनसे

भूल होने का उपाय नहीं है। ये कृष्ण में भी भूलें बता सकते हैं। क्योंकि कृष्ण दुबारा दोहरा न सकेंगे। यह तो सहजस्फूर्त थी। मगर इनको कंठस्थ है।

ये जो कंठस्थ हैं, इनको धीरे-धीरे यह भ्रांति पैदा हो जाती है कि इन्हें पता है।

ऐसा हुआ एक बार कि इंग्लैंड में एक प्रतियोगिता रखी गई। प्रतियोगिता यह थी कि सारी दुनिया से अभिनेता आमंत्रित किए गए थे कि वे चार्ली चैपलिन का अभिनय करें। चार्ली चैपलिन को मजाक सूझा; उसने सोचा मैं भी क्यों न किसी और नाम से अभिनय में सम्मिलित हो जाऊं! मुझे तो पुरस्कार निश्चित है। शक की कोई बात ही नहीं, क्योंकि चार्ली चैपलिन का ही अभिनय करना था दूसरों को।

सारी दुनिया में अनेक जगह प्रतियोगिताएं हुईं और फिर सौ प्रतियोगी लंदन में इकट्ठे हुए; किसी को शक भी नहीं था कि उसमें एक चार्ली चैपलिन भी है। वे सभी चार्ली चैपलिन जैसे लग रहे थे। वैसी ही मूंछ लगाई थी। वैसे ही कपड़े पहने थे। वैसी ही चाल चलते थे। तो उसमें चार्ली चैपलिन भी छिप गया था। वह भी किसी दूसरे नाम से भर्ती हो गया था।

अगर पता चल जाता आयोजकों को, तो उसे निकाल बाहर करते। क्योंकि उसका तो कोई सवाल ही नहीं था। फिर तो प्रतियोगिता खराब ही हो गई। इसलिए वह छिपकर ही सम्मिलित था।

मगर कठिनाई तो तब हुई, जब उसको तीसरा नंबर मिला। और जब पता चला कि वह मौजूद था और नंबर तीन आया चार्ली चैपलिन की नकल करने में, तब तो बड़ी हैरानी हुई कि यह बात क्या हो गई! दूसरे लोग हाथ मार ले गए। क्योंकि दूसरे लोगों के लिए सिर्फ नकल थी बंधी हुई! चार्ली चैपलिन को सहज मामला है। उसने कुछ नया कर दिया होगा, जो उसने पहले कभी नहीं किया था। उसी में फंस गया वह। क्योंकि जो उसने पहले नहीं किया था, वह तो निरीक्षकों को भी पता नहीं था, ज.जेस को भी पता नहीं था। और जो उसने पहले नहीं किया था, वह तो चार्ली चैपलिन का माना ही नहीं जा सकता। और उसे कभी ख्याल ही नहीं था कि अपनी नकल कैसे करनी। उसने जिंदगीभर जो भी किया था, वह सहज था। पहली दफा उसने नकल करने की कोशिश की। खुद ही हार गया अपनी ही नकल में! नंबर तीन पर आया।

आप पक्का समझिए कि अगर कृष्ण भी कहीं बिठा दिए जाएं प्रतियोगिता में कंठस्थ गीता वालों से; हारेंगे। इनसे जीतने का कोई उपाय नहीं है। ये हाथ मार ले जाएंगे। क्योंकि इनको बिल्कुल कंठस्थ है, यंत्रवत।

ज्ञान को कंठस्थ होने की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ अज्ञान कंठस्थ करता है। कंठस्थ का मतलब ही यह है कि तुम्हें पता नहीं है। तुम्हारे भीतर नहीं है। सिर्फ कंठ में है। शब्दों की याददाश्त है।

हम सबको शब्द याद हैं। और शब्दों के याद होने से भ्रांति होती है कि हमें मालूम है। शब्द खतरनाक हैं। अगर बार-बार दोहराते रहें, तो आप ही भूल जाते हैं कि पता नहीं है। ईश्वर, ईश्वर, ईश्वर सुनते-सुनते ऐसा लगने लगता है कि हमें मालूम है कि ईश्वर है। आत्मा, आत्मा, आत्मा सुनते-सुनते आप भूल ही जाते हैं कि आत्मा न हमें पता है कि क्या है, न कोई अनुभव है, न कोई स्वाद है।

यह बड़ी खतरनाक स्थिति है। क्योंकि शब्द एक भ्रम पैदा कर देते हैं, एक हवा पैदा कर देते हैं चारों तरफ कि मालूम है।

अगर कोई आपसे पूछे, आत्मा है? आप फौरन कहेंगे, हां। बिना एक रत्तीभर शक पैदा हुए कि हमें कुछ भी पता नहीं है कि आत्मा है या नहीं है।

और जितने आप विश्वास से कह रहे हैं, है; उतने ही विश्वास से रूस में किसी से पूछो, वह कहता है, नहीं है। क्योंकि बचपन से उसको सिखाया जा रहा है, नहीं है, नहीं है। आपको सिखाया जा रहा है, है, है। आप दोनों

एक से हैं। जरा भी फर्क नहीं है। वह भी तोते की तरह दोहराया गया है उसको कि आत्मा नहीं है। और आपको भी तोते की तरह दोहराया गया है कि आत्मा है।

ऊपर से देखने पर कितना फर्क मालूम पड़ता है! आप लगते हैं आस्तिक और वह रूस का आदमी लगता है नास्तिक। आप दोनों एक से हैं। न तो आप आस्तिक हैं, न वह नास्तिक है। वह भी, जो उसने सुना है, दोहरा रहा है। जो आपने सुना है, आप दोहरा रहे हैं। फर्क क्या है? फर्क तो पैदा होगा, जब तत्व से ज्ञान होगा।

सुनी हुई बातचीतों का कोई भी मूल्य नहीं है। और उसी आदमी को मैं बुद्धिमान कहता हूं, जो यह याद रख सके कि सुनी हुई बातें मेरा ज्ञान नहीं है। सुनी हुई बातों को एक तरफ रखे।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सुनी हुई बातें बुरी हैं। यह भी नहीं कह रहा हूं कि सुनी हुई बातों का कोई उपयोग नहीं है। लेकिन इतना स्मरण होना चाहिए कि क्या है मेरी स्मृति और क्या है मेरा ज्ञान! क्या मैंने सुना है और क्या मैंने जाना है!

जो जाना है, वही तुम्हारा है, वही तत्व है। जो नहीं जाना है, सुना है, वह सिर्फ धारणाएं हैं, प्रत्यय हैं, कंसेप्ट्स हैं। उनसे कोई जीवन बदलेगा नहीं।

तो कृष्ण कहते हैं, जो तत्व से जानता है, वह मेरा भक्त मेरे स्वरूप को उपलब्ध हो जाता है। स्वभावतः, जो तत्व से जानेगा, वह परम ईश्वर के स्वरूप के साथ एक हो ही जाएगा। उसे कोई बाधा नहीं है।

और हे अर्जुन, प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी मेरी माया और पुरुष अर्थात क्षेत्रज्ञ, इन दोनों को ही तू अनादि जान।

यह प्रश्न विचारणीय है और बहुत ऊहापोह मनुष्य इस पर करता रहा है।

हमारे मन में यह सवाल उठता ही रहता है कि किसने बनाया जगत को? किसने बनाया? कौन है स्रष्टा? जरूर कोई बनाने वाला है। हमारा मन यह मान ही नहीं पाता कि बिना बनाए यह जगत हो सकता है। बनाने वाला तो चाहिए ही।

तो हम बच्चों जैसी बातें करते रहते हैं और हम बच्चों जैसी बातें प्रचारित भी करते रहते हैं कि जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है, ऐसा स्रष्टा है कोई, जो सृष्टि को बनाता है।

कृष्ण कहते हैं, तू दोनों को अनादि जान, प्रकृति को भी और पुरुष को भी।

वे बनाए हुए नहीं हैं, वे सदा से हैं। कभी प्रकट होते हैं, कभी अप्रकट। लेकिन मिटता कुछ भी नहीं है और न कुछ बनता है। कभी दृश्य होते हैं, कभी अदृश्य। लेकिन जो अदृश्य है, वह भी है। जो दृश्य है, वही नहीं है; अदृश्य भी है। आज मौजूद है, कल गैर-मौजूद हो जाता है। यह गैर-मौजूदगी भी अस्तित्व का एक ढंग है। यह न होना भी होने का एक प्रकार है। क्योंकि बिल्कुल परिपूर्ण रूप से नहीं तो जो है, वह हो ही नहीं सकता।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, प्रकृति भी और पुरुष भी!

वह जो दिखाई पड़ता है वह, और वह जो देखता है वह, वे दोनों अनादि हैं। उनका कोई प्रारंभ नहीं है। उनके प्रारंभ की बात ही बचकानी है।

एक मित्र ने सवाल पूछा है। उन्होंने पूछा है कि विज्ञान तो धर्म से जीत गया संघर्ष में! वह इसीलिए जीत गया कि वह जो भी कहता है, स्पष्ट है। और धर्म जो भी कहता है, वह स्पष्ट नहीं है। और उन मित्र ने यह कहा है कि धर्म अभी तक नहीं बता पाया कि जगत को किसने बनाया? सृष्टि कैसे हुई? क्यों हुई?

उनके प्रश्न में थोड़ा अर्थ है।

धर्म तो वस्तुतः कहता है कि जगत अनादि है; किसी ने बनाया नहीं है। बनाने की बात ही बच्चों को समझाने के लिए है। और इस संबंध में विज्ञान भी राजी है। विज्ञान भी कहता है कि अस्तित्व प्रारंभ-शून्य है।

ईसाइयत से विज्ञान की थोड़ी कलह हुई। और कलह का कारण यह था कि ईसाइयत ने तय कर रखा था कि जगत एक खास तारीख को बना। एक ईसाई पादरी ने तो तारीख और दिन सब निकाल रखा था। जीसस से चार हजार चार साल पहले, फलां-फलां दिन, इतने बजे सुबह जगत का निर्माण हुआ!

विज्ञान को अड़चन और कलह शुरू हुई ईसाइयत के साथ। विज्ञान और धर्म का संघर्ष नहीं है। विज्ञान और ईसाइयत में संघर्ष हुआ जरूर, क्योंकि ईसाइयत की बहुत-सी धारणाएं बचकानी थीं। और विज्ञान ने कहा कि यह तो बात एकदम गलत है कि चार हजार साल पहले जीसस के पृथ्वी बनी या जगत बना। क्योंकि पृथ्वी में ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं, जो लाखों-लाखों साल पुराने हैं।

आदमी लेकिन बड़ा बेईमान है। और आदमी अपने लिए जो भी ठीक मानना चाहता है, उसको ठीक मान लेता है। तरकीबें निकाल लेता है। जिस बिशप ने यह सिद्ध किया था कि जीसस के चार हजार चार साल पहले पृथ्वी बनी, उसने एक वक्तव्य जाहिर किया। और उसने कहा कि हम यह मानते हैं कि पृथ्वी में ऐसी चीजें मिलती हैं, जो लाखों साल पुरानी हैं।

अब यह बड़ी कठिन बात है। अगर पृथ्वी में ऐसी चीजें मिलती हैं, जो लाखों साल पुरानी हैं, तो पृथ्वी कैसे बन सकती है चार हजार साल पहले या छः हजार साल पहले?

उस बिशप ने कहा कि भगवान के लिए सभी कुछ संभव है। उसने चार हजार साल पहले पृथ्वी बनाई और पृथ्वी में ऐसी चीजें रख दीं जो लाखों साल पुरानी मालूम पड़ती हैं; लोगों की भक्ति की परीक्षा के लिए! कि लोग अगर सच में निष्ठावान हैं, तो वे कहेंगे, हमारी तो निष्ठा है। यह भगवान हमारी परीक्षा ले रहा है।

ये आदमी के बेईमान होने के ढंग इतने हैं कि वह अपनी बेईमानी में ईश्वर तक को भी फंसा लेता है। ईश्वर ने बनाई तो चार हजार साल पहले ही चीजें, लेकिन ईश्वर के लिए क्या असंभव है! सर्व शक्तिशाली है। उसने उसको इस ढंग से बनाया कि वैज्ञानिक धोखा खा जाते हैं कि लाख साल पुरानी है। सिर्फ छांटने के लिए कि जो असली आस्तिक हैं, वे राजी रहेंगे; और जो नकली आस्तिक हैं, वे नास्तिक हो जाएंगे। उसने यह तरकीब बिठाई।

लेकिन कृष्ण की धारणा बहुत वैज्ञानिक है। वे कहते हैं कि प्रकृति और पुरुष का कोई आदि-प्रारंभ नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि इस जगत का प्रारंभ नहीं है।

इसका फर्क समझ लें।

प्रकृति का कोई प्रारंभ नहीं है, पुरुष का कोई प्रारंभ नहीं है। आपके शरीर का कोई प्रारंभ नहीं है और आपकी आत्मा का भी कोई प्रारंभ नहीं है। लेकिन आपका प्रारंभ है। आपकी आत्मा भी अनादि है और आपका शरीर भी अनादि है। क्योंकि शरीर में क्या है जो आपके पहले नहीं था! सभी कुछ था। मिट्टी थी, हड्डी-मांस, जो भी आपके भीतर है, वह सब था; किसी रूप में था।

अगर आपके शरीर की सब चीजें निकाली जाएं, तो वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार, साढ़े चार रुपए का सामान उसमें निकलता है। अल्युमिनियम, तांबा, पीतल सब है। बहुत थोड़ा-थोड़ा है। सब निकाल लिया जाए, तो कोई सस्ते जमाने में साढ़े चार रुपए का होता था, अब कुछ महंगा होता होगा। लेकिन यह सब था।

शरीर भी आपका अनादि है। और आपके भीतर जो छिपी हुई आत्मा है, वह भी अनादि है। लेकिन आप अनादि नहीं हैं। आपका तो जन्म हुआ। आपका तो म्युनिसिपल के दफ्तर में सब हिसाब-किताब है। कब आप पैदा हुए, कहां पैदा हुए, कैसे पैदा हुए, वह सब है।

आप पैदा हुए, आप एक जोड़ हैं। आप तत्व नहीं हैं, आप एक कंपाउंड हैं। इलिमेंट नहीं हैं, संयोग हैं। संयोग का जन्म होता है; और संयोग का वियोग होता है, विनाश होता है। लेकिन जो तत्व है, उसका विनाश नहीं होता। जब आप मरेंगे, तो शरीर अपनी दुनिया में लौट जाएगा मिट्टी-पत्थर की। और आपकी चेतना चेतना की दुनिया में लौट जाएगी। वे दोनों पहले भी थे।

आप? आप एक संयोग हैं दो के। आपका जन्म होता है, आपका अंत होता है।

भारतीय मनीषा कहती है कि न तो प्रकृति का कोई आदि है, न कोई अंत है। और न पुरुष का कोई आदि है और अंत है। लेकिन संसार का आदि और अंत है।

संसार ऐसे ही है, जैसे आपका शरीर और आत्मा के मिलने से आपका व्यक्तित्व। ऐसे ही इतने सारे पुरुषों और इस प्रकृति के मिलने से जो प्रकट होता है संसार, वह प्रारंभ होता है और उसका अंत होता है।

हम जिस संसार में रह रहे हैं, वह सदा नहीं था। वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारा सूरज कोई चार हजार साल में ठंडा हो जाएगा। अरबों वर्ष से गरमी दे रहा है। उसकी गरमी चुकती जा रही है। चार हजार साल और, और वह ठंडा हो जाएगा। उसके ठंडे होते ही पृथ्वी भी ठंडी हो जाएगी। फिर पौधा यहां नहीं फूटेगा; फिर बच्चे यहां पैदा नहीं होंगे; फिर श्वास यहां नहीं चलेगी; फिर यहां जीवन शून्य हो जाएगा।

आदमी ही नहीं मरता, पृथ्वियां भी मरती हैं। अभी हमारी पृथ्वी जीवित है, लेकिन वह भी बुढ़ापे के करीब पहुंच रही है। अभी कई पृथ्वियां मृत हैं। अभी कई पृथ्वियां जन्मने के करीब हैं। अभी कई पृथ्वियां जवान हैं। अभी कई पृथ्वियां बचपन में हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं, कम से कम पचास हजार ग्रहों पर जीवन है। पचास हजार पृथ्वियां हैं कम से कम, जिन पर जीवन है। उसमें कोई बिल्कुल बच्चों जैसी है। अभी-अभी उसमें काई फूट रही है और घास उग रहा है, अभी और बड़ा जीवन नहीं आया है। कोई बिल्कुल बूढ़ी हो गई है; सब सूख गया है। आदमी भी जा चुके हैं, प्राणी भी जा चुके हैं; आखिरी काई भी सूखती जा रही है। कोई बिल्कुल बंजर हो गई है, मृत। कोई अभी गर्भ में है; अभी तैयारी कर रही है। जल्दी ही जीवन का अंकुर उस पर फूटेगा।

पृथ्वियां आती हैं, खो जाती हैं। संसार बनते हैं, विनष्ट हो जाते हैं। लेकिन मूल तत्व दो हैं, प्रकृति और पुरुष, प्रकृति और परमात्मा, पदार्थ और चैतन्य, वे दोनों अनादि हैं।

तब एक सवाल उठेगा मन में, तो फिर हम कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश--ब्रह्मा बनाता है, विष्णु सम्हालते हैं, महेश मिटाते हैं--इनका क्या अर्थ है?

ये भी सम्हालते, मिटाते, बनाते हैं संसारों को, अस्तित्व को नहीं। ये भी एक संसार को बनाते हैं। इसलिए बौद्धों ने तो अनेक ब्रह्मा माने हैं। क्योंकि जितने संसार हैं, उतने ब्रह्मा। क्योंकि हर संसार को बनाने की शक्ति का नाम ब्रह्मा है; ब्रह्मा कोई व्यक्ति नहीं हैं। सम्हालने की शक्ति का नाम विष्णु है; विष्णु कोई व्यक्ति नहीं हैं। विनष्ट हो जाने की संभावना का नाम शिव है; शिव कोई व्यक्ति नहीं हैं।

तो जहां-जहां जीवन है, जीवन का विस्तार है, और जहां-जहां जीवन का अंत है, वहां-वहां ये तीन शक्तियां काम करती रहेंगी। लेकिन इन सबका संबंध संसारों से है।

इसलिए बहुत मजेदार घटना बौद्ध कथाओं में है। वह यह कि जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो जो पहला व्यक्ति जिज्ञासा करने आया, वह था ब्रह्मा। ब्रह्मा ने आकर सिर टेक दिया बुद्ध के चरणों में और कहा कि मुझे ज्ञान दें। हमें तो बड़ी घबड़ाहट होगी। क्योंकि ब्रह्मा बनाने वाला संसार का, वह बुद्ध के चरणों में आया पूछने कि मुझे ज्ञान दें!

ब्रह्मा संसार को बनाने वाला जरूर है, लेकिन संसार को वह बनाता ही इसलिए है कि उसमें संसार को बनाने की वासना है। बुद्ध वासना-मुक्त हो गए। इसलिए बुद्ध ब्रह्मा से ऊपर हो गए। बुद्‌ध शुद्ध पुरुष हो गए। ब्रह्मा उनसे नीचे रह गया। क्योंकि ब्रह्मा भी बनाता है। बनाने का अर्थ ही है कि कामवासना है। जहां वासना नहीं है, वहां कोई सृजन न होगा। इसलिए हम ब्रह्मा को मुक्त नहीं मानते। ब्रह्मा को भी हम मानते हैं कि वह भी बंधन में है, क्योंकि बनाने का... ।

स्वभावतः, आप एक छोटी-सी दुकान चलाते हैं, कितनी मुसीबत है! अगर ब्रह्मा को हम समझें और इतने सारे संसार को चलाता है, तो उसकी मुसीबत का हम अंदाज लगा सकते हैं। उसकी मुसीबत का हम ख्याल कर सकते हैं। इतना बड़ा संसार अगर किसी को चलाना पड़ रहा है, तो उसके पीछे एक तो प्रगाढ़ कामना होनी चाहिए, अंतहीन वासना होनी चाहिए। और फिर उसका उपद्रव और जाल भी होगा ही।

वह बुद्ध से कहता है ब्रह्मा--यह कथा मीठी है--कि मुझे भी कुछ ज्ञान दें; मैं भी उलझा हूं अभी; मेरा मन भी शांत नहीं है। आप जहां पहुंच गए हैं, वहां से कुछ अमृत मेरे लिए भी!

लेकिन बुद्ध चुप हैं। और बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो उन्हें लगा कि अब बोलने की क्या जरूरत। जो जाना है, वह कहा नहीं जा सकता। और जो सुनने वाले हैं, उनमें कोई समझ भी न पाएगा। इसलिए व्यर्थ की मेहनत नहीं करनी है।

तो ब्रह्मा उनके पैर पर सिर रख-रखकर बार-बार कहता है कि आप लोगों से कहें, क्योंकि हम हजारों-हजारों साल तक प्रतीक्षा करते हैं कि कोई बुद्ध हो, तो हमें कुछ ज्ञान मिले। हम भी कुछ जान पाएं। हमें भी कुछ पता चले कि क्या है।

ब्रह्मा का यह पूछना बड़ा मजेदार है। उसे भी पता नहीं कि क्या है। वह भी अपनी वासना में जी रहा है।

हम सब छोटे-छोटे ब्रह्मा हैं, जब हम बनाते हैं। और हम सब छोटे-छोटे विष्णु हैं, जब हम सम्हालते हैं। और हम सब छोटे-छोटे शिव हैं, जब हम मिटाते हैं। इसी को विराट करके देखें, तो पूरे संसार का ख्याल आ जाएगा।

कृष्ण कहते हैं, लेकिन दो मौलिक तत्व, प्रकृति और पुरुष अनादि हैं। और राग-द्वेष आदि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक संपूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ जान।

और जो कुछ भी तुझे दिखाई पड़ता है इस जगत में पैदा होता हुआ--राग-द्वेष, विकार, त्रिगुण--यह संपूर्ण पदार्थ, इनको तू प्रकृति के ही रूप जान। ये प्रकृति से ही पैदा हुए हैं।

तत्व दो हैं, प्रकृति और पुरुष। बाकी जितना फैलाव दिखाई पड़ता है, वह दो में से किसी से जुड़ा होगा। तो कृष्ण कहते हैं, यह जितना विस्तार है माया का, त्रिगुण का; ये जो भी दिखाई पड़ रहे हैं पदार्थ, इतने रूप, इतने रंग, इतना परिवर्तन; ये सब प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान। ये प्रकृति में ही उत्पन्न होते हैं और प्रकृति में ही लीन होते रहते हैं। जिससे ये उत्पन्न होते हैं और जिसमें लीन होते हैं, उसी का नाम प्रकृति है।

यह प्रकृति शब्द हमारा बड़ा अदभुत है। ऐसा शब्द दुनिया की किसी भी भाषा में नहीं है। अंग्रेजी में अक्सर हम प्रकृति को नेचर या क्रिएशन से अनुवादित करते हैं। दोनों ही गलत हैं। प्रकृति शब्द का अर्थ है, कृति

के पहले। उसका अर्थ है, प्रि-क्रिएशन। शब्द बहुत अनूठा है। प्रकृति का अर्थ है कि कृति के पहले। जब कुछ भी नहीं था, तब भी जो था। जब कुछ भी नहीं बना था, तब भी जो था, प्रि-क्रिएशन। पहले जो था, सृजन के भी पहले जो था, उसका नाम प्रकृति है।

इसलिए प्रकृति को क्रिएशन तो अनुवाद किया ही नहीं जा सकता। नेचर भी अनुवाद नहीं किया जा सकता। क्योंकि नेचर तो, जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह है।

प्रकृति सांख्यों का बड़ा अनूठा शब्द है। उसका अर्थ है, जो कुछ दिखाई पड़ रहा है, यह जब नहीं था और जिसमें छिपा था, उसका नाम प्रकृति है। जो कुछ दिखाई पड़ रहा है, जब यह सब मिट जाएगा और उसी में डूब जाएगा जिससे निकला है, उसका नाम प्रकृति है।

तो प्रकृति है वह, जिससे सब निकलता है और जिसमें सब लीन हो जाता है। प्रकृति है मूल उदगम सभी रूपों का।

क्योंकि कार्य और कारण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है। और पुरुष सुख-दुखों के भोक्तापन में अर्थात भोगने में हेतु कहा जाता है।

इन दो बातों को बहुत गौर से समझ लेना चाहिए। जिनकी साधना की दृष्टि है, उनके लिए बहुत काम की है।

कार्य और कारण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है। और पुरुष सुख-दुखों के भोक्तापन में अर्थात भोगने में हेतु कहा जाता है।

घटनाएं घटती हैं प्रकृति में, भोग की कल्पना और मुक्ति की कल्पना घटती है पुरुष में।

एक फूल खिला। फूल का खिलना प्रकृति में घटित होता है। और अगर कोई आदमी न हो पृथ्वी पर, तो फूल न तो सुंदर होगा और न कुरूप। या होगा? कोई आदमी नहीं है जगत में; एक फूल खिला एक पहाड़ के किनारे। वह सुंदर होगा कि कुरूप होगा? वह सुखद होगा कि दुखद होगा? वह किसी को आनंदित करेगा कि किसी को पीड़ित करेगा? कोई है ही नहीं पुरुष।

सिर्फ फूल खिलेगा। न सुंदर होगा, न असुंदर; न सुखद, न दुखद; न कोई उसकी तारीफ करेगा, न कोई उसकी निंदा करेगा। लेकिन फूल खिलेगा; फूल अपने में पूरी तरह से खिलेगा।

फिर एक पुरुष प्रकट होता है। फूल के पास खड़ा हो जाता है। फूल तो प्रकृति में खिल रहा है। पुरुष के मन में, पुरुष के भाव में, कल्पना खिलनी शुरू हो जाती है फूल के साथ-साथ समानांतर।

पुरुष कहता है, सुंदर है। यह सुंदर का जो फूल खिल रहा है, यह पुरुष के भीतर खिल रहा है। फूल बाहर खिल रहा है। यह जो सुंदर होने का भाव खिल रहा है, यह पुरुष के भीतर खिल रहा है। और अगर पुरुष कहता है सुंदर है, तो सुख पाता है, सुख भोगता है। अगर पुरुष कहता है असुंदर है, तो दुख पाता है।

और ऐसा नहीं है। सुंदर और असुंदर धारणाओं पर निर्भर करते हैं। आज से सौ साल पहले कोई सोच भी नहीं सकता था कि कैक्टस के पौधे को घर में रखेगा। सौ साल पहले कोई रख लेता, तो हम उसका पागलखाने में इलाज करवाते। कैक्टस का पौधा गांव के बाहर लोग अपने खेत के चारों तरफ बागुड़ लगाने के काम में लाते रहे हैं। सुंदर है, ऐसा कभी किसी ने सोचा नहीं था।

अब हालत ऐसी है कि जिनको भी ख्याल है सौंदर्य का थोड़ा-बहुत, वे गुलाब वगैरह को निकाल बाहर कर रहे हैं घरों से; कैक्टस के पौधे लगा रहे हैं! जिनको कहें अवांगार्द जो बहुत आभिजात्य हैं, जिनको सौंदर्य का बड़ा बोध है, या जो अपने समय से बहुत आगे हैं, वे सब तरह के ऐड़े-तिरछे कांटों वाले पौधे घरों में इकट्ठे कर

रहे हैं। उनमें ऐसे पौधे भी हैं कि अगर कांटा लग जाए, तो जहर हो जाए खून में। लेकिन उसकी भी चिंता नहीं है। पौधा इतना सुंदर है यह कि मौत भी झेली जा सकती है।

कोई सोच नहीं सकता था सौ साल पहले कि ये कैक्टस के पौधे सुंदर होते हैं। अभी हो गए हैं। ज्यादा दिन चलेंगे नहीं। सब फैशन है। अभी गुलाब के सौंदर्य की चर्चा करना बड़ा आर्थोडाक्स, पुराना, दकियानूसी मालूम पड़ता है। कोई कहने लगे, बड़ा सुंदर गुलाब है। तो लोग कहेंगे, क्या फिजूल की बातें कर रहे हो! कितने लोग कह चुके। सब उधार है। दुनिया हो गई, सारा संसार गुलाब की चर्चा करके थक गया। अब हटाओ गुलाब को। आउट आफ डेट है। बिल्कुल तिथिबाह्य है। कैक्टस की कुछ बात हो।

पिकासो ने अपनी एक डायरी में लिखा है कि मैं एक स्त्री के प्रेम में पड़ गया हूं। स्त्री सुंदर नहीं है। लेकिन उस स्त्री में एक धार है। सुंदर तो नहीं है। लेकिन फिर वह लिखता है कि सुंदर की भी क्या बकवास! यह तो बहुत पुरानी धारणा है। धार है, जैसे कि काट दे, जैसे तलवार में धार होती है। उस धार में मुझे रस है।

यह कैक्टस का प्रेम ही होगा, जो स्त्री तक फैल रहा है। धार, काट दे! सौंदर्य भी मुरदा-मुरदा लगता है पुराना। अगर कालिदास का सौंदर्य हो, पिकासो को बिल्कुल न जंचेगा। वह जो कालिदास जिस सौंदर्य की चर्चा करता है, कुंदन जैसे सुंदर शरीर की, स्वर्ण-काया की, वह पिकासो को नहीं जंचेगा।

मैंने सुना है, एक गांव में ऐसा हुआ कि एक दलाल जो लोगों की शादी करवाने का काम करता था, एक युवक को बहुत तारीफ करके एक स्त्री दिखाने ले गया। उसने उसकी ऐसी तारीफ की थी कि जमीन पर ऐसी सुंदर स्त्री खोजना ही मुश्किल है।

युवक भी बड़े उत्साह में, बड़ी उत्तेजना में था। और कुछ भी खर्च करने को तैयार था शादी के लिए। दलाल ने इतनी बातें बांध दी थीं, दलाल ने ऐसी चर्चा की थी और इतनी कविताएं उद्धृत की थीं, और इतने शास्त्रों का उल्लेख किया था, और स्त्री के रंग-रूप और एक-एक अंग का ऐसा वर्णन किया था कि युवक बिल्कुल उत्तेजित था कि शीघ्रता से मुझे ले चलो, दर्शन करने दो।

लेकिन जब युवक ने दर्शन किया, तो उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गए। उसने दलाल के कान में कहा कि क्या इस स्त्री की तुम बातें कर रहे थे! इसको तुम सुंदर कहते हो? इसकी आंखें ऐसी भयावनी हैं, जैसे कि भूत-प्रेत हो। यह इतनी लंबी नाक मैंने कभी देखी नहीं। इसके दांत सब अस्तव्यस्त हैं। इसको किसी बच्चे को डराने के काम में लाया जा सकता है। तुम इसको सुंदर कह रहे थे?

उस दलाल ने कहा, तो मालूम होता है, तुम दकियानूसी हो। इफ यू डोंट लाइक ए पिकासो, दैट इ.ज नाट माई फाल्ट--और अगर तुम पिकासो के चित्र पसंद नहीं करते, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। पिकासो ने ऐसे ही चित्र बनाए हैं। उसने कहा, मैं तो पिकासो जैसा--नोबल प्राइज पुरस्कृत व्यक्ति--और अगर तुम उसके चित्र में सौंदर्य नहीं देख सकते, तो मेरा कोई कसूर नहीं है। यह स्त्री उसी का प्रतीक है। यह आधुनिक बोध है। यह तुम कहां का दकियानूसी ख्याल रखे हुए हो! कालिदास पढ़ते हो? क्या करते हो?

आदमी के भीतर वह जो चैतन्य है, वह भाव निर्मित करता है। भोक्ता, फिर भाव से भोगता है।

ध्यान रहे, अगर आप भाव से भोगते हैं, तो भाव से दुख भी पाएंगे, सुख भी पाएंगे, दोनों पाएंगे। और मजा यह है कि फूल बाहर है। न सुंदर है, न कुरूप है। और यह भाव आपका है।

तो कृष्ण कहते हैं कि सब कार्य-कारण उत्पन्न करने में प्रकृति है हेतु और पुरुष सुख-दुखों के भोक्तापन में अर्थात भोगने में हेतु कहा जाता है।

सुख-दुख तुम पैदा करते हो, वह प्रकृति पैदा नहीं करती। प्रकृति निष्पक्ष है। कहना चाहिए, प्रकृति को पता ही नहीं है कि तुम नाहक सुख-दुख भोग रहे हो।

एक फूल को पता चलता होगा कि तुम बड़े आनंदित हो रहे हो कि तुम बड़े दुखी हो रहे हो? फूल को कुछ पता नहीं चलता। फूल को कुछ लेना-देना नहीं है। फूल अपने तईं खिल रहा है। तुम्हारे लिए खिल भी नहीं रहा है। तुमसे कोई संबंध ही नहीं है। तुम असंगत हो। लेकिन तुम एक भाव पैदा कर रहे हो। उस भाव से तुम डांवाडोल हो रहे हो। वह भाव तुम्हारे भीतर है।

मेरे एक मित्र हैं। बैठे थे एक दिन गंगा के किनारे मेरे साथ। अचानक बहुत उत्साह में आ गए। मैंने पूछा, क्या हुआ? इशारा किया, दूर घाट पर एक सुंदर स्त्री की पीठ। बोले कि मैं अब न बैठ सकूंगा। बड़ा अनुपात है शरीर में। और बाल देखते हैं! और झुकाव देखते हैं! मैं जरा जाकर, शक्ल देख आऊं। मैंने कहा, जाओ।

वे गए। मैं उन्हें देखता रहा। बड़े आनंदित जा रहे थे। उनके पैर में नृत्य था। कोई खींचे जा रहा है जैसे चुंबक की तरह। और जब वे इस स्त्री के पास पहुंचे, तो भक्क से जैसे ज्योति चली गई। वे एक साधु महाराज थे, वे स्नान कर रहे थे।

लौट आए, बड़े हताश। सब सुख लुट गया। माथे पर हाथ रखकर बैठ गए। मैंने कहा, क्या मामला है? कहने लगे, अगर यहीं बैठा रहता तो ही अच्छा था। साधु महाराज हैं। वह बाल से धोखा हुआ। वहां स्त्री थी नहीं।

लेकिन उतनी देर उन्होंने स्त्री का सुख लिया था, जो वहां नहीं थी। वह सुख उनके अपने भीतर था। और अगर वहीं बैठे-बैठे चले जाते, तो शायद कविताएं लिखते। क्या करते, क्या न करते। शायद जिंदगीभर याद रखते वह अनुपात शरीर का, वह झुकाव, वे गोल बांहें, वे बाल, वह गोरा शरीर, वह जिंदगीभर उन्हें सताता। संयोग से बच गए। देख लिया। छुटकारा हुआ। लेकिन दोनों भाव भीतर थे। साधु महाराज को कुछ पता ही नहीं चला कि क्या हो रहा है उनके आस-पास। वे दोनों उनके अपने ही भीतर उठे थे।

सांख्य की धारणा है, वही कृष्ण कह रहे हैं, कि तुम जो भी भोग रहे हो, वह तुम्हारे भीतर उठ रहा है। बाहर प्रकृति निष्पक्ष है। उसे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। तुम चाहे सुख पाओ, तुम चाहे दुख पाओ, तुम ही जिम्मेवार हो।

और अगर यह बात ख्याल में आ जाए कि मैं ही जिम्मेवार हूं, तो मुक्त होना कठिन नहीं है। तो फिर ठीक है, जब मैं ही जिम्मेवार हूं, और प्रकृति न तो सुख पैदा करती है और न दुख, मैं ही आरोपित करता हूं। सुख और दुख मेरा आरोपण है प्रकृति के ऊपर; सुख और दुख मेरे सपने हैं, जिन्हें मैं फैलाता हूं, और फैलाकर फिर भोगता हूं। अपने ही हाथ से फैलाता हूं और खुद ही फंसता हूं और भोगता हूं। अगर यह बात ख्याल में आनी शुरू हो जाए, तो बड़ी अदभुत क्रांति घट सकती है।

जब आपके भीतर सुख का भाव उठने लगे, तब जरा चौंककर खड़े हो जाना और देखना कि प्रकृति कुछ भी नहीं कर रही है, मैं ही कुछ भाव पैदा कर रहा हूं। आपके चौंकते ही भाव गिर जाएगा। आपके होश में आते ही भाव गिर जाएगा। प्रकृति वहां रह जाएगी, सुख-दुखरहित; पुरुष भीतर रह जाएगा, सुख-दुखरहित।

पुरुष जब प्रकृति की तरफ दौड़ता है और आरोपित होता है, तो सुख-दुख पैदा होते हैं। और जो उस सुख-दुख में पड़ा है, वह द्वंद्व में और अज्ञान में है।

सुख-दुख के बाहर है आनंद। आनंद है पुरुष का स्वभाव; सुख-दुख है आरोपण प्रकृति पर। सुख-दुख है, पुरुष अपने को देख रहा है प्रकृति में; प्रकृति का उपयोग कर रहा है दर्पण की तरह। अपनी ही छाया को देखकर सुखी या दुखी होता है।

कभी-कभी आप भी अपने बाथरूम में अपने को ही आईने में देखकर सुखी-दुखी होते हैं। कोई भी वहां नहीं होता। आईना ही होता है। अपनी ही शक्ल होती है। उसको ही देखकर कभी बड़े सुखी भी होते हैं, गुनगुनाने लगते हैं गीत। जिनके पास गले जैसी कोई चीज नहीं है, वे भी बाथरूम में गुनगुनाने से नहीं बच पाते। अगर कोई ऐसा आदमी मिल जाए, जो बाथरूम में नहीं गुनगुनाता, तो समझना कि योगी है।

बाथरूम में तो लोग गुनगुनाते ही हैं। वे किसको देखकर गुनगुनाने लगते हैं? कौन-सी छवि उनको ऐसा आनंद देने लगती है? अपनी ही। अपने ही साथ मौज लेने लगते हैं।

करीब-करीब प्रकृति के साथ हम जो भी खेल खेल रहे हैं, वह दर्पण के साथ खेला गया खेल है। फिर कभी दुखी होते हैं, कभी सुखी होते हैं, और वह सब हमारा ही खेल है, हमारा ही नाटक है।

इसे थोड़ा बोध में लेना शुरू करें। घटनाएं प्रकृति में घटती हैं, भावनाएं भीतर घटती हैं। और भावनाओं के कारण हम परेशान हैं, घटनाओं के कारण नहीं। और बड़ा मजा यह है कि अगर हम कभी इस परेशानी से मुक्त भी होना चाहते हैं, तो हम घटनाएं छोड़कर भागते हैं, भावनाओं को नहीं छोड़ते।

एक आदमी दुखी है घर में, गृहस्थी में। वह संन्यास ले लेता है, हिमालय चला जाता है। मगर उसे पता ही नहीं है कि वह दुखी इसलिए नहीं था कि वहां पत्नी है, बच्चा है, दुकान है। उसके कारण कोई दुखी नहीं था। वे तो घटनाएं हैं प्रकृति में। दुखी तो वह अपनी भावनाओं के कारण था। भावनाएं तो साथ चली जाएंगी हिमालय में भी। और वहां भी वह उनका आरोपण कर लेगा।

मैंने सुना है, एक आदमी शांति की तलाश में चला गया जंगल। बड़ा परेशान था कि बाजार में बड़ा शोरगुल है, बड़ा उपद्रव है। जंगल में जाकर वृक्ष के नीचे खड़ा ही हुआ था कि एक कौए ने बीट कर दी। सिर पर बीट गिरी। उसने कहा कि सब व्यर्थ हो गया। जंगल में भी शांति नहीं है!

जंगल में भी कौए तो बीट कर ही रहे हैं। और कौआ कोई आपकी खोपड़ी देखकर बीट नहीं कर रहा है। न बाजार में कोई आपकी खोपड़ी देखकर कुछ कर रहा है। कहीं कोई आपकी फिक्र नहीं कर रहा है। घटनाएं घट रही हैं। आप भावनाग्रस्त होकर घटनाओं को पकड़ लेते हैं और जकड़ जाते हैं।

और यह तो दूर कि असली घटनाएं पकड़ती हैं, लोग सिनेमा में बैठकर रोते रहते हैं। लोगों के रूमाल देखें सिनेमा के बाहर निकलकर, गीले हैं। आंसू पोंछ रहे हैं! वह तो सिनेमा में अंधेरा रहता है, इससे बड़ी सुविधा है। सबकी नजर परदे पर रहती है, तो पड़ोस में कोई नहीं देखता। और लोग झांक लेते हैं कि कोई नहीं देख रहा है, अपना आंसू पोंछ लेते हैं।

क्या हो रहा है परदे पर? वहां तो कुछ भी नहीं हो रहा है। वहां तो केवल धूप-छाया का खेल है। और आप इतने परेशान हो रहे हैं! आप धूप-छाया के खेल से भी परेशान हो रहे हैं! अगर कोई एक डाकू किसी का पीछा कर रहा है पहाड़ की कगार पर, तो आप तक की श्वास रुक जाती है। आप सम्हलकर बैठ जाते हैं। रीढ़ ऊंची हो जाती है। श्वास रुक जाती है। जैसे कोई आपका पीछा कर रहा है या आप किसी का पीछा कर रहे हैं। और आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। आप सिर्फ कुर्सी पर बैठे हुए हैं। थोड़ी देर में प्रकाश हो जाएगा।

सांख्य शास्त्र ने इसको उदाहरण की तरह लिया है कि जैसे कोई नर्तकी नाचती हो, तो उसके नाच में जो आप रस ले रहे हैं, वह आपके भीतर है। और आपके भीतर रस है, इसलिए नर्तकी नाच रही है, क्योंकि उसको

लोभ है कि आपको रस होगा, तो आप कुछ देंगे। अगर आपके भीतर रस चला जाए, नर्तकी नाच बंद कर देगी और चली जाएगी।

सांख्य शास्त्र कहता है कि जिस दिन पुरुष रस लेना बंद कर देता है, प्रकृति उसके लिए समाप्त हो जाती है। प्रकृति हट जाती है परदे से। उसकी कोई जरूरत न रही।

सुख और दुख मेरे प्रक्षेपण, प्रोजेक्शन हैं। मैंने उन्हें आरोपित किया है निष्कलुष प्रकृति पर। प्रकृति का कुछ भी दोष नहीं है। प्रकृति में तो घटनाएं घटती रहती हैं। वे घटती रहेंगी, मैं नहीं रहूंगा तब भी। और मैं नहीं था तब भी। वे घटती ही रहती हैं। उनसे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन मैं, यह जो पुरुष है भीतर... ।

इस पुरुष शब्द को भी ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह भी वैसा ही अदभुत शब्द है, जैसा प्रकृति। ये दोनों शब्द सांख्यों के हैं। और सांख्य की पकड़ बड़ी वैज्ञानिक है।

प्रकृति का अर्थ है, जो कृति के पूर्व है। और पुरुष का अर्थ है--वह उसी से बना है, जिससे पुर बनता है; नागपुर या कानपुर में जो पुर लगा है, पुरुष उसी शब्द से बना है--पुरुष का अर्थ है, जिसके चारों तरफ नगर बसा है और जो बीच में है। पुर के बीच में जो है, वह पुरुष।

तो सारी प्रकृति पुर है और उसके बीच में जो बसा है, जो निवासी है, वह पुरुष है। सारी घटनाएं नगर में घट रही हैं। और वह बीच में जो बसा है, अगर होशपूर्वक रहे, तो उसे कुछ भी न छुएगा, स्पर्श भी न करेगा। वह कुंवारा ही आएगा और कुंवारा ही चला जाएगा। वह कुंवारा ही है। जब आप उलझ जाते हैं, तब भी वह कुंवारा है; क्योंकि उसे कुछ छू नहीं सकता। निर्दोषता उसका स्वभाव है।

इसलिए कोई पाप पुरुष को छूता नहीं; सिर्फ आपकी भ्रांति है कि छूता है। कोई पुण्य पुरुष को छूता नहीं; सिर्फ भ्रांति है कि छूता है। कोई सुख-दुख नहीं छूता। पुरुष स्वभावतः निर्दोष है।

लेकिन यह जिस दिन होश आएगा, उसी दिन आप सजग होकर जाग जाएंगे और पाएंगे कि टूट गया वह तारतम्य सुख-दुख का। आप भीतर रहते बाहर हो गए। आप पुरुष हो गए; पुर के बीच पुर से अलग हो गए।

प्रकृति और पुरुष की इस दृष्टि को सिर्फ सिद्धांत की तरह, सिद्धांत की भांति समझने से कोई सार नहीं है। इसे थोड़ा जिंदगी में पहचानना। कहां प्रकृति और कहां पुरुष, इसका बोध रखना। और जब प्रकृति में पुरुष आरोपित होने लगे, तो चौंककर खड़े हो जाना और आरोपित मत होने देना।

थोड़ी-थोड़ी कठिनाई होगी; शुरू-शुरू में अड़चन पड़ेगी। पुरानी आदत है। जन्मों-जन्मों की आदत है। पता ही नहीं चलता और आरोपण हो जाता है। फूल देखा नहीं और पहले ही कह देते हैं, सुंदर है; बड़ा आनंद आया। अभी ठीक से देखा भी नहीं था। अभी ठीक से पहचाना भी नहीं था कि सुंदर है या नहीं। कह दिया।

रुकें थोड़ा। और पुरुष को आरोपित न होने दें। आरोपण है बंधन; और आरोपण से मुक्त हो जाना है मुक्ति।

पांच मिनट कोई उठे नहीं। कीर्तन में सम्मिलित हों, और फिर जाएं।

आठवां प्रवचन

गीता में समस्त मार्ग हैं

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।। 21।।
उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। 22।।
य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।। 23।।

परंतु प्रकृति में स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए त्रिगुणात्मक सब पदार्थों को भोगता है। और इन गुणों का संग ही इसके अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने में कारण है।

वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ भी पर ही है, केवल साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमंता एवं सबको धारण करने वाला होने से भर्ता, जीवरूप से भोक्ता तथा ब्रह्मादिकों का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानंदघन होने से परमात्मा, ऐसा कहा गया है।

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्व से जानता है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फिर नहीं जन्मता है अर्थात पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि पूरी गीता अर्जुन को उसका स्वधर्म और मार्ग समझाने के लिए कही गई मालूम होती है। क्या कृष्ण और अर्जुन के बीच गुरु-शिष्य का संबंध है? यदि हां, तो श्रीकृष्ण अर्जुन से उन अनेक मार्गों की अनावश्यक बातें क्यों करते हैं, जिन पर अर्जुन को चलना ही नहीं है?

इस संबंध में पहली तो यह बात जान लेनी जरूरी है कि जिन मार्गों पर आपको नहीं चलना है, उन पर भी चलने का झुकाव आपके भीतर हो सकता है। और वह झुकाव खतरनाक है। और वह झुकाव आपके जीवन, आपकी शक्ति को, अवसर को खराब कर सकता है।

तो कृष्ण उन सभी मार्गों की बात कर रहे हैं अर्जुन से, जिन पर चलने के लिए किसी भी मनुष्य के मन में झुकाव हो सकता है। मनुष्य मात्र जिन मार्गों पर चलने के लिए उत्सुक हो सकता है, उन सभी की बात कर रहे हैं।

इस बात के करने का फायदा है। इन सारे मार्गों को अर्जुन समझ ले, तो उसे ख्याल में आना कठिन न रह जाएगा कि कौन-सा मार्ग उसके सर्वाधिक अनुकूल है। और जिसे आप नहीं जानते, उससे खतरा है; और जिसे आप जान लेते हैं, उससे खतरा समाप्त हो जाता है।

सभी रास्तों के संबंध में जान लेने के बाद जो निर्णय होगा, वह ज्यादा सम्यक होगा। इसलिए कृष्ण सभी रास्तों की बात कर रहे हैं। इस अर्थ में, कृष्ण का वक्तव्य, उनका उपदेश बुद्ध, महावीर, मोहम्मद और जीसस के वक्तव्य से बहुत भिन्न है।

जीसस एक ही मार्ग की बात कर रहे हैं। महावीर एक ही मार्ग की बात कर रहे हैं। बुद्ध एक ही मार्ग की बात कर रहे हैं। कृष्ण सभी मार्गों की बात कर रहे हैं। और यह सभी मार्गों की बात जान लेने के बाद जब कोई चुनाव करता है, तो चुनाव ज्यादा सार्थक, ज्यादा अभिप्रायपूर्ण होगा। और उस मार्ग पर सफलता भी ज्यादा आसान होगी।

बहुत बार तो कोई मार्ग शुरू में आकर्षक मालूम होता है, लेकिन पूरे मार्ग के संबंध में जान लेने पर उसका आकर्षण खो जाता है। बहुत बार कोई मार्ग शुरू में बहुत कंटकाकीर्ण और कठिन मालूम पड़ता है, लेकिन मार्ग के संबंध में पूरी बात समझ लेने पर सुगम हो जाता है।

इसलिए कृष्ण सारी बात खोलकर रखे दे रहे हैं। अर्जुन के माध्यम से जैसे वे पूरी मनुष्यता से ही बात कह रहे हैं।

मनुष्य जिस-जिस मार्ग से परमात्मा तक पहुंच सकता है, वे सभी मार्ग अर्जुन के सामने कृष्ण खोलकर रख रहे हैं। इन सभी मार्गों पर अर्जुन चलेगा नहीं। चलने की कोई जरूरत भी नहीं है। लेकिन सभी को जानकर जो मार्ग वह चुनेगा, वह मार्ग उसके लिए सर्वाधिक अनुकूल होगा।

दूसरी बात, कृष्ण और अर्जुन के बीच जो संबंध है, वह गुरु और शिष्य का नहीं, दो मित्रों का है। दो मित्रों का संबंध और गुरु-शिष्य के संबंध में बड़े फर्क हैं। और इसीलिए कृष्ण गुरु की भाषा में नहीं बोल रहे हैं, एक मित्र की भाषा में बोल रहे हैं। वे सभी बातें अर्जुन को कह रहे हैं, जैसे वे अर्जुन को परसुएड कर रहे हैं, फुसला रहे हैं, राजी कर रहे हैं। उसमें आदेश नहीं है, उसमें आज्ञा नहीं है। एक मित्र एक दूसरे मित्र को राजी कर रहा है, समझा रहा है। उसमें कृष्ण ऊपर खड़े होकर अर्जुन को आज्ञा नहीं दे रहे हैं; साथ खड़े होकर अर्जुन से चर्चा कर रहे हैं। यह दो गहरे मित्रों के बीच संवाद है।

निश्चित ही, कृष्ण गुरु हैं और अर्जुन शिष्य है, लेकिन उनके बीच संबंध दो मित्रों का है। इस मित्रता के संबंध के कारण गीता में जो वार्तालाप है, जो डायलाग है, वह न कुरान में है, न बाइबिल में है; वह न धम्मपद में है, न जेन्दअवेस्ता में है।

डायलाग, वार्तालाप, दो मित्र निकट से बातें कर रहे हैं। न अर्जुन को भयभीत होने की जरूरत है कि वह गुरु से बोल रहा है, न गुरु को जल्दी है कि वह मार्ग पर लगा दे अर्जुन को। दो मित्रों की चर्चा है। इस मित्रता की चर्चा से जो नवनीत निकलेगा, उसका बड़ा मूल्य है।

गहरे में तो अर्जुन शिष्य है, उसे इसका कोई पता नहीं। वह पूछ रहा है, प्रश्न कर रहा है, जिज्ञासा कर रहा है, वे शिष्य के लक्षण हैं। लेकिन वे लक्षण अचेतन हैं।

अर्जुन ऐसे ही पूछ रहा है, जैसे एक मित्र से मुसीबत में सलाह ले रहा है। उसे पता नहीं है कि वह शिष्य होने के रास्ते पर चल पड़ा। सच तो यह है कि जो उसने पूछा था, उसने कभी सोचा भी न होगा कि उसके परिणाम में जो कृष्ण ने कहा, वह कहा जाएगा।

अर्जुन ने तो इतना ही पूछा था कि मेरे प्रियजन हैं, संबंधी हैं, मित्र हैं, नाते-रिश्तेदार हैं, सभी मेरे परिवार के लोग हैं, इस तरफ भी, उस तरफ भी। हम सब बंटकर खड़े हैं, एक बड़ा कुटुंब। उस तरफ मेरे गुरु हैं, पूज्य भीष्म हैं। यह सब संघर्ष पारिवारिक है; यह हत्या अकारण मालूम पड़ती है। ऐसे राज्य को पाकर भी मैं क्या करूंगा, जिसमें मेरे सभी संबंधी और मित्र नष्ट हो जाएं? तो ऐसा राज्य तो त्याग देने योग्य लगता है।

अर्जुन के मन में एक वैराग्य का उदय हुआ है। वह उदय भी मोह के कारण ही हुआ है। अगर वह वैराग्य मोह के कारण न होता, तो कृष्ण को गीता कहने की कोई जरूरत न होती; अर्जुन विरागी हो गया होता। जो

वैराग्य मोह के कारण पैदा होता है, वह वैराग्य है ही नहीं। वह केवल वैराग्य की भाषा बोल रहा है। इस दुविधा के कारण गीता का जन्म हुआ।

अर्जुन कहता तो यह है कि मेरे मन में वैराग्य आ रहा है; यह सब छोड़ दूं; यह सब असार है। लेकिन कारण जो बता रहा है, कारण यह कि मेरे प्रियजन, मेरे मित्र, मेरे संबंधी, मेरे गुरु, ये सब मरेंगे, कटेंगे। वैराग्य का जो कारण है, वह मोह है।

यह असंभव है। कोई भी वैराग्य मोह से पैदा नहीं हो सकता। वैराग्य तो पैदा होता है मोह की मुक्ति से। अर्जुन की यह जो कठिनाई है, इस दुविधा के कारण पूरी गीता का जन्म हुआ।

अर्जुन को यह पता भी नहीं है कि उसका जो वैराग्य है, वह झूठा है। उसकी जड़ में मोह है। और जहां मोह की जड़ हो, वहां वैराग्य के फूल नहीं लग सकते। मोह की जड़ में कैसे वैराग्य के फूल लग सकते हैं? अर्जुन परेशान तो मोह से है।

समझें, अगर उसके रिश्तेदार न कटते होते, कोई और कट रहा होता, तो अर्जुन बिल्कुल फिक्र न करता। वह घास-पत्तियों की तरह तलवार से काट देता। इसके पहले भी उसने बहुत बार लोगों को काटा है, लड़ा है, झगड़ा है, लेकिन कभी उसके मन में वैराग्य नहीं उठा। क्योंकि जिनको काट रहा था, उनसे कोई संबंध न था। वह पुराना धनुर्धर है; शिकार उसे सहज है; युद्ध उसके लिए खेल है।

आज जो तकलीफ खड़ी हो रही है, वह तकलीफ लोग कट जाएंगे, इससे नहीं हो रही है। अपने लोग कट जाएंगे! वह अपनत्व, ममत्व के कारण तकलीफ हो रही है। देखता है अपने ही परिवार को दोनों तरफ बंटा हुआ; जिनके साथ बड़ा हुआ, मित्र की तरह खेला, जो अपने ही भाई हैं, अपने ही गुरु हैं, जिन्होंने सिखाया! उस तरफ द्रोण खड़े हैं, जिनसे सारी कला सीखी। आज उन्हीं की हत्या करने को उन्हीं की कला का उपयोग करना पड़ेगा। आज उनको ही काटना होगा, जिनके चरणों पर कल सिर रखा था। इससे अड़चन आ रही है। अगर इनकी जगह कोई भी होते अ ब स, अर्जुन ऐसे काट देता, जैसे घास काट रहा है।

उसे कोई अहिंसा का भाव पैदा नहीं हो रहा है; वह किसी वैराग्य को उपलब्ध नहीं हो रहा है; सिर्फ मोह दुख दे रहा है। अपनों को ही काटना कष्ट दे रहा है। इसलिए गीता का जन्म हुआ। अर्जुन का वैराग्य वास्तविक नहीं है। अगर अर्जुन का वैराग्य वास्तविक हो, तो वह कृष्ण से पूछेगा भी नहीं।

यह भी थोड़ा समझ लेना चाहिए। जब हमारे भीतर झूठी चीजें होती हैं, तो हम किसी से पूछते हैं।

एक युवक मेरे पास आया और वह कहने लगा कि मैं आपसे पूछने आया हूं, क्या मैं संन्यास ले लूं? मैंने उस युवक से कहा कि अगर मैं कहूं कि मत लो, तो तुम क्या करोगे? वह बोला कि मैं नहीं लूंगा। तो मैंने कहा कि जो संन्यास किसी के पूछने पर निर्भर करता हो--कि कोई कह दे कि ले लो, कोई कह दे कि न ले लो, और तुम उसकी मान लोगे--वह संन्यास तुम्हारे भीतर कहीं गहरे में उठ नहीं रहा है।

बुद्ध किसी से पूछने नहीं जाते हैं। महावीर किसी से पूछने नहीं जाते हैं। जीसस किसी से पूछने नहीं जाते हैं कि मैं ऐसा कर लूं? यह वैराग्य का उदय हो रहा है, तो अब मैं क्या करूं?

अर्जुन पूछता है। अर्जुन के भीतर कोई वैराग्य नहीं है, सिर्फ मोह-ममता है। उसका वैराग्य झूठा है। नहीं तो वह कृष्ण से कहता कि मैं जाता हूं, बात खतम हो गई। मुझे दिखाई पड़ गया कि यह सब व्यर्थ है और असार है। फिर कृष्ण भी न समझाने की कोशिश करते, न समझाने का कोई अर्थ था।

अर्जुन दुविधा में है, कहें कि स्किजोफ्रेनिक है, बंटा हुआ है। आधा मन तो लड़ने के लिए आतुर है; धन के लिए आतुर है; राज्य के लिए आतुर है। वह भी मोह है। और आधा मन इस हत्या से भी भयभीत हो रहा है

अपनों को ही मारने की। वह भी मोह है। और इन दोनों से मिलकर वैराग्य की वह बातें कर रहा है, जो कि बिल्कुल झूठी हैं, क्योंकि इन दोनों से वैराग्य का कोई भी संबंध नहीं है।

इसे थोड़ा आप ठीक से समझ लेना। बहुत बार आप भी वैराग्य की बातें करते हैं। लेकिन ध्यान रखना कि आपका वैराग्य मोह से तो पैदा नहीं हो रहा है।

किसी आदमी की पत्नी मर जाती है और वह विरागी हो जाता है। और कल तक उसको वैराग्य का कोई ख्याल नहीं था। किसी आदमी का दिवाला निकल जाता है और वह संन्यास के लिए उत्सुक हो जाता है। कल तक उसे संन्यास का क्षणभर भी ख्याल नहीं था।

अब दिवाले से निकलने वाले संन्यास की कितनी कीमत हो सकती है, थोड़ा समझ लेना। और पत्नी के मरने से जो वैराग्य निकलता है, वह किस मूल्य का होगा? जुए में हार जाने से कोई संन्यासी हो जाएगा, तो उस संन्यास में गंध तो जुए की ही होगी। वह संन्यास जुए का ही रूप होगा, क्योंकि बीज में तो जुआ था। अगर यही आदमी जुए में जीत गया होता, तो? यह पत्नी न मरी होती, तो? यह दिवाला न निकला होता, तो? तो इस आदमी का वैराग्य से कोई लेना-देना न था।

तो जब आपके मन में ऐसा कोई वैराग्य उठता हो, जिसकी जड़ में मोह हो, तो आप समझना कि यह वैराग्य झूठा है और इस वैराग्य के आधार पर आप परमात्मा तक नहीं पहुंच सकेंगे।

पर अर्जुन को पता नहीं है कि वह क्या पूछ रहा है।

ध्यान रहे, जब आप किसी गुरु से पूछते हैं कुछ, तो जरूरी नहीं है कि जो आप पूछते हैं, वही आपकी मौलिक जिज्ञासा हो। आपका प्रश्न तो बहुत ऊपरी होता है। क्योंकि भीतरी प्रश्न भी खोजना अति कठिन है। लेकिन गुरु आपके ऊपरी प्रश्न से आपके भीतरी प्रश्नों को उठाना शुरू करता है। वह तो सिर्फ उसको एक खूंटी बना लेता है; और फिर आपके भीतर प्रवेश करने लगता है; और जो छिपा है, उसे बाहर लाने लगता है।

अर्जुन ने कुछ पूछा है, कृष्ण कुछ कह रहे हैं। और अर्जुन धीरे-धीरे उत्सुक हो गया उनकी बात सुनने में। वह भूल ही गया युद्ध, अपने-जन, वैराग्य, वह बात भूल गया। वह कुछ और ही बातें पूछने लगा। कृष्ण ने उस मौके का बहाना, लाभ उठाकर, अर्जुन के मन को खोल दिया उसकी भीतर की सारी संभावनाओं के प्रति।

अर्जुन अनजाना शिष्य है। जान में तो वह मित्र है। कृष्ण जानकर गुरु हैं। और अर्जुन के प्रति मित्रता का जो भाव है, वह केवल अर्जुन की मित्रता के उत्तर में है।

अर्जुन अनजाना शिष्य है और कृष्ण जानकर गुरु हैं। लेकिन वे यह भी जानते हैं कि अगर वे गुरु की भाषा में बोलें, तो अर्जुन को पीड़ा होगी, उसके अहंकार को चोट लगेगी। वह तो मित्र ही मानकर जीया है। अगर मित्र न माना होता, तो उनको सारथी बनने के लिए राजी भी नहीं करता। बात ही बेहूदी है कि उनसे कहता कि तुम मेरे घोड़ों को सम्हालो और मेरे रथ के सारथी हो जाओ! वे बचपन के साथी हैं, दोस्त हैं। गहरी उनकी मित्रता है।

अर्जुन के मन को चोट न पहुंचे, इसलिए कृष्ण बात करते हैं मित्र की भाषा में ही। और धीरे-धीरे उस मित्र की भाषा में ही गुरु का संदेश भी डालते जाते हैं। और जैसे-जैसे अर्जुन राजी होता जाता है, वैसे-वैसे वे गुरु होते जाते हैं। जैसे ही अर्जुन बंद होता है और डरता है, वैसे ही वे मित्र हो जाते हैं। जैसे ही अर्जुन राजी होता है, खुलता है, ग्राहक होता है, वे बहुत ऊंचाई पर उठ जाते हैं। उस ऊंचाई पर जहां कि वे परमात्मा हैं; वहां से बोलने लगते हैं।

इसलिए कृष्ण के इन वचनों में कई तलों के वचन हैं। कभी वे ठीक मित्र की तरह बोल रहे हैं। कभी वे गुरु की तरह बोल रहे हैं। कभी वे ठीक परमात्मा की तरह बोल रहे हैं। आखिरी ऊंचाई से लेकर साधारण जीवन के तल तक कृष्ण बोल रहे हैं। इसलिए गीता बहुत तलों पर है। और अर्जुन पर निर्भर है; अर्जुन जब जिस ऊंचाई पर उठ सकता है, उस ऊंचाई की वे बात करते हैं।

सभी मार्गों की उन्होंने अर्जुन के सामने बात रख दी है, ताकि अर्जुन सहज ही चुनाव कर ले। और अर्जुन यह नहीं पूछ रहा है कि आप मुझे मार्ग दे दो। तो कृष्ण एक ही मार्ग दे सकते थे। अर्जुन तलाश में है। अभी उसे यह भी पक्का पता नहीं है कि वह क्या खोज रहा है। अभी उसे यह भी मालूम नहीं है कि वह क्या चाहता है। तो कृष्ण सारे मार्ग खोलकर रखे दे रहे हैं। शायद इन मार्गों के संबंध में बात करते-करते ही कोई मार्ग अर्जुन के लिए आकृष्ट कर ले, चुंबक बन जाए और अर्जुन खिंच जाए।

और फिर इस बहाने, अर्जुन के बहाने, पूरी मनुष्यता के लिए यह संदेश हो जाता है। क्योंकि ऐसा कोई भी मार्ग नहीं है, जिस पर कृष्ण ने गीता में मूल बात न कर ली हो। तो सभी मार्गों के लोग अपने योग्य बात गीता में पा सकते हैं।

इसका फायदा भी है, इसका नुकसान भी है। इसका फायदा कम हुआ, नुकसान ज्यादा हुआ। क्योंकि आदमी कुछ ऐसा है कि फायदा लेना जानता ही नहीं, सिर्फ नुकसान लेना ही जानता है।

कृष्ण ने सारे मार्ग गीता में कह दिए हैं। और जब वे एक मार्ग के संबंध में बोलते हैं, तो बाकी के संबंध में भूल जाते हैं। और उस मार्ग को उसकी पूरी ऊंचाई पर उठा देते हैं। इसलिए उन्होंने सभी मार्गों की प्रशंसा की है। कभी उन्होंने भक्ति को कहा श्रेष्ठ; कभी उन्होंने ज्ञान को कहा श्रेष्ठ; कभी उन्होंने कर्म को कहा श्रेष्ठ।

अब यह बड़ी उलझन वाली बात है। क्योंकि अगर भक्ति श्रेष्ठ है, तो साधारण बुद्धि का आदमी कहेगा, फिर कर्म को श्रेष्ठ नहीं कहना चाहिए; फिर ज्ञान को श्रेष्ठ नहीं कहना चाहिए। और अगर ज्ञान श्रेष्ठ है, तो फिर भक्ति को श्रेष्ठ नहीं कहना चाहिए। और कृष्ण इसकी फिक्र ही नहीं करते। वे जिस मार्ग की बात करते हैं, उसको उसकी श्रेष्ठता तक पहुंचा देते हैं। उसकी ऊंचाई, उसकी आखिरी गरिमा, उसका आखिरी गौरीशंकर का शिखर खोल देते हैं। और जब दूसरे मार्ग की बात करते हैं, तो उसका गौरीशंकर खोलते हैं। तब वे भूल ही जाते हैं कि एक क्षण पहले उन्होंने ज्ञान को श्रेष्ठ कहा था, अब वे भक्ति को श्रेष्ठ कह रहे हैं।

यह इस कारण, यह किया तो कृष्ण ने इसलिए ताकि अर्जुन को प्रत्येक मार्ग का जो श्रेष्ठतम है, प्रत्येक मार्ग में जो गहनतम गहराई है, उसका उसे ख्याल दिला दें; फिर चुनाव उसके हाथ में है।

यह वक्तव्य कि ज्ञान श्रेष्ठ है, यह वक्तव्य कि भक्ति श्रेष्ठ है, तुलनात्मक नहीं है। यह ऐसा ही है, जैसे आपने गुलाब का फूल देखा और आपने कहा कि अदभुत! इससे सुंदर मैंने कुछ भी नहीं देखा। फिर आपने रात आकाश में तारे देखे और आपने कहा, अदभुत! इससे सुंदर मैंने कुछ भी नहीं देखा। और फिर एक दिन सुबह आपने सागर का गर्जन सुना और सागर की लहरें चट्टानों से टकराती देखीं और आपने कहा, इससे सुंदर मैंने कभी कुछ नहीं देखा।

ये कोई तुलनात्मक वक्तव्य नहीं हैं। यह उस क्षण में आपकी भाव-दशा को पूरा पकड़ लिया फूल ने और फूल इस जगत का सर्वाधिक श्रेष्ठतम सौंदर्य हो गया। और दूसरे क्षण में इसी भांति चांद ने पकड़ लिया। और तीसरे क्षण में सागर ने पकड़ लिया।

ये तीनों बातों में कोई विरोध नहीं है और कोई तुलना नहीं है। ये सिर्फ इस बात की खबर देते हैं कि एक ऐसी भी भाव-दशा है, जब फूल से जीवन का श्रेष्ठतम अनुभव होता है। उसी भाव-दशा में कभी चांद-तारों से

भी जीवन के श्रेष्ठतम सौंदर्य की प्रतीति हो जाती है। और कभी उसी भाव-दशा का रस, संगीत, सागर की लहरों से भी बंध जाता है।

कबीर एक ढंग से उसी शिखर पर पहुंच जाते हैं। बुद्ध दूसरे ढंग से उसी शिखर पर पहुंच जाते हैं। महावीर तीसरे ढंग से उसी शिखर पर पहुंच जाते हैं। वह शिखर एक है। वह भाव-दशा एक है।

कृष्ण इस तरह बात कर रहे हैं कि उसमें कोई तुलना नहीं है। एक-दूसरे को नीचा दिखाने का भाव नहीं है।

एक मित्र ने मुझसे प्रश्न पूछा है कि जब आप कृष्ण पर बोलते हैं, तो ऐसा लगता है कि जैसे कृष्ण श्रेष्ठतम हैं। और जब आप लाओत्से पर बोलते हैं, तो ऐसा लगता है, लाओत्से का कोई मुकाबला नहीं। जब आप महावीर पर बोलते हैं, तो ऐसा लगता है कि बाकी सब फीके हैं, महावीर ही सब कुछ हैं।

वह बिल्कुल आपको ठीक लगता है। लेकिन उस लगने का आप साफ मतलब समझ लेना, नहीं तो नुकसान होगा; आप कनफ्यूजन में पड़ेंगे।

जब मैं लाओत्से पर बोल रहा हूं, तो लाओत्से के अतिरिक्त मेरे लिए कोई भी नहीं है। तो जब मैं कहता हूं कि लाओत्से अद्वितीय है, तो उसका यह मतलब नहीं है कि वह महावीर से श्रेष्ठ है या बुद्ध से श्रेष्ठ है। उसका कुल मतलब यह है कि वह अपने आप में एक गौरीशंकर है। उसकी कोई तुलना नहीं। और न ही महावीर की कोई तुलना है, और न बुद्ध की, और न कृष्ण की। लेकिन आम आदमी तुलना करता है, कंपेरिजन करता है, और उससे तकलीफ में पड़ता है।

गीता के साथ बड़ा अन्याय हुआ है। शंकर एक व्याख्या लिखते हैं। वह व्याख्या भी अन्यायपूर्ण है, क्योंकि शंकर ज्ञान को श्रेष्ठतम मानते हैं। वह उनकी मान्यता है। उस मान्यता में कोई भूल नहीं है। ज्ञान श्रेष्ठ है। किसी और से श्रेष्ठ नहीं है तुलनात्मक अर्थों में, अपने आप में श्रेष्ठ है। दूसरे से कोई संबंध नहीं है। शंकर की मान्यता है कि ज्ञान श्रेष्ठ है। यह मान्यता बिल्कुल ठीक है और सही है। फिर वे इसी मान्यता को पूरी गीता पर थोप देते हैं।

तो कुछ तो वचन ठीक हैं, जिन में कृष्ण ज्ञान को श्रेष्ठ कहते हैं। वहां तो शंकर को कोई तकलीफ नहीं है। लेकिन जहां कृष्ण भक्ति को श्रेष्ठ कहते हैं और कर्म को श्रेष्ठ कहते हैं, वहां शंकर को अड़चन आती है। पर शंकर बहुत कुशल तार्किक हैं। वे रास्ता निकाल लेते हैं। वे शब्दों में से भूलभुलैया खड़ी कर लेते हैं। वे शब्दों के नए अर्थ कर लेते हैं। वे शब्दों की ऐसी व्याख्या जमा देते हैं कि पूरी गीता शंकर की व्याख्या में ज्ञान की गीता हो जाती है। वह अन्याय है।

रामानुज भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। बिल्कुल ठीक है। कुछ गलती नहीं है। लेकिन वे भक्ति के सूत्रों के आधार पर सारी गीता पर भक्ति को आरोपित कर देते हैं। वह अन्याय है।

तिलक कर्म को श्रेष्ठ मानते हैं, तो पूरी गीता पर कर्म को आरोपित कर देते हैं। वह अन्याय है। अपने आप में बात बिल्कुल ठीक है।

कर्म श्रेष्ठ है, किसी और से नहीं, श्रेष्ठ है इसलिए कि उससे भी परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है। भक्ति श्रेष्ठ है, किसी और से नहीं, श्रेष्ठ है इसलिए कि वह भी परमात्मा का द्वार है। ज्ञान श्रेष्ठ है, किसी और से नहीं; वह भी वहीं पहुंचा देता है, जहां भक्ति और कर्म पहुंचाते हैं।

और जो व्यक्ति जिस मार्ग से चलता है, स्वभावतः उसे वह श्रेष्ठ लगेगा। क्योंकि उससे वह चलता है, उससे वह पाता है, उससे उसे अनुभव होता है। और दूसरे मार्ग से जो चलता है, उसका उसे कोई भी पता नहीं है।

कृष्ण ने सभी मार्गों की बात कही है।

एक मित्र ने मुझसे यह भी पूछा है कि शंकर ने एक व्याख्या की, रामानुज ने दूसरी व्याख्या की, वल्लभ ने तीसरी व्याख्या की, निम्बार्क ने चौथी व्याख्या की, तिलक ने पांचवीं की, गांधी ने की, विनोबा ने की; कोई एक हजार व्याख्याकार गीता के हुए जाने-माने, गैर जाने-माने तो और भी बहुत हैं। मुझसे पूछा है कि आप जो व्याख्या कर रहे हैं, इसमें और उनकी व्याख्या में क्या फर्क है?

इसमें बहुत फर्क है। मेरा कोई संप्रदाय नहीं है। मुझे गीता पर कुछ भी आरोपित नहीं करना है। न मुझे आरोपित करना है ज्ञान, न मुझे आरोपित करनी है भक्ति, न मुझे आरोपित करना है कर्म। मुझे पूरी गीता पर कोई चीज आरोपित नहीं करनी है। पूरी गीता पर जो भी कुछ आरोपित करने की कोशिश करेगा, वह कृष्ण के साथ अन्याय कर रहा है।

मुझे तो इंच-इंच गीता जो कहती है, उसको ही प्रकट कर देना है, इसकी बिना फिक्र किए कि आगे-पीछे उसके विपरीत, उसके विरोध में भी कुछ कहा गया है। मुझे कोई सिस्टम, कोई व्यवस्था नहीं बिठानी है। लेकिन कनफ्यूजिंग होगी; मेरी बात में बड़ा भ्रम पैदा होगा। वह वैसा ही भ्रम होगा, जैसा कृष्ण की बात में है। क्योंकि कभी मैं कहूंगा, ज्ञान श्रेष्ठ है। जब गीता ज्ञान को श्रेष्ठ कहेगी, तो मैं भी कहूंगा। और जब गीता भक्ति को श्रेष्ठ कहेगी, तो मैं भी कहूंगा। मैं गीता के साथ बहूंगा। मैं अपने साथ गीता को नहीं बहाऊंगा।

मेरी कोई धारणा नहीं है, जो मुझे गीता पर आरोपित करनी है। अगर मेरी कोई धारणा हो, जो गीता पर मुझे आरोपित करनी है, तो इसको मैं व्यभिचार मानता हूं। यह उचित नहीं है।

और इसीलिए मुझे सुविधा है कि मैं गीता पर बोलूं, तो मुझे तकलीफ नहीं है। मैं कुरान पर बोलूं, तो मुझे तकलीफ नहीं है। मैं बाइबिल पर बोलूं, तो मुझे तकलीफ नहीं है। क्योंकि मुझे किसी चीज पर कुछ आरोपित नहीं करना है।

मैं मानता हूं, बाइबिल अपने में इतना अदभुत फूल है कि मैं उसको आपके सामने खोल सकूं तो काफी; उसकी सुगंध आपको मिल जाए, बहुत है। उस पर कुछ थोपने की जरूरत नहीं है।

इसलिए जो लोग मेरे बहुत-से वक्तव्य पढ़ते हैं, उनको लगता है, उनमें मैं बड़ा कंट्राडिक्शन है। लगेगा, विरोध लगेगा। कभी मैं यह कहा हूं, और कभी मैं यह कहा हूं, और कभी मैं यह कहा हूं। निश्चित ही, कभी मैं गुलाब की तारीफ कर रहा था। और कभी मैं चांद-तारों की तारीफ कर रहा था। और कभी मैं सागर की लहरों की तारीफ कर रहा था। उन तारीफों में फर्क होगा। क्योंकि गुलाब गुलाब है। चांद-तारे चांद-तारे हैं। लहरें लहरें हैं। और जगत विराट है।

जो व्यक्ति इन सब के बीच तालमेल बिठालने की कोशिश करेगा, वह मुश्किल में पड़ जाएगा, अड़चन में पड़ जाएगा। तालमेल बिठालने की जरूरत ही नहीं है। आपको इस सब में जो ठीक लग जाए, उस पर चलने की जरूरत है। फिर बाकी बातों को आप छोड़ दें। गीता ज्ञान को भी कहेगी, कर्म को भी कहेगी, भक्ति को भी कहेगी। आप फिक्र छोड़ें कि तीनों में कौन श्रेष्ठ है। जो आपको श्रेष्ठ लग जाए, आप उस पर चल पड़ें।

लेकिन कुछ लोग हैं, जो चलते नहीं हैं, जो बैठकर इस चर्चा में जीवन व्यतीत करते हैं कि क्या श्रेष्ठ है। ज्ञान श्रेष्ठ है? भक्ति श्रेष्ठ है? कर्म श्रेष्ठ है? पूरी जिंदगी लगा देते हैं। इनके मस्तिष्क विक्षिप्त हैं। ये होश में नहीं हैं कि ये क्या कर रहे हैं।

अर्जुन के सामने कृष्ण ने सब मार्ग खोलकर रख दिए हैं। और हर मार्ग को उन्होंने इस तरह से प्रस्तावित किया है, जैसा उस मार्ग को मानने वाला प्रस्तावित करेगा, पूरी उसकी शुद्धता में। उस मार्ग को प्रस्तावित करते समय वे उसी मार्ग के साथ एक हो गए हैं।

कृष्ण तो जानकर गुरु हैं। और बहुत बार ऐसा होता है कि आप जानकर शिष्य नहीं होते। हो भी नहीं सकते। क्योंकि शिष्य को इतना भी होश कहां है कि वह क्या है, इसका पता लगा ले।

इजिप्त के पुराने शास्त्रों में कहा गया है कि शिष्य कभी गुरु को नहीं खोज सकता। शिष्य खोजेगा कैसे? उसके पास मापदंड कहां है? वह कैसे परखेगा कि यही है गुरु? और कैसे परखेगा कि यही गुरु मेरे लिए है? कैसे जानेगा कि यह आदमी ठीक है या गलत है? क्या है उसके पास मार्ग, दिशासूचक यंत्र जिससे पहचानेगा कि इस आदमी के पीछे चलकर मैं पहुंच जाऊंगा? शिष्य कैसे गुरु को खोजेगा?

इजिप्त की पुरानी किताबें कहती हैं कि शिष्य कभी गुरु को नहीं खोजता। इसका यह मतलब नहीं है कि शिष्य को खोज छोड़कर घर बैठ जाना चाहिए। खोजना तो उसे चाहिए, हालांकि वह खोज न सकेगा। लेकिन खोजने के उपक्रम में गुरुओं के लिए उपलब्ध हो जाएगा। कोई गुरु उसको खोज लेगा।

हमेशा गुरु ही शिष्य को खोजता है। और गुरु खोजने नहीं निकलता, शिष्य खोजने निकलता है। लेकिन अनेक गुरुओं के पास से गुजरते-गुजरते कोई गुरु उसे पकड़ लेता है। लेकिन तब भी गुरु को ऐसी ही व्यवस्था करनी पड़ती है कि शिष्य को लगे कि उसने ही चुना है। ये जरा जटिलताएं हैं।

गुरु को ऐसा इंतजाम करना पड़ता है कि जैसे शिष्य ने ही उसे चुना है। क्योंकि शिष्य के अहंकार को यह बात बरदाश्त के बाहर होगी कि गुरु ने उसे चुन लिया। वह भाग खड़ा होगा। यह पता चलते ही कि गुरु ने उसे चुना है, वह भाग जाएगा। तो गुरु उसे इस ढंग से व्यवस्था देगा कि उसे लगे कि उसने ही गुरु को चुना है। और अगर कभी किसी दिन गुरु को उसे अलग भी करना होगा, तो गुरु ऐसी ही व्यवस्था देगा कि शिष्य समझेगा, मैंने ही गुरु को छोड़ दिया है।

गुरु का काम जटिल है, और गहन है, और गुह्य है। लेकिन हमेशा गुरु ही आपको चुनता है, क्योंकि उसके पास दृष्टि है। वह जानता है। वह आपके भीतर झांक सकता है। वह आपका आगा-पीछा देख सकता है। आप क्या कर सकते हैं, क्या हो सकते हैं, इसकी उसके पास देखने की दूरी, क्षमता, निरीक्षण है। शिष्य कैसे खोजेगा?

मेरे पास लोग आते हैं। पश्चिम में बहुत दौड़ है; और पश्चिम से युवक निकलते हैं गुरु की तलाश में; सारी जमीन को खोज डालते हैं। कभी इस मुल्क में ऐसी दौड़ थी। वह खो गई। यह मुल्क बहुत दिन पहले अध्यात्म की दिशा में मर चुका है। जब बुद्ध जिंदा थे, तब इस मुल्क में भी ऐसी दौड़ थी। लोग एक कोने से दूसरे कोने तक घूमते थे गुरु की तलाश में, कि कोई चुंबक मिल जाए, जो खींच ले। सारी दुनिया से हिंदुस्तान उस समय भी लोग आते थे।

अब फिर पश्चिम में एक दौड़ शुरू हुई है। पश्चिम के युवक और युवतियां खोजते निकल रहे हैं, गुरु कहां है!

मेरे पास बहुत लोग आते हैं। मैं उनसे कहता हूं कि तुम खोज न पाओगे गुरु को, लेकिन खोज मत बंद करो। खोज जारी रखो, ताकि तुम अवेलेबल, उपलब्ध रहो। घूमते रहो। कोई गुरु तुम्हें चुन लेगा। और तुम्हारी

अगर इतनी ही तैयारी हुई कि तुम किसी गुरु से चुने जाने के लिए राजी हो गए, और किसी गुरु की धारा में बहने को राजी हो गए, इतनी तुम्हारी तैयारी रही, तो तुम्हारे जीवन में रूपांतरण आसान है।

अर्जुन के सामने कृष्ण सारे मार्ग रखे दे रहे हैं। यह सिर्फ मार्ग रखना ही नहीं है; मार्ग समझा रहे हैं और यहां ऊपर से कृष्ण की चेतना अर्जुन में झांककर भी देखती जा रही है। कौन-सा मार्ग उसे जमता है! कौन-से मार्ग में वह ज्यादा रस लेता है! कौन-से मार्ग में ज्यादा सवाल उठाता है! कौन-से मार्ग में उसके भीतर तरंगें उठने लगती हैं! कौन-से मार्ग में वह समाधिस्थ होकर सुनने लगता है! कौन-से मार्ग में ऊब जाता है, जम्हाई लेता है! कौन-से मार्ग से उसका तालमेल बैठता है; कौन-से मार्ग से कोई तालमेल नहीं बैठता! यह सब वे देखते जा रहे हैं। इस सारी चर्चा के साथ-साथ अर्जुन का निरीक्षण चल रहा है। एक अर्थ में यह अर्जुन का मनोविश्लेषण है।

फ्रायड ने इस सदी में मनोविश्लेषण की कला खोजी।

यह थोड़ा ख्याल में ले लेना जरूरी होगा। और जो लोग मनसशास्त्र में उत्सुक हैं और जो लोग साधना के लिए जरा भी जिज्ञासा रखते हैं, उनके बहुत काम का होगा।

फ्रायड ने एक मार्ग खोजा। वह मार्ग बिल्कुल उलटा है। जैसा मार्ग गुरु हमेशा उपयोग करते रहे थे, उससे उलटा है। फ्रायड अपने मरीज को लिटा देता है कोच पर, पीछे बैठ जाता है परदे की ओट में। और मरीज से कहता है, जो भी तुझे कहना हो, कह। तू बिल्कुल फिक्र मत कर कि क्या कह रहा है। जो भी तेरे भीतर आता हो, उसको तू कहता जा। सहज एसोसिएशन से, जो भी तेरे भीतर आ जाए साहचर्य से, तू कहता जा।

मरीज कहना शुरू कर देता है। अनर्गल बातें भी कहता है। कभी सार्थक बातें भी कहता है। कभी अचानक कुछ भी आ जाता है असंगत, वह भी कहता है। पर उसको इसी का सहारा देता है फ्रायड कि तू सिर्फ कहता जा, जो भी तेरे भीतर है। और फ्रायड परदे के पीछे बैठकर सुनता है।

वह इस मनुष्य के मन में प्रवेश कर रहा है। इसके भीतर जो चलती रहती हैं बातें, जो विचार, जो शब्द, वह उनकी जांच कर रहा है। इन शब्दों के माध्यम से वह उसके भीतर खोज रहा है, कितनी असंगति है, कितना उपद्रव है, कितनी विक्षिप्तता है। इन शब्दों के बीच-बीच में से कहीं-कहीं उसे संध मिल जाती है, जिससे कोई कुंजी मिल जाती है; जिससे पता चलता है।

जैसे किसी आदमी को लिटाया और वह एकदम गंदी गालियां बकने लगा, अश्लील बातें बोलने लगा, तो ख्याल में आता है कि उसके भीतर क्या चल रहा है। और ऐसे वह भला आदमी था। अच्छा आदमी था। चर्च जाता था। सभी तरह नैतिक था। और भीतर उसके यह चल रहा है!

तो फ्रायड वर्षों मेहनत करता है एक मरीज के साथ। ताकि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, वह कितना छिपाए, छिपा न पाए, और भीतर जो निकल रहा है कचरा-कूड़ा, उसमें से वह पकड़ ले कि इसकी आत्मा की तरफ स्वास्थ्य का क्या मार्ग होगा।

लेकिन यह बड़ी लंबी बात है। इसमें कभी तीन साल लग जाते हैं और कभी तीस साल भी लग जाते हैं, पूरा मनोविश्लेषण होते हुए। अगर इस तरह मनोविश्लेषण किया जाए, तो कितने लोगों का मनोविश्लेषण होगा? और तीस साल के बाद भी फ्रायड यह नहीं कह सकता कि मनोविश्लेषण सच में ही पूरा हो गया। क्योंकि यह निकलता ही जाता है। यह कचरा अंतहीन है।

यह आपकी खोपड़ी इतनी विस्तीर्ण है! इतनी छोटी नहीं है, जितनी दिखाई पड़ती है। इसमें लाखों शब्द भरे हुए हैं; और लाखों तथ्य भरे हुए हैं। अगर इनको खोलते ही चले जाएं, तो वे खुलते ही चले जाते हैं। तो यह तो बहुत लंबा हो गया मार्ग।

और अब पश्चिम में भी मनोवैज्ञानिक कहने लगे हैं कि साइकोएनालिसिस से कुछ हल नहीं हो सकता। अगर एक पागल को ठीक करने में तीस साल लग जाएं या दस साल लगें, तो कितने पागल तुम ठीक कर पाओगे? और यह पूरी जमीन पागल मालूम होती है। यहां कौन किसका मनोविश्लेषण करेगा!

और बड़े मजे की तो बात यह है कि मनोविश्लेषक भी अपना मनोविश्लेषण दूसरे से करवाता है। करवाना पड़ता है। क्योंकि फ्रायड की शर्त यह है कि जब तक तुम्हारा खुद का मनोविश्लेषण न हो गया हो, तब तक तुम दूसरे का कैसे करोगे? तो पहले मनोविश्लेषक अपना मनोविश्लेषण करवाता है वर्षों तक। फिर वह दूसरों का करने लगता है। मगर कितने भी मनोविश्लेषक हों, तो भी क्या होगा इस जमीन पर?

भारत की परंपरा कुछ और थी। हमने भी तरकीब खोजी थी। इसमें शिष्य नहीं बोलता था, इसमें गुरु बोलता था। यह जरा फर्क समझ लेना। यह कृष्ण और अर्जुन की बात में ख्याल आ जाएगा।

यहां शिष्य नहीं बोलता था। और हम शिष्य को मरीज नहीं कहते, वह शब्द ठीक नहीं है। हालांकि सभी शिष्य मरीज हैं। लेकिन वह शब्द ही ठीक नहीं है, वह बेहूदा है। और अब पश्चिम में भी मनोवैज्ञानिक कहने लगे कि मरीज शब्द उपयोग करना ठीक नहीं है, क्योंकि उससे हम दूसरे को मरीज कहकर मरीज बनाने में सहयोगी होते हैं। क्योंकि जो भी शब्द हम देते हैं, उसका परिणाम होता है।

किसी आदमी से कहो कि तुम बड़े सुंदर हो; वह फौरन खिल जाता है। इतना सुंदर था नहीं कहने के पहले; कहते से ही खिल जाता है। किसी आदमी को कह दो कि तुम जैसी शक्ल! पता नहीं परमात्मा क्या कर रहा था, उस वक्त तुम्हें बनाया। कहीं भूल-चूक कर गया; क्या हो गया! वह आदमी तत्क्षण कुम्हला जाता है। वह इतना कुरूप था नहीं, जितना कहते से ही हो जाता है।

एक आदमी को मरीज कहना भी खतरनाक है। क्योंकि आप एक वक्तव्य दे रहे हैं, जो उसके भीतर चला जाएगा। वह मरीज न भी हो, तो भी मरीज हो जाएगा।

हम मरीज नहीं कहते, हम तो शिष्य कहते हैं। हम तो कहते हैं, सीखने वाला। और बीमार भी इसीलिए बीमार है कि उसके सीखने में कमी रह गई है। और कोई बीमारी नहीं है। उसका ज्ञान क्षीण है, कम है; उसका अज्ञान ज्यादा है।

शिष्य सुनता, गुरु बोलता था।

पश्चिम में अब गुरु सुन रहा है, जो चिकित्सक है; और शिष्य, जो कि मरीज है, वह बोल रहा है। शिष्य बोल रहा है, गुरु सुन रहा है!

गुरु बोलता था और बोलते समय वह शिष्य को जांचता चला जाता था, कहां कौन-सी बात में रस आता है! उससे आपके बाबत खबर मिलती थी।

एक मित्र ने मुझे सवाल पूछा है कि यह जो यहां कीर्तन होता है, यह बहुत खतरनाक चीज है। और यह तो ऐसा मालूम पड़ता है कि कीर्तन करने वाले साधु, संन्यासी, संन्यासिनियां कामवासना निकाल रहे हैं अपनी! और उन्हीं मित्र ने आगे पूछा है कि यह भी मुझे पूछना है कि जब मैं लोगों को कीर्तन करते देखता हूं, तो अगर स्त्रियां कीर्तन कर रही हैं, तो मेरा ध्यान उनके स्तन पर ही जाता है!

अब कीर्तन करते समय जिसका ध्यान स्तन पर जा रहा हो, वह यह कह रहा है कि उसे लगता है कि सब संन्यासी अपनी कामवासना निकाल रहे हैं! उसे यह ख्याल नहीं आता कि उसे जो दिखाई पड़ रहा है, वह उसके संबंध में खबर है, किसी और के संबंध में खबर नहीं है। और वह खुद ही नीचे लिख रहा है कि मुझे उनके स्तन पर ध्यान जाता है।

निश्चित ही, इस व्यक्ति को मां के स्तन से दूध पीने का पूरा मौका नहीं मिला होगा। इसको स्तन में अभी भी अटकाव रह गया है। इसको एक काम करना चाहिए। बच्चों के लिए जो दूध पीने की बोतल आती है, वह खरीद लेनी चाहिए। उसमें दूध भरकर रात उसको चूसना चाहिए, दस-पंद्रह मिनट सोने के पहले। तीन महीने के भीतर इसको स्तन दिखाई पड़ने बंद हो जाएंगे।

स्तन दिखाई पड़ने का मतलब ही यह है कि बच्चे का जो रस था स्तन में, वह कायम रह गया है। स्तन पूरा नहीं पीया जा सका। इसलिए आदिवासियों में जाएं, जहां बच्चे पूरी तरह अपनी मां का स्तन पीते हैं, वहां किसी की उत्सुकता स्तन में नहीं है। अगर आप आदिवासी स्त्री को, हाथ रखकर भी उसके स्तन पर, पूछें कि यह क्या है? तो वह कहेगी कि दूध पिलाने का थन है। आप अपने इस समाज की स्त्री के स्तन की तरफ आंख भी उठाएं, वह भी बेचैन, आप भी बेचैन। आप भी आंख बचाते हैं, तब भी बेचैन; वह भी स्तन को छिपा रही है और बेचैन है। और छिपाकर भी प्रकट करने की पूरी कोशिश कर रही है, उसमें भी बेचैन है।

और सबकी नजर वहीं लगी हुई है। चाहे फिल्म देखने जाएं, चाहे उपन्यास पढ़ें, चाहे कविता करें, चाहे कहानी लिखें, स्तन बिल्कुल जरूरी हैं! अगर कभी कोई दूसरे ग्रह की सभ्यता के लोग इस जमीन पर आए, तो वे हमें कहेंगे कि ये लोग स्तनों से बीमार समाज है। क्योंकि मूर्ति बनाओ तो, चित्र बनाओ तो, स्तन पहली चीज है; स्त्री गौण है।

मगर यह बच्चे का दृष्टिकोण है। असल में बच्चा जब पहली दफा मां से संबंधित होता है--और वह उसका पहला संबंध है, उसके पहले उसका कोई संबंध किसी से नहीं है, वह उसका पहला समाज में पदार्पण है, वह उसका पहला अनुभव है दूसरे का--तो वह पूरी मां से संबंधित नहीं होता; सिर्फ उसके स्तन से संबंधित होता है। पहला अनुभव स्तन का है। और पहले वह स्तन को ही पहचानता है; मां पीछे आती है। स्तन प्रमुख है, मां गौण है। और अगर आपको बाद की उम्र में भी स्तन प्रमुख है, स्त्री गौण लगती है, तो आप बचकाने हैं और आपकी बुद्धि परिपक्व नहीं हो पाई। आपको फिर से स्तन नकली खरीदकर बाजार से, पीना शुरू कर देना चाहिए। उससे राहत मिलेगी।

गुरु बोलता था, शिष्य सुनता था। लेकिन शिष्य के सुनने में भी गुरु देखता था, उसका रस कहां है! उसकी आंख कहां चमकने लगती है और कहां फीकी हो जाती है! कहां उसकी आंख की पुतली खुल जाती है और फैल जाती है, और कहां सिकुड़ जाती है! कहां उसकी रीढ़ सीधी हो जाती है, और कहां वह शिथिल होकर बैठ जाता है! वह देख रहा है। बाहर और भीतर उसकी चेतना में क्या हो रहा है, वह देख रहा है। और इस माध्यम से वह भी चुन रहा है कि इस शिष्य के लिए क्या जरूरी होगा, क्या उपयोगी होगा।

इसलिए कृष्ण ने सारे मार्गों की बात कही है। उन सारे मार्गों पर अर्जुन को चलना नहीं है। अर्जुन को चलना तो होगा एक ही मार्ग पर। लेकिन इन सारों को चलने के पहले जान लेना जरूरी है।

एक और प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि रामकृष्ण परमहंस ने अनेक-अनेक मार्गों से चलकर एक ही मंजिल और एक ही सत्य की पुष्टि की। लेकिन एक साधना से सिद्ध होने के बाद भी उन्होंने वापस दूसरी साधना को अ ब स से कैसे शुरू किया होगा? क्या वे ज्ञान को उपलब्ध होकर फिर से अज्ञानी हो जाते थे और फिर नए मार्ग से शुरू करते थे?

बडा समझने जैसा है। परम ज्ञान के बाद तो कोई वापस नहीं लौट सकता। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि मंजिल और यात्री एक हो जाते हैं। जब मंजिल और यात्री एक हो जाते हों, तो फिर लौटेगा कौन और कैसे?

लेकिन परम ज्ञान के पहले, ठीक मंजिल पर पहुंचने के पहले एक आखिरी कदम जब रह जाता है, उसे हम ज्ञान कहते हैं। परम ज्ञान कहते हैं, जब मंजिल और यात्री एक हो जाते हैं। नदी सागर में गिर गई; अब नहीं लौट सकेगी। लेकिन नदी किनारे तक पहुंची है और ठहरी है। सागर में गिर सकती है, लौट भी सकती है। ज्ञान का क्षण है, जब साधक सिद्ध होने के द्वार पर पहुंच जाता है। वहां से सब कुछ दिखाई पड़ता है, सागर का पूरा विस्तार। लेकिन अभी भी फासला कायम है। साधक अभी भी सिद्ध नहीं हो गया है। सिद्ध होने के करीब आ गया है, बिल्कुल करीब आ गया है। सिद्ध होने के बराबर हो गया है। एक क्षण, और लीन हो जाएगा।

लेकिन अभी चाहे तो लौट सकता है। जब तक दो का अनुभव होता है, तब तक लौटना हो सकता है। जब तक मैं देखता हूं कि वह रहा परमात्मा और यह रहा मैं, तब तक लौट सकता हूं। जब तक मैं देखता हूं, यह रहा मैं और यह रहा आनंद; मैं जानता हूं आनंद को, जब तक ऐसा लगता है, लौट सकता हूं। द्वैत कायम है, अभी वापसी हो सकती है। लेकिन जब मुझे पता ही नहीं चलता कि कौन परमात्मा और कौन मैं, दोनों एक हो गए, तब लौटना नहीं हो सकता।

रामकृष्ण परमहंस ज्ञान की स्थिति से लौटे। सागर के ठीक किनारे पहुंच गई नदी, तब उन्होंने कहा कि अब मैं जरा दूसरी नदी के रास्ते पर भी चलकर देखूं कि वह नदी भी सागर तक पहुंचती है या नहीं! तब वे दूसरी नदी के रास्ते पर चले। फिर किनारे पर पहुंचे और उन्होंने कहा कि अब मैं तीसरी नदी के रास्ते पर चलकर देखूं, वह भी सागर तक पहुंचती है या नहीं! इस तरह उन्होंने अनेक मार्गों की साधना की।

जब अनेक मार्गों से चलकर उन्होंने देख लिया कि सभी नदियां सागर पहुंच जाती हैं। जो पूर्व की तरफ बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो पश्चिम की तरफ बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो उत्तर की तरफ बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो दक्षिण की तरफ बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जिनका रास्ता बिल्कुल सीधा है, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो बहुत इरछी-तिरछी बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो बड़ी शांत हैं, गंभीर हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। और जो बिल्कुल तूफानी हैं और विक्षिप्त हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं।

जब रामकृष्ण ने यह सब देख लिया, तब वे सागर में गिर गए। उसके बाद नहीं लौटा जा सकता। परम ज्ञान... ।

तो बुद्ध ने भी दो शब्दों का उपयोग किया है, निर्वाण और परम निर्वाण। निर्वाण का अर्थ है, आखिरी क्षण, जहां से आदमी चाहे, तो वापस लौट सकता है। और जहां से चाहे, तो गिर सकता है उस अवस्था में, जहां से कोई वापसी नहीं है। उसको निर्वाण कहा है। और जो गिर गया, उसको परम निर्वाण कहा है।

तो रामकृष्ण लौटे निर्वाण की दशा से, ज्ञान की दशा से। परम ज्ञान की दशा से कोई भी नहीं लौट सकता है।

अब हम सूत्र को लें।

परंतु प्रकृति में स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए त्रिगुणात्मक सब पदार्थों को भोगता है और इन गुणों का संग ही इसके अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने में कारण है। वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ भी पर ही है, केवल साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमंता एवं सबको धारण करने वाला होने से भर्ता, जीव रूप से भोक्ता तथा ब्रह्मादिकों का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानंदघन होने से परमात्मा, ऐसा कहा गया है।

परंतु प्रकृति में स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए सब पदार्थों को भोगता है... ।

वह जो भीतर चैतन्य है, वह जो पुरुष है, उसके बाहर चारों तरफ जो प्रकृति का त्रिगुण विस्तार है, यह पुरुष ही सभी स्थितियों में प्रकृति से संबंधित होता है। प्रकृति किसी भी स्थिति में पुरुष से संबंधित नहीं होती। पहली तो बात यह ख्याल में ले लें।

आप अपने मकान में हैं। आप कहते हैं, मेरा मकान। मकान कभी नहीं कहता कि आप मेरे हैं। और आप कल चले जाएंगे, तो मकान रोएगा नहीं। मकान गिर जाएगा, तो आप रोएंगे। बहुत मजे की बात है। मकान धेला भर भी आपकी चिंता नहीं करता; आप बड़ी चिंता करते हैं।

आपकी कार बिगड़ जाए, तो आंसू निकल आते हैं। जिस जमीन पर आप खून-खराबा कर सकते हैं, जान दे सकते हैं, वह जमीन आपकी रत्तीभर भी चिंता नहीं करती। बहुत पहले आप जैसे पागल और भी उस पर जान दे चुके हैं। जिस जमीन को आप अपना कहते हैं, आप नहीं थे, तब भी वह थी। कोई और उसको अपना कह रहा था। न मालूम कितने लोग दावा कर चुके। और दावेदार समाप्त हो जाते हैं और जिस पर दावा किया जाता है, वह बना है।

प्रकृति आपसे कोई संबंध स्थापित नहीं करती। आप ही प्रकृति से संबंध स्थापित करते हैं। आप ही संबंध बनाते हैं, आप ही तोड़ते हैं। संबंध बनाकर आप ही सुख पाते हैं, आप ही दुख पाते हैं। यह निपट आप पर ही निर्भर है। कुछ भी प्रकृति की उत्सुकता नहीं है कि आपको दुख दे कि सुख दे। आप अपना सुख-दुख अपने हाथ से निर्मित करते हैं।

और इसलिए एक मजे की घटना घटती है। जिस चीज से आपको सुख मिलता है, आपकी दृष्टि बदल जाए, उसी से दुख मिलने लगता है। चीज वही है। जिस चीज से आपको दुख मिलता है, दृष्टि बदल जाए, उसी से सुख मिलने लगता है। चीज वही है। पर आपकी दृष्टि बदली कि सारा अर्थ बदल जाता है। आपका ख्याल बदला कि सारा संसार बदल जाता है।

आप वस्तुओं के संसार में नहीं रहते, आप भावों और विचारों के संसार में रहते हैं। वस्तुएं तो बहुत दूर हैं, उनसे आपका कोई संबंध नहीं है। आप अपने भावों को फैलाकर सेतु बनाते हैं, वस्तुओं से संबंधित हो जाते हैं। किसी को पत्नी कहते हैं, किसी को पति कहते हैं, किसी को मित्र कहते हैं। वे सब संबंध हैं, जो आपने निर्मित कर लिए हैं। वैसे संबंध कहीं हैं नहीं; सिर्फ भावों में है।

कृष्ण कह रहे हैं कि यह जो प्रकृति है चारों तरफ, उससे उत्पन्न हुए ये जो सारे पदार्थ हैं, इनको आप भोगते हैं अपने ही भाव से। और इन भावों के कारण ही अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेते हैं।

आप जैसा भाव करते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। भाव जन्मदाता है। आप जैसा भाव करते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। आप जो मांगते हैं, बड़े दुख की बात यही है कि वही मिल जाता है। जो कुछ भी आप हैं, वह आपकी ही वासनाओं का परिणाम है।

थोड़ा ख्याल करें, कितनी वासनाएं आप करते हैं! और जिन वासनाओं को आप करते हैं, धीरे-धीरे-धीरे उन वासनाओं को पूरा करने के योग्य आप हो जाते हैं। वैज्ञानिक भी कहते हैं, डार्विन ने प्रस्तावित किया है कि मनुष्य के पास जो-जो इंद्रियां हैं, वे इंद्रियां भी मनुष्य की वासनाओं से ही जन्मी हैं।

आपके पास आंख है, इसलिए आप देखते हैं, यह बात ठीक नहीं है। आप देखना चाहते थे, इसलिए आंख पैदा हुई। जिराफ है, उसकी लंबी गर्दन है। तो डार्विन कहता है कि जिराफ की इतनी लंबी गर्दन क्यों है? ऊंट की इतनी लंबी गर्दन क्यों है?

हम तो ऊपर से यही देखते हैं कि ऊंट की इतनी लंबी गर्दन है, इसलिए झाड़ पर कितने ही ऊंचे पत्ते हों, उनको तोड़कर खा लेता है। लेकिन विकासवादी कहते हैं कि झाड़ के ऊंचे पत्ते पाने के लिए ही जो वासना है उसकी, वही उसकी गर्दन को लंबा कर देती है; नहीं तो उसकी गर्दन लंबी नहीं हो जाएगी। और जंगल में बड़ा संघर्ष है। क्योंकि नीचे के पत्ते तो कोई भी जानवर खा जाते। जिसकी गर्दन जितनी ऊंची होगी, वह उतनी देर तक सरवाइव कर सकता है; उसका बचाव उतनी देर तक हो सकता है।

तो डार्विन और उनके अनुयायी कहते हैं कि यह ऊंट है, जिराफ है, यह सरवाइवल आफ दि फिटेस्ट, वह जो बचाव करने में सक्षम है अपने को, वह वही इंद्रियां पैदा कर लेता है, जिनकी उसकी वासना है। लंबी गर्दन के कारण ऊंट बड़े वृक्षों के पत्ते नहीं खाता है, बड़े वृक्षों के पत्ते खाना चाहता है, इसलिए उसके पास लंबी गर्दन है।

आप जो देखते हैं, वह आंख के कारण नहीं देखते हैं; देखने की वासना है भीतर, इसलिए आंख है। और इसकी बड़ी अदभुत कभी-कभी घटनाएं घटी हैं।

रूस में एक महिला अंधी हो गई। उसे देखने का रस तो लग गया था। देखा था उसने बहुत दिनों तक, फिर अंधी हो गई। और देखने की वासना उसमें प्रगाढ़ थी। और देखना है, क्योंकि देखे बिना जिंदगी एकदम बे-रौनक हो गई।

आप सोच नहीं सकते कि जिसके पास आंख रही हों और आंखें चली जाएं, उसकी जिंदगी एकदम अस्सी प्रतिशत समाप्त हो गई। क्योंकि सब रंग खो गए; जिंदगी से सारी रंगीनी खो गई; सब चेहरे खो गए; सब रूप खो गए। ध्वनियों का एक उबाने वाला मोनोटोनस जगत रह गया, जहां कोई रंग नहीं, जहां कोई रूप नहीं।

तो उसकी देखने की प्रगाढ़ आकांक्षा उसमें पैदा हुई। और उसने हाथ से चीजों को टटोलना शुरू किया। और धीरे-धीरे उसकी अंगुलियां आंखों जैसा काम करने लगीं। अब तो उस पर बड़े वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं। वह आपके चेहरे के पास अंगुलियों को लाकर, बिना छुए, हाथ घुमाकर कह सकती है कि चेहरा सुंदर है या कुरूप है--बिना छुए!

तो वैज्ञानिक कहते हैं कि उसके हाथ आपके चेहरे से निकलती किरणों के स्पर्श को अनुभव करने लगे। और सच तो बात यही है कि आंख भी चमड़ी ही है। हाथ भी चमड़ी है। आंख की चमड़ी ने एक स्पेशिएलिटी, एक विशेष गुण पैदा कर लिया है देखने का। तो कोई वजह नहीं है कि हाथ की चमड़ी वैसा गुण क्यों पैदा न कर ले!

कुछ पशु हैं, जो पूरे शरीर से सुनते हैं। उनके पास कोई कान नहीं है। पूरा शरीर ही कान का काम करता है। आप रात को चमगादड़ देखते हैं। चमगादड़ कभी दिन में भी घर में घुस आता है। उसे दिन में दिखाई नहीं पड़ता। उसकी आंखें खुल नहीं सकतीं। लेकिन आपने कभी ख्याल किया हो, न किया हो; ठीक चमगादड़ दीवाल के बिल्कुल किनारे आकर चार-छः अंगुल की दूरी से लौट जाता है, टकराता नहीं। टकराने को होता है और लौट जाता है। और आंख उसकी देखती नहीं।

तो वैज्ञानिक उस पर बहुत काम करते हैं। तो उसका पूरा शरीर दीवाल की मौजूदगी को छः इंच की दूरी से अनुभव करता है। इसलिए वह करीब आ जाता है टकराने के, लेकिन टकराता नहीं। हां, आप उसको घबड़ा दें और परेशान कर दें, तो टकरा जाएगा। लेकिन अपने आप वह टकराता नहीं। बिल्कुल पास आकर हट जाता है। राडार है उसके पास, जो छः इंच की दूरी से उसको स्पर्श का बोध दे देता है। दिन में उसके पास आंख नहीं है, लेकिन बचाव की सुविधा तो जरूरी है। उसका पूरा शरीर अनुभव करने लगा है। उसका पूरा शरीर संवेदनशील हो गया है।

हमारे भीतर वह जो छिपा हुआ पुरुष है, वह जो भी चाहता है, उसके योग्य इंद्रिय पैदा हो जाती है। उसकी चाह की छाया है।

यह जरा कठिन होगा। क्योंकि अक्सर हम कहते हैं कि इंद्रियों के कारण वासना है। गलत है बात। वासनाओं के कारण इंद्रियां हैं। इसीलिए तो ज्ञानी कहते हैं कि जब वासनाएं समाप्त हो जाएंगी, तो तुम जन्म न ले सकोगे। जन्म न ले सकने का मतलब यह है कि तुम फिर इंद्रियां और शरीर को ग्रहण न कर सकोगे। क्योंकि इंद्रियां और शरीर मूल नहीं हैं, मूल वासना है। तुम जिस घर में पैदा हुए हो, वह भी तुम्हारी वासना है। तुम जिस योनि में पैदा हुए हो, वह भी तुम्हारी वासना है।

इधर मैं एक बहुत अनूठे अनुभव पर आया। कुछ लोगों के पिछले जन्मों के संबंध में मैं काम करता रहा हूं, कि उनके पिछले जीवन की स्मृतियों में उन्हें उतारने का प्रयोग करता रहा हूं। एक चकित करने वाला अनुभव हुआ। वह अनुभव यह हुआ कि पुरुष तो अक्सर पिछले जन्मों में भी पुरुष होते हैं, लेकिन अक्सर स्त्रियां जन्म में बदलती हैं। जैसे अगर कोई पिछले जन्म में स्त्री थी, तो इस जन्म में पुरुष हो जाती है।

शायद स्त्रियों के मन में गहरी वासना पुरुष होने की होगी। स्त्रियों की परतंत्रता, शोषण के कारण स्त्रियों के मन में वासना होती है कि पुरुष होतीं तो अच्छा था। प्रगाढ़...। और जीवनभर का अनुभव उनको कहता है कि पुरुष होतीं तो अच्छा था।

लेकिन पश्चिम में स्त्रियों की स्वतंत्रता बढ़ रही है। पचास-सौ वर्ष के बाद यह बात मिट जाएगी। स्त्रियां स्त्री योनि में जन्म ले सकेंगी; वह वासना क्षीण हो जाएगी।

अक्सर ऐसा होता है कि जो ब्राह्मण घर में है, वह दूसरे जन्म में भी ब्राह्मण घर में है; उसके पीछे भी ब्राह्मण घर में है। क्योंकि ब्राह्मण घर का बेटा एक दफा ब्राह्मण घर का अहंकार और दर्प अनुभव किया हो, तो किसी और घर में पैदा नहीं होना चाहेगा। वह उसकी वासना नहीं है। लेकिन शूद्र अक्सर बदल लेंगे। एक जन्म में शूद्र है, तो दूसरे जन्म में वह दूसरे वर्ण में प्रवेश कर जाएगा। उसकी गहरी वासना उस शूद्र के वर्ण से हट जाने की है। वह भारी है, कष्टपूर्ण है, वह बोझ है; उसमें होना सुखद नहीं है।

तो हम जो वासना करते हैं, उस तरफ हम सरकने लगते हैं। हमारी वासना हमारे आगे-आगे चलती है और हमारे जीवन को पीछे-पीछे खींचती है।

कृष्ण कहते हैं, यह जो प्रकृति से फैला हुआ संसार है, हमारे भीतर छिपा हुआ पुरुष ही इसे भोगता है और गुणों का संग ही इसकी अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने के कारण होते हैं। और फिर जिन चीजों से यह रस का संबंध बना लेता है, संग बना लेता है, जिनसे यह रस से जुड़ जाता है, उन्हीं योनियों में प्रवेश करने लगता है।

अगर कोई इस तरह की वासनाएं करता है कि कुत्ता होकर उनको ज्यादा अच्छी तरह से पूरी कर सकेगा, तो प्रकृति उसके लिए कुत्ते का शरीर दे देगी। प्रकृति सिर्फ खुला निमंत्रण है। कोई आग्रह नहीं है प्रकृति का। आप जो होना चाहते हैं, वे हो जाते हैं। आप अपने गर्भ को चुनते हैं, जाने या अनजाने। आप अपनी योनि भी चुनते हैं, जाने या अनजाने।

आप जो मांगते हैं, वह घटित हो जाता है। जैसे पानी नीचे बहता है और गड्ढे में भर जाता है, ऐसे ही आप भी बहते हैं और अपनी योनि में भर जाते हैं। आपकी जो वासनाएं हैं, वे आपको ले जाती हैं एक विशेष दिशा की तरफ। अच्छी और बुरी योनियों में जन्म हमारी ही आकांक्षाओं का फल है।

लेकिन हमारी तकलीफ यह है कि हम भूल ही जाते हैं कि हमारी आकांक्षाएं क्या हैं। हम भूल ही जाते हैं कि हमने क्या मांगा था। जब तक हमें उपलब्धि होती है, तब तक हम अपनी मांग ही भूल जाते हैं। अगर हम अपनी मांग याद रख सकें, तो हमें पता चल जाएगा कि फासला चाहे कितना ही हो मांग और प्राप्ति का, जो हमने मांगा था, वह हमें मिल गया है।

इधर मैं देखता हूं, लोग अपनी ही मांगों से दुखी हैं।

एक युवती मेरे पास आई और उसने मुझे कहा कि मुझे एक ऐसा पति चाहिए जो सुंदर हो, स्वस्थ हो, शक्तिशाली हो, किसी से दबे नहीं, दबंग हो। ठीक है, खोज कर, मिल जाएगा। पर उसने कहा, एक बात और। वह सदा मेरी बात माने।

तो मैंने उसको कहा कि तू दोनों में तय कर ले। जो दबंग होगा, वह तुझसे नहीं दबेगा। और अगर तू उसको दबाना चाहती है, तो जो तुझसे दबेगा, वह किसी से भी दबेगा। तो तू पक्का कर ले; दो में से चुन ले। क्योंकि दबंग तो उपद्रव रहेगा तेरे लिए भी। तू भी उसे दबा नहीं पाएगी। और अगर तेरी वासना यह है कि तू उसे दबा पाए, तो फिर वह दबंग नहीं रहेगा। वह तेरे पीछे डरकर चलेगा। जो तुझसे डरेगा, वह फिर किसी से भी डरेगा। तो दो में से तू तय कर ले।

कुछ दिन बाद आकर उसने मुझसे कहा कि तो ठीक है; वह मुझसे दबना चाहिए, चाहे फिर कुछ और भी हो।

अब इसको पता नहीं है इस वासना का। यह पूरी हो जाएगी। क्योंकि जो यह वासना करेगी, उसको पूरा कर लेगी, खोज लेगी। अपने योग्य सब मिल जाता है। अयोग्य तो मिलता ही नहीं, बस अपने योग्य ही मिलता है। चाहें आप पहचान पाएं या न पहचान पाएं।

जब इससे दबने वाला व्यक्ति इसको मिल जाएगा, उससे इसे तृप्ति नहीं होगी। किसी स्त्री को दबने वाले व्यक्ति से तृप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि दबने वाला व्यक्ति स्त्रैण हो जाता है। स्त्री तो उसी पुरुष से प्रसन्न हो सकती है, जो दबाता हो। क्योंकि जो दबाता हो, उसी के प्रति समर्पण हो सकता है।

स्त्री चाहती है, कोई दबाए। हालांकि दबाने का ढंग बहुत संस्कारित होना चाहिए। कोई सिर पर लट्ठ मारे, ऐसा नहीं। लेकिन व्यक्तित्व ऐसा हो कि दबा दे, अभिभूत कर दे, और स्त्री समर्पित हो जाए। स्त्री सिर्फ

उसी में रस ले पाती है, जो उसे दबा दे, बिना दबाए; दबाने का कोई आयोजन न करे; उसका होना, उसका व्यक्तित्व ही दबा दे और स्त्री समर्पित हो जाए। उससे तो तृप्ति मिल सकती है।

लेकिन अब यह स्त्री कहती है कि वह मुझसे दबे। तो यह स्त्री को खोज रही है; पुरुष को नहीं खोज रही है। वह इसे मिल जाएगा, क्योंकि बहुत पुरुष स्त्रियों जैसे हैं। वे इसे मिल जाएंगे, और उनसे यह परेशान होगी। और परेशान होकर यह भाग्य को और भगवान को, न मालूम किस-किस को दोष देगी। और कभी फिक्र न करेगी कि जो इसने मांगा था, वह इसे मिल गया।

आप थोड़े अपने दुखों की छानबीन करना। जो आपने मांगा था, वह आपको मिल गया है।

कुछ लोग कहते हैं कि हमारा दुख इसलिए है कि हमने जो मांगा था, वह नहीं मिला। वे गलत कहते हैं। उनको ठीक पता नहीं है कि उन्होंने क्या मांगा था। असलियत में जो आप मांगते हैं, वह मिल जाता है। मांग पूरी हो जाती है। और तब आप दुख पाते हैं। दुख पाकर आप समझते हैं कि मेरी मांग पूरी नहीं हुई, इसलिए दुख पा रहा हूं। नहीं; आप थोड़ा समझना, खोजना। आप फौरन पा जाएंगे कि मेरी मांगें पूरी हो गईं, तो मैं दुख पा रहा हूं।

हमें पता नहीं है कि हम क्या मांगते हैं; हमारी क्या वासना है; क्या परिणाम होगा। हम कभी हिसाब भी नहीं रखते। अंधे की तरह चले जाते हैं। लेकिन समस्त धर्मों का सार है कि आप जिन वासनाओं से डूबते हैं, भरते हैं, उन योनियों में, उन व्यक्तित्व में, उन ढांचों में, उन जीवन में आपका प्रवेश हो जाता है।

वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ भी पर ही है... ।

अब इस पुरुष की बहुत-सी स्थितियां हैं। क्योंकि पुरुष तो शरीर से भिन्न है, लेकिन जब भिन्न समझता है, तभी भिन्न है। और चाहे तो समझ ले कि मैं शरीर हूं, तो भ्रांति में पड़ जाएगा।

पुरुष शरीर में रहते हुए भी भिन्न है। यह उसका स्वभाव है। लेकिन इस स्वभाव में एक क्षमता है, तादात्म्य की। यह अगर समझ ले कि मैं शरीर हूं, तो शरीर ही हो जाएगा। आप अगर समझ लें कि आपके हाथ की लकड़ी आप हैं, तो आप लकड़ी ही हो जाएंगे। आप जो भी मान लें, वह घटित हो जाता है। मानना सत्य बन जाता है। पुरुष की यह भीतरी क्षमता है। वह जो मान लेता है, वह सत्य हो जाता है।

वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ पर ही है। लेकिन साक्षी होने से उपद्रष्टा... ।

फिर इसकी अलग-अलग स्थितियां हैं। अगर यह साक्षी होकर देखे अपने को भीतर, तो यह उपद्रष्टा या द्रष्टा हो जाता है।

यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमंता हो जाता है... ।

अगर इसकी आप सम्मति मांगें, तो यह आपके लिए अनुमंता हो जाएगा। लेकिन आप इससे कभी सम्मति भी नहीं मांगते। कभी आप शांत और मौन होकर अपने भीतर के पुरुष का सुझाव भी नहीं मांगते। आप वासनाओं का सुझाव मानकर ही चलते हैं। इंद्रियों का सुझाव मानकर चलते हैं। या परिस्थिति में, कोई भी घड़ी उपस्थित हो जाए, तो उसकी प्रतिक्रिया से चलते हैं।

एक आदमी गाली दे दे, तो वह आपको चला देता है। फिर आप उसकी गाली के आधार पर कुछ करने में लग जाते हैं। बिना इसकी फिक्र किए कि यह आदमी कौन है, जो मुझे गुलाम बना रहा है! मैं इसकी गाली को मानकर क्यों चलूं? यह तो मुझे चला रहा है!

आप यह मत सोचना कि आप गाली न दें, तो बात खतम हो गई। तो आप भीतर इसकी गाली से कुछ सोचेंगे। शायद यह सोचेंगे कि क्षमा कर दो, नासमझ है। लेकिन यह भी आप चल पड़े। वही चला रहा है

आपको। आप सोचें कि यह नासमझ है, पागल है, शराब पीए हुए है। इसलिए क्यों गाली का जवाब देना! तो भी इसने आपको चला दिया। आप मालिक न रहे; यह बटन दबाने वाला हो गया। इसने गाली दी और आपके भीतर कुछ चलने लगा। आप गुलाम हो गए।

अगर आप रुककर क्षणभर साक्षी हो जाएं और भीतर की सलाह लें--परिस्थिति की सलाह न लें, प्रतिक्रिया न करें, इंद्रियों की मानकर न पागल बनें--भीतर के साक्षी की सलाह लें, तो वह साक्षी अनुमंता हो जाता है।

सबको धारण करने वाला होने से भर्ता, जीव रूप से भोक्ता, ब्रह्मादिकों का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानंदघन होने से परमात्मा, ऐसा कहा गया है।

यह जो भीतर पुरुष है, यह बहुत रूपों में प्रकट होता है। अगर आप इस पुरुष को शरीर के साथ जोड़ लें, तो लगने लगता है, मैं शरीर हूं। और आप संसार हो जाते हैं। इसको आप तोड़ लें ध्यान से और साक्षी हो जाएं, तो आप समाधि बन जाते हैं। इसकी आप सलाह मांगने लगें, तो आप स्वयं गुरु हो जाते हैं। इसके और भीतर प्रवेश करें, तो यह समस्त सृष्टि का स्रष्टा है, तो आप परमात्मा हो जाते हैं। और इसके अंतिम गहनतम बिंदु पर आप प्रवेश कर जाएं, जिसके आगे कुछ भी नहीं है, तो आप सच्चिदानंदघन परम ब्रह्म हो जाते हैं।

यह पुरुष ही आपका सब कुछ है। आपका दुख, आपका सुख; आपकी अशांति, आपका संसार; आपका स्वर्ग, आपका नरक; आपका ब्रह्म, आपका मोक्ष, आपका निर्वाण, यह पुरुष ही सब कुछ है।

ध्यान रहे, घटनाएं बाहर हैं और भावनाएं भीतर हैं। भावना का जो अंतिम स्रोत है, वह है परम ब्रह्म सच्चिदानंदघन रूप। वह भी आप हैं।

इसलिए इस मुल्क ने जरा भी कठिनाई अनुभव नहीं की यह कहने में कि प्रत्येक व्यक्ति परमेश्वर है। आपको पता नहीं है, यह बात दूसरी है। लेकिन परमेश्वर आपके भीतर मौजूद है। और आपको पता नहीं है, इसमें भी आपकी ही तरकीब और कुशलता है। आप पता लगाना चाहें, तो अभी पता लगा लें। शायद आप पता लगाना ही नहीं चाहते हैं।

मुझसे सवाल लोग पूछते हैं। आज ही कुछ सवाल पूछे हैं कि अगर हम ध्यान में गहरे चले गए, तो हमारी गृहस्थी और संसार का क्या होगा? शायद इसीलिए ध्यान में जाने से डर रहे हैं कि गृहस्थी और संसार का क्या होगा। और फिर भी पूछते हैं। पूछा है उन्होंने भी कि फिर भी ध्यान का कोई रास्ता बताइए!

क्या करिएगा ध्यान का रास्ता जानकर? डर लगा हुआ है। क्योंकि हम जो वासनाओं का खेल बनाए हुए हैं, उसके टूट जाने का डर है। तो भूलकर रहना ठीक है।

शायद हम ध्यान में जाना नहीं चाहते, इसीलिए हम ध्यान में नहीं गए हैं। और जिस दिन हम जाना चाहें, दुनिया की कोई ताकत हमें रोक नहीं सकती।

लोग मुझसे आकर कहते हैं कि हम बड़ी कोशिश करते हैं, ध्यान में जा नहीं पाते! उनसे मैं कहता हूं, तुम कोशिश वगैरह नहीं करते हो; और न तुम जाना चाहते हो। तुम्हारा रस ध्यान में नहीं है। तुम्हारा रस कहीं और होगा। तुम मुझे बताओ, क्या चाहते हो ध्यान से?

एक आदमी ने कहा कि मैं लाटरी का नंबर चाहता हूं। आपके पास इसीलिए आया हूं कि ध्यान, ध्यान, ध्यान सुनते-सुनते मुझे लगा कि ध्यान करके एक दफा सिर्फ नंबर मिल जाए, बात खतम हो गई।

अब यह ध्यान से लाटरी का नंबर चाहता है! पहले उसने मुझे यह नहीं बताया। सोचा कि पता नहीं, मैं उसे ध्यान समझाऊं कि न समझाऊं! लाटरी में मेरी उत्सुकता हो या न हो! तो उसने कहा कि ध्यान की बड़ी

इच्छा है। बड़ी अशांति रहती है। अशांति है लाटरी न मिलने की; ध्यान की नहीं है। मगर वह कह भी नहीं रहा है। वह भीतर सोच रहा है कि ध्यान लग जाए; चित्त शांत हो जाए; नंबर दिखाई पड़ जाए; बात खतम हो गई।

आप ध्यान से भी कुछ और चाहते हैं। और जब तक कोई ध्यान को ही नहीं चाहता ध्यान के लिए, तब तक ध्यान नहीं हो सकता। आप परमात्मा से भी कुछ और चाहते हैं। वह भी साधन है, साध्य नहीं है।

सोचें, अगर आपको परमात्मा मिल जाए; यहां से आप घर पहुंचें और पाएं कि परमात्मा बैठा हुआ है आपके बैठकखाने में। आप क्या मांगिएगा उससे? जरा सोचें। फौरन मन फेहरिस्त बनाने लगेगा। नंबर एक, नंबर दो... । और जो चीजें आप मांगेंगे, सभी क्षुद्र होंगी। परमात्मा से मांगने योग्य एक भी न होगी।

तो परमात्मा भी मिल जाए, तो आप संसार ही मांगेंगे। आप संसार मांगते हैं, इसलिए परमात्मा नहीं मिलता है। आप जो मांगते हैं, वह मिलता है। और अभी आप संसार से इतने दुखी नहीं हो गए हैं कि परमात्मा को सीधा मांगने लगें। इसलिए रुकावट है। अन्यथा वह आपके भीतर छिपा है। रत्तीभर का भी फासला नहीं है। आप ही वह हैं।

इस प्रकार पुरुष को और उसके गुणों को, गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्व से जानता है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फिर नहीं जन्मता है अर्थात पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

यह सूत्र ख्याल में ले लेने जैसा है।

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्व से जानता है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फिर नहीं जन्मता है अर्थात पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

जिस व्यक्ति को यह ख्याल में आ जाता है कि प्रकृति अलग है और मैं अलग हूं, और जो इस अलगपन को सदा ही बिना किसी चेष्टा के स्मरण रख पाता है, फिर वह सब तरह से बर्तता हुआ भी... । वह वेश्यागृह में भी ठहर जाए, तो भी उसके भीतर की पवित्रता नष्ट नहीं होती। और आप मंदिर में भी बैठ जाएं, तो सिर्फ मंदिर को अपवित्र करके घर वापस लौट आते हैं। आप कहां हैं, इससे संबंध नहीं है। आप क्या हैं, इससे संबंध है।

अगर यह ख्याल में आ जाए कि मैं अलग हूं, पृथक हूं, तो फिर जीवन नाटक से ज्यादा नहीं है। फिर उस नाटक में कोई बंधन नहीं है, फिर उस नाटक में कोई वासना नहीं है, फिर खेल है और अभिनय है। और जो अभिनय की तरह देख पाता है, कृष्ण कहते हैं, वह फिर नहीं जन्मता। क्योंकि कोई वासना उसकी नहीं है। फिर जैसे एक काम पूरा कर रहा है। जैसे काम पूरा करने में कोई रस नहीं है। जैसे एक जिम्मेवारी है, वह निभाई जा रही है।

ऐसे जैसे कि एक आदमी रामलीला में राम बन गया है। जब उसकी सीता खो जाती है, तब वह भी रोता है, और वह भी वृक्षों से पूछता है कि हे वृक्ष, बताओ मेरी सीता कहां है! लेकिन उसके आंसू अभिनय हैं। उसके भीतर कुछ भी नहीं हो रहा है। न सीता खो गई है, न वृक्षों से वह पूछ रहा है, न उसे कुछ प्रयोजन है। वह अभिनय कर रहा है। वह वृक्षों से पूछेगा; आंसू बहाएगा; जार-जार रोएगा; सीता को खोजेगा। और परदे के पीछे जाकर बैठकर चाय पीएगा। उसको कोई लेना-देना नहीं है। गपशप करेगा। बात ही खतम हो गई। उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

अगर असली राम भी परदे के पीछे ऐसे ही हटकर चाय पी लेते हों, तो वे परमात्मा हो गए। अगर आप भी अपनी जिंदगी के सारे उपद्रव को एक नाटक की तरह जी लेते हों, और परदे के पीछे हटने की कला जानते हों... । जिसको मैं कहता हूं, ध्यान, प्रार्थना, पूजा, वह परदे के पीछे हटने की कला है। दुकान से आप घर लौट

आए। परदे के पीछे हट गए, ध्यान में चले गए। ध्यान में जाने का मतलब है कि आपने कहा कि ठीक, वह नाटक बंद।

अगर आप सच में ही भीतर के पुरुष को याद रख सकें, तो बंद कर सकेंगे। लेकिन अभी आप नहीं कर सकते। आप कितने ही परदे लटकाएं, दरवाजा बंद करें; वह दुकान आपके साथ चली आएगी भीतर। वह नाटक नहीं है। उसको आप बहुत जोर से पकड़े हुए हैं।

तो आप बैठकर राम-राम कर रहे हैं और भीतर नोट गिन रहे हैं। इधर राम-राम कर रहे हैं, वहां भीतर कुछ और चला रहे हैं। वहां कोई हिसाब लगा रहे हैं कि वह नंबर दो के खाते में लिखना भूल गए हैं। या कल कैसे इनकम टैक्स वालों को धोखा देना है। वह भीतर चल रहा है। यहां राम-राम चल रहा है।

आप ध्यान रखिए कि राम-राम झूठा है, जो ऊपर चल रहा है। और असली भीतर चल रहा है। उससे आपका काफी तादात्म्य है। आप दुकानदार ही हो गए हैं। आपके पास कोई भीतर पृथक नहीं बचा है, जो दुकानदार न हो।

जैसे ही कोई व्यक्ति प्रकृति और पुरुष के फासले को थोड़ा-सा स्मरण करने लगता है कि यह मैं नहीं हूं... । इतना ही स्मरण कि यह मैं नहीं हूं। दुकान पर बैठे हुए, कि दुकान कर रहा हूं; जरूरी है, दायित्व है; काम है, उसे निपटा रहा हूं। लेकिन घर पहुंचकर, स्नान करके अपने मंदिर के कमरे में आदमी प्रविष्ट हो गया। वह परदे के पीछे चला गया, नाटक के मंच से हट आया, सब छोड़ आया बाहर। और घंटेभर शांति से बैठ गया बाहर दुनिया के।

इसका अभ्यास जितना गहन होता चला जाए, उतना ही योग्य है, उतना ही उचित है। तो धीरे-धीरे-धीरे कोई भी चीज आपको बांधेगी नहीं। कोई भी चीज बांधेगी नहीं। हो सकता है, जंजीरें भी आपको बांध दी जाएं और कारागृह में आपको डाल दिया जाए, तो भी आप स्वतंत्र ही होंगे। क्योंकि वह कारागृह में जो जंजीरें बांधेंगे जिसको, वह प्रकृति होगी। और आप बाहर ही होंगे।

अपने भीतर एक ऐसे तत्व की तलाश ही अध्यात्म है, जिसको बांधा न जा सके, जो परतंत्र न किया जा सके, जो सदा स्वतंत्र है, जो स्वतंत्रता है। यह पुरुष ऐसी स्वतंत्रता का ही नाम है। और सारे आध्यात्मिक यात्रा का एक ही लक्ष्य है कि आपके भीतर उस तत्व की तलाश हो जाए, जिसको दुनिया में कोई सीमा न दे सके, कोई जंजीर न दे सके, कोई कारागृह में न डाल सके। जिसका मुक्त होना स्वभाव है।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप कृष्ण को जंजीरें नहीं डाल सकते। इसका यह मतलब नहीं है कि बुद्ध को कारागृह में नहीं डाला जा सकता। जीसस को हमने सूली दी ही है। लेकिन फिर भी आप जीसस को सूली नहीं दे सकते। जिसको आप सूली दे रहे हैं, वह प्रकृति ही है। और जब आप जीसस के हाथ में खीलें ठोक रहे हैं, तो आप प्रकृति के हाथ में खीलें ठोक रहे हैं, जीसस के हाथों में नहीं।

जीसस के हाथों में खीलें ठोकने का कोई उपाय नहीं है। जीसस को सूली देने का कोई उपाय नहीं है। जीसस जिंदा ही हैं। आप शरीर को ही काट रहे हैं और मार रहे हैं। अगर जीसस भी शरीर से जुड़े हों, तो उनको भी पीड़ा होगी। तो वे भी रोएंगे, चिल्लाएंगे। वे भी छाती पीटेंगे कि बचाओ; कोई मुझे बचा लो। यह क्या कर रहे हो! क्षमा करो, मुझसे भूल हो गई। वे कुछ उपाय करेंगे। लेकिन वे कोई उपाय नहीं कर रहे हैं। उलटे वे प्रार्थना करते हैं परमात्मा से कि इन सब को माफ कर देना, क्योंकि इनको पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं।

किस चीज के लिए जीसस ने कहा है कि इनको पता नहीं है, ये क्या कर रहे हैं? इस चीज के लिए जीसस ने कहा है कि जिसको ये सूली पर लटका रहे हैं, वह तो लटकाया नहीं जा सकता; और जिसको ये लटका रहे हैं,

वह मैं नहीं हूं। इनको कुछ पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं। ये मेरी भ्रांति में किसी और को सूली पर लटका रहे हैं! यह मतलब है। इनको ख्याल तो यही है कि मुझे मार रहे हैं, लेकिन मुझे ये कैसे मारेंगे? जिसको ये मार रहे हैं, वह मैं नहीं हूं। और वह तो इनके बिना मारे भी मर जाता, उसके लिए इतना आयोजन करने की कोई जरूरत न थी। और मैं इनके आयोजन से भी न मरूंगा।

इस भीतर के पुरुष का बोध जैसे-जैसे साफ होने लगेगा, वैसे-वैसे कृष्ण कहते हैं, फिर सब प्रकार से बर्तता हुआ... ।

इसलिए कृष्ण का जीवन जटिल है। कृष्ण का जीवन बहुत जटिल है। और जो तर्कशास्त्री हैं, नीतिशास्त्री हैं, और जो नियम से जीते और चलते और सोचते हैं, उन्हें कृष्ण का जीवन बहुत असंगत मालूम पड़ता है।

एक मित्र ने सवाल पूछा है कि कृष्ण अगर भगवान हैं, तो वे छल-कपट कैसे कर सके?

स्वभावतः, छल-कपट हम सोच ही नहीं सकते, नैतिक आदमी कैसे छल-कपट कर सकता है! और छल-कपट करके वह कैसे भगवान हो सकता है! और वचन दिया था कि शस्त्र हाथ में नहीं लूंगा और अपना ही वचन झुठला दिया। ऐसे आदमी का क्या भरोसा जो अपना ही आश्वासन पूरा न कर सका और खुद ही अपने आश्वासन को झूठा कर दिया!

हमें तकलीफ होती है। हमें बड़ी अड़चन होती है। कृष्ण बेबूझ मालूम पड़ते हैं। कृष्ण को समझना कठिन मालूम पड़ता है। महावीर को समझना सरल है। एक संगति है। बुद्ध को समझना सरल है। जिंदगी एक गणित की तरह है। उसमें आप भूल-चूक नहीं निकाल सकते।

अगर महावीर कहते हैं अहिंसा, तो फिर वैसा ही जीते हैं। फिर पांव भी फूंककर रखते हैं। फिर पानी भी छानकर पीते हैं। फिर श्वास भी भयभीत होकर लेते हैं कि कोई कीटाणु न मर जाए। फिर महावीर का पूरा जीवन एक संगत गणित है। उस गणित में भूल-चूक नहीं निकाली जा सकती।

लेकिन कृष्ण का जीवन बड़ा बेबूझ है। जितनी भूल-चूक चाहिए, वे सब मिल जाएंगी। ऐसी भूल-चूक आप नहीं खोज सकते, जो उनके जीवन में न मिले। सब तरह की बातें मिल जाएंगी।

उसका कारण है। क्योंकि कृष्ण की दृष्टि जो है, उनका जो मौलिक आधार है सोचने का, वह यह है कि जैसे ही यह पता चल जाए कि प्रकृति अलग और मैं अलग, फिर किसी भी भांति बर्तता हुआ कोई बंधन नहीं है। फिर कोई जन्म नहीं है।

इसलिए कृष्ण छल-कपट करते हैं, ऐसा हमें लगता है। ऐसा हमें लगता है कि वे आश्वासन देते हैं और फिर मुकर जाते हैं। लेकिन कृष्ण क्षण-क्षण जीते हैं। जब आश्वासन दिया था, तब पूरी तरह आश्वासन दिया था। उस क्षण का सत्य था वह, ट्रुथ आफ दि मोमेंट, उस क्षण का सत्य था। उस वक्त कोई बेईमानी न थी मन में; कहीं सोच भी न था कि इस आश्वासन को तोड़ेंगे। ऐसा कोई सवाल नहीं था। आश्वासन पूरी तरह दिया था। लेकिन दूसरे क्षण में सारी परिस्थिति बदल गई। और कृष्ण के लिए यह सब अभिनय से ज्यादा नहीं है। अगर यह अभिनय न हो, तो कृष्ण भी सोचेंगे कि जो आश्वासन दिया था, उसको पूरा करो।

अगर जिंदगी बहुत असली हो, तो आश्वासन को पूरा करने का ख्याल आएगा। लेकिन कृष्ण के लिए जिंदगी एक सपने की तरह है, जिसमें आश्वासन का भी कोई मूल्य नहीं है। वह भी क्षण-सत्य था। उस क्षण में वैसा बर्तने का सहज भाव था। आज सारी स्थिति बदल गई। बर्तने का दूसरा भाव है। तो इस दूसरे भाव में कृष्ण दूसरा काम करते हैं। इन दोनों के बीच कोई विरोध नहीं है। हमें विरोध दिखाई पड़ता है, क्योंकि हम जिंदगी को असली मानते हैं।

आप इसे ऐसा समझें, आपको सपने का ख्याल है। सपने का एक गुण है। सपने में आप कुछ से कुछ हो जाते हैं, लेकिन आपके भीतर कोई चिंता पैदा नहीं होती। आप जा रहे हैं। आप देखते हैं कि एक मित्र चला आ रहा है। और मित्र जब सामने आकर खड़ा हो जाता है, तो अचानक घोड़ा हो जाता है, मित्र नहीं है। पर आपके भीतर यह संदेह नहीं उठता कि यह क्या गड़बड़ हो रही है! मित्र था, अब घोड़ा कैसे हो गया? कोई संदेह नहीं उठता। असल में भीतर कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि यह क्या गड़बड़ है! जागकर भला आपको थोड़ी-सी चिंता हो, लेकिन तब आप कहते हैं, सपना है, सपने का क्या!

सपने में मित्र घोड़ा हो जाए, तो कोई चिंता पैदा नहीं होती। असलियत में आप चले जा रहे हों सड़क पर और उधर से मित्र आ रहा हो और अचानक घोड़ा हो जाए, फिर आपकी बेचैनी का अंत नहीं है। आपको पागलखाने जाना पड़ेगा कि यह क्या हो गया।

क्यों? क्योंकि इसको आप असलियत मानते हैं। कृष्ण इसको भी स्वप्न से ज्यादा नहीं मानते। इसलिए जिंदगी में कृष्ण के लिए कोई संगति नहीं है। सब खेल है। और सब संगतियां क्षणिक हैं और क्षण के पार उनका कोई मूल्य नहीं है।

कृष्ण की कोई प्रतिबद्धता, कोई कमिटमेंट नहीं है। किसी क्षण के लिए उनका कोई बंधन नहीं है। उस क्षण में जो है, जो सहज हो रहा है, वे कर रहे हैं। दूसरे क्षण में जो सहज होगा, वह करेंगे। वे नदी की धार की तरह हैं। उसमें कोई बंधन, कोई रेखा, कोई रेल की पटरियों की तरह वे नहीं हैं कि रेलगाड़ी एक ही पटरी पर चली जा रही है। वे नदी की तरह हैं। जैसा होता है! पत्थर आ जाता है, तो बचकर निकल जाते हैं। रेत आ जाती है, तो बिना बचे निकल जाते हैं।

आप यह नहीं कह सकते कि वहां पिछली दफा बचकर निकले थे और अब? अब रेत आ गई, तो सीधे निकले जा रहे हो बिना बचे, असंगति है!

नहीं, आप नदी से कुछ भी नहीं कहते। जब पहाड़ होता है, नदी बचकर निकल जाती है। तो आप यह नहीं कहते कि पहाड़ को काटकर क्यों नहीं निकलती! और जब रेत होती है, नदी बीच में से काटकर निकल जाती है। तब आप यह नहीं कहते कि बड़ी बेईमान है! पहाड़ के साथ कोई व्यवहार, रेत के साथ कोई व्यवहार!

कृष्ण नदी की तरह हैं। जैसी परिस्थिति होती है, उसमें जो उनके लिए सहज आविर्भूत होता है अभिनय, वह कर लेते हैं। और जिंदगी असलियत नहीं है। जिंदगी एक कहानी है, एक नाटक है, एक साइको ड्रामा। इसलिए उसमें उनको कोई चिंता नहीं है, कोई अड़चन नहीं है।

इस बात को जब तक आप ठीक से न समझ लेंगे, तब तक कृष्ण के जीवन को समझना बहुत कठिन है। क्योंकि कृष्ण बहुत रूप में हैं। और उस सब के पीछे कारण यही है कि कृष्ण का मौलिक ख्याल है कि जैसे ही पुरुष का भेद स्पष्ट हो गया, फिर सभी भांति बर्तता हुआ भी व्यक्ति बंधन को उपलब्ध नहीं होता; जन्मों को उपलब्ध नहीं होता। वह सभी भांति बर्तता हुआ भी मुक्त होता है। उसके वर्तन में आचरण और अनाचरण का भी कोई सवाल नहीं है। आचरण और अनाचरण का सवाल भी तभी तक है, जब तक जिंदगी सत्य मालूम होती है। और जब जिंदगी एक स्वप्न हो जाती है, तो आचरण और अनाचरण दोनों समान हो जाते हैं।

लेकिन एक सवाल उठेगा। तो क्या बुद्ध को और महावीर को यह पता नहीं चला? क्या उनको यह पता नहीं चला कि हम अलग हैं? और जब उन्हें पता चल गया कि हम अलग हैं, तो फिर उन्होंने क्यों चिंता ली? फिर क्यों वे पंक्तिबद्ध, रेखाबद्ध, एक व्यवस्थित और संगत, गणित की तरह जीवन को उन्होंने चलाया?

कुछ कारण हैं। वह भी व्यक्तियों की अपनी-अपनी भिन्नता, अद्वितीयता का कारण है।

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़ा संत नारोपा अपने शिष्य को समझा रहा था कि जीवन तो अभिनय है। और जीवन में न कुछ गलत है और न कुछ सही है। नारोपा ने कहा है कि सही और गलत का ख्याल ही संसार है। कोई कहता है, यह सही है और यह गलत है; इतना ही भेद अज्ञानी बना देता है। न कुछ सही है, न कुछ गलत है। यह ज्ञान है।

तो उसके शिष्य ने कहा, आप तो बड़ी खतरनाक बात कह रहे हैं! इसका मतलब हुआ कि हम जैसा चाहें वैसा आचरण करें? तो नारोपा ने कहा, तू समझा नहीं। जब तक तू कहता है, जैसा चाहें वैसा आचरण करें, जब तक चाह है, तब तक तो तुझे यह पता ही नहीं चल सकता जो मैं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि जब अनुभव होता है स्वयं का, तो पता चलता है, न कुछ गलत है, न कुछ सही है। क्योंकि यह सब खेल है।

लेकिन उसके शिष्य ने फिर कहा कि इसका तो मतलब यह हुआ कि जो हम चाहें वह करें। नारोपा ने फिर कहा कि तू गलती कर रहा है। जब तक तू चाहता है, तब तक मेरी बात तो तेरी समझ में ही नहीं आ सकती। जब सब चाह छोड़ देगा, तब तुझे यह ख्याल आएगा। और तूने अगर मेरी बात का यह मतलब लिया कि जैसा चाहें हम करें, तो उसका तो अर्थ हुआ कि तू मेरी बात समझा ही नहीं। चाह जिसके भीतर है, वासना जिसके भीतर है, वह तो कितना ही धोखा देना चाहे, सही और गलत कायम रहेगा। वासना के साथ जुड़ा है सही और गलत का बोध।

समझें इसे। आपको मैंने कह दिया कि न कुछ गलत है, न कुछ सही है। जैसा चाहो, वैसा बरतो। आप फौरन गए और चोरी कर लाए। न कुछ गलत, न कुछ सही। लेकिन आपको चोरी का ही ख्याल क्यों आया सबसे पहले? फिर भी ठीक है। कुछ भी वर्तन करें। आप ज्ञानी हो गए हैं, तो अब कोई आपको बाधा नहीं है। लेकिन कोई आपकी चोरी कर ले गया, तब आप पुलिस में रिपोर्ट करने चले। और रो रहे हैं और कह रहे हैं, यह बहुत बुरा हुआ।

मैंने तो सुना है, एक आदमी पर अदालत में मुकदमा चला। नौवीं बार मुकदमा चला। जज ने उससे पूछा कि तू आठ बार सजा भुगत चुका। तू बार-बार पकड़ जाता है। कारण क्या है तेरे पकड़े जाने का? उसने कहा, कारण साफ है कि मुझे अकेले ही चोरी करनी पड़ती है। मेरा कोई साझीदार नहीं है। अकेले ही सब काम करना पड़ता है। तोड़ो दीवार, दरवाजे तोड़ो, तिजोरी तोड़ो, सामान निकालो, बांधो, ले जाओ। कोई सहयोगी, पार्टनर न होने से सब तकलीफ है।

तो उस जज ने पूछा कि तो तू सहयोगी क्यों नहीं खोज लेता, जब आठ बार पकड़ा चुका! तो उसने कहा कि अब आप देखिए, जमाना इतना खराब है कि किसी पार्टनर का भरोसा नहीं किया जा सकता।

चोर भी भरोसा रखने वाला पार्टनर खोजता है। और दुकानदारी में तो चल भी जाए थोड़ी धोखाधड़ी, चोरी में नहीं चल सकती। चोरी में बिल्कुल ईमानदार आदमी चाहिए। इसलिए चोरों में जैसे ईमानदार आपको मिलेंगे, वैसे दुकानदारों में नहीं मिल सकते। डाकुओं में, हत्यारों में जिस तरह की निष्ठा, भ्रातृत्व, भाईचारा मिलेगा, वैसा अच्छे आदमियों में मिलना मुश्किल है। क्योंकि वहां इतनी बुराई है कि उस बुराई को टिकने के लिए इतना भाईचारा न हो, तो बुराई चल नहीं सकती।

नारोपा ने कहा कि अगर तेरे भीतर चाह है, तो तू रुक। पहले चाह को छोड़। और जब तेरे भीतर कोई चाह न रहे, तब के लिए मैं कह रहा हूं कि फिर तू जैसा भी चाहे, वैसा बर्त। फिर कोई पाप नहीं है, फिर कोई पुण्य नहीं है।

इस तरह का विचार पश्चिम के नीति शास्त्रियों को बहुत अजीब लगता है। और वे सोचते हैं कि भारत में जो नीति पैदा हुई, वह इम्मारल है; वह नैतिक नहीं है।

हमारे पास टेन कमांडमेंट्स जैसी चीजें नहीं हैं। पूरी गीता में बाइबिल जैसी टेन कमांडमेंट्स नहीं हैं, कि चोरी मत करो, यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। बल्कि उलटा यह कहा है कृष्ण ने कि अगर तुमको पता चल जाए कि यह पुरुष और प्रकृति अलग है, तो तुम जो हो, होने दो। फिर कोई बर्ताव हो, तुम्हारे लिए कोई बंधन नहीं है, कोई पाप नहीं है।

ईसाई बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है यह सोचकर, मुसलमान बड़ी दिक्कत में पड़ जाता है यह सोचकर, कि गीता कैसा धर्म-ग्रंथ है! यह तो खतरनाक है।

अभी टर्की ने गीता पर नियंत्रण लगा दिया है, बंध लगा दिया है कि टर्की में गीता प्रवेश नहीं कर सकती। मेरे पास कुछ मित्रों ने पत्र लिखे हैं कि इसका आप भी विरोध करिए। गीता जैसी महान किताब पर टर्की ने क्यों प्रतिबंध लगाया?

मैंने कहा, तुम्हें खुश होना चाहिए। कृष्ण को मरे पांच हजार साल हो गए होंगे और अभी भी गीता इतनी जिंदा है कि कोई मुल्क डरता है। खुश होना चाहिए। इसका मतलब है, गीता में अभी भी जान है, अभी भी खतरा और आग है। पर आग क्या है?

इधर मुल्क में सब जगह विरोध हो गए। आर्यसमाजी हैं, फलां हैं, ढिकां हैं, जिनको विरोध करने का ही रस है, उन्होंने सबने विरोध कर दिया, प्रस्ताव कर दिए। और हमारे मुल्क में तो प्रस्ताव करने वालों की तो कोई कमी नहीं है। कि ऐसा नहीं होना चाहिए; बहुत बुरा हो गया; बड़ा अन्याय हो गया। लेकिन किसी ने ख्याल न किया कि टर्की ने यह नियम लगाया क्यों है!

इस नियम के पीछे इस तरह के सूत्र हैं। क्योंकि यह भय मालूम पड़ता है कि अगर इस तरह की बात प्रचारित हो जाए, तो लोग अनैतिक हो जाएंगे। यह भय थोड़ी दूर तक सच है। क्योंकि सामान्य आदमी अपने मतलब की बात निकाल लेता है।

गीता कहती है, जब पुरुष और प्रकृति का भेद स्पष्ट हो जाए, तो फिर कुछ भी बरतो, कोई पाप नहीं, कोई पुण्य नहीं, कोई बंधन नहीं; फिर कोई जन्म नहीं है। लेकिन पहली शर्त ख्याल में रहे। अगर शर्त हटा दें हम, तो निश्चित ही एक अराजकता और अनैतिकता फैल सकती है। और तब टर्की अगर नियंत्रण लगाता हो कि गीता को मुल्क में नहीं आने देंगे, तो सामान्य आदमी को जो खतरा हो सकता है, उस खतरे की दृष्टि से ठीक ही है।

पर मैं तो खुश हुआ। मैं खुश हुआ, क्योंकि इतनी पुरानी किताबों पर कभी भी नियंत्रण नहीं लगते। क्योंकि जिंदा किताबें मर जाती हैं दो-चार-दस साल में। फिर उनसे कोई क्रांति-व्रांति नहीं होती। पांच हजार साल! उसके बाद भी कोई मुल्क चिंतित हो सकता है। तो उसका अर्थ है कि कोई चिंगारी, कोई बहुत विस्फोटक तत्व गीता में है।

वह यही तत्व है, अनैतिक मालूम होता है।

अतिनैतिक है गीता का संदेश। सुपर इथिकल है। इथिकल तो बिल्कुल नहीं है; नैतिक नहीं है। अतिनैतिक है। और उस अतिनैतिकता को समझने में खतरा है। और जितनी ऊंचाई पर कोई चले, उतना ही डर है; गिर जाए, तो गड्ढे हैं बहुत बड़े।

इस सूत्र को ठीक से समझ लेना।

आपके मन में अगर कोई चाह बसी हो; मैं आपसे कहूं कि जो भी करना हो करो, कोई पाप नहीं है; और फौरन आपको ख्याल आ जाए कि क्या करना है, तो आप समझ लेना कि आपके लिए अभी यह नियम नहीं है। यह सूत्र सुनकर, कि कुछ भी करो, कोई हर्ज नहीं है, आपके भीतर करने का कोई भी ख्याल न उठे। यह सुनकर, कि कोई भी बरताव हो, कोई जन्म नहीं होगा; कोई दुख, कोई नरक नहीं होगा, और आपके भीतर कोई बरताव करने का ख्याल न आए, तो यह सूत्र आपकी समझ में आ सकता है।

और तत्क्षण आपको लगे, कि ऐसा? कुछ भी करो! ले भागो पड़ोसी की पत्नी को!

क्योंकि मैंने सुना है, एक दफ्तर में ऐसा हो गया। दफ्तर के नौकर-चाकर ठीक से काम नहीं कर रहे थे, तो एक मनोवैज्ञानिक से सलाह ली मालिक ने। तो उसने कहा कि आप ऐसा करें, वहां एक तख्ती लगा दें। तख्ती में लिख दें कि जो भी कल करना है, वह आज करो; जो आज करना है, वह अभी करो। क्योंकि क्षणभर में प्रलय हो जाएगी, फिर कब करोगे! काल करै सो आज कर, आज करै सो अब; पल में परलै होएगी, बहुरि करोगे कब। तख्ती लगा दी बड़ी।

दूसरे दिन मनोवैज्ञानिक पूछने आया कि क्या परिणाम हुआ। मालिक के सिर पर पट्टी बंधी थी। बिस्तर पर पड़े थे। उसने कहा, परिणाम? बरबाद हो गए! क्योंकि टाइपिस्ट लड़की को लेकर भाग गया मुनीम। चिट्ठी लिख गया कि बहुत दिन से सोच रहा था कि कब भागूं। देखा कि काल करै सो आज कर, आज करै सो अब; पल में परलै होएगी, बहुरि करेगा कब। तो मैंने सोचा कि अब भागो। पल में परलै हो जाए, फिर कब करोगे!

और वह जो आफिस बॉय था, उसने आकर जूते मार दिए सिर पर। क्योंकि वह कहता है, कई दिन से सोच रहे थे कि मारो। आफिस बॉय सोचता ही रहता है, कैसे मारें। उसको तो मालिक रोज ही मार रहा है। वह भी सोचता रहता है। उसने कहा कि जब लिखा ही है कि आज ही कर लो जो करना है, कल का कुछ भरोसा नहीं। तो उसने लगा दिए जूते।

जो कैशियर था, वह सब लेकर भाग गया। दफ्तर बंद पड़ा है। खूब कृपा की, उस मालिक ने कहा मनोवैज्ञानिक को, अच्छी तरकीब बताई। बरबाद कर डाला।

यह सूत्र आपके लिए नहीं है। यह सूत्र तभी है, जब पुरुष और प्रकृति का स्पष्ट बोध, भेद हो जाए, तो नीति का कोई बंधन नहीं है।

पांच मिनट रुकें। कीर्तन में सम्मिलित हों, और फिर जाएं।

नौवां प्रवचन

पुरुष में थिरता के चार मार्ग

ध्यानेनात्मनि पश्यान्ति केचिदात्मानमात्मना।

अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।। 24।।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।

तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।। 25।।

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ।। 26।।

और हे अर्जुन, उस परम पुरुष को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं तथा अन्य कितने ही ज्ञान-योग के द्वारा देखते हैं तथा अन्य कितने ही निष्काम कर्म-योग के द्वारा देखते हैं।

परंतु इनसे दूसरे अर्थात जो मंद बुद्धि वाले पुरुष हैं, वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए दूसरों से अर्थात तत्व के जानने वाले पुरुषों से सुनकर ही उपासना करते हैं और वे सुनने के परायण हुए पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागर को निस्संदेह तर जाते हैं।

हे अर्जुन, यावन्मात्र जो कुछ भी स्थावर-जंगम वस्तु उत्पन्न होती है, उस संपूर्ण को तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न हुई जान।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि भगवान बुद्ध ने सत्य, अहिंसा, झूठ न बोलना, चोरी न करना, बुरा न करना, यह सिखाया है। परंतु कृष्ण की गीता में हिंसा का मार्ग बतलाया गया है। कृष्ण चोरी करना, झूठ बोलना, संभोग से समाधि की ओर जाना सिखाते हैं। तो आप यह कहिए कि जो हिंसा का मार्ग बताता है, क्या वह भगवान माना जा सकता है?

बुद्ध, महावीर की शिक्षाएं नैतिक हैं और बहुत साधारण आदमी को ध्यान में रखकर दी गई हैं। कृष्ण की शिक्षाएं धार्मिक हैं और बहुत असाधारण आदमी को ध्यान में रखकर दी गई हैं।

बुद्ध, महावीर की शिक्षाएं अत्यंत साधारण बुद्धि के आदमी की भी समझ में आ जाएंगी; उनमें जरा भी अड़चन नहीं है। उसमें थर्ड रेट, जो आखिरी बुद्धि का आदमी है, उसको ध्यान में रखा गया है।

कृष्ण की शिक्षाएं प्रथम कोटि के मनुष्य की ही समझ में आ सकती हैं। वे अति जटिल हैं। और महावीर और बुद्ध की शिक्षाओं से बहुत ऊंची हैं। थोड़ा कठिन होगा समझना।

हम सबको समझ में आ जाता है कि चोरी करना पाप है। चोर को भी समझ में आता है। आपको ही समझ में आता है, ऐसा नहीं; चोर को भी समझ में आता है कि चोरी करना बुरा है। लेकिन चोरी करना बुरा क्यों है?

चोरी करना बुरा तभी हो सकता है, जब संपत्ति सत्य हो; पहली बात। धन बहुत मूल्यवान हो और धन पर किसी का कब्जा माना जाए, व्यक्तिगत अधिकार माना जाए, तब चोरी करना बुरा हो सकता है।

धन किसका है? एक तो यह माना जाए कि व्यक्ति का अधिकार है धन पर, इसलिए उससे जो धन छीनता है, वह नुकसान करता है। दूसरा यह माना जाए कि धन बहुत मूल्यवान है। अगर धन में कोई मूल्य ही न हो, तो चोरी में कितना मूल्य रह जाएगा? इसे थोड़ा समझें।

जितना मूल्य धन में होगा, उतना ही मूल्य चोरी में हो सकता है। अगर धन का बहुत मूल्य है, तो चोरी का मूल्य है। लेकिन कृष्ण जिस तल से बोल रहे हैं, वहां धन मिट्टी है।

यह बड़े मजे की बात है कि महावीर को मानने वाले जैन साधु भी कहते हैं, धन मिट्टी है। और फिर भी कहते हैं, चोरी पाप है। मिट्टी को चुराना क्या पाप होगा? धन कचरा है। और फिर भी कहते हैं, चोरी पाप है! अगर धन कचरा है, तो चोरी पाप कैसे हो सकती है? कचरे को चुराने को कोई पाप नहीं कहता। वह धन लगता तो मूल्यवान ही है।

असल में जो समझाते हैं कि कचरा है, वे भी इसीलिए अपने को समझा रहे हैं, बाकी लगता तो उनको भी धन मूल्यवान है। इसलिए धन की चोरी भी मूल्यवान मालूम पड़ती है।

मैं एक जैन मुनि के पास था, उन्होंने अपनी एक कविता मुझे सुनाई। उस कविता में उन्होंने बड़े अच्छे शब्द संजोए थे। और जो भी उनके आस-पास लोग बैठे थे, वे सब सिर हिलाने लगे। गीत अच्छा था; लय थी। लेकिन अर्थ? अर्थ बिल्कुल ही व्यर्थ था।

अर्थ यह था उस गीत का कि हे सम्राटो, तुम अपने स्वर्ण-सिंहासनों पर बैठे रहो; मैं अपनी धूल में ही पड़ा हुआ मस्त हूं। मुझे तुएहारे स्वर्ण-सिंहासन की कोई भी चाह नहीं। मेरे लिए तुएहारा स्वर्ण-सिंहासन मिट्टी जैसा है। मैं तुएहारे स्वर्ण-सिंहासन को लात मारता हूं। मैं अपनी धूल में पड़ा हुआ फकीर मस्त हूं। मुझे तुएहारे स्वर्ण-सिंहासनों की कोई भी जरूरत नहीं है। बार-बार यही ध्वनि थी।

गीत पूरा हो जाने पर मैंने उनसे पूछा कि अगर स्वर्ण-सिंहासनों की सच में ही तुएहें कोई फिक्र नहीं, तो यह गीत किसलिए लिखा है? मैंने किसी सम्राट को इससे उलटा गीत लिखते आज तक नहीं देखा, कि फकीरो, पड़े रहो अपनी मिट्टी में, हमें तुमसे कोई भी ईर्ष्या नहीं। हम तुएहारी फकीरी को लात मारते हैं। हम तुएहारी फकीरी को दो कौड़ी का समझते हैं। हम अपने स्वर्ण-सिंहासन पर मजे में हैं। हमें तुमसे कोई ईर्ष्या नहीं है।

मनुष्य जाति के हजारों साल के इतिहास में एक भी सम्राट ने ऐसा नहीं लिखा है। लेकिन फकीरों ने इस गीत जैसे बहुत गीत लिखे हैं। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है, फकीरों को ईर्ष्या है। यह ईर्ष्या नहीं है, यह कहना भी ईर्ष्या से ही जन्म रहा है।

और फकीर कितना ही कह रहा हो, अपनी धूल में मस्त हैं, वह अपने को समझा रहा है कि हम धूल में मस्त हैं। जान तो वह भी रहा है कि सम्राट सिंहासन पर मजा ले रहा है। नहीं तो सम्राट को बीच में लाने का प्रयोजन क्या है? और स्वर्ण-सिंहासन अगर मिट्टी ही है, तो बार-बार दोहराने की जरूरत क्या है?

कोई भी तो नहीं कहता कि मिट्टी मिट्टी है। लोग स्वर्ण मिट्टी है, ऐसा क्यों कहते हैं? स्वर्ण तो स्वर्ण ही दिखाई पड़ता है, लेकिन वासना को दबाने के लिए आदमी अपने को समझाता है कि मिट्टी है, क्या चाहना उसको! लेकिन चाह भीतर खड़ी है, उस चाह को काटता है। मिट्टी है, क्या चाहना उसको!

यह स्त्री की देह है, इसमें कोई भी सौंदर्य नहीं है; हड्डी, मांस-मज्जा भरा है, ऐसा अपने को समझाता है। सौंदर्य उसको दिखाई पड़ता है। उसकी वासना मांग करती है। उसकी वासना दौड़ती है। वह वासना को काटने

के उपाय कर रहा है। वह यह समझा रहा है कि नहीं, इसमें हड्डी, मांस-मज्जा है; कुछ भी नहीं है। सब गंदी चीजें भीतर भरी हैं; यह मल का ढेर है।

लेकिन यह समझाने की जरूरत क्या है? मल के ढेर को देखकर कोई भी नहीं कहता कि यह मल का ढेर है, इसकी चाह नहीं करनी चाहिए। अगर स्त्री में मल ही दिखाई पड़ता है, तो बात ही खतम हो गई; चाह का सवाल क्या है! और चाह नहीं करनी चाहिए, ऐसी धारणा का क्या सवाल है!

कृष्ण बहुत ऊंची जगह से बोल रहे हैं। महावीर और बुद्ध भी उसी ऊंची जगह पर खड़े हैं, लेकिन वे बोल बहुत नीची जगह से रहे हैं, वहां जहां आप खड़े हैं।

सदगुरु अपने हिसाब से चुनते हैं। वे किसको कहना चाहते हैं, इस पर निर्भर करता है।

महावीर आपको समझते हैं। वे जानते हैं कि आप चोर हो। और आपको यह कहना कि चोरी और गैर-चोरी में कोई फर्क नहीं है, आप चोरी में ही लगे रहोगे। तो आपको समझा रहे हैं कि चोरी पाप है। हालांकि महावीर भी जानते हैं कि चोरी तभी पाप हो सकती है, जब धन में मूल्य हो। और जब धन में कोई मूल्य नहीं है, चोरी में कोई मूल्य नहीं रह गया।

इसे हम ऐसा समझें। महावीर और बुद्ध समझा रहे हैं कि हिंसा पाप है; और साथ ही यह भी समझा रहे हैं कि आत्मा अमर है, उसे काटा नहीं जा सकता। इन दोनों बातों में विरोध है। अगर मैं किसी को काट ही नहीं सकता, तो हिंसा हो कैसे सकती है? इसे थोड़ा समझें।

महावीर और बुद्ध कह रहे हैं कि हिंसा पाप है; किसी को मारो मत। और पूरी जिंदगी समझा रहे हैं कि मारा तो जा ही नहीं सकता, क्योंकि आत्मा अमर है; और शरीर मरा ही हुआ है, उसको मारने का कोई उपाय नहीं है।

आपके भीतर दो चीजें हैं, शरीर है और आत्मा है। महावीर और बुद्ध भी कहते हैं कि आत्मा अमर है, उसको मारा नहीं जा सकता; और शरीर मरा ही हुआ है, उसको मारने का कोई उपाय नहीं है। तो फिर हिंसा का क्या मतलब है? फिर हिंसा में पाप कहां है? आत्मा मर नहीं सकती, शरीर मरा ही हुआ है, तो हिंसा में पाप कैसे हो सकता है? और जब आप किसी को मार ही नहीं सकते, तो बचा कैसे सकते हैं? यह भी थोड़ा समझ लें।

अहिंसा की कितनी कीमत रह जाएगी! अगर हिंसा में कोई मूल्य नहीं है, तो अहिंसा का सारा मूल्य चला गया। अगर आत्मा काटी ही नहीं जा सकती, तो अहिंसा का क्या मतलब है? आप हिंसा कर ही नहीं सकते, अहिंसा कैसे करिएगा! इसे थोड़ा ठीक से समझें। हिंसा कर सकते हों, तो अहिंसा भी हो सकती है। जब हिंसा हो ही नहीं सकती, तो अहिंसा कैसे करिएगा?

लेकिन महावीर और बुद्ध आपकी तरफ देखकर बोल रहे हैं। वे जानते हैं कि आपको न तो आत्मा का पता है, जो अमर है; न आपको इस बात का पता है कि शरीर जो कि मरणधर्मा है। आप तो शरीर को ही अपना होना मान रहे हैं, जो मरणधर्मा है। इसलिए जरा ही क्रोध आता है, तो लगता है, दूसरे आदमी को तलवार से काटकर दो टुकड़े कर दो। आप जब दूसरे आदमी को काटने की सोचते हैं, तो आप दूसरे आदमी को भी शरीर मानकर चल रहे हैं। इसलिए हिंसा का भाव पैदा होता है।

इस हिंसा के भाव के पैदा होने में आपकी भूल है, आपका अज्ञान है। यह अज्ञान टूटे, इसकी महावीर और बुद्ध चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन कृष्ण का संदेश अंतिम है, आत्यंतिक है; वह अल्टिमेट है। वह पहली क्लास के बच्चों के लिए दिया गया नहीं है। वह आखिरी कक्षा में बैठे हुए लोगों के लिए दिया गया है।

इसलिए कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू पागलपन की बात मत कर कि तू लोगों को काट सकता है। आज तक दुनिया में कोई भी नहीं काट सका। काटना असंभव है। क्योंकि वह जो भीतर है, शरीर को काटे जाने से कटता नहीं। वह जो भीतर है, शरीर को जलाने से जलता नहीं। वह जो भीतर है, शरीर को छेद सकते हैं शस्त्र, वह छिदता नहीं। तो इसलिए तू पहली तो भ्रांति छोड़ दे कि तू काट सकता है। इसलिए तू हिंसक हो सकता है, यह बात ही भूल। और जब तू हिंसक ही नहीं हो सकता, तो अहिंसक होने का कोई सवाल नहीं है।

यह परम उपदेश है। और इसलिए जिनके पास छोटी बुद्धि है, सांसारिक बुद्धि है, उनकी समझ में नहीं आ सकेगा। पर कुछ हर्जा नहीं, वे महावीर और बुद्ध को समझकर चलें। जैसे-जैसे उनकी समझ बढ़ेगी, वैसे-वैसे उनको दिखाई पड़ने लगेगा कि महावीर और बुद्ध भी कहते तो यही हैं।

समझ बढ़ेगी, तब उनके ख्याल में आएगा कि वे भी कहते हैं, आत्मा अमर है। वे भी कहते हैं कि आत्मा को मारने का कोई उपाय नहीं है। और वे भी कहते हैं कि धन केवल मान्यता है, उसमें कोई मूल्य है नहीं; मान्यता का मूल्य है। लेकिन जो माने हुए बैठे हैं, उनको छीनकर अकारण दुख देने की कोई जरूरत नहीं है। हालांकि दुख वे आपके द्वारा धन छीनने के कारण नहीं पाते हैं। वे धन में मूल्य मानते हैं, इसलिए पाते हैं।

थोड़ा समझ लें। अगर मेरा कोई धन चुरा ले जाता है, तो मैं जो दुख पाता हूं, वह उसकी चोरी के कारण नहीं पाता हूं; वह दुख मैं इसलिए पाता हूं कि मैंने अपने धन में बड़ा मूल्य माना हुआ था। वह मेरे ही अज्ञान के कारण मैं पाता हूं, चोर के कारण नहीं पाता। मैं तो पाता हूं इसलिए कि मैं सोचता था, धन बड़ा मूल्यवान है और कोई मुझसे छीन ले गया।

कृष्ण कह रहे हैं, धन का कोई मूल्य ही नहीं है। इसलिए न चोरी का कोई मूल्य है और न दान का कोई मूल्य है।

ध्यान रखें, धन में मूल्य हो, तो चोरी और दान दोनों में मूल्य है। फिर चोरी पाप है और दान पुण्य है। लेकिन अगर धन ही निर्मूल्य है, तो चोरी और दान, सब निर्मूल्य हो गए। यह आखिरी संदेश है।

इसका मतलब यह नहीं है कि आप चोरी करने चले जाएं। इसका यह भी मतलब नहीं है कि आप दान न करें। इसका कुल मतलब इतना है कि आप जान लें कि धन में कोई भी मूल्य नहीं है।

कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि तू हिंसा करने में लग जा। क्योंकि कृष्ण तो मानते ही नहीं कि हिंसा हो सकती है। इसलिए कैसे कहेंगे कि हिंसा करने में लग जा! कृष्ण तो यह कह रहे हैं कि हिंसा-अहिंसा भ्रांतियां हैं। तू कर नहीं सकता। लेकिन करने की अगर तू चेष्टा करे, तो तू अकारण दुख में पड़ेगा।

इसे हम और तरह से भी समझें। क्योंकि यह बहुत गहरा है; और जैनों, बौद्धों और हिंदुओं के बीच जो बुनियादी फासला है, वह यह है।

इसलिए गीता को जैन और बौद्ध स्वीकार नहीं करते। कृष्ण को उन्होंने नरक में डाला हुआ है। अपने शास्त्रों में उन्होंने लिखा है कि कृष्ण नरक में पड़े हैं। और नरक से उनका छुटकारा आसान नहीं है, क्योंकि इतनी खतरनाक बात समझाने वाला आदमी नरक में होना ही चाहिए। जो यह समझा रहा है कि अर्जुन, तू बेफिक्री से काट, क्योंकि कोई कटता ही नहीं है। इससे ज्यादा खतरनाक और क्या संदेश होगा!

और जो कह रहा है, किसी भी तरह का वर्तन करो, वर्तन का कोई मूल्य नहीं है; सिर्फ पुरुष के भाव में प्रतिष्ठा चाहिए। तुएहारे आचरण की कोई भी कीमत नहीं है। तुएहारा अंतस कहां है, यही सवाल है। तुएहारा आचरण कुछ भी हो, उसका कोई भी मूल्य नहीं है, न निषेधात्मक, न विधायक। तुएहारे आचरण की कोई

संगति ही नहीं है। तुएहारी आत्मा बस, काफी है। ऐसी समाज विरोधी, आचरण विरोधी, नीति विरोधी, अहिंसा विरोधी बात!

तो जैनों ने उन्हें नरक में डाल दिया है। और तब तक वे न छूटेंगे, जब तक इस सृष्टि का अंत न हो जाए। दूसरी सृष्टि जब जन्मेगी, तब वे छूटेंगे।

ठीक है। जैनों की मान्यता के हिसाब से कृष्ण खतरनाक हैं, नरक में डालना चाहिए। लेकिन कृष्ण को समझने की कोशिश करें, तो कृष्ण ने इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम बात कही जा सकती है, वह कही है। लेकिन कहने का ढंग भी उनका उतना ही श्रेष्ठ है, जितनी बात श्रेष्ठ है। उन्होंने उसे छोटे लोगों के लिए, साधारण बुद्धि के लोगों के लिए मिश्रित नहीं किया, समझौता नहीं किया है। उन्होंने आपसे कोई समझौता नहीं किया है। सत्य जैसा है, उसे वैसा ही कह दिया है। उसके क्या परिणाम होंगे, इसकी भी फिक्र नहीं की। और निश्चित ही कुछ लोग तो चाहिए, जो सत्य को वैसा ही कह दें जैसा है, बिना परिणामों की फिक्र किए। अन्यथा कोई भी सत्य कहा नहीं जा सकता।

महावीर, बुद्ध समझाते हैं, दूसरे को दुख मत दो। और महावीर, बुद्ध यह भी समझाते हैं कि तुएहें जब दुख होता है, तो तुएहारे अपने कारण होता है, दूसरा तुएहें दुख नहीं देता। इन दोनों बातों का मतलब क्या हुआ?

एक तरफ कहते हैं, दूसरे को दुख मत दो; दुख देना पाप है। दूसरी तरफ कहते हैं कि तुएहें जब कोई दुख देता है, तो तुम अपने ही कारण दुख पाते हो, दूसरा तुएहें दुख नहीं दे रहा है। दूसरा तुम को दुख दे नहीं सकता।

ये दोनों बातें तो विरोधी हो गईं। इसमें पहली बात साधारण बुद्धि के लोगों के लिए कही गई है; दूसरी बात परम सत्य है। और अगर दूसरी सत्य है, तो पहली झूठ हो गई।

जब मैं दुख पाता हूं, तो महावीर कहते हैं कि तुम अपने कारण दुख पा रहे हो, कोई तुएहें दुख नहीं देता। एक आदमी मुझे पत्थर मार देता है। महावीर कहते हैं, तुम अपने कारण दुख पा रहे हो। क्योंकि तुमने शरीर को मान लिया है अपना होना, इसलिए पत्थर लगने से शरीर की पीड़ा को तुम अपनी पीड़ा मान रहे हो। ठीक! मैं किसी के सिर में पत्थर मार देता हूं, तो महावीर कहते हैं, दूसरे को दुख मत पहुंचाओ।

यह बात कंट्राडिक्टरी हो गई। जब मुझे कोई पत्थर मारता है, तो दुख का कारण मैं हूं! और जब मैं किसी को पत्थर मारता हूं, तब भी दुख का कारण मैं हूं!

यह दो तल पर है बात। दूसरे को दुख मत पहुंचाओ, यह क्षुद्र आदमी के लिए कहा गया है। क्योंकि क्षुद्र आदमी दूसरे को दुख पहुंचाने में बड़ा उत्सुक है; उसके जीवनभर का एक ही सुख है कि दूसरे को कैसे दुख पहुंचाएं। वह मरते दम तक एक ही बस काम करता रहता है कि दूसरों को कैसे दुख पहुंचाएं। जब वह सोचता भी है कि मेरा सुख क्या हो, तब भी दूसरे के दुख पर ही उसका सुख निर्भर होता है।

आप अपने सुखों को खोजें, तो आप पता लगा लेंगे कि जब तक आपका सुख दूसरे को दुख न देता हो, तब तक सुख नहीं मालूम पड़ता। आप एक बड़ा मकान बना लें, लेकिन जब तक दूसरों के मकान छोटे न पड़ जाएं, तब तक सुख नहीं मालूम पड़ता। आप जो भी कर रहे हैं, आपके सुख में दूसरे के सुख को मिटाने की चेष्टा है।

इस तरह के आदमी के लिए महावीर और बुद्ध कह रहे हैं कि दूसरे को दुख पहुंचाओ मत। लेकिन यह बात ऐसे झूठ है, क्योंकि दूसरे को कोई दुख पहुंचा नहीं सकता, जब तक कि दूसरा दुख पाने को राजी न हो। यह दूसरे की सहमति पर निर्भर है। आप पहुंचा नहीं सकते।

फिर ऐसा क्यों कहा जा रहा है? ऐसा इसलिए कहा जा रहा है कि दूसरे को दुख पहुंचाने की चेष्टा में दूसरे को तो दुख नहीं पहुंचाया जा सकता, तुम अपने को ही दुख पहुंचाओगे। वह तो हो ही नहीं सकता दूसरे को दुख पहुंचाना, लेकिन तुम अपने को दुख पहुंचाओगे। क्योंकि तुम दुख के बीज बो रहे हो। और जो तुम दूसरे के लिए करते हो, वह तुएहारे लिए होता जाता है।

और जब तुएहारे लिए कोई दुख पहुंचाए, तब तुम समझना कि कोई दूसरा तुएहें दुख नहीं पहुंचा रहा है। यह हो सकता है कि तुएहारे अपने ही दूसरों को पहुंचाए गए दुखों के बीज दूसरे की सहायता से, संयोग से, निमित्त से अब तुएहारे लिए फल बन रहे हों। लेकिन दुख का मूल कारण तुम स्वयं ही हो।

यह दूसरी बात ऊंचे तल से कही गई है। और पहली बात को जो पूरा कर लेगा, उसको दूसरी बात समझ में आ सकेगी। जो दूसरे को दुख पहुंचाना बंद कर देगा, उसे यह भी ख्याल में आ जाएगा कि कोई दूसरा मुझे दुख नहीं पहुंचा सकता। यह दो तल की, दो कक्षाओं की बात है।

कृष्ण एक तल की सीधी बात कह रहे हैं, वे आखिरी बात कह रहे हैं। उनके सामने जो व्यक्ति खड़ा था, वह साधारण नहीं है। जिस अर्जुन से वे बात कर रहे थे, उसकी प्रतिभा कृष्ण से जरा भी कम नहीं है। संभावना उतनी ही है, जितनी कृष्ण की है। वह कोई मंद बुद्धि व्यक्ति नहीं है। वह धनी है प्रतिभा का। उसके पास वैसा ही निखरा हुआ चैतन्य है, वैसी ही बुद्धि है, वैसा ही प्रगाढ़ तर्क है। वे जिससे बात कर रहे हैं; वह शिखर की बात है।

और इसीलिए गीता लोग कंठस्थ तो कर लेते हैं, लेकिन गीता को समझ नहीं पाते। और बहुत-से लोग जो गीता को मानते हैं, वे भी गीता में अड़चन पाते हैं। मान लेते हैं, तो भी गीता उनको दिक्कत देती है। कठिनाई मालूम पड़ती है।

महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति को भी, जो गीता को माता कहते हैं, उनको भी गीता में तकलीफ है। क्योंकि यह हिंसा-अहिंसा उनको भी सताती है। वे भी रास्ता निकालते हैं कोई। क्योंकि उनका मन भी यह मानने की हिएमत नहीं कर पाता कि कृष्ण जो कहते हैं, वह ठीक ही कहते हैं कि काटो, कोई कटता नहीं। मारो, कोई मरता नहीं। भयभीत मत होओ, डरो मत; तुम दूसरे को दुख पहुंचा नहीं सकते। इसलिए दूसरे को दुख न पहुंचाऊं, ऐसी चेष्टा भी व्यर्थ है। और मैंने दूसरे को दुख नहीं पहुंचाया, ऐसा अहंकार पागलपन है।

गांधी तक को तकलीफ होती है कि क्या करें। एक तरफ अहिंसा है। गांधी बुद्धि से जैन हैं, नब्बे प्रतिशत। जन्म से हिंदू हैं, दस प्रतिशत। तो गीता के साथ मोह भी है, लगाव भी है; कृष्ण को छोड़ भी नहीं सकते। और वह जो नब्बे प्रतिशत जैन होना है, क्योंकि गुजरात की हवा जैनियों की हवा है। वहां हिंदू भी जैन ही हैं। उसके सोचने के तरीके के ढंग, वह सब जैन की आधारशिला पर निर्मित हो गए हैं।

तो गांधी गीता को भ्रष्ट कर देते हैं। वे फिर तरकीबें निकाल लेते हैं समझाने की। वे कहते हैं, यह युद्ध वास्तविक नहीं है। यह युद्ध तो मनुष्य के भीतर जो बुराई और अच्छाई है, उसका युद्ध है। यह कोई युद्ध वास्तविक नहीं है। और कृष्ण जो समझा रहे हैं काटने-पीटने को, यह बुराई को काटने-पीटने को समझा रहे हैं, मनुष्यों को नहीं। ये कौरव बुराई के प्रतीक हैं; और ये पांडव भलाई के प्रतीक हैं। यह मनुष्य की अंतरात्मा में चलता शुभ और अशुभ का द्वंद्व है। बस, इस प्रतीक को पकड़कर फिर गीता में दिक्कत नहीं रह जाती; फिर अड़चन नहीं रह जाती।

मगर यह बात सरासर गलत है। यह प्रतीक अच्छा है, लेकिन यह बात गलत है। कृष्ण तो वही कह रहे हैं, जो वे कह रहे हैं। वे तो यह कह रहे हैं कि मारने की घटना घटती ही नहीं, इसलिए मार सकते नहीं हो, तो मारने की सोचो भी मत। पहली बात। और बचाने का तो कोई सवाल ही नहीं है। बचाओगे कैसे?

तुम दूसरे के साथ कुछ कर ही नहीं सकते हो; तुम जो भी कर सकते हो, अपने ही साथ कर सकते हो! और जब तुम दूसरे को भी मारते हो, तो तुम अपने को ही मार रहे हो। जब तुम दूसरे को बचाते हो, तो तुम अपने को ही बचा रहे हो। कृष्ण यह कह रहे हैं कि तुम अपने से बाहर जा ही नहीं सकते। तुम अपने पुरुष में ही ठहरे हुए हो। तुम सिर्फ भावनाओं में जा सकते हो।

एक आदमी सोच रहा है कि दूसरे को मार डालूं, चोट पहुंचाऊं। वह सब भावनाएं कर रहा है। वह जाकर शरीर को तोड़ भी सकता है। शरीर तक उसकी पहुंच हो जाएगी, क्योंकि शरीर टूटा ही हुआ है। लेकिन वह जो भीतर चैतन्य था, उसको छू भी नहीं पाएगा।

और अगर आपको लगता है कि आप छू पाए, तो अपने कारण नहीं, वह जो चैतन्य था भीतर, उसके भाव के कारण। अगर उसने मान लिया कि तुम मुझे मारने आए हो, तुम मुझे मार रहे हो, तुम मुझे दुख दे रहे हो, तो यह उसका अपना भाव है। इस कारण तुएहें लगता है कि तुम उसको दुख दे पाए।

इसे हम ऐसा समझें। अगर आप महावीर को मारने जाएं, तो आप महावीर को दुख नहीं पहुंचा पाएंगे। बहुत लोगों ने मारा है और दुख नहीं पहुंचा पाए। महावीर के कानों में किसी ने खीले छेद दिए, लेकिन दुख नहीं पहुंचा पाए। क्यों? क्योंकि महावीर अब भावना नहीं करते। तुम उन्हें दुख पहुंचाने की कोशिश करते हो, लेकिन वे दुख को लेते नहीं हैं। और जब तक वे न लें, दुख घटित नहीं हो सकता। तुम पहुंचाने की कामना कर सकते हो; लेने का काम उन्हीं का है कि वे लें भी। जब तक वे न लें, तुम नहीं पहुंचा सकते। इसलिए महावीर को हम दुख नहीं पहुंचा सकते, क्योंकि महावीर दुख लेने को अपने भीतर राजी नहीं हैं।

आप उस व्यक्ति को दुख पहुंचा सकते हैं, जो दुख लेने को राजी है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह आपके कारण दुख नहीं लेता; वह दुख लेने को राजी है, इसलिए लेता है। और अगर आप न पहुंचाते, तो कोई और पहुंचाता। और अगर कोई भी पहुंचाने वाला न मिलता, तो भी वह आदमी कल्पित करके दुख पाता। वह दुख लेने को राजी था। वह कोई भी उपाय खोज लेता और दुखी होता।

आप थोड़े दिन, सात दिन के लिए एक कमरे में बंद हो जाएं, जहां कोई दुख पहुंचाने नहीं आता, कोई गाली नहीं देता, कोई क्रोध नहीं करवाता। आप चकित हो जाएंगे कि सात दिन में अचानक आप किसी क्षण में दुखी हो जाते हैं, जब कि कोई दुख पहुंचाने वाला नहीं है। और किसी क्षण में अचानक क्रोध से भर जाते हैं, जब कि किसी ने कोई गाली नहीं दी, किसी ने कोई अपमान नहीं किया। और किसी समय आप बड़े आनंदित हो जाते हैं, जब कि कोई प्रेम करने वाला नहीं है।

अगर सात दिन आप मौन में, एकांत में बैठें, तो आप चकित हो जाएंगे कि आपके भीतर भावों का वर्तन चलता ही रहता है। और बिना किसी के आप सुखी-दुखी भी होते रहते हैं।

एक दफा यह आपको दिखाई पड़ जाए कि मैं बिना किसी के सुखी-दुखी हो रहा हूं, तो आपको ख्याल आ जाएगा कि दूसरे ज्यादा से ज्यादा आपको अपनी भावनाएं टांगने के लिए खूंटी का काम करते हैं, इससे ज्यादा नहीं। वे निमित्त से ज्यादा नहीं हैं।

यही कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि तू निमित्त से ज्यादा नहीं है। तू यह ख्याल ही छोड़ दे कि तू कर्ता है। उस कर्ता में ही कृष्ण के लिए एकमात्र अज्ञान है।

हमें समझ में आता है कि हिंसा करना बुरा है। हमें यह समझ में नहीं आता कि अहिंसा करना भी बुरा है। हिंसा करना बुरा है, क्योंकि दूसरे को दुख पहुंचता है, हमारा ख्याल है। लेकिन कृष्ण के हिसाब से हिंसा करना इसलिए बुरा है कि कर्ता का भाव बुरा है, कि मैं कर रहा हूं। इससे अहंकार घना होता है।

अगर हिंसा करना बुरा है कर्ता के कारण, तो अहिंसा करना भी उतना ही बुरा है कर्ता के कारण। और कृष्ण कहते हैं, जड़ को ही काट दो; तुम कर्ता मत बनो। न तो तुम हिंसा कर सकते हो, न तुम अहिंसा कर सकते हो। तुम कुछ कर नहीं सकते। तुम केवल हो सकते हो। तुम अपने इस होने में राजी हो जाओ। फिर जो कुछ हो रहा हो, उसे होने दो।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि अगर यह बात सच है कि मैं कुछ न करने में ठहर जाऊं, पुरुष में ठहर जाऊं, अपने चैतन्य में साक्षी-भाव से रुक जाऊं, तो कृष्ण कहते हैं, फिर जो भी वर्तन हो, उस वर्तन से कुछ भी हानि-लाभ नहीं है, कोई पाप-पुण्य नहीं है। उन मित्र ने पूछा है कि जब मेरी सब चाह मिट गई, वासना मिट गई, और जब मैंने अपने पुरुष को जान लिया, तो वर्तन होगा ही कैसे? जब मैं अपने आत्मा में ठहर गया, तो वर्तन होगा ही कैसे?

यह बात सोचने जैसी है। यह सवाल उठेगा, क्योंकि हम जितना भी वर्तन जानते हैं, वह चाह के कारण है।

आप चलते हैं, क्योंकि कहीं पहुंचना है। कोई कहे कि कहीं पहुंचने की जरूरत नहीं है, फिर चलना हो जितना, चलो। तो आप कहेंगे, हम चलेंगे किसलिए? चलने का कोई अर्थ ही न रहा, कोई प्रयोजन न रहा, कोई कारण न रहा, तो चलेंगे किसलिए? कोई पागल तो नहीं हैं कि अकारण चलते रहें, जब कि कहीं पहुंचने को नहीं है, कोई वासना नहीं है, कोई चाह नहीं है, कोई मंजिल नहीं है।

हम कर्म करते हैं किसी वासना से। तो उन मित्र का पूछना बिल्कुल ठीक है कि जब वासना ही मिट गई और कर्म अभिनय है, यह समझ में आ गया; और कुछ पाने योग्य नहीं है, कुछ पहुंचने योग्य नहीं है, यह दृष्टि स्पष्ट हो गई; तो कृष्ण का यह कहना कि फिर जो भी वर्तन हो, होने दें, फिर न कोई जन्म होगा, न वर्तन का कोई कर्म परिणाम होगा--इसका क्या अर्थ है? फिर वर्तन होगा ही क्यों?

यह थोड़ा जटिल और टेक्निकल है सवाल। इसे समझने की कोशिश करें।

करीब-करीब बात ऐसी है कि आप एक साइकिल पर चल रहे हैं, पैडल चला रहे हैं। फिर आपने पैडल रोक दिए। पैडल रुकते से ही साइकिल नहीं रुक जाएगी। हालांकि रुक जाना चाहिए, क्योंकि पैडल से चलती थी। पैडल चलाने से चलती थी, बिना पैडल चलाए साइकिल नहीं चल सकती थी। पैडल से चलती थी।

लेकिन आपने पैडल रोक दिए, तो भी साइकिल थोड़ी दूर जाएगी। और थोड़ी दूर जाना बहुत चीजों पर निर्भर होगा। थोड़ी दूर बहुत दूर भी हो सकती है, अगर साइकिल उतार पर हो। अगर चढ़ाव पर हो, तो थोड़ी दूर बहुत कम दूर होगी। अगर समतल पर हो, तो भी काफी दूर होगी। अगर बिल्कुल उतार हो, तो मीलों भी जा सकती है। साइकिल का पैडल बंद करते से साइकिल नहीं रुकेगी, क्योंकि पैडल जो पीछे आपने चलाए थे अतीत में, उनसे मोमेंटम पैदा होता है, उनसे गति पैदा होती है और चाकों में गति भर जाती है। वह गति काम करेगी।

जिस दिन कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है और पुरुष में ठहर जाता है, तब भी शरीर में मोमेंटम रहता है। शरीर चाक की तरह गति इकट्ठी कर लेता है अनेक जन्मों में। अगर उतार पर यात्रा हो, तो शरीर बहुत लंबा चल जाएगा।

इसलिए जिन लोगों को पैंतीस साल के पहले ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, उनको शरीर को लंबा चलाना बहुत कठिन है। क्योंकि पैंतीस साल पीक है, पैंतीस साल के बाद शरीर में उतार शुरू होता है। इसलिए विवेकानंद, शंकर या क्राइस्ट, जो बहुत जल्दी ज्ञान को उपलब्ध हो गए, पैंतीस साल के पहले मर जाते हैं। शरीर में मोमेंटम है, लेकिन अब यह यात्रा शरीर की ऊपर की तरफ थी।

पैंतीस साल तक शरीर ऊपर की तरफ जाता है। सत्तर साल में मौत होने वाली है, तो पैंतीस साल में पीक होती है। अस्सी साल में मौत होने वाली है, तो चालीस साल में पीक होती है। सौ साल में मौत होने वाली है, तो पचास साल में पीक होती है। पैंतीस मैं औसत ले रहा हूं।

लेकिन जो लोग पैंतीस साल के बाद ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, उनका शरीर काफी लंबा चल जाता है, क्योंकि शरीर तब उतार पर होता है और पुराना मोमेंटम काफी गति देता है। इसलिए बहुत-से ज्ञानी जो पैंतीस साल के पहले निर्वाण को उपलब्ध होते हैं, जिंदा नहीं रह पाते, ज्यादा देर जिंदा नहीं रह पाते। कठिन है जिंदा रहना। या फिर जिंदा रहने के लिए उन्हें उपाय करने पड़ते हैं; कोई व्यवस्था जुटानी पड़ती है।

अगर उनके पास कोई संदेश हो जिसे उन्हें हस्तांतरित करना है, और वह व्यक्ति मौजूद न हो जिसको संदेश हस्तांतरित करना है, या उन व्यक्तियों के बनने में, निर्मित होने में समय हो, तो फिर उन व्यक्तियों को इंतजाम करना पड़ता है। लेकिन भीतर जो चाह का पैडल था, वह बंद होते से ही कठिनाई शुरू हो जाती है।

इसलिए अगर आपको बहुत ज्ञानी बहुत खतरनाक बीमारियों से मरते मालूम पड़ते हैं, तो उसका कारण है। उसका कारण है कि शरीर को जो गति होनी चाहिए, वह देने वाली चाह तो समाप्त हो गई। अब तो शरीर पुरानी अर्जित शक्ति से ही चलता है, वह शक्ति बहुत कम होती है। कोई भी बीमारी तीव्रता से पकड़ ले सकती है। क्योंकि रेसिस्टेंस कम हो जाता है।

ऐसा समझिए कि आप पैडल चला रहे थे साइकिल पर। और कोई अगर आपको धक्का मार देता है, तो हो सकता था, आप न भी गिरते। अगर गति तेज होती, तो आप धक्के को सएहाल जाते। और आप बिना पैडल चलाए साइकिल पर थिरे हुए थे, जैसे चील आकाश में बिना पंख चलाए थिरी हो। बस, धीमे-धीमे साइकिल चल रही थी मंद गति से; और कोई जरा-सा धक्का दे दे, आप फौरन गिर पड़ेंगे। रेसिस्टेंस कम होगा। जितनी तेज गति होगी, रेसिस्टेंस ज्यादा होगा; जितनी कम गति होगी, उतनी प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है।

तो रामकृष्ण और रमण अगर कैंसर से मरते हैं, तो उसका कारण है। बहुत लोगों को चिंता होती है कि इतने परम ज्ञानी और इन्हें तो कम से कम कैंसर नहीं होना चाहिए! क्योंकि हम सोचते हैं, पापियों को कैंसर होता है। तो इतने परम ज्ञानी को कैंसर हो जाए!

बहुत कारणों में एक कारण यह भी है कि जिनका भी भीतर शरीर के साथ गति का संबंध टूट गया... । वह संबंध ही वासना का है, चाह का है। कहीं पहुंचना है, इसलिए पैडल चलाते थे। अब कहीं भी नहीं पहुंचना है; पैडल चलना बंद हो गया। लेकिन पुरानी शक्ति और अर्जित ऊर्जा के कारण शरीर चलेगा।

कृष्ण का यह जो कहना है कि जब कोई पुरुष में थिर हो जाता है, फिर जो भी वर्तन होता है, उससे कोई कर्म-बंध नहीं होता। क्योंकि कर्म-बंध वर्तन के कारण नहीं होता; कर्म-बंध चाह के कारण होता है।

और वर्तन थोड़ी देर जारी रहेगा। वर्तन पुराने लीक पर जारी रहेगा। थोड़े दिन तक जीवन की धारा और बहेगी। लेकिन यह एक ही शरीर तक हो सकती है।

इसलिए ज्ञानी का दूसरा जन्म नहीं होगा। क्योंकि बिना मोमेंटम के, बिना पैडल चलाए नई साइकिल नहीं चलेगी। अगर आप अभी सवार हों सीधा साइकिल पर, और बिल्कुल बिना पैडल चलाए उस पर सवार हो

जाएं, तो न तो सवार हो सकते हैं, सवार हो भी जाएं तो फौरन गिर जाएंगे। नया शरीर नहीं चलेगा; पुराना शरीर थोड़े दिन चल सकता है। उस थोड़े दिन में जो भी होगा, उसका कोई कर्म-बंध नहीं होगा। और यह बात उचित है, क्योंकि कुछ वर्तन तो होगा ही।

महावीर को चालीस साल में ज्ञान हुआ, फिर वे अस्सी साल तक जिंदा रहे। तो चालीस साल जो जिंदा रहे ज्ञान के बाद, उन्होंने कुछ तो किया ही। दुकान नहीं चलाई, राज्य नहीं किया। किसी की हत्या नहीं की, लेकिन फिर भी कुछ तो किया ही। श्वास तो ली; श्वास में भी कीटाणु मरे। पानी तो पीया; पानी में भी कीटाणु मरे। रास्ते पर चले; पैदल चलने से भी कीटाणु मरे। रात सोए, जमीन पर लेटे, उससे भी कीटाणु मरे। भोजन किया, उसमें भी हिंसा हुई। बोले, उसमें भी हिंसा हुई। आंख की पलकें झपकीं, उसमें भी हिंसा हुई।

जीवित होना ही हिंसा है। बिना हिंसा के तो क्षणभर जीवित भी नहीं रहा जा सकता। एक श्वास आप लेते हैं, कम से कम एक लाख कीटाणु मर जाते हैं। तो कैसे बचिएगा? महावीर भी नहीं बच सकते। श्वास तो लेंगे। भोजन कम कर देंगे, लेकिन भोजन लेंगे तो। हिंसा कम हो जाएगी, लेकिन होगी तो।

तो अगर चालीस साल, ज्ञान के बाद, हिंसा जारी रही, तो मुक्ति कैसे होगी? फिर कर्म-बंध हो जाएगा। इतनी हिंसा के लिए फिर से जन्म लेना पड़ेगा। अब यह बड़ा जटिल विशियस सर्किल है। अगर इस हिंसा के लिए फिर से जन्म लेना पड़े, तो जन्म लेते से ही नई हिंसा शुरू हो जाएगी। तो फिर छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। मुक्ति होगी कैसे? जन्म-मरण से छुटकारा कैसे होगा?

महावीर भी मानते हैं कि जैसे ही परम ज्ञान हो जाता है, फिर जो भी हो रहा है, उस होने से कोई बंध नहीं होता; उस होने से फिर कोई बंधन पैदा नहीं होता। तो ही मुक्ति संभव है, नहीं तो मुक्ति असंभव है। क्योंकि कुछ भी बाकी रहा, तो मुक्ति असंभव है।

ज्ञान के बाद जो भी हो, उसका बंधन नहीं होगा। नहीं होगा इसलिए कि हम उसे कर नहीं रहे हैं। वह पुरानी क्रियाओं की इकट्ठी शक्ति के द्वारा हो रहा है। सच पूछें तो वह वर्तमान में हो ही नहीं रहा है। वह अतीत का ही हिस्सा है, जो आगे लुढ़का जा रहा है। जिस दिन आपका शरीर और आपका कर्म बिना पैडल चलाए साइकिल की तरह लुढ़कने लगते हैं और आप सिर्फ द्रष्टा रह जाते हैं, उस दिन आपके लिए फिर कोई भविष्य, कोई जन्म, कोई जीवन नहीं है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि व्यक्ति जैसा भाव करता है, वैसा ही बन जाता है। तो क्या मुक्त होने के भाव को गहन करने से वह मुक्त भी हो सकता है?

कभी भी नहीं। क्योंकि मुक्त होने का अर्थ ही है, भाव से मुक्त हो जाना। इसलिए संसार में सब कुछ हो सकता है भाव से, मुक्ति नहीं हो सकती। मुक्ति संसार का हिस्सा नहीं है।

भाव है संसार का विस्तार या संसार है भाव का विस्तार। तो आप जो भी भाव से चाहें, वही हो जाएंगे। स्त्री होना चाहें, स्त्री; पुरुष होना चाहें, पुरुष; पशु होना चाहें, पशु; पक्षी होना चाहें, पक्षी; स्वर्ग में देवता होना चाहें तो, नरक में भूत-प्रेत होना चाहें तो, जो भी आप होना चाहें--एक मुक्ति को छोड़कर--आप अपने भाव से होते हैं और हो सकते हैं।

मुक्ति का अर्थ ही उलटा है। मुक्ति का अर्थ है कि अब हम कुछ भी नहीं होना चाहते। अब जो हम हैं, हम उससे ही राजी हैं। अब हम कुछ होना नहीं चाहते हैं।

जब तक आप कुछ होना चाहते हैं, तब तक आप जो हैं, उससे आप राजी नहीं हैं। कुछ होना चाहते हैं। गरीब अमीर होना चाहता है; स्त्री पुरुष होना चाहती है; दीन धनी होना चाहता है। कुछ होना चाहते हैं। पशु पुरुष होना चाहता है; पुरुष स्वर्ग में देवता होना चाहता है। लेकिन कुछ होना चाहते हैं, कुछ होना चाहते हैं।

होना चाहने का अर्थ है कि जो मैं हूं, उससे मैं राजी नहीं हूं; मैं कुछ और होना चाहता हूं। और जो आप हैं, वही आपका सत्य है। और जो भी आप होना चाहते हैं, वह झूठ है।

भाव से झूठ पैदा हो सकते हैं, सत्य पैदा नहीं होता। सत्य तो है ही। इसलिए सभी भाव असत्य को जन्माते हैं। सारा संसार इसीलिए माया है, क्योंकि वह भाव से निर्मित है।

आप जो होना चाहते हैं, वह हो जाते हैं। जो आप हैं, वह तो आप हैं ही। वह इस होने के पीछे दबा पड़ा रहता है। जैसे राख में अंगारा दबा हो, ऐसे आपके होने में, बिकमिंग में आपका बीइंग, आपका अस्तित्व दबा रहता है।

जिस दिन आप थक जाते हैं होने से, और आप कहते हैं, अब कुछ भी मुझे होना नहीं है, अब तो जो मैं हूं, राजी हूं। अब मुझे कुछ भी नहीं होना है। अब तो जो मेरा होना है; वही ठीक है। मेरा अस्तित्व ही अब मेरे लिए काफी है। अब मेरी कोई वासना, कोई दौड़ नहीं है। जिस दिन आपकी भाव की यात्रा बंद हो जाती है, आप मुक्त हो जाते हैं।

इसलिए भावना से आप मुक्त न हो सकेंगे। भावना संसार का स्रोत है। भावना रुक जाएगी, तो आप मुक्त हो जाएंगे। यह कहना भी ठीक नहीं कि मुक्त हो जाएंगे; क्योंकि मुक्त आप हैं। भावना के कारण आप बंधे हैं। आपकी मुक्ति भावना के जाल में बंधी है। जिस दिन भावना का जाल गिर जाएगा, आप मुक्त हैं।

आप सदा मुक्त थे। मोक्ष कोई भविष्य नहीं है। और मोक्ष कोई स्थान नहीं है। ध्यान रहे, मोक्ष आपका स्वभाव है। आप जो हैं अभी, इसी वक्त, इसी क्षण, वही आपका मोक्ष है।

लेकिन वह आप होना नहीं चाहते। आप कुछ और होना चाहते हैं। कोई भी स्वयं होने से राजी नहीं है। कोई कुछ और होना चाहता है, कोई कुछ और होना चाहता है।

राजनीतिज्ञ मेरे पास आते हैं, वे साधु होना चाहते हैं। साधु मेरे पास आते हैं, उनकी बातें सुनकर लगता है कि वे राजनीतिज्ञ होना चाहते हैं। गरीब अमीर होना चाहता है। अमीर मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि बुरे उलझ गए हैं, बड़ी मुसीबत में हैं। इससे तो गरीबी बेहतर।

हमने जाना भी है, बुद्ध और महावीर अमीर घरों में पैदा हुए और गरीब हो गए। छोड़कर सड़क पर खड़े हो गए।

अमीर गरीब होना चाहता है। आज अमेरिका में गरीब होने की दौड़ खड़ी हो रही है, क्योंकि अमेरिका खूब अमीर हो गया है। तो नए बच्चे, लड़के, लड़कियां हिप्पी हो रहे हैं; वे छोड़ रहे हैं। वे कहते हैं, भाड़ में जाए तुएहारा धन, तुएहारे महल, तुएहारी कारें कुछ भी नहीं चाहिए। हमें जिंदगी चाहिए सीधी, सरल।

अमीर गरीब होना चाहते हैं; गरीब अमीर होना चाहते हैं। कोई कुछ होना चाहता है, कोई कुछ होना चाहता है। एक बात पक्की है कि कोई भी स्वयं नहीं होना चाहता।

आप भी अपने भीतर न मालूम क्या-क्या सोचते रहते हैं। कोई को गांधी बनना है, किसी को विवेकानंद बनना है, किसी को क्राइस्ट बनना है। बस, एक बात भर नहीं, जो आप हैं, वह भर नहीं बनना है; बाकी सब बनना है।

संसार का अर्थ है, कुछ और होने की दौड़। मोक्ष का अर्थ है, स्वयं होने के लिए राजी हो जाना। उसके लिए किसी भावना की जरूरत नहीं है। इसलिए अगर आप भावना करके मुक्त होंगे, तो वह मुक्ति झूठी होगी। वह भी चेष्टित और मन का ही फैलाव होगी।

कई लोग भावना करके मुक्त होने की चेष्टा करते रहते हैं। ऐसा समझाते रहते हैं कि हम तो आत्मा हैं, मुक्त हैं। यह शरीर मैं नहीं हूं, यह संसार मैं नहीं हूं। ऐसा समझा-समझाकर, कोशिश कर-करके, चेष्टा से अपने को मुक्त मान लेते हैं। उनकी मुक्ति भी चेष्टित है।

चेष्टित कोई मुक्ति हो सकती है? जिसके लिए चेष्टा करना पड़े, वह मुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि चेष्टा तो बंधन बन जाती है। और जिसको सएहालना पड़े रोज-रोज, वह मुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि मुक्ति तो वही है जिसे सएहालना न पड़े, जो है ही।

नदी को नदी होने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। बादलों को आकाश में बादल होने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। आपके भीतर भी जो स्वभाव है, वह नदी और बादलों की तरह है। उसे होने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी है। और आप चेष्टा में लगे हैं।

इसलिए एक बहुत कीमती बात समझ लें।

जो दुनिया में परम ज्ञान के संदेशवाहक हुए हैं, उन्होंने कहा है कि वह जो परम ज्ञान है, चेष्टारहित है, एफर्टलेस है। उसमें कोई प्रयत्न नहीं है। उसमें कुछ भी किया कि गलती हो जाएगी। उसमें कुछ करना भर मत। करना बंद कर देना और कुछ मत करना। यह जो करने का जाल है, इसे छोड़ देना; और तुम न-करने में ठहर जाना।

यह कृष्ण यही कह रहे हैं कि वह जो पुरुष है, वह न तो कुछ करता है, न कुछ भोगता है। वह सिर्फ है। शुद्ध स्वभाव है।

उस पुरुष को ऐसे शुद्ध स्वभाव में जान लेना और समझना कि सब कुछ प्रकृति करती है और सब कुछ प्रकृति में होता है और मुझमें कुछ भी नहीं होता। मैं हूं निष्क्रिय; प्रकृति है सक्रिय। कर्म मात्र प्रकृति में हैं और मैं अकर्म हूं--ऐसी प्रतीति, ऐसा बोध, ऐसा इलहाम, ऐसा एहसास--फिर कोई बंधन नहीं है, फिर कोई संसार नहीं है।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, उस परम पुरुष को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं तथा अन्य कितने ही ज्ञान-योग के द्वारा देखते हैं। और अन्य कितने ही निष्काम कर्म-योग के द्वारा देखते हैं।

कृष्ण कहते हैं, वह जो परम पुरुष की स्थिति है, उस स्थिति को देखने के बहुत द्वार हैं। कुछ लोग शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा उसे हृदय में देखते हैं। शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा... ।

बुद्धि को सूक्ष्म और शुद्ध करने की प्रक्रियाएं हैं। बुद्धि साधारणतया स्थूल है। और स्थूल होने का कारण यह है कि स्थूल विषयों से बंधी है।

आप क्या सोचते हैं बुद्धि से? अगर आप अपने मन का विश्लेषण करें, तो आप पाएंगे कि आपके सोचने-विचारने में कोई पचास प्रतिशत से लेकर नब्बे प्रतिशत तो कामवासना का प्रभाव होता है। उसका अर्थ है, आप शरीरों के संबंध में सोचते हैं। पुरुष स्त्रियों के शरीर के संबंध में सोचता रहता है।

तो जब आप शरीर के संबंध में सोचते हैं, तो बुद्धि भी शरीर जैसी ही स्थूल हो जाती है। बुद्धि जो भी सोचती है, उसके साथ तत्सम हो जाती है।

अगर आप शरीरों के संबंध में कम सोचते हैं, कामवासना से कम ग्रसित हैं, तो धन के संबंध में सोचते हैं। मकानों, कारों के संबंध में सोचते हैं, जमीन-जायदाद के संबंध में सोचते हैं। वह भी सब स्थूल है। और उसमें भी बुद्धि वैसी ही हो जाती है, जो आप सोचते हैं। जो आप सोचते हैं, बुद्धि उसी का रूप ग्रहण कर लेती है। सोचते-सोचते, सोचते-सोचते बुद्धि वैसी ही हो जाती है।

ख्याल करें आप, आप जो भी सोचते हैं, क्या आपकी बुद्धि उसी तरह की नहीं हो गई है? एक चोर की बुद्धि चोर हो जाती है। एक कंजूस की बुद्धि कंजूस हो जाती है। एक हत्यारे की बुद्धि हत्या से भर जाती है। जो भी वह कर रहा है, सोच रहा है, चिंतन कर रहा है, मनन कर रहा है, वह धीरे-धीरे उसकी बुद्धि का रूप हो जाता है।

बुद्धि को सूक्ष्म करने का अर्थ है कि धीरे-धीरे स्थूल पदार्थों से बुद्धि को मुक्त करना है और उसे सूक्ष्म आब्जेक्ट, सूक्ष्म विषय देना है। जैसे कि आप सूरज को देखें, तो यह स्थूल है। फिर आप आंख बंद कर लें और सूरज का जो बिंब भीतर आंख में रह गया, निगेटिव, उस बिंब पर ध्यान करें। वह बिंब ज्यादा सूक्ष्म है। फिर आप बिंब पर ध्यान करते जाएं, ध्यान करते जाएं। आप पाएंगे कि बिंब थोड़ी देर में खो जाता है।

लेकिन अगर आप रोज ध्यान करेंगे, तो बिंब ज्यादा देर टिकने लगेगा। बिंब ज्यादा देर नहीं टिकता, आपकी बुद्धि सूक्ष्म हो जाती है, इसलिए आप ज्यादा देर तक उसे देख पाते हैं। रोज-रोज आप करेंगे, तो आप पाएंगे कि सूरज को देखने की जरूरत ही न रही, आप आंख बंद करते हैं और सूक्ष्म बिंब उपस्थित हो जाता है। अब आप इस बिंब को देखते रहते हैं, देखते रहते हैं।

पहले तो जब बुद्धि स्थूल रहेगी, तो बिंब फीका पड़ता जाएगा। और जब बुद्धि सूक्ष्म होने लगेगी, तो आप चकित होंगे। जैसे-जैसे आप भीतर देखेंगे, बिंब उतना ही तेजस्वी होने लगेगा।

जब बिंब पहले देखने में तो फीका लगे और फिर उसकी तेजस्विता बढ़ती जाए, तो समझना कि आपकी बुद्धि सूक्ष्म हो रही है। जब बिंब पहले तो तेजस्वी लगे और फिर धीरे-धीरे उसमें फीकापन आता जाए, तो समझना कि आपकी बुद्धि स्थूल है, सूक्ष्म को नहीं पकड़ पाती, इसलिए बिंब फीका होता जा रहा है।

कान से आवाज सुनते हैं आप। जितने जोर की आवाज हो, उतनी आसानी से सुनाई पड़ती है; जितनी धीमी आवाज हो, उतनी मुश्किल से सुनाई पड़ती है। जोर की आवाजें सुनते-सुनते आपकी सुनने की जो बुद्धि है, वह स्थूल हो गई है। कान कभी बंद कर लें और कभी भीतर की सूक्ष्म आवाजें सुनें। धीरे-धीरे भीतर आवाजों का एक नया जगत प्रकट होगा। एक ध्वनियों का जाल प्रकट हो जाएगा। और-और सुनते जाएं, और एक ही ध्यान रहे कि मैं सूक्ष्म से सूक्ष्म को सुनूं।

ऐसा करें कि बाजार में आप खड़े हैं। आंख बंद कर लें। जो तेज आवाज है, वह तो अपने आप सुनाई पड़ती है। बीच बाजार में सड़क पर खड़े होकर आंख बंद करके इन सारी आवाजों में जो सबसे सूक्ष्म आवाज है, उसे पकड़ने की कोशिश करें।

आप बहुत चकित होंगे कि जैसे ही आप सूक्ष्म को पकड़ने की कोशिश करेंगे, जो बड़ी आवाजें हैं, वे आपके ध्यान से अलग हो जाएंगी, फौरन हट जाएंगी; और सूक्ष्म आवाजें प्रकट होने लगेंगी। और आप कभी चकित भी हो सकते हैं कि एक पक्षी वृक्ष पर बोल रहा था, वह सड़क के ट्रैफिक और उपद्रव में अचानक आपको सुनाई पड़ने लगा। सारा ट्रैफिक जैसे दूर हो गया और पक्षी की धीमी आवाज प्रकट हो गई।

स्थूल आवाजों को छोड़कर सूक्ष्म को सुनने की कोशिश करें। उस मात्रा में आपकी बुद्धि सूक्ष्म होगी। फिर धीरे से कान को बंद करके भीतर की आवाजें सुनें। जब ऐसे-ऐसे कोई उतरता जाता है, तो आखिरी जो सूक्ष्मतम आवाज है, नाद है भीतर, ओंकार की ध्वनि, वह सुनाई पड़नी शुरू होती है। जिस दिन वह सुनाई पड़ने लगे, समझना आपके पास शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि पैदा हो गई। नाद सुनाई पड़ने लगे, तो वह पहचान है कि आपके भीतर शुद्ध बुद्धि पैदा हो गई।

इसलिए हम अपने विद्यालयों में इस मुल्क में पहला काम यह करते थे... । अभी हम उलटे काम में लगे हैं। अभी हम सारी दुनिया में शिक्षा देते हैं, वे सभी स्थूल हैं। इस देश में हम इस बात की फिक्र किए थे कि विद्यार्थी जब गुरुकुल में मौजूद हो, तो पहला काम उसकी बुद्धि को सूक्ष्म करने का। जब तक उसके पास सूक्ष्म बुद्धि नहीं है, तब तक क्या होगा? उसके पास स्थूल बुद्धि है, हम स्थूल शिक्षा उसे दे सकते हैं। वह शिक्षित भी हो जाएगा, पंडित भी हो जाएगा, लेकिन ज्ञानी कभी भी नहीं हो पाएगा। पहले उसकी इस बुद्धि को स्थूल से सूक्ष्म करना है; पहले उसके उपकरण को निखार लेना है।

अभी हम विद्यार्थियों को भेज देते हैं विद्यालय में। और विद्यालय में शिक्षक उन पर हमला बोल देते हैं, सिखाना शुरू कर देते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि सीखने का जो उपकरण है, वह अभी सूक्ष्म भी हुआ था या नहीं; अभी उसमें धार भी आई थी या नहीं। अभी वह स्थूल ही है; उस स्थूल पर हम फेंकना शुरू कर देते हैं चीजें, और भी स्थूल हो जाता है।

इसलिए विश्वविद्यालय से निकलते-निकलते बुद्धि करीब-करीब कुंठित हो जाती है। बुद्धि लेकर नहीं लौटते हैं विद्यार्थी विश्वविद्यालय से, खोकर लौटते हैं। हां, कुछ तथ्य याद करके, स्मृति भरकर लौट आते हैं। परीक्षा दे सकते हैं। लेकिन बुद्धिमत्ता नाम-मात्र को भी नहीं दिखाई पड़ती।

तो आज अगर सारे विश्वविद्यालयों में उपद्रव हैं सारी दुनिया में, तो उसका कारण, बुनियादी कारण यह है कि आप उनसे बुद्धिमत्ता तो छीन लिए हैं और केवल स्मृति उनको दे दिए हैं। स्मृति का उपद्रव है। बुद्धिमत्ता बिल्कुल, विजडम बिल्कुल भी नहीं है।

और बुद्धिमत्ता पैदा होती है बुद्धि की सूक्ष्मता से। कितना आप जानते हैं, इससे नहीं। क्या आप जानते हैं, इससे भी नहीं। कितनी परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं, इससे भी नहीं। कितनी पीएचड़ी. और डी.लिट. आपके पास हैं, इससे भी नहीं। बुद्धिमत्ता उपलब्ध होती है, कितनी सूक्ष्म बुद्धि आपके पास है, उससे।

इसलिए यह भी हो सकता है कि कभी कोई बिल्कुल अपढ़ आदमी भी बुद्धि की सूक्ष्मता को उपलब्ध हो जाए। और यह तो अक्सर होता है कि बहुत पढ़े-लिखे आदमी बुद्धि की सूक्ष्मता को उपलब्ध होते दिखाई नहीं पड़ते हैं। पंडित में और बुद्धि की सूक्ष्मता पानी जरा मुश्किल है। बहुत कठिन है। जरा मुश्किल संयोग है। कभी-कभी गांव के ग्रामीण में, चरवाहे में भी कभी-कभी बुद्धिमत्ता की झलक दिखाई पड़ती है। उसके पास बुद्धि का संग्रह नहीं है। लेकिन एक सूक्ष्म बुद्धि हो सकती है।

इसलिए कबीर जैसा गैर पढ़ा-लिखा आदमी भी परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है।

परम ज्ञान का संबंध, आपके पास कितनी संपदा है स्मृति की, इससे नहीं है। परम ज्ञान का संबंध इससे है, आपके पास कितने सूक्ष्मतम को पकड़ने की क्षमता है। आप कितने ग्राहक, कितने रिसेप्टिव हैं। कितनी बारीक ध्वनि आप पकड़ सकते हैं, और कितना बारीक स्पर्श, कितना बारीक स्वाद, कितनी बारीक गंध... । क्योंकि भीतर सब बारीक है। बाहर सब स्थूल है, भीतर सब सूक्ष्म है। जब भीतर के जगत को अनुभव करना हो, तो सूक्ष्मता और शुद्धि की जरूरत है।

कृष्ण कहते हैं, शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं... ।

जब किसी के पास भीतर सूक्ष्म बुद्धि होती है, तो हृदय की तरफ उसे मोड़ दिया जाता है। वह बहुत कठिन नहीं है। पर सूक्ष्म बुद्धि का होना पहले जरूरी है।

करीब-करीब जैसे आपके पास एक दूरवीक्षण यंत्र हो, आप उसे लगाकर आंख में और किसी भी तारे की तरफ मोड़ दे सकते हैं। फिर जिस तरफ आप मोड़ेंगे, वही तारा प्रगाढ़ होकर प्रकट हो जाएगा। ठीक वैसे ही जब सूक्ष्म बुद्धि भीतर होती है, तो एक रास्ता है उसे हृदय की तरफ मोड़ देना, उस सूक्ष्म बुद्धि को हृदय पर लगा देना ध्यानपूर्वक, तो उस हृदय के मंदिर में परमात्मा का आविष्कार कर लेते हैं।

कितने ही अन्य उसे ज्ञान-योग के द्वारा देखते हैं... ।

यह हृदय की तरफ लगा देना भक्ति-योग है। हृदय भक्ति का केंद्र है, प्रेम का। तो जब सूक्ष्म हुई बुद्धि को कोई प्रेम के केंद्र हृदय की तरफ लगा देता है, तो मीरा का, चैतन्य का जन्म हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, कितने ही उसे ज्ञान-योग के द्वारा... ।

वही सूक्ष्म बुद्धि है, लेकिन उसे हृदय की तरफ न लगाकर मस्तिष्क का जो आखिरी केंद्र है, सहस्रार, उसकी तरफ मोड़ देना। तो सहस्रार में जो परमात्मा का दर्शन करते हैं, वह ज्ञान-योग है।

और कितने ही निष्काम कर्म-योग के द्वारा देखते हैं... ।

कितने ही अपनी उस सूक्ष्म हुई बुद्धि को अपने कर्म-धारा की तरफ लगा देते हैं। वे जो करते हैं, उस करने में उस सूक्ष्म बुद्धि को समाविष्ट कर देते हैं। तो करने से मुक्त हो जाते हैं, कर्ता नहीं रह जाते।

ये तीन मार्ग हैं, भक्ति, ज्ञान, कर्म। भक्ति उत्पन्न होती है हृदय से। जो बुद्धि है, वह तो एक ही है; जो उपकरण है, वह तो एक ही है। उसी एक उपकरण को हृदय की तरफ बहा देने से भक्त जन्म जाता है। उसी उपकरण को सहस्रार की तरफ बहा देने से ज्ञानी का जन्म हो जाता है, बुद्ध पैदा होते हैं, महावीर पैदा होते हैं। और उसी को कर्म की तरफ लगा देने से क्राइस्ट पैदा होते हैं, मोहएमद पैदा होते हैं।

मोहएमद और क्राइस्ट न तो भक्त हैं और न ज्ञानी हैं, शुद्ध कर्म-योगी हैं। इसलिए हम सोच भी नहीं सकते, जो लोग ज्ञान-योग की धारा में बहते हैं, वे सोच ही नहीं सकते कि मोहएमद को तलवार लेकर और युद्धों में जाने की क्या जरूरत! हम सोच भी नहीं सकते कि क्राइस्ट को सूली पर लटकने की क्या जरूरत! उपद्रव में पड़ने की क्या जरूरत!

क्रांति इत्यादि तो सब उपद्रव हैं। ये तो उपद्रवियों के लिए हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध कोई बगावत कर रहे हैं और सूली पर लटकाए जा रहे हैं। क्योंकि बुद्ध ज्ञान-योगी हैं। वे अपने सहस्रार की तरफ शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि को मोड़ रहे हैं। क्राइस्ट अपने कर्म की धारा की तरफ।

इसलिए ईसाइयत की सारी धारा कर्म की तरफ हो गई है। इसलिए सेवा धर्म बन गया। इसलिए ईसाई मिशनरी जैसी सेवा कर सकता है, दुनिया के किसी धर्म का कोई मिशनरी वैसी सेवा नहीं कर सकता। उसके कारण बहुत गहरे हैं। उसमें कोई कितनी ही नकल करे... ।

यहां हिंदुओं के बहुत-से समूह हैं, जो नकल करने की कोशिश करते हैं। पर वह नकल ही साबित होती है। क्योंकि वह उनकी मूल धारा नहीं है। क्राइस्ट की पूरी साधना सूक्ष्म हुई बुद्धि को कर्म की तरफ लगाने की है। फिर कर्म ही सब कुछ है। फिर वही पूजा है, वही प्रार्थना है।

इसलिए एक ईसाई फकीर कोढ़ी के पास जिस प्रेम से बैठकर सेवा कर सकता है, कोई हिंदू संन्यासी नहीं कर सकता। कोई जैन संन्यासी तो पास ही नहीं आ सकता, करने की तो बात बहुत दूर। कोढ़ी के पास! वह सोच

ही नहीं सकता। वह अपने मन में सोचेगा, ऐसे हमने कोई पाप कर्म ही नहीं किए, जो कोढ़ी की सेवा करें। कोढ़ी की सेवा तो वह करे, जिसने कोई पाप कर्म किए हों। हमने ऐसे कोई पाप कर्म नहीं किए हैं।

हिंदू संन्यासी सोच ही नहीं सकता सेवा की बात, क्योंकि हिंदू संन्यासी को ख्याल ही यह है कि संन्यासी की सेवा दूसरे लोग करते हैं। संन्यासी किसी की सेवा करता है! यह क्या पागलपन की बात है कि संन्यासी किसी के पैर दबाए। संन्यासी के सब लोग पैर दबाते हैं।

उसकी भी गलती नहीं है, क्योंकि वह जिस धारा से निष्पन्न हुआ है, वह ज्ञान-योग की धारा है। उसका कर्म से कोई लेना नहीं है; उसका सहस्रार से संबंध है। वह अपनी सारी चेतना को सहस्रार की तरफ मोड़ लेता है। और जब कोई अपनी सारी चेतना को सहस्रार की तरफ मोड़ लेता है, तो स्वभावतः दूसरों को उसकी सेवा करनी पड़ती है, क्योंकि वह बिल्कुल ही बेहाल हो जाता है। न उसे भोजन की फिक्र है, न उसे शरीर की फिक्र है। दूसरे उसकी सेवा करते हैं। इसलिए हमने संन्यासियों की सेवा की, क्योंकि वे समाधि में जा रहे थे।

रामकृष्ण मूर्च्छित पड़े रहते थे छः-छः दिन तक। दूसरे उनकी सेवा करते थे। छः दिन तक उनको दूध पिलाना पड़ता, पानी पिलाना पड़ता। वे मूर्च्छित ही पड़े हैं। वे डूब गए हैं अपने केंद्र में; वहां से लौटने के लिए शरीर को सएहालना पड़ेगा। नहीं तो वे खतम ही हो जाएंगे; शरीर सड़ जाएगा।

तो संन्यासी की हमने सेवा की, क्योंकि संन्यासी या तो ज्ञान या भक्ति की तरफ मुड़ा हुआ था। क्राइस्ट ने धारा मोड़ दी कर्म की तरफ।

कृष्ण कहते हैं, कोई कर्म की तरफ, निष्काम कर्म-योग के द्वारा परमात्मा को देख लेते हैं।

निष्काम कर्म-योग के द्वारा परमात्मा दूसरों में दिखाई पड़ेगा। निष्काम कर्म-योग के द्वारा परमात्मा चारों तरफ दिखाई पड़ने लगेगा। जिसकी भी आप सेवा करेंगे, वहीं परमात्मा दिखाई पड़ने लगेगा। क्योंकि वह सूक्ष्म यंत्र जो बुद्धि का है, अब उस पर लग गया।

एक बात सार की है कि शुद्ध हुई बुद्धि को जहां भी लगा दें, वहां परमात्मा दिखाई पड़ेगा। और अशुद्ध बुद्धि को जहां भी लगा दें, वहां सिवाय पदार्थ के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ सकता है।

परंतु इससे दूसरे अर्थात जो मंद बुद्धि वाले पुरुष हैं, वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए दूसरों से अर्थात तत्व को जानने वाले पुरुषों से सुनकर ही उपासना करते हैं और वे सुनने के परायण हुए भी मृत्युरूप संसार-सागर को निस्संदेह तर जाते हैं।

लेकिन ये तीन बड़ी प्रखर यात्राएं हैं; ज्ञान की, भक्ति की, कर्म की, ये बड़ी प्रखर यात्राएं हैं। और कोई बहुत ही जीवट के पुरुष इन पर चल पाते हैं। सभी लोग इतनी प्रगाढ़ता से, इतनी प्रखरता से, इतनी त्वरा और तीव्रता से, इतनी बेचैनी, इतनी अभीप्सा से नहीं चल पाते हैं। उनके लिए क्या मार्ग है?

तो कृष्ण कहते हैं, अर्थात वे दूसरे भी इस प्रकार न जानते हुए, दूसरों से, जिन्होंने जाना है, उनसे सुनकर भी उपासना करते हैं और सुनने में परायण हुए मृत्युरूप संसार-सागर को निस्संदेह तर जाते हैं।

इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। क्योंकि हममें से अधिक लोग उन तीन कोटियों में नहीं आएंगे। हममें से अधिक लोग इस चौथी कोटि में आएंगे, जो तीनों में से किसी पर भी जा नहीं सकते, जो तीनों में से किसी पर जाने की अभी अभीप्सा भी अनुभव नहीं करते हैं। लेकिन वे भी, जिन्होंने जाना है, अगर उनकी बात सुन लें--वह भी आसान नहीं है--जिन्होंने जाना है, उनकी बात सुन लें; और उनकी बात सुनकर उसमें परायण हुए, उसमें डूब जाएं, लीन हो जाएं, उससे उनकी उपासना का जन्म हो जाए, तो वे भी मृत्यु के सागर को तर जाते हैं, अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं।

मगर कई शर्तें हैं। पहली शर्त, जिन्होंने जाना है, उनसे सुनें, फर्स्ट हैंड। जिन्होंने जाना है! अगर आप खुद जान लें मौलिक रूप से स्वयं, तब तो ठीक है, वे तीन रास्ते हैं। अगर यह संभव न हो, तो जिन्होंने जाना है, उनसे सीधा सुनें। शास्त्र काम न देंगे, कोई गुरु उपयोगी होगा। जिसने जाना हो, उससे सीधा सुनें। क्योंकि अभी उससे जो शब्द निकलेंगे, उसका जो स्पर्श होगा, उसकी जो वाणी होगी, उसमें ताजी हवा होगी उसके अपने अनुभव की। इसलिए शास्त्र पर कम जोर और गुरु पर ज्यादा जोर है।

अधिक लोगों के लिए, चौथा मार्ग जिनका होगा, उनके लिए गुरु रास्ता है। और शास्त्र का अर्थ भी गुरु के द्वारा ही खुलेगा। क्योंकि शास्त्र तो कोई हजार साल, दस हजार साल पहले लिखा गया है। दस हजार साल पहले जो कहा गया है, उसमें बहुत कुछ जोड़ा गया, घटाया गया; दस हजार साल की यात्रा में बहुत कचरा भी इकट्ठा हो गया, धूल भी जम गई। वह जो अनुभव था दस हजार साल पहले का शुद्ध, वह अब शुद्ध नहीं है, वह बहुत बासा हो गया है।

फिर किसी व्यक्ति के पास जाएं, जिसमें अभी आग जल रही हो, जो अभी जिंदा हो, अपने अनुभव से दीप्त हो; जिसके रोएं-रोएं में अभी खबर हो; जिसने अभी-अभी जाना और जीया हो सत्य को; जो अभी-अभी परमात्मा से मिला हो; जिसके भीतर पुरुष ठहर गया हो और जिसका शरीर और जिसका संसार अब केवल एक अभिनय रह गया हो; अब उसके पास बैठकर सुनें।

उपासना का अर्थ है, पास बैठना। उपासना शब्द का अर्थ है, पास बैठना। उपनिषद शब्द का अर्थ है, पास बैठकर सुनना। ये शब्द बड़े कीमती हैं, उपासना, उपदेश, उपनिषद। पास बैठकर। किसके पास? कोई जीवंत अनुभव जहां हो--सुनना। सुनना भी बहुत कठिन है, क्योंकि पास बैठने में पात्रता बनानी पड़ेगी। अगर जरा-सा भी अहंकार है, तो आप पास बैठकर भी बहुत दूर हो जाएंगे।

गुरु के पास बैठना हो तो अहंकार बिल्कुल नहीं चाहिए, क्योंकि वही फासला है। स्थान का कोई फासला नहीं है गुरु के और तुएहारे बीच, फासला तुएहारे अहंकार का है। लोग सीखने भी आते हैं, तो बड़ी अकड़ से आते हैं। लोग सीखने भी आते हैं, तो भी आते नहीं हैं। उनको ख्याल होता है कि आते हैं।

यहां ऐसा हुआ। एक बहुत बड़े करोड़पति परिवार में, भारत के सबसे बड़े करोड़पति परिवार में किसी की मृत्यु हुई। तो मुझे उन्होंने खबर भेजी कि आप हमारे यहां आएं; हमारे घर में मृत्यु घटित हो गई है, तो आप कुछ अमृत के संबंध में हमें समझाएं। तो मैंने उन्हें कहा, समझना तुएहें हो, तो तुएहें मेरे पास आना होगा। उन्होंने मुझे खबर भेजी, लेकिन आप ऐसा क्यों कहते हैं! क्योंकि और सब गुरु तो आ रहे हैं। और हम हजार रुपया प्रत्येक को भेंट भी करते हैं।

तो वे अमृत को हजार रुपए में खरीदने का इरादा रखते हैं। या अमृत के संबंध में हजार रुपए में उनको कोई बता देगा, ऐसा ख्याल रखते हैं। और जो उन्हें वहां बताने जा रहा है, उसे भी अमृत से कोई मतलब नहीं है; उसे भी हजार रुपए से ही मतलब होगा।

असल में गुरु आपके पास नहीं आ सकता। इसलिए नहीं कि इसमें कोई अड़चन है, बल्कि इसलिए कि आने में बात ही व्यर्थ हो गई। कोई अर्थ ही न रहा। आपको ही उसके पास जाना पड़ेगा। क्योंकि जाना केवल कोई भौतिक प्रक्रिया नहीं है; जाना भीतर के अहंकार का सवाल है।

वे हैं करोड़पति, अरबपति, तो कैसे वे किसी के पास जा सकते हैं! अगर कैसे किसी के पास जा सकते हैं और सभी उनके पास आते हैं, तो एक बात पक्की है कि वे गुरु के पास कभी नहीं पहुंच सकते हैं। और जो

तथाकथित गुरु उनके पास पहुंचते हैं, वे गुरु नहीं हो सकते। क्योंकि पहुंचने का जो संबंध है, वह शिष्य को ही शुरू करना पड़ेगा; उसे ही निकटता लानी पड़ेगी, उसे ही पात्र बनना पड़ेगा।

नदी घड़े के पास नहीं आती, घड़े को ही नदी के पास जाना पड़ेगा। और घड़े को ही झुकना पड़ेगा नदी में, तो ही नदी घड़े को भर सकेगी। नदी तैयार है भरने को। लेकिन घड़ा कहे कि मैं अकड़कर अपनी जगह बैठा हूं, मैं झुकूंगा नहीं; नदी आए और मुझे भर दे और मैं हजार रुपए भेंट करूंगा! तो नदी नहीं आ सकती। हां, कोई नल की टोंटी आ सकती है। पर नल की टोंटियों में और नदियों में बड़ा फर्क है। कोई पंडित आ सकता है, कोई गुरु नहीं आ सकता।

तो पास पहुंचना एक कला है। विनम्रता, निरअहंकार भाव, सीखने की तैयारी, सीखने की उत्सुकता, सीखने में बाधा न डालना। फिर सुने। क्योंकि सुनना भी बहुत कठिन है। क्योंकि जब आप सुनते भी हैं, तब भी सुनते कम हैं, सोचते ज्यादा हैं।

सोचेंगे आप क्या? जब आप सुन रहे हैं, तब भी आप सोच रहे हैं कि अच्छा, यह अपने मतलब की बात है? यह अपने संप्रदाय की है? अपने शास्त्र में ऐसा लिखा है कि नहीं?

अब जिन मित्र ने यह सवाल पूछा है कि महावीर और बुद्ध ने अहिंसा की बात की और कृष्ण तो हिंसा की बात कर रहे हैं, इनको कैसे भगवान मानें, वे यहां बैठे हैं। वे बिल्कुल नहीं सुन पा रहे होंगे। उनके प्राण बड़े बेचैन होंगे कि बड़ी मुसीबत हो गई। वे सुन ही नहीं सकते। क्योंकि सुनते समय उनके भीतर तौल चल रही है, कौन भगवान है? कृष्ण भगवान हैं कि नहीं? क्योंकि वे हिंसा की बात कह रहे हैं। कैसे भगवान हो सकते हैं!

तुमसे पूछ कौन रहा है? तुएहारा मत मांगा भी नहीं गया है। और कृष्ण कोई तुएहारे वोट के कारण भगवान होने को नहीं हैं। तुम चिंता क्यों कर रहे हो? तुम वोट नहीं दोगे, तो वे भगवान नहीं रह जाएंगे, ऐसा कुछ नहीं है। दुनिया में सब लोग इनकार कर दें, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। और सब लोग स्वीकार कर लें, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण के होने में कोई अंतर नहीं आता इसके कि कौन क्या मानता है। वह तुएहारी अपनी झंझट है। उससे उनका कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन तुम परेशान हो।

अब उन्होंने अहिंसा की बात नहीं कही, हिंसा की बात कही; तुम अपने अहिंसा के सिद्धांत को पकड़े बैठे हो। वह सिद्धांत तुएहें सुनने न देगा। वह सिद्धांत बीच में दीवाल बन जाएगा। उस सिद्धांत की वजह से, जो कहा जा रहा है, उसके तुम कुछ और मतलब निकालोगे, जो कहे ही नहीं गए हैं। तुम सब विकृत कर लोगे। तुम अपनी बुद्धि को बीच में डाल दोगे और गुरु ने जो कहा है, उस सब को नष्ट कर दोगे।

पास बैठना चुप होकर, मौन होकर! इसलिए बहुत बार पुरानी परंपरा तो यही थी कि शिष्य गुरु के पास जाए, तो साल दो साल कुछ पूछे न; सिर्फ चुप बैठे; सिर्फ बैठना सीखे। बैठना सीखे।

सूफियों में कहा जाता है कि पहले बैठना सीखो। गुरु के पास आओ, बैठना सीखो, आना सीखो। अभी जल्दी कुछ ज्ञान की नहीं है। ज्ञान कोई इतनी आसान बात भी नहीं है कि लिया-दिया और घर की तरफ भागे। कोई इंसटैंट एनलाइटेनमेंट नहीं है। काफी हो सकती है, बनाई एक क्षण में और पी ली! कोई समाधि, कोई ज्ञान क्षण में नहीं होता। सीखना होगा।

सूफी अक्सर सालों बिता देते हैं; सिर्फ गुरु के पास झुककर बैठे रहते हैं। प्रतीक्षा करते हैं कि गुरु पहले पूछे कि कैसे आए? क्या चाहते हो? कभी-कभी वर्षों बीत जाते हैं। वर्षों कोई साधक रोज आता है नियम से, अपनी जगह आंख बंद करके शांत बैठ जाता है। गुरु को कभी लगता है, तो कुछ कहता है। नहीं लगता, तो नहीं कहता। दूसरे आने-जाने वाले लोगों से बात करता रहता है, शिष्य बैठा रहता है।

वर्षों सिर्फ बैठना होता है। जिस दिन गुरु देखता है कि बैठक जम गई। सच में शिष्य आ गया और बैठ गया। अब उसके भीतर कुछ भी नहीं है। उपासना हो गई।

अब वह बैठा है। सिर्फ पास है, जस्ट नियर। अब कुछ दूरी नहीं है, न अहंकार की, न विचारों की, न मत-मतांतर की, न वाद-विवाद की, न कोई शास्त्र की। अब कुछ नहीं है। बस, सिर्फ बैठा है। जैसे एक मूर्ति रह गई, जिसके भीतर अब कुछ नहीं है, बाहर कुछ नहीं है। अब खाली घड़े की तरह बैठा है। उस दिन गुरु डाल देता है जो उसे डालना है, जो कहना है। उस दिन उंडेल देता है अपने को। उस दिन नदी उतर जाती है घड़े में।

चौथे मार्ग पर बैठना सीखना होगा, मौन होना सीखना होगा, प्रतीक्षा सीखनी होगी, धैर्य सीखना होगा; और किसी जीवित गुरु की तलाश करनी होगी।

ऐसे सुनने के परायण हुए भी मृत्युरूप संसार-सागर को निस्संदेह तर जाते हैं। हे अर्जुन, यावन्मात्र जो कुछ भी स्थावर- जंगम वस्तु उत्पन्न होती है, उस संपूर्ण को तू क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न जान।

सभी विचार के पीछे कृष्ण बार-बार दोहरा देते हैं, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। वह जानने वाला और जो जाना जाता है वह। इन दो को वे बार-बार दोहरा देते हैं। कि जो भी पैदा होता है, वह सब क्षेत्र है। बनता है, मिटता है, वह सब क्षेत्र है। और वह जो न बनता है, न मिटता है, न पैदा होता है, जो सिर्फ देखता है, जो सिर्फ दर्शन मात्र की शुद्ध क्षमता है, जो केवल ज्ञान है, जो मात्र बोध है, जो प्योर कांशसनेस है, जो शुद्ध चित्त है--वही पुरुष है, वही परम मुक्ति है।

एक मित्र ने पूछा है कि कृष्ण बहुत बार पुनरुक्ति करते मालूम होते हैं गीता में। फिर वही बात, फिर वही बात, फिर वही बात। ऐसा क्यों है? क्या लिपिबद्ध करने वाले आदमी ने भूल की है? या कि कृष्ण जानकर ही पुनरुक्ति करते हैं? या कि अर्जुन बहुत मंद बुद्धि है कि बार-बार कहो, तभी उसकी समझ में आता है? या कृष्ण भूल जाते हैं बार-बार, फिर वही बात कहने लगते हैं?

विचारणीय है। ऐसा कृष्ण के साथ ही नहीं है। बुद्ध भी ऐसा ही बार-बार दोहराते हैं। क्राइस्ट भी ऐसा ही बार-बार दोहराते हैं। मोहएमद भी ऐसा ही बार-बार दोहराते हैं। इस दोहराने में जरूर कुछ बात है।

यह सिर्फ पुनरुक्ति नहीं है। यह एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को समझ लेना चाहिए, नहीं तो पुनरुक्ति समझकर आदमी सोचता है कि क्या जरूरत! गीता को छांटकर एक पन्ने में छापा जा सकता है। मतलब की बातें उतने में आ जाएंगी, क्योंकि उन्हीं-उन्हीं बातों को वे बार-बार दोहराए चले जा रहे हैं।

मतलब की बातें तो उसमें आ जाएंगी, लेकिन वे मुर्दा होंगी और उनका कोई परिणाम न होगा। कई बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

एक, जब कृष्ण उन्हीं बातों को दुबारा दोहराते हैं, तब आपको पता नहीं कि शब्द भला वही हों, प्रयोजन भिन्न हैं। और प्रयोजन इसलिए भिन्न हैं कि इतना समझ लेने के बाद अर्जुन भिन्न हो गया है। जो बात उन्होंने शुरू में कही थी अर्जुन से, वही जब वे बहुत देर समझाने के बाद फिर से कहते हैं, तो अर्जुन अब वही नहीं है। इस बीच उसकी समझ बढ़ी है, उसकी प्रज्ञा निखरी है। अब यही शब्द दूसरा अर्थ ले आएंगे।

आप अगर इसकी परीक्षा करना चाहें, तो ऐसा करें, कोई एक किताब चुन लें जो आपको पसंद हो। उसको इस वर्ष पढ़ें और अंडरलाइन कर दें। जो-जो आपको अच्छा लगे उसमें, उसको लाल स्याही से निशान लगा दें। और जो-जो आपको बुरा लगे, उसको नीली स्याही से निशान लगा दें। और जो-जो आपको उपेक्षा योग्य लगे, उसको काली स्याही से निशान लगा दें।

सालभर किताब को बंद करके रख दें। सालभर बाद फिर खोलें, फिर से पढ़ें। अब जो पसंद आए उसको लाल स्याही से निशान लगाएं। आप हैरान हो जाएंगे। जो बात पिछले साल इसी किताब में आपको पसंद नहीं पड़ी थीं, वे अब पसंद पड़ती हैं। और जो बात पसंद पड़ी थी, वह अब पसंद नहीं पड़ती। जिसकी आपने उपेक्षा की थी पिछले साल, इस बार बहुत महत्वपूर्ण मालूम हो रही है। और जिसको आपने असाधारण समझा था, वह साधारण हो गई है। जिसको आपने नापसंद किया था, उसमें से भी कुछ पसंद आया है। और जिसको आपने पसंद किया था, उसमें से बहुत कुछ नापसंदगी में डाल देने योग्य है। किताब वही है, आप बदल गए।

और अगर सालभर बाद आपको सब वैसा ही लगे, जैसा सालभर पहले लगा था, तो समझना कि आपकी बुद्धि सालभर पहले ही कुंठित हो गई है; बदल नहीं रही है; मर गई है। उसमें कोई बहाव नहीं रहा है।

सालभर बाद फिर उसी किताब को पढ़ना, आप चकित होंगे, नए शब्द अर्थपूर्ण हो जाते हैं; नए वाक्य उभरकर सामने आ जाते हैं; पुराने खो जाते हैं। किताब का पूरा प्रयोजन बदल जाता है। किताब का पूरा अर्थ बदल जाता है।

इसलिए हमने इस मुल्क में पाठ पर बहुत जोर दिया, पढ़ने पर कम। पढ़ने का मतलब एक दफा एक किताब पढ़ ली, खतम हो गया। पाठ का मतलब है, एक किताब को पढ़ते ही जाना है जीवनभर। रोज नियमित पढ़ते जाना है।

लेकिन आप अगर मुर्दे की तरह पढ़ें, तो कोई सार नहीं है। पढ़ने में इतना बोध होना चाहिए कि आप में जो फर्क हुआ है, उस फर्क के कारण जो आप पढ़ रहे हैं, उसमें फर्क पड़ रहा है कि नहीं! तो पाठ है।

गीता कल भी पढ़ी थी, आज भी पढ़ी, कल भी पढ़ेंगे, अगले वर्ष भी पढ़ेंगे, पढ़ते जाएंगे। जब बच्चे थे, तब पढ़ी थी; जब बूढ़े होंगे, तब पढ़ेंगे। लेकिन बूढ़ा अगर सच में ही विकसित हुआ हो, प्रौढ़ हुआ हो, सिर्फ शरीर की उम्र न बढ़ी हो, भीतर चेतना ने भी अनुभव का रस लिया हो, जागृति आई हो, पुरुष स्थापित हुआ हो, तो गीता जो बुढ़ापे में पढ़ी जाएगी, उसके अर्थ बड़े और हो जाएंगे।

तो कृष्ण जब बार-बार दोहराते हैं, तो वह अर्जुन जितना बदलता है, उस हिसाब से दोहराते हैं। वे उन्हीं शब्दों को दोहरा रहे हैं, जो उन्होंने पहले भी कहे थे। लेकिन उनका अर्थ अर्जुन के लिए अब दूसरा है।

दूसरी बात। जो भी महत्वपूर्ण है, उसे बार-बार चोट करना जरूरी है। क्योंकि आपका मन इतना मुश्किल में पड़ा है, सुनता ही नहीं; उसमें कुछ प्रवेश नहीं करता। उसमें बार-बार चोट की जरूरत है। उसमें हथौड़ी की तरह हैमरिंग की जरूरत है। तो जो मूल्यवान है, जैसे कोई गीत की कड़ी दोहरती है, ऐसा जो मूल्यवान है, कृष्ण उसको फिर से दोहराते हैं। वे यह कह रहे हैं कि फिर से एक चोट करते हैं। और कोई नहीं जानता, किस कोमल क्षण में वह चोट काम कर जाएगी और कील भीतर सरक जाएगी। इसलिए बहुत बार दोहराते हैं, बहुत बार चोट करते हैं।

इसलिए भी बार-बार दोहराते हैं कि जीवन का जो सत्य है, वह तो एक ही है। उसको कहने के ढंग कितने ही हों, जो कहना चाहते हैं, वह तो एक बहुत छोटी-सी बात है। उसे तो एक शब्द में भी कहा जा सकता है। लेकिन एक शब्द में आप न समझ सकेंगे। इसलिए बहुत शब्दों में कहते हैं। बहुत फैलाव करते हैं। शायद इस बहाने समझ जाएं। इस बहाने न समझें, तो दूसरे बहाने समझ जाएं। दूसरे बहाने न समझें, तो तीसरा सही। बहुत रास्ते खोजते हैं, बहुत मार्ग खोजते हैं।

घटना तो एक ही घटानी है। और वह घटना सिर्फ इतनी ही है कि आप साक्षी हो जाएं। आप जागकर देख लें जगत को। मूर्च्छा टूट जाए। आपको यह ख्याल में आ जाए कि मैं जानने वाला हूं। और जो भी मैं जान रहा हूं, वह मैं नहीं हूं।

यह इतनी-सी घटना घट जाए, इसके लिए सारा आयोजन है। इसके लिए इतने उपनिषद हैं, इतने वेद हैं, इतनी बाइबिल, कुरान, गीता, और सब है। बुद्ध हैं, महावीर, जरथुस्त्र और मोहएमद, और सारे लोग हैं। लेकिन वे कह सभी एक बात रहे हैं, बहुत-बहुत ढंगों से, बहुत-बहुत व्यवस्थाओं से।

वह एक बात मूल्यवान है। लेकिन आपको अगर वह बात सीधी कह दी जाए, तो आपको सुनाई ही नहीं पड़ेगी। और मूल्य तो बिल्कुल पता नहीं चलेगा।

आपको बहुत तरह से प्रलोभित करना होता है। जैसे मां छोटे बच्चे को प्रलोभित करती है, भोजन के लिए राजी करती है। राजी करना है भोजन के लिए, प्रलोभन बहुत तरह के देती है। बहुत तरह की बातें, बहुत तरह की कहानियां गढ़ती है। और तब बच्चे को राजी कर लेती है। कल वह दूसरे तरह की कहानियां गढ़ेगी, परसों तीसरे तरह की कहानियां गढ़ेगी। लेकिन प्रयोजन एक है कि वह बच्चा राजी हो जाए भोजन के लिए।

कृष्ण का प्रयोजन एक है। वे अर्जुन को राजी करना चाहते हैं उस परम क्रांति के लिए। इसलिए सब तरह की बातें करते हैं और फिर मूल स्वर पर लौट आते हैं। और फिर वे वही दोहराते हैं। इसके अंत में भी उन्होंने वही दोहराया है।

हे अर्जुन, जो कुछ भी स्थावर-जंगम वस्तु उत्पन्न होती है, उस संपूर्ण को तू क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न हुई जान।

वह जो भीतर क्षेत्रज्ञ बैठा है और बाहर क्षेत्र फैला है, उन दोनों के संयोग से ही सारे मन का जगत है। सारे सुख, सारे दुख; प्रीति- अप्रीति, सौंदर्य-कुरूपता, अच्छा-बुरा, सफलता-असफलता, यश-अपयश, वे सब इन दो के जोड़ हैं। और इन दो के जोड़ में वह पुरुष ही अपनी भावना से जुड़ता है। प्रकृति के पास कोई भावना नहीं है। तू अपनी भावना खींच ले, जोड़ टूट जाएगा। तू भावना करना बंद कर दे, परम मुक्ति तेरी है।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई बीच से उठे नहीं। कीर्तन पूरा हो जाए, तभी उठें।

दसवां प्रवचन

कौन है आंख वाला

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 27।।
समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।। 28।।
प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।। 29।।
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। 30।।

इस प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है।

क्योंकि वह पुरुष सब में समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ, अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता है, इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

और जो पुरुष संपूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किए हुए देखता है तथा आत्मा को अकर्ता देखता है, वही देखता है।

और यह पुरुष जिस काल में भूतों के न्यारे-न्यारे भाव को एक परमात्मा के संकल्प के आधार स्थित देखता है तथा उस परमात्मा के संकल्प से ही संपूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उस काल में सच्चिदानंदघन ब्रह्म को प्राप्त होता है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि प्रायः लोग ऐसा सोचते हैं कि योग या अध्यात्म की ओर वे ही झुकते हैं, जो मस्तिष्क के विकार से ग्रस्त हैं, भावुक हैं या जीवन की कठिनाइयों से संत्रस्त हैं। प्रायः पागलपन या उन्माद को साधना का प्रस्थान बिंदु मान लिया जाता है!

ऐसा सोचते हैं, वे थोड़ी दूर तक ठीक ही सोचते हैं। भूल उनकी यह नहीं है कि जो लोग मन से पीड़ित और परेशान हैं, वे ही लोग ध्यान, योग और अध्यात्म की ओर झुकते हैं; यह तो ठीक है। लेकिन जो अपने को सोचते हैं कि मानसिक रूप से पीड़ित नहीं हैं, वे भी उतने ही पीड़ित हैं और उन्हें भी झुक जाना चाहिए।

मनुष्य का होना ही संत्रस्त है। मनुष्य जिस ढंग का है, उसमें ही पीड़ा है। मनुष्य का अस्तित्व ही दुखपूर्ण है। इसलिए असली तो नासमझ वह है, जो सोचता है कि बिना अध्यात्म की ओर झुके हुए आनंद को उपलब्ध हो जाएगा। आनंद पाने का कोई उपाय और है ही नहीं। और जो जितनी जल्दी झुक जाए, उतना हितकर है।

यह बात सच है कि जो लोग अध्यात्म की ओर झुकते हैं, वे मानसिक रूप से पीड़ित और परेशान हैं। लेकिन दूसरी बात भी ख्याल में ले लेना, झुकते ही उनकी मानसिक पीड़ा समाप्त होनी शुरू हो जाती है। झुकते

ही मानसिक उन्माद समाप्त हो जाता है। और अध्यात्म की प्रक्रिया से गुजरकर वे स्वस्थ, शांत और आनंदित हो जाते हैं।

देखें बुद्ध की तरफ, देखें महावीर की तरफ, देखें कृष्ण की तरफ। उस आग से गुजरकर सोना निखर आता है। लेकिन जो झुकते ही नहीं, वे पागल ही बने रह जाते हैं।

आप ऐसा मत सोचना कि अध्यात्म की तरफ नहीं झुक रहे हैं, तो आप स्वस्थ हैं। अध्यात्म से गुजरे बिना तो कोई स्वस्थ हो ही नहीं सकता। स्वास्थ्य का अर्थ ही होता है, स्वयं में स्थित हो जाना। स्वयं में स्थित हुए बिना तो कोई स्वस्थ हो ही नहीं सकता। तब तक तो दौड़ और परेशानी और चिंता और तनाव बना ही रहेगा।

तो जो झुकते हैं, वे तो पागल हैं। जो नहीं झुकते हैं, वे और भी ज्यादा पागल हैं। क्योंकि झुके बिना पागलपन से छूटने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए यह मत सोचना कि आप बहुत समझदार हैं। क्योंकि आपकी समझदारी का कोई मूल्य नहीं है। अगर भीतर चिंता है, पीड़ा है, दुख है, तो आप कितना ही जानते हों, कितनी ही समझदारी हो, वह कुछ काम न आएगी। आपके भीतर पागलपन तो इकट्ठा हो ही रहा है।

और मैंने कहा कि आदमी का होना ही पागलपन है। उसके कारण हैं। क्योंकि आदमी सिर्फ बीज है, सिर्फ एक संभावना है कुछ होने की। और जब तक वह हो न जाए, तब तक परेशानी रहेगी। जब तक उसके भीतर का फूल पूरा खिल न जाए, तब तक बीज के प्राण तनाव से भरे रहेंगे। बीज टूटे, अंकुरित हो और फूल बन जाए, तो ही आनंद होगा।

दुख का एक ही अर्थ है आध्यात्मिक भाषा में, कि आप जो हैं, वह नहीं हो पा रहे हैं। और आनंद का एक ही अर्थ है कि आप जो हो सकते हैं, वह हो गए हैं। आनंद का अर्थ है कि अब आपके भीतर कोई संभावना नहीं बची आप सत्य हो गए हैं। आप जो भी हो सकते थे, वह आपने आखिरी शिखर छू लिया है। आप अपनी पूर्णता पर पहुंच गए हैं। और जब तक पूर्णता उपलब्ध नहीं होती, तब तक बेचैनी रहेगी।

जैसे नदी दौड़ती है सागर की तरफ, बेचैन, परेशान, तलाश में, वैसा आदमी दौड़ता है। सागर से मिलकर शांति हो जाती है। लेकिन कोई नदी ऐसा भी सोच सकती है कि ये पागल नदियां हैं, जो सागर की तरफ दौड़ रही हैं। और जो नदी सागर की तरफ दौड़ना बंद कर देगी, वह सरोवर बन जाएगी। नदी तो सागर में दौड़कर मिल जाती है, विराट हो जाती है। लेकिन सरोवर सड़ता है केवल, कहीं पहुंचता नहीं।

अध्यात्म गति है, मनुष्य के पार, मनुष्य के ऊपर, वह जो आत्यंतिक है, अंतिम है, उस दिशा में। लेकिन आप अपने को यह मत समझा लेना कि सिर्फ पागल इस ओर झुकते हैं। मैं तो बुद्धिमान आदमी हूं। मैं क्यों झुकूं!

आपकी बुद्धिमानी का सवाल नहीं है। अगर आप आनंद को उपलब्ध हो गए हैं, तब कोई सवाल नहीं है झुकने का। लेकिन अगर आपको आनंद की कोई खबर नहीं मिली है, और आपका हृदय नाच नहीं रहा है, और आप समाधि के, शांत होने के परम गुह्य रहस्य को उपलब्ध नहीं हुए हैं, तो इस डर से कि कहीं कोई पागल न कहे, अध्यात्म से बच मत जाना। नहीं तो जीवन की जो परम खोज है, उससे ही बच जाएंगे।

पागल झुकते हैं अध्यात्म की ओर, यह सच है। लेकिन वे पागल सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि उन्हें कम से कम इतना होश तो है कि झुक जाएं इलाज की तरफ। उन पागलों के लिए क्या कहा जाए, जो पागल भी हैं और झुकते भी नहीं हैं; जो बीमार भी हैं और चिकित्सक की तलाश भी नहीं करते और चिकित्सा की खोज भी नहीं करते। उनकी बीमारी दोहरी है। वे अपनी बीमारी को स्वास्थ्य समझे बैठे हैं।

मेरे पास रोज ऐसे लोग आ जाते हैं, जिनके पास बड़े-बड़े सिद्धांत हैं, जिन्होंने बड़े शास्त्र अध्ययन किए हैं। और जिन्होंने बड़ी उधार बुद्धि की बातें इकट्ठी कर ली हैं। मैं उनसे कहता हूं कि मुझे इसमें कोई उत्सुकता नहीं है

कि आप क्या जानते हैं। मेरी उत्सुकता इसमें है कि आप क्या हैं। अगर आपको आनंद मिल गया हो, तो आपकी बातों का कोई मूल्य है मेरे लिए, अन्यथा यह सारी की सारी बातचीत सिर्फ दुख को छिपाने का उपाय है।

तो बुनियादी बात मुझे बता दें, आपको आनंद मिल गया है? तो फिर आप जो भी कहें, उसे मैं सही मान लूंगा। और आनंद न मिला हो, तो आप जो भी कहें, उस सबको मैं गलत मानूंगा, चाहे वह कितना ही सही दिखाई पड़ता हो। क्योंकि जिससे जीवन का फूल न खिलता हो, उसके सत्य होने का कोई आधार नहीं है। और जिससे जीवन का फूल तो बंद का बंद रह जाता हो, बल्कि और ज्ञान का कचरा उसे दबा देता हो और खुलना मुश्किल हो जाता हो, उसका सत्य से कोई भी संबंध नहीं है।

मेरे हिसाब में आनंद की तरफ जो ले जाए, वह सत्य है; और दुख की तरफ जो ले जाए, वह असत्य है। अगर आप आनंद की तरफ जा रहे हैं, तो आप जो भी कर रहे हैं, वह ठीक है। और अगर आप आनंद की तरफ नहीं जा रहे हैं, तो आप कुछ भी कर रहे हों, वह सब गलत है। क्योंकि अंतिम कसौटी तो एक ही बात की है कि आपने जीवन के परम आनंद को अनुभव किया या नहीं।

तो ये मित्र ठीक कहते हैं, विक्षिप्त लोग झुके हुए मालूम पड़ते हैं। लेकिन सभी विक्षिप्त हैं।

मनसविद से पूछें, कौन स्वस्थ है? जिसको आप नार्मल, सामान्य आदमी कहते हैं, उसे आप यह मत समझ लेना कि वह स्वस्थ है। वह केवल नार्मल ढंग से पागल है। और कोई खास बात नहीं है। और पागलों जैसा ही पागल है। पूरी भीड़ उसके जैसे ही पागल है। इसलिए वह पागल नहीं मालूम पड़ता। जरा ही ज्यादा आगे बढ़ जाता है, तो दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।

पागल में और आप में जो अंतर है, वह मात्रा का है, गुण का नहीं है। थोड़ा डिग्रीज का फर्क है। आप निन्यानबे डिग्री पर हैं और पागल सौ डिग्री पर उबलकर पागल हो गया है। एक डिग्री आप में कभी भी जुड़ सकती है, किसी भी क्षण। जरा-सी कोई घटना, और आप पागल हो सकते हैं।

बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी को जरा-सी गाली दे दो और वह पागल हो जाता है। वह तैयार ही खड़ा था; एक छोटी-सी गाली ऊंट पर आखिरी तिनके का काम करती है और ऊंट बैठ जाता है। आपकी बुद्धिमानी जरा में सरकाई जा सकती है; उसका कोई मूल्य नहीं है। आप किसी तरह अपने को सम्हाले खड़े हैं।

इस सम्हाले खड़े रहने से कोई सार नहीं है। यह विक्षिप्तता से मुक्त होना जरूरी है। और योग विक्षिप्तता से मुक्ति का उपाय है। अच्छा है कि आप अपनी विक्षिप्तता को पहचान लें।

ध्यान रहे, बीमारी को पहचान लेना अच्छा है, क्योंकि पहचाने से उपाय हो सकता है, इलाज हो सकता है। बीमारी को झुठलाना खतरनाक है। क्योंकि बीमारी झुठलाने से मिटती नहीं, भीतर बढ़ती चली जाती है।

लेकिन अनेक बीमार ऐसे हैं, जो इस डर से कि कहीं यह पता न चल जाए कि हम बीमार हैं, अपनी बीमारी को छिपाए रखते हैं। अपने घावों को ढांक लेते हैं फूलों से, सुंदर वस्त्रों से, सुंदर शब्दों से और अपने को भुलाए रखते हैं। लेकिन धोखा वे किसी और को नहीं दे रहे हैं। धोखा वे अपने को ही दे रहे हैं। घाव भीतर बढ़ते ही चले जाएंगे। पागलपन ऐसे मिटेगा नहीं, गहन हो जाएगा। और आज नहीं कल उसका विस्फोट हो जाएगा।

अध्यात्म की तरफ उत्सुकता चिकित्सा की उत्सुकता है। और उचित है कि आप पहचान लें कि अगर दुखी हैं, तो दुखी होने का कारण है। उस कारण को मिटाया जा सकता है। उस कारण को मिटाने के लिए उपाय हैं। उन उपायों का प्रयोग किया जाए, तो चित्त स्वस्थ हो जाता है।

आप अपनी फिक्र करें; दूसरे क्या कहते हैं, इसकी बहुत चिंता न करें। आप अपनी चिंता करें कि आपके भीतर बेचैनी है, संताप है, संत्रस्तता है, दुख है, विषाद है, और आप भीतर उबल रहे हैं आग से और कहीं कोई

छाया नहीं जीवन में, कहीं कोई विश्राम का स्थल नहीं है! तो फिर भय न करें। अध्यात्म आपके जीवन में छाया बन सकता है, और योग आपके जीवन में शांति की वर्षा कर सकता है।

अगर प्यासे हैं, तो उस तरफ सरोवर है। और प्यासे हैं, तो सरोवर की तरफ जाएं। सिर्फ बुद्ध या कृष्ण जैसे व्यक्तियों को योग की तरफ जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि योग से वे गुजर चुके हैं। आपको तो जरूरत है ही। आपको तो जाना ही होगा। एक जन्म आप झुठला सकते हैं, दूसरे जन्म में जाना होगा। आप अनेक जन्मों तक झुठला सकते हैं, लेकिन बिना जाए कोई उपाय नहीं है। और जब तक कोई अपने भीतर के आत्यंतिक केंद्र को अनुभव न कर ले, और जीवन के परम स्रोत में न डूब जाए, तब तक विक्षिप्तता बनी ही रहती है।

दो शब्द हैं। एक है विक्षिप्तता और एक है विमुक्तता। मन का होना ही विक्षिप्तता है। ऐसा नहीं है कि कोई-कोई मन पागल होते हैं; मन का स्वभाव ही पागलपन है। मन का अर्थ है, मैडनेस। वह पागलपन है। और जब कोई मन से मुक्त होता है, तो स्वस्थ होता है, तो विमुक्त होता है।

आमतौर से हम सोचते हैं कि किसी का मन खराब है और किसी का मन अच्छा है। यह जानकर आपको हैरानी होगी, योग की दृष्टि से मन का होना ही खराब है। कोई अच्छा मन नहीं होता। मन होता ही रोग है। कोई अच्छा रोग नहीं होता; रोग बुरा ही होता है।

जैसे हम अगर कहें, अभी तूफान था सागर में और अब तूफान शांत हो गया है। तो आप मुझसे पूछ सकते हैं कि शांत तूफान कहां है? तो मैं कहूंगा, शांत तूफान का अर्थ ही यह होता है कि अब तूफान नहीं है। शांत तूफान जैसी कोई चीज नहीं होती। शांत तूफान का अर्थ ही होता है कि तूफान अब नहीं है। तूफान तो जब भी होता है, तो अशांत ही होता है।

ठीक ऐसे ही अगर आप पूछें कि शांत मन क्या है, तो मैं आपसे कहूंगा कि शांत मन जैसी कोई चीज होती ही नहीं। मन तो जब भी होता है, तो अशांत ही होता है।

शांत मन का अर्थ है कि मन रहा ही नहीं। मन और अशांति पर्यायवाची हैं। उन दोनों का एक ही मतलब है। भाषाकोश में नहीं; भाषाकोश में तो मन का अलग अर्थ है और अशांति का अलग अर्थ है। लेकिन जीवन के कोश में मन और अशांति एक ही चीज के दो नाम हैं। और शांति और अमन एक ही चीज के दो नाम हैं। नो-माइंड, अमन।

जब तक आपके पास मन है, आप विक्षिप्त रहेंगे ही। मन भीतर पागल की तरह चलता ही रहेगा। और अगर आपको भरोसा न हो, तो एक छोटा-सा प्रयोग करना शुरू करें।

अपने परिवार को या अपने मित्रों को लेकर बैठ जाएं। एक घंटे दरवाजा बंद कर लें। अपने निकटतम दस-पांच मित्रों को लेकर बैठ जाएं, और एक छोटा-सा प्रयोग करें। आपके भीतर जो चलता हो, उसको जोर से बोलें। जो भी भीतर चलता हो, जिसको आप मन कहते हैं, उसे जोर से बोलते जाएं--ईमानदारी से, उसमें बदलाहट न करें। इसकी फिक्र न करें कि लोग सुनकर क्या कहेंगे। एक छोटा-सा खेल है। इसका उपयोग करें।

आपको बड़ा डर लगेगा कि यह जो भीतर धीमे-धीमे चल रहा है, इसको जोर से कहूं? पत्नी क्या सोचेगी! बेटा क्या सोचेगा! मित्र क्या सोचेंगे! लेकिन अगर सच में हिम्मत हो, तो यह प्रयोग करने जैसा है।

फिर एक-एक व्यक्ति करे; पंद्रह-पंद्रह मिनट एक-एक व्यक्ति बोले। जो भी उसके भीतर हो, उसको जोर से बोलता जाए। आप एक घंटेभर के प्रयोग के बाद पूरा कमरा अनुभव करेगा कि हम सब पागल हैं।

आप कोशिश करके देखें। अगर आपको डर लगता हो दूसरों का, तो किसी दिन अकेले में ही पहले करके देख लें। आपको पता चल जाएगा कि पागल कौन है। लेकिन राहत भी बहुत मिलेगी। अगर इतनी हिम्मत कर

सकें मित्रों के साथ, तो यह खेल बड़े ध्यान का है; बहुत राहत मिलेगी। क्योंकि भीतर का बहुत-सा कचरा बाहर निकल जाएगा, और एक हल्कापन आ जाएगा और पहली दफा यह अनुभव होगा कि मेरी असली हालत क्या है। मैं अपने को बुद्धिमान समझ रहा हूं; बड़ा सफल समझ रहा हूं; बड़े पदों पर पहुंच गया हूं; धन कमा लिया है; बड़ा नाम है; इज्जत है; और भीतर यह पागल बैठा है! और इस पागल से छुटकारा पाने का नाम अध्यात्म है।

मेहरबाबा उन्नीस सौ छत्तीस में अमेरिका में थे। और एक व्यक्ति को उनके पास लाया गया। उस व्यक्ति को दूसरों के विचार पढ़ने की कुशलता उपलब्ध थी। उसने अनेक लोगों के विचार पढ़े थे। वह किसी भी व्यक्ति के सामने आंख बंद करके बैठ जाता था; और वह व्यक्ति जो भीतर सोच रहा होता, उसे बोलना शुरू कर देता।

मेहरबाबा वर्षों से मौन थे। तो उनके भक्तों को, मित्रों को जिज्ञासा और कुतूहल हुआ कि वह जो आदमी वर्षों से मौन है, वह भी भीतर तो कुछ सोचता होगा! तो इस आदमी को लाया जाए, क्योंकि वे तो कुछ बोलते नहीं।

तो उस आदमी को लाया गया। वह मेहरबाबा के सामने आंख बंद करके, बड़ी उसने मेहनत की। पसीना-पसीना हो गया। फिर उसने कहा कि लेकिन बड़ी मुसीबत है। यह आदमी कुछ सोचता ही नहीं। मैं बताऊं भी तो क्या बताऊं! मैं बोलूं, तो भी क्या बोलूं! मैं आंख बंद करता हूं और जैसे मैं एक दीवाल के सामने हूं, जहां कोई विचार नहीं है।

इस निर्विचार अवस्था का नाम विमुक्तता है। जब तक भीतर विचार चल रहा है, वह पागल है, वह पागलपन है। यह ऐसा ही समझिए कि आप बैठे-बैठे दोनों टांग चलाते रहें यहां। तो आपको पड़ोसी आदमी कहेगा, बंद करिए टांग चलाना! आपका दिमाग ठीक है? आप टांगें क्यों चला रहे हैं? टांग को चलाने की जरूरत है, जब कोई चल रहा हो रास्ते पर। बैठकर टांग क्यों चला रहे हैं?

मन की भी तब जरूरत है, जब कोई सवाल सामने हो, उसको हल करना हो, तो मन चलाएं। लेकिन न कोई सवाल है, न कोई बात सामने है। बैठे हैं, और मन की टांगें चल रही हैं। यह विक्षिप्तता है; यह पागलपन है।

आपका मन चलता ही रहता है। आप चाहें भी रोकना, तो रुकता नहीं। कोशिश करके देखें। रोकना चाहेंगे, तो और भी नहीं रुकेगा। और जोर से चलेगा। और सिद्ध करके बता देगा कि तुम मालिक नहीं हो, मालिक मैं हूं। छोटी-सी कोई बात रोकने की कोशिश करें। और वही-वही बात बार-बार मन में आनी शुरू हो जाएगी।

लोग बैठकर राम का स्मरण करते हैं। राम का स्मरण करते हैं, नहीं आता। कुछ और-और आता है, कुछ दूसरी बातें आती हैं।

एक महिला मेरे पास आई, वह कहने लगी कि मैं राम की भक्त हूं। बहुत स्मरण करती हूं, लेकिन वह नाम छूट-छूट जाता है और दूसरी चीजें आ जाती हैं!

मैंने कहा कि तू एक काम कर। कसम खा ले कि राम का नाम कभी न लूंगी। फिर देख। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं! मैंने कहा, तू कसम खाकर देख। और हर तरह से कोशिश करना कि राम का नाम भर भीतर न आने पाए।

वह तीसरे दिन मेरे पास आई। उसने कहा कि आप मेरा दिमाग खराब करवा दोगे। चौबीस घंटे सिवाय राम के और कुछ आ ही नहीं रहा है। और मैं कोशिश में लगी हूं कि राम का नाम न आए, और राम का नाम आ रहा है!

मन सिद्ध करता है हमेशा कि आप मालिक नहीं हैं, वह मालिक है। और जब तक मन मालिक है, आप पागल हैं। जिस दिन आप मालिक हों, उस दिन स्वस्थ हुए, स्वयं में स्थित हुए।

अध्यात्म से गुजरे बिना कोई भी स्वस्थ नहीं होता है।

एक मित्र ने पूछा है कि ऐसा कहा जाता है कि भगवान की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। यदि यह बात सच है, तो हमारा सारा जीवन उनकी इच्छा के अनुसार ही चलता है। तो फिर हमें जो भले-बुरे विचार आते हैं, अच्छे-बुरे काम बनते हैं, वह भी उनकी ही इच्छा के अनुसार होता है! फिर तो साधना का भी क्या प्रयोजन है? फिर तो स्वयं को बदलने का भी क्या अर्थ है?

अगर यह बात समझ में आ गई, तो साधना का फिर कोई प्रयोजन नहीं है। साधना शुरू हो गई। अगर इतनी ही बात ख्याल में आ जाए कि जो भी कर रहा है, वह भगवान कर रहा है, तो मेरा कर्तापन समाप्त हो गया।

सारी साधना इतनी ही है कि मेरा अहंकार समाप्त हो जाए। फिर अच्छा भी वही कर रहा है, बुरा भी वही कर रहा है। फिर अच्छे-बुरे का कोई सवाल ही नहीं रहा। वही कर रहा है, दोनों वही कर रहा है। दुख वही दे रहा है, सुख वही दे रहा है। जन्म उसका, मृत्यु उसकी। बंधन उसका, मुक्ति उसकी। फिर मेरा कोई सवाल न रहा। मुझे बीच में आने की कोई जरूरत न रही। फिर साधना की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि साधना हो गई। शुरू हो गई।

यह विचार ही परम साधना बन जाएगा। यह ख्याल ही इस जीवन से सारे रोग को काट डालेगा। क्योंकि सारा रोग ही अहंकार, इस बात में है कि मैं कर रहा हूं। यह समर्पण का परम सूत्र है।

लोग इसे समझ लेते हैं, यह भाग्यवाद है। यह भाग्यवाद नहीं है। भारत के इस विचार को बहुत कठिनाई से कुछ थोड़े लोग ही समझ पाए हैं। यह कोई वाद नहीं है। यह एक प्रक्रिया है साधना की। यह साधना का एक सूत्र है। यह कोई सिद्धांत नहीं है कि भगवान सब कर रहा है। यह एक विधान, एक प्रक्रिया, एक विधि है।

ऐसा अगर कोई अपने को स्वीकार कर ले कि जो भी कर रहा है, परमात्मा कर रहा है, तो वह मिट जाता है, उसी क्षण शून्य हो जाता है। और जैसे ही आप शून्य होते हैं, बुरा होना बंद हो जाएगा। आपको बुरा बंद करना नहीं पड़ेगा।

यह जरा जटिल है। बुरा होना बंद हो जाएगा। दुख मिलना समाप्त हो जाएगा, क्योंकि बुरा होता है सिर्फ अहंकार के दबाव के कारण। और दुख मिलना बंद हो जाएगा, क्योंकि दुख मिलता है केवल अहंकार को। जिसका अहंकार का घाव मिट गया, उस पर चोट नहीं पड़ती फिर। फिर उसे कोई दुख नहीं दे सकता।

इसका मतलब हुआ कि अगर कोई स्वीकार कर ले कि परमात्मा सब कुछ कर रहा है, फिर कुछ करने की जरूरत न रही। और बुरा अपने आप बंद होता चला जाएगा, और दुख अपने आप शून्य हो जाएंगे। जिस मात्रा में यह विचार गहरा होगा, उसी मात्रा में बुराई विसर्जित हो जाएगी। क्योंकि बुराई के लिए आपका होना जरूरी है। आपके बिना बुराई नहीं हो सकती।

भलाई आपके बिना भी हो सकती है। भलाई के लिए आपके होने की कोई भी जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि भलाई के लिए आपका होना बाधा है। आप जब तक हैं, भलाई हो ही नहीं सकती। चाहे भलाई का ऊपरी ढंग दिखाई भी पड़ता हो भले जैसा, भीतर बुराई ही होगी। वह जो आप भीतर बैठे हैं, वह बुरा ही कर सकता

है। और जैसे ही आप विदा हो गए, मूल आधार खो गया बुराई का। फिर आपसे जो भी होगा, वह भला है; आपको भला करना नहीं पड़ेगा।

लेकिन इसको, इस विचार को पूरी तरह से अपने में डुबा लेना और इस विचार में पूरी तरह से डूब जाना बड़ा कठिन है। क्योंकि अक्सर हम इसको बड़ी होशियारी से काम में लाते हैं। जब तक हमसे कुछ बन सकता है, तब तक तो हम सोचते हैं, हम कर रहे हैं। जब हमसे कुछ नहीं बन सकता, हम असफल होते हैं, तब अपनी असफलता छिपाने को हम कहते हैं कि परमात्मा कर रहा है।

हम बहुत धोखेबाज हैं। और हम परमात्मा के साथ भी धोखा करने में जरा भी कृपणता नहीं करते।

जब भी आप सफल होते हैं, तब तो आप समझते हैं, आप ही कर रहे हैं। और जब आप असफल होते हैं, तब आप कहते हैं, भाग्य है; उसकी बिना इच्छा के तो पत्ता भी नहीं हिलता।

नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने पत्र में लिखा है अपनी पत्नी को। बहुत कीमती बात लिखी है। उसने लिखा है कि मैं भाग्यवाद का भरोसा नहीं करता हूं। मैं पुरुषार्थी हूं। लेकिन भाग्यवाद को बिना माने भी नहीं चलता। क्योंकि अगर भाग्यवाद को न मानो, तो अपने दुश्मन की सफलता को फिर कैसे समझाओ! उसकी क्या व्याख्या हो! फिर मन को बड़ी चोट बनी रहती है।

अपनी सफलता पुरुषार्थ से समझा लेते हैं। अपने दुश्मन की सफलता भाग्य से, कि भाग्य की बात है, इसलिए जीत गया, अन्यथा जीत कैसे सकता था! पड़ोसियों को जो सफलता मिलती है, वह परमात्मा की वजह से मिल रही है। और आपको जो सफलता मिलती है, वह आपकी वजह से मिल रही है। नहीं तो मन में बड़ी तकलीफ होगी।

अपनी हार स्वीकार करने का मन नहीं है। अपनी सफलता स्वीकार करने का जरूर मन है। हारे हुए मन से जो इस तरह के सिद्धांत को स्वीकार करता है कि उसकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, वह आदमी कुछ भी नहीं पा सकेगा। उसके लिए सिद्धांत व्यर्थ है।

यह किसी हारे हुए मन की बात नहीं है। यह तो एक साधना का सूत्र है। यह तो जीवन को देखने का एक ढंग है, जहां से कर्ता को हटा दिया जाता है। और सारा कर्तृत्व परमात्मा पर छोड़ दिया जाता है।

एक और मित्र ने सवाल पूछा है। वे दो-तीन दिन से पूछ रहे हैं इसी संबंध में। उन्होंने पूछा है कि आप बहुत जोर देते हैं भाग्यवाद पर... ।

मैं जरा भी जोर नहीं देता भाग्यवाद पर। भाग्यवाद हजारों विधियों में से एक विधि है जीवन को रूपांतरित करने की, अहंकार को गला डालने की।

उन मित्र ने कहा है कि अगर भाग्यवाद ही सच है, तो आप बोलते क्यों हैं?

वे समझे नहीं अपनी ही बात। अगर भाग्यवाद ही सच है, तो क्यों का कोई सवाल ही नहीं; परमात्मा ही मुझसे बोलता है। बोलते क्यों हैं, यह कोई सवाल नहीं है।

उन मित्र ने पूछा है, अगर भाग्यवाद ही सच है, तो आप लोगों से क्यों कहते हैं कि साधना करो?

यह मेरा भाग्य है कि मैं उनसे कहूं कि साधना करो। इसमें मैं कुछ कर नहीं रहा हूं। यह मेरी नियति है। और यह आपकी नियति है कि आप सुनो, और बिल्कुल करो मत।

भाग्य कोई वाद नहीं है। भाग्य जीवन को देखने का एक ढंग और जीवन को बदलने की एक कीमिया है। यह कोई कमजोरों की बात नहीं है, कि बैठ गए हाथ पर हाथ रखकर, सिर झुकाकर कि क्या करें; भाग्य में नहीं है। यह बहुत हिम्मत की बात है और बहुत ताकतवर लोगों की बात है, कि जो कह सकें कि सभी कुछ उस परमात्मा से हो रहा है, सभी कुछ, बेशर्त। अच्छा या बुरा, सफलता या असफलता, मैं अपने को हटाता हूं। मैं बीच में नहीं हूं।

अपने को हटाना बहुत शक्तिशाली लोगों के हाथ की बात है। कमजोर अपने को हटाने की ताकत ही नहीं रखते।

जैसे ही आप यह समझ पाएंगे कि भाग्य एक विधि है, एक टेक्नीक! हजारों टेक्नीक हैं। मगर भाग्य बहुत गजब की टेक्नीक है। अगर इसका उपयोग कर सकें, तो आप चौबीस घंटे के लिए उपयोग कर के देखें।

तय कर लें कि कल सुबह से परसों सुबह तक जो कुछ भी होगा, परमात्मा कर रहा है, मैं बीच में नहीं खड़ा होऊंगा।

चौबीस घंटे में आप ऐसे संतोष और ऐसी शांति और ऐसी आनंद की झलक को उपलब्ध होंगे, जो आपने जीवन में कभी नहीं जानी। और ये चौबीस घंटे फिर खतम नहीं होंगे, क्योंकि एक बार रस आ जाए, स्वाद आ जाए, ये बढ़ जाएंगे। यह आपकी पूरी जिंदगी बन जाएगी।

एक दिन के लिए आप भाग्य की विधि का प्रयोग कर लें, फिर कोई तनाव नहीं है। सारा तनाव इस बात से पैदा होता है कि मैं कर रहा हूं। स्वभावतः इसलिए पश्चिम में ज्यादा तनाव है, ज्यादा टेंशन है, ज्यादा मानसिक बेचैनी है। पूरब में इतनी बेचैनी नहीं थी। अब बढ़ रही है। वह पश्चिम की शिक्षा से बढ़ेगी, क्योंकि पश्चिम की शिक्षा का सारा आधार पुरुषार्थ है। और पूरब की शिक्षा का सारा आधार भाग्य है। दोनों विपरीत हैं।

पूरब मानता है कि सब परमात्मा कर रहा है। और पश्चिम मानता है, सब मनुष्य कर रहा है। निश्चित ही, जब सब मनुष्य कर रहा है, तो फिर मनुष्य को उत्तरदायी होना पड़ेगा। फिर चिंता पकड़ती है। थोड़ा फर्क देखें।

बर्ट्रेंड रसेल परेशान है कि तीसरा महायुद्ध न हो जाए। उसकी नींद हराम होगी। आइंस्टीन मरते वक्त तक बेचैन है कि मैंने एटम बम बनने में सहायता दी है; कहीं दुनिया बरबाद न हो जाए। मरने के थोड़े दिन पहले उसने कहा कि अगर मैं दुबारा पैदा होऊं, तो मैं वैज्ञानिक होने की बजाय एक प्लंबर होना पसंद करूंगा। मुझसे भूल हो गई। क्योंकि दुनिया नष्ट हो जाएगी।

लेकिन एक बात मजे की है कि आइंस्टीन समझ रहा है कि मेरे कारण नष्ट हो जाएगी। बर्ट्रेंड रसेल सोच रहे हैं कि अगर शांति का उपाय मैंने न किया, हमने न किया, तो दुनिया नष्ट हो जाएगी। इधर कृष्ण की दृष्टि बिल्कुल उलटी है।

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिनको तू सोचता है कि तू मारेगा, उन्हें मैं पहले ही मार चुका हूं। वे मर चुके हैं। नियति सब तय कर चुकी है। बात सब हो चुकी है। कहानी का सब लिखा जा चुका है। तू तो सिर्फ निमित्त है।

इन दोनों में फर्क देखें। इन दोनों में फर्क यह है कि पश्चिम में सोचा जाता है कि आदमी जिम्मेवार है। अगर आदमी जिम्मेवार है हर चीज के लिए, तो चिंता पकड़ेगी, एंग्जायटी पैदा होगी। फिर जो भी मैं करूंगा, मैं जिम्मेवार हूं। फिर हाथ मेरे कंपेंगे, हृदय मेरा कंपेगा। आदमी कमजोर है। और जगत बहुत बड़ा है। और सारी

जिम्मेवारी आदमी पर, तो बहुत घबड़ाहट पैदा हो जाती है। इसलिए पश्चिम इतना विक्षिप्त मालूम हो रहा है। इस विक्षिप्तता के पीछे पुरुषार्थ का आग्रह है।

पूरब बड़ा शांत था। यहां जो भी हो रहा था, कोई जिम्मेवारी व्यक्ति की न थी, उस परम नियंता की थी। यह सच है या झूठ, यह सवाल नहीं है। पुरुषार्थ ठीक है कि भाग्य, यह सवाल नहीं है।

मेरे लिए तो पुरुषार्थ चिंता पैदा करने का उपाय है। अगर किसी को चिंता पैदा करनी है, तो पुरुषार्थ सुगम उपाय है। अगर आपको चिंता में रस है, तो आप सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लें। और अगर आपको चिंता में रस नहीं है और समाधि में रस है, तो सारी जिम्मेवारी परमात्मा पर छोड़ दें। परमात्मा न भी हो, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके छोड़ने से फर्क पड़ता है।

समझ लें। परमात्मा न भी हो, कहीं कोई परमात्मा न हो, लेकिन आप परमात्मा पर छोड़ दें, आपसे उतर जाए, आपके ख्याल से हट जाए; आप जिम्मेवार नहीं हैं, कोई और जिम्मेवार है, बात समाप्त हो गई। आपकी चिंता विलीन हो गई। चिंता के मूल आधार में अस्मिता, अहंकार, मैं है।

इसे एक विधि की तरह समझें और प्रयोग करें, तो आप चकित हो जाएंगे। आपकी जिंदगी को बदलने में भाग्य की धारणा इतना अदभुत काम कर सकती है, जिसका कोई हिसाब नहीं है।

लेकिन बहुत सजग होकर उसका प्रयोग करना पड़े। कोई आदमी आपको गाली देता है, तो आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी है। आपके भीतर क्रोध आ जाता है, तो भी आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी। मार-पीट हो जाती है, तो भी आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी। वह आपकी छाती पर बैठ जाता है, तो भी आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी; या आप उसकी छाती पर बैठ जाते हैं, तो भी आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी है।

ध्यान रहे, जब वह आपकी छाती पर बैठा हो, तब स्वीकार करना बहुत आसान है कि परमात्मा की मर्जी है; जब आप उसकी छाती पर बैठे हों, तब स्वीकार करना बहुत मुश्किल है कि परमात्मा की मर्जी है। क्योंकि आप काफी कोशिश करके उसकी छाती पर बैठ पाए हैं। उस वक्त मन में यही होता है कि अपने पुरुषार्थ का ही फल है कि इसकी छाती पर बैठे हैं।

सुख के क्षण में परमात्मा की मर्जी साधना है। सफलता के क्षण में परमात्मा की मर्जी साधना है। विजय के क्षण में परमात्मा की मर्जी का स्मरण साधना है।

तो आपकी जिंदगी बदल जाती है। अनिवार्यरूपेण आप बिल्कुल नए हो जाते हैं। चिंता का केंद्र टूट जाता है।

अब हम सूत्र को लें।

इस प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है।

कौन देखता है? कौन जानता है? किसके पास दर्शन है, दृष्टि है? उसकी व्याख्या है। किसका जानना सही जानना है? और किसके पास असली आंख है? कौन देखता है?

इस प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है।

यह संसार हम सब देखते हैं। इसमें सभी नाश होता दिखाई पड़ता है। सभी परिवर्तित होता दिखाई पड़ता है। सभी लहरों की तरह दिखाई पड़ता है, क्षणभंगुर। इसे देखने के लिए कोई बड़ी गहरी आंखों की जरूरत नहीं है। जो आंखें हमें मिली हैं, वे काफी हैं। इन आंखों से ही दिखाई पड़ जाता है।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। इन आंखों से ही दिखाई पड़ जाता है कि यहां सब क्षणभंगुर है। लेकिन हममें बहुत-से लोग आंखें होते हुए बिल्कुल अंधे हैं। यह भी दिखाई नहीं पड़ता कि यहां सब क्षणभंगुर है। यह भी दिखाई नहीं पड़ता। हम क्षणभंगुर वस्तुओं को भी इतने जोर से पकड़ते हैं, उससे पता चलता है कि हमें भरोसा है कि चीजें पकड़ी जा सकती हैं और रोकी जा सकती हैं।

एक युवक मेरे पास आया और उसने कहा कि एक युवती से मेरा प्रेम है। लेकिन कभी प्रेमपूर्ण लगता है मन, और कभी घृणा से भर जाता है। और कभी मैं चाहता हूं, इसके बिना न जी सकूंगा। और कभी मैं सोचने लगता हूं, इसके साथ जीना मुश्किल है। मैं क्या करूं?

मैंने उससे पूछा, तू चाहता क्या है? तो उसने कहा, चाहता तो मैं यही हूं कि सतत मेरा प्रेम इसके प्रति बना रहे। फिर मैंने उससे कहा कि तू दिक्कत में पड़ेगा। क्योंकि इस जगत में सभी क्षणभंगुर है, प्रेम भी। यह तो तेरी आकांक्षा ऐसी है, जैसे कोई आदमी कहे कि मुझे भूख कभी न लगे; पेट मेरा भरा ही रहे। भूख लगती है, इसीलिए पेट भरने का ख्याल पैदा होता है। भूख लगनी जरूरी है, तो ही पेट भरने का प्रयास होगा। और पेट भरते ही भूख मिट जाएगी। लेकिन पेट भरते ही नई भूख पैदा होनी शुरू हो जाएगी। एक वर्तुल है।

रात है, दिन है। ऐसे ही प्रेम है और घृणा है। आकर्षण है और विकर्षण है। आदर है और अनादर है।

हमारी सारी तकलीफ यह होती है कि अगर किसी व्यक्ति के प्रति हमारा आदर है, तो हम कोशिश करते हैं, सतत बना रहे। वह बना रह नहीं सकता। क्योंकि आदर के साथ वैसे ही रात भी जुड़ी है अनादर की। और प्रेम के साथ घृणा की रात जुड़ी है।

और सभी चीजें बहती हुई हैं, प्रवाह है। यहां कोई चीज थिर नहीं है। इसलिए जब भी आप किसी चीज को थिर करने की कोशिश करते हैं, तभी आप मुसीबत में पड़ जाते हैं। लेकिन कोशिश आप इसीलिए करते हैं कि आपको भरोसा है कि शायद चीजें थिर हो जाएं।

जवान आदमी जवान बने रहने की कोशिश करता है। सुंदर आदमी सुंदर बने रहने की कोशिश करता है। जो किसी पद पर है, वह पद पर बने रहने की कोशिश करता है। जिसके पास धन है, वह धनी बने रहने की कोशिश करता है। हम सब कोशिश में लगे हैं।

हमारे अगर जीवन के प्रयास को एक शब्द में कहा जाए, तो वह यह है कि जीवन है परिवर्तनशील और हम कोशिश में लगे हैं कि यहां कुछ शाश्वत मिल जाए। कुछ शाश्वत। इस परिवर्तनशील प्रवाह में हम कहीं पैर रखने को कोई भूमि पा जाएं, जो बदलती नहीं है। क्योंकि बदलाहट से बड़ा डर लगता है। कल का कोई भरोसा नहीं है। क्या होगा, क्या नहीं होगा, सब अनजान मालूम होता है। और अंधेरे में बहे चले जाते हैं। इसलिए हम सब चाहते हैं कोई ठोस भूमि, कोई आधार, जिस पर हम खड़े हो जाएं, सुरक्षित। सिक्योरिटी मिल जाए, यह हमारी चेष्टा है। यह चेष्टा बताती है कि हमें क्षणभंगुरता दिखाई नहीं पड़ती।

यहां सभी कुछ क्षणभर के लिए है। हमें यही दिखाई नहीं पड़ता। कृष्ण तो कहते हैं, और वही देखता है, जो क्षणभंगुर के भीतर शाश्वत को देख लेता है।

हमें तो क्षणभंगुर ही नहीं दिखाई पड़ता। पहली बात। क्षणभंगुर न दिखाई पड़ने से हम अपने ही मन के शाश्वत निर्मित करने की कोशिश करते हैं। वे झूठे सिद्ध होते हैं। वे सब गिर जाते हैं।

हमारा प्रेम, हमारी श्रद्धा, हमारा आदर, हमारे सब भाव मिट जाते हैं, धूल-धूसरित हो जाते हैं। हमारे सब भवन गिर जाते हैं। हम कितने ही मजबूत पत्थर लगाएं, हमारे सब भवन खंडहर हो जाते हैं। हम जो भी बनाते हैं इस जिंदगी में, वह सब जिंदगी मिटा देती है। कुछ बचता नहीं। सब राख हो जाता है। लेकिन फिर भी हम स्थिर को बनाने की कोशिश करते रहते हैं, और असफल होते रहते हैं। हमारे जीवन का विषाद यही है।

संबंध चाहते हैं स्थिर बना लें। वे नहीं बन पाते। हमने कितनी कोशिश की है कि पति-पत्नी का प्रेम स्थिर हो जाए, वह नहीं हो पाता। बड़ा विषाद है, बड़ा दुख है, बड़ी पीड़ा है। कुछ स्थिर नहीं हो पाता। मित्रता स्थिर हो जाए, शाश्वत हो जाए। कहानियों में होती है। जिंदगी में नहीं हो पाती।

कहानियां भी हमारी मनोवांछनाएं हैं। जैसा हम चाहते हैं जिंदगी में हो, वैसा हम कहानियों में लिखते हैं। वैसा होता नहीं। इसलिए हर कहानी, दो प्रेमियों का विवाह हो जाता है--या कोई फिल्म या कोई कथा--और खत्म होती है कि इसके बाद दोनों आनंद से रहने लगे। यहां खत्म होती है। यहां कोई जिंदगी खत्म नहीं होती।

कहानी चलती है, जब तक विवाह नहीं हो जाता और शहनाई नहीं बजने लगती। और शहनाई बजते ही दोनों प्रेमी फिर सदा सुख-शांति से रहने लगे, यहां खत्म हो जाती है। और आदमी की जिंदगी में जाकर देखें।

शहनाई जब बजती है, उसके बाद ही असली उपद्रव शुरू होता है। उसके पहले थोड़ी-बहुत सुख-शांति रही भी हो। उसके बाद बिल्कुल नहीं रह जाती। लेकिन उसे हम ढांक देते हैं। वहां से परदा गिरा देते हैं। वहां कहानी खत्म हो जाती है। वह हमारी मनोवांछा है, ऐसा होना चाहिए था। ऐसा होता नहीं है।

हम अपनी कहानियों में जो-जो लिखते हैं, वह अक्सर वही है, जो जिंदगी में नहीं होता। हम अपनी कहानियों में उन चरित्रों को बहुत ऊपर उठाते हैं आसमान पर, जो जिंदगी में हो नहीं सकते।

जिंदगी तो बिल्कुल क्षणभंगुर है। वहां कोई चीज थिर होती नहीं; टिक नहीं सकती। टिकना वहां होता ही नहीं।

इसे ठीक से समझ लें। क्षणभंगुर है जगत चारों तरफ। हम इस जगत से डरकर अपना एक शाश्वत मन का जगत बनाने की कोशिश करते हैं। वह नहीं टिक सकता। हमारा क्या टिकेगा; हम खुद क्षणभंगुर हैं। बनाने वाला यह मन क्षणभंगुर है। इससे कुछ भी बन नहीं सकता। और जिस सामग्री से यह बनाता है, वह भी क्षणभंगुर है।

लेकिन अगर हम क्षणभंगुरता में गहरे देखने में सफल हो जाएं, हम क्षणभंगुरता के विपरीत कोई शाश्वत जगत बनाने की कोशिश न करें, बल्कि क्षणभंगुरता में ही आंखों को पैना गड़ा दें, तो क्षणभंगुरता के पीछे ही, प्रवाह के पीछे ही, वह जो अविनश्वर है, वह जो परमात्मा है शाश्वत, वह दिखाई पड़ जाएगा।

दो तरह के लोग हैं जगत में। एक वे, जो क्षणभंगुर को देखकर अपने ही गृह-उद्योग खोल लेते हैं शाश्वत को बनाने के। और दूसरे वे, जो क्षणभंगुर को देखकर अपना गृह-उद्योग नहीं खोलते शाश्वत को बनाने का, बल्कि क्षणभंगुर में ही गहरा प्रवेश करते हैं। अपनी दृष्टि को एकाग्र करते हैं। और क्षणभंगुर की परतों को पार करते हैं। क्षणभंगुर लहरों के नीचे वे शाश्वत के सागर को उपलब्ध कर लेते हैं।

कृष्ण कहते हैं, इस प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है।

उसके पास ही आंख है, वही आंख वाला है, वही प्रज्ञावान है, जो इस सारी क्षणभंगुरता की धारा के पीछे समभाव से स्थित शाश्वत को देख लेता है।

एक बच्चा पैदा हुआ। आप देखते हैं, जीवन आया। फिर वह बच्चा जवान हुआ, फिर बूढ़ा हुआ और फिर मरघट पर आप उसे विदा कर आए। और आप देखते हैं, मौत आ गई।

कभी इस जन्म और मौत दोनों के पीछे समभाव से स्थित कोई चीज आपको दिखाई पड़ी? जन्म दिख जाता है, मृत्यु दिख जाती है। लेकिन जन्म और मृत्यु के भीतर जो छिपा हुआ जीवन है, वह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि जन्म के पहले भी जीवन था, और मृत्यु के बाद भी जीवन होगा।

मृत्यु और जन्म जीवन की विराट व्यवस्था में केवल दो घटनाएं हैं। जन्म एक लहर है और मृत्यु लहर का गिर जाना है। लेकिन जिससे लहर बनी थी, वह जो सागर था, वह जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी होगा। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता।

तो जन्म के समय हम बैंड-बाजे बजा लेते हैं कि जीवन आया, उत्सव हुआ। फिर मृत्यु के समय हम रो-धो लेते हैं कि जीवन गया, उत्सव समाप्त हुआ, मौत घट गई। लेकिन दोनों स्थितियों में हम चूक गए उसे देखने से, जो न कभी पैदा होता है और न कभी नष्ट होता है। पर हमारी आंखें उसको नहीं देख पातीं।

अगर हम जन्म और जीवन के भीतर परम जीवन को देख पाएं, तो कृष्ण कहते हैं, तो तुम्हारे पास आंख है।

तो आंख की एक परिभाषा हुई कि परिवर्तनशील में जो शाश्वत को देख ले। जहां सब बदल रहा हो, वहां उसे देख ले, जो कभी नहीं बदलता है। वह आंख वाला है।

इसलिए हमने इस मुल्क में फिलासफी को दर्शन कहा है। फिलासफी को हमने दर्शन कहा है। दर्शन का अर्थ है यह, जो देख ले शाश्वत को परिवर्तनशील में। बनाने की जरूरत नहीं है; हमारे बनाए वह न बनेगा। वह मौजूद है। वह जो परिवर्तन है, वह केवल ऊपर की पर्त है, परदा है। उसके भीतर वह छिपा है, चिरंतन। हम सिर्फ परदे को हटाकर देखने में सफल हो जाएं।

हम कब तक सफल न हो पाएंगे? जब तक हम अपने गृह-उद्योग जारी रखेंगे और शाश्वत को बनाने की कोशिश करते रहेंगे। जब तक हम परिवर्तन के विपरीत अपना ही सनातन बनाने की कोशिश करेंगे, तब तक हम परिवर्तन में छिपे शाश्वत को न देख पाएंगे।

गृहस्थ का आध्यात्मिक अर्थ होता है, जो अपना शाश्वत बनाने में लगा है। संन्यस्थ का आध्यात्मिक अर्थ होता है, जो अपना शाश्वत नहीं बनाता, जो परिवर्तन में शाश्वत की खोज में लगा है।

गृहस्थ का अर्थ है, घर बनाने वाला। संन्यस्थ का अर्थ है, घर खोजने वाला। संन्यासी उस घर को खोज रहा है, जो शाश्वत है ही, जिसको किसी ने बनाया नहीं। वही परमात्मा है, वही असली घर है। और जब तक उसको नहीं पा लिया, तब तक हम घरविहीन, होमलेस, भटकते ही रहेंगे।

गृहस्थ वह है, जो परमात्मा की फिक्र नहीं करता। यह चारों तरफ परिवर्तन है, इसके बीच में पत्थर की मजबूत दीवालें बनाकर अपना घर बना लेता है खुद। और उस घर को सोचता है, मेरा घर है, मेरा आवास है।

गृहस्थ का अर्थ है, जिसका घर अपना ही बनाया हुआ है। संन्यस्थ का अर्थ है, जो उस घर की तलाश में है जो अपना बनाया हुआ नहीं है, जो है ही।

दो तरह के शाश्वत हैं, एक शाश्वत जो हम बनाते हैं, वे झूठे ही होने वाले हैं। हमसे क्या शाश्वत निर्मित होगा! शाश्वत तो वह है, जिससे हम निर्मित हुए हैं। आदमी जो भी बनाएगा, वह टूट जाएगा, बिखर जाएगा। आदमी जिससे बना है, जब तक उसको न खोज ले, तब तक सनातन, शाश्वत, अनादि, अनंत का कोई अनुभव नहीं होता।

और जब तक उसका अनुभव न हो जाए, तब तक हमारे जीवन में चिंता, पीड़ा, परेशानी रहेगी। क्योंकि जहां सब कुछ बदल रहा है, वहां निश्चिंत कैसे हुआ जा सकता है? जहां पैर के नीचे से जमीन खिसकी जा रही

हो, वहां कैसे निश्चिंत रहा जा सकता है? जहां हाथ से जीवन की रेत खिसकती जाती हो, और जहां एक-एक पल जीवन रिक्त होता जाता हो और मौत करीब आती हो, वहां कैसे शांत रहा जा सकता है? वहां कोई कैसे आनंदित हो सकता है? जहां चारों तरफ घर में आग लगी हो, वहां कैसे उत्सव और कैसे नृत्य चल सकता है?

असंभव है। तब एक ही उपाय है कि इस आग लगे हुए घर के भीतर हम छोटा और घर बना लें, उसमें छिप जाएं अपने उत्सव को बचाने के लिए। लेकिन वह बच नहीं सकता। परिवर्तन की धारा, जो भी हम बनाएंगे, उसे तोड़ देगी।

बुद्ध का वचन बहुत कीमती है। बुद्ध ने कहा है, ध्यान रखना, जो बनाया जा सकता है, वह मिटेगा। बनाना एक छोर है, मिटना दूसरा छोर है। और जैसे एक डंडे का एक छोर नहीं हो सकता, दूसरा भी होगा ही। चाहे आप कितना ही छिपाओ, भुलाओ, डंडे का दूसरा छोर भी होगा ही। या कि आप सोचते हैं कोई ऐसा डंडा हो सकता है, जिसमें एक ही छोर हो? वह असंभव है।

तो बुद्ध कहते हैं, जो बनता है, वह मिटेगा। जो निर्मित होता है, वह बिखरेगा। दूसरे छोर को भुलाओ मत। वह दूसरा छोर है ही, उससे बचा नहीं जा सकता। लेकिन हमारी आंखें अंधी हैं। और हम ऐसे अंधे हैं, हमारी आंखों पर ऐसी परतें हैं कि जिसका हिसाब नहीं।

मैं एक उजड़े हुए नगर में मेहमान था। वह नगर कभी बहुत बड़ा था। लोग कहते हैं कि कोई सात लाख उसकी आबादी थी। रही होगी, क्योंकि खंडहर गवाही देते हैं। केवल सात सौ वर्ष पहले ही वह नगर आबाद था। सात लाख उसकी आबादी थी। और अब मुश्किल से नौ सौ आदमी उस नगर में रहते हैं। नौ सौ कुछ की संख्या तख्ती पर लगी हुई है।

उस नगर में इतनी-इतनी बड़ी मस्जिदें हैं कि जिनमें दस हजार लोग एक साथ नमाज पढ़ सकते थे। इतनी-इतनी बड़ी धर्मशालाएं हैं, जिनमें अगर गांव में एक लाख लोग भी मेहमान हो जाएं अचानक, तो भी कोई अड़चन न होगी। आज वहां केवल नौ सौ कुछ आदमी रहते हैं। सारा नगर खंडहर हो गया है।

जिन मित्र के साथ मैं ठहरा था, वे अपना नया मकान बनाने की योजना कर रहे थे। वे इतने भावों से भरे थे नए मकान के; मुझे नक्शे दिखाए, माडल दिखाए कि ऐसा बनाना है, ऐसा बनाना है। और उनके चारों तरफ खंडहर फैले हुए हैं! उनकी भी उम्र उस समय कोई साठ के करीब थी। अब तो वे हैं ही नहीं। चल बसे। मकान बनाने की योजना कर रहे थे।

उनकी सारी योजनाएं सुनकर मैंने कहा, लेकिन एक बार तुम घर के बाहर जाकर ये खंडहर भी तो देखो। उन्हें मेरी बात सुनकर ऐसा लगा, जैसे मैं भी कहां खुशी की बात में एक दुख की बात बीच में ले आया। वे बड़े उदास हो गए। उन्होंने मेरी बात टालने की कोशिश की। उन्होंने कहा कि नहीं, मैंने खंडहर तो देखे हैं। फिर लेकिन वही माडल, वही चर्चा।

मैंने कहा, आपने नहीं देखे। क्योंकि जिन्होंने ये बनाए थे, उन्होंने आपसे भी बहुत ज्यादा सोचा होगा। इतने बड़े महल आप नहीं बना सकोगे। आज न बनाने वाले हैं, न उनके महल बचे। सब मिट्टी हो गया है। आप जो बनाओगे वह मिट्टी हो जाएगा, इसको ध्यान में रखकर बनाना। वे कहने लगे कि आप कुछ ऐसी बातें करते हो कि मन उदास हो जाता है। अकारण आप उदास कर देते हैं।

मैं आपको उदास नहीं कर रहा हूं। दूसरा छोर देखना जरूरी है। दूसरे छोर को देखकर बनाओ। दूसरे छोर को जानते हुए बनाओ। जो भी बनाएंगे, वह मिट जाएगा।

हमारा बनाया हुआ शाश्वत नहीं हो सकता। हम शाश्वत नहीं हैं। लेकिन हमारे भीतर और इस परिवर्तन के भीतर कुछ है, जो शाश्वत है। अगर हम उसे देख लें... ।

उसे देखा जा सकता है। परिवर्तन को जो साक्षीभाव से देखने लगे, थोड़े दिन में परिवर्तन की पर्त हट जाती है और शाश्वत के दर्शन होने शुरू हो जाते हैं। परिवर्तन से जो लड़े नहीं, परिवर्तन को जो देखने लगे; परिवर्तन के विपरीत कोई उपाय न करे, परिवर्तन के साथ जीने लगे; परिवर्‌तन से भागे नहीं, परिवर्तन में बहने लगे; न कोई लड़ाई, न कोई झगड़ा, न विपरीत में कोई आयोजन; जो परिवर्तन को राजी हो जाए, सिर्फ जागा हुआ देखता रहे। धीरे-धीरे... । परिवर्तन की पर्त बहुत पतली है। होगी ही। परिवर्तन की पर्त बहुत मोटी नहीं हो सकती, बहुत पतली है, तभी तो क्षण में बदल जाती है। धीरे-धीरे परिवर्तन की पर्त मखमल की पर्त मालूम होने लगती है। उसे आप हटा लेते हैं। उसके पार शाश्वत दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, नाशरहित परमेश्वर को जो समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है। क्योंकि वह पुरुष समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता है। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

क्योंकि वह पुरुष समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता है। इसे समझ लें। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

हम अपने ही द्वारा अपने आपको नष्ट करने में लगे हैं। हम जो भी कर रहे हैं, उसमें हम अपने को नष्ट कर रहे हैं। लोग, अगर मैं उनसे कहता हूं कि ध्यान करो, प्रार्थना करो, पूजा में उतरो, तो वे कहते हैं, समय कहां! और वे ही लोग ताश खेल रहे हैं। उनसे मैं पूछता हूं, क्या कर रहे हो? वे कहते हैं, समय काट रहे हैं। उनसे मैं कहूं, ध्यान करो। वे कहते हैं, समय कहां! होटल में घंटों बैठकर वे सिगरेट फूंक रहे हैं, चाय पी रहे हैं, व्यर्थ की बातें कर रहे हैं। उनसे मैं पूछता हूं, क्या कर रहे हो? वे कहते हैं, समय नहीं कटता, समय काट रहे हैं।

बड़े मजे की बात है। जब भी कोई काम की बात हो, तो समय नहीं है। और जब कोई बे-काम बात हो, तो हमें इतना समय है कि उसे काटना पड़ता है। ज्यादा है हमारे पास समय!

कितनी जिंदगी है आपके पास? ऐसा लगता है, बहुत ज्यादा है; जरूरत से ज्यादा है। आप कुछ खोज नहीं पा रहे, क्या करें इस जिंदगी का। तो ताश खेलकर काट रहे हैं। सिगरेट पीकर काट रहे हैं। शराब पीकर काट रहे हैं। सिनेमा में बैठकर काट रहे हैं। फिर भी नहीं कटती, तो सुबह जिस अखबार को पढ़ा, उसे दोपहर को फिर पढ़कर काट रहे हैं। शाम को फिर उसी को पढ़ रहे हैं।

कटती नहीं जिंदगी; ज्यादा मालूम पड़ती है आपके पास। समय बहुत मालूम पड़ता है और आप काटने के उपाय खोज रहे हैं।

पश्चिम में विचारक बहुत परेशान हैं। क्योंकि काम के घंटे कम होते जा रहे हैं। और आदमी के पास समय बढ़ता जा रहा है। और काटने के उपाय कम पड़ते जा रहे हैं। बहुत मनोरंजन के साधन खोजे जा रहे हैं, फिर भी समय नहीं कट रहा है।

तो पश्चिम के विचारक घबड़ाए हुए हैं कि अगर पचास साल ऐसा ही चला, तो पचास साल में मुश्किल से एक घंटे का दिन हो जाएगा काम का। वह भी मुश्किल से। वह भी सभी लोगों के लिए काम नहीं मिल सकेगा। क्योंकि टेक्नालाजी, यंत्र सब सम्हाल लेंगे। आदमी खाली हो जाएगा।

बड़े से बड़ा जो खतरा पश्चिम में आ रहा है, वह यह कि जब आदमी खाली हो जाएगा और समय काटने को कुछ भी न होगा, तब आदमी क्या करेगा? आदमी बहुत उपद्रव मचा देगा। वह कुछ भी काटने लगेगा समय काटने के लिए। वह कुछ भी करेगा; समय काटेगा। क्योंकि बिना समय काटे वह नहीं रह सकता।

आपको पता नहीं चलता। आप कहते रहते हैं कि कब जिंदगी के उपद्रव से छुटकारा हो! कब दफ्तर से छूटूं! कब नौकरी से मुक्ति मिले! कब रिटायर हो जाऊं! लेकिन जो रिटायर होते हैं, उनकी हालत देखें। रिटायर होते ही से जिंदगी बेकार हो जाती है। समय नहीं कटता।

मनसविद कहते हैं कि रिटायर होते ही आदमी की दस साल उम्र कम हो जाती है। अगर वह काम करता रहता, दस साल और जिंदा रहता। क्योंकि अब कहां काटे? तो अपने को ही काट लेता है। अपने को ही नष्ट कर लेता है।

यह सूत्र कहता है कि जो व्यक्ति परिवर्तन के भीतर छिपे हुए शाश्वत को समभाव से देख लेता है, वह फिर अपने आपको नष्ट नहीं करता।

नहीं तो हम नष्ट करेंगे। हम करेंगे क्या? इस क्षणभंगुर के प्रवाह में हम भी क्षणभंगुर का एक प्रवाह हो जाएंगे। और हम क्या करेंगे? इस क्षणभंगुर के प्रवाह में, इससे लड़ने में हम कुछ इंतजाम करने में, सुरक्षा बनाने में, मकान बनाने में, धन इकट्ठा करने में, अपने को बचाने में सारी शक्ति लगा देंगे और यह सब बह जाएगा। हम बचेंगे नहीं। वह सब जो हमने किया, व्यर्थ चला जाएगा।

थोड़ा सोचें, आपने जो भी जिंदगी में किया है, जिस दिन आप मरेंगे, उसमें से कितना सार्थक रह जाएगा? अगर आज ही आपकी मौत आ जाए, तो आपने बहुत काम किए हैं--अखबार में नाम छपता है, फोटो छपती है, बड़ा मकान है, बड़ी गाड़ी है, धन है, तिजोरी है, बैंक बैलेंस है, प्रतिष्ठा है, लोग नमस्कार करते हैं, लोग मानते हैं, डरते हैं, भयभीत होते हैं, जहां जाएं, लोग उठकर खड़े होकर स्वागत करते हैं--लेकिन मौत आ गई आज। इसमें से तब कौन-सा सार्थक मालूम पड़ेगा? मौत आते ही यह सब व्यर्थ हो जाएगा। और आप खाली हाथ विदा होंगे।

आपने जिंदगी में कुछ भी कमाया नहीं; सिर्फ गंवाया। आपने जिंदगी गंवाई। आपने अपने को काटा और नष्ट किया। आपने अपने को बेचा और व्यर्थ की चीजें खरीद लाए। आपने आत्मा गंवाई और सामान इकट्ठा कर लिया।

जीसस ने बार-बार कहा है कि क्या होगा फायदा, अगर तुमने पूरी दुनिया भी जीत ली और अपने को गंवा दिया? क्या पाओगे तुम, अगर तुम सारे संसार के मालिक भी हो गए और अपने ही मालिक न रहे?

महावीर ने बहुत बार कहा है कि जो अपने को पा लेता है, वह सब पा लेता है। जो अपने को गंवा देता है, वह सब गंवा देता है।

हम सब अपने को गंवा रहे हैं। कोई फर्नीचर खरीद ला रहा है आत्मा बेचकर। लेकिन हमें पता नहीं चलता कि आत्मा बेची, क्योंकि आत्मा का हमें पता ही नहीं है। हमें पता ही नहीं, हम कब उसको बेच देते हैं; कब हम उसको खो आते हैं। जिसका हमें पता ही नहीं, वह संपदा कब रिक्त होती चली जाती है।

चार पैसे के लिए आदमी बेईमानी कर सकता है, झूठ बोल सकता है, धोखा दे सकता है। पर उसे पता नहीं कि धोखा, बेईमानी, झूठ बोलने में वह कुछ गंवा भी रहा है, वह कुछ खो भी रहा है। वह जो खो रहा है, उसे पता नहीं है। वह जो कमा रहा है चार पैसे, वह उसे पता है। इसलिए कौड़ियां हम इकट्ठी कर लेते हैं और हीरे खो देते हैं।

कृष्ण कहते हैं, वही आदमी अपने को नष्ट करने से बचा सकता है, जिसको सनातन शाश्वत का थोड़ा-सा बोध आ जाए। उसके बोध आते ही अपने भीतर भी शाश्वत का बोध आ जाता है।

जो हम बाहर देखते हैं, वही हमें भीतर दिखाई पड़ता है। जो हम भीतर देखते हैं, वही हमें बाहर दिखाई पड़ता है। बाहर और भीतर दो नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

अगर मुझे सागर की लहरों में सागर दिखाई पड़ जाए, तो मुझे मेरे मन की लहरों में मेरी आत्मा भी दिखाई पड़ जाएगी। अगर एक बच्चे के जन्म और एक बूढ़े की मृत्यु में लहरें मालूम पड़ें और भीतर छिपे हुए जीवन की झलक मुझे आ जाए, तो मुझे अपने बुढ़ापे, अपनी जवानी, अपने जन्म, अपनी मौत में भी जीवन की शाश्वतता का पता हो जाएगा। इस बोध का नाम ही दृष्टि है। और इस बोध से ही कोई परम गति को प्राप्त होता है।

और जो पुरुष संपूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किए हुए देखता है तथा आत्मा को अकर्ता देखता है, वही देखता है।

वही जो मैं आपसे कह रहा था। चाहे आप ऐसा समझें कि सब परमात्मा कर रहा है, तब भी आप अकर्ता हो जाते हैं। सांख्य कहता है, सभी कुछ प्रकृति कर रही है, तब भी आप अकर्ता हो जाते हैं।

मूल बिंदु है, अकर्ता हो जाना। नान-डुअर, आप करने वाले नहीं हैं। किसी को भी मान लें कि कौन कर रहा है, इससे फर्क नहीं पड़ता। सांख्य की दृष्टि को कृष्ण यहां प्रस्तावित कर रहे हैं।

वे कह रहे हैं, जो पुरुष संपूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किए हुए देखता है तथा आत्मा को अकर्ता देखता है, वही देखता है। और यह पुरुष जिस काल में भूतों के न्यारे-न्यारे भाव को एक परमात्मा के संकल्प के आधार पर स्थित देखता है तथा उस परमात्मा के संकल्प से ही संपूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उस काल में सच्चिदानंदघन को प्राप्त होता है।

जो कुछ हो रहा है, जो भी कर्म हो रहे हैं, वे प्रकृति से हो रहे हैं। और जो भी भाव हो रहे हैं, वह परमात्मा से हो रहे हैं, वह पुरुष से हो रहे हैं।

पुरुष और प्रकृति दो तत्व हैं। सारे कर्म प्रकृति से हो रहे हैं और सारे भाव पुरुष से हो रहे हैं। इन दोनों को इस भांति देखते ही आपके भीतर का जो आत्यंतिक बिंदु है, वह दोनों के बाहर हो जाता है। न तो वह भोक्ता रह जाता है और न कर्ता रह जाता है, वह देखने वाला ही हो जाता है। एक तरफ देखता है प्रकृति की लीला और एक तरफ देखता है भाव की, पुरुष की लीला। और दोनों के पीछे सरक जाता है। वह तीसरा बिंदु हो जाता है, असली पुरुष हो जाता है। तो कृष्ण कहते हैं, वह सच्चिदानंदघन को प्राप्त हो जाता है।

ऐसा जो देखता है, वही देखता है। बाकी सब अंधे हैं।

जीसस बहुत बार कहते हैं कि अगर तुम्हारे पास आंखें हों, तो देख लो। अगर तुम्हारे पास कान हों, तो सुन लो।

जिनसे वे बोल रहे थे, उनके पास ऐसी ही आंखें थीं, जैसी आपके पास आंखें हैं। जिनसे वे बोल रहे थे, वे कोई बहरे लोग नहीं थे। कोई गूंगे-बहरों की भीड़ में नहीं बोल रहे थे। लेकिन वे निरंतर कहते हैं कि आंखें हों, तो देख लो। कान हों, तो सुन लो। क्या मतलब है उनका?

मतलब यह है कि हमारे पास आंखें तो जरूर हैं, लेकिन अब तक हमने उनसे देखा नहीं। या जो हमने देखा है, वह देखने योग्य नहीं है। हमारे पास कान तो जरूर हैं, लेकिन हमने उनसे कुछ सुना नहीं; और जो हमने सुना

है, न सुनते तो कोई हर्ज न था। चूक जाते, तो कुछ भी न चूकते। न देख पाते, न सुन पाते जो हमने सुना और देखा है, तो कोई हानि नहीं थी।

थोड़ा हिसाब लगाया करें कभी-कभी, कि जिंदगी में जो भी आपने देखा है, अगर न देखते, क्या चूक जाता? भला ताजमहल देखे हों। न देखते, तो क्या चूक जाता? और जो भी आपने सुना है, अगर न सुनते, तो क्या चूक जाता?

अगर आपके पास ऐसी कोई चीज देखने में आई हो, जो आप कहें कि उसे अगर न देखते, तो जरूर कुछ चूक जाता, और जीवन अधूरा रह जाता। और ऐसा कुछ सुना हो, कि उसे न सुना होता, तो कानों का होना व्यर्थ हो जाता। अगर कुछ ऐसा देखा और ऐसा सुना हो कि मौत भी उसे छीन न सके और मौत के क्षण में भी वह आपकी संपदा बनी रहे, तो आपने आंख का उपयोग किया, तो आपने कान का उपयोग किया, तो आपका जीवन सार्थक हुआ है।

कृष्ण कहते हैं, वही देखता है, जो इतनी बातें कर लेता है--परिवर्तन में शाश्वत को पकड़ लेता है, प्रवाह में नित्य को देख लेता है, बदलते हुए में न बदलते हुए की झलक पकड़ लेता है। वही देखता है।

कर्तृत्व प्रकृति का है। भोक्तृत्व पुरुष का है। और जो दोनों के बीच साक्षी हो जाता है। जो दोनों से अलग कर लेता है, कहता है, न मैं भोक्ता हूं और न मैं कर्ता हूं... ।

सांख्य की यह दृष्टि बड़ी गहन दृष्टि है। कभी-कभी वर्ष में तीन सप्ताह के लिए छुट्टी निकाल लेनी जरूरी है।

छुट्टियां हम निकालते हैं, लेकिन हमारी छुट्टियां, जो हम रोज करते हैं, उससे भी बदतर होती हैं। हम छुट्टियों से थके-मांदे लौटते हैं। और घर आकर बड़े प्रसन्न अनुभव करते हैं कि चलो, छुट्टी खत्म हुई; अपने घर लौट आए। छुट्टी है ही नहीं। हमारा जो हॉली-डे है, जो अवकाश का समय है, वह भी हमारे बाजार की दुनिया की ही दूसरी झलक है। उसमें कोई फर्क नहीं है।

लोग पहाड़ पर जाते हैं। और वहां भी रेडियो लेकर पहुंच जाते हैं। रेडियो तो घर पर ही उपलब्ध था। वह पहाड़ पर जो सूक्ष्म संगीत चल रहा है, उसे सुनने का उन्हें पता ही नहीं चलता। वहां भी जाकर रेडियो वे उसी तेज आवाज से चला देते हैं। उससे उनको तो कोई शांति नहीं मिलती, पहाड़ की शांति जरूर थोड़ी खंडित होती है।

सारा उपद्रव लेकर आदमी अवकाश के दिनों में भी पहुंच जाता है जंगलों में। सारा उपद्रव लेकर! अगर उस उपद्रव में जरा भी कमी हो, तो उसको अच्छा नहीं लगता। वह सारा उपद्रव वहां जमा लेता है।

इसलिए सभी सुंदर स्थान खराब हो गए हैं। क्योंकि वहां भी होटल खड़ी करनी पड़ती है। वहां भी सारा उपद्रव वही लाना पड़ता है, जो जहां से आप छोड़कर आ रहे हैं, वही सारा उपद्रव वहां भी ले आना पड़ता है जहां आप जा रहे हैं।

अगर यह कृष्ण का सूत्र समझ में आए, तो इसका उपयोग, आप वर्ष में तीन सप्ताह के लिए अवकाश ले लें। अवकाश का मतलब है, एकांत जगह में चले जाएं। और इस भाव को गहन करें कि जो भी कर्म हो रहा है, वह प्रकृति में हो रहा है। और जो भी भाव हो रहा है, वह मन में हो रहा है। और मैं दोनों का द्रष्टा हूं, मैं सिर्फ देख रहा हूं। जस्ट ए वाचर ऑन दि हिल्स, पहाड़ पर बैठा हुआ मैं सिर्फ एक साक्षी हूं। सारा कर्म और भाव का जगत नीचे रह गया। सारा भाव और कर्म मेरे चारों तरफ चल रहा है और मैं बीच में खड़ा हुआ देख रहा हूं। और मैं तीन सप्ताह सिर्फ देखूंगा। मैं देखने को नहीं भूलूंगा। मैं स्मरण रखूंगा उठते-बैठते, चाहे कितनी ही बार

चूक जाऊं; बार-बार अपने को लौटा लूंगा और ख्याल रखूंगा कि मैं सिर्फ देख रहा हूं, मैं सिर्फ साक्षी हूं। मुझे कोई निर्णय नहीं लेना है, क्या बुरा, क्या भला; क्या करना, क्या नहीं करना। मैं कोई निर्णय न लूंगा। मैं सिर्फ देखता रहूंगा।

तीन सप्ताह इस पर आप प्रयोग करें, तो कृष्ण का सूत्र समझ में आएगा। तो शायद आपकी आंख से थोड़ी धूल हट जाए और आपको पहली दफा जिंदगी दिखाई पड़े। आंख से थोड़ी धूल हट जाए और आंख ताजी हो जाए। और आपको बढ़ते हुए वृक्ष में वह भी दिखाई पड़ जाए, जो भीतर छिपा है। बहती हुई नदी में वह दिखाई पड़ जाए, जो कभी नहीं बहा। चलती, सनसनाती हवाओं में वह सुनाई पड़ जाए, जो बिल्कुल मौन है। सब तरफ आपको परिवर्तन के पीछे थोड़ी-सी झलक उसकी मिल सकती है, जो शाश्वत है।

लेकिन आपकी आंख पर जमी हुई धूल थोड़ी हटनी जरूरी है। उस धूल को हटाने का उपाय है, साक्षी के भाव में प्रतिष्ठा। अगर आप तीन सप्ताह अवकाश ले लें, बाजार से नहीं, कर्म से, कर्ता से; भोग से नहीं, भोक्ता से... ।

भोग से भाग जाने में कोई कठिनाई नहीं है। आप अपनी पत्नी को छोड़कर भाग सकते हैं जंगल में। पत्नी भाग सकती है मंदिर में पति को छोड़कर। भोग से भागने में कोई अड़चन नहीं है, क्योंकि भोग तो बाहर है। लेकिन भोक्ता भीतर बैठा हुआ छिपा है, वह हमारा मन है। वह वहां भी भोगेगा। वह वहां भी मन में ही भोग के संसार निर्मित कर लेगा। वही रस लेने लगेगा।

वहां भीतर से मैं भोक्ता नहीं हूं, भीतर से मैं कर्ता नहीं हूं, ऐसी दोनों धाराओं के पीछे साक्षी छिपा है। उस साक्षी को खोदना है। उसको अगर आप खोद लें, तो आपको आंख उपलब्ध हो जाएगी। और आंख हो, तो दर्शन हो सकता है।

शास्त्र पढ़ने से नहीं होगा दर्शन; दृष्टि हो, तो दर्शन हो सकता है। शब्द सुन लेने से नहीं होगा सत्य का अनुभव; आंख हो, तो सत्य दिखाई पड़ सकता है। क्योंकि सत्य प्रकाश जैसा है। अंधे को हम कितना ही समझाएं कि प्रकाश कैसा है, हम न समझा पाएंगे। अंधे की तो आंख की चिकित्सा होनी जरूरी है।

ऐसा हुआ कि एक गांव में बुद्ध ठहरे, और एक अंधे आदमी को लोग उनके पास लाए। और उन लोगों ने कहा कि यह अंधा मित्र है हमारा, बहुत घनिष्ठ मित्र है। लेकिन यह बड़ा तार्किक है। और हम पांच आंख वाले भी इसको समझा नहीं पाते कि प्रकाश है। और यह हंसता है और हमारे तर्क सब तोड़ देता है। और कहता है कि तुम मुझे अंधा सिद्ध करने के लिए प्रकाश का सिद्धांत गढ़ लिए हो।

यह अंधा आदमी कहता है कि प्रकाश वगैरह है नहीं। तुम सिर्फ मुझे अंधा सिद्ध करना चाहते हो, इसलिए प्रकाश का सिद्धांत गढ़ लिए हो, तुम सिद्ध करो। अगर प्रकाश है, तो मैं उसे छूकर देखना चाहता हूं। क्योंकि जो भी चीज है, वह छूकर देखी जा सकती है। अगर तुम कहते हो, छूने में संभव नहीं है, तो मैं चखकर देख सकता हूं। अगर तुम कहते हो, उसमें स्वाद नहीं है, तो मैं सुन सकता हूं। तुम प्रकाश को बजाओ। मेरे कान सुनने में समर्थ हैं। अगर तुम कहते हो, वह सुना भी नहीं जा सकता, तो तुम मुझे प्रकाश की गंध दो, तो मैं सूंघ लूं।

मेरे पास चार इंद्रियां हैं। तुम इन चारों में से किसी से प्रकाश से मेरा मिलन करवा दो। और अगर तुम चारों से मिलन करवाने में असमर्थ हो, तो तुम झूठी बातें मत करो। न तो तुम्हारे पास आंख है और न मेरे पास आंख है। लेकिन तुम चालाक हो और मैं सीधा-सादा आदमी हूं। और तुमने मुझे अंधा सिद्ध करने के लिए प्रकाश का सिद्धांत गढ़ लिया है।

उन पांचों मित्रों ने कहा कि इस अंधे को हम कैसे समझाएं? न हम चखा सकते, न स्पर्श करा सकते, न कान में ध्वनि आ सकती। प्रकाश को कैसे बजाओ? तो हम आपके पास ले आए हैं। और आप हैं बुद्ध पुरुष, आप हैं परम ज्ञान को उपलब्ध। इतना ही काफी होगा कि हमारे अंधे मित्र को आप प्रकाश के संबंध में कुछ समझा दें।

बुद्ध ने कहा, तुम गलत आदमी के पास आ गए। मैं तो समझाने में भरोसा ही नहीं करता। तुम किसी वैद्य के पास ले जाओ इस अंधे आदमी को। इसकी आंख का इलाज करवाओ। समझाने से क्या होगा? तुम पागल हो? अंधे को समझाने बैठे हो। इसमें तुम्हारा पागलपन सिद्ध होता है। तुम इसकी चिकित्सा करवाओ। तुम इसे वैद्य के पास ले जाओ। इसकी आंख अगर ठीक हो जाए, तो तुम्हारे बिना तर्क के भी, तुम्हारे बिना समझाए यह प्रकाश को जानेगा। और तुम अगर इनकार करोगे कि प्रकाश नहीं है, तो यह सिद्ध करेगा कि प्रकाश है। आंख के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है।

संयोग की बात थी कि वे उसे वैद्य के पास ले गए। उन्हें यह कभी ख्याल ही नहीं आया था। वे सभी पंडित थे, सभी ब्राह्मण थे, सभी ज्ञानी थे। सब तरह से तर्क लगाकर समझाने की कोशिश कर ली थी। यह उन्हें ख्याल ही चूक गया था कि आंख न हो तो प्रकाश को समझाया कैसे जाए! प्रकाश कोई समझाने की बात नहीं, अनुभव की बात है।

चिकित्सक ने कहा कि पहले क्यों न ले आए? इस आदमी की आंख अंधी नहीं है, केवल जाली है। और छः महीने की दवा के इलाज से ही जाली कट जाएगी। यह आदमी देख सकेगा। तुम इतने दिन तक कहां थे?

उन्होंने कहा, हम तो तर्क में उलझे थे। हमें न इस अंधे आदमी की आंख से कोई प्रयोजन था। हमें तो अपने सिद्धांत समझाने में रस था। वह तो बुद्ध की कृपा कि उन्होंने कहा कि चिकित्सक के पास ले जाओ।

छः महीने बाद उस आदमी की आंख ठीक हो गई। तब तक बुद्ध तो बहुत दूर जा चुके थे। लेकिन वह आदमी बुद्ध को खोजता हुआ उनके गांव तक पहुंचा। उनके चरणों पर गिर पड़ा। बुद्ध को तो ख्याल भी नहीं रहा था कि वह कौन है। बुद्ध ने पूछा, तू इतना क्यों आनंदित हो रहा है? तेरी क्या खुशी? इतना उत्सव किस बात का? तू किस बात का धन्यवाद देने आया है? मेरे चरणों में इतने आनंद के आंसू क्यों बहा रहा है? उसने कहा कि तुम्हारी कृपा। मैं यह कहने आया हूं कि प्रकाश है।

लेकिन प्रकाश तभी है, जब आंखें हैं।

कृष्ण कह रहे हैं, उस आदमी को मैं कहता हूं आंख वाला, जो परिवर्तन में शाश्वत को देख लेता है।

पांच मिनट रुकें। कोई बीच से उठे नहीं। कीर्तन पूरा हो, तब जाएं।

ग्यारहवां प्रवचन

साधना और समझ

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।

शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।। 31।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।

सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।। 32।।

हे अर्जुन, अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न करता है और न लिपायमान होता है।

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता है, वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ भी आत्मा गुणातीत होने के कारण देह के गुणों से लिपायमान नहीं होता है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, आप ध्यान या साधना पर इतना जोर क्यों देते हैं? आध्यात्मिक, दार्शनिक ग्रंथों का पठन-पाठन या कृष्णमूर्ति या आप जैसे ज्ञानियों का श्रवण और स्वयं चिंतन-मनन, इनसे जो समझ आती है, क्या वह परिवर्तन के लिए पर्याप्त नहीं है? क्या यही साधना नहीं है? ध्यान को बैठने का फिर क्या प्रयोजन है? ध्यान का अर्थ अगर साक्षी-भाव है, तो दिनभर सब जगह हर काम करते वक्त भी पूरा अवसर है। फिर ध्यान करने की, अलग से बैठने की क्या जरूरत है?

समझ काफी है, लेकिन समझ केवल सुन लेने या पढ़ लेने से उपलब्ध नहीं होती। समझ को भी भूमि देनी पड़ती है। उसके बीज को भी भूमि देनी पड़ती है। बीज में पूरी संभावना है कि वह वृक्ष हो जाए, लेकिन बीज को भी जमीन में न डालें, तो वह वृक्ष नहीं होगा।

ध्यान समझ के लिए भूमि है। समझ काफी है, उससे जीवन में क्रांति हो जाएगी। लेकिन समझ का बीज ध्यान के बिना टूटेगा ही नहीं।

और अगर समझ आप में पैदा होती हो बिना ध्यान के, तो कृष्णमूर्ति को या मुझे सुनने का भी क्या प्रयोजन है! और मुझे वर्षों से बहुत लोग सुनते हैं, कृष्णमूर्ति को चालीस वर्षों से बहुत लोग सुनते हैं। अब भी सुनने जाते हैं। समझ अभी भी पैदा नहीं हुई।

चालीस वर्ष से जो आदमी कृष्णमूर्ति को सुन रहा है, अब उसको कृष्णमूर्ति को सुनने जाने की क्या जरूरत है अगर समझ पैदा हो गई हो? अब भी सुनने जाता है। और कृष्णमूर्ति चालीस साल से एक ही बात कह रहे हैं कि समझ पैदा करो। वह अभी चालीस वर्ष तक सुनकर भी पैदा नहीं हुई है। वह चार हजार वर्ष सुनकर भी पैदा नहीं होगी।

न तो सुनने से समझ पैदा हो सकती है, न पढ़ने से समझ पैदा हो सकती है। ध्यान की भूमि में ही समझ पैदा हो सकती है। हां, सुनने से ध्यान की तरफ जाना हो सकता है। पढ़ने से ध्यान की तरफ जाना हो सकता है।

और अगर समग्र मन से सुनें, तो सुनना भी ध्यान बन सकता है। और अगर समग्र मन से पढ़ें, तो पढ़ना भी ध्यान बन सकता है। लेकिन ध्यान जरूरी है।

ध्यान का अर्थ समझ लें। ध्यान का अर्थ है, मन की ऐसी अवस्था जहां कोई तरंग नहीं है। निस्तरंग चैतन्य में ही समझ का जन्म होता है।

यह निस्तरंग चैतन्य कई तरह से पैदा हो सकता है। किसी को प्रार्थना से पैदा हो सकता है। किसी को पूजा से पैदा हो सकता है। किसी को नृत्य से, कीर्तन से पैदा हो सकता है। किसी को सुनने से पैदा हो सकता है। किसी को देखने से पैदा हो सकता है। किसी को मात्र बैठने से पैदा हो सकता है। किसी को योग की क्रियाओं से पैदा हो सकता है। किसी को तंत्र की क्रियाओं से पैदा हो सकता है।

निस्तरंग चित्त बहुत तरह से पैदा हो सकता है। और जिस तरह से आपको पैदा होता है, जरूरी नहीं है कि दूसरे को भी उसी तरह से पैदा हो। तो आपको खोजना पड़ेगा कि कैसे निस्तरंग चित्त पैदा हो!

निस्तरंग चित्त का नाम ही ध्यान है। तरंगायित चित्त का नाम मन है। वह जो उथल-पुथल से भरा हुआ मन है, उसमें कोई भी समझ पैदा नहीं हो सकती। क्योंकि वहां इतना भूकंप चल रहा है कि कोई बीज थिर नहीं हो सकता। अंकुरित होने के लिए अवसर ही नहीं है। इसलिए ध्यान पर इतना जोर है।

और अगर आप सोचते हों कि कृष्णमूर्ति का ध्यान पर जोर नहीं है, तो आप समझे ही नहीं। ध्यान शब्द का वे उपयोग नहीं करते हैं, क्योंकि उनको ऐसा ख्याल है कि ध्यान शब्द बहुत विकृत हो गया है। लेकिन कोई शब्द विकृत नहीं होते। और केवल नए शब्द चुन लेने से कोई फर्क नहीं पड़ता है।

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि मुझे सुनते समय सिर्फ सुनो!

वह ध्यान हो गया। कोई भी क्रिया करते वक्त अगर सिर्फ क्रिया की जाए और उसके संबंध में सोचा न जाए, तो ध्यान हो जाएगा। चलते वक्त अगर केवल चला जाए और कुछ भी मन में न करने दिया जाए, तो ध्यान हो जाएगा। भोजन करते वक्त अगर भोजन किया जाए और मन में उसके संबंध में कोई चिंतन न किया जाए, तो भोजन करना ध्यान हो जाएगा। अगर आप अपने चौबीस घंटे को ध्यान में बदल लेते हैं, तो बहुत अच्छा है।

लेकिन लोग बहुत बेईमान हैं। एक घंटा न बैठने के लिए वे कहेंगे, चौबीस घंटे ध्यान क्यों नहीं किया जा सकता! और चौबीस घंटे वे ध्यान करने वाले नहीं हैं। और एक घंटा बैठना न पड़े, इसलिए चौबीस घंटे पर टालेंगे।

अगर आप चौबीस घंटे ही ध्यान कर सकते हों, तो कौन आपको कहेगा कि घंटेभर करिए! आप मजे से चौबीस घंटे करिए। लेकिन चौबीस घंटे आप कर नहीं रहे हैं। और कर रहे होते, तो यहां मेरे पास पूछने को नहीं आना पड़ता।

क्या जरूरत है मेरे पास आने की? ध्यान नहीं है, इसलिए कहीं जाना पड़ता है, सुनना पड़ता है, समझना पड़ता है। ध्यान हो तो आपके भीतर ही पौधा खिल जाएगा। आपके पास दूसरे लोग आने लगेंगे। आपको जाने की जरूरत नहीं होगी। अपनी समझ आ जाए, तो फिर किसी से क्या समझना है!

लेकिन आदमी का मन ऐसा है कि अगर कहो कि घंटेभर बैठो, तो वह कहेगा, घंटेभर बैठने की क्या जरूरत है? चौबीस घंटे ध्यान नहीं किया जा सकता!

मजे से करिए, लेकिन कम से कम घंटे से शुरू तो करिए। एक घंटा भी ध्यान करना मुश्किल है। चौबीस घंटा तो बहुत मुश्किल है। जब ध्यान करने बैठेंगे, तब पता चलेगा कि एक क्षण को भी ध्यान हो जाए, तो बहुत बड़ी घटना है। क्योंकि मन चलता ही रहता है।

तो उचित है कि एक घंटा निकाल लें चौबीस घंटे में से अलग ध्यान के लिए ही, और अनुभव करें। जिस दिन एक घंटे में आपको लगे कि सधने लगी बात, घटने लगी बात, चौबीस घंटे पर फैला दें। फैलाना तो चौबीस घंटे पर ही है। क्योंकि जब तक जीवन पूरा ध्यानमय न हो जाए, तब तक कोई क्रांति न होगी। लेकिन शुरुआत कहीं से करनी पड़ेगी।

और फिर एक घंटे ध्यान का परिणाम चौबीस घंटे पर होता है। ठीक वैसे ही जैसे एक घंटा कोई सुबह व्यायाम कर लेता है, तो चौबीस घंटे का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। और आप यह नहीं कहते कि चौबीस ही घंटे व्यायाम क्यों न किया जाए! करें, तो ठीक है। जो आदमी चौबीस घंटे व्यायाम कर रहा है, उसको एक घंटे व्यायाम करने की कोई जरूरत भी नहीं है। जो चौबीस घंटे श्रम में लगा हुआ है, उसे और व्यायाम की क्या जरूरत है? कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जो व्यायाम नहीं कर रहा है, उसे घंटेभर भी कर लेने से चौबीस घंटे पर परिणाम होगा।

ध्यान के लिए एक घंटा निकाल लेना इसलिए उपयोगी है कि आप उस समय को पूरा का पूरा ही ध्यान में नियोजित कर सकते हैं। एक दफा कला आ जाए, तो उस कला का उपयोग आप चौबीस घंटे कर सकते हैं। ध्यान एक कला है। फिर आप जो भी आप करें, वह ध्यानपूर्वक कर सकते हैं। और तब अलग से ध्यान करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

लेकिन जब तक वैसी घटना न घटी हो, तब तक कृष्णमूर्ति को सुनकर या किसी को भी सुनकर तरकीबें मत निकालें। हम इतने होशियार हैं तरकीबें निकालने में, कि जिससे हमारा मतलब सधता हो, वह बात हम तत्काल निकाल लेते हैं।

कृष्णमूर्ति लोगों को कहते हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं है। उनके पास उसी तरह के लोग इकट्ठे हो जाते हैं, जो किसी भी गुरु के सामने झुकने में अहंकार की तकलीफ पाते हैं। वे इकट्ठे हो जाते हैं। वे बड़े प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं, जब कृष्णमूर्ति कह रहे हैं, तो ठीक ही कह रहे हैं कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन अगर गुरु की कोई जरूरत नहीं है आपको, तो कृष्णमूर्ति के पास किसलिए जाते हैं? क्या प्रयोजन है? सिर्फ कह देने से कि गुरु की जरूरत नहीं है, कोई फर्क पड़ता है? जब तक आप किसी से सीखने जाते हैं, तब तक आपको गुरु की जरूरत है। और बड़े मजे की बात यह है कि यह बात भी आपकी बुद्धि से पैदा नहीं हुई है कि गुरु की जरूरत नहीं है। यह भी किसी दूसरे ने आपको सिखाई है! यह भी आपने गुरु से ही सीखी है!

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, कृष्णमूर्ति ऐसा कहते हैं, कृष्णमूर्ति ऐसा कहते हैं। वे कहते हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं है।

यह भी तुम्हारी बुद्धि का मामला नहीं है, यह भी तुम किसी गुरु से सीख आए हो! इसको भी सीखने तुम्हें किसी के पास जाना पड़ा है। इस साधारण-सी बात को सीखने भी किसी के पास जाना पड़ा है कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। परमात्मा को सीखने तुम किसी गुरु के पास नहीं जाना चाहते हो!

अड़चन कहीं और है। गुरु की जरूरत नहीं है, इससे तुम्हारा मन प्रसन्न होता है। प्रसन्न इसलिए होता है कि चलो, अब झुकने की कोई जरूरत नहीं है; अब कहीं झुकने की कोई जरूरत नहीं है।

तुमने बड़ी गलत बात निकाली। तुमने अपने मतलब की बात निकाल ली।

मेरे पास लोग आते हैं। मैं जो कहता हूं, उसमें से वे वे बातें निकाल लेते हैं, जो उनके मतलब की हैं और जिनसे उनको बदलना नहीं पड़ेगा। वे मेरे पास आते हैं कि आपने बिल्कुल ठीक कहा। जंगल में जाने की, पहाड़ पर जाने की क्या जरूरत है! ज्ञान तो यहीं हो सकता है। बिल्कुल ठीक कहा है।

तो मैं उनको पूछता हूं, यहीं हो सकता है; कब तक होगा, यह मुझे कहो। और यहीं हो सकता है, तो तुम यहीं करने के लिए क्या कर रहे हो?

उन्होंने मतलब की बात निकाल ली कि कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जहां तुम हो, वहां तो तुम पचास वर्ष से हो ही। अगर वहीं ज्ञान होता होता, तो कभी का हो गया होता। लेकिन तुमने अपने हिसाब की बात निकाल ली।

ध्यान कठिन है। न तो चिंतन, न मनन, न सुनना--श्रवण। इनमें कोई कठिनाई नहीं है। ध्यान बहुत कठिन है। ध्यान का अर्थ है कि कुछ घड़ी के लिए बिल्कुल शून्य हो जाना। सारी व्यस्तता समाप्त हो जाए। मन कुछ भी न करता हो।

यह न करना बहुत कठिन है। क्योंकि मन कुछ न कुछ करना ही चाहता है। करना मन का स्वभाव है। और अगर आप न-करने पर जोर दें, तो मन सो जाएगा।

मन दो चीजें जानता है, या तो क्रिया और या निद्रा। आप या तो उसे काम करने दो और या फिर वह नींद में चला जाएगा। ध्यान तीसरी दशा है। क्रिया न हो और निद्रा भी न हो, तब ध्यान फलित होगा।

कठिन से कठिन जो घटना मनुष्य के जीवन में घट सकती है, वह ध्यान है। और आप कहते हैं, हम चौबीस घंटे क्यों न करें! आप मजे से करें। लेकिन घड़ीभर करना मुश्किल है, तो चौबीस घंटे पर आप फैलाइएगा कैसे?

एक उपाय है कि आप साक्षी-भाव रखें, तो चौबीस घंटे पर फैल सकता है। लेकिन साक्षी-भाव आसान नहीं है। और जो आदमी घड़ीभर ध्यान कर रहा हो, उसके लिए साक्षी-भाव भी आसान हो जाएगा। लेकिन जो आदमी घड़ीभर ध्यान भी न कर रहा हो, उसके लिए साक्षी-भाव भी बहुत कठिन होगा।

अति कठिन है यह ख्याल करना कि मैं देखने वाला हूं। कोशिश करें! घड़ी अपने सामने रख लें। और घड़ी में जो सेकेंड का कांटा है, जो चक्कर लगा रहा है, उस सेकेंड के कांटे पर ध्यान करें। और इतना ख्याल रखें कि मैं देखने वाला हूं, सिर्फ देख रहा हूं।

आप हैरान होंगे कि पूरा एक सेकेंड भी आप यह ध्यान नहीं रख सकते। एक सेकेंड में भी कई दफा आप भूल जाएंगे और दूसरी बातें आ जाएंगी। चौबीस घंटा तो बहुत दूर है, एक सेकेंड भी पूरा का पूरा आप यह ध्यान नहीं रख सकते कि मैं सिर्फ द्रष्टा हूं। इसी बीच आप घड़ी का नाम पढ़ लेंगे। इसी बीच घड़ी में कितना बजा है, यह भी देख लेंगे। घड़ी में कितनी तारीख है, वह भी दिखाई पड़ जाएगी। इसी बीच बाहर कोई आवाज देगा, वह भी सुनाई पड़ जाएगी। टेलिफोन की घंटी बजेगी, वह भी ख्याल में आ जाएगी, किसका फोन आ रहा है! अगर कुछ भी बाहर न हो, तो भीतर कुछ स्मरण आ जाएगा, कोई शब्द आ जाएगा। बहुत कुछ हो जाएगा।

एक सेकेंड भी आप सिर्फ साक्षी नहीं रह सकते। तो अपने को धोखा मत दें। घड़ीभर तो निकाल ही लें चौबीस घंटे में, और उसको सिर्फ ध्यान में नियोजित कर दें। हां, जब घड़ी में सध जाए वह सुगंध, तो उसे चौबीस घंटे पर फैला दें। जब घड़ी में जल जाए वह दीया, तो फिर चौबीस घंटे उसको साथ लेकर चलने लगें। फिर अलग से बैठने की जरूरत न रह जाएगी।

अलग से बैठने की जिस दिन जरूरत समाप्त हो जाती है, उसी दिन जानना कि ध्यान उपलब्ध हुआ। अलग से बैठना तो अभ्यास-काल है। वह तो प्राथमिक चरण है। वह तो सीखने का वक्त है। इसलिए ध्यान के जानकारों ने कहा है कि जब ध्यान करना व्यर्थ हो जाए, तभी समझना कि ध्यान पूरा हुआ।

लेकिन इसको पहले ही मत समझ लेना, कि जब ज्ञानी कहते हैं कि ध्यान करना व्यर्थ हो जाए, तब ध्यान पूरा हुआ, तो हम करें ही क्यों! तो आपके लिए फिर कभी भी कोई यात्रा संभव नहीं हो पाएगी।

अच्छा है अगर चौबीस घंटे पर फैलाएं। लेकिन मैं जानता हूं, वह आप कर नहीं सकते। जो आप कर सकते हैं, वह यह है कि आप थोड़ी घड़ी निकाल लें। एक कोना अलग निकाल लें जीवन का। और उसे ध्यान पर ही समर्पित कर दें। और जब आपको आ जाए कला, और आपको पकड़ आ जाए सूत्र, और आप समझ जाएं कि किस क्वालिटी, किस गुण को ध्यान कहते हैं। और फिर उस गुण को आप चौबीस घंटे याद रखने लगें, स्मरण रखने लगें; उठते-बैठते उसको सम्हालते रहें।

जैसे किसी को कोई कीमती हीरा मिल जाए। वह दिनभर सब काम करे, बार-बार खीसे में हाथ डालकर टटोल ले कि हीरा वहां है? खो तो नहीं गया! कुछ भी करे, बात करे, चीत करे, रास्ते पर चले, लेकिन ध्यान उसका हीरे में लगा रहे।

कबीर ने कहा है कि जैसे स्त्रियां नदी से पानी भरकर घड़े को सिर पर रखकर लौटती हैं, तो गांव की स्त्रियां हाथ भी नहीं लगातीं, सिर पर घड़े को सम्हाल लेती हैं। गपशप करती, बात करती, गीत गाती लौट आती हैं। तो कबीर ने कहा है कि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से वे कोई भी ध्यान घड़े को नहीं देतीं, लेकिन भीतर ध्यान घड़े पर ही लगा रहता है। गीत भी चलता है। बात भी चलती है। चर्चा भी चलती है। हंसती भी हैं। रास्ता भी पार करती हैं। लेकिन भीतर सूक्ष्म ध्यान घड़े पर लगा रहता है और घड़े को वे सम्हाले रखती हैं।

जिस दिन ऐसी कला का ख्याल आ जाए, तो फिर आप कुछ भी करें, ध्यान पर आपका काम भीतर चलता रहेगा। लेकिन यह आपसे आज नहीं हो सकेगा।

कृष्णमूर्ति की बुनियादी भूल यही है कि वे आप पर बहुत भरोसा कर लेते हैं। वे सोचते हैं, आप यह आज ही कर सकेंगे। उनसे भी यह आज ही नहीं हो गया है। यह भी बहुत जन्मों की यात्रा है। और उनसे भी यह बिना गुरु के नहीं हो गया है। सच तो यह है कि इस सदी में जितने बड़े गुरु कृष्णमूर्ति को उपलब्ध हुए, किसी दूसरे व्यक्ति को उपलब्ध नहीं हुए। और गुरुओं ने जितनी मेहनत कृष्णमूर्ति के ऊपर की है, उतनी किसी शिष्य के ऊपर कभी मेहनत नहीं की गई है।

जीवन के उनके पच्चीस साल बहुत अदभुत गुरुओं के साथ, उनके सत्संग में, उनके चरणों में बैठकर बीते हैं। उनसे सब सीखा है। लेकिन यह बड़ी जटिलता की बात है कि जो व्यक्ति गुरुओं से ही सब सीखा है, वह व्यक्ति गुरुओं के इतने खिलाफ कैसे हो गया? और वह क्यों यह कहने लगा कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है? और जिस व्यक्ति ने ध्यान की बहुत-सी प्रक्रियाएं करके ही समझ पाई है, वह क्यों कहने लगा कि ध्यान की कोई जरूरत नहीं है?

इसके पीछे बड़ी मनोवैज्ञानिक उलझन है। और वह उलझन यह है कि अगर गुरु को आपने ही चुना हो, तब तो ठीक है। लेकिन अगर गुरुओं ने आपको चुनकर आपके साथ मेहनत की हो, तो एक अंतर्विरोध पैदा हो जाता है।

कृष्णमूर्ति ने खुद नहीं चुना है। कृष्णमूर्ति को चुना गया है। और कुछ गुरुओं ने अथक मेहनत की है उनके साथ, ताकि वे ज्ञान को उपलब्ध हो जाएं।

यह बड़े मजे की बात है कि अगर आपको जबरदस्ती स्वर्ग में भी ले जाया जाए, तो आप स्वर्ग के भी खिलाफ हो जाएंगे। और अपने मन से आप नरक भी चले जाएं, तो गीत गाते, सीटी बजाते जाएंगे। अपने मन से आदमी नरक भी गीत गाता जा सकता है। और जबरदस्ती स्वर्ग में भी ले जाया जाए, तो वह स्वर्ग के भी खिलाफ हो जाएगा। और उन लोगों को कभी माफ न कर सकेगा, जिन्होंने जबरदस्ती स्वर्ग में धक्का दिया है।

कृष्णमूर्ति पर यह ज्ञान एक तरह की जबरदस्ती थी। यह किन्हीं और लोगों का निर्णय था। और अगर कृष्णमूर्ति अपने ही ढंग से चलते, तो उन्हें कोई तीन-चार जन्म लगते। लेकिन यह बहुत चेष्टा करके, बहुत त्वरा और तीव्रता से कुछ लोगों ने अथक मेहनत लेकर उन्हें जगाने की कोशिश की।

ठीक जैसे आप गहरी नींद में सोए हों और कोई जबरदस्ती आपको जगाने की कोशिश करे, तो आपके मन में बड़ा क्रोध आता है। और अगर कोई जबरदस्ती जगा ही दे, भला जगाने वाले की बड़ी शुभ आकांक्षा हो, भला यह हो कि मकान में आग लगी हो और आपको जगाना जरूरी हो, लेकिन फिर भी जब आप गहरी नींद में पड़े हों और कोई सुखद सपना देख रहे हों, तो जगाने वाला दुश्मन मालूम पड़ता है।

कृष्णमूर्ति को अधूरी नींद से जगा दिया गया है। और जिन लोगों ने जगाया है, उन्होंने बड़ी मेहनत की है। लेकिन कृष्णमूर्ति उनको अभी भी माफ नहीं कर पाए हैं। वह बात अटकी रह गई है। इसलिए चालीस साल हो गए, उनके सब गुरु मर चुके हैं, लेकिन गुरुओं की खिलाफत जारी है।

उनका अपना अनुभव यही है कि गुरुओं से बचना। इसलिए वे कहते हैं कि गुरुओं से बचना। क्योंकि उन पर जो हुआ है, वह जबरदस्ती हुआ है। ध्यान से बचना। क्योंकि कोई भी विधि कहीं कंडीशनिंग, संस्कार न बन जाए। क्योंकि उन पर तो सारी विधियों का प्रयोग किया गया है। इसलिए अब वे कहते हैं, सिर्फ समझो।

लेकिन समझना भी एक विधि है। और वे कहते हैं, केवल होश को गहराओ। लेकिन होश को गहराना भी एक विधि है।

अध्यात्म के जगत में आप कुछ भी करो, विधि होगी ही। और गुरु को इनकार करो, तो भी गुरु होगा। क्योंकि अगर आप अपने ही तईं बिना गुरु और बिना विधि के उपलब्ध हो सकते हैं, तो आप हो ही गए होते।

कृष्णमूर्ति की अपनी अड़चन और तकलीफ है। और वह अड़चन और तकलीफ एक अंधेरी छाया की तरह उनको घेरे रही है। वह उनके वक्तव्य में छूटती नहीं है।

कोई पूछेगा कि अगर वे ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं, तो यह बात छूटती क्यों नहीं? यह भी थोड़ी-सी जटिल है बात।

अगर कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, तो वह यह क्यों नहीं देख सकता कि मेरा यह विरोध गुरुओं का, मेरी प्रतिक्रिया है! मेरे साथ गुरुओं ने जो किया है, उनको मैं अब तक माफ नहीं कर पा रहा हूं! ध्यान का और योग का मेरा विरोध मेरे ऊपर ध्यान और योग की जो प्रक्रियाएं लादी गई हैं, उनकी प्रतिक्रिया है! जो आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया, वह यह क्यों नहीं देख पाता?

और मैं मानता हूं कि कृष्णमूर्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। इसलिए और जटिल हो जाती है बात। अगर कोई कह दे कि वे ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए हैं, तो कोई अड़चन नहीं है। मैं मानता हूं, वे ज्ञान को उपलब्ध हैं। फिर यह प्रतिक्रिया, यह जीवनभर का विरोध छूटता क्यों नहीं है? इसका कारण आपसे कहूं। वह समझने जैसा है।

जब भी कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो ज्ञान के उपलब्ध होने का क्षण वही होता है, जहां मन समाप्त होता है, जहां मन छूट जाता है और आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन ज्ञान को उपलब्ध होने

के बाद अगर उसे अपनी बात लोगों से कहनी हो, तो उसे उसी छूटे हुए मन का उपयोग करना पड़ता है। क्योंकि मन के बिना कोई संवाद, कोई अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

आपसे मैं बोल रहा हूं, तो मन का मुझे उपयोग करना पड़ेगा। जब मैं चुप बैठा हूं, अपने में हूं, तब मुझे मन की कोई जरूरत नहीं है। अपने स्वभाव में मुझे मन की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जब आपसे मुझे बात करनी है, तो मुझे मन का उपयोग करना पड़ेगा।

तो कृष्णमूर्ति का जिस दिन मन छूटा, उस मन की जो आखिरी विरोध की दशा थी, उस मन का जो आखिरी भाव था--गुरुओं के, विधियों के खिलाफ--वह मन के साथ पड़ा है। और जब भी कृष्णमूर्ति मन का उपयोग करके आपसे बोलते हैं, तब वही मन जो चालीस साल पहले काम के बाहर हो गया, वही काम में लाना पड़ता है। और कोई मन उनके पास है नहीं। इसलिए स्वभावतः उसी मन का वे उपयोग करते हैं। इसलिए जो वे नहीं कहना चाहें, जो उन्हें नहीं कहना चाहिए, वह भी कहा जाता है। वह उस मन के साथ है।

ऐसा समझिए कि आपके पास एक पुरानी मोटर है, जिसको आपने रख दिया है। अब आप उपयोग नहीं करते हैं। आप पैदल ही चलते हैं। लेकिन चालीस साल से मोटर आपके घर में रखी है। लेकिन कभी आपको तेज चलना पड़ता है और पैदल चलने से काम नहीं आता, आप अपनी पुरानी मोटर निकाल लेते हैं। और खटर-पटर करते मुहल्ले भर के लोगों की नींद हराम करते आप अपनी गाड़ी को लेकर चल पड़ते हैं।

करीब-करीब मन जिस दिन छूटता है, उसकी जो स्थिति रहती है, जब भी उसका उपयोग करना हो, उसी स्थिति में करना पड़ेगा। उसमें फिर कोई ग्रोथ नहीं होती। वह एक पुराने यंत्र की तरफ पड़ा रह जाता है भीतर। व्यक्ति की चेतना उससे अलग हो जाती है, यंत्र की तरह मन पड़ा रह जाता है। उसी मन का उपयोग करना पड़ता है। वह मन वही भाषा बोलता है, जिस भाषा में समाप्त हुआ था। वह वहीं रुका हुआ है।

कृष्णमूर्ति चालीस साल से दूसरी दुनिया में हैं। लेकिन मन वहीं पड़ा हुआ है, जहां उसे छोड़ा था। वह पुरानी गाड़ी, वह फोर्ड की पुरानी कार वहीं खड़ी है। जब भी उसका उपयोग करते हैं, वह फिर ताजा हो जाता है। उसके लिए वह घटना उतनी ही ताजी है।

गुरुओं ने जबरदस्ती उन्हें धक्के देकर जगा दिया है। वह मन अब भी प्रतिरोध से भरा हुआ है। वे ध्यान के विरोध में हैं, गुरुओं के विरोध में हैं। लेकिन अगर उनकी बात को ठीक से समझें, तो वह विरोध मन का ही है, ऊपरी ही है।

अगर सच में ही कोई व्यक्ति गुरुओं के विरोध में है, तो वह किसी को शिक्षा नहीं देगा। क्योंकि शिक्षा देने का मतलब ही क्या है!

तो कृष्णमूर्ति कितना ही कहें कि मैं कोई शिक्षा नहीं दे रहा हूं, लेकिन शिक्षा नहीं दे रहे हैं, तो क्या कर रहे हैं! वे कितना ही कहें कि तुम्हें कोई बात देने की मेरी इच्छा नहीं है, लेकिन चेष्टा बड़ी कर रहे हैं कि कोई बात दे दी जाए। और अगर श्रोता नहीं समझ पाते, तो बड़े नाराज हो जाते हैं। समझाने की बड़ी अथक चेष्टा है। बड़े आग्रहपूर्ण हैं, कि समझो! और कहे चले जाते हैं कि मुझे कुछ समझाना नहीं है; मुझे कुछ बताना नहीं है; मुझे कोई मार्ग नहीं देना है। लेकिन क्या? क्या कर रहे हैं फिर?

हो सकता है कि आप सोचते हों कि यही मार्ग है, कोई मार्ग न देना; यही शिक्षा है, कोई विधि न देना; यही गुरुत्व है, गुरुओं से छुड़ा देना। लेकिन यह भी सब वही का वही है। कोई फर्क नहीं है।

तो कृष्णमूर्ति की एक जटिलता है, मन उनका कुछ विरोधों से भरा पड़ा है। वह पड़ा हुआ है। और जब भी वे उसका उपयोग करते हैं, वे सारे के सारे विरोध सजग हो जाते हैं।

लेकिन आप सावधान रहना। आप अपनी फिक्र करना। आप चौबीस घंटे ध्यान कर सकते हों, तो जरूर करना। और न कर सकते हों, तो कृष्णमूर्ति कहते हैं कि घंटेभर ध्यान करने से कोई फायदा नहीं है, इसलिए घंटेभर करना रोक मत देना।

सागर मिल जाए, तो अच्छा है, ध्यान का। न मिले, तो जो छोटा सरोवर है, उसका भी उपयोग तो करना ही। जब तक सागर न मिल जाए, तब तक सरोवर का ही उपयोग करना; तब तक एक बूंद भी पानी की हाथ में हो, तो वह भी जरूरी है। वह बूंद आपको जिलाए रखेगी और सागर का स्वाद देती रहेगी, और सागर की तरफ बढ़ने में साथ, सहयोग, शक्ति देती रहेगी।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, आत्म-विश्वास और लगन से मनुष्य को किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त हो सकती है। क्या अध्यात्म के संबंध में भी यही सच है?

अध्यात्म के संबंध में इससे ज्यादा गलत और कोई बात नहीं है। न तो आत्म-विश्वास वहां काम देगा, न लगन वहां काम देगी। इसे हम थोड़ा समझ लें।

आत्म-विश्वास का क्या अर्थ होता है? अपने पर भरोसा। अपने पर भरोसा अहंकार की ही छाया है। अध्यात्म में तो आसानी होगी, अगर आप सारा भरोसा ईश्वर पर छोड़ दें बजाय अपने पर रखने के। अध्यात्म में तो अच्छा होगा कि आप अपने को बिल्कुल असहाय, हेल्पलेस समझें। वहां अकड़ काम न देगी कि मुझे अपने पर भरोसा है। वहां तैरने से आप नहीं पहुंच सकेंगे। वहां तो आप नदी की धार में अपने को छोड़ दें और कह दें कि तू ही जान।

जितनी आपके मन में यह अकड़ होगी कि मैं कर लूंगा, मैं कर के दिखा दूंगा, उतनी ही बाधा पड़ेगी अध्यात्म में। और जगह की बात मैं नहीं कहता। अगर धन पाना हो, तो आत्म-विश्वास बिल्कुल जरूरी है। वहां अगर आप कहें कि परमात्मा पर छोड़ता हूं, तो आप लुट जाएंगे।

संसार में कुछ भी पाना हो, तो अहंकार जरूरी है। ध्यान रखना, संसार अहंकार की यात्रा है। वहां आप भरोसा दूसरे पर मत करना; वहां तो अपने पर करना। वहां तो सभी तरह से अपने को केंद्र मानना, तो ही संसार में आप चल पाएंगे। वह उपद्रव की दुनिया है; वहां अहंकार बिल्कुल जरूरी है।

ठीक संसार से विपरीत यात्रा है अध्यात्म की। जो संसार में सहयोगी है, वही अध्यात्म में विरोधी हो जाता है। और जो संसार में सीढ़ी है, वही अध्यात्म में मार्ग का पत्थर, अवरोध हो जाता है। ठीक उलटा हो जाता है। इसलिए संसार में जो लोग सफल होते हैं, वे अहंकारी लोग हैं। जो बिल्कुल पागल हैं, जिनको पक्का भरोसा है कि दुनिया की कोई ताकत उनको रोक ही नहीं सकती। वे पागल की तरह लगे रहते हैं और सफल हो जाते हैं।

सफल होने में अड़चन क्या है? अड़चन यही है कि उनसे बड़े पागल उनकी प्रतिस्पर्धा में न हों। और कोई अड़चन नहीं है। अगर उनसे भी बड़े पागल और उनसे भी अहंकारी उनकी प्रतिस्पर्धा में हों, तो वे उनको मात कर देंगे। लेकिन मात करने का और जीतने का एक ही उपाय है वहां, आप कितने अहंकार के पागलपन से जुटते हैं!

अध्यात्म में आपका अहंकार जरा भी सहयोगी नहीं है, बाधा है। वहां तो वही सफल होगा, जो कितनी मात्रा में अहंकार को छोड़कर चलता है।

जीसस ने कहा है, धन्य हैं वे लोग, जो इस संसार में अंतिम खड़े हैं। क्योंकि प्रभु के राज्य में उनके प्रथम होने की संभावना है।

जो यहां अंतिम है, वह प्रभु के राज्य में प्रथम हो सकता है। अंतिम का क्या अर्थ है? अंतिम का अर्थ है, जिसे अहंकार का कोई भी रस नहीं है। प्रथम होने की कोई इच्छा नहीं है।

इसलिए हमारी सारी शिक्षा गैर-आध्यात्मिक है। क्योंकि वह प्रथम होना सिखाती है। हमारे सारे संस्कार अहंकार को जन्माने वाले हैं। हमारी सारी दौड़, प्रत्येक को मजबूत अहंकार चाहिए, इस पर खड़ी है। इसलिए फिर हम अध्यात्म की तरफ जाने में बड़ी अड़चन पाते हैं। क्योंकि वहां यही अवरोध है। वहां तो एक ही चीज सहयोगी है कि आप बिल्कुल मिट जाएं।

आत्म-विश्वास का तो सवाल ही नहीं है। वहां आपको यह ख्याल भी न रहे कि मैं हूं। मेरा होना भी न रहे। मैं एक खाली शून्य हो जाऊं। वहां मैं ऐसे प्रवेश करूं, जैसे मैं ना-कुछ हूं--असहाय, निरालंब, निराधार। न कुछ कर सकता हूं, न कुछ हो सकता है।

जिस घड़ी कोई व्यक्ति इतना निराधार हो जाता है, इतना निरालंब हो जाता है, इतना असहाय हो जाता है कि लगता है, मैं शून्य जैसा हूं, उसी क्षण परमात्मा उसके भीतर घटित हो जाता है। क्योंकि वह खाली हो गई जगह। जो अहंकार से भरा था भवन, अब खाली हो गया। अब वह बड़ा मेहमान उतर सकता है।

अभी तो आप अपने से इतने भरे हैं कि आपके भीतर परमात्मा को प्रवेश की कोई रंध्र मात्र भी जगह नहीं है। तो वहां कोई आत्म-विश्वास काम नहीं देगा।

इसका मतलब मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आत्म-अविश्वास काम देगा। आप ध्यान रखना, आत्म-विश्वास काम नहीं देगा, इसका यह मतलब नहीं है कि आप अपने पर अविश्वास कर लें, तो काम देगा। नहीं, अविश्वास भी अहंकार है! आप तो केंद्र रहते ही हैं।

कोई कहता है, मुझे अपने पर विश्वास है। कोई कहता है, मुझे अपने पर विश्वास नहीं है। लेकिन अपना तो दोनों में मौजूद रहता है। एक कहता है कि मैं कमजोर हूं, एक कहता है कि मैं ताकतवर हूं। लेकिन दोनों कहते हैं, मैं हूं। जो कमजोर है, वह ताकतवर हो सकता है कल। जो ताकतवर है, वह कल कमजोर हो सकता है। उनमें कोई गुणात्मक फर्क नहीं है। वे एक ही चीज के दो रूप हैं।

असहाय का अर्थ है कि मैं हूं ही नहीं। कमजोर भी नहीं हूं। ताकतवर होने का तो सवाल ही नहीं है। मैं कमजोर भी नहीं। क्योंकि कमजोरी भी ताकत का एक रूप है। मैं हूं ही नहीं। इस भांति जो अपने को मिटा लेता है, वह अध्यात्म में गति करता है।

और वहां लगन का सवाल नहीं है। यहां संसार में लगन का सवाल है। यहां तो बिल्कुल पागल लगन चाहिए। यहां तो बिल्कुल विक्षिप्त की तरह दौड़ने की जिद्द चाहिए। यहां तो ऐसा दांव लगाने की बात चाहिए कि चाहे जिंदगी रहे कि जाए, मगर यह चीज मैं पाकर रहूंगा। जब कोई संसार में इस भांति दौड़ता है, तभी कुछ थोड़ी छीना-झपटी कर पाता है।

अध्यात्म में लगन का कोई सवाल नहीं है। अध्यात्म में तो गति की जरूरत नहीं है, इसलिए लगन की जरूरत नहीं है।

इसे हम ऐसा समझें कि संसार में कुछ पाना हो, तो दौड़ना पड़ता है। और अध्यात्म में कुछ पाना हो, तो खड़े हो जाना पड़ता है। संसार में कुछ पाना हो, तो छीनना-झपटना पड़ता है। अध्यात्म में कुछ पाना हो, तो

मुट्ठी खोल देनी पड़ती है; कुछ झपटना नहीं, कुछ पकड़ना नहीं। संसार में कुछ पाना हो, तो दूसरों से झगड़ना पड़ता है। अध्यात्म में कुछ पाना हो, तो वहां कोई दूसरा है ही नहीं, जिससे झगड़ने का सवाल है।

संसार में कुछ पाना हो, तो यहां लगन चाहिए। लगन का मतलब यह है कि बहुत तरफ ध्यान न जाए। जैसे हम तांगे में घोड़े को जोत देते हैं, तो उसकी आंखों पर दोनों तरफ चमड़े की पट्टियां बांध देते हैं, ताकि उसको चारों तरफ दिखाई न पड़े, सिर्फ सामने दिखाई पड़े। क्योंकि चारों तरफ दिखाई पड़ेगा, तो घोड़े को चलने में बाधा आएगी। इधर घास दिख जाएगा, तो इधर जाना चाहेगा। उधर पास में कोई जवान घोड़ी दिख जाएगी, तो उस पर आकर्षित हो जाएगा। कहीं कोई सामने ताकतवर घोड़ा हिनहिना देगा, तो लड़ने को तैयार हो जाएगा। पच्चीस चीजें खड़ी हो जाएंगी। ध्यान बंटेगा।

इसलिए घोड़े को हम करीब-करीब अंधा कर देते हैं। निन्यानबे प्रतिशत अंधा कर देते हैं। सिर्फ एक तरफ उसकी आंख खुली रहती है, सामने की तरफ। बस, उसको उतना ही रास्ता दिखाई पड़ता है।

लगन का इतना ही मतलब होता है, घोड़े की तरह हो जाना। तांगे में जुते हैं! कुछ दिखाई नहीं पड़ता। बस, एक ही चीज दिखाई पड़ती है। उसको हम लगन कहते हैं। लगन का मतलब है कि अब कहीं चित्त नहीं जाता, बस एक चीज पर जाता है। इसलिए सब ताकत वहीं लग जाती है।

राजनीतिज्ञ है, वह लगन का आदमी होता है। उसे सिर्फ दिल्ली दिखाई पड़ती है, कुछ नहीं दिखाई पड़ता। उसे पार्लियामेंट का भवन भर दिखाई पड़ता है और उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। बस, उसे दिल्ली... । दिल्ली उसके मन में रहती है। वह तांगे में जुते घोड़े की तरह है। उसको संसार में कुछ दिखाई नहीं पड़ता। बस, दिल्ली!

और वह जैसे-जैसे करीब दिल्ली के पहुंचने लगता है, वैसे-वैसे उसकी आंखें और संकीर्ण होने लगती हैं। फिर कैबिनेट दिखाई पड़ता है उसको, मंत्रिमंडल दिखाई पड़ता है। मंत्रिमंडल में पहुंच जाए, तो प्रधानमंत्री की कुर्सी भर दिखाई पड़ती है, फिर कुछ नहीं दिखाई पड़ता।

यह क्रमशः अंधे हो जाने की तरकीब है। ऐसे वह क्रमशः अंधा होता जाता है। लेकिन जितना वह अंधा होता जाता है, उतनी ही शक्ति संकीर्ण दिशा में प्रवाहित होने लगती है। वह उतना ही सफल हो जाता है। दिल्ली की तरफ जाने के लिए आंख पर अंधापन होना जरूरी है, तो ही सफलता मिल सकती है।

एक आदमी धन की खोज में है। वह सब छोड़ देता है फिक्र। न उसे प्रेम से मतलब, न पत्नी से, न बच्चे से, न धर्म से। उसे किसी चीज से मतलब नहीं है, उसे धन से मतलब है। उसे हर चीज में धन दिखाई पड़ता है। उठते, सोते, जागते उसके सारे सपने धन से भरे होते हैं, तब वह सफल हो पाता है। वह लगन का आदमी है।

पागल आदमियों को हम लगन के आदमी कहते हैं। एक चीज की तरफ जो पागल हैं, वे कुछ उपलब्ध कर लेते हैं। जो बहुत तरफ भागेंगे, निश्चित ही वे कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाएंगे। संसार में जो बहुत तरफ देखता है, वह कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाता है। इसके पहले कि वह तय करे कि क्या मैं पाऊं, जिंदगी हाथ से निकल गई होती है।

लेकिन यही बात अध्यात्म के संबंध में नहीं है। अध्यात्म कोई लगन नहीं है। अध्यात्म तो सब तरह की लगन से छुटकारा है।

इसे हम ऐसा समझें, तीन तरह के आदमी हैं। एक आदमी, जो सब तरफ देखता है। इधर भी चाहता है दौड़ूं, उधर भी चाहता है दौड़ूं। सोचता है, डाक्टर भी हो जाऊं; वकील भी हो जाऊं; लेखक भी हो जाऊं; राजनीतिज्ञ भी हो जाऊं। जो भी कुछ हो सकता हूं, सब हो जाऊं। इस सब होने की दौड़ में वह कुछ भी नहीं हो

पाता। या जो भी होता है, वह सब कचरा हो जाता है। वह एक खिचड़ी हो जाता है। उसके पास कोई व्यक्तित्व नहीं निखरता। वह एक कबाड़खाना हो जाता है, जिसमें सब तरह की चीजें हैं।

दूसरा आदमी है, जो कहता है, बस मुझे एक चीज होना है। सब दांव पर लगाकर एक तरफ चल पड़ता है। एकाग्रता से लग जाता है। वह लगन का आदमी है। वह पागल आदमी है। वह एक चीज को पा लेगा।

एक तीसरी तरह का आदमी है, जो न एक को पाना चाहता है, न सब को पाना चाहता है, जो पाना ही नहीं चाहता। यह तीसरा आदमी आध्यात्मिक है, जो कहता है, सब पाना फिजूल है। एक का पाना भी फिजूल है; सबका पाना भी फिजूल है। बहुत-बहुत जिंदगियों में बहुत चीजें खोजकर देख लीं, कुछ भी न पाया। अब खोजेंगे नहीं। अब बिना खोजे देखेंगे। अब बिना खोज में रुक जाएंगे। अब नहीं खोजेंगे। अब दौड़ेंगे नहीं। अब कहीं भी न जाएंगे। अब न तो सब तरफ देखेंगे, न एक तरफ देखेंगे। अब आंख को बंद कर लेंगे और वहां देखेंगे, जो भीतर है, जो मैं हूं। अब किसी तरफ न देखेंगे। अब सब दिशाएं व्यर्थ हो गईं।

इस घड़ी में, जब कोई चाह नहीं रहती, कोई लगन नहीं रहती, कुछ पाने का लक्ष्य नहीं रहता, कुछ विषय नहीं रह जाता पाने के लिए, कोई अंत नहीं दिखता बाहर, बाहर कोई मंजिल नहीं रह जाती, जब व्यक्ति की चेतना सब भांति खड़ी हो जाती है, उसकी सब प्रवाह-यात्रा बंद हो जाती है, तब एक नया द्वार खुलता है, जो भीतर है। जब बाहर जाना बंद हो जाता है चैतन्य का, तो चैतन्य भीतर जाता है। और जब सब तरफ दौड़ बंद हो जाती है, तो अपनी तरफ आता है, अपने में उतरता है, अपने में थिर होता है।

इसलिए अध्यात्म कोई लगन नहीं है। अध्यात्म कोई सफलता, कोई अहंकार की यात्रा, कोई ईगो ट्रिप नहीं है। इसलिए संसार में जो सूत्र काम देते हैं, उनका उपयोग आप अध्यात्म में मत कर लेना। बहुत लोग उनका उपयोग कर रहे हैं। करते हैं, इसलिए अध्यात्म में असफल होते हैं।

जो संसार में सफलता का सूत्र है, वही अध्यात्म में असफलता का सूत्र है। और जो अध्यात्म में सफलता का सूत्र है, वही संसार में असफलता का सूत्र है। दोनों तरह की भूल करने वाले लोग हैं। और ऐसा नहीं कि थोड़े-बहुत लोग हैं। बहुत बड़ी संख्या में लोग हैं, जो दोनों तरह की भूल करते हैं।

जैसे, इस मुल्क में हमने अध्यात्म में सफलता पाने के कुछ सूत्र खोज निकाले थे। हमने उनका ही उपयोग संसार में करना चाहा। इसलिए पूरब संसार की दुनिया में असफल हो गया। गरीब, दीन, दरिद्र, भुखमरा, भीख मांगता हो गया। हमने, जो सूत्र अध्यात्म में सफल हुए थे, उनका उपयोग संसार में करने की कोशिश की। वह मूढ़ता हो गई। इसलिए हम आज जमीन पर भिखमंगे की तरह खड़े हैं।

पश्चिम में संसार में जिन चीजों से सफलता मिल जाती है, उन्हीं की कोशिश अध्यात्म में भी करनी शुरू की है। उनसे कोई सफलता नहीं मिल सकती। पश्चिम अध्यात्म में असफल हो गया है।

इसलिए एक बड़ी मजेदार घटना घट रही है।

पूरब का मन पश्चिम की तरफ हाथ फैलाए खड़ा है--धन दो, दवा दो, भोजन दो, कपड़ा दो। और पश्चिम के लोग पूरब की तरफ हाथ फैलाए खड़े हैं--आत्मा दो, ध्यान दो, मंत्र दो, तंत्र दो। यह बड़े मजे की बात है कि दोनों भिखमंगे की हालत में हैं। और इसलिए हमें बड़ी कठिनाई होती है।

अगर पश्चिम से युवक-युवतियां भारत की तरफ आते हैं, खोजते हैं, तो हमें बड़ी हैरानी होती है कि तुम यहां किस लिए आ रहे हो! हम तो यहां भूखे मर रहे हैं। हम तो तुम्हारी तरफ आशा लगाए बैठे हैं। तुम यहां किस लिए आ रहे हो? तुम्हारा दिमाग खराब है?

और जब हमारे मुल्क के युवक-युवतियां पश्चिम की तरफ जाते हैं, टेक्नालाजी सीखने, उनका विज्ञान सीखने, और अभिभूत होते हैं, और समर्पित होते हैं उन दिशाओं में, तो पश्चिम में भी चिंता होती है कि हम तो तुम्हारी तरफ खोजने आ रहे हैं कि कुछ तुम्हारे पास होगा। तुम यहां चले आ रहे हो! क्या, मामला क्या है?

मामला एक बुनियादी भूल का है। जो अध्यात्म में सफलता की कुंजी है, वही कुंजी संसार के ताले को नहीं खोलती। जो संसार के ताले को खोल देती है, वही कुंजी अध्यात्म के ताले को नहीं खोलती है। और अब तक कोई मास्टर-की नहीं खोजी जा सकी है--और खोजी भी नहीं जा सकती--जो दोनों तालों को एक साथ खोल देती हो।

अगर दोनों ताले खोलने हों एक साथ, तो दो कुंजियों की जरूरत पड़ेगी। उनकी प्रक्रिया अलग है। संसार में अहंकार आधार है, महत्वाकांक्षा, संघर्ष। अध्यात्म में निरअहंकारिता, महत्वाकांक्षा से शून्य हो जाना, एक गहरी विनम्रता, कोई दौड़ नहीं, कोई पागलपन नहीं, कोई यात्रा नहीं। इसे ख्याल रखेंगे।

तो जब आप संसार से घबड़ाकर अध्यात्म की तरफ मुड़ने लगें, तो संसार के ढंग अध्यात्म में मत ले जाना। उनको भी संसार के साथ ही छोड़ देना। वे ढंग वहां काम नहीं आएंगे। उस यात्रा में उनकी कोई भी जरूरत नहीं है। उन्हें आप छोड़ देना। वे बोझ बन जाएंगे।

अध्यात्म की शिक्षा में आपको संसार में सीखा हुआ कुछ भी काम नहीं आएगा। सिर्फ एक बात भर कि संसार व्यर्थ है, अगर इतना आपने सीख लिया हो, तो आप पीछे की तरफ मुड़ सकते हैं। लेकिन इस व्यर्थता में संसार के सारे अनुभव, सारे साधन, सारा ज्ञान, सब व्यर्थ हो जाता है।

संसार का एक ही उपयोग है अध्यात्म के लिए कि यह अनुभव में आ जाए कि वह पूर्णतया व्यर्थ है, तो आप भीतर की दुनिया में प्रवेश कर सकते हैं।

एक आखिरी सवाल। एक मित्र ने पूछा है कि यदि प्रकृति में घटनाएं होती हैं और पुरुष में भाव, तो क्या जब कोई सिद्धि को प्राप्त हो जाता है और अनुभव कर लेता है अपनी पृथकता को, तो उसके शरीर में दुख और मन में पीड़ा बंद हो जाती है?

इसे थोड़ा समझना पड़े।

पहली तो बात यह समझनी पड़े कि दुख और कष्ट का फर्क। अगर आपके पैर में कोई कांटा चुभाए, तो दो घटनाएं घटती हैं। एक घटना है, कष्ट। कष्ट का अर्थ है कि आप अनुभव करते हैं कि पैर में पीड़ा हो रही है। मैं जान रहा हूं कि पैर में पीड़ा हो रही है। आप जानने वाले होते हैं। पीड़ा पैर में घटित होती है, आप देखने वाले होते हैं। आप साक्षी होते हैं।

इसका यह मतलब नहीं कि आप साक्षी होंगे, तो कोई आपके पैर में कांटा चुभाए तो आपको पीड़ा नहीं होगी। इस भ्रांति में आप मत पड़ना। पीड़ा होगी। कष्ट होगा। क्योंकि कांटे का चुभना एक घटना है। लेकिन दुख नहीं होगा। इस फर्क को ख्याल में ले लें।

दुख तब होता है, जब मैं कष्ट के साथ अपने को एक कर लेता हूं। जब मैं कहता हूं कि मुझे कोई कांटा चुभा रहा है, तब दुख होता है। पैर को कोई कांटा चुभा रहा है, मैं देख रहा हूं, तब कष्ट होता है।

इसलिए जीसस को भी जब सूली लगी, तो उनको कष्ट हुआ है। दुख नहीं हुआ।

कष्ट तो होगा। कष्ट तो घटना है। कष्ट का तो मतलब ही इतना है कि... । इसका तो मतलब हुआ, कोई मेरा पैर काटे, तो मुझे पता नहीं चलेगा कि मेरा पैर किसी ने काटा?

कोई मेरा पैर काटेगा, तो मुझे पता चलेगा कि पैर किसी ने मेरा काटा। वह एक घटना है। और पैर के काटने में जो पैर के तंतुओं में तनाव और परेशानी होगी, वह मुझे अनुभव में आएगी कि परेशानी हो रही है। अगर मैं ऐसा समझ लूं कि मैं कट रहा हूं पैर के कटने में, तो दुख होगा। दुख है कष्ट के साथ तादात्म्य, कष्ट के साथ एक हो जाना।

इसलिए ज्ञानी को दुख नहीं होगा; कष्ट तो होगा। और एक बात मजे की है कि ज्ञानी को आपसे ज्यादा कष्ट होगा। आप तो दुख में इतने लीन हो जाते हैं कि कष्ट का आपको पूरा पता ही नहीं चलता। ज्ञानी को तो कोई दुख होगा नहीं, इसलिए कोई लीनता भी नहीं होगी। वह तो सजग होकर देखता रहेगा। उसकी संवेदनशीलता बहुत गहन होगी, आपसे ज्यादा होगी। क्योंकि उसका तो मन बिल्कुल दर्पण है! सब साफ-साफ दिखाई पड़ेगा।

आपको तो कष्ट दिखाई ही नहीं पड़ पाता, उसके पहले ही आप दुख में डूब जाते हैं। तो आपका तो पूरा चैतन्य धुएं से भर जाता है दुख के। इसलिए आपको कष्ट का ठीक-ठीक बोध नहीं हो पाता। आप तो रोना-धोना-चिल्लाना शुरू कर देते हैं। उसमें आप अपने को भुला लेते हैं।

लेकिन ज्ञानी न तो रो रहा है, न धो रहा है, न चिल्ला रहा है, न कोई धुआं है उसके भीतर। उसका मन तो पूरा, जो हो रहा है, उसे जान रहा है। वह कष्ट को उसकी पूर्णता में जानेगा।

आप कष्ट को पूर्णता में नहीं जान पाते हैं, क्योंकि दुख की छाया कष्ट को ढांक लेती है। शायद हमने इसीलिए दुख में डूब जाना आसान समझा है। वह कष्ट से बचने का एक उपाय है।

समझें, आपके घर में कोई मर गया; पत्नी मर गई। आप रोएं मत, साक्षी-भाव से बैठे रहें, तो आपको कष्ट का पूरा अनुभव होगा। वह आपके रोएं-रोएं में अनुभव होगा। आपके रग-रग में अनुभव होगा। आपके एक-एक कोष्ठ में वह पीड़ा अनुभव होगी। क्योंकि पत्नी का मरना सिर्फ पत्नी का मरना नहीं है, आपका कुछ अनिवार्य हिस्सा भी साथ में मर गया।

पत्नी और आप अगर चालीस साल साथ रहे थे, तो बहुत दूर तक एक हो गए थे। आपके दोनों के शरीर ने बहुत तरह की एकता जानी थी। वह एकता एक-दूसरे के शरीर में व्याप्त हो गई थी। जब पत्नी मर रही है, तो सिर्फ पत्नी का शरीर नहीं मर रहा है, आपके शरीर में भी पत्नी के शरीर का जो अनुदान था, वह बिखरेगा, और विनष्ट होगा। वह जाएगा। बड़ा कष्ट होगा। रोएं-रोएं, रग-रग में पीड़ा होगी।

लेकिन आप छाती पीटकर रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, और कह रहे हैं कि मेरी पत्नी मर गई। और लोग आपको समझा रहे हैं और आपको समझ में नहीं आ रहा है, इस सब में आप कष्ट से बच रहे हैं। यह तरकीब है। इस रोने-धोने में, आपको जो कष्ट अनुभव होता, जो उसकी तीव्रता छिद जाती छाती में भाले की तरह, वह नहीं छिदेगी। आप रो-धोकर वक्त गुजार देंगे, तब तक कष्ट विसर्जित हो जाएगा।

इसलिए बड़े होशियार लोग हैं। जब किसी के घर कोई मर जाता है, तो बाकी लोग आ-आकर उनको बार-बार रुलाते हैं। वह बड़ा कारगर है। वह करना चाहिए। फिर कोई बैठने आ गया। फिर आप रोने लगे। और दो-तीन दिन के बाद तो हालत ऐसी हो जाती है कि आपको अब रोना भी नहीं आ रहा है और कोई बैठने आ गया, तो आप रो रहे हैं!

महीने, पंद्रह दिन में लोग आपको इतना थका देते हैं रुला-रुलाकर, कि अब आपका मन होने लगता है कि अब मरने से इतना कष्ट नहीं हो रहा है किसी के, जितना तुम्हारे आने से हो रहा है। अब तुम बंद करो। जब ऐसी घड़ी आ जाती है, तभी लोग आना बंद करते हैं।

इस बीच महीनेभर में जो कष्ट की महान घटना घटी थी, वह आपको दिखाई नहीं पड़ती। आप इस रोने की मूर्च्छा में सब विसर्जित कर जाते हैं।

अगर आप साक्षी-भाव से बैठें, तो आपको लगेगा, पत्नी ही नहीं मर रही है, आप भी मर रहे हैं। जब भी कोई प्रिय मरता है, तो आप भी मरते हैं। क्योंकि आपका शरीर उससे न मालूम कितने-कितने रूपों में जुड़ गया था। आप एक हो गए थे। आपका कुछ टूट रहा है अंग, हाथ-पैर कट रहे हैं आपके। वह पूरा कष्ट आपको अनुभव होगा।

तब आपको बड़ी चीजें साफ होंगी। तब आपको यह भी पता चलेगा कि पत्नी के मरने से कष्ट नहीं हो रहा है। पत्नी के साथ जो मोह था, उस मोह के टूटने से कष्ट हो रहा है। यह सवाल पत्नी के मरने का नहीं है। चूंकि मैं भी मर रहा हूं! उसके साथ जुड़ा था, अब मेरा एक हिस्सा टूट जाएगा सदा के लिए और खाली हो जाएगा, जिसको शायद भरना संभव नहीं होगा। उससे दुख, उससे कष्ट हो रहा है।

लेकिन कष्ट से बचने के लिए हमने बेहोश होने की बहुत-सी तरकीबें निकाली हैं। उसमें सब से गहरी तरकीब यह है कि हम आच्छादित हो जाते हैं कष्ट से, तादात्म्य कर लेते हैं और विचलित होने लगते हैं भीतर। उस विचलित अवस्था में बाहर का कष्ट गुजर जाता है और हम उसे सह लेते हैं।

ज्ञानी को कष्ट बिल्कुल साफ होगा। क्योंकि वह किसी तरह के दुख में नहीं पड़ेगा। उसके मन पर कोई भी कष्ट का बादल घेरकर उसे डुबाएगा नहीं। उसे कष्ट बिल्कुल साफ होगा।

इसे हम ऐसा समझें कि आप बहुत विचारों से भरे बैठे हैं। रास्ते पर किसी के मकान में आग लग जाए और शोरगुल मच जाए, तो भी आपको पता नहीं चलता। लेकिन आप ध्यान में बैठे हैं बिल्कुल शांत। एक सुई भी गिर जाए, तो आपको सुनाई पड़ेगी। एक सुई भी गिर जाए, तो आपको सुनाई पड़ेगी।

जैसे ही कोई व्यक्ति गहरे ध्यान को उपलब्ध होता है, तो जरा-सी चीज भी शरीर में हो जाए, तो उसे पता चलेगी। कष्ट उसे होगा। लेकिन दुख नहीं होगा। दुख के होने का अर्थ है कि वह कष्ट से अपने को जोड़े तभी होता है। जब आप कष्ट से अपने को न जोड़ें, तो दुख नहीं होता।

इसलिए ध्यान रखें, अध्यात्म की यात्रा पर चलने वाले कुछ लोग इससे उलटा काम करने लगते हैं। वे कोशिश करते हैं कि उनको कष्ट भी न हो। कष्ट न हो, तो उसकी तरकीब दूसरी है। उसकी तरकीब है, शरीर को धीरे-धीरे जड़ बनाना। चैतन्य को सजग नहीं करना, साक्षी को नहीं जगाना, शरीर को जड़ बनाना।

अगर आप काशी जाते हैं, तो वहां आपको कांटों पर सोए हुए लोग मिल जाएंगे। आप बड़े चकित होंगे। आपको लगेगा, बेचारे कितने ज्ञान को उपलब्ध लोग! कैसा परम ज्ञान उपलब्ध हो गया कि कांटों पर पड़े हैं और कोई दुख नहीं हो रहा है!

कोई ज्ञान को उपलब्ध होकर कांटों पर पड़ने की जरूरत नहीं है। लेकिन कांटों पर पड़ने का अभ्यास कर लिया जाता है। अभ्यास कर लेने के बाद कोई कष्ट नहीं होता है, क्योंकि शरीर जड़ हो जाता है। अगर आप एक ही जगह रोज सुई चुभाते रहें, तो आज जितनी तकलीफ होगी, कल कम होगी, परसों और कम होगी। आप रोज अभ्यास करते रहें। एक दो महीने बाद आप सुई चुभाएंगे और बिल्कुल पता नहीं चलेगी। तो आप कोई ज्ञान को

उपलब्ध नहीं हो गए, सिर्फ दो महीने में आपने शरीर को जड़ कर लिया। उस जड़ता के कारण अब आपको कष्ट भी नहीं होता।

ध्यान रहे, दुख न होना तो एक क्रांतिकारी घटना है। कष्ट न होना, शरीर को मुर्दा बना लेने का प्रयोग है।

तो आप चाहें तो शरीर को मुर्दा बना ले सकते हैं। बहुत से उपाय हैं, जिनसे शरीर जड़ हो जाता है। उसकी सेंसिटिविटी, संवेदना कम हो जाती है। संवेदना कम हो जाती है, तो कष्ट नहीं होता। कष्ट नहीं होता, तो दुख आपको होने का कोई कारण नहीं रहा। क्योंकि दुख होने के लिए कष्ट का होना जरूरी था। लेकिन आपने कष्ट का दरवाजा बंद कर दिया, तो अब दुख होने का कोई कारण नहीं रहा। लेकिन आप जरा भी नहीं बदले हैं। आप वही के वही हैं। आपकी चेतना नहीं बदली है। अगर आपको कष्ट पहुंचाया जाए नए ढंग से, तो आपको दुख होगा। क्योंकि भीतर कोई साक्षी पैदा नहीं हो गया है।

यह धोखा है अध्यात्म का। शरीर को जड़ बना लेना, धोखा है अध्यात्म का। चैतन्य को और चैतन्य कर लेना असली अध्यात्म है। लेकिन जितना आप चैतन्य को और चैतन्य करेंगे, और साक्षी बनेंगे, उससे आपका कष्ट से छुटकारा नहीं हो जाएगा। सच तो यह है, आपको बहुत-से नए कष्ट पता चलने लगेंगे, जो आपको पहले कभी पता नहीं चले थे। क्योंकि पहले आप जड़ थे। अब आप और संवेदनशील हो रहे हैं। आपको और कष्टों का पता चलेगा।

लेकिन कष्ट आपसे दूर होंगे। आप कष्टों से दूर होंगे। दोनों के बीच एक फासला, एक डिस्टेंस होगा। और आप देखने वाले होंगे। आप भोक्ता नहीं होंगे। बस, साक्षी जग जाए और भोक्ता खो जाए।

तो आप यह मत सोचना कि जब कृष्ण के पैर में किसी ने तीर मार दिया, तो उन्हें कोई कष्ट न हुआ होगा। आपसे बहुत ज्यादा हुआ होगा। क्योंकि कृष्ण जैसा संवेदनशील आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। कृष्ण कोई जड़ व्यक्ति नहीं थे, नहीं तो उनके होंठों से ऐसी बांसुरी और ऐसे गीत पैदा नहीं हो सकते थे। बहुत कोमल, बहुत संवेदनशील, बहुत रसपूर्ण थे।

तो जिसके होंठों से बांसुरी पर ऐसे गीत पैदा हुए और जिसके शरीर की कोमलता और सौंदर्य ने न मालूम कितने लोगों को आकर्षित किया और प्रेम में गिरा लिया, आप यह मत सोचना कि जब उसके पैर में तीर चुभा होगा, तो उसे कष्ट नहीं हुआ होगा। कष्ट तो पूरा होगा। आपसे बहुत ज्यादा होगा। लेकिन दुख बिल्कुल नहीं होगा। वह देखता रहेगा, जैसे किसी और के पैर में तीर चुभा हो, ऐसा ही वह इसे भी देखता रहेगा। भीतर कुछ भी हलचल न होगी। भीतर जो थिर था, वह थिर ही रहेगा। भीतर जो चेतना जैसी थी, वैसी ही रहेगी। इस तीर से शरीर में फर्क पड़ेगा। शरीर खबर देगा, मन के तंतु कंपेंगे। मन तक खबर पहुंचेगी। लेकिन चेतना अलिप्त, असंग, निर्दोष, कुंवारी ही बनी रहेगी।

यह हमारे ख्याल में न होने से बड़ा उपद्रव हुआ है। इसलिए हम जड़ हो गए लोगों को आध्यात्मिक समझते हैं। और जड़ता पैदा कर लेने में न तो कोई कुशलता है, न कोई बड़े गुण की बात है। इसलिए अक्सर बहुत बुद्धिहीन लोग भी आध्यात्मिक होने की तरह पूजे जाते हैं। वे कोई भी जड़ता का काम कर लें।

एक गांव से मैं गुजरा। एक आदमी दस वर्षों से खड़े हुए हैं। और कोई गुण नहीं है, बस खड़े हैं। वे खड़ेश्री बाबा हो गए हैं! बस लोग उनके चरणों पर सिर रख रहे हैं। यह बड़ी भारी बात हो गई कि वे दस साल से खड़े हैं। रात भी वे दोनों हाथों का लकड़ियों से सहारा लेकर सो जाते हैं। उनके पैर हाथीपांव हो गए हैं। सारा खून शरीर का पैरों में उतर गया है। लोग समझ रहे हैं कि कोई अध्यात्म घट गया है।

मैंने उनसे कहा कि खड़ेश्री बाबा को एक दफा बैठेश्री बाबा बनाकर भी तो देखो! अब वे बैठ भी नहीं सकते। सारा पैर जड़ हो गया है। अब तुम बिठाना भी चाहो, तो बिठाने का कोई उपाय नहीं है। यह शरीर की विकृति और कुरूपता है। इसको अध्यात्म से क्या लेना-देना है! और इस आदमी में और कुछ भी नहीं है।

मैंने उनसे पूछा, और कुछ? खड़े होने की बात मान ली। और कुछ क्या है? बोले कि यही क्या कम है! यह बड़ी भारी घटना है। दस साल से कोई आदमी खड़ा है!

तो पैरों की जड़ता का नाम अध्यात्म नहीं है। पैर जड़ हो सकते हैं, किए जा सकते हैं। इसमें क्या अड़चन है! न तो यह कोई गुण है, और न कोई सम्मान के योग्य। लेकिन हम इस तरह की बातों को सम्मान देते हैं, तो जड़ता बढ़ती है। और जड़ता को हम पूजते हैं।

संवेदनशीलता पूजनीय है। लेकिन अकेली संवेदनशीलता पूजनीय नहीं है। अगर संवेदनशीलता के साथ साक्षी-भाव भी जुड़ जाए, तो वही क्रांतिकारी घटना है, जिससे व्यक्ति जीवन के परम तत्व को जानने में समर्थ हो पाता है।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न करता है, न लिपायमान होता है। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ भी आत्मा गुणातीत होने के कारण देह के गुणों से लिपायमान नहीं होता है।

जो मैं कह रहा था, यह सूत्र उसी की तरफ इशारा है।

हे अर्जुन, अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होता हुआ भी वास्तव में न करता है, न लिपायमान होता है।

यही अत्यधिक कठिन बात समझने की है।

हम देखते हैं आकाश, सबको घेरे हुए है। सब कुछ आकाश में होता है, लेकिन फिर भी आकाश को कुछ भी नहीं होता। एक गंदगी का ढेर लगा है। गंदगी के ढेर को भी आकाश घेरे हुए है। गंदगी का ढेर भी आकाश में ही लगा हुआ है, ठहरा हुआ है, लेकिन आकाश गंदगी के ढेर से गंदा नहीं होता। गंदगी का ढेर हट जाता है, आकाश जैसा था, वैसा ही बना रहता है।

फिर एक फूल खिलता है। चारों तरफ सुगंध फैल जाती है। फूल के इस सौंदर्य को भी आकाश घेरे हुए है। लेकिन आकाश इस फूल के सौंदर्य से भी अप्रभावित रहता है। वह इसके कारण सुंदर नहीं हो जाता। फूल आज है। कल नहीं होगा। आकाश जैसा था, वैसा ही होगा।

आकाश के इस गुण को बहुत गहरे में समझ लेना जरूरी है, क्योंकि यही आत्मा का गुण भी है।

आकाश सदा ही कुंवारा है। उसे कोई भी चीज छू नहीं पाती। ऐसा समझें, हम एक पत्थर पर लकीर खींचते हैं। पत्थर पर खींची लकीर हजारों साल तक बनी रहेगी। पत्थर पकड़ लेता है लकीर को। पत्थर लकीर के साथ तत्सम हो जाता है, तादात्म्य कर लेता है। पत्थर लकीर बन जाता है।

फिर हम लकीर खींचें पानी पर। खिंचती जरूर है, लेकिन खिंच नहीं पाती। हम खींच भी नहीं पाते और लकीर मिट जाती है। हम खींचकर पूरा कर पाते हैं, लौटकर देखते हैं, लकीर नदारद है। पानी पर लकीर खिंचती तो है, लेकिन पानी लकीर को पकड़ता नहीं। खिंचते ही मिट जाती है। खींचते हैं, इसलिए खिंच जाती

है। लेकिन टिक नहीं पाती, क्योंकि पानी उसे पकड़ता नहीं। पत्थर पकड़ लेता है, हजारों साल तक टिक जाती है। पानी में क्षणभर नहीं टिकती; बनती जरूर है।

आकाश में लकीर खींचें, वहां बनती भी नहीं। पानी पकड़ता नहीं, लेकिन बनने देता है। पत्थर बनने भी देता है, पकड़ भी लेता है। आकाश न बनने देता है और न पकड़ता है। आकाश में लकीर खींचें, कुछ भी खिंचता नहीं। इतने पक्षी उड़ते हैं, लेकिन आकाश में कोई पद-चिह्न नहीं छूट जाते। इतना सृजन, इतना परिवर्तन, इतना विनाश चलता है और आकाश अछूता बना रहता है, अस्पर्शित, सदा कुंवारा।

आकाश का यह जो गुण है, यही परमात्मा का भी गुण है। या ऐसा कहें कि जो हमें बाहर आकाश की तरह दिखता है, वही भीतरी आकाश परमात्मा है; इनर स्पेस, भीतर का आकाश परमात्मा है।

कृष्ण कहते हैं, यह जो भीतर छिपा हुआ चैतन्य है, इसे कुछ भी छूता नहीं। तुम क्या करते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। तुम क्या करते हो, क्या होता है, इससे तुम्हारे भीतर के आकाश पर कोई लकीर नहीं खिंचती। तुम भीतर शुद्ध ही बने रहते हो। यह शुद्धि तुम्हारा स्वभाव है।

यह बड़ा खतरनाक संदेश है। इसका मतलब हुआ कि पाप करते हो, तो भी कोई रेखा नहीं खिंचती। पुण्य करते हो, तो भी कोई लाभ की रेखा नहीं खिंचती। न पाप न पुण्य, न अच्छा न बुरा--भीतर कुछ भी छूता नहीं। भीतर तुम अछूते ही बने रहते हो। खतरनाक इसलिए है कि सारी नैतिकता, सारी अनैतिकता व्यर्थ हो जाती है।

भीतर की शुद्धि शाश्वत है। तुम्हारे करने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। लेकिन तुम्हारे करने से तुम अकारण दुख पाते हुए मालूम होते हो। अगर तुम बुरा करते हो, तो तुम बुरे के साथ तादात्म्य बना लेते हो और दुख पाते हो। अगर तुम शुभ करते हो, तो शुभ के साथ तादात्म्य बना लेते हो और सुख पाते हो।

लेकिन सुख-दुख दोनों तुम्हारी भ्रांतियां हैं। वह जो भीतर छिपा है, वह न सुख पाता है, न दुख पाता है। वह जो भीतर छिपा है, वह सदा एकरस अपने में ही है। न तो वह दुख की तरफ डोलता है, न सुख की तरफ डोलता है।

वह भीतर कौन है तुम्हारे भीतर छिपा हुआ, उसकी खोज ही अध्यात्म है। एक ऐसे बिंदु को स्वयं के भीतर पा लेना, जो सभी चीजों से अस्पर्शित है।

एक गाड़ी चलती है। गाड़ी का चाक चलता है, हजारों मील की यात्रा करता है। लेकिन गाड़ी के चाक के बीच में एक कील है, जो बिल्कुल नहीं चलती, जो खड़ी ही रहती है। चाक चलता चला जाता है। चाक अच्छे रास्तों पर चलता है, बुरे रास्तों पर चलता है। चाक सुंदर और असुंदर रास्तों पर चलता है। चाक सपाट राजपथों पर चलता है, गंदगी-कीचड़ से भरे हुए जंगली रास्तों पर चलता है। वह जो कील है चाक के बीच में खड़ी, वह चलती ही नहीं; वह खड़ी ही रहती है।

ठीक वैसे ही तुम्हारा मन सुख में चलता है, दुख में चलता है; तुम्हारा शरीर कष्ट में चलता है, सुविधा में चलता है; लेकिन भीतर एक कील है चैतन्य की, वह खड़ी ही रहती है, वह चलती ही नहीं।

अगर तुम शरीर से अपने को एक समझ लेते हो, तो बहुत तरह के कष्ट तुम्हारे दुख का कारण बन जाते हैं। अगर तुम मन से अपने को एक समझ लेते हो, तो बहुत तरह की मानसिक व्यथाएं, चिंताएं तुम्हें घेर लेती हैं; तुम उनसे घिर जाते हो। शरीर से अलग कर लो, शरीर में कष्ट होते रहेंगे, लेकिन तुम दुखी नहीं। मन से अलग कर लो, भावों के तूफान चलते रहेंगे, लेकिन तुम दूर खड़े उनको देखते रहोगे।

शरीर और मन दोनों से पार खड़ा हो जाता है जो, उसे पता चलता है कि यहां तो कभी भी कुछ नहीं हुआ। यहां तो सदा ही सब वैसा का वैसा है। जैसा अगर सृष्टि का कोई पहला क्षण रहा होगा, तो उस दिन जितनी शुद्ध थी चेतना, उतनी ही शुद्ध आज भी है।

इसे हम ऐसा समझें कि आप एक नाटक में काम करते हैं। रावण बन गए हैं। बड़े बुरे काम करने पड़ते हैं। सीता चुरानी पड़ती है। हत्याएं करनी पड़ती हैं। युद्ध करना पड़ता है। या राम बन गए हैं। बड़े अच्छे काम करते हैं। बड़े आदर्श, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। लोग आदर देते हैं, सम्मान करते हैं। लेकिन जब आप नाटक छोड़कर घर आते हैं, तो न आप राम होते हैं, न रावण होते हैं। न तो रावण का होना आपको छूता है, न राम का होना आपको छूता है।

लेकिन कभी-कभी खतरा हो सकता है। कभी-कभी अभिनय भी छू सकता है। अगर आप अपने को एक समझ लें। अगर आप यह समझ लें कि मैंने इतने दिन तक राम का पार्ट किया, तो अब गांव के लोगों को मुझे राम समझना चाहिए। तो फिर झंझट हो सकती है।

ऐसा हुआ, अमेरिका में लिंकन का एक आदमी ने पार्ट किया एक साल तक। क्योंकि लिंकन की कोई शताब्दी मनाई जाती थी और उसकी शक्ल लिंकन से मिलती-जुलती थी, तो अमेरिका के सभी बड़े नगरों में उसे लिंकन का पार्ट करने के लिए जाना पड़ा। एक सालभर तक वह लिंकन की तरह चलता, लिंकन की छड़ी हाथ में रखता, लिंकन के कपड़े पहनता, लिंकन की तरह हकलाता, लिंकन की तरह बोलता, सब लिंकन की तरह करता।

सालभर लंबा वक्त था। वह आदमी भूल गया। सालभर के बाद जब वह घर आया, तो वह सीधा न चल सके, जैसा वह पहले चलता रहा था। कोशिश करे, तो थोड़ी देर सीधा चले, नहीं तो फिर वह लिंकन की तरह चलने लगे। बोले भी, तो लिंकन की तरह बोले। जहां लिंकन अटकता था, वहीं वह भी अटके।

घर के लोगों ने कहा कि अब छोड़ो भी; अब बात खतम हो गई! लेकिन एक साल का नशा उस पर ऐसा छा गया--जगह-जगह सम्मान, स्वागत, सत्कार--कि उस आदमी ने कहा, क्या छोड़ो! मैं अब्राहम लिंकन हूं। तुम किस भ्रांति में पड़े हो? लोगों ने समझा, वह मजाक कर रहा है थोड़े दिन। लेकिन वह मजाक नहीं कर रहा था। वह अब्राहम लिंकन हो ही गया था।

उसे बहुत समझाया-बुझाया। मित्रों ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो गए हो? लेकिन उसे पक्का भरोसा आ गया था। सालभर लंबा वक्त था। उसे जितना लोगों ने समझाया, उसकी मजबूती बढ़ती चली गई। वह लोगों से कहने लगा, तुम पागल तो नहीं हो गए हो? मैं लिंकन हूं। जितना ही लोगों ने कहा कि तुम नहीं हो, उतनी ही उसकी जिद्द बढ़ती चली गई। फिर तो यहां तक हालत पहुंच गई कि मनोवैज्ञानिकों के पास ले जाकर इलाज करवाना पड़ा।

तो मनोवैज्ञानिक ने कहा कि यह आदमी कितना ही बोल रहा हो, लेकिन भीतर तो यह गहरे में तो जानता ही होगा कि मैं लिंकन नहीं हूं। तो अमेरिका में उन्होंने लाइ डिटेक्टर एक छोटी-सी मशीन बनाई है; अदालत में काम लाते हैं झूठ पकड़ने के लिए। उस मशीन पर आदमी को खड़ा कर देते हैं। उससे पूछते हैं। जो बात वह सच बोलता है, तो उसके हृदय की धड़कन अलग होती है। आप भी जब सच बोलते हैं, तो धड़कन अलग होती है। जब आप झूठ बोलते हैं, तो एक धक्का लगता है। हृदय की धड़कन में फर्क हो जाता है।

किसी ने आपसे पूछा, आपकी घड़ी में कितने बजे हैं? आप कहते हैं, आठ। किसी ने पूछा कि सामने जो किताब रखी है, इसका क्या नाम है? आपने पढ़कर बता दिया। आपके हृदय में कहीं कोई झटका नहीं लगता।

फिर किसी ने पूछा, आपने चोरी की? तो भीतर से तो आप कहते हैं कि की; और ऊपर से आप कहते हैं, नहीं की। तो रिदम, भीतर की लय टूट जाती है। वह लय का टूटना मशीन पकड़ लेती है कि आपके हृदय की गति में फर्क पड़ गया। ग्राफ टूट जाता है।

तो उस आदमी को, अब्राहम लिंकन को, बने हुए अब्राहम लिंकन को खड़ा किया गया लाइ डिटेक्टर पर। वह भी परेशान हो गया था। जो देखे, वही समझाए कि अरे, क्यों पागल हो रहे हो? होश में आओ। यह नाटक था। वह भी घबड़ा गया। उसने सोचा कि इससे कैसे छुटकारा हो!

तो मनोवैज्ञानिक ने बहुत-से सवाल पूछे। फिर पूछने के बाद उसने पूछा कि क्या तुम अब्राहम लिंकन हो? तो उसने सोचा, यह झंझट खतम ही करो, कह दो कि नहीं हूं। तो उसने कहा कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। मनोवैज्ञानिक बड़ा खुश हुआ। लेकिन नीचे मशीन ने ग्राफ बताया कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। इतना गहरा उसको ख्याल चला गया है कि मैं अब्राहम लिंकन हूं। वह खुद ही मना कर रहा है। लेकिन उसका हृदय जानता है कि मैं हूं।

अब क्या करिएगा! एक साल का नाटक अगर ऐसी स्थिति बना देता हो, तो आपने शरीर के साथ बहुत जन्मों में नाटक किया है। कितनी-कितनी लंबी यात्रा है शरीर के साथ एक होने की। मन के साथ कितने समय से आप अपने को एक बनाए हुए हैं। इसलिए कठिनाई है। इसलिए तोड़ने में अड़चन मालूम पड़ती है। इतना लंबा हो गया है यह सब कि आप जन्मों-जन्मों से लिंकन का पार्ट कर रहे हैं। और अब कोई आपसे पूछता है, तो आप कितना ही कहें, मैं शरीर नहीं हूं, लेकिन भीतर... ।

आपको लाइ डिटेक्टर पर खड़ा करके पूछा जाए कि क्या तुम शरीर हो? आप बड़े आत्म-ज्ञानी हैं। गीता पढ़ते हैं, कुरान पढ़ते हैं, कंठस्थ है। और आप रोज सुबह बैठकर दोहराते हैं कि मैं शरीर नहीं हूं। आप लाइ डिटेक्टर पर खड़े किए जाएं। आप कहेंगे, मैं शरीर नहीं हूं। वह डिटेक्टर कहेगा कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। क्योंकि आपकी मान्यता तो गहरी है कि आप शरीर हैं। आप जानते हैं। आपके गहरे तक यह बात घुस गई है। इसे तोड़ने में इसीलिए कठिनाई है। लेकिन यह तोड़ी जा सकती है, क्योंकि यह झूठ है। यह सत्य नहीं है।

आप पृथक हैं ही। आप कितना ही मान लें कि मैं पृथक नहीं हूं, आप पृथक हैं। आपके मानने से सत्य बदलता नहीं। हां, आपके मानने से आपकी जिंदगी असत्य हो जाती है।

कृष्ण कहते हैं, यह जो भीतर बैठा हुआ स्वरूप है, यह सदा मौन, सदा शांत, शुद्ध, सदा आनंद से भरा है।

इसका हमने कभी कोई दर्शन नहीं किया है। और जो भी हम जानते हैं अपने संबंध में, वह या तो शरीर है या मन है। मन के संबंध में भी हम बहुत नहीं जानते हैं। मन की भी थोड़ी-थोड़ी सी परतें हमें पता हैं। बहुत परतें तो अचेतन में छिपी हैं, उनका हमें कोई पता नहीं है।

साक्षी का अर्थ है कि मैं शरीर से भी अपने को तोड़ूं और मन से भी अपने को तोड़ूं। और जब मैं कहता हूं तोड़ूं, तो मेरा मतलब है, वह जो गलत जोड़ है, वही तोड़ना है। वस्तुतः तो हम जुड़े हुए नहीं हैं।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न करता है, न लिपायमान होता है। न तो यह कुछ करता है और चाहे किसी को लगता हो कि कुछ हो भी रहा है, तो भी लिप्त नहीं होता।

कमल का पत्ता जैसे पानी में भी, पानी की बूंदें पड़ जाएं उसके ऊपर, तो भी छूता भी नहीं बूंदों को। बूंदें अलग बनी रहती हैं, पत्ते पर पड़ी हुई भी। जल छूता नहीं। वैसा यह अछूता रह जाता है। इसने कभी भी कुछ नहीं किया है।

हम इसे कैसे मानें? हम तो सब चौबीस घंटे कुछ न कुछ कर रहे हैं। हम इसे कैसे मानें? हम यह कैसे स्वीकार करें कि यह भीतर जो है, यह सदा शुद्ध है। क्योंकि हम बहुत-से पाप कर रहे हैं, चोरी कर रहे हैं, झूठ बोल रहे हैं। यह कृष्ण की बात समझ में नहीं आती कि हम और शुद्ध हो सकते हैं! हम, जिन्होंने इतनी बुराइयां की हैं? न भी की हों, तो इतनी बुराइयां सोची हैं, करनी चाही हैं। कितनी बार हत्या करने का मन हुआ है, चोरी करने का मन हुआ है। यह मन हमारा, यह कैसे भीतर सब शुद्ध हो सकता है?

बाहर के आकाश को देखें! सब कुछ घटित हो रहा है और बाहर का आकाश शुद्ध है। भीतर भी एक आकाश है, ठीक बाहर के आकाश जैसा। बीच में सब घटित हो रहा है, वह भी भीतर शुद्ध है।

इस शुद्धता का स्मरण भी आ जाए, तो आपकी जिंदगी में एक नया आयाम खुल जाएगा। आप दूसरे आदमी होने शुरू हो जाएंगे। फिर आप जो भी कर रहे हैं, करते रहें, लेकिन करने से रस खो जाएगा। फिर जो भी कर रहे हैं, करते रहें, लेकिन करने में से अकड़ खो जाएगी। फिर करना ऐसे हो जाएगा, जैसे सांप तो निकल गया और केवल सांप का ऊपर का खोल पड़ा रह गया है। जैसी रस्सी तो जल गई, लेकिन सिर्फ राख रस्सी के रूप की रह गई है।

अगर आपको यह ख्याल आना शुरू हो जाए कि मैं अकर्ता हूं, तो कर्म जारी रहेगा, जली हुई रस्सी की भांति, जिसमें अब रस्सी रही नहीं, सिर्फ राख है। सिर्फ रूप रह गया है पुराना। कर्म चलता रहेगा अपने तल पर, और आप हटते जाएंगे। जैसे-जैसे कर्म से हटेंगे, वैसे-वैसे लगेगा कि मैं अलिप्त भी हूं। कुछ मुझे लिप्त नहीं कर सकता।

एक घटना आपसे कहूं। एक बौद्ध भिक्षु हुआ बहुत अनूठा, नागार्जुन। नागार्जुन के पास एक युवक आया। और उस युवक ने कहा कि मैं भी चाहता हूं कि जान लूं उसको, जो कभी लिप्त नहीं होता। जान लूं उसको, जो अकर्ता है। जान लूं उसको, जो परम आनंदित है, सच्चिदानंदघन है। कोई रास्ता?

नागार्जुन बहुत अपने किस्म का अनूठा गुरु था। उसने कहा कि पहले मैं तुझसे पूछता हूं कि तुझे किसी चीज से लगाव, कोई प्रेम तो नहीं है? उस युवक ने कहा कि कोई ज्यादा तो नहीं है, सिर्फ एक भैंस है मेरे पास, पर उससे मुझे लगाव है। तो नागार्जुन ने कहा कि बस इतना काफी है। इससे काम हो जाएगा। साधना शुरू हो जाएगी।

उस युवक ने कहा कि भैंस से और साधना का क्या संबंध? और मैं तो डर भी रहा था कि यह अपना लगाव बताऊं भी कि नहीं! कोई स्त्री से हो, किसी मित्र से हो, तो भी कुछ समझ में आता है। यह भैंस वाला लगाव! मैंने सोचा था कि इसकी तो चर्चा ही नहीं उठेगी। लेकिन आपने पूछा... ।

नागार्जुन ने कहा, बस, तू एक काम कर। यह सामने मेरी गुफा के जो दूसरी गुफा है, उसमें तू चला जा; और एक ही भाव कर कि मैं भैंस हूं। जो तेरा प्रेम है, उसको तू आरोपित कर। बस, तू अपने को भैंस का रूप बना ले। और तू लौटकर मत आना। जब जरूरत होगी, तो मैं आऊंगा। तू तो बस, इतना ही भाव कर, एक ही भाव कि मैं भैंस हूं।

उस युवक ने साधना करनी शुरू की। एक दिन बीता, दो दिन बीता, तीसरे दिन उसकी गुफा से भैंस की आवाज आनी शुरू हो गई। नागार्जुन ने अपने शिष्यों से कहा कि अब चलने का वक्त आ गया। अब चलो, देखो, क्या हालत है।

वे सब वहां अंदर गए। वह युवक दरवाजे के पास ही सिर झुकाए खड़ा था। दरवाजा काफी बड़ा था। बाहर निकल सकता था। लेकिन सिर झुकाए खड़ा था जैसे कोई अड़चन हो। भैंस की आवाज कर रहा था।

नागार्जुन ने कहा कि बाहर आ जाओ। उसने कहा कि बाहर कैसे आ जाऊं! मेरे सींग दरवाजे में अड़ रहे हैं। आंखें उसकी बंद हैं।

नागार्जुन के बाकी शिष्य तो बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा कि सींग दिखाई तो पड़ते नहीं! नागार्जुन ने कहा कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह भी अड़ सकता है। जो नहीं है, वह भी अड़ सकता है। अड़ने के लिए होना जरूरी नहीं है, सिर्फ भाव होना जरूरी है। इसका भाव पूरा है।

नागार्जुन ने उसे हिलाया और कहा, आंख खोल। उसने घबड़ाकर आंख खोली, जैसे किसी गहरी नींद से उठा हो। तीन दिन की लंबी नींद, आत्म-सम्मोहन, सेल्फ हिप्नोसिस, तीन दिन तक निरंतर कि मैं भैंस हूं। जैसे बड़ी गहरी नींद से जगा हो। एकदम तो पहचान भी न सका कि क्या मामला है।

नागार्जुन ने कहा कि घबड़ा मत। कहां हैं तेरे सींग? उसने सिर पर हाथ फेरा। उसने कहा कि नहीं, सींग तो नहीं हैं। लेकिन अभी अड़ रहे थे। उसने कहा, वह भी मुझे ख्याल है। मैं तीन दिन से निकलने की कोशिश कर रहा हूं। और तुमने कहा था, निकलना मत। मैं तीन दिन से कोशिश करके भी निकल नहीं पा रहा हूं। वे सींग अड़ जाते हैं बीच में। बड़ी तकलीफ भी होती है। टकराता हूं; तकलीफ होती है।

तो नागार्जुन ने कहा, कहां हैं सींग? कहां है तेरा भैंस होना? नागार्जुन ने कहा कि तुझे अब मैं कुछ और सिखाऊं कि बात तू सीख गया? उसने कहा, मैं बात सीख गया। तीन दिन का मुझे मौका और दे दें।

नागार्जुन और उसके शिष्य वापस लौट आए। शिष्यों ने कहा, हम कुछ समझे नहीं। यह क्या वार्तालाप हुआ? नागार्जुन ने कहा, तीन दिन बाद!

तीन दिन तक वह युवक फिर उस कोठरी में बंद था। और जैसे तीन दिन उसने अपने को भैंस होना स्वीकार कर के भैंस बना लिया था, वैसे तीन दिन उसने अस्वीकार किया कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं मन नहीं हूं। और तीन दिन बाद जब नागार्जुन और उसके शिष्य वहां पहुंचे, तो वह जो व्यक्ति उन्होंने देखा था, वहां सिर्फ रस्सी की राख रह गई थी, जली हुई।

उस व्यक्ति ने आंख खोली और नागार्जुन ने अपने शिष्यों से कहा, इसकी आंखों में झांको। उन आंखों में जैसे गहरा शून्य था। और नागार्जुन ने पूछा कि अब तुम कौन हो? तो उस व्यक्ति ने कहा कि सिर्फ आकाश। अब मैं नहीं हूं। सब समाप्त हो गया। और जो मैं चाहता था जानना, वह मैंने जान लिया! और जो मैं चाहता था होना, वह मैं हो गया हूं।

जो भी आप सोच रहे हैं कि आप हैं, यह आपकी मान्यता है। यह आटो-हिप्नोसिस है। यह आत्म-सम्मोहन है। और यह सम्मोहन इतना गहरा है, बचपन से डाला जाता है, कि इससे आपको ख्याल भी नहीं है कभी कि यह अपनी ही मान्यता है, जो हम अपने चारों तरफ खड़ी कर लिए हैं।

आपका व्यक्तित्व आपकी मान्यता है। इसलिए बहुत मजे की घटनाएं घटती हैं। अगर आप दुनिया की अलग-अलग संस्कृतियों का अध्ययन करें, तो आप चकित हो जाएंगे।

कुछ ऐसी कौमें हैं, जो मानती हैं, पुरुष कमजोर है और स्त्री ताकतवर है। वहां पुरुष कमजोर हो गया है और स्त्री ताकतवर हो गई है। जिन कौमों की ऐसी धारणा है कि पुरुष कमजोर है, वहां पुरुष कमजोर है। और स्त्री ताकतवर है, तो स्त्री ताकतवर है। वहां मर्दाना होने का कोई मतलब नहीं है। वहां जनाना होने की शान है। और वहां अगर कोई मर्द ताकतवर होता है, तो लोग कहते हैं कि क्या जनाना मर्द है! क्या शानदार मर्द है! ठीक औरत जैसा।

आप यह मत सोचना की औरत कमजोर है। औरत का कमजोर होना एक मान्यता है।

आप चकित होंगे जानकर कि अमेजान में एक छोटी-सी कौम है। जब बच्चा होता है किसी स्त्री को, तो पति को भी प्रसव की पीड़ा होती है। एक खाट पर पड़ती है स्त्री, दूसरी खाट पर लेटता है पति। और दोनों तड़पते हैं। आप कहेंगे, यह पति बनता होगा। क्योंकि आखिर इधर भी तो इतने बच्चे पैदा होते हैं!

नहीं; पति बनता बिल्कुल नहीं। और जब पहली दफा ईसाई मिशनरियों ने यह चमत्कार देखा, तो वे बड़े हैरान हुए कि ये पति भी क्या ढोंग कर रहे हैं! पति को कहीं प्रसव पीड़ा होती है! पत्नी को बच्चा हो रहा है, तुम क्यों तकलीफ पा रहे हो? और पत्नी से भी ज्यादा शोरगुल पति मचाता है, क्योंकि पति पति है। पत्नी तो थोड़ा-बहुत मचाती है। पति बहुत उछल-कूद करता है। गिर-गिर पड़ता है, रोता है, पीटता है। जब तक बच्चा नहीं हो जाता, तब तक तकलीफ पाता है। बच्चा होते ही से वह बेहोश होकर गिर जाता है।

तो पादरियों ने समझा कि यह भी एक खेल है। इन्होंने बना रखा है। बाकी इसमें कोई हो तो नहीं सकती सचाई। तो जब चिकित्सकों ने जांच की, तो उन्होंने पाया कि यह बात सच नहीं है। दर्द होता है। तकलीफ होती है। पेट में बहुत उथल-पुथल मच जाती है, जैसे बच्चा होने वाला हो। हजारों साल की उनकी मान्यता है कि जब दोनों का ही बच्चा है, तो दोनों को तकलीफ होगी।

और आप यह भी जानकर हैरान होंगे कि ऐसी भी कौमें हैं, इस मुल्क में भी ऐसी ग्रामीण और आदिवासी कौमें हैं, जहां स्त्री को बच्चा बिना तकलीफ के होता है। जैसे गाय को होता है, ऐसे स्त्री को होता है। वह जंगल में काम कर रही है, खेत में काम कर रही है, बच्चा हो जाता है। बच्चे को उठाकर खुद ही अपनी टोकरी में रखकर वृक्ष के नीचे रख देती है, और फिर काम करना शुरू कर देती है।

हमारी स्त्रियां सोच भी नहीं सकतीं कि खुद को बच्चा हो, न नर्स हो, न अस्पताल हो, न डाक्टर हो; और खुद ही को बच्चा हो, और उठाकर टोकरी में रखकर और काम शुरू! काम में कोई अंतराल ही नहीं पड़ता। वह भी मान्यता है। स्त्रियों को जो इतनी तकलीफ हो रही है, वह भी मान्यता है। स्त्रियों को तकलीफ न हो, वह भी मान्यता है।

लोझेन करके एक फ्रेंच चिकित्सक है, उसने एक लाख स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवाया है। और सिर्फ करता इतना ही है कि वह उनको कहता है कि दर्द होता ही नहीं। यह समझाता है पहले, दर्द तुम्हारी भ्रांति है। उनको कान में मंत्र डालता है कि दर्द होता ही नहीं। सम्मोहित करता है; समझा देता है। एक लाख स्त्रियां बिना दर्द के...।

लोझेन का शिष्य है, वह और एक कदम आगे बढ़ गया है। वह कहता है कि दर्द की तो बात ही गलत है, जब बच्चा पैदा होता है, तो स्त्री के जीवन में सबसे बड़ा सुख होता है। और उसने कोई पांच सौ स्त्रियों को सुख करवाकर भी बता दिया। वे स्त्रियां कहती हैं कि जो समाधि का आनंद हमने जाना है बच्चे के होने में, वह तो कभी जाना ही नहीं।

वह भी उनको समझाता है कि यह परम अनुभव का क्षण है। बच्चा जब पैदा होता है, तो स्त्री के जीवन का यह शिखर है आनंद-अनुभव का। अगर इसमें वह चूक गई, तो उसे जीवन में कभी आनंद ही नहीं मिलेगा। उसका शिष्य समझाकर आनंद भी करवा देता है!

आदमी बहुत अदभुत है। आदमी सेल्फ हिप्नोसिस करने वाला प्राणी है। वह अपने को जो भी मान लेता है, वैसा कर लेता है। आपकी सारी व्यक्तित्व की परतें आपकी मान्यताओं की परतें हैं। आप जो हैं, वह आपका सम्मोहन है।

अध्यात्म का अर्थ है, इस सारे सम्मोहन को तोड़कर उसके प्रति जग जाना, जिसका कोई भी सम्मोहन नहीं है। यह सारा शरीर, यह मन, ये धारणाएं, यह स्त्री यह पुरुष, यह अच्छा यह बुरा, इस सबसे हटते जाना। और सिर्फ चैतन्य मात्र, शुद्ध चित्त मात्र शेष रह जाए, मैं सिर्फ जानने वाला हूं, इतनी प्रतीति भर बाकी बचे। तो उस प्रतीति के क्षण में पता चलता है कि वह जो भीतर बैठा हुआ आकाश है, वह सदा कुंवारा है। न उसने कभी कुछ किया और न कुछ उस पर अभी तक लिप्त हुआ है। वह अस्पर्शित, शुद्ध है।

पांच मिनट रुकें। कोई बीच से उठे न। कीर्तन पूरा करें और फिर जाएं।

बारहवां प्रवचन

अकस्मात विस्फोट की पूर्व-तैयारी

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।

क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।। 33।।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।

भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।। 34।।

हे अर्जुन, जिस प्रकार एक ही सूर्य इस संपूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा संपूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकारयुक्त प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान-नेत्रों के द्वारा तत्व से जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, गीता में कहा है कि जो मनुष्य मरते समय जैसी ही चाह करे, वैसा ही वह दूसरा जन्म पा सकता है। तो यदि एक मनुष्य उसका सारा जीवन पाप करने में ही गंवा दिया हो और मरते समय दूसरे जन्म में महावीर और बुद्ध जैसा बनने की चाह करे, तो क्या वह आदमी दूसरे जन्म में महावीर और बुद्ध जैसा बन सकता है?

निश्चित ही, मरते क्षण की अंतिम चाह दूसरे जीवन की प्रथम घटना बन जाती है। जो इस जीवन में अंतिम है, वह दूसरे जीवन में प्रथम बन जाता है।

इसे ऐसा समझें। रात आप जब सोते हैं, तो जो रात सोते समय आपका आखिरी विचार होता है, वह सुबह जागते समय आपका पहला विचार बन जाता है। इसे आप प्रयोग करके जान सकते हैं। रात आखिरी विचार, जब आपकी नींद उतर रही हो, जो आपके चित्त पर हो, उसे ख्याल कर लें। तो सुबह आपको जैसे ही पता लगेगा कि मैं जाग गया हूं, वही विचार पहला विचार होगा।

मृत्यु महानिद्रा है, बड़ी नींद है। इसी शरीर में नहीं जागते हैं, फिर दूसरे शरीर में जागते हैं। लेकिन इस जीवन का जो अंतिम विचार, अंतिम वासना है, वही दूसरे जीवन का प्रथम विचार और प्रथम वासना बन जाती है।

इसलिए गीता ठीक कहती है कि अंतिम क्षण में जो विचार होगा, जो वासना होगी, वही दूसरे जीवन का कारण बन जाएगी।

लेकिन अगर आपने जीवनभर पाप किया है, तो अंतिम क्षण में आप बुद्ध होने का विचार कर नहीं सकते। वह असंभव है। अंतिम विचार तो आपके पूरे जीवन का निचोड़ होगा। अंतिम विचार में सुविधा नहीं है आपके हाथ में कि आप कोई भी विचार कर लें। मरते क्षण में आप धोखा नहीं दे सकते। समय भी नहीं है धोखा देने के लिए। मरते क्षण में तो आपका पूरा जीवन निचुड़कर आपकी वासना बनता है। आप वासना कर नहीं सकते मरते क्षण में।

तो जिस आदमी ने जीवनभर पाप किया हो, मरते क्षण में वह महापापी बनने की ही वासना कर सकता है। वह आपके हाथ में उपाय नहीं है कि आप मरते वक्त बुद्ध बनने का विचार कर लें। बुद्ध बनने का विचार तो तभी आ सकता है जब जीवनभर बुद्ध बनने की चेष्टा रही हो। क्योंकि मरते क्षण में आपका जीवन पूरा का पूरा निचुड़कर आखिरी वासना बन जाता है। वह बीज है। उसी बीज से फिर नए जन्म की शुरुआत होगी।

इसे ऐसा समझें। एक बीज हम बोते हैं; वृक्ष बनता है। फूल खिलते हैं। फूल में फिर बीज लगते हैं। उस बीज में उसी वृक्ष का प्राण फिर से समाविष्ट हो जाता है। वह बीज नए वृक्ष का जन्म बनेगा।

तो आपने जीवनभर जो किया है, जो सोचा है, जिस भांति आप रहे हैं, वह सब निचुड़कर आपकी अंतिम वासना का बीज बन जाता है। वह आपके हाथ में नहीं है।

जिस आदमी ने जीवनभर धन की चिंता की हो, मरते वक्त वह धन की ही चिंता करेगा। थोड़ा समझें, इससे विपरीत असंभव है। क्योंकि जिसके मन पर धन का विचार ही प्रभावी रहा हो, मरते समय जीवनभर का अनुभव, जीवनभर की कल्पना, जीवनभर की योजना, जीवनभर के स्वप्न, वे सब धक्का देंगे कि वह धन के संबंध में अंतिम विचार कर ले। इसलिए धन को पकड़ने वाला अंतिम समय में धन को ही पकड़े हुए मरेगा।

लोककथाएं हैं कि अगर कृपण मर जाता है, तो अपनी तिजोड़ी पर सांप बनकर बैठ जाता है। या अपने खजाने पर सांप बनकर बैठ जाता है। वे कथाएं सार्थक हैं। वे इस बात की खबर हैं कि अंतिम क्षण में आप अपने जीवन की पूरी की पूरी निचुड़ी हुई अवस्था को बीज बना लेंगे।

तो गीता ठीक कहती है कि जो अंतिम क्षण में विचार होगा, वही आपके नए जन्म की शुरुआत होगी। लेकिन आप यह मत सोचना कि आप अंतिम क्षण में कोई ऐसा विचार कर लेंगे, जिसका आपके जीवन से कोई संबंध नहीं है। वह असंभव है। वह बिल्कुल ही असंभव है। आप वही विचार करेंगे अंतिम क्षण में, जो आपके पूरे जीवन पर छाया रहा है।

इसलिए बड़ा उपद्रव होता है। इस तरह के वचन पढ़कर हम मन में बड़ी शांति और सांत्वना पाते हैं। हम सोचते हैं, क्या हर्ज है, करते रहो जीवनभर पाप, मरते क्षण में सोच लेंगे कि बुद्ध हो जाना है और हो जाएंगे! जब गीता का आश्वासन है, तो बात हो ही जाएगी।

जब आप जिंदगी में बुद्ध होना नहीं सोचते, तो मरने में आप कैसे बुद्ध होना सोच लेंगे? सच तो यह है कि जिंदगी में आप वही सोचते हैं, जो आप चाहते हैं। क्योंकि जिंदगी अवसर है। मौत तो कोई अवसर नहीं है। तो मौत के लिए तो आप वही चीजें छोड़ देते हैं, जो आप वस्तुतः चाहते नहीं। उनको मरने में कर लेंगे। बाकी जो आपको करना है, वह तो आप जिंदगी में करते हैं। इसलिए हम धर्म को टालते जाते हैं, और अधर्म को करते चले जाते हैं।

धर्म कोई करना नहीं चाहता, इसलिए उसे हम पोस्टपोन करते हैं। उसे हम कहते हैं, कर लेंगे बुढ़ापे में; अभी क्या जल्दी है? पाप करने की बड़ी जल्दी है! उसे अभी करना है। वह जवानी में ही हो सकता है। धर्म बुढ़ापे में कर लेंगे। और अगर कोई जवान आदमी धार्मिक होने लगे या उत्सुक हो जाए, तो बुद्धिमान लोग उसे समझाते हैं कि अभी तेरी उम्र नहीं है। अभी अधर्म कर। उनका मतलब यह है कि अभी अधर्म की उम्र है। जब तक ताकत है, तब तक अधर्म कर लो। जब ताकत न बचे, तो धर्म कर लेना।

लेकिन ताकत अधर्म के लिए जरूरी है, धर्म के लिए जरूरी नहीं है? जीवन अधर्म के लिए जरूरी है; शक्ति अधर्म के लिए जरूरी है; तो आप समझते हैं, धर्म कोई नपुंसकों का काम है कि उसके लिए कोई शक्ति की जरूरत नहीं है!

ध्यान रहे, जिस शक्ति से आप पाप करते हैं, वही शक्ति पुण्य बनती है। और जब शक्ति हाथ में नहीं रह जाती, तो न तो आप पाप कर सकते हैं, न आप पुण्य कर सकते हैं। जिस दिन आप पाप नहीं कर सकते, उस दिन आपके पास पुण्य करने की शक्ति भी नहीं रह गई।

लोग टालते चले जाते हैं, बुढ़ापे में, बुढ़ापे में... । लेकिन बुढ़ापे में भी मन नहीं भरता। तो लोग कहते हैं, मरते क्षण, आखिरी क्षण भगवान का नाम ले लेंगे। वह भी खुद नहीं ले पाते, क्योंकि आखिरी क्षण कोई तय तो नहीं है, कब होगा। इसके बाद का क्षण आखिरी हो सकता है। उसका पता तो नहीं है। आखिरी क्षण तो हो जाएगा, तभी पता चलेगा। लेकिन आप मर चुके होंगे।

तो लोग इंतजाम कर लिए हैं कि हम अगर न ले पाएं आखिरी क्षण में भगवान का नाम, तो पुरोहित, पंडे, पंडित, कोई दूसरा कान में भगवान का नाम ले दे। लोग मर रहे हैं, बेहोश हालत में पड़े हैं और कोई उनके कान में भगवान का नाम ले रहा है।

पाप तुमने किए, भगवान का नाम कोई और ले रहा है! अच्छा होता, तुमने पाप किसी और पर छोड़ दिए होते कि तू कर लेना मेरी तरफ से। लेकिन पाप आदमी खुद करता है। जो हम करना चाहते हैं, वह हम खुद करते हैं। जो हम नहीं करना चाहते, वह हम नौकरों पर टाल देते हैं।

मरते वक्त भगवान का नाम कोई दूसरा आपके कान में ले रहा है। और आप तो होश में भी नहीं हैं। क्योंकि जो आदमी जिंदगी में होश नहीं सम्हाल सका, वह मौत में कैसे होश सम्हाल सकेगा? जिसने जिंदगी में ध्यान सम्हाला हो, वही आदमी मृत्यु में भी होशपूर्ण हो सकता है। आप जिंदा रहकर होश नहीं सम्हाल सकते, मरते वक्त आप कैसे होश सम्हालेंगे?

इसे समझ लें। क्योंकि मृत्यु की प्रक्रिया में आपके भीतर जितने जहर हैं, वे सब आपकी चेतना को घेर लेंगे और छा जाएंगे। मृत्यु मूर्च्छा में घटित होगी। कभी लाख में एकाध आदमी होश में मरता है, कभी लाख में एकाध आदमी। और वह वही आदमी है, जिसने जीवनभर ध्यान सम्हाला हो। वह होश में मरेगा। बाकी आप तो बेहोश ही मरेंगे।

आप जीए बेहोशी में हैं, तो मृत्यु तो बहुत बड़ा आपरेशन है। बड़े से बड़ा आपरेशन है। कोई चिकित्सक, कोई सर्जन इतना बड़ा आपरेशन नहीं करता।

आपरेशन सर्जन को करना पड़ता है, तो आपको बेहोश कर देता है। क्योंकि असह्य होगी पीड़ा। आपका हाथ काटना है, तो पहले आपको बेहोश कर देता है। आपकी एक हड्डी निकालनी है शरीर से, तो पहले आपको बेहोश कर देता है। जब आप बिल्कुल बेहोश होते हैं, तब हड्डी निकाल पाता है।

मृत्यु तो सबसे बड़ी सर्जरी है, क्योंकि आपकी पूरी आत्मा को आपके पूरे शरीर से अलग करना है। इसलिए मृत्यु तो आपको बेहोश कर ही देती है। बिना बेहोश किए आप मारे नहीं जा सकते। आप बहुत उपद्रव खड़ा करेंगे।

शरीर में ग्रंथियां हैं, जिनमें जहर है। साधारण रूप से भी उन ग्रंथियों का उपयोग होता है। जब आप क्रोध से भर जाते हैं, तो आपने ख्याल किया, क्रोध से भरा हुआ आदमी अपने से ताकतवर आदमी को उठाकर फेंक देता है। उसकी ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं, जिनसे वह पागल हो जाता है। अगर आप क्रोध में हैं, तो आप इतनी बड़ी चट्टान को सरका सकते हैं, जो आप क्रोध में न होते, तो कभी आपसे सरकने वाली नहीं थी। आपकी ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं। उस जहर के नशे में आप कुछ भी कर सकते हैं।

क्रोध में, अब तो वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि जहर छूटता है। उस जहर के प्रभाव में ही कोई हत्या कर सकता है। भीतर ग्रंथियां हैं, जो आपको मूर्च्छित करती हैं। जब आप कामवासना से भरकर पागल होते हैं, तब भी आपकी ग्रंथियां एक विषाक्त द्रव्य छोड़ देती हैं। आप होश में नहीं होते। क्योंकि होश में आकर तो आप पछताते हैं। बड़ा पश्चात्ताप करते हैं कि फिर वही भूल की। और आपने ही की है। और पहले भी बहुत बार करके पछताए हैं। फिर कैसे हो गई? जरूर आप होश में नहीं थे।

आदमी जो भी भूलें करता है, वह बेहोशी में करता है।

मौत के क्षण में आपके शरीर की सारी विषाक्त ग्रंथियां पूरा विष छोड़ देती हैं। आपकी पूरी चेतना धुएं से भर जाती है। आपको कुछ होश नहीं रहता। जब आपका शरीर आत्मा से अलग होता है, तो आप उतने ही बेहोश होते हैं, जितना सर्जरी में कोई मरीज बेहोश होता है। उससे ज्यादा।

मृत्यु के पास अपना एनेस्थेसिया है। इसलिए आप होश में मर नहीं सकते; आप बेहोशी में मरेंगे। इसी कारण तो आपको दूसरे जन्म में याद नहीं रह जाता पिछला जन्म। क्योंकि जो बेहोशी में घटा है, उसकी याददाश्त नहीं हो सकती।

हम बहुत बार मर चुके हैं। हजार बार, लाख बार मर चुके हैं। और हमें कुछ भी याद नहीं कि हम कभी भी मरे हों। हमें कोई याद नहीं है मृत्यु की पिछली। और चूंकि मृत्यु की याद नहीं है, इसलिए बीच में एक गैप, एक अंतराल हो गया है। इसलिए पिछले जन्म की कोई भी याद नहीं है।

जो आदमी होश में मरता है, उसे दूसरे जन्म में याद रहेगा पिछला जन्म। आपको किसी को भी याद नहीं है।

तो जो होश में ही नहीं मर सकते, तो आप क्या करिएगा, क्या सोचिएगा मरते वक्त? मौत तो घटेगी बेहोशी में; मरने के पहले आप बेहोश हो गए होंगे। इसलिए आखिरी विचार तो बेहोश होगा, होश वाला नहीं होगा।

तो जिंदगीभर जो आपने अपने अचेतन मन में बेहोश वासनाएं पाली हैं, वे ही आपका बीज बनेंगी। उन्हीं के सहारे आप नई यात्रा पर निकल जाएंगे। न तो आपको मृत्यु की कोई याद है, न आपको जन्म की कोई याद है। आपको याद है जब आपका जन्म हुआ? कुछ भी याद नहीं है।

मां के पेट में नौ महीने आप बेहोश थे। वह भी बेहोशी जरूरी है। नहीं तो बच्चे का जीना मुश्किल हो जाए। नौ महीने कारागृह हो जाए, अगर होश हो। अगर बच्चे को होश हो, तो मां के पेट में बहुत कष्ट हो जाए। वह कष्ट झेलने योग्य नहीं है, इसलिए बेहोश थे।

पैदा होने के बाद भी आपको कुछ पता नहीं है, क्या हुआ। जब आप गर्भ से बाहर आ रहे थे, आपको कुछ भी पता है? अगर आप बहुत कोशिश करेंगे पीछे लौटने की, तो तीन साल की उम्र, दो साल की उम्र; बहुत जो जान सकते हैं, स्मृति कर सकते हैं, वे भी दो साल से पीछे नहीं हट सकते हैं। दो साल तक आप ठीक होश में नहीं थे।

मरने में बेहोशी, गर्भ में बेहोशी, जन्म में बेहोशी, जन्म के बाद भी बेहोशी। और जिसको आप जीवन कहते हैं, वह भी करीब-करीब बेहोश है। उसमें भी कुछ होश नहीं है। मरते क्षण में तो वही व्यक्ति अपनी वासना को होशपूर्वक निर्धारित कर सकता है, जिसने जीवनभर ध्यान साधा हो।

इसे हम ऐसा समझें कि छोटी-मोटी बात में भी तो आपका वश नहीं है, अपने जन्म को आप निर्धारित करने में क्या करेंगे! अगर मैं आपसे कहूं कि चौबीस घंटे आप अशांत मत होना; इस पर भी तो आपकी मालकियत नहीं है। आप कहेंगे, अशांति आ जाएगी, तो मैं क्या करूंगा? कोई गाली दे देगा, तो मैं क्या करूंगा?

चौबीस घंटे आपसे कहा जाए, अशांत मत होना, तो इसकी भी आपकी मालकियत नहीं है। क्षुद्र-सी बात है। अति क्षुद्र बात है। लेकिन आप सोचते हैं कि पूरे जीवन को, नए जीवन को मैं अपनी आकांक्षा के अनुकूल ढाल लूंगा।

एक मन की छोटी-सी तरंग भी आप सम्हाल नहीं सकते। अगर आपसे कहा जाए कि चौबीस घंटे आपके मन में यह विचार न आए, उस विचार को भी आने से आप रोक नहीं सकते। इतनी तो गुलामी है। और सोचते हैं, अंतिम क्षण में इतनी मालकियत दिखा देंगे कि पूरे जीवन की दिशा निर्धारित करना अपने हाथ में होगा!

अपने हाथ से जरा भी तो कुछ निर्णय नहीं हो पाता। जरा-सा भी संकल्प पूरा नहीं होता। सब जगह हारे हुए हैं। लेकिन इस तरह के विचार सांत्वना देते हैं। उससे आदमी सोचता है, किए चले जाओ पाप, आखिरी क्षण में सम्हाल लेंगे।

अगर सम्हालने की ही ताकत है, तो अभी सम्हालने में क्या तकलीफ है? अगर बुद्ध जैसे होने की ही बात है, तो अगले जन्म पर टालना क्यों? अभी हो जाने में कौन बाधा डाल रहा है? अगर तुम्हारे ही हाथ में है बुद्ध होना, तो अभी हो जाओ।

लेकिन तुम भलीभांति जानते हो कि अपने हाथ में नहीं दिखता, तो टालते हैं। इससे मन में राहत बनी रहती है कि कोई फिक्र नहीं, आज नहीं तो कल हो जाएंगे, कल नहीं तो परसों हो जाएंगे। और हम बहते चले जाते हैं मूर्च्छा में।

मरते क्षण में आपको कोई होश होने वाला नहीं है। जिस व्यक्ति को मरते क्षण में होश रखना हो, उसे जीवित क्षण को होश के लिए उपयोग करना होगा। और इसके पहले कि असली मृत्यु घटे आपको ध्यान में मरने की कला सीखनी होगी।

ध्यान मृत्यु की कला है। वह मरने की तरकीब है अपने हाथ। जब शरीर अपने आप मरेगा, तब हो सकता है, इतनी सुविधा भी न हो। वह घटना इतनी नई होगी कि आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। उस वक्त होश सम्हालना अति अड़चन का होगा। ध्यान में आप मरकर पहले ही देख सकते हैं। ध्यान में आप शरीर को छोड़ सकते हैं और शरीर से अलग हो सकते हैं।

जो व्यक्ति ध्यान में मृत्यु को साधने लगता है, वह मृत्यु के आने के बहुत पहले मृत्यु से भलीभांति परिचित हो जाता है। उसने मरकर देख ही लिया है। अब मृत्यु के पास नया कुछ भी नहीं है। और जो व्यक्ति अपने को अपने शरीर से अलग करके देख लेता है, मृत्यु फिर उसे बेहोश करने की आवश्यकता नहीं मानती। फिर कोई जरूरत नहीं है।

ऐसा हुआ कि उन्नीस सौ आठ में काशी के नरेश का एक आपरेशन हुआ पेट का। लेकिन काशी के नरेश ने कहा कि मैं कोई बेहोशी की दवा लेने को तैयार नहीं हूं। एपेंडिसाइटिस का आपरेशन था, डाक्टरों ने कहा कि मुश्किल मामला है। बेहोश तो करना ही पड़ेगा। क्योंकि इतनी असह्य पीड़ा होगी कि अगर आप हिल गए, चिल्लाने लगे, रोने लगे, भागने लगे, तो हम क्या करेंगे? सारा खतरा हो जाएगा। जीवन का खतरा है।

लेकिन नरेश ने कहा कि बिल्कुल चिंता मत करें। मुझे सिर्फ मेरी गीता पढ़ने दें। मैं अपनी गीता पढ़ता रहूंगा, आप आपरेशन करते रहना।

कोई उपाय नहीं था। नरेश लेने को राजी नहीं था बेहोशी की कोई दवा और आपरेशन एकदम जरूरी था। अगर आपरेशन न हो, तो भी मौत हो जाए। तो फिर यह खतरा लेना उचित मालूम पड़ा। जब बिना आपरेशन के भी मौत हो जाएगी, तो एक खतरा लेना उचित है। आपरेशन करके देख लिया जाए। ज्यादा से ज्यादा मौत ही होगी जो कि निश्चित है। लेकिन संभावना है कि बच भी जाए।

यह पहला मौका था चिकित्सा के इतिहास में कि इतना बड़ा आपरेशन बिना किसी बेहोशी की दवा के किया गया। काशी नरेश अपनी गीता का पाठ करते रहे, आपरेशन हो गया।

आपरेशन पूरा हो गया। कोई कहीं अड़चन न हुई। चिकित्सक बहुत हैरान हुए। जो अंग्रेज डाक्टर, सर्जन ने यह आपरेशन किया था, वह तो चमत्कृत हो गया। उसने कहा कि आप किए क्या? क्योंकि इतनी असह्य पीड़ा!

तो काशी नरेश ने कहा कि मैं ध्यान करता रहा कृष्ण के वचनों का--कि न शरीर के काटे जाने से आत्मा कटती है, न छेदे जाने से छिदती है, न जलाए जाने से जलती है। बस मैं एक ही भाव में डूबा रहा कि मैं अलग हूं, मैं कर्ता नहीं हूं, भोक्ता नहीं हूं, मैं सिर्फ साक्षी हूं। न मुझे कोई जला सकता है; न मुझे कोई छेद सकता है; न मुझे कोई काट सकता है। यह भाव मेरा सघन बना रहा। तुम्हारे औजारों की खटपट मुझे सुनाई पड़ती रही। लेकिन ऐसे जैसे कहीं दूर फासले पर सब हो रहा है। पीड़ा भी थी, लेकिन दूर, जैसे मैं उससे अलग खड़ा हूं। मैं देख रहा हूं। जैसे पीड़ा किसी और को घटित हो रही है।

अब यह जो सम्राट है, यह मृत्यु में भी होश रख सकता है। जीवन में इसने होश का गहरा प्रयोग कर लिया है।

मृत्यु पर भरोसा न करें, जीवन पर भरोसा करें। और जीवन में साध लें, जो भी होना चाहते हों। मृत्यु पर टालें मत। वह धोखा सिद्ध होगा। जो भी क्षण हाथ में हैं, उनका उपयोग करें।

और अगर बुद्धत्व को पाना है, तो इसी घड़ी उसके श्रम में लग जाएं, क्योंकि बुद्धत्व कोई ऐसी बच्चों जैसी बात नहीं है कि आप सोच लेंगे और हो जाएगी। बहुत श्रम करना होगा, बहुत साधना करनी होगी। और तभी अंतिम क्षण में वह बीज बन जाएगा और नया जन्म उस बीज के मार्ग से अंकुरित हो सकता है।

एक मित्र ने पूछा है, अगर सभी मनुष्य अकर्ता बन जाएं, गीता की बात को मान लें, तो जीवन में, संसार में क्या रस बाकी रह जाएगा?

अभी क्या रस है जीवन में? अभी कर्ता बने हुए हैं गीता के विपरीत, अभी क्या रस है जीवन में? और अगर जीवन में रस ही है, तो गीता को पढ़ने की जरूरत क्या है? गीता को सुनने की क्या जरूरत है? अगर जीवन में रस ही है, तो धर्म की बात ही क्यों उठानी? परमात्मा और मोक्ष और ध्यान और समाधि की चर्चा ही क्यों चलानी?

अगर जीवन में रस है, तो बात खतम हो गई। रस की ही तो खोज है। रस ही तो परमात्मा है। बात खतम हो गई। फिर कुछ करना नहीं है। फिर और ज्यादा कर्ता हो जाएं, ताकि और ज्यादा रस मिले। और संसार में उतर जाएं, ताकि रस के और गहरे स्रोत मिल जाएं।

अगर जीवन में रस मिल ही रहा है कर्ता बनकर, तो गीता वगैरह को, सबको अग्नि में आहुति कर दें। कोई आवश्यकता नहीं है। और कृष्ण वगैरह की बात ही मत सुनना। नहीं तो वे आपका रस नष्ट कर दें। आप बड़े आनंद में हैं, कहां इनकी बातें सुनते हैं!

लेकिन आप अगर रस में ही होते, तो यह बात ठीक थी। आपको रस बिल्कुल नहीं है। दुख में हैं, गहन दुख में हैं। हां, रस की आशा बनाए हुए हैं। जब भी हैं, तब दुख में हैं; और रस भविष्य में है।

संसार में जरा भी रस नहीं है। सिर्फ भविष्य की आशा में रस है। जहां हैं, वहां तो दुखी हैं। लेकिन सोचते हैं कि कल एक बड़ा मकान बनेगा और वहां आनंद होगा। जितना है, उसमें तो दुखी हैं। लेकिन सोचते हैं, कल ज्यादा हो जाएगा और बड़ा रस आएगा। कल कुछ होगा, जिससे रस घटित होने वाला है।

कल की आशा में आज के दुख को हम बिताते हैं। वह कल कभी नहीं आता। कल होता ही नहीं। जो भी है, वह आज है। संसार आशा है। उस आशा में रस है। डर लगता होगा कि अगर साक्षी हो जाएंगे, तो फिर रस खो जाएगा। क्योंकि साक्षी होते ही भविष्य खो जाता है; वर्तमान ही रह जाता है। इसलिए सवाल तो बिल्कुल सही है।

संसार में रस नहीं है, जो खो जाएगा। क्योंकि संसार में रस होता, तब तो धर्म की कोई जरूरत ही नहीं थी। संसार में दुख है, इसलिए धर्म पैदा हो सका है। संसार में बीमारी है, इसलिए धर्म की चिकित्सा खोजी जा सकी है। अगर संसार स्वास्थ्य है, तो धर्म तो बिल्कुल निष्प्रयोजन है।

बर्ट्रेंड रसेल ने ठीक कहा है। उसने कहा है कि दुनिया में धर्म तब तक रहेगा, जब तक दुख है। इसलिए अगर हमको धर्म को मिटाना है, तो दुख को मिटा देना चाहिए।

वह ठीक कहता है। लेकिन दुख मिट नहीं सकता। पांच हजार साल का इतिहास तो हमें ज्ञात है। आदमी दुख को मिटाने की कोशिश कर रहा है। और एक दुख मिटा भी लेता है, तो दस दुख पैदा हो जाते हैं। पुराने दुख मिट जाते हैं, तो नए दुख आ जाते हैं। लेकिन दुख नहीं मिटता।

निश्चित ही, हजार साल पहले दूसरे दुख थे, आज दूसरे दुख हैं। कल दूसरे दुख होंगे। हिंदुस्तान में एक तरह का दुख है, अमेरिका में दूसरी तरह का दुख है, रूस में तीसरी तरह का दुख है। लेकिन दुख नहीं मिटता।

जमीन पर कोई भी समाज आज तक यह नहीं कह सका कि हमारा दुख मिट गया, अब हम आनंद में हैं। कुछ व्यक्ति जरूर कह सके हैं कि हमारा दुख मिट गया और हम आनंद में हैं। लेकिन वे व्यक्ति वही हैं, जिन्होंने धर्म का प्रयोग किया है। आज तक धर्म से रहित व्यक्ति यह नहीं कह सका कि मैं आनंद में हूं। वह दुख में ही है।

रसेल ठीक कहता है, धर्म को मिटाना हो तो दुख को मिटा देना चाहिए। मैं भी राजी हूं। लेकिन दुख अगर मिट सके, तब।

दो संभावनाएं हैं। दुख मिट जाए, तो धर्म मिट जाए, एक संभावना। एक दूसरी संभावना है कि धर्म आ जाए, तो दुख मिट जाए। रसेल पहली बात से राजी है। मैं दूसरी बात से राजी हूं।

दुख मिट नहीं सकता। लेकिन धर्म आ जाए, तो दुख मिट सकता है। धर्म तो चिकित्सा है। वह तो जीवन से दुख के जो-जो कारण हैं, उनको नष्ट करना है। जिस कारण से हम दुख पैदा कर लेते हैं जीवन में, उस कारण को तोड़ देना है। वह कारण है, कर्ता का भाव। वह कारण है कि मैं कर रहा हूं, वही दुख का मूल है। अहंकार, मैं हूं, वही दुख का मूल है। उसे तोड़ते से ही दुख विलीन हो जाता है और आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है।

ये मित्र कहते हैं, जीवन में रस क्या रह जाएगा?

जीवन में रस है ही नहीं, पहली बात। पर दूसरी बात सोचने जैसी है, भविष्य का जो रस है, वह जरूर खो जाएगा। साक्षी के लिए कोई भविष्य नहीं है।

इसे थोड़ा समझें। समय के हम तीन विभाजन करते हैं, अतीत, वर्तमान, भविष्य। वे समय के विभाजन नहीं हैं। समय तो सदा वर्तमान है। समय का तो एक ही टेंस है, प्रेजेंट। अतीत तो सिर्फ स्मृति है मन की, वह कहीं है नहीं। और भविष्य केवल कल्पना है मन की, वह भी कहीं है नहीं। जो समय है, वह तो सदा वर्तमान है।

आपका कभी अतीत से कोई मिलना हुआ? कि भविष्य से कोई मिलना हुआ? जब भी मिलना होता है, तो वर्तमान से होता है। आप सदा अभी और यहीं, हियर एंड नाउ होते हैं। न तो आप पीछे होते हैं, न आगे होते हैं। हां, पीछे का ख्याल आप में हो सकता है। वह आपके मन की बात है। और आगे का ख्याल भी हो सकता है, वह भी मन की बात है।

अस्तित्व वर्तमान है; मन अतीत और भविष्य है। एक और मजे की बात है, अस्तित्व वर्तमान है सदा, और मन कभी वर्तमान नहीं है। मन कभी अभी और यहीं नहीं होता। इसे थोड़ा सोचें।

अगर आप पूरी तरह से यहीं होने की कोशिश करें इसी क्षण में; भूल जाएं सारे अतीत को, जो हो चुका, वह अब नहीं है; भूल जाएं सारे भविष्य को, जो अभी हुआ नहीं है; सिर्फ यहीं रह जाएं, वर्तमान में, तो मन समाप्त हो जाएगा। क्योंकि मन को या तो अतीत चाहिए दौड़ने के लिए पीछे, स्मृति; या भविष्य चाहिए, स्पेस चाहिए, जगह चाहिए। वर्तमान में जगह ही नहीं है। वर्तमान का क्षण इतना छोटा है कि मन को फैलने की जरा भी जगह नहीं है।

क्या करिएगा? अगर अतीत छीन लिया, भविष्य छीन लिया, तो वर्तमान में मन को करने को कुछ भी नहीं बचता। इसलिए ध्यान की एक गहनतम प्रक्रिया है और वह है, वर्तमान में जीना। तो ध्यान अपने आप फलित होने लगता है, क्योंकि मन समाप्त होने लगता है। मन बच ही नहीं सकता।

समय सिर्फ वर्तमान है। मन है अतीत और भविष्य। अगर आप साक्षी होंगे, तो वर्तमान में हो जाएंगे। भविष्य और अतीत दोनों खो जाएंगे। क्योंकि साक्षी तो उसी के हो सकते हैं, जो है। अतीत के क्या साक्षी होंगे, जो है ही नहीं? भविष्य के क्या साक्षी होंगे, जो अभी होने को है? साक्षी तो उसी का हुआ जा सकता है, जो है।

साक्षी होते ही मन समाप्त हो जाता है। इसलिए भविष्य का जो रस है, वह जरूर समाप्त हो जाएगा। लेकिन आपको पता ही नहीं है कि भविष्य का रस तो समाप्त होगा, वर्तमान का आनंद आपके ऊपर बरस पड़ेगा। और भविष्य का रस तो केवल आश्वासन है झूठा, वह कभी पूरा नहीं होता।

इसे इस तरह सोचें। अगर आप पचास साल के हो गए हैं, तो यह पचास साल की उम्र आज से दस साल पहले भविष्य थी। और दस साल पहले आपने सोचा होगा, न मालूम क्या-क्या आनंद आने वाला है! अब तो वह सब आप देख चुके हैं। वह अभी तक आनंद आया नहीं।

बचपन से आदमी यह सोचता है, कल, कल, कल! और एक दिन मौत आ जाती है और आनंद नहीं आता। लौटकर देखें, कोई एकाध क्षण आपको ऐसा ख्याल आता है, जिसको आप कह सकें वह आनंद था! जिसको आप कह सकें कि उसके कारण मेरा जीवन सार्थक हो गया! जिसके कारण आप कह सकें कि जीवन के सब दुख झेलने योग्य थे! क्योंकि वह एक आनंद का कण भी मिल गया, तो सब दुख चुक गए। कोई नुकसान नहीं हुआ। क्या एकाध ऐसा क्षण जीवन में आपको ख्याल है, जिसके लिए आप फिर से जीने को राजी हो जाएं! कि यह सारी तकलीफ झेलने को मैं राजी हूं, क्योंकि वह क्षण पाने जैसा था।

कोई क्षण याद नहीं आएगा। सब बासा-बासा, सब राख-राख, सब बेस्वाद। लेकिन आशा फिर भी टंगी है भविष्य में। मरते दम तक आशा टंगी है। उस आशा में रस मालूम पड़ता है। वह रस धोखा है।

साक्षी, अकर्ता के भाव में धोखे का रस उपलब्ध नहीं होता, लेकिन वास्तविक रस की वर्षा हो जाती है।

कृष्ण का जो नृत्य है, बुद्ध का जो मौन है, महावीर का जो सौंदर्य है, वह भविष्य के रस से पैदा हुई बातें नहीं हैं। वह वर्तमान में, अभी-यहीं उनके ऊपर घनघोर वर्षा हो रही है।

कबीर कहते हैं, अमृत बरस रहा है और मैं नाच रहा हूं। वह अमृत किसी भविष्य की बात नहीं है। वह अभी बरस रहा है। वह यहीं बरस रहा है। कबीर कहते हैं, देखो, मेरे कपड़े बिल्कुल भीग गए हैं! मैं अमृत की वर्षा में खड़ा हूं। बादल गरज रहे हैं और अमृत बरस रहा है। बरसेगा नहीं, बरस रहा है! देखो, मेरे कपड़े भीग रहे हैं!

धर्म है वर्तमान की घटना, वासना है भविष्य की दौड़। अगर भविष्य में बहुत रस मालूम पड़ता हो, तो अकर्ता बनने की कोशिश मत करना, क्योंकि बनते ही भविष्य गिर जाता है। और अगर दुख ही दुख पाया हो--भविष्य रोज तो वर्तमान बन जाता है और दुख लाता है--तो फिर एक दफे हिम्मत करके अकर्ता भी बनने की कोशिश करना।

अकर्ता बनते ही वह द्वार खुल जाता है इटरनिटी का, शाश्वतता का। वह वर्तमान से ही खुलता है। वर्तमान है अस्तित्व का द्वार। अगर आप अभी और यहीं एक क्षण को भी ठहरने को राजी हो जाएं, तो आपका परमात्मा से मिलन हो सकता है।

लेकिन हमारा मन बहुत होशियार है। अभी मैं बात कर रहा हूं, मन कहेगा कि ठीक कह रहे हैं। घर चलकर इसकी कोशिश करेंगे। घर चलकर? भविष्य! जरा किसी दिन फुर्सत मिलेगी, तो अकर्ता बनने की भी चेष्टा करेंगे। भविष्य!

जो अभी हो सकता है, उसको हम कल पर टालकर वंचित हो जाते हैं। लेकिन रस तो केवल उन्हीं लोगों ने जाना है, जो वर्तमान में प्रविष्ट हो गए हैं। बाकी लोगों ने सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं जाना है।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है... । बुद्ध को सभी सुख उपलब्ध थे, जो आप खोज सकते हैं। लेकिन सभी सुख उपलब्ध होने में एक बड़ा खतरा हो जाता है। और वह खतरा यह हो जाता है कि भविष्य की आशा नहीं रह जाती है।

दुख में एक सुविधा है, भविष्य में आशा रहती है। जो कार आप चाहते हैं, वह कल मिल सकती है, आज, अभी नहीं मिल सकती। श्रम करेंगे, पैसा जुटाएंगे, चोरी करेंगे, बेईमानी करेंगे, कुछ उपाय करेंगे। कल, समय चाहिए। जो मकान आप बनाना चाहते हैं, वक्त लेगा।

लेकिन बुद्ध को एक मुसीबत हो गई, एक अभिशाप, जो वरदान सिद्ध हुआ। उनके पास सब था, इसलिए भविष्य का कोई उपाय न रहा। जो भी था, वह था। महल बड़े से बड़े उनके पास थे। स्त्रियां सुंदर से सुंदर उनके पास थीं। धन जितना हो सकता था, उनके पास था। जो भी हो सकता था उस जमाने में श्रेष्ठतम, सुंदरतम, वह सब उनके पास था।

बुद्ध मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि आशा का कोई उपाय न रहा। होप समाप्त हो गई। इससे बड़ा मकान नहीं हो सकता; इससे सुंदर स्त्री नहीं हो सकती; इससे ज्यादा धन नहीं हो सकता। बुद्ध की तकलीफ यह हो गई कि उनके पास सब था, इसलिए भविष्य गिर गया। और दुख दिखाई पड़ गया कि सब दुख है। वे भाग खड़े हुए।

यह बड़े मजे की बात है, सुख में से लोग जाग गए हैं, भाग गए हैं, और दुख में लोग चलते चले जाते हैं! सुख में लोग इसलिए भाग खड़े होते हैं कि दिखाई पड़ जाता है कि अब और तो कुछ हो नहीं सकता। जो हो सकता था, वह हो गया, और कुछ हुआ नहीं। और भीतर दुख ही दुख है। भविष्य कुछ है नहीं। आशा बंधती नहीं। आशा टूट जाती है। आशा के सब सेतु गिर गए। बुद्ध भाग गए।

जब बुद्ध भाग रहे हैं, तो उनका सारथी उनसे कहता है कि आप क्या पागलपन कर रहे हैं! सारथी गरीब आदमी है। उसको अभी आशाएं हैं। वह प्रधान सारथी भी हो सकता है। वह सम्राट का सारथी हो सकता है। अभी राजकुमार का सारथी है। अभी बड़ी आशाएं हैं। वह बुद्ध को कहता है कि मैं बूढ़ा आदमी हूं; मैं तुम्हें समझाता हूं; तुम गलती कर रहे हो। तुम नासमझी कर रहे हो। तुम अभी यौवन की भूल में हो। लौट चलो। इतने सुंदर महल कहां मिलेंगे? इतनी सुंदर पत्नियां कहां मिलेंगी? इतना सुंदर पुत्र कहां पाओगे? तुम्हारे पास सब कुछ है, तुम कहां भागे जा रहे हो!

वह सारथी और बुद्ध के बीच जो बातचीत है... । वह सारथी गलत नहीं कहता। वह अपने हिसाब से कहता है। उसको अभी आशाओं का जाल आगे खड़ा है। ये महल उसे भी मिल सकते हैं भविष्य में। ये सुंदर स्त्रियां वह भी पा सकता है। अभी दौड़ कायम है। उसे बुद्ध बिल्कुल नासमझ मालूम पड़ते हैं कि यह लड़का बिल्कुल नासमझ है। यह बच्चों जैसी बात कर रहा है। जहां जाने के लिए सारी दुनिया कोशिश कर रही है, वहां से यह भाग रहा है! आखिरी क्षण में भी वह कहता है कि एक बार मैं तुमसे फिर कहता हूं, लौट चलो। महलों में वापस लौट चलो।

तो बुद्ध कहते हैं, तुझे महल दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि तू उन महलों में नहीं है। मुझे वहां सिर्फ आग की लपटें और दुख दिखाई पड़ता है। क्योंकि मैं वहां से आ रहा हूं। मैं उनमें रहकर आ रहा हूं। तू उनके बाहर है। इसलिए तुझे कुछ पता नहीं है। तू मुझे समझाने की कोशिश मत कर।

बुद्ध महल छोड़ देते हैं। और छः वर्ष तक बड़ी कठिन तपश्चर्या करते हैं परमात्मा को, सत्य को, मोक्ष को पाने की। लेकिन छः वर्ष की कठिन तपश्चर्या में भी न मोक्ष मिलता, न परमात्मा मिलता, न आत्मा मिलती।

बुद्ध की कथा बड़ी अनूठी है। छः वर्ष वे, जो भी कहा जाता है, करते हैं। जो भी साधना-पद्धति बताई जाती है, करते हैं। उनसे गुरु घबड़ाने लगते हैं। अक्सर शिष्य गुरु से घबड़ाते हैं, क्योंकि गुरु जो कहता है, वे नहीं कर पाते। लेकिन बुद्ध से गुरु घबड़ाने लगते हैं। गुरु उनको कहते हैं कि बस, जो भी हम सिखा सकते थे, सिखा दिया; और तुमने सब कर लिया। और बुद्ध कहते हैं, आगे बताओ, क्योंकि अभी कुछ भी नहीं हुआ। तो वे कहते हैं, अब तुम कहीं और जाओ।

जितने गुरु उपलब्ध थे, बुद्ध सबके पास घूमकर सबको थका डालते हैं। छः वर्ष बाद निरंजना नदी के किनारे वे वृक्ष के नीचे थककर बैठे हैं। यह थकान बड़ी गहरी है। एक थकान तो महलों की थी कि महल व्यर्थ हो गए थे। महल तो व्यर्थ हो गए थे, क्योंकि महलों में कोई भविष्य नहीं था।

इसे थोड़ा समझें; बारीक है। महलों में कोई भविष्य नहीं था। सब था पास में, आगे कोई आशा नहीं थी। जब उन्होंने महल छोड़े, तो आशा फिर बंध गई; भविष्य खुला हो गया। अब मोक्ष, परमात्मा, आत्मा, शांति, आनंद, इनके भविष्य की मंजिलें बन गईं। अब वे फिर दौड़ने लगे। वासना ने फिर गति पकड़ ली। अब वे साधना कर रहे थे, लेकिन वासना जग गई। क्योंकि वासना भविष्य के कारण जगती है। वासना है, मेरे और भविष्य के बीच जोड़। अब वे फिर दौड़ने लगे।

ये छः वर्ष, तपश्चर्या के वर्ष, वासना के वर्ष थे। मोक्ष पाना था। और आज मिल नहीं सकता, भविष्य में था। इसलिए सब कठोर उपाय किए, लेकिन मोक्ष नहीं मिला। क्योंकि मोक्ष तो तभी मिलता है, जब दौड़ सब समाप्त हो जाती है। वह भीतर का शून्य तो तभी उपलब्ध होता है, या पूर्ण तभी उपलब्ध होता है, जब सब वासना गिर जाती है।

यह भी वासना थी कि ईश्वर को पा लूं, सत्य को पा लूं। जो चीज भी भविष्य की मांग करती है, वह वासना है। ऐसा समझ लें कि जिस विचार के लिए भी भविष्य की जरूरत है, वह वासना है।

तो बुद्ध उस दिन थक गए। यह थकान दोहरी थी। महल बेकार हो गए। अब साधना भी बेकार हो गई। अब वे वृक्ष के नीचे थककर बैठे थे। उस रात उनको लगा, अब करने को कुछ भी नहीं बचा। महल जान लिए। साधना की पद्धतियां जान लीं। कहीं कुछ पाने को नहीं है। यह थकान बड़ी गहरी उतर गई, कहीं कुछ पाने को नहीं है। इस विचार ने कि कहीं कुछ पाने को नहीं है, स्वभावतः दूसरे विचार को भी जन्म दिया कि कुछ करने को नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें। जब कुछ पाने को नहीं है, तो करने को क्या बचता है? जब तक पाने को है, तब तक करने को बचता है। बुद्ध को लगा कि अब कुछ न पाने को है, न कुछ करने को है। वे उस रात खाली बैठे रह गए उस वृक्ष के नीचे। नींद कब आ गई, उन्हें पता नहीं।

सुबह जब रात का आखिरी तारा डूबता था, तब उनकी आंखें खुलीं। आज कुछ भी करने को नहीं था। न महल, न संसार, न मोक्ष, न आत्मा, कुछ भी करने को नहीं था। उनकी आंखें खुलीं। भीतर कोई वासना नहीं थी। आज उन्हें यह भी ख्याल नहीं था कि उठकर कहां जाऊं। उठकर क्या करूं। उठने का भी क्या प्रयोजन है। आज कोई बात ही बाकी न रही थी! वे थे; आखिरी डूबता हुआ तारा था; सुबह का सन्नाटा था; निरंजना नदी का तट था। और बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हो गया।

जो साधना से न मिला, दौड़कर न मिला, वह उस सुबह रुक जाने से मिल गया। कुछ किया नहीं, और मिल गया! कुछ कर नहीं रहे थे उस क्षण में। क्या हुआ? उस क्षण में वे साक्षी हो गए। जब कोई कर्ता नहीं होता, तो साक्षी हो जाता है। और जब तक कोई कर्ता होता है, तब तक साक्षी नहीं हो पाता। उस क्षण वे देखने में समर्थ हो गए। कुछ करने को नहीं था, इसलिए करने की कोई वासना मन में नहीं थी। कोई द्वंद्व, कोई तनाव, कोई तरंग, कुछ भी नहीं था। मन बिल्कुल शून्य था, जैसे नदी में कोई लहर न हो। इस लहरहीन अवस्था में परम आनंद उनके ऊपर बरस गया।

शांत होते ही आनंद बरस जाता है। मौन होते ही आनंद बरस जाता है। रुकते ही मंजिल पास आ जाती है। दौड़ते हैं, मंजिल दूर जाती है। रुकते हैं, मंजिल पास आ जाती है।

यह कहना ठीक नहीं है कि रुकते हैं, मंजिल पास आ जाती है। रुकते ही आप पाते हैं कि आप ही मंजिल हैं। कहीं जाने की कोई जरूरत न थी। जा रहे थे, इसलिए चूक रहे थे। खोज रहे थे, इसलिए खो रहे थे। रुक गए, और पा लिया।

एक आखिरी प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि क्या बिना साधना किए, अकस्मात आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता?

कठिन है सवाल, लेकिन जो मैं अभी कह रहा था, उससे जोड़कर समझेंगे तो आसान हो जाएगा।

क्या अकस्मात आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता?

पहली तो बात, जब भी आत्म-साक्षात्कार होता है, तो अकस्मात ही होता है। जब भी आत्मा का अनुभव होता है, तो अकस्मात ही होता है। लेकिन इसका मतलब आप यह मत समझना कि उसके लिए कुछ भी करना नहीं पड़ता है। आपके करने से नहीं होता, लेकिन आपका करना जरूरी है।

इसे ऐसा समझें कि आपको किसी मित्र का नाम भूल गया है। और आप बड़ी चेष्टा करते हैं याद करने की। और जितनी चेष्टा करते हैं, उतना ही कुछ याद नहीं आता। और ऐसा भी लगता है कि बिल्कुल जबान पर रखा है। आप कहते भी हैं कि बिल्कुल जबान पर रखा है। अब जबान पर ही रखा है, तो निकाल क्यों नहीं देते? लेकिन पकड़ में नहीं आता। और जितनी कोशिश पकड़ने की करते हैं, उतना ही बचता है, भागता है। और भीतर कहीं एहसास भी होता है कि मालूम है। यह भी एहसास होता है कि अभी आ जाएगा। और फिर भी पकड़ में नहीं आता।

फिर आप थक जाते हैं। फिर आप थककर बगीचे में जाकर गड्ढा खोदने लगते हैं। या उठाकर अखबार पढ़ने लगते हैं। या सिगरेट पीने लगते हैं। या रेडियो खोल देते हैं। या कुछ भी करने लगते हैं। या लेट जाते हैं। और थोड़ी देर में अचानक जैसे कोई बबूले की तरह वह नाम उठकर आपके ऊपर आ जाता है। और आप कहते हैं कि देखो, मैं कहता था, जबान पर रखा है। अब आ गया।

लेकिन इसमें दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। आपने जो कोशिश की, उसके कारण आया नहीं है। लेकिन अगर आपने कोशिश न की होती, तो भी न आता। यह जरा जटिल है।

आपने कोशिश की उसके कारण नहीं आया है, क्योंकि कोशिश में तनाव हो जाता है। तनाव के कारण मन संकीर्ण हो जाता है; दरवाजा बंद हो जाता है। आप इतने उत्सुक हो जाते हैं लाने के लिए कि उस उत्सुकता के कारण ही उपद्रव पैदा हो जाता है। भीतर सब तन जाता है। नाम के आने के लिए आपका शिथिल होना जरूरी है, ताकि नाम ऊपर आ सके, उसका बबूला आप तक आ जाए।

लेकिन आपने जो चेष्टा की है, अगर वह आप चेष्टा ही न करें, तो बबूले की आने की कोई जरूरत भी नहीं रह जाती।

इसका अर्थ यह हुआ कि चेष्टा करना जरूरी है और फिर चेष्टा छोड़ देना भी जरूरी है। यही आध्यात्मिक साधना की सबसे कठिन बात है। यहां कोशिश भी करनी पड़ेगी और एक सीमा पर कोशिश को छोड़ भी देना पड़ेगा। कोशिश करना जरूरी है और छोड़ देना भी जरूरी है।

इसे हम ऐसा समझें कि आप एक सीढ़ी पर चढ़ते हैं। अगर कोई मुझसे पूछे कि क्या सीढ़ियों पर चढ़ने से मैं मंजिल पर पहुंच जाऊंगा, छत पर पहुंचा जाऊंगा? या बिना सीढ़ी चढ़े भी छत पर पहुंचा जा सकता है? तो मेरी वही दिक्कत होगी, जो इस सवाल में हो रही है।

मैं आपसे कहूंगा कि सीढ़ियों पर चढ़ना जरूरी है और फिर सीढ़ियों को छोड़ देना भी जरूरी है। सीढ़ी पर बिना चढ़े कोई भी छत पर नहीं पहुंच सकता। और कोई सीढ़ियों पर ही चढ़ता रहे, और सीढ़ियों पर ही रुका रहे, तो भी छत पर नहीं पहुंच सकता। सीढ़ियों पर चढ़ना होगा; और एक जगह आएगी, जहां सीढ़ियां छोड़कर छत पर जाना होगा।

आप कहें कि जिस सीढ़ी पर हम चढ़ रहे थे, उसी पर चढ़ते रहेंगे, तो फिर आप छत पर कभी नहीं पहुंच पाएंगे। सीढ़ियों पर चढ़ो भी और सीढ़ियों को छोड़ भी दो।

आध्यात्मिक साधना सीढ़ियों जैसी है। उस पर चढ़ना भी जरूरी है, उससे उतर जाना भी जरूरी है।

उदाहरण के लिए अगर आप कोई जप का प्रयोग करते हैं, राम का जप करते हैं। तो ध्यान रहे, जब तक राम का जप न छूट जाए, तब तक राम से मिलन न होगा। लेकिन छोड़ तो वही सकता है, जिसने किया हो।

कुछ नासमझ कहते हैं कि तब तो बिल्कुल ठीक ही है; हम अच्छी हालत में ही हैं। छोड़ने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि हमने कभी किया ही नहीं। वे सीढ़ी के नीचे खड़े हैं। छोड़ने वाला सीढ़ी के ऊपर से छोड़ेगा। उन दोनों के तलों में फर्क है।

साधना बुद्ध ने छः वर्ष की। बौद्ध चिंतन, बौद्ध धारा निरंतर सवाल उठाती रही है कि बुद्ध ने छः वर्ष साधना की, तप किया, उस तप से सत्य मिला या नहीं? एक उत्तर है कि उस तप से सत्य नहीं मिला। क्योंकि उस तप से नहीं मिला, छः वर्ष की मेहनत से कुछ भी नहीं मिला। मिला तो तब, जब तप छोड़ दिया। तो एक वर्ग है बौद्धों का, जो कहता है कि बुद्ध को तप से कुछ भी नहीं मिला, इसलिए तप व्यर्थ है।

लेकिन जो ज्यादा बुद्धिमान वर्ग है, वह कहता है, तप से नहीं मिला; लेकिन फिर भी जो मिला, वह तप पर आधारित है। वह तप के बिना भी नहीं मिलेगा।

आप जाकर बैठ जाएं निरंजना नदी के किनारे। वह झाड़ अभी भी लगा हुआ है। आप वैसे ही जाकर मजे से उसके नीचे बैठ जाएं। सुबह आखिरी तारा अब भी डूबता है। सुबह आप आंख खोल लेना। अलार्म की एक घड़ी लगा लेना। ठीक वक्त पर आंख खुल जाएगी। आप तारे को देख लेना और बुद्ध हो जाना!

आप बुद्ध नहीं हो पाएंगे। वह छः वर्ष की दौड़ इस बैठने के लिए जरूरी थी। यह आदमी इतना दौड़ा था, इसलिए बैठ सका। आप दौड़े ही नहीं हैं, तो बैठेंगे कैसे?

इसे हम ऐसा समझें कि एक आदमी दिनभर मेहनत करता है, तो रात गहरी नींद में सो जाता है। नींद उलटी है। दिनभर मेहनत करता है, रात गहरी नींद में सो जाता है। आप कहते हैं कि मुझे नींद क्यों नहीं आती? आप दिनभर आराम कर रहे हैं। और फिर रात नींद नहीं आती, तो आप सोचते हैं कि मुझे तो और ज्यादा नींद आनी चाहिए। मैं तो नींद का दिनभर अभ्यास करता हूं! और यह आदमी तो दिनभर मेहनत करता है, नींद के अभ्यास का इसे मौका ही नहीं मिलता। और मैं दिनभर नींद का अभ्यास करता हूं। आंख बंद किए सोफे पर पड़ा ही रहता हूं, करवट बदलता रहता हूं। और इसको नींद आ जाती है, जिसने दिन में बिल्कुल अभ्यास नहीं किया! और मुझे नींद रात बिल्कुल नहीं आती, जो कि दिनभर का अभ्यास किया है! यह कैसा अन्याय हो रहा है जगत में?

आपको ख्याल नहीं है कि जिसने दिनभर मेहनत की है, वही विश्राम का हकदार हो जाता है। विश्राम मेहनत का फल है। इसका यह मतलब नहीं है कि आप रात भी मेहनत करते रहें। विश्राम करना जरूरी है। लेकिन वह जरूरी तभी है और उपलब्ध भी तभी होता है, जब उसके पहले श्रम गुजरा हो।

जो आदमी बुद्ध की तरह छः साल गहरी तपश्चर्या में दा.ैडता है, वह अगर किसी दिन थककर बैठ जाएगा, तो उसके बैठने का गुणधर्म अलग है। वह आप जैसा नहीं बैठा है। आप बैठे हुए भी चल रहे हैं। आप भी उसी बोधिवृक्ष के नीचे बैठ सकते हैं, मगर आपका मन चलता ही रहेगा; आपका मन योजनाएं बनाता रहेगा। सुबह का तारा भी डूब रहा होगा, तब भी आपके भीतर हजार चीजें खड़ी होंगी। वहां कोई मौन नहीं हो सकता। जब तक वासना है, तब तक मौन नहीं हो सकता।

बुद्ध की दौड़ से सत्य नहीं मिला, यह ठीक है। लेकिन बुद्ध की दा.ैड से ही सत्य मिला, यह भी उतना ही ठीक है। इस द्वंद्व को ठीक से आप समझ लेंगे, तो इस प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा।

आत्म-साक्षात्कार तो सदा अकस्मात ही होता है। क्योंकि उसका कोई प्रेडिक्शन नहीं हो सकता, कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती कि कल सुबह ग्यारह बजे आपको आत्म-साक्षात्कार हो जाएगा।

आपकी मौत की भविष्यवाणी हो सकती है। आपकी बीमारी की भविष्यवाणी हो सकती है। सफलता-असफलता की भविष्यवाणी हो सकती है। आत्म-साक्षात्कार की कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। क्योंकि आत्म-साक्षात्कार इतनी अनूठी घटना है और कार्य-कारण से इतनी मुक्त है कि उसके लिए कोई गणित नहीं बिठाया जा सकता।

आत्म-साक्षात्कार तो अकस्मात ही होगा। और कभी-कभी ऐसे क्षणों में हो जाता है, जिनको आप सोच भी नहीं सकते थे कि इस क्षण में और आत्म-साक्षात्कार होगा। लेकिन अगर आप इसका यह मतलब समझ लें कि साधना करनी जरूरी नहीं है, अकस्मात जब होना है, हो जाएगा। तो कभी भी न होगा। साधना जरूरी है।

साधना जरूरी है आपको तैयार करने के लिए। आत्म-साक्षात्कार साधना से नहीं आता, लेकिन आप तैयार होते हैं, आप योग्य बनते हैं, आप पात्र बनते हैं, आप खुलते हैं। और जब आप योग्य और पात्र हो जाते हैं, तो आत्म-साक्षात्कार की घटना घट जाती है।

इस फर्क को ठीक से ख्याल में ले लें।

आप परमात्मा को साधना से नहीं ला सकते। वह तो मौजूद है। साधना से सिर्फ आप अपनी आंख खोलते हैं। साधना से सिर्फ आप अपने को तैयार करते हैं। परमात्मा तो मौजूद है; उसको पाने का कोई सवाल नहीं है।

ऐसा समझें कि आप अपने घर में बैठे हैं। सूरज निकल गया है, सुबह है। और आप सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद किए अंदर बैठे हैं। सूरज आपके दरवाजों को तोड़कर भीतर नहीं आएगा। लेकिन दरवाजे पर उसकी किरणें रुकी रहेंगी। आप चाहें कि जाकर बाहर सूरज की रोशनी को गठरी में बांधकर भीतर ले आएं, तो भी आप न ला सकेंगे। गठरी भीतर आ जाएगी, रोशनी बाहर की बाहर रह जाएगी। लेकिन आप एक काम कर सकते हैं कि दरवाजे खुले छोड़ दें, और सूरज भीतर चला आएगा।

न तो सूरज को जबरदस्ती भीतर लाने का कोई उपाय है। और न सूरज जबरदस्ती अपनी तरफ से भीतर आता है। आप क्या कर सकते हैं? एक मजेदार बात है। आप सूरज को भीतर तो नहीं ला सकते, लेकिन बाहर रोक सकते हैं। आप दरवाजा बंद रखें, तो भीतर नहीं आएगा। आप दरवाजा खोल दें, तो भीतर आएगा।

ठीक परमात्मा ऐसा ही मौजूद है। और जब तक आप अपने विचारों में बंद, अपने मन से घिरे, मुर्दे की तरह हैं, एक कब्र में, चारों तरफ दीवालों से घिरे हुए एक कारागृह में--वासनाओं का, विचारों का, स्मृतियों का कारागृह; आशाओं का, अपेक्षाओं का कारागृह--तब तक परमात्मा से आपका मिलन नहीं हो पाता। जिस क्षण यह कारागृह आपसे गिर जाता है, जिस क्षण, जैसे वस्त्र गिर जाएं, और आप नग्न हो गए, ऐसे ये सारे विचार-वासनाओं के वस्त्र गिर गए और आप नग्न हो गए अपनी शुद्धता में, उसी क्षण आपका मिलना हो जाता है।

साधना आपको निखारती है, परमात्मा को नहीं मिलाती। लेकिन जिस दिन आप निखर जाते हैं... । और कोई नहीं कह सकता कि कब आप निखर जाते हैं, क्योंकि इतनी अनहोनी घटना है कि कोई मापदंड नहीं है। और जांचने का कोई उपाय नहीं है। कोई दिशासूचक यंत्र नहीं है। कोई नक्शा नहीं है, अनचार्टर्ड है। यात्रा बिल्कुल ही नक्शेरहित है।

आपके पास कुछ भी नहीं है कि आप पता लगा लें कि आप कहां पहुंच गए। निन्यानबे डिग्री पर पहुंच गए, कि साढ़े निन्यानबे डिग्री पर पहुंच गए, कि कब सौ डिग्री हो जाएगी, कब आप भाप बन जाएंगे। यह तो

जब आप बन जाते हैं, तभी पता चलता है कि बन गए। वह आदमी पुराना समाप्त हो गया और एक नई चेतना का जन्म हो गया। अकस्मात, अचानक विस्फोट हो जाता है।

लेकिन उस अकस्मात विस्फोट के पहले लंबी यात्रा है साधना की। जब पानी भाप बनता है, तो सौ डिग्री पर अकस्मात बन जाता है। लेकिन आप यह मत समझना कि निन्यानबे डिग्री पर, अट्ठानबे डिग्री पर भी अकस्मात बन जाएगा। सौ डिग्री तक पहुंचेगा, तो एकदम से भाप बन जाएगा। लेकिन सौ डिग्री तक पहुंचने के लिए जो गरमी की जरूरत है, वह साधना जुटाएगी।

इसलिए हमने साधना को तप कहा है। तप का अर्थ है, गरमी। वह तपाना है स्वयं को और एक ऐसी स्थिति में ले आना है, जहां परमात्मा से मिलन हो सकता है।

बुद्ध उस रात उस जगह आ गए, जहां सौ डिग्री पूरी हो गई। फिर आग देने की कोई जरूरत भी न रही। वे टिककर उस वृक्ष से बैठ गए। उन्होंने तप भी छोड़ दिया। लेकिन घटना सुबह घट गई।

जीवन के परम रहस्य अकस्मात घटित होते हैं। लेकिन उन अकस्मात घटित होने वाले रहस्यों की भी बड़ी पूर्व-भूमिका है।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, जिस प्रकार एक ही सूर्य इस संपूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा संपूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है। इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकारयुक्त प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान-नेत्रों द्वारा तत्व से जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि एक सुबह रास्ते से निकलते वक्त, वर्षा के दिन थे और रास्ते के किनारे जगह-जगह डबरे हो गए थे और पानी भर गया था। कुछ डबरे गंदे थे। कुछ डबरों में जानवर स्नान कर रहे थे। कुछ डबरे शुद्ध थे। कुछ बिल्कुल स्वच्छ थे। किन्हीं के पोखर का पानी बड़ा स्वच्छ-साफ था। किन्हीं का बिल्कुल गंदा था। और सुबह का सूरज निकला। रवींद्रनाथ ने कहा कि मैं घूमने निकला था। मुझे एक बात बड़ी हैरान कर गई और अकस्मात वह बात मेरे हृदय के गहरे से गहरे अंतस्तल को स्पर्श करने लगी।

देखा मैंने कि सूरज एक है; गंदे डबरे में भी उसी का प्रतिबिंब बन रहा है, स्वच्छ पानी में भी उसी का प्रतिबिंब बन रहा है। और यह भी ख्याल में आया कि गंदे डबरे में जो प्रतिबिंब बन रहा है, वह गंदे पानी की वजह से प्रतिबिंब गंदा नहीं हो रहा है। प्रतिबिंब तो वैसा का वैसा निष्कलुष! सूरज का जो प्रतिबिंब बन रहा है, वह तो वैसा का वैसा निर्दोष और पवित्र! और शुद्ध जल में भी उसका प्रतिबिंब बन रहा है। वे प्रतिबिंब दोनों बिल्कुल एक जैसे हैं। गंदगी जल में हो सकती है, डबरे में हो सकती है, लेकिन प्रतिबिंब की शुद्धि में कोई अंतर नहीं पड़ रहा है। और फिर एक ही सूर्य न मालूम कितने डबरों में, करोड़ों-करोड़ों डबरों में पृथ्वी पर प्रतिबिंबित हो रहा होगा।

कृष्ण कहते हैं, जैसे एक ही सूर्य इस संपूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा, एक ही चैतन्य समस्त जीवन को आच्छादित किए हुए है।

वह जो आपके भीतर चैतन्य की ज्योति है, और वह जो मेरे भीतर चैतन्य की ज्योति है, और वह जो वृक्ष के भीतर चैतन्य की ज्योति है, वह एक ही प्रकाश के टुकड़े हैं, एक ही प्रकाश की किरणें हैं।

प्रकाश एक है, उसका स्वाद एक है। उसका स्वभाव एक है। दीए अलग-अलग हैं। कोई मिट्टी का दीया है; कोई सोने का दीया है। लेकिन सोने के दीए में जो प्रकाश होता है, वह कुछ कीमती नहीं हो जाता। और मिट्टी के

दीए में जो प्रकाश होता है, वह कोई कम कीमती नहीं हो जाता। और मिट्टी के दीए की ज्योति को अगर आप जांचें और सोने के दीए की ज्योति को जांचें, तो उन दोनों का स्वभाव एक है।

चैतन्य एक है। उसका स्वभाव एक है। वह स्वभाव है, साक्षी होना। वह स्वभाव है, जानना। वह स्वभाव है, दर्शन की क्षमता।

प्रकाश का क्या स्वभाव है? अंधेरे को तोड़ देना। जहां कुछ न दिखाई पड़ता हो, वहां सब कुछ दिखाई पड़ने लगे। चैतन्य का स्वभाव है, देखने की, जागने की क्षमता; दर्शन की, ज्ञान की क्षमता। वह भी भीतरी प्रकाश है। उस प्रकाश में सब कुछ दिखाई पड़ने लगता है।

खतरा एक ही है कि जब भीतर का दीया हमारा जलता है और हमें चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं, तो हम चीजों को स्मरण रख लेते हैं और जिसमें दिखाई पड़ती हैं, उसे भूल जाते हैं। यही विस्मरण संसार है। जो दिखाई पड़ता है, उसे पकड़ने दौड़ पड़ते हैं। और जिसमें दिखाई पड़ता है, उसका विस्मरण हो जाता है।

जिस चैतन्य के कारण हमें सारा संसार दिखाई पड़ रहा है, उस चैतन्य को हम भूल जाते हैं। और वह जो दिखाई पड़ता है, उसके पीछे चल पड़ते हैं। इसी यात्रा में हम जन्मों-जन्मों भटके हैं।

कृष्ण कहते हैं सूत्र इससे जागने का। वह सूत्र है कि हम उसका स्मरण करें, जिसको दिखाई पड़ता है। जो दिखाई पड़ता है, उसे भूलें। जिसको दिखाई पड़ता है, उसको स्मरण करें। विषय भूल जाए, और वह जो भीतर बैठा हुआ द्रष्टा है, वह स्मरण में आ जाए। यह स्मृति ही क्षेत्रज्ञ में स्थापित कर देती है। यह स्मृति ही क्षेत्र से तोड़ देती है।

यह सारा विचार कृष्ण का इन दो शब्दों के बीच चल रहा है, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। वह जो जानने वाला है वह, और वह जो जाना जाता है। जाना जो जाता है, वह संसार है। और जो जानता है, वह परमात्मा है।

यह परमात्मा अलग-अलग नहीं है। यह हम सबके भीतर एक है। लेकिन हमें अलग-अलग दिखाई पड़ता है, क्योंकि हम भीतर तो कभी झांककर देखे नहीं। हमने तो केवल शरीर की सीमा देखी है।

मेरा शरीर अलग है। आपका शरीर अलग है। स्वभावतः, वृक्ष का शरीर अलग है। तारों का शरीर अलग है। पत्थर का शरीर अलग है। तो शरीर हमें दिखाई पड़ते हैं, इसलिए ख्याल होता है कि जो भीतर छिपा है, वह भी अलग है।

एक बार हम अपने भीतर देख लें और हमें पता चल जाए कि शरीर में जो छिपा है, शरीर से जो घिरा है, वह अशरीरी है। पदार्थ जिसकी सीमा बनाता है, वह पदार्थ नहीं है। सब सीमाएं टूट गईं। फिर सब शरीर खो गए। फिर सब आकृतियां विलुप्त हो गईं और निराकार का स्मरण होने लगा। इस सूत्र में उसी निराकार का स्मरण है।

हे अर्जुन, जिस प्रकार एक ही सूर्य संपूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा संपूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है। इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकारयुक्त प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान-नेत्रों द्वारा तत्व से जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को... ।

बहुत बारीक भेद है और जरा में भूल जाता है। क्योंकि जिसे हम देख रहे हैं, उसे देखना आसान है। और जो देख रहा है, उसे देखना मुश्किल है। अपने को ही देखना मुश्किल है। इसलिए बार-बार दृष्टि पदार्थों पर अटक जाती है। बार-बार कोई विषय, कोई वासना, कुछ पाने की आकांक्षा पकड़ लेती है। चारों तरफ बहुत कुछ है।

गुरजिएफ कहा करता था कि जो व्यक्ति सेल्फ रिमेंबरिंग, स्व-स्मृति को उपलब्ध हो जाता है, उसे फिर कुछ पाने को नहीं रह जाता। साक्रेटीज ने कहा है कि स्वयं को जान लेना सब कुछ है; सब कुछ जान लेना है।

मगर यह स्वयं को जानने की कला है। और वह कला है, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद। वह कला है, सदा जो दिखाई पड़ रहा है, उससे अपने को अलग कर लेना। इसका अर्थ गहरा है।

इसका अर्थ यह है कि आपको मकान दिखाई पड़ता है, तो अलग कर लेने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन आपको अपना शरीर भी दिखाई पड़ता है। यह हाथ मुझे दिखाई पड़ता है। तो जिस हाथ को मैं देख रहा हूं, निश्चित ही उस हाथ से मैं अलग हो गया। और तब आंख बंद करके कोई देखे, तो अपने विचार भी दिखाई पड़ते हैं। अगर आंख बंद करके शांत होकर देखें, तो आपको दिखाई पड़ेगी विचारों की कतार ट्रैफिक की तरह चल रही है। एक विचार आया, दूसरा विचार आया, तीसरा विचार आया। भीड़ लगी है विचारों की। इनको भी अगर आप देख लेते हैं, तो इसका मतलब हुआ कि ये भी क्षेत्र हो गए।

जो भी देख लिया गया, वह मुझसे अलग हो गया--यह सूत्र है साधना का। जो भी मैं देख लेता हूं, वह मैं नहीं हूं। और मैं उसकी तलाश करता रहूंगा, जिसको मैं देख नहीं पाता और हूं। उसका मुझे पता उसी दिन चलेगा, जिस दिन देखने वाली कोई भी चीज मेरे सामने न रह जाए।

संसार से आंख बंद कर लेनी बहुत कठिन नहीं है। आंख बंद हो जाती है, संसार बंद हो जाता है। लेकिन संसार के प्रतिबिंब भीतर छूट गए हैं, वे चलते रहते हैं। फिर उनसे भी अपने को तोड़ लेना है। और तोड़ने की कला यही है कि मैं आंख गड़ाकर देखता रहूं, सिर्फ देखता रहूं। और इतना ही स्मरण रखूं कि जो भी मुझे दिखाई पड़ जाए, वह मैं नहीं हूं।

धीरे-धीरे-धीरे विचार भी खो जाएंगे। जैसे-जैसे यह धार तलवार की गहरी होती जाएगी, प्रखर होती जाएगी, और मेरी काटने की कला साफ होती जाएगी कि जो भी मुझे दिखाई पड़ जाए, वह मैं नहीं हूं, एक घड़ी ऐसी आती है, जब कुछ भी दिखाई पड़ने को शेष नहीं रह जाता है। वही ध्यान की घड़ी है। उसको शून्य कहा जाता है, क्योंकि कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन अगर शून्य दिखाई पड़ता है, तो वह भी मैं नहीं हूं, यह ख्याल रखना जरूरी है। क्योंकि ऐसे बहुत से ध्यानी भूल में पड़ गए हैं। क्योंकि जब कोई भी विषय नहीं बचता, तो वे कहते हैं, शून्य रह गया।

बौद्धों का एक शून्यवाद है। नागार्जुन ने उसकी प्रस्तावना की है। और नागार्जुन ने कहा है कि सब कुछ शून्य है।

यह भी भूल है। यह आखिरी भूल है, लेकिन भूल है। क्योंकि शून्य बचा। लेकिन तब शून्य भी एक आब्जेक्ट बन गया। मैं शून्य को देख रहा हूं। निश्चित ही, मैं शून्य भी नहीं हो सकता।

जो भी मुझे दिखाई पड़ जाता है, वह मैं नहीं हूं। मैं तो वह हूं, जिसको दिखाई पड़ता है। इसलिए पीछे-पीछे सरकते जाना है। एक घड़ी ऐसी आती है, जब शून्य से भी मैं अपने को अलग कर लेता हूं।

जब शून्य दिखाई पड़ता है, तब ध्यान की अवस्था है। कुछ लोग ध्यान में ही रुक जाते हैं; तो शून्य को पकड़ लेते हैं। जब शून्य को भी कोई छोड़ देता है, शून्य को छोड़ते ही सारा आयाम बदल जाता है। फिर कुछ भी नहीं बचता। संसार तो खो गया, विचार खो गए, शून्य भी खो गया। फिर कुछ भी नहीं बचता। फिर सिर्फ जानने वाला ही बच रहता है।

शून्य तक ध्यान है। और जब शून्य भी खो जाता है, तो समाधि है। जब शून्य भी नहीं बचता, सिर्फ मैं ही बच रहता हूं, सिर्फ जानने वाला!

ऐसा समझें कि दीया जलता है। सिर्फ प्रकाश रह जाता है। कोई प्रकाशित चीज नहीं रह जाती। किसी चीज पर प्रकाश नहीं पड़ता। सिर्फ प्रकाश रह जाता है। सिर्फ जानना रह जाता है और जानने को कोई भी चीज नहीं बचती, ऐसी अवस्था का नाम समाधि है। यह समाधि ही परम ब्रह्म का द्वार है।

तो कृष्ण कहते हैं, जो इस भेद को तथा विकारयुक्त प्रकृति से छूटने के उपाय को--यही उपाय है--ज्ञान-नेत्रों द्वारा तत्व से जानते हैं... ।

लेकिन शब्द से तो जान सकते हैं आप। मैंने कहा; आपने सुना; और एक अर्थ में आपने जान भी लिया। पर यह जानना काम नहीं आएगा। यह तो केवल व्याख्या हुई। यह तो केवल विश्लेषण हुआ। यह तो केवल शब्दों के द्वारा प्रत्यय की पकड़ हुई। लेकिन ज्ञान-नेत्रों के द्वारा जो तत्व से जान लेता है, ऐसा आपका अनुभव बन जाए।

यह तो आप प्रयोग करेंगे, तो अनुभव बनेगा। यह तो आप अपने भीतर उतरते जाएंगे और काटते चले जाएंगे क्षेत्र को, ताकि क्षेत्रज्ञ उसकी शुद्धतम स्थिति में अनुभव में आ जाए... । क्षेत्र से मिश्रित होने के कारण वह अनुभव में नहीं आता।

तो इलिमिनेट करना है, काटना है, क्षेत्र को छोड़ते जाना है, हटाते जाना है। और उस घड़ी को ले आना है भीतर, जहां कि मैं ही बचा अकेला; कोई भी न बचा। सिर्फ मेरे जानने की शुद्ध क्षमता रह गई, केवल ज्ञान रह गया। तो जिस दिन आप अपने ज्ञान-नेत्रों से... ।

स्मृति को आप ज्ञान मत समझ लेना। समझ ली कोई बात, इसको आप अनुभव मत समझ लेना। बिल्कुल अकल में आ गई, तो भी आप यह मत समझ लेना कि आप में आ गई। बुद्धि में आ जाना तो बहुत आसान है। क्योंकि साधारणतया जो सोच-समझ सकता है, वह भी समझ लेगा कि बात ठीक है, कि जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं कैसे हो सकता हूं! मैं तो वही होऊंगा, जिसको दिखाई पड़ता है। यह तो बात सीधी गणित की है। यह तो तर्क की पकड़ में आ जाती है।

यह मेरा हाथ है, इससे मैं जो भी चीज पकड़ लूं, एक बात पक्की है कि वह मेरा हाथ नहीं होगा। जो भी चीज इससे मैं पकडूंगा, वह कुछ और होगी। इसी हाथ को इसी हाथ से पकड़ने का कोई उपाय नहीं है।

आप एक चमीटे से चीजें पकड़ लेते हैं। दुनियाभर की चीजें पकड़ सकते हैं। सिर्फ उसी चमीटे को नहीं पकड़ सकते उसी चमीटे से। दूसरे से पकड़ सकते हैं। वह सवाल नहीं है। लेकिन उसी चमीटे से आप सब चीजें पकड़ लेते हैं। यह बड़ी मुश्किल की बात है।

यह दुनिया बड़ी अजीब है। जो चमीटा सभी चीजों को पकड़ लेता है, वह भी अपने को पकड़ने में असमर्थ है। तो आप चमीटे में कुछ भी पकड़े हों, एक बात पक्की है कि चमीटा नहीं होगा वह; वही चमीटा नहीं होगा; कुछ और होगा। जब सब पकड़ छूट जाए, तो शुद्ध चमीटा बचेगा।

जब मेरे हाथ में कुछ भी पकड़ में न रह जाए, तो मेरा शुद्ध हाथ बचेगा। जब मेरी चेतना के लिए कोई भी चीज जानने को शेष न रह जाए, तो सिर्फ चैतन्य बचेगा। लेकिन यह अनुभव से!

तर्क से समझ में आ जाता है। और एक बड़े से बड़ा खतरा है। जब समझ में आ जाता है, तो हम सोचते हैं, बात हो गई।

इधर मैं देखता हूं, पचास साल से गीता पढ़ने वाले लोग हैं। रोज पढ़ते हैं। भाव से पढ़ते हैं, निष्ठा से पढ़ते हैं। उनकी निष्ठा में कोई कमी नहीं है। उनके भाव में कोई कमी नहीं है। प्रामाणिक है उनका श्रम। और गीता वे बिल्कुल समझ गए हैं। वही खतरा हो गया है। किया उन्होंने बिल्कुल नहीं है कुछ भी।

सिर्फ गीता को समझते रहे हैं, बिल्कुल समझ गए हैं। उनके खून में बह गई है गीता। वे मर भी गए हों और उनको उठा लो, तो वे गीता बोल सकते हैं, इतनी गहरी उनकी हड्डी-मांस-मज्जा में उतर गई है। लेकिन उन्होंने किया कुछ भी नहीं है, बस उसको पढ़ते रहे हैं, समझते रहे हैं। बुद्धि भर गई है, लेकिन हृदय खाली रह गया है। और अस्तित्व से कोई संपर्क नहीं हो पाया है।

तो कई बार बहुत प्रामाणिक भाव, श्रद्धा, निष्ठा से भरे लोग भी चूक जाते हैं। चूकने का कारण यह होता है कि वे स्मृति को ज्ञान समझ लेते हैं।

अनुभव की चिंता रखना सदा। और जिस चीज का अनुभव न हुआ हो, ख्याल में रखे रखना कि अभी मुझे अनुभव नहीं हुआ है। इसको भूल मत जाना।

मन की बड़ी इच्छा होती है इसे भूल जाने की, क्योंकि मन मानना चाहता है कि हो गया अनुभव। अहंकार को बड़ी तृप्ति होती है कि मुझे भी हो गया अनुभव।

लोग मेरे पास आते हैं। वे मुझसे पूछते हैं कि मुझे ऐसा-ऐसा अनुभव हुआ है, आत्मा का अनुभव हुआ है। आप कह दें कि मुझे आत्मा का अनुभव हो गया कि नहीं?

मैं उनसे पूछता हूं कि तुम मुझसे पूछने किस लिए आए हो? क्योंकि आत्मा का जब तुम्हें अनुभव होगा, तो तुम्हें किसी से पूछने की जरूरत न रह जाएगी। मैं कह दूं कि तुम्हें आत्मा का अनुभव हो गया, तुम बड़ी प्रसन्नता से चले जाओगे कि तुम्हें एक प्रमाणपत्र, एक सर्टिफिकेट मिल गया। सर्टिफिकेट की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें अभी हुआ नहीं है। तुमने समझ ली है सारी बात। तुम्हें समझ में इतनी आ गई है कि तुम यह भूल ही गए हो कि अनुभव के बिना समझ में आ गई है।

अनुभव को निरंतर स्मरण रखना जरूरी है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, जिनको अपने ही ज्ञान-नेत्रों से तत्व का अनुभव होता है, वे महात्माजन... । और यहां वे तत्क्षण उनके लिए महात्मा का उपयोग करते हैं।

अनुभव आपको महात्मा बना देता है। उसके पहले आप पंडित हो सकते हैं। पंडित उतना ही अज्ञानी है, जितना कोई और अज्ञानी। फर्क थोड़ा-सा है कि अज्ञानी शुद्ध अज्ञानी है, और पंडित इस भ्रांति में है कि वह अज्ञानी नहीं है। इतना ही फर्क है कि पंडित के पास शब्दों का जाल है, और अज्ञानी के पास शब्दों का जाल नहीं है। पंडित को भ्रांति है कि वह जानता है, और अज्ञानी को भ्रांति नहीं है ऐसी।

अगर ऐसा समझें, तब तो अज्ञानी बेहतर हालत में है। क्योंकि उसका जानना कम से कम सचाई के करीब है। पंडित खतरे में है। इसलिए उपनिषद कहते हैं कि अज्ञानी तो भटकते हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। वे इन्हीं ज्ञानियों के लिए कहते हैं।

यह तो बड़ा उलटा सूत्र मालूम पड़ता है! उपनिषद के इस सूत्र को समझने में बड़ी जटिलता हुई। क्योंकि सूत्र कहता है, अज्ञानी तो भटकते हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। तो फिर तो बचने का कोई उपाय ही न रहा। अज्ञानी भी भटकेंगे और ज्ञानी और बुरी तरह भटकेंगे, तो फिर बचेगा कौन?

बचेगा अनुभवी। अनुभवी बिल्कुल तीसरी बात है। अज्ञानी वह है, जिसे शब्दों का, शास्त्रों का कोई पता नहीं। और ज्ञानी वह है, जिसे शब्दों और शास्त्रों का पता है। और अनुभवी वह है, जिसे शास्त्रों और शब्दों का नहीं, जिसे सत्य का ही स्वयं पता है, जहां से शास्त्र और शब्द पैदा होते हैं।

शास्त्र तो प्रतिध्वनि है, किसी को अनुभव हुए सत्य की। वह प्रतिध्वनि है। और जब तक आपको ही अपना अनुभव न हो जाए, सभी शास्त्र झूठे रहेंगे। आप गवाह जब तक न बन जाएं, जब तक आप न कह सकें कि ठीक, गीता वही कहती है जो मैंने भी जान लिया है, तब तक गीता आपके लिए असत्य रहेगी।

आपके हिंदू होने से गीता सत्य नहीं होती। और आपके गीता-प्रेमी होने से गीता सत्य नहीं होती। जब तक आपका अनुभव गवाही न दे दे कि ठीक, जो कृष्ण कहते हैं क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद, वह मैंने जान लिया है; और मैं गवाही देता हूं अपने अनुभव से; तब आपके लिए गीता सत्य होती है।

शास्त्रों से सत्य नहीं मिलता, लेकिन आप शास्त्रों के गवाही बन सकते हैं। और तब शास्त्र, जो आप नहीं कह सकते, जो आपको बताना कठिन होगा, उसको बताने के माध्यम हो जाते हैं। शास्त्र केवल गवाहियां हैं जानने वालों की। और आपकी गवाही भी जब उनसे मेल खा जाती है, तभी शास्त्र से संबंध हुआ।

गीता को रट डालो, कंठस्थ कर लो। कोई संबंध न होगा। लेकिन जो गीता कहती है, वही जान लो, संबंध हो गया।

जब तक आप गीता को पढ़ रहे हैं, तब तक ज्यादा से ज्यादा आपका संबंध अर्जुन से हो सकता है। लेकिन जिस दिन आप गीता को अनुभव कर लेते हैं, उसी दिन आपका संबंध कृष्ण से हो जाता है।

पांच मिनट रुकेंगे। आखिरी दिन है। कोई बीच में उठे न। कीर्तन में पूरी तरह सम्मिलित हों। और फिर जाएं।